गङ्गा—"विज्ञानांक"

माघ, फाल्गुन, चैत्र
१९९०—१९९१

"GANGA"
(An Illustrated Hindi Monthly)

January, February, March
1934

"VIJNANANK"—Special Science Number. Rs. 3/8/-

इस अंकके सम्पादक
फूलदेव सहाय वर्मा
रामगोविन्द त्रिवेदी

प्रवाह ४, वर्ष ४
तरंग १-३
पूर्ण तरंग ३९

"ज्ञानप्रवाहा विमलाऽऽदिगंगा"
—शंकराचार्य

"विज्ञानांक"का मूल्य ३॥)
वार्षिक मूल्य ५)
विदेशके लिये ७)

अपने जीवन की प्रेम बटी

व दुखी क्यों देख पड़ते हो ? तब मैंने उनसे अपनी कुल बीमारी का हाल बताया। उन्होंने मुझे दिलासा दिया और मुझे एक नुसखा बतलाया, जो कि यह था-असली ताजा त्रिफला का चूर्ण ५ तोला, असली सूर्य्यतापी शिलाजीत २॥ तोला, असली बंगभस्म ६ माशे, असली सूर्य्यछाप केशर ६ माशे, असली अकरकरा ६ माशे, असली नैपाली कस्तूरी ६ रत्ती, सब औषधों को कूट पीस कपड़े से छान कर खरल में डाल कर ऊपर से आयल किबेब (शीतलचीनी का तेल) २० बूंद, आयल कूपेवा (बहरोजा का तेल) २० बूंद, आयल संदल (चंदन का तेल) २० बूंद डाल कर ब्राह्मी बूटी के अर्क में १२ घंटे घोट कर झरबेरी के बेर के बराबर गोली बनाकर माया में सुखाकर रखले १ गोली सुबह १ गोली शाम को गाय या बकरी के पाव भर दूध में २ तोला शक्कर या मिश्री डालकर पी ले। २० रोज में मैं ईश्वर की कृपा से इसी दवा से बिलकुल अच्छा होगया यहां तक कि इतना अर्सा होगया मुझे जरा भी शिकायत नहीं हुई उसी परमपिता की कृपासे ३ बच्चे भी हैं जो बिलकुल तन्दुरुस्त हैं और निरोग्य हैं उस समय से मैं वही नुसखा लोगों को तैयार कर लागत मात्र में अपने आस पास के गावों में देता रहा जिससे सैकड़ों भाइयों को लाभ हुआ और उनकी मुरादें पूरी हुई यह देख कर उन्हीं भाइयों ने कहा कि बाबू जी इसे संसार के हित के लिये अखबारों में छपा दीजिये तब मैंने जवाब दिया कि बड़े २ डाक्टरों व वैद्यों व हकीमों ने इसी धातु के रोग पर सैकड़ों इश्तिहार छपवाये पर लोग उनको झूठा समझ कर कुछ ध्यान नहीं देते तो फिर मैं ही क्या कर सकता हूँ लेकिन अपने सैकड़ों फायदा पाये हुये भाइयों के और मैंने भी अपनी नई जिन्दगी पाजाने की खुशी में देश की भलाई समझ कर इस छोटे से परचे को छपवाकर और अपने आदमियों को किराया देकर हिन्दुस्तान के हर शहर कस्बा व देहातों में बांटना शुरू किया जिससे सभी लोग दवा को तैयार कर लाभ उठावें और इधर उधर की दवा करने में अपना फिजूल धन व समय खराब न करें। यह दवा धातु का पतलापन, बीसों प्रकार के प्रमेह, पेशाब के साथ चूने की तरह धातु का जाना, पाखाने के समय वीर्य निकलना वा सोते समय स्वाब हो जाना, सुजाक कमजोरी व जवानी में बुढ़ापे की सी हालत, असली ताकत की कमी मालूम होना, विचारशक्ति घट जाना, आदि धातु सम्बन्धी शीघ्र पतन नपुंसकता को दूर कर बदन में अपार शक्ति पैदा कर जवानी का आनन्द बदन की नस २ में फड़काती है जिन साहबान को बनाना है ऊपर लिखे अनुसार तैयार कर लें जो चीज आपके यहां न

मिल सके हमसे मंगालें क्योंकि इन औषधियों की बड़ी जरूरत समझ कर तथा भाइयों को शुद्ध तथा ताजी औषधि ठीक समय पर न मिलने से हमने इन सभी दवाइयों का थोक माल रखने का प्रबन्ध कर लिया है जिससे हमारे यहां सभी औषधियां केशर कस्तूरी शिलाजीत बंगभस्म वगैरह शुद्ध और ताजी हर समय तैयार मिलती हैं जिन भाइयों को बनाने में कष्ट हो वह हमारे यहां से बनी बनाई मंगा लें ४० गोली का सुन्दर पैकट जिसका मूल्य लागत मात्र सिर्फ २) दो रु० ३ पैकट का दाम ५) पांच रुपया, ६ छः पैकट का दाम ९) नौ रुपया डाक खर्च माफ है मनीआर्डर फीस सिर्फ ≈) दो आना लगेगा। ऊपर लिखे पते से मंगा लीजिये।

प्रेम बटी सेवन करने वाले लोगों की सम्मति।

(१) धूपनारायणराम सोनार दूकान रगड़गंज-बाजार खलीलाबाद बस्ती से लिखते हैं—अपने जीवन की प्रेम बटी का एक पैकट मैंने मंगाया था जो २ गुण आपने लिखे हैं सो सब सही पाया अब आप कृपा करके ३ तीन पैकट और भेज दीजियेगा।

(२) नेकराम वल्द विद्याराम जाट सहारा पो० मिढ़ाकुर आगरा से लिखते हैं—आपने धातु बन्द करने की जो दवा सहारे वाले हरिख्याल के लिये भेजी थी वह बहुत अच्छी है उससे बहुत फायदा पहुँचा इस लिए मिहरबानी करके जितने पैकट पहिले भेजे थे वह अब भी खत के देखते ही भेज दीजियेगा आपकी बड़ी कृपा होगी।

(३) कोइली पान वाला श्रीरामरोड अमीनाबाद लखनऊ से लिखते हैं—भाई जी मैंने आपके यहां से ५) रुपये के तीन पैकट अपने जीवन की प्रेम बटी मंगाई थी सो मुझको बहुत कुछ फायदा हुआ आप कृपा कर बहुत जल्द खत के देखते ही ६ पैकट ९) नौ रुपया का वी० पी० करके भेज दीजियेगा।

(४) रामधन एन्ड सन्स संयोगितागंज इन्दौर से लिखते हैं—आपने ४० गोली का पैकट भेजा मैंने खाया मेरे को पहिले पेशाब करते वक जलन व पीब होता था उसमें रुपये में आठ आने भर फायदा है अब हमारे पास सिर्फ दो रोज के लिये खुराक है अब आप ४० गोली का एक पैकट भेज देना ताकि आपकी गोली खाऊं मैं आपका बड़ा एहसानमन्द हूँगा हम गरीब पर कृपा रखना।

(५) हरप्रसाद तिवारी नम्बरदार मु० पो० मरौंध बांदा से लिखते हैं—अपने जीवन की प्रेम बटी ने बहुत फायदा किया है सो बराय मिहरबानी ३ पैकट ५) रुपये के और भेज दीजियेगा।

(६) मास्टर अहिबरनसिंह स्कूल सलेथरा पो० मांडेर जि० गिर्द ग्वालियर स्टेट से लिखते हैं—मैंने १० दिन परहेज के साथ सेवन किया बाद को आपके दास का गौना होने की वजह से परहेज बिगड़ गया बदपरहेजी की वजह से पूरा फायदा नहीं हुआ ४० गोली और भेजदो अब हालत सेर में चौथाई बाकी रह गई है। आपका प्रेमी।

(७) मानजी लाल ग्वालटोली कानपुर से लिखते हैं कि मैंने आपके यहां से प्रेमबटी अपने दोस्त के लिये मंगाई थी जिनका कि बहुत ही अच्छा असर मर्ज के लिये पहुँचा अब बराय मेहरबानी एक पैकट प्रेमबटी कर का फिर से भेजियेगा अगर फायदा पहुँचाया तो फिर से और मंगाऊंगा।

बाबू श्यामलालजी रईस, प्रेमबटी आफिस, कंचौसी बाजार, जिला इटावा यू० पी०

हमारे पास उन ग्राहकों के ऐसे पत्र नित्य प्रति आते हैं कि जिनका अभिप्राय यह है कि अपने जीवन की प्रेम वटी वास्तव में जीवन का अमूल्य रत्न है जो २० बीसों प्रकार के प्रमेह दूर करने में रामबाण का काम करती है इस दवा से लाभ उठाकर धन्यवाद देता हूँ। ऐसे धर्मज्ञ पुरुष कम देखने में आते हैं जो सच्चाई पर दृढ़ हों मैंने आपके नोटिस का अक्षर २ सत्य पाया आप कृपाकर अपने यहां का सूचीपत्र भेज दो। ऐसे ही हजारों पत्र आया करते हैं लेकिन उनकी इच्छा पूरी न हो सकने से उन्हें निराश होना पड़ता था इसी ख्याल से अपने प्रेमी जनों की सेवा करने के लिये वैद्यक शास्त्र को मथन कराके बड़े २ नामी वैद्यों की सम्मति लेकर हजारों रोगियों द्वारा परीक्षा कराके कुछ रत्न और खोज निकाले हैं आशा है कि अमीर गरीब भाई तैयार कर लाभ उठावेंगे और हम भी अपने परिश्रम को सुफल समझेंगे। आपका विनीत--बाबू श्यामलालजी रईस, कंचौसी बाजार, जिला इटावा यू. पी.

सत्यप्रभा सुर्मा।

प्यारे भाइयो! विज्ञापन छपाना और दवाइयां बेचना मेरा तो व्यापार नहीं है और न तिजारत से अपनी आत्मा का पालन करने ही की आशा रखता हूँ बल्कि हमेशा यही ध्यान रखता हूँ कि यह शरीर हमेशा आपकी सेवा ही में लगा रहे यही बार २ ईश्वर से प्रार्थना है मनुष्य के शरीर में आंख रोशनी रत्न एक कल्पवृक्ष ईश्वर ने पैदा किया है अगर यह रोशनी रत्न इन्सान की किसी तरह से बिगड़ गई तो फिर सुख से जिन्दगी का बेड़ा पार नहीं हो सकता बल्कि तमाम जिन्दगी बेकार जाती है ऐसा दुःख ईश्वर किसी को न दिखावे इस लिये अपने देश की भलाई और कल्याण के लिये अमीर व गरीब सभी भाई तैयार कर लाभ उठावें इसी विचार से जड़ी बूटियों का नुसखा तैयार करने की सरल तरकीब लिखता हूं यह नुसखा बनाने में तो साधारण मालूम पड़ता है परन्तु गुण में जिसने एक बार भी इस्तेमाल किया वह वाह २ की प्रशंसा करने लगा जिसके लिये ज्यादा बड़ाई करना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है बहुत से लोग तो यहां तक बड़ाई करते हैं कि इस सुर्मे की कीमत अगर १००) सौ रुपया तोला होती तो भी बहुत कम थी क्योंकि इस सुर्मे ने बड़े २ कीमती बड़े नामी और आज़मूदा सुर्मा के मान तोड़े तिस पर मैं भी हैरान हूं कि इसके अपार गुणों की प्रशंसा किस रूप में करूं ४ छटांक काला सुर्मा लेकर महीन पीस कर त्रिफला के काढ़ा में (आंवला, हर्र, बहेरा को त्रिफला बोलते हैं) ४ चार छटांक जवकुट कर ४ चार सेर पानी में पकने को रख दे जब पक कर ८ छटांक पानी रहे तब उतार कर कपड़े से छान कर बोतल में रखले यही काढ़ा है अब सुर्मे को लोहे की कढ़ाई में चूल्हे पर रख आंच दे जब सुर्मा तप कर लाल हो जाये तब कढ़ाई से उतार कर त्रिफले वाले अर्क से बुझावे इसी तरह सात बार तपा २ कर काढ़े से बुझावे फिर सुर्मे को महीन कर जंभीरी नीबू के अर्क में एक दिन खरल कर सुखा ले बस यह सुर्मा शुद्ध हो गया अब एक बोतल गुलाब जल में बराबर ७ सात रोज खरल करे एक दिन एक पाव घमरा (भृङ्गराज) के अर्क में खरल करे फिर एक दिन एक पाव केले के कुन्द के अर्क में खरल करे फिर एक दिन एक पाव नीम के अर्क से खरल करे अब इस सुर्मे में ३ मासे शुद्ध समुद्रफेन २ मासे शुद्ध नीलाथोथा ३ मासे लवंग ३ मासे अफीम (अहिफेन) ३ मासे जस्ता का फूला ३ मासे संख की नाभि ३ मासे मोती सीप की भस्म ३ मासे सीतलचीनी इन सब चीजों को महीन पीस कर मिला दे फिर इस में ३ मासे भीमसेनी कपूर २ मासे इलायची का तेल और ३ मासे पिपरमेंट डाल कर खूब घुटाई करे जब घुट कर एकदिल हो कर सूख जाय तब कपड़े से छान कर शीशी में

भर कर रख लें इसी तरह तैयार कर लाभ उठावें तभी हमारे लेख की सत्य और असत्य की परीक्षा कर सकेंगे कि यह लेख कहां तक सत्य है। नीचे लिखी हुई बीमारियों में कोई भी बीमारी आंखों की ऐसी नहीं है जो इस सुर्मे के लगाने से न साफ होती हो आशा है कि विद्वान लोग मेरे इस परिश्रम को देख कर प्रसन्न होंगे और आशीर्वाद देंगे क्योंकि यह सुर्मा आंखों में प्रवेश होते ही अपना बेमिस्ल जादू का असर दिखलाता है और आंखों के समस्त रोगों को नाश कर रोशनी को फिर असली हालत पर कायम रखता है जैसे कि *माड़ा जाला फूली धुंध रोहा नज़ला रतौंधी* ढलका बहना कीचड़ निकलना नखूना परवाल दूर की चीज़ देखते ही आंखों में पानी भर आना बरौनी झड़ना रोशनी का कम होना चकाचौंध और चश्मा का लगाना आंखों का चिपचिपाना या करकराना नज़र की कमज़ोरी या सुर्खी का रहना मोतियाबिन्दु या आंखों के पलकों में दानों का होना और खुजलाहट वगैरह बहुत जल्द शर्तिया साफ होते हैं यह सुर्मा आंखों से पानी के द्वारा दिमाग की गर्मी को खींचकर बाहर कर देता है और आंखों को ताज़गी व मग़ज पर तरावट पहुंचाता है कहां तक लिखूं इसके लगाते ही तमाम जहरीले पानी को निकालकर आंखें बरफ की तरह ठंढी कर व फूल की तरह निरमल कर मोती की तरह साफ हो जाती हैं बूढ़े जवान सबको बराबर एकसा फायदा पहुँचाता है अगर निरोग्य आंखों में एक या दो मर्तबे हफ्तेवार लगाया जाय तो आंखों में कोई शिकायत कभी भी न रहेगी बल्कि रोशनी को अपनी आखिरी जिन्दगी तक कायम रक्खेगा। जो लोग एक से एक फायदेवर सुरमा या और भी कीमती दवाइयां करके निराश हो गये हों उनसे मेरी बार २ यही प्रार्थना है कि इस सुरमे को तैयार कर मुफ्त में बांटने लगें तो इससे बढ़ कर दूसरा दान नहीं है जरूर तैयार करें कीमत विशेष नहीं है सिर्फ मिहनत तो अवश्य है विश्वास रक्खो अगर ईश्वर नाखुश नहीं है तो यह सत्यप्रभा सुरमा अवश्य सत्य की छटा साबित किये हुये कभी निष्फल न जायगा जिन साहबान को बनाने में कष्ट मालूम पड़े तो सुर्मा बनाने वाले कर्मचारियों की तनख्वाह निकालकर सिर्फ लागत मात्र पर कीमत रक्खी गई है मंगालें कीमत फी शीशी ।=) छै आना ३ तीन शीशी का १) एक रुपया छै शीशी का १।।) डाक खर्च ३ शीशी तक ।≈) ६ छै शीशी का ।।-) नौ आना।

सत्य सरोवर तेल।

आजकल बहुत से लोग व्हाइट आयल (एक प्रकार का गंधहीन मिट्टी का तेल) पर अशुद्ध विदेशी सेन्ट की सुगन्ध देकर खुशबूदार तेल बनाया करते हैं जिससे फायदे की बजाय काले बाल सन से सफेद हो जाते हैं और दिमाग में खुश्की व बुद्धिहीन नेत्र की ज्योति कम हो जाती है इस तेल में मैंने ऐसी उपयोगी विचित्र गुण दिखानेवाली औषधियां डाली हैं कि जिसके लगाने से निस्सन्देह आरोग्यता प्राप्त होती है इस तेल में पड़नेवाली औषधियों के गुण लिखे जांय तो एक पुस्तक बन जायगी। वैद्यक शास्त्र लिखता है—इस तेल के मर्दन करने से बुड्ढा मनुष्य भी सुन्दर युवा शक्ति प्राप्त कर बुद्धि को बढ़ाता है इसकी तरावट व सुगंध बनावटी तेलों की ऐसी नहीं है जो मिनट दो मिनट में उड़ जावे इसकी खुशबू बराबर २४ घंटे स्थिर रहती है क्योंकि इसमें पानड़ी छरीला सफेद चन्दन ब्राह्मीका स्वरस नगर सुगन्ध वाला नागरमोथा त्रिफला खस आदि का काढ़ा कर काले तिलके तेलमें पचाकर केशर कस्तूरी सीतलचीनी कपूर इलायची आदि गुणकारी औषधियां छोड़कर बढ़िया २ समय २ पर अनुपम छटा दिखलानेवाली खुशबूएं कभी हिना कभी मोतिया कभी चम्पा कभी चमेली समय २ की फड़कनेवाली खुशबू देकर शुद्ध विधिपूर्वक तैयार किया गया है जिनको सच्चा सुख उठाना हो वे इस तेल को हमेशा सेवन करें गर्मी में तो यह अमृत से

बढ़ कर सुखदायक है क्योंकि प्रतिष्ठित महापुरुषों ने सैकड़ों बार मुक्तकंठ से प्रशंसा की है कि जिस प्रकार यह तेल गर्मी के दिनों में ठंढक और मीठी २ सुगन्धित छटा की बहार दिखलाता है उसी प्रकार जाड़े के दिनों में भी गर्मी का प्रभाव दिखलाते हुये मनुष्य के कष्टों को हरण करता है क्योंकि इस तेल में गर्मी के दिनों में मलयागिरि चन्दन की और जाड़ों में कस्तूरी की पुट दी जाती है यह तेल अध्यापकों, वकीलों, क्लर्कों और सम्पादकों व मुनीमों के लिये जिनको दिमाग़ से विशेष काम लेना पड़ता हो उनके लिये अत्यन्त हितकारी है विद्यार्थियोंको अपनी परीक्षा के दिन समीप आते ही इस तेल का सेवन करना चाहिये क्योंकि यह तेल दिन भर की खोई हुई दिमागी ताकत को लगाते ही ५ मिनट के अन्दर वापस लाकर दिमाग़ को हराभरा तरो-ताज़ा करके उत्साह को कई गुना बढ़ा देता है। कैसा ही कठिन दर्द से रोता चिल्लाता हुआ मनुष्य क्यों न हो यह तेल तत्काल हँसाता है। शीशी की डाट खोलते ही ऐसा जान पड़ता है कि किसी नवीन ताज़े फूलों की पुष्प वाटिका में खड़े हुये हैं १० बूंद तेल मस्तक पर छोड़ते ही बर्फ के समान ठंढा व आंखों में तरावट व रोशनी पैदा करता है गिरते हुये बालों को रोकता चमकीले रेशम के लच्छेदार मुलायम काले घुंघरवाले लट बनाता है जो साहबान इस तेल को बनाना चाहें बनालें जो बात समझ में न आवे जवाबी कार्ड डाल कर हमसे पूछलें जो साहबान बनाना न चाहें वह बना बनाया तेल हमारे यहां से मंगालें कीमत फी शीशी ॥) आठ आना तीन शीशी का १।=) एक रुपया छै आना ६ शीशी का २॥) दो रुपया आठ आना डाक महसूल अलग देना होगा लिखे पते से मंगालें मंगाने का पता बाबू श्यामलालजी रईस प्रेमबटी आफिस कंचोसी बाजार, जिला इटावा यु० पी०

सत्य संचारक चूर्ण।

पोदीने का सत १ माशा, भुनी हीरा हींग १ तोला, असली जवाखार २॥ तोला असली मूली-खार २॥ तोला, सत नीबू २॥ तोला, काला जीरा २॥ तोला, शोरा कलमी १० तोला, काला नमक १० तोला, सेंधा नमक २० तोला, कालीमिर्च २० तोला, इन सब चीज़ों को कूट पीस कपड़े से छान ५ तोला असली ईख का सिरका मिलाकर साया में सुखा कर रखले ३ या ४ माशे सुबह शाम सेवन करने से भूख बढ़ती है, और भोजन भली भांति पचता है। जिनको भूख नहीं लगती, भोजन हजम नहीं होता उनको समझ लेना चाहिये कि हमारी तन्दुरुस्तीमें खराबी पैदा हो गई है इससे हजार काम छोड़ कर इस दवा को तैयार कर लाभ उठाना चाहिये। गृहस्थों में हर समय एक चतुर वैद्य का काम देने वाला पेट के अनेक रोगों को खाते ही दूर करता है। बदहज़मी, खट्टी डकारों का आना, वायुगोला गुल्म रोग, तिल्ली, भूख का न लगना, पेट का फूलना, अफरा आदि वायु से उत्पन्न हुए सभी रोग दूर हो जाते हैं बवासीर में भी इसका सेवन गुणदायक है, बार बार अधिक पेशाब भी रोकता है, खून को साफ कर दाद खुजली के लिये गुणकारी है हैज़ा प्लेग के दिनों में सेवन से बीमारी का डर नहीं रहता क्योंकि यह पेट की खराब वायु और मल को शुद्ध करता है कहां तक लिखें पेट के समस्त रोगों में राम बाण चूर्ण है। जवाखार मूली-खार बाजार में असली नहीं मिलते तलाश कर असली ही डालना चाहिये हमारे यहां जवाखार मूलीखार हर समय तैयार रहते हैं जिन महाशय को बनाने में कष्ट मालूम पड़े वह शुद्ध विधि पूर्वक बना हुआ चूर्ण हमारे यहां से मंगालें। १ शीशी का दाम ।-) आना, ३ शीशी का दाम ॥।-) तेरह आना ६ शीशी का १॥) एक रुपया आठ आना। डाक खर्च ३ शीशी तक ।≥), ६ शीशी का ॥≥)।

सत्य संजीवन तिला।

इस सत्य संजीवन तिला को दो ही सप्ताह की मालिश करने से कामेन्द्री की ढीली कमजोर नस नाड़ियों में अपूर्व चैतन्यता उत्पन्न होकर काम शक्ति की नवीन जाग्रत पैदा हो कर दुरबल और बेकार इन्द्री सख्त और ताकत वाली हो जाती है जब कि किसी मनुष्य ने बचपन की अवस्था में भूल से हस्त क्रिया द्वारा या किसी दूसरे प्रकार से अपनी मरदुमी व इन्द्री को खराब कर लिया हो इन्द्री का अगला हिस्सा मोटा और पिछला हिस्सा पतला पड़ गया हो और बढ़ने से रुक गई है इन्द्री पर नीली नीली रगें उभरी हुई हो इन्द्री में टेढ़ापन या तिरछापन पैदा हो गया हो भोग इच्छा के समय कमज़ोरी मालुम होती हो और स्त्री पुरुष दोनों को कुछ आनन्द प्राप्त न होता हो ऐसी दशा में इसी सत्य संजीवन तिला से हज़ारों मनुष्यों ने नव जीवन प्राप्त किया है वास्तव में यह नुस्खा के विषय में वैद्य हकीमों की रायसे फ़ायदेमन्द साबित हो चुका है आपकी सेवामें नीचे इसके बनाने और सेवन करने की तरकीब लिखता हूँ जो इस प्रकार है सफेद कनैल की जड़ आधी छटाक गाय का घृत एक छटाक गाय के घृत को अग्नि पर रख ऊपर से कनैल की जड़ डाल कर भस्म करदे फिर इस तेल को छान कर तीन माशा लौंग का तेल, तीन माशा दालचीनी का तेल, एक माशा (कोटन आयल) यानी जमाल गोटे का तेल, एक तोला असली शेर की चरबी, छः माशा साडे की चरबी इन सब को आपस में मिला कर रख लें और इसमें केशर चार रत्ती, कस्तूरी चार रत्ती, जावित्री दो माशा, जायफर दो माशा, अकर करा दो माशा डालकर घोटें जब यह घोटते घोटते मरहम के समान हो जाय तब इसको किसी चौड़े मुंह की शीशी या डिब्बियों में भरलें और इस तरह से सेवन करें रात को सोते समय इसमें से दो या तीन रत्ती लेकर इन्द्री पर अंगुली से मालिश करे इस तरह बराबर दो सप्ताह के मालिश करने से ईश्वर की कृपा से सभी आशायें पूरी होंगी आशा है कि अन्यतिलों को छोड़ कर इस सत्य संजीवन तिला को तैयार कर लाभ उठावेंगे जो सज्जन बनाने में परिश्रम न उठा सकें वह प्रेम बटी आफिस कंचौसी बाजार जिला इटावा से असली शुद्ध विधि पूर्वक बना हुआ मगालें जो दो सप्ताह सेवन के लिये होगी मूल्य प्रति शीशी १।) एक रुपया चार आना तीन शीशी का दाम ३।) तीन रुपया चार आना डाक महसूल अलग लगेगा।

सत्यामृत घुटी।

अक्सर कर गोद के दूध पिये छोटे २ बच्चे प्रति वर्ष नाना प्रकार की बीमारियों से पीड़ित हो रोग के शिकार होते हैं बेचारों में इतनी सामर्थ नहीं है जो अपने हृदय की करुणा कहानी माता पिता के कानों तक पहुँचा सकें ऐसी हालत में मां बाप को अपने प्राणों से प्यारे बच्चे की हँस मुखी मुसकान न देख कर शोक सागर में गोते लगाते हैं जिसे बच्चे ही वाले समझ सकते हैं यही दुख दूर करने के लिये मैंने यह नुसखा खोज कर आपके सामने रखता हूं जो बड़ी मिहनत से मालूम हुआ है यह प्रसिद्ध नुसखा है जिसकी बदौलत प्रति वर्ष लाखों बच्चे काल के गाल से छुटकारा पाकर चैन की बंशी बजा रहे हैं यथार्थ में जो गुण इस सत्यामृत घुटी में हैं वह किसी औषधि में न पायेंगे जो कि यह है मुनक्का काला ƒ।– किसमिस ƒ=॥ छोटी हर्र ƒ– सनाह ƒ– [illegible] ƒ०॥ काला निसोथ ƒ– विस पाइस ƒ०॥ उस्तकदूदूस ƒ०। कासनी ƒ०॥ गावजवां ƒ०॥ गुलबनफसा ƒ– तुलसी पत्र ६ मासा ऊसलीम ६ मासा बादरंज बोया १ तोला सौंफ ƒ– गुलाब के फूल १ तोला तुरंजबीन ५ छटांक मकोय २॥ तोला तुख्मकरफ्स २॥ तोला अनीसून मीठा १। तोला सब चीज़ों को जवकुट कर शाम को २॥ ढाई सेर पानी में भिगो दें सुबह मल कर कढ़ाई में आग पर रख दें जब पानी जल कर

१। सेर रह आवे कपड़े से छान लो अब इस काढ़े में १। सेर शक्कर डालकर आंच पर रख दो जब एक तार की चाशनी हो जाय तब कढ़ाई को नीचे उतार ले अब इसी में १ तोला क्लोरोडियन और १ तोला अर्क जिजर इसी चाशनी में छोड़ दें बस दवा तैयार हो गई खुराक ३ या ४ माशे दूध पीने वाले बच्चे को ६ माशे मां के दूध में अन्न खाने वाले बच्चे को ६ माशे जल में मिला कर पिलाना चाहिये यह ख्याल रहे सब चीजें ताजी हों घुनी न हों नहीं तो दवा गुणकारी न होगी यह सब दवायें अत्तारों के यहां मिलती है अत्तार लोग मन माने दाम ले लेते हैं जिससे दवा में कीमत बहुत ज्यादा बढ़ जाती है यही नुसखा हमारे यहां जबकुट किया हर समय तैयार रहता है अलग २ दवाइयां भेजने की दिक्कत से कुटा हुआ नुसखा भेजने का प्रबन्ध किया है श्रीमान् तैयार कर लाभ उठायें यह सत्यामृत घुट्टी बड़ी मीठी और स्वादिष्ट होने के कारण छोटे बड़े सब बालक बड़ी खुशी के साथ हँसते हँसते पी लेते हैं दुबले पतले बालकों को सत्यामृत घुट्टी मोटा ताजा बलवान बनाती है और उनके प्रत्येक रोग बुखार खांसी अजीर्ण दूध डालना पेट फूलना पसली चलना हरे पीले खून के दस्त होना दस्त में कीड़े निकलना हिचकी मलावरोध खुलकर पाखाना न होना पेठ मरोड़ा आदि को तुरंत ही दूर कर देती है और दांत निकलने के दिनों में बालकों को जो जो पीड़ायें हुआ करती हैं यह सब सत्यामृत घुट्टी के पिलाने से नष्ट हो जाती हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं जिस बालक को इस घुट्टी को चौथे पांचवें दिन पिला दी जाया करे तो बालक सदैव आरोग्य रहेगा शरीर में रुधिर का सञ्चार अधिक उत्पन्न होगा कभी कोई रोग नाम को भी उसके पास न फटकेगा मूल्य प्रति शीशी ।≈) ६ आना ३ तीन शीशी का दाम १) रुपया ६ छः शीशी का दाम १॥।) एक रुपया बारह आना डाक खर्च अलग लगेगा, बाबू श्यामलालजी रईस प्रेमबटी आफिस कंचौसी बाजार, जिला, इटावा से मंगालें।

सत्य सुंदरी रक्षक।

विदारी कंद ʃ- दालचीनी ʃ- गोखरू चौमुखिया ʃ- तुंदरी सफेद ʃ- समुद्र शोक ʃ- बीजबंद ʃ- ताल मखाना ʃ- सकाकुल ʃ- सालिम मिश्री पजेदार ʃ- बीहदाना ʃ- दिल्ली वाली मूसली ʃ- बहमन लाल ʃ- बहमन सफेद ʃ- उटंगन के बीज ʃ- कौंच के बीज शुद्ध ʃ- सतावर ʃ- इंद्रजौ ʃ- कतीरा ʃ- ईसबगोल की भूसी ʃ- हर्र बड़ी का बकला ʃ- बहेड़ा ʃ- आंवला का बकला ʃ- सनाह ʃ- सेंमरी बबूल की ʃ- तबाखीर ʃ- लक्ष्मणा ʃ- असगंद ʃ- मोचरस ʃ- शिलाजीत ʃ०॥ बंगरस १ तोला सब को महीन कूट कर कपड़े से छान कर बराबर मिश्री मिला लो ४ मासे सुबह ४ मासे शाम को खाकर ऊपर से गर्म किया हुआ गाय का दूध पीना चाहिये। जैसे मनुष्य को धातु क्षीण प्रमेह की बीमारी होती है इसी तरह स्त्रियों को प्रदर रोग होता है योनि स्थान से लाल पीला नीला काला सफेद पानी सा निकलता रहता है जिसकी वजह से शरीर कमजोर हो जाता है कमर पीठ सिर में दर्द भूख कम लगना बदहजमी मासिक धर्म ठीक समय पर न होना तीन रोज के बजाय आठ २ रोज तक शुद्ध न होना गर्भ न रहना या गर्भ रह कर गिर जाना अनेक प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं शर्म की वजह से किसी से कह भी नहीं सकती ऐसी हालत में प्राणों पर आ बीतती है इस दवा से हजारों स्त्रियों ने नव जीवन प्राप्त किया है मैंने यह बड़ी मेहनत व कोशिश से प्राप्त कर संसार हित के लिये प्रकाशित कर दी है थोड़े ही दिन के सेवन से शरीर को मोटा ताजा खूबसूरत बना देती है चेहरे की कान्ति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ जाती है कहां तक लिखें सत्य सुन्दरी रक्षक स्त्रियों के लिये एक मात्र चमत्कारिक हुक्मी दवा है जिन स्त्रियों के गर्भ नहीं रहता था उनको गर्भधारण शक्ति पैदा कर संतान का सुख दिलाती है। कीमत फी डिब्बा १।) ३ डिब्बा ३।) डाक खर्च अलग लगेगा।

महापुरुषोंकी मङ्गल-कामनाएँ

लेख-मालिका

मार्च (परिशिष्टाङ्क न० २)

चित्र-सूची

गंगा-विज्ञानांक

पूज्य मालवीयजीकी मंगल-कामना

पूज्य प० मदनमोहन मालवीय

VICE-CHANCELLOR'S LODGE,
BENARES HINDU UNIVERSITY

'गंगा' का विज्ञानांक लोगों में विज्ञान का प्रचार करने में गंगा जल के समान लोकप्रिय हो।

मदन मोहन मालवीय.

२१.१२.३३.

विश्व-प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी मंगल-कामनाएँ

"मुझे यह जानकर परम प्रसन्नता हुई कि, आप "गङ्गा"का "विज्ञानाङ्क" निकाल रहे हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि, उसमें विज्ञान-सम्बन्धी सभी विषयोंका, सर्व-प्रिय प्रणालीसे, पूर्णतः समावेश होगा। वास्तवमें विज्ञानके प्रचारके लिये 'विज्ञानाङ्क'की अत्यन्त आवश्यकता है। आप जैसे सुयोग्य व्यक्तिके द्वारा सम्पादित होने पर इस विशेषाङ्कको अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।"

पी० सी० राय

"आप 'गङ्गा'का "विज्ञानाङ्क' निकालकर विज्ञानके प्रचारकी जो चेष्टा कर रहे हैं उसके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति है। विज्ञानके प्रचारके लिये इस प्रकारका साधन बहुत ही उपयोगी है। भविष्यमें ऐसा उद्योग और भी होना चाहिये।"

J. C. Bose

"मैं समझता हूं कि "गङ्गा"के "विज्ञानाङ्क"के द्वारा आप हिन्दीके माध्यमके सहारे विज्ञानका प्रचार कर मनुष्यके ज्ञानकी उन्नतिके बहुत ही आवश्यक अङ्गकी पूर्ति करने जा रहे हैं। आपकी सच्चेष्टाके लिये मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ और आपकी सफलताके लिये कामना करता हूँ।"

C. V. Raman

परमाणु-पुञ्ज तो जड़ थे।
कैसे उनमें गति आयी!
कैसे अजीव अणुओंमें।
जीवन-धारा वह पायी ॥३॥

हो पुञ्जीभूत विपुल अणु।
क्यों अण्ड बन गया ऐसा!
अबतक भवकी आँखोंने।
अवलोक न पाया जैसा ॥४॥

वह अपरिमेय ओकोंमें।
बन प्रगतिमान था फैला।
तारक-समूह मोहरों का।
वह था मञ्जुलतम थैला ॥५॥

वह घूम रहा था बलसे।
अतएव हुआ उद्भासित।
थी ज्योति फूटती जिसमें।
पल पल नीली पीली सित ॥६॥

आभाकी अगणित लहरें।
नभमें थीं नर्तन करतीं।
लाखों कोसोंमें अपनी।
कमनीय कान्ति थीं भरती ॥७॥

अगणित बरसोंके दृगने।
यह प्रभापुञ्ज अवलोका।
फिर प्रकृति-यवनिकाने गिर।
इस दिव्य दृश्यको रोका ॥८॥

सङ्केत कालका पाकर—
यह अण्ड अचानक टूटा।
तारकचय मिष नभपटका।
बन गया दिव्यतम बूटा ॥९॥

हैं किस विचित्र विभुवरके।
ये कौतुक परम निराले!
हैं जिन्हें विलोक न पाते।
विज्ञान विलोचनवाले ॥१०॥

जय विज्ञान!

प्रोफेसर मनोरञ्जन एम० ए०

मानव-उन्नतिके पथपर तू उज्ज्वल ज्योतिसमान ॥
दुर्गम गिरि-वनके कन्दरके अन्दर जब सब लोग—
रहते थे पशुके समान, वह था कैसा सयोग ?
तूने ही तो सभ्य बनाया, किया नगर निर्माण ॥
वसुन्धराके उस अतीतका वह स्वर्णिम इतिहास।
तू ही तो देता है हमको उसका भी आभास ॥
सागरतल, भूतलमें दिखलाता रत्नोंकी खान ॥
नील गगनके आँगनमें जगमग करते जो तारे।
षड्ऋतु, निशि, दिन, चन्द्र, सूर्य आते-जाते जो सारे ॥
तू ही बतलाता हमको उनके रहस्य अनजान ॥

तेरे ही बल बिना पंख हम उड़ते हैं आकाश।
रजनीके तममें भी पाते दिनसा दिव्य प्रकाश ॥
चञ्चल तड़ित् अचञ्चल होती, तेरी सत्ता मान ॥
कह सकता है कौन, किये तूने कितने उपकार ?
तेरे गौरवका साक्षी है यह सारा संसार ॥
पर विनाशका हाय दिया तूने कैसा वरदान ॥
हाय नाशका आज लगा यह कैसा भारी रोग।
अरे, शक्तिका होगा कैसे मङ्गलमय उपयोग ॥
होगी जिससे शान्ति और होगा जगका कल्याण ॥
जय विज्ञान !

विज्ञान और उसका महत्त्व

प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा एम०एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

किसी विशिष्ट विषयके तत्त्वों या सिद्धान्तों आदिका विशेष रूपसे प्राप्त किया हुआ ज्ञान (जो ठीक क्रमसे एकत्र या संगृहीत हो) विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान अंग्रेजी सायंस शब्दका पर्य्यायवाची शब्द है। सायंस लैटिन शब्द सियो (scio) से निकला है, जिसका अर्थ जानना है। अतः सायंसका शब्दार्थ ज्ञान होता है। यह सायंस शब्द उस विशिष्ट ज्ञानके लिये प्रयुक्त होता है, जो ठीक क्रमसे संगृहीत हो और किसी नियम या क्रमके अनुसार प्रतिबद्ध हो। यह विशेष ज्ञान प्रयोग और निरीक्षणके द्वारा प्राप्त होता है। ये प्रयोग और निरीक्षण इन्द्रियोंके द्वारा होते हैं। आँखोंसे देखकर, कानोंसे सुनकर, नाकसे सूंघकर, हाथ या शरीरसे स्पर्श कर हम विज्ञानका ज्ञान प्राप्त करते हैं। विज्ञानका जो कुछ ज्ञान हमें प्राप्त होता है, वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे इन्द्रियोंके द्वारा ही होता है; वस्तुतः हमारी इन्द्रियाँ ही ज्ञानके द्वार हैं। इस संसारके सारे पदार्थोंका वास्तविक ज्ञान केवल इन्द्रियोंके द्वारा ही प्राप्त होता है। इन्द्रियोंके सिवा ज्ञान प्राप्त करनेके अन्य मार्ग नहीं हैं। हमारी इन इन्द्रियोंकी सहायताके लिये अनेक सूक्ष्मसे सूक्ष्म यन्त्र बने हैं, जिनके द्वारा हमारी इन्द्रियाँ बहुत अधिक (हजारों गुनी अधिक) शक्तिशाली हो गयी हैं। जहाँ हम अपने चर्म-चक्षुओंसे थोड़ी दूरपर स्थित पदार्थोंको ही देख सकते थे, एक नियमित परिमाणके छोटे-छोटे कणोंको ही देख सकते थे, वहाँ दूरदर्शक यन्त्रके प्रयोगसे हम अब हजारों और लाखों मीलकी दूरीपर स्थित नक्षत्रों और ग्रहोंको, सरलतासे, देख लेते हैं। जितना छोटा कण, साधारणतया, आँखोंसे देख सकते हैं, सूक्ष्मदर्शककी सहायतासे उससे सहस्रगुना कम छोटा कण, बड़ी सरलतासे, देखकर हम अनेक रोगोंके कीटाणुओंके अस्तित्वको जान जाते हैं। पर इन सभी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थोंको देखनेके लिये आँखोंकी आवश्यकता अवश्य ही पड़ती है। अतः यह बहुत आवश्यक है कि, हम अपनी इन्द्रियोंको इस प्रकारसे काममें लाना सीखें, जिससे वे हमें धोखा न दे सकें। जैसी हमें अनेक वस्तुएँ देख पड़ती हैं, वैसी वे वस्तुतः नहीं हैं। सूर्य पूर्वमें उदय होता है और पश्चिममें डूबता है—केवल इसी निरीक्षणसे यह सिद्ध नहीं होता कि, सूर्य्य पूर्वसे पश्चिमकी ओर घूमता है। सूर्य्यके भ्रमण करने या न करनेके सम्बन्धमें किसी सिद्धान्तपर पहुँचनेके लिये हमें अनेक निरीक्षण करने पड़ेंगे। इसमें हमें केवल अपनी इन्द्रियोंको ही प्रयुक्त नहीं करना पड़ेगा, वरन् इन्द्रियोंको प्रयुक्त कर उनसे जो बातें मालूम होंगी, उनसे अनुमान निकालनेमें हमें अपनी बुद्धिका भी प्रयोग करना पड़ेगा। विज्ञानमें वस्तुतः सारी बातें प्रयोग और निरीक्षण (Experiments and Observations) पर ही निर्भर करती हैं। अतः विज्ञानके अध्ययनमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात निरीक्षण-शक्तिकी वृद्धि करना है। विज्ञानके प्रत्येक विद्यार्थीके लिये सबसे पहले निरीक्षण करनेकी शक्तिको जागृत कर उसे प्रवृद्ध करनेकी आवश्यकता होती है। वस्तुतः वही अच्छा वैज्ञानिक हो सकता है, जिसमें निरीक्षणकी अद्भुत शक्ति विद्यमान हो। इस निरीक्षण-शक्तिके साथ-साथ यदि उसमें प्रयोग करनेकी क्षमता और अनुमान निकालनेका पर्याप्त चातुर्य्य तथा बुद्धि भी हो, तो वह एक उच्च कोटिका वैज्ञानिक हो सकता है।

प्रयोगोंके करने और उनसे अनुमान निकालनेके

ढंगको वैज्ञानिक रीति या विधि कहते हैं। वैज्ञानिक विधिमें जो खोज की जाती है, उसे वैज्ञानिक अनुसन्धान कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानमें जो बातें प्रतिपादित होती हैं, उनसे ही विज्ञानका ज्ञान प्राप्त होता है। वैज्ञानिक विधिका मुख्य लक्षण प्रयोग है। प्रयोग करो, यही विज्ञानका सिद्धान्त है। जो बातें प्रयोगसे सिद्ध नहीं होतीं, वैज्ञानिक उनपर विश्वास करनेसे स्पष्ट अस्वीकार करता है। वैज्ञानिकोंके लिये पसन्द, ना-पसन्द कोई चीज नहीं है। उनका एक मात्र उद्देश्य सत्यकी खोज है, जिसे वे प्रयोग, निरीक्षण और अनुमानके द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। विज्ञान वास्तवमें मस्तिष्ककी उपज है, वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा सब बातोंकी परीक्षा करता है और वस्तुतः इसीमें उसकी शक्ति है।

अनेक प्रयोगोंका सम्पादन कर वैज्ञानिक कुछ तथ्योंको एकत्र करता है। इन तथ्योंको सम्बद्ध करके वह इनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करता है। वह यह जाननेकी चेष्टा करता है कि, ये घटनाएँ ऐसे क्यों होती हैं? इस प्रकार, इन घटनाओंकी व्याख्या करनेकी चेष्टामें, अनुमान (Hypothesis) का प्रतिपादन करना पड़ता है। वस्तुतः कुछ संबद्ध घटनाओंकी व्याख्या करनेकी चेष्टा ही अनुमान है। कोई कितना ही प्रशंसनीय अनुमान क्यों न हो, उसमें अवश्य ही कुछ न कुछ कल्पना रहती है। यह कल्पना कहाँतक ठीक है और वह अनुमान कहाँतक सत्य है, इसके लिये अनेक नये-नये प्रयोगोंके कार्यान्वित करनेकी आवश्यकता होती है। किसी अनुमानके प्रतिपादनसे दो कार्य सिद्ध होते हैं। एक तो इससे अवलोकित घटनाओंको समष्टि-रूपमें देखनेकी योग्यता आती है; और, दूसरे इससे अनेक निगमन (Deductions) निकलते हैं, जिनके परीक्षणमें अनेक प्रयोगोंका सम्पादन करना होता है। अनुमानके प्रतिपादनके बाद नयी घटनाओंके निरीक्षणकी चेष्टाएँ होती हैं, जिनका इस अनुमानसे प्रतिपादन हो सके। यदि इन घटनाओंसे अनुमानका प्रतिपादन होता है, तो अनुमानकी सत्यता बढ़ जाती है और तब अनुमान सिद्धान्त (Theory) हो जाता है। फिर हम तर्क करते हैं कि, यदि यह सिद्धान्त सत्य है, तो अमुक अमुक घटनाएँ घटित होंगी। तब इन घटनाओंकी खोज होती है। इनमेंसे बहुत कुछ मिल भी जाती हैं। जब वैज्ञानिकोंके निकट पूर्ण रूपसे सिद्धान्तकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है और उससे ज्ञात सभी घटनाओंकी व्याख्या हो जाती है, तब यह सिद्धान्त "प्रकृतिका नियम" (The Law of Nature) हो जाता है। इस प्रकारके अनेक नियम वैज्ञानिकोंने प्रतिपादित किये हैं। गुरुत्वाकर्षणका नियम, शक्तिकी अक्षरताका नियम, रसायनमें परिमित सगठनका नियम, जीव-विज्ञानमें योग्यतम जीवोंके जीवित रहनेका नियम इसी प्रकारके, प्रकृतिके, नियम हैं। ऐसे नियमोंकी स्वीकृति वैज्ञानिकोंके महत्त्वपूर्ण कार्यका एक प्रमुख अङ्ग है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोग और निरीक्षणसे तथ्योंको प्राप्त करता है, तथ्योंसे सिद्धान्तोंका प्रतिपादित करता है। सिद्धान्तोंसे नियमका स्थापन करता है और नियमसे फिर प्रयोगकी ओर जाता है। वस्तुतः यही वैज्ञानिक विधि है, जिससे सृष्टिकी घटनाओं और वस्तुओंका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेकी वैज्ञानिक सतत चेष्टा करता है।

किसी शिक्षा और संस्कृतिके आयोजनमें विज्ञानका अध्ययन एक अत्यावश्यक अङ्ग है। किसी विद्यार्थीका अध्ययन तबतक पूर्ण नहीं समझा जा सकता, जबतक वह उस जगत्‌के नियमोंका कुछ ज्ञान न प्राप्त करे, जिस जगत्‌में वह निवास करता है, जबतक वह उन घटनाओंके कारणका ज्ञान न प्राप्त करे, जिन्हें वह अपनी चारों ओर देखता है; और, जबतक वह प्रतिदिन आकाशमें दिखाई देनेवाले ग्रहों और नक्षत्रोंके विषयमें ज्ञान न प्राप्त करे। पृथ्वीकी तहें कैसे बनी हैं, उनमें समय-समयपर कैसा परिवर्तन होता है, किन कारणोंसे पर्वत, नदियाँ और घाटियाँ बनती हैं, वायुमण्डल कैसे बना है, बादल कैसे बनते हैं, इन्द्र-धनुषका क्या कारण है, वर्षा क्यों होती है, पौधे कैसे उपजते और वृद्धि प्राप्त

करते हैं, पौधोंमें शक्कर और अन्यान्य पदार्थ कैसे बनते हैं, बिजली कैसे उत्पन्न होती है, वायुयान कैसे और क्यों उड़ता है, कुछ ही मिनटोंमें हजारों मीलोंसे समाचार कैसे पहुँच जाता है, ये सभी बातें ऐसी हैं, जिन्हें प्रत्येक शिक्षित व्यक्तिका जानना अत्यावश्यक है। हमारे प्रतिदिनके जीवनमें विज्ञानका प्रवेश इतना घनिष्ठ हुआ है कि, विना विज्ञान*का ज्ञान प्राप्त किये हम सभ्य मनुष्य कहानेका दावा तक नहीं कर सकते! इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक शिक्षासे मस्तिष्क तीक्ष्ण होता है, इन्द्रियोंकी दक्षता बढ़ती है, संयमका भाव आता है, यथार्थ और गूढ़ निरीक्षणका अभ्यास पड़ता है; निरन्तर चेष्टा (धृति) की आदत पड़ती है और घटनाओंसे सिद्धान्तके प्रतिपादनकी शक्ति आती है।

विज्ञान एक बहुत विस्तृत विषय है। प्रयोगोंके द्वारा अबतक मनुष्य जितना ज्ञान प्राप्त कर सका है, वह सब विज्ञानमें सन्निहित है। चूँकि इन सब ज्ञानोंके प्राप्त करनेकी विधि एक ही है; अतः ये सब ज्ञान विज्ञान ही हैं। विज्ञानके अन्तर्गत ज्ञानका एक बहुत विस्तृत भण्डार भरा पड़ा है। सुविधाकी दृष्टिसे लोगोंने इस विज्ञानको विभिन्न भागोंमें विभक्त किया है। विज्ञानका विभाजन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे हो सकता है; पर विज्ञानके इस विभाजनमें किसी स्पष्ट सीमाका बन्धन नहीं है। वास्तवमें ये विभिन्न विज्ञान परस्पर इतने सम्बद्ध हैं कि, अनेक विषयोंको एकसे अधिक विभागोंमें, बड़ी सरलतासे, रखा जा सकता है। विज्ञानके विस्तृत होनेके कारण किसी भी एक व्यक्तिके लिये विज्ञानकी सब शाखाओंका सम्यग् ज्ञान प्राप्त करना प्रायः असम्भव है। इसी कारण इन दिनों जो वैज्ञानिक होते हैं, वे किसी एक वा दूसरी शाखाके ही विशेषज्ञ होते हैं; पर प्रत्येक वैज्ञानिकको विभिन्न शाखाओंका इतना ज्ञान रखना आवश्यक होता है, जितनेसे मोटी-मोटी बातें वे, विना किसी कठिनताके, समझ सकें। यह बात थोड़े परिश्रमसे भी हो सकती है। वैज्ञानिकोंके लिये ही नहीं, वरन् जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, प्रत्येक व्यक्तिके लिये विज्ञानकी ऐसी मोटी-मोटी बातोंका जानना, जिनसे वह अपने निकटकी वस्तुओं और घटनाओंको समझ सके, बहुत आवश्यक है।

ऊपर कहा जा चुका है कि, विज्ञानका विभाजन विभिन्न दृष्टि-कोणोंसे होता है। विषयके विवेचनकी दृष्टिसे विज्ञानके दो प्रधान अन्तर्विभाग हैं---

(१) मौलिक वा तात्त्विक विज्ञान (Fundamental or Abstract Sciences), जिसके अन्तर्गत गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, जीव-विज्ञान (Biology), समाज-विज्ञान (Sociology) और मनोविज्ञान (Psychology) हैं।

(२) व्यावहारिक विज्ञान (Applied or Concrete Sciences), जिसमें नक्षत्र-विज्ञान (Astronomy), भूगर्भविज्ञान (Geology,) खनिज-विज्ञान (Mineralogy), जन्तु-विज्ञान (Zoology), वनस्पति-विज्ञान (Botany), भूगोल और वायुमण्डल-विज्ञान (Meteorology) हैं। व्यावहारिक विज्ञानके ज्ञानके लिये मौलिक विज्ञानोंका ज्ञान अत्यावश्यक है।

विज्ञानकी विभिन्न शाखाओंमें गणितका स्थान सर्वोपरि है। गणितके भी तात्त्विक और व्यावहारिक (Pure and Applied Mathematics), दो अन्तर्विभाग हैं। इनमें फिर अङ्कगणित (Arithmetic), बीज-गणित (Algebra), ज्यामिति (Geometry), चलन-कलन (Calculus) इत्यादि अनेक शाखाएँ हैं। गणितके पश्चात् भौतिक विज्ञानका स्थान आता है। भौतिक विज्ञानमें हम जड़ पदार्थों (matter)—प्रधानतः उनकी गतिके सम्बन्धमें अर्थात् जड़-पदार्थों पर बलके सप्रयोगसे क्या परिवर्तन होता है, इसका

* विज्ञानमें क्या-क्या समाविष्ट है, इसका वर्णन आगे मिलेगा। —लेखक।

अध्ययन करते हैं। भौतिक विज्ञानकी अनेक महत्त्व-पूर्ण शाखाएं हैं—यन्त्र-विज्ञान (Mechanics), द्रव-स्थिति-विज्ञान (Hydrostatics), जल-विज्ञान (Hydraulics), वायवीय विज्ञान (Pneumatics), शब्द-विज्ञान (Accoustics), नक्षत्र-विज्ञान(Astronomy) [जो राशिमें जड़-पदार्थोंकी गतिसे सम्बन्ध रखते हैं], ताप, प्रकाश और विद्युत, [जो अणुमें जड़-पदार्थोंकी गति से सम्बन्ध रखते हैं]।

भौतिक नियमोंपर ही रसायन-विज्ञान स्थित है। रसायनमें हम जड़-पदार्थोंकी प्रकृति, उनके सगठन और ताप, प्रकाश, विद्युत तथा अन्यान्य प्राकृतिक शक्तियोंके द्वारा उनमें क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, उनका अध्ययन करते हैं। भौतिक विज्ञान और रसायनमें बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है, इसीसे भौतिक विज्ञानके कुछ अंश रसायनके अध्ययनमें अनिवार्य हो जाते हैं। रसायनकी इस शाखाको भौतिक रसायन [Physical Chemistry] कहते हैं। इस भौतिक रसायनमें भौतिक विज्ञानके उन अंशोंका अध्ययन होता है, जिनकी रसायनके अध्ययनमें आवश्यकता है। रसायनकी दूसरी शाखाको कार्बनिक रसायन (Organic Chemistry) कहते हैं। इसको पहले ऐन्द्रिक रसायन भी कहते थे। एक समय इस शाखामें उन्हीं पदार्थोंका अध्ययन समाविष्ट था, जो एक विशेष जीव-शक्तिके द्वारा जन्तुओं और पौधोंमें उत्पन्न होते थे। लोगोंकी धारणा थी कि, ये ऐन्द्रिक पदार्थ रसायन-शालाओंमें प्रस्तुत नहीं हो सकते; पर पीछे मालूम हुआ कि, यह धारणा बिलकुल निर्मूल है और अन्य पदार्थोंके सदृश ऐन्द्रिक पदार्थ भी, बड़ी सरलतासे, रसायन-शालाओंमें तैयार किये जा सकते हैं। चूंकि रसायनकी इस शाखामें जितने यौगिक ज्ञात हैं, ये सभी कार्बनसे बने हैं और इन यौगिकोंमें कार्बन तत्त्वका रहना अत्यावश्यक है, अतः इस शाखाको अब कार्बनिक रसायन कहते हैं। रसायनकी तीसरी और अन्तिम शाखाका नाम अकार्बनिक रसायन (Inorganic Chemistry) है। इसे कोई-कोई खनिज रसायन भी कहते हैं; पर यह नाम ठीक नहीं है। इस शाखामें कार्बन तत्त्वके अतिरिक्त अन्य सब तत्त्वों और उनके यौगिकोंका अध्ययन होता है।

जब गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनके नियम जीव-विज्ञानमें प्रयुक्त होते हैं, तब इनको जीव-सम्बन्धी नियम (Vital Laws) कहते हैं। जीव-विज्ञानके साधारणतया दो विभाग हैं—एकमें वनस्पतियों और जन्तुओंका क्रिया-विज्ञान (Physiology) समाविष्ट है और दूसरेमें वनस्पति-विज्ञान (Botany), जन्तु-विज्ञान (Zoology) और मानव-शरीर-विज्ञान (Anthropology) समाविष्ट हैं।

मस्तिष्कके संसारसे अलग होते हुए हम मनोविज्ञानमें आते हैं, जहां बुद्धि, सङ्कल्प, वासना, विचार इत्यादिका विवेचन होता है। समाजशास्त्रमें हम सामाजिक समष्टिकी वृद्धि, विकास, सगठन और कार्यका पूर्ण रूपसे अध्ययन करते हैं।

व्यावहारिक विज्ञानके अनेक विभाग हैं; और, उनका ज्ञान-भण्डार बहुत विस्तृत है। मानव-ज्ञानका कोई ऐसा विभाग नहीं है, जिसमें वैज्ञानिक नियमों और परिणामोंका प्रयोग न हुआ हो और जिसमें वैज्ञानिक सिद्धान्तों और प्रति-फलोंके व्यवहारसे मानव-जीवनके लक्ष्यों और उद्देश्योंमें वृद्धि न हुई हो।

गणित और भौतिक विज्ञानके नियमोंको जब हम नक्षत्रों और ग्रहोंके अध्ययनमें सप्रयुक्त करते हैं तथा उनसे इन नक्षत्रों और ग्रहोंकी गति इत्यादिके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करते हैं, तब यह नक्षत्र-विज्ञान (Astronomy) कहा जाता है। इस शाखाकी आज कल बड़ी वृद्धि हुई है। हम अब यह भी जान सकते हैं कि, सूर्य और चन्द्र, नक्षत्रों और ग्रहोंमें कौन-कौन रासायनिक तत्त्व विद्यमान

हैं। यह इन नक्षत्रों और ग्रहोंसे निकले हुए प्रकाशके अध्ययनसे ज्ञात होते हैं। इस विशिष्ट शाखाको नक्षत्र-भौतिक-विज्ञान (Astro-physics) कहते हैं। इस शाखाके ज्ञानकी वृद्धिमें हमारे देशवासी सुविख्यात वैज्ञानिक श्रीयुत मेघनाथ साहाका बहुत अधिक हाथ है। इसी शाखामें महत्त्वपूर्ण आविष्कार करनेके कारण इंगलैंडकी रायल सोसायटीकी सदस्यता (F. R. S.)का गौरव-पूर्ण पद उन्हें प्राप्त हुआ है और उनका नाम सारे संसारमें फैल गया है।

भौतिक विज्ञान और रसायनके ज्ञानको जब हम पृथ्वीकी प्रकृति और उसकी बनावटका ज्ञान प्राप्त करनेमें प्रयुक्त करते हैं, तब यह भूगर्भ-विज्ञान [Geology] हो जाता है। इस विज्ञानके द्वारा हम सरलतासे पृथ्वी-स्तरमें स्थित खनिजोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पृथ्वी-तल कैसे बना है और किन-किन कारणोंसे यह आधुनिक अवस्थामें पहुँचा है, पहाड़ों और नदियोंकी सृष्टि कैसे हुई है, वे किन-किन कारणोंसे उत्पन्न हुए हैं, पृथ्वीकी आयु कितनी हो सकती है, इस भूमण्डलपर किस-किस समय कैसे-कैसे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी विद्यमान थे, इन सबका बहुत कुछ ज्ञान हमें इस विज्ञानके द्वारा प्राप्त होता है। भौतिक विज्ञान और रसायनके ज्ञानको जब हम खानोंसे निकली वस्तुओंके अध्ययनमें प्रयुक्त करते हैं, तब यह खनिज-विज्ञान (Mineralogy) हो जाता है।

भिन्न-भिन्न जन्तुओंका वर्गीकरण, उनकी प्रकृति, उनके शरीरकी बनावट और उनकी आदतें, उनके बच्चा उत्पन्न करनेकी रीतियाँ इत्यादि बातें जन्तु-विज्ञान (Zoology) में पढ़ी जाती हैं। जब हम भिन्न-भिन्न प्रकारकी वनस्पतियोंके उपजनेके स्थान, उनका वर्गीकरण, उनकी बनावट, उनकी प्रकृति, उनके फैलनेकी रीतियाँ, फूलने-फलनेके कारण इत्यादिका अध्ययन करते हैं, तब वह वनस्पति-विज्ञान (Botany) में आ जाता है। वायुमण्डल क्या है, हवा क्यों बहती है, हवासे वायुमण्डलमें क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, कहाँ कितनी और क्यों वर्षा होती है, तूफान क्यों आता है, इन सबका देशकी कृषिपर क्या प्रभाव पड़ता है, इन सब विषयोंका विस्तारसे अध्ययन आजकल वायुमण्डल-विज्ञान (Meteorology) में होता है।

इस समय मनुष्य-जीवनके पग-पगपर विज्ञानके साधनोंका व्यवहार करना पड़ता है। इसीसे इस युगको वैज्ञानिक युग कहते हैं। जो वस्त्र हम धारण करते हैं, उनमें अधिकांश कृत्रिम रंगोंसे रँगे होते हैं। आजकल अधिकांश रेशम कृत्रिम रीतिसे, रासायनिक विधिसे, तैयार किये जाते हैं। जो कपड़े आज बनते हैं, उनमें अत्यधिक भाग (केवल खादी अपवाद है) उन मशीनोंकी सहायतासे बनता है, जिन्हें वैज्ञानिकोंने आविष्कृत किया है। जो जूते हम पहनते हैं, उनके चमड़े क्रोम-टैनिंगके द्वारा तैयार होते हैं, जिनके बनानेमें वैज्ञानिक विधिसे प्रस्तुत पदार्थोंका व्यवहार होता है। जिस तेलको हम मस्तकमें लगाते हैं, वह वैज्ञानिक रीतिसे शोधित होता है; और, उसमें जो सुगन्धित द्रव्य व्यवहृत होता है, वह कृत्रिम रीतिसे वैज्ञानिकोंके द्वारा तैयार होता है। सुगन्धित द्रव्योंके निर्माणमें रसायनने आशातीत उन्नति की है। एकसे एक और सूक्ष्मसे सूक्ष्म प्राकृतिक गन्धोंकी नकल कर ली गयी है और उनका व्यवहार अधिकाधिक हो रहा है। कुछ लोगोंकी धारणा है कि, सुगन्धित द्रव्य व्यसनकी सामग्रियोंमें हैं। पर यह बात ठीक नहीं है। सुगन्धित द्रव्योंका व्यवहार मनुष्य मात्रके लिये अत्यावश्यक है। इसके व्यवहारसे मानव-समाजका बहुत अधिक लाभ होता है। यदि ऐसा न होता, तो जिस प्रचुरतासे सुगन्धित द्रव्योंका व्यवहार हमारे पूजा-पाठमें होता है, वैसा नहीं होता। वैज्ञानिक दृष्टिसे मालूम होता है कि, सुगन्धित द्रव्य कृमि-नाशक होते हैं। इनके व्यवहारसे अनेक रोगोंके कीटाणु शीघ्र नष्ट हो जाते और अनेक रोग एक व्यक्तिसे दूसरे

व्यक्तिमें फैलनेसे रुक जाते हैं। अतः रोगोंसे बचने और स्वास्थ्य-रक्षाके लिये सुगन्धित द्रव्योंका व्यवहार अत्यावश्यक है। भोज्य पदार्थोंमें सुगन्धित द्रव्योंके रहनेसे केवल उनके स्वादमें ही वृद्धि नहीं होती, वरन्, भोज्य पदार्थोंको अधिक समयतक सुरक्षित रखनेमें भी सहायता मिलती है। सबका यह साधारण अनुभव है कि, नाकमें किसी विकारके होनेसे जिह्वाका स्वाद नष्ट हो जाता है। सर्दी-जुकामसे किसी वस्तुका स्वाद नहीं मालूम होता। ऐसा प्रयोग कर देखा गया है कि, अनेक पदार्थोंका स्वाद एक ही होता है, यदि नाक बन्दकर उन्हें खाया जाय। अतः गन्ध और स्वादमें बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक पदार्थोंका स्वाद सुगन्धित द्रव्योंके कारण बहुत बढ़ और मनोरञ्जक हो जाता है। लवंग, दालचीनी, इलायची और गोलमिर्चमें सुगन्धित द्रव्य रहते हैं। इनके व्यवहारसे भोज्य पदार्थके स्वादकी वृद्धिके साथ-साथ उनका संरक्षण भी हो जाता है, जिससे वे शीघ्र सड़कर नष्ट नहीं होते।

जब हम अपनी भोजन-सामग्रीकी ओर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें मालूम होता है कि, इन सामग्रियोंके प्रस्तुत करनेमें भी विज्ञानका हाथ है। कृषिकी उन्नतिमें विज्ञानने कितनी सहायता की है, यह आगे वर्णित होगा। यहाँ केवल यह लिख देना ही पर्याप्त होगा कि, ईख, गेहूँ और धानकी खेतीमें जो कुछ उन्नति हुई है, वह वैज्ञानिक अनुसन्धानका ही फल है। छोटे-छोटे नगरोंमें भी ताजे अंगूर, सेव, संतरा, नास्पाती इत्यादि सुन्दर पुष्टिकर फल केवल काश्मीर और अफगानिस्तानसे ही नहीं, वरन् अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलियासे भी लाये जाकर हमें प्राप्त होते हैं। ये ऐसे डब्बोंमें आते हैं, जिन्हें लोग बर्फसे ढँककर सुरक्षित रखते हैं ताकि, ये सड़-गलकर नष्ट न हो जायँ और इनमें ताजापन बना रहे। ये सभी विज्ञानके अनुसन्धानके प्रतिफल हैं।

औषधियोंके निर्माणमें विज्ञानने कम उन्नति नहीं की है। अनेक रोगोंकी चिकित्साएँ (जो पहले ज्ञात नहीं थीं) रासायनिक विधिसे तैयार होकर मनुष्य-मात्रकी व्याधि दूर करनेमें प्रयुक्त हो रही हैं।

जब हम आधुनिक वाहनोंका विचार करते हैं, तब मालूम होता है कि, विज्ञानने कितने अद्भुत चमत्कार दिखाये हैं! जहाँ पहले केवल हाथसे चलायी गयी नावें, बैल-घोड़ा-गाड़ियाँ ही एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेका साधन थीं, वहाँ आजकल वाष्प-सञ्चालित जहाज, रेल-गाड़ियाँ, मोटर बसें, मोटर कार और वायु-यान प्रयुक्त हो रहे हैं! जिस यात्राके सम्पादनमें पहले वर्षों और महीनों लग जाते थे, उस यात्राको, अब आधुनिक साधनोंसे, दिनों और घंटोंमें ही सम्पादन कर सकते हैं। क्या किसीने यह आशा की थी कि, लंडनका एक विशेषज्ञ डाक्टर दो-चार दिनोंमें ही लंडनसे बम्बई आकर कोई आपरेशन करेगा? विज्ञानने इस दिशामें जो कार्य किया है, निकट भविष्यमें उसकी बहुत कम लोगोंने आशा की थी।

वर्तमान कालमें समाचार पढ़ना शिक्षित-समाजका एक आवश्यक कार्य हो गया है। आजकल सभ्यताका यह एक निशान समझा जाता है। समाचार-पत्रोंमें जो खबरें छपती हैं, उनमें अनेक ऐसी होती हैं, जो कुछ मिनटोंमें ही हजारों मीलोंसे आकर हमें प्राप्त हो जाती हैं। रेडियो द्वारा घर बैठे हजारों मीलोंकी दूरीपर स्थित किसी महान् व्यक्तिका व्याख्यान अथवा गायक वा गायिकाका सुमधुर गान हम सुन लेते हैं। सिनेमाके द्वारा एकसे एक अद्भुत दृश्य और संसारके प्रसिद्धसे प्रसिद्ध अभिनेता वा अभिनेत्रीका नृत्य देखते हुए उनके सुमधुर गान और अभिनयका आनन्द हम उठा सकते हैं। विशेष विशेष अवसरोंके लिये विज्ञानने हमें जो साधन दिये हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन भी इस लेखके कलेवरको बहुत अधिक बढ़ा देगा।

हिमालयकी उत्पत्तिसे पूर्वके महाद्वीप और सागर ।
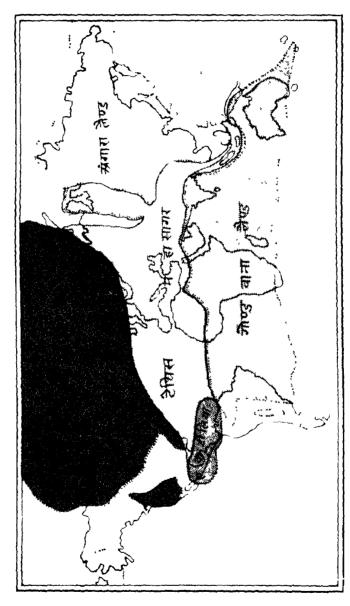
हिमालयकी जन्मकथा

श्रीयुत अनन्त गोपाल भिंगरन एम० एस-सी०

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः ।"

—महाकवि कालिदास

हिमालय पर्वत भारतवर्षके उत्तरमें पेशावरसे ब्रह्म देशतक प्रायः १५०० मील लम्बा तथा मध्य एशियाके पामीर पठार और गंगा तथा सिन्धुके मैदानोंके बीचमें लगभग १५०-२०० मील चौड़ा फैला हुआ है। प्रवाहित तुषार-सरहतिको अपने वक्षःस्थलपर धारण करनेवाले इसके गगनचुम्बी उत्तुङ्ग शिखर (माउंट एवरेस्ट, किञ्चिनजंगा, धवलागिरि और नगापर्वत आदि) सारे भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं। इतना बड़ा पर्वत संसारमें और कोई नहीं है। इसीसे हिमालय "पर्वतराज" भी कहा जाता है।

हिमालय प्रकृति देवीकी लीलाभूमि है। प्रकृतिके सारे सौन्दर्य और वैभवकी वहाँ पराकाष्ठा हो जाती है। फूलों और फलोंसे लदे हुए हरे-भरे वृक्षों और उनसे प्रेम-पूर्वक आलिङ्गन करती हुई कोमल लताओंसे परिपूर्ण उपत्यकाओंमें स्वच्छन्द विहार करनेवाले, मृगमदके सौरभसे घ्राणेन्द्रियको तृप्त करनेवाले सुन्दर हरिणोंकी शोभा अनिवर्चनीय है। नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरव-मिश्रित गानोंकी स्वरलहरी और पुण्यसलिला भागीरथीके मृदङ्गघोषवत् प्रखर धाराप्रवाहके संयोगसे जिस प्राकृतिक संगीतका प्रादुर्भाव होता है, उसकी मादकताका अनुभव तो वहाँ भ्रमण करनेवाले ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये उन्मत्त योगी जन ही कर सकते हैं।

प्राकृतिक वैभवके साथ हिमालयका पौराणिक महत्त्व भी बड़ा ही विलक्षण है। पौराणिकोंने हिमालयको देवस्वरूप माना है। पुराण-प्रसिद्ध कैलास पर्वत इसीका अङ्ग है, जिसके धवल शृङ्गपर पिनाक-पाणि भगवान् महादेवका पावन धाम शोभायमान है। पतितपावनी भागीरथीने यहींसे चलकर सगर-सुतोंका उद्धार किया था और आज भी भारतीय सन्तानोंको तार रही हैं।

हिमालयकी निर्जन गुफाओंमें तपस्या और योग साधन कर ऋषियों और मुनियोंने आत्मबलकी अपरिमित निधि प्राप्त की थी। इसी आत्मबलके आधारपर भारतवर्षीय सभ्यताका विकास हुआ। आज भी सहस्रों यात्री, सच्चे सुख और शान्तिकी खोजमें, हिमालयकी पावन यात्रा कर अपने जीवनको सफल बनाते रहते हैं।

आज, विज्ञानके युगमें, वैज्ञानिकोंने हिमालयको अपने अनुसन्धानका लक्ष्य बनाया है और अन्य बातोंके साथ-साथ उसकी उत्पत्ति और वृद्धिके कारणोंका भी पता लगाया है, जिन्हें हम अपने विज्ञानप्रेमी पाठकोंके सम्मुख रख रहे हैं।

हिमालय पर्वत वास्तवमें अनेक समानान्तर पर्वत-श्रेणियोंका समूह है। ये श्रेणियाँ एकके बाद एक, आगे-पीछे, लगी हुई हैं और पश्चिमसे पूर्वकी ओर फैली हुई हैं। प्रति दो श्रेणियोंके बीचमें गहरी घाटियाँ तथा विस्तृत पठार हैं। इन श्रेणियोंका ढाल दक्षिण अर्थात् सिन्धु-गङ्गाके मैदानकी ओर बहुत अधिक है और उत्तरमें तिब्बतकी ओर बहुत कम है। बङ्गाल तथा संयुक्त प्रान्तके मैदानोंसे तो पर्वत-श्रेणियाँ एकाएक बहुत ऊँची हो जाती हैं और इसीसे उधरके पहाड़ोंके

सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट इत्यादि पहाड़ोंके नीचे मैदानोंसे भी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु पश्चिममें पंजाबकी ओर पहाड़ोंकी ऊँचाई क्रमशः बढ़ती गयी है। उत्तरकी ओर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ मैदानसे प्रायः १०० मील दूर हैं और वहाँसे दिखाई भी नहीं पड़तीं।

ये पर्वत-श्रेणियाँ तीन प्राकृतिक विभागोंमें बाँटी जा सकती हैं—

(१) "महान् हिमालय" अथवा केन्द्रस्थ पर्वत-श्रेणियाँ, जो कि, "तुषार रेखा"से अधिक ऊँची हैं तथा जिनकी औसत ऊचाई २०,००० फुट या इससे अधिक है। इन्हीं श्रेणियोंमें माउंट एवरेस्ट आदि उच्च शिखर हैं, जिनमेंसे मुख्य मुख्य ये हैं—

माउंट एवरेस्ट (गौरी शङ्कर)	नेपालमें	२९,००२ फुट
के २	काराकोरममें	२८,२५० "
किञ्चिनजंगा	नेपालमें	२८,१०० "
धवलागिरि	" "	२६,८०० "
नंगापर्वत	काश्मीरमें	२६,६०० "
गशेरब्रुम	काराकोरममें	२६,४७० "
गोसाईंथान	कुमायूँमें	२६,३५० "
नन्दा देवी	" "	२५,६४० "
राकापोशी	कैलासमें	२५,५५० "

(२) "मध्यवर्त्ती हिमालय"—इसकी औसत ऊँचाई १२,००० फुटसे १५,००० फुटके बीचमें है। यह प्रायः ५० मील चौड़ा है।

(३) "बाह्य हिमालय" अथवा शिवालिक-श्रेणियाँ, जो कि, मैदान और मध्यवर्त्ती हिमालय-श्रेणियोंके बीचमें हैं। इनकी औसत ऊँचाई ३००० से ७००० फुटतक है और यह प्रायः ५ से ३० मीलतक चौड़ी हैं। मसूरी तथा नैनीताल इन्हीं श्रेणियोंमें बसे हैं।

हिमालय-पर्वत-श्रेणियाँ ऊँचाईमें जितनी अधिक हैं, आयुमें उतनी ही कम हैं। भूतत्त्व-वेत्ताओंके अनुसार यह पर्वत संसारके सबसे नवीन तथा कम आयुवाले पर्वतोंमेंसे है। वैज्ञानिक अन्वेषणसे यह पता लगा है कि, लगभग ३½ करोड़ वर्ष पहले यहाँपर पर्वतोंके स्थानमें महासागर था। साधारणतया यह बात विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती कि, संसारकी सबसे ऊँची पर्वतमालाएँ भी कभी समुद्रकी तहमें रही होंगी। यहाँ भी कभी अथाह सागरका नीला जल वायुसे हिलोरें लिया करता होगा और भाँति-भाँतिके मगर आदि जलचर उसके अञ्चलमें क्रीडा करते होंगे। विश्वास तो क्या, बल्कि प्राचीन पद्धति और विश्वासोंके कट्टर अनुयायी तो इस कथाको अनर्गल और पागलका प्रलाप ही कहेंगे। जो वैज्ञानिक सत्य प्रचलित विश्वासोंके प्रतिकूल होते हैं, सर्वसाधारणको उन्हें माननेमें बहुत संकोच हुआ करता है। जब पहले कोपरनिकसने यह प्रमाणित करना चाहा कि, सूर्य पृथ्वीके चारों ओर नहीं घूमता, वरन् पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है, तो उसके देशके राजाने उसे नाना भाँतिके कष्ट दिये। लुई पास्टरने जब यह खोज की कि, शल्य-चिकित्सामें असफल होनेका कारण रोगकी भीषणता नहीं, वरन् काटनेकी कैंची, चाकू आदि अस्त्रोंके कीटाणुओंसे रहित न करना है, तो चिकित्सकों और अन्य जनताने उसे मूर्ख बनाना चाहा और उसके कार्यमें बाधाएँ डालीं। परन्तु जिस प्रकार सूर्य रात्रिके अन्धकारको दूर कर देता है, वैसे ही वैज्ञानिक खोज भी अज्ञानको हटाकर सत्यको प्रमाणित कर देती है। वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि, हिमालय पर्वतके पत्थर-पत्थर और कण-कणमें सामुद्रिक उत्पत्तिकी छाप लगी हुई है। हिमालयकी किसी भी पर्वत-श्रेणीपर चढ़कर ध्यानपूर्वक देखनेसे मालूम होता है कि, यहाँकी पर्वत-शिलाएँ अव्यवस्थित रूपसे ढूहोंमें नहीं पड़ी हैं, वरन् एक शिलाके ऊपर दूसरी शिला इस प्रकार लगी है, मानों तहके ऊपर तह जमी हो। इस प्रकारके शिलासमूहको वैज्ञानिक भाषामें प्रस्तरित अथवा स्तर-

संस्थित चट्टानें कहते हैं। यदि आप इन चट्टानोंके टुकड़ोंको बहुत ही निकटसे अथवा अभिवर्द्धक ताल (Magnifying lens) द्वारा परीक्षा करें, तो आप देखेंगे कि, ये पत्थर बालू, मिट्टी अथवा चूनेके पत्थरके कणोंसे बने हुए हैं। ये कण या तो बहुत ही सूक्ष्म और गोल-मटोल होंगे या कुछ बड़े और टेढ़े-मेढ़े आकारके होंगे। इन शिलाओंका प्रस्तरित होना और छोटे-छोटे कणोंसे बना हुआ होना, दोनों ही इस बातके द्योतक हैं कि, इनकी उत्पत्ति किसी जलाशयकी तहमें हुई है।

यह तो साधारण अनुभवकी बात है कि, नदियां और नाले जलके साथ-साथ बहुत मिट्टी और बालूको बहाकर ले जाया करते हैं। मैदानोंमें बहती हुई नदी ज्यों-ज्यों समुद्रके पास पहुँचती जाती है, त्यों-त्यों उसका पानी गदला होता जाता है। हरद्वारमें गङ्गाजल जितना स्वच्छ और निर्मल है, काशीमें उतना नहीं है। पटनामें गङ्गाजल काशीसे भी गदला है और कलकत्तेकी गङ्गा [हुगली] के गदलेपनका तो पूछना ही क्या है।

नाले और नदियां, सभी पृथ्वीको काट-छाटकर अपना मार्ग (घाटियां) बनाया करती हैं। बड़ी बड़ी शिलाओंके बीचसे कलकल शब्द कर बहता हुआ जल अपने प्रबल वेगसे शिलाओंको काट डालता है। इस प्रकार नदियोंकी घाटी गहरी और चौड़ी होती जाती है। पहाड़ोंसे टूटे हुए पत्थर जल-प्रवाहमें लुढ़कते-पुढ़कते बहते चले जाते हैं। यह पत्थर आपसमें टकराने तथा रगड़ खानेसे शनैः शनैः गोल-मटोल तथा छोटे होते जाते हैं।

पर्वतीय मार्गोंमें नदियोंका वेग बहुत अधिक होता है। इसीसे वहांपर नदी बड़े-बड़े पत्थरोंतकको अपने साथ बहाती लेती चली जाती है। परन्तु जब नदी पहाड़ोंको छोड़कर मैदानमें आती है, इसका वेग एकाएक कम हो जाता है और सब बड़े-बड़े पत्थर वहीं मैदानमें पड़े रह जाते हैं। ज्यों-ज्यों नदी मैदानमें आगे बढ़ती जाती है, इसका वेग कम होता जाता है और तदनुसार पत्थर ले जानेकी शक्ति भी कम होती जाती है। कुछ दूर, मैदानमें, जानेके बाद, तो यह केवल महीन बालू और मिट्टीको ले जा सकती है। पत्थर और मोटे बालूके कण तो नदीकी तहमें धीरे-धीरे बहते हुए आगे बढ़ते हैं; परन्तु महीन मिट्टी और बालू पानीमें मिलकर बहते चले जाते हैं। ज्यों-ज्यों इस महीन बालू और मिट्टीकी मात्रा बढ़ती जाती है, पानी अधिकाधिक गदला होता जाता है।

जलके साथ-साथ यह मिट्टी और बालू भी सागरतक पहुँच जाते हैं। दिन प्रतिदिन और वर्ष प्रतिवर्ष नदियां इसी प्रकार बालू और मिट्टी ला-लाकर सागरकी तहमें एकत्र किया करती हैं। इस प्रकार बालू और मिट्टीकी तह-पर तह जमती चली जाती है। इसी प्रकार लाखों वर्षोंतक पदार्थ समुद्रकी तहमें जमा होता रहता है। फिर किसी समय किसी आन्तरिक घटनासे उत्पन्न हुई गर्मी और दबावसे सब बालू और मिट्टी जमकर कड़ी हो जाती हैं और यह प्रस्तरित शिलाओंका रूप ले लेती हैं। बहुधा इस गर्मी और दबावकी उत्पत्तिके साथ-साथ कुछ ऐसी शक्तियां भी उत्पन्न होती हैं, जो इन बनी हुई शिलाओंको एक ओरसे धक्का देकर, समुद्रकी तहसे निकालकर, महादेशका भाग बना देती हैं और इस प्रकार पर्वतोंकी सृष्टि होती है। हम देखते हैं कि, प्रस्तरित शिलाओंकी उत्पत्तिके लिये यह आवश्यक है कि, किसी जलाशयमें लाखों-करोड़ों वर्षोंतक नदियों द्वारा लाये गये बालू और मिट्टी जमा होती रहे और फिर उस स्थानपर ताप और दबाव इतनी मात्रामें उत्पन्न हों कि, सब संगृहीत मिट्टी और बालूको जोड़कर ठोस कड़ी शिलाका रूप दे सके। इससे हम यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, जहां-कहीं प्रस्तरित शिलाएं हों, वहां इन शिलाओंके बननेके समय सागर अथवा झील, ताल आदि कोई जलाशय अवश्य रहा होगा।

हिमालय-पर्वतकी शिलाओंकी प्रस्तरित बनावटसे हम सहज ही विश्वास कर सकते हैं कि, भौतात्त्विक प्राचीन समयमें उनके हिमाच्छादित शिखरोंके स्थानमें सागरका जल हिलोरें लेता रहा होगा ।

प्रस्तरित होनेके अतिरिक्त इन शिलाओंकी सामुद्रिक उत्पत्तिको, निश्चयात्मक रूपसे, सिद्ध करनेवाला एक और भी महत्त्वपूर्ण प्रमाण है । स्थान-स्थानपर क्षारीय जलचरोंके अनगिनत प्राणि-अवशेष इन चट्टानोंमें मिलते हैं । यदि इन चट्टानोंकी उत्पत्ति सागरकी तहमें नहीं हुई, तो यह प्राणि-अवशेष इन चट्टानोंमें कहांसे आ गये ? इन प्राणि-अवशेषोंको देखकर यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि, हिमालय पर्वतके स्थानमें वहांपर कोई सागर रहा होगा ।

इस सागरको भूतत्त्व-वेत्ताओंने टेथिस [Tethys] नामसे पुकारा है । हिमालय पर्वतके जन्मसे कुछ ही पूर्व महादेशों और सागरोंका विभाग आजकलके समयसे बहुत ही विभिन्न था । अनेक प्रमाण ऐसे मिलते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि, उस समय भारतका दक्षिणी प्रायद्वीप पूर्वमें आस्ट्रेलिया और पश्चिममें अफ्रीकासे लगा हुआ था अर्थात् जहाँ आजकल बङ्गालकी खाड़ी, अरेबियन सागर और हिन्द महासागर हैं, वहाँ उस समय महादेश था । इस प्राचीन महादेशको "गोंडवाना लैंड" कहा गया है । इसी प्रकार टेथिस महासागरके उत्तरमें "अंगारालैंड" और उत्तर-पश्चिममें "आर्कटिक महादेश" माने जाते हैं ।

हिमालय पर्वतकी शिलाओं तथा उनमेंके प्राणि-अवशेषोंके अध्ययनसे पता चलता है कि, यह सबकी सब श्रेणियाँ एक साथ ही उठकर इतनी ऊँची नहीं हुई हैं । यह उत्थान प्रायः ३ अवस्थाओं (Stages)में हुआ है ।

पहली बार "मध्य ईयोसीन"* [Middle Eocene] समयमें "महान् तथा मध्यवर्त्ती हिमालय" वाला भाग समुद्रसे बाहर निकला और प्रायः १०-१२ हजार फुट ऊँचा उठा । मध्य ईयोसीन कालकी अवस्था सौर वर्षोंमें ठीक-ठीक गिनना प्रायः असम्भव है । अनुमानसे यह कोई ३॥ करोड़ वर्ष पूर्वकी होगी ।

दूसरी बार "मध्य मायोसीन" * [Middle Miocene] समयमें हलचल हुई और इस बार मरी प्रदेशकी श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई । यह भाग भी प्रायः ८—१० हजार फुट ऊँचा उठा । केन्द्रस्थ महान् हिमालय भी इस हलचलमें इतना ही और ऊँचा उठ गया । इस बार यह पहला बना हुआ भाग प्रायः १८—२० हजार फुट ऊँचा हो गया । इस हलचलका समय [मध्य मायोसीन] सौर वर्षोंमें आजसे प्रायः १ करोड़ वर्ष पूर्व है । मध्य ईयोसीन और मध्य मायोसीनके बीचके प्रायः २½ करोड़ वर्षतक भी पृष्ठका यह भाग एकदम शान्त नहीं रहा होगा । समय-समयपर थोड़ा बहुत कम्पन और उत्थान होता रहा होगा । इस कम्पन और उत्थानके प्रमाण शिलाओंमें विद्यमान हैं । परन्तु हजारों फीट ऊँचा उठानेवाली हलचलकी अपेक्षा तो इस बीचके समयमें शान्ति ही रही होगी ।

तीसरी बार शिवालिक-श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई । यह हलचल दूसरे उत्थानके प्राय. ४० हजार वर्ष बाद "प्लायोसीन समय" ※ के अन्त (Post Pliocene) में हुई । इस बार पृष्ठ प्रायः ३००० से ७००० फुट ऊँचा उठा और फलतः महान् हिमालय प्रायः २२००० से २८००० फुट ऊंचा और मरी प्रदेश तथा मध्यवर्त्ती हिमालयका कुछ भाग १२,००० से १५००० फुट ऊँचा तथा शिवालिक-पर्वत-श्रेणियाँ ३००० से ७००० फुट ऊँची हुईं । इन पर्वतमालाओंकी आधुनिक ऊँचाई भी प्रायः इतनी ही है ।

* भौतात्त्विक कालविभागोंके नाम । ※ भौत्त्विक काल-विभाग ।

तृतीय उत्थान

द्वितीय उत्थान

प्रथम उत्थान

गङ्गा-सिन्धुका मैदान	शिवालिक श्रेणियाँ	मरी प्रदेश	मध्यवर्त्ती हिमालय	महान् हिमालय	तिब्बतीय प्रदेश
	जम्मू		शिमला	माउंट एवेरेस्ट	
	ज्वालामुखी		मसूरी	किञ्चिनचंगा	
	देहरादून		नैनीताल	नन्दादेवी	
	हरद्वार		अलमोड़ा	बदरीनाथ	
		मरी	काठमांडू	केदारनाथ	
		कमौली	दार्जिलिंग	गंगोत्री	
		दागशाही		यमुनोत्री	

हिमालय-पर्वतश्रेणियोंके आरपार एक ऊर्द्ध्वाधर परिच्छेद (Vertical Section)

ऊपरके चित्र में आधुनिक हिमालय-पर्वतश्रेणियोंके आरपार एक ऊर्ध्ववाधर परिच्छेद (Vertical section) का दृश्य दिखाया गया है। इसमें गङ्गा-सिन्धुके मैदान, शिवालिक-श्रेणियाँ, मध्यवर्त्ती हिमालय, महान् हिमालय तथा तिब्बतकी ओरकी श्रेणियाँ, एकके बाद एक, क्रमशः दिखाई पड़ती हैं। इससे इनका एक दूसरेसे

सम्बन्ध और उनकी आपेक्षिक ऊँचाई भली भाँति समझमें आती है। इस परिच्छेदमें यह भी दिखाया गया है कि, पर्वतोंका कौन-कौनसा भाग उत्थानकी किस-किस अवस्थामें उठा।

यह अनुमान किया जाता है कि, पृथिवीय पृष्ठके इस भागको समुद्रकी तहसे निकालनेवाली शक्तियाँ उत्तरकी ओरसे लगी होंगी। दक्षिणी प्रायद्वीपने इन शक्तियोंको आगे बढ़नेसे रोका होगा। फलस्वरूप पर्वत-श्रेणियोंका दक्षिणकी ओरका ढाल बहुत अधिक हो गया। गतिशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार भी ऐसा ही होना चाहिये। जिस ओरसे धक्का दिया जाता है, उधर ढाल क्रमशः होगा। जिधरसे धक्का रोकनेकी चेष्टा होती है, उधर ढाल अधिक दुरारोह हो जाता है।

इन पर्वतमालाओंको उठानेवाली शक्तियाँ उत्तरकी ओरसे लगी होंगी, इस अनुमानकी पुष्टि एक और भी दृष्टिसे होती है। हम देखते हैं कि, ये पर्वत-श्रेणियाँ पश्चिमसे पूर्वकी ओर सीधी नहीं चली गयी हैं—वरन् कुछ गोलाई लिये हुए हैं। ये पर्वत मालाएँ उत्तरकी ओर उन्नतोदर हैं। गति-शास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार जिस दिशासे बल लगता हो, पदार्थ उसी ओरको उन्नतोदर हो जाता है।

इसी प्रकार अन्य कई एक प्रमाण इस बातकी पुष्टि करते हैं कि, इन पर्वतोंको उठानेवाली शक्तियाँ उत्तरकी ओरसे लगी होंगी।

हिमालय पर्वतसे निकलनेवाली नदियोंके विषयमें एक बात बड़ी ही विचित्र है। मानचित्रको देखनेसे मालूम होता है कि, गङ्गा, यमुना, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि सभी बड़ी नदियाँ हिमालयकी सबसे ऊँची श्रेणियोंके उस पार, तिब्बतवाले प्रदेशसे, निकलती हैं। ब्रह्मपुत्र प्रायः १००० मील पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहनेके बाद दक्षिणकी ओर मुड़ती है और एक-एककर क्रमशः सभी पर्वत-श्रेणियोंको काटती हुई मैदानमें प्रवेश करती है। इसी प्रकार सिन्धु नदी भी मानसरोवर झीलसे निकलकर पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहती है और अन्तमें वह भी क्रमशः सभी पर्वत-श्रेणियोंको काटती हुई मैदानमें प्रवेश करती है। गङ्गा और यमुनाका उद्गम भी महान् हिमालयमें है और मैदान पहुँचनेके लिये इन्हें भी सभी समानान्तर पर्वत-श्रेणियोंको क्रमशः काटना पड़ता है।

साधारणतया जलमार्ग दो समानान्तर पर्वत-श्रेणियोंके बीचकी घाटीमें होना चाहिये—जैसे कि, सिन्धु और ब्रह्मपुत्रके पूर्वार्द्ध भाग हैं। परन्तु इन नदियोंका क्रमसे एकके बाद दूसरी पर्वत-श्रेणीको काटते हुए घाटी बनाना साधारण भौतिक नियमोंके विरुद्ध है। एक पर्वतके ढालसे नीचे उतरकर जल दूसरे पर्वतके ऊपर नहीं चढ़ सकता। फिर ये नदियाँ पर्वत-श्रेणियोंको क्रमसे काटनेमें किस प्रकार समर्थ हुईं ?

इस उलझनको सुलझानेके लिये ओल्डम, हेडन आदि भूतत्त्ववेत्ताओंने यह अनुमान [Hypothesis] निर्धारित किया है कि, यह सब जलमार्ग हिमालय पर्वत-श्रेणियोंसे अधिक पुराने हैं अर्थात् जब कि, हिमालय-पर्वतके स्थानमें टेथिस महासागर था, उस समय दक्षिणके महादेशका ढाल उत्तरकी ओर था और सब नदियाँ भी उत्तरकी ओर बहती हुई टेथिस महासागरमें गिरती थीं। इन्हीं नदियों द्वारा ले जाये गये बालू और मिट्टीसे हिमालय-पर्वतकी शिलाएँ बनीं। जब कि, पृथिवीमें हलचल प्रारम्भ हुई और टेथिसकी तहने नीचेसे उठकर पहाड़ोंका रूप धारण किया, तब यह उत्तरका भाग दक्षिण महादेशसे अधिक ऊँचा हो गया। फलतः जिस जलमार्गमें जल पहले दक्षिणसे उत्तरकी ओर बहता था, उसीमें अब प्रवाह उत्तरसे दक्षिणकी ओर हो गया। नदियोंका उद्गम अब बहुत अधिक ऊँचा हो जानेसे जल-प्रवाहका वेग भी बहुत अधिक हो गया और इनकी शिला काटनेकी शक्ति भी कई गुनी अधिक हो गयी। इस बढ़ी हुई शक्तिद्वारा नदियाँ अपने मार्गको बनाये रखनेमें सफल हुईं। ज्यों-ज्यों हिमालयके

पर्वत ऊँचे होते गये, नदियोंकी शक्ति भी बढ़ती गयी और फल-स्वरूप वे अपनी घाटीको दिन प्रतिदिन गहरी बनाती गयीं। एक ओर तो नये पर्वतोंकी सृष्टि होती थी, दूसरी ओर घाटियाँ गहरी होती जाती थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि, इन नदियोंकी घाटियाँ समानान्तर पर्वत-श्रेणियोंको काटती हुई चली गयीं। अनेक भौगोलिक तथा भौतात्त्विक अवलोकनों (Observations) से इस सिद्धान्तका समर्थन होता है; और, यही आधुनिक विश्वास भी है। इस प्रकारके जल-मार्गोंको "पूर्ववर्त्ती जलप्रणालिका" (Antecedent drainage) कहते हैं। इसके विपरीत "अनुवर्त्ती जलप्रणालिका" (Consequent drainage) में पहाड़ोंके बन जानेके बाद घाटियोंकी उत्पत्ति होती है—जैसा कि, दक्षिणी प्रायद्वीपमें है। पश्चिमी घाटों और नीलगिरि पहाड़ोंकी उत्पत्तिके बाद महानदी, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, पनार आदि नदियोंका जन्म हुआ और ये पश्चिमसे निकल कर पूर्वको ओर बहीं।

संसारकी सबसे ऊँची पर्वत-मालाएँ आयुमें बहुत ही छोटी हैं। यहाँ तक कि, इन्हींमें बहनेवाली गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियां भी इनसे अधिक पुरानी हैं।

पृथ्वीके जीवन-कालके आधुनिक युगके समय-विभाग—

नवीन युग

प्लायस्टोसीन [pleistocene]

प्लायोसीन [pliocene] हिमालयके उत्थानकी तृतीय अवस्था

मायोसीन [Miocene] हिमालयके उत्थानकी द्वितीय अवस्था

ओलिगोसीन [Oligocene]

ईयोसीन [Eocene] हिमालयके उत्थानकी प्रथम अवस्था

प्राचीन युग

पृथ्वीके जीवनके आधुनिक युगको वैज्ञानिकोंने ६ भागोंमें विभाजित किया है। हिमालयका उत्थान इस युगके पहले भागके मध्यमें [मध्य ईयोसीन समयमें] ही प्रारम्भ हुआ। क्रमशः तीन अवस्थाओंमें उठकर "प्लायोसीन" समयके अन्ततक इन्होंने आधुनिक रूप धारण किया। सम्भवतः हिमालय-पर्वत अभी भी कुछ और ऊँचे उठते जा रहे हैं। कमसे-कम यह प्रदेश एकदम शान्त तो नहीं है। बहुधा यहाँ भूकम्प आया करते हैं, जो कि, कभी-कभी बहुत ही भीषण होते हैं। १८८५ में काश्मीर, १८८७ में आसाम तथा १९०७ में काँगड़ाके भूकम्प विशेष उल्लेखनीय हैं। इन भूकम्पोंसे यह पता चलता है कि, यहाँका पदार्थ अभी साम्यावस्था [Equilibriam] में नहीं है। सम्भव है कि, कुछ समय (करोड़ दो करोड़ वर्ष) बाद इस प्रदेशमें एक चौथी हलचल और हो, जो कि, इन गगनचुम्बी पर्वतमालाओंको और भी ५—७ सहस्र फुट ऊँची कर दे!

समुद्रका वैज्ञानिक अन्वेषण

श्रीयुत कृष्णकुमार लाल सक्सेना

प्राचीन समयमें लोगोंको जब समुद्रयात्राके साधन केवल लकड़ीके जहाजों ही तक परिमित थे, समुद्र-सम्बन्धी ज्ञान नहींके बराबर था। समुद्र-सम्बन्धी ज्ञान संचय करनेके हेतु उस समय यन्त्रों तथा साधनोंका पूर्ण अभाव था। इसलिये समुद्रगर्भ और समुद्रके वक्षः-स्थलकी संक्षिप्त जानकारीका भी प्राप्त न कर सकना स्वाभाविक ही था। प्राचीन कालमें सफलतापूर्वक थोड़ी-सी समुद्र-यात्रा कर लेना ही एक बड़ी बात थी। इसका गौरव यूनानियों, भारतीयों*, मिश्रियों तथा फिनीशियनों इत्यादि कुछ इनी-गिनी जातियोंको ही प्राप्त था। जब समुद्र-यात्रा करना ही एक कठिन समस्या थी, तब समुद्र-सम्बन्धी अन्वेषण न तो किया ही जा सकता था और न उसकी ओर किसीका ध्यान ही जा सकता था।

पूर्ण सफलताके साथ समुद्रयात्रा करनेका श्रीगणेश उसी समयसे हुआ, जिस समयसे भाप-संचालक लोहेके बृहत्काय जहाजोंका आविष्कार और उनकी रचनामें उत्तरोत्तर उन्नति हुई। इसी समय समुद्रयात्राको सुगम बनाने तथा वैज्ञानिक-ज्ञान-वृद्धिकी उत्कट इच्छासे समुद्र-सम्बन्धी ज्ञान संचय करनेकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति हुई। विज्ञानके उत्तरोत्तर प्रचार तथा उन्नतिने इस प्रवृत्तिको सफल बनानेमें पूर्ण सहयोग किया; अतएव उक्त ज्ञान संचय करनेके हेतु भिन्न-भिन्न प्रकारके यन्त्रोंका आविष्कार हुआ। यन्त्रोंके आविष्कार तथा उपयोगसे समुद्र-सम्बन्धी ज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

यूनानियोंको, विशेष रूपसे, भूमध्यसागर (Mediterranean sea) का ही ज्ञान प्राप्त था। इसे वे थॅलैस्सा (Thalassa) कहते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें सागरकी उस बड़ी नदीका भी, जो "हरक्यूलोजके खम्भों" [Pillars of Hercules] के पार थी, और "अरबकी खाड़ी" [Arabian gulf] का भी, जिसे "इरीथ्रियन सागर" [Erythrean sea] भी कहते थे, कुछ ज्ञान प्राप्त था, जो उन्हें फिनीशियनों द्वारा ज्ञात हुआ था। भारतीयोंको तो साधारणतः "भारतीय महासागर" [Indian Ocean] के उत्तरार्द्धका कुछ ज्ञान प्राप्त था। "बगालकी खाड़ी" [Bay of Bengal] लंका [Ceylon], बर्मा, स्याम, सुमात्रा और जावा द्वीपसमूहोंके निकटवर्ती सागरका ज्ञान उन्हें विशेष रूपसे प्राप्त था। प्राचीन कालमें भारतीय लोग इन देशोंमें लकड़ीके जहाजोंपर व्यापार करने और अपने देशमें वहाँकी प्रमुख उपज [मसाला और साबूदाना इत्यादि] लेनेके लिये जाते थे।‡

कहा जाता है कि, प्राचीन मिश्री महाराजा 'नीको' ने अपने फिनीशियन मल्लाहोंको अफ्रीकाके पूर्वी समुद्रतटके नीचे अर्थात् दक्षिण भागकी ओर जाकर ऐटलांटिक महासागरसे होते हुए भूमध्यसागरमें लौट आनेकी आज्ञा दी

---

* राधाकुमुद मुकर्जी कृत History of Indian Shipping and Maritime Activity को देखिये।

‡ उक्त द्वीपोंमें हिन्दूधर्म और हिन्दू सभ्यताकी छाप और अनेक विशेष चिन्ह अबतक वर्तमान हैं; और, वे इस बातके द्योतक हैं कि, वहाँके निवासी न केवल हिन्दूधर्म और हिन्दू सभ्यताके प्रभावसे प्रभावान्वित ही थे, वरन् वे हिन्दूधर्म और सभ्यताके उपासक भी हो गये थे। वहाँ भारतीय हिन्दुओंके बहुतसे कुटुम्ब भी बस गये थे।—**लेखक**।

नील रंग समुद्रका और सीपिया-लाल रंग भूमिका सूचक है ।
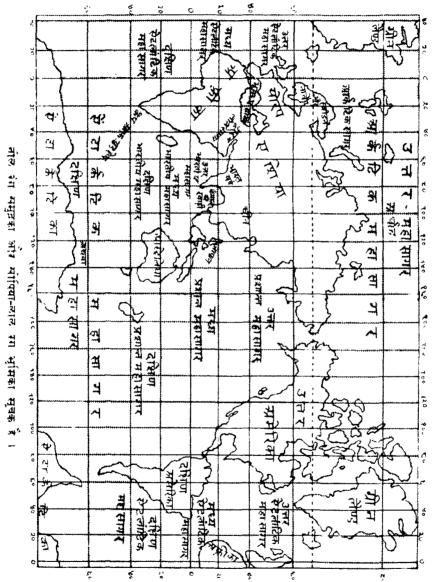
थी। चाहे जो हो; परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि, वे पृथ्वीके दक्षिणी भाग (Southern Hemisphere) में पहुँच गये थे; क्योंकि उनके कथनानुसार सबसे दक्षिणी भूभागपर सूर्य उनके दाहिने हाथकी ओर पड़ता था। यह एक ऐसी बात है, जो मुश्किलसे ही बनायी जा सकती है।

"समुद्र-विज्ञान" और संसारके इतिहासमें यह एक प्रसिद्ध घटना थी, जब कि, महात्मा ईसाके पूर्व, चौथी शताब्दीमें, पाइथियस नामक यूनानी व्यक्तिने ऐटलांटिक महासागरमें अपने जहाजको लेकर प्रवेश किया और उत्तर तथा "आंग्ल द्वीप" (England) के समुद्र-तटों-तक जा पहुँचा था। इसी प्रकार यह भी एक परम प्रसिद्ध घटना थी कि, महात्मा ईसाके पूर्व प्रथम शताब्दीमें हिप्पेलसने भारतीय महासागरके मेघवाही पवनों [Monsoon Winds] का पता लगाया। इसके बाद समुद्र-तटस्थ समुद्री मार्गोंका त्याग कर दिया गया और छ मासोंमें खुले समुद्रके मार्गसे यात्रा की जाने लगी।

सन् १४६२ ई० और १५२२ ई० के बीचके तीस वर्ष पृथिवीके भूभाग-सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धिकी दृष्टिसे सर्वदाके लिये यादगार हैं। इस बीच कोलम्बस ऐटलांटिक महासागर-को पारकर अमेरिकातक जा पहुँचा, वास्कोडीगामाने "केप आफ़ गुडहोप" के किनारे-किनारे परिक्रमा की और भारतवर्ष तक पहुँचा तथा मेगेलन महोदयके आविष्कारक दलके बचे हुए जवानोंने प्रथम बार समुद्र द्वारा पृथिवी-की परिक्रमा पूरी की। इस प्रकार लगभग एक ही प्रयासमें ज्ञात दुनियाके "चित्रपट"में पृथिवीका एक पूरा आधा भाग खोजकर मिला दिया गया।

यह जानकर मनोरञ्जन होगा कि, मेगेलन महोदयने (जब वे सन् १५२१ ई० में प्रशान्त महासागरको पार कर रहे थे) खुले समुद्रकी गहराई नापनेका प्रयत्न किया। जब उनकी छोटी रस्सी समुद्र-तलतक न पहुँच सकी, तब उन्होंने मूर्खतावश यह निकर्ष निकाला कि, उन्होंने समुद्रका सबसे गहरा भाग खोज निकाला।

सोलहवीं और सत्तरहवीं शताब्दियोंके पुराने भ्रमणोंके कारण बहुतसे समुद्रोंके बाहरी विस्तार, उनकी धाराओं (Currents), उनके ज्वारभाटों (Tides), पवन (winds), तापक्रम (Temperature) और खारा-पनका ज्ञान प्राप्त हुआ। अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें गहरे समुद्रोंकी गहराईकी ठीक-ठीक नाप कप्तान कुकने, आर्कटिक महासागरमें, १७७३ ई० में, कप्तान फिप्सने, सर जान रासने आर्कटिक महासागरमें ही १८१८ ई० में और १८४० ई० में सर जेम्स क्लार्क रासने ऐटलांटिक महासागरमें की।

यूरोप और अमेरिकाके बीच बिजलीके समुद्री तारों (Electric Cables)के बिछानेकी चर्चाने समुद्र-विज्ञान-सम्बन्धी खोजको बड़ा प्रोत्साहन दिया और गहरे समुद्रोंकी गहराई नापनेके यन्त्रोंमें बड़े सुधार हुए। सन १८५० ई० में ब्रुकने उस भारी बोझको, जो गहराई नापनेवाली कड़ी और नलीको समुद्रतलकी ओर ले जानेके लिये लगा रहता था, अलग करनेकी एक विधि खोज निकाली। इससे भूमितलसे टकराते ही बोझ अलग होकर वहीं रह जाता था और नली, भूमितलकी मिट्टी तथा खादर इत्यादि वस्तुओंसे भरी हुई, पानीके बाहर निकाली जाती थी। इसके अनन्तर गहरे समुद्रोंकी गहराईकी नाप अधिकतासे; और, ठीक ठीक की जाने लगी।

सन् १८४०के लगभग एजियन सागर (Aegean Sea) के अन्वेषणके आधारपर एडवर्ड फोर्बस इस परिणामपर पहुंचा कि, वनस्पति और जीव-जन्तु, दोनों ही समुद्रमें एक विशेष गहराई तक ही परिमित हैं और उससे अधिक गहराईमें उनका अस्तित्व नहीं है। वनस्पतिओंके अस्तित्वकी अन्तिम सीमा अर्थात् शून्य-रेखा जीव-जन्तुओंके अस्तित्वकी अन्तिम सीमा अर्थात् शून्य-रेखासे कम गहराईपर पायी जाती है। जीव-जन्तुओंकी शून्य रेखा उसके अनुसार ३०० फैदम अर्थात् १८०० फीटकी गहराईपर परिमित थी और उसके सिद्धान्त समग्र समुद्रपर लागू माने जाते थे। उसके बाद माइकेल सार्स, वाइविले टाम्सन, डब्लू० बी० कार-

पेंटर और अन्य वैज्ञानिकोंके, यूरोपके एटलांटिक समुद्र-तटके अन्वेषणोंसे, यह प्रमाणित हुआ कि, जीव-जन्तुओंका साम्राज्य एक या दो मीलकी गहराई तक पाया जाता है।

इनके और ऐसे ही अन्य अन्वेषणोंके कारण सन् १८७२ ई० में ब्रिटिश सरकारने "चैलेंजर-खोज-दल" (Challenger Expedition) नामसे वैज्ञानिकोंके एक समूहको इसलिये समुद्र-भ्रमणके लिये भेजा कि, वे शीघ्र ही महासागरोंके गर्भके भौतिक तथा जीवधारी पदार्थों अर्थात् वानस्पतिक और जीव-जन्तु-सम्बन्धी (Biological) स्थितिका पता लगावें। चैलेंजर-दलने साढ़े तीन वर्ष तक पृथिवीकी परिक्रमा करके सभी महासागरोंमें गहराई, तापक्रम, खारापन, समुद्री धारा, जीव-जन्तु, वनस्पति और मिट्टी तथा खादरके सम्बन्धके लगातार तथा अटूट प्रयोग, सभी गहराइयोंपर, किये। इन प्रयोगोंके कारण (जिनके आधारपर समुद्रशास्त्र—सामुद्रिकशास्त्र नहीं) नवीन विज्ञानकी नींवका विस्तृत ढांचा तैयार हुआ है। पचास बड़ी-बड़ी जिल्दोंमें ब्रिटिश सरकारने प्रकाशित किये हैं।

गत तीस वर्षोंमें लगभग प्रत्येक सभ्य देशने वैज्ञानिक दलोंको गहरे समुद्रोंके अन्वेषणके हेतु भेजा है; और, गत १२ वर्षोंसे एक अन्तारांष्ट्रिय दल उत्तरी सागर और नारवीजियन सागरके वैज्ञानिक अन्वेषणमें प्रयत्नशील है। इसके अतिरिक्त संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें ऐसी समुद्री प्रयोगशालाएं स्थापित की गयी हैं, जिनके द्वारा सागर और उसके गर्भ-स्थित जीव-जन्तुओंकी क्रम-बद्ध रूपसे जाँच की जा सके। इन सबका साधारण फल यह हुआ कि, जांच-पड़तालमें काममें लाये जानेवाले यन्त्रोंमें उत्तरोत्तर सुधार तथा काफी उन्नति हो गयी। सुना जाता है कि, अगले वर्ष, सन् १९३४ ई० में भी, समुद्री खोजके लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा एक वैज्ञानिक खोज दल अरब सागर और लाल सागर इत्यादिकी खोजके लिये भेजे जानेका निश्चय हुआ है। यदि समुद्री खोजकी यही प्रगति रही, तो भविष्यमें शीघ्र ही "समुद्र-विज्ञान"की यथेष्ट उन्नति हो जायगी। यही क्यों, समुद्रसे करोड़ों रुपयेकी सम्पत्ति भी निकाली जा सकेगी।

समुद्रके वक्षःस्थलपर प्रयोग करनेके लिये वे सभी साधारण ढंग तथा यन्त्र (जो ऋतु-विज्ञानाचार्यों और भौतिक-विज्ञानवेत्ताओंके यहाँ प्रचलित हैं) काममें लाये जाते हैं; परन्तु जब समुद्रके गहरे पानीका अन्वेषण किया जाता है, तब अन्य ढंगोंकी शरण लेनी पड़ती है और दूसरे प्रकारके यन्त्रोंकी रचना की जाती है। समय-समयपर, आवश्यकतानुसार, नवीन प्रकारके यन्त्रोंकी रचना भी की गयी है और विशेषकर वे ही यन्त्र इस समय समुद्र-गर्भके अन्वेषणोंमें उपयोगमें लाये जाते हैं। सागर-अन्वेषणमें प्रचलित प्रमुख यन्त्रोंके नाम ये हैं—

(१) तापमापक (Thermometer)—तापमापक यन्त्र समुद्रके बाहरके तथा उसकी भिन्न-भिन्न गहराईके जलका तापक्रम नापनेके लिये उपयोगमें लाये जाते हैं। समुद्र-जलके दबावसे बचानेके लिये विशेषतः साधारण तापमापकोंसे समुद्रके गहरे जलमें तापक्रम लेनेवाले तापमापकोंकी बनावटमें कुछ सैद्धान्तिक भेद रखा गया है। वह भेद साधारण तापमापकसे बिल्कुल विपरीत है; इसलिये ऐसे तापमापकको उत्क्रमणीय तापमापक (Reversing Thermometer) कहते हैं। समुद्रके प्रारम्भिक अन्वेषणोंमें "सिक्सका महत्तम तथा लघुतम तापमापक" (Six's Maximum and Minimum Thermometer) गहरे समुद्रजलका तापक्रम लेनेमें उपयोगमें लाया जाता था और चैलेंजर-खोजदल तथा उसी समय या उससे पूर्वके आविष्कारक दलोंने मिलर और कैसेल्ला द्वारा इसी तापमापकके परिवर्द्धित तथा कुछ सुधारे हुए प्रकारके तापमापकका, गहरे समुद्र-जलका तापक्रम लेनेमें, उपयोग किया था। ऐसी अवस्थामें, जब कि, लगभग एक ही गहराईकी पानीकी तहोंमें तापक्रमका भेद होता है, तब उक्त महत्तम तथा लघुतम तापमापकसे सफलता नहीं मिलती; इसलिये उसके बजाय

उत्क्रमणीय तापमापकका उपयोग, समुद्रके गहरे पानीके लिये, किया जाने लगा। इस उत्क्रमणीय तापमापकका सुधार निग्रेट्टो, जैम्बा और रिटर महोदयोंने किया और इस समय तापक्रममापकका यह परिवर्द्धित स्वरूप परम लाभदायक सिद्ध हुआ है।

(२) **गहराईमापक यन्त्र**—समुद्रकी गहराई नापनेके लिये समुद्र-ज्ञानार्जनकी प्रारम्भिक अवस्थामें सुदृढ़, परन्तु पतली रस्सी काममें लायी जाती थी। उसके पश्चात् लार्ड केल्विनने, इस कामके लिये, पियानो बाजेमें लगाये जानेवाले पतले तारका उपयोग जारी किया। फिर, ल्यूकाके गहराई-मापक यन्त्र (Luca's Sounding Machine) का आविष्कार होते ही उसका उपयोग भी होने लगा। इस समय यह तीनों ही साधन समुद्रकी गहराई नापनेके लिये प्रचलित हैं। ल्यूकाके गहराई-मापककी विशेषता यह है कि, ज्यों ही उसका बोझवाला भाग या बाट समुद्रतलसे स्पर्श करता अथवा टकरा जाता है, त्यों ही गहराई यन्त्रमें सूचित अथवा अङ्कित हो जाती है। आजकल २००० फैदम अर्थात् १२००० फीट (१ फैदम=६ फीट) को गहराई नापनेमें प्रारम्भसे लेकर अन्ततक कुल पौन घंटे (अर्थात् ४५ मिनट) का समय लगता है। चैलेंजर आविष्कारक दलको ४४७५ फैदमकी गहराई नापनेमें लगभग ढाई घंटेका समय लगा था। जो पतला तार साधारणतः तापमापकों और जल-संग्रह करनेवाली बोतलोंको जलमें डालनेके लिये काममें लाया जाता है, उसकी मोटाई केवल एक इंचके आठवें हिस्सेके बराबर होती है; परन्तु गहराई नापनेके काममें लाये जानेवाले एकतारी तार (Single strand piano wire) की मोटाई केवल एक इंचके बीसवें भागके बराबर होती है। कई तारोंका उपयोग भी (जिनकी मोटाई अधिक होती है) गहराई नापनेके काममें प्रचलित है।

(३) **जाल**—भिन्न-भिन्न गहराइयोंके जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके खुलने तथा बन्द हो जानेवाले जाल प्रयोगमें लाये जाते हैं। चैलेंजर दलने समुद्रके ऊपरी तथा मध्यवर्ती जलमें रहनेवाले जीवों और वनस्पतियोंको संग्रह करनेके लिये लम्बे-लम्बे सूती या रेशमी थैलोंका (जिन्हें Toro net कहते हैं) उपयोग किया था। खुले समुद्रोंमें उपयोगमें लाये जानेवाले बड़े-बड़े जाल पिलैजिक ट्राल्स [Pelagic Trawls) कहलाते हैं। जालोंको समुद्र-जलमें फेंकने, निकालने तथा उपयोगमें लानेके लिये पहले सुदृढ़ रस्सियाँ काममें लायी जाती थीं; परन्तु जबसे एलेक्जेंडर अगासिजने तिहाई इंच मोटे तारकी रस्सीको काममें लाना प्रारम्भ किया, तबसे यही रस्सियाँ जालोंमें लगायी जाती हैं और इनसे सफलता भी अधिक मिलती है।

(४) **जलसंग्रह करनेवाली बोतलें**—कुछ जीव इतने छोटे तथा महीन होते हैं, जो रेशमके महीनसे महीन छेदोंके जाल द्वारा भी नहीं पकड़े जा सकते। उन्हें परीक्षार्थ संग्रह करनेके लिये बन्द हो जानेवाली बोतलें (जिन्हें वाटर-बाटल (water bottle) कहते हैं और जिन्हें हम जल-पात्रके नामसे सम्बोधन कर सकते हैं) उपयोगमें लाते हैं। एक ही साथ पानी संग्रह करने तथा उसका तापक्रम लेनेके लिये ऐसी बोतलें, जो एक या एकसे अधिक उत्क्रमणीय ताप-मापकों (Reversing Thermometers) को समुद्र-गर्भमें ले जानेके लिये विशेष प्रकारकी बनायी गयी हैं, उत्क्रमणीय "वाटर बाटल्स" (Reversing water bottles) कहलाती हैं। कभी कभी इसी उद्देश्यके साधनार्थ "पृथगन्यासक वाटर बाटल्स" (Insulating water bottles) उपयोगमें लायी जाती हैं। इस प्रकारकी एक बोतल पेटर्सन और नान्सेनकी बनायी हुई है, जिसे उन्हींके नामपर पेटर्सन-नान्सेन-पृथगन्यासक वाटर-बाटल [Petterson-Nansen Insulating water bottle] कहते हैं।

समुद्रके ऊपरी अथवा बाहरी पानीको संग्रह करनेके

लिये एक साधारण बाल्टीका उपयोग किया जाता है और बिल्कुल छिछले जलमें डाटदार (Stoppered bottle) शीशी काममें लायी जाती है (जिसकी डाट उसमें बँधी हुई साधारण डोरी अथवा तारकी डोरीके झटकेसे ही बन्द कर दी जाती है)। चैलेंजर-दल समुद्रके मध्यवर्ती और तलवर्ती जलोंमें इसी प्रकारकी शीशियाँ, कुछ साधारण भेद अथवा परिवर्तनके साथ, काममें लाया था—मध्यवर्ती जलमें स्टाप-काक वाटर-बाटल (Stop-cock water bottle)का और तल-जलमें स्लिप-वाटर-बाटल (Slip water bottle) का।

(५) **आलोक-मापक**—समुद्रगर्भमें भिन्न-भिन्न गहराइयोंपर सूर्यके प्रकाशकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये कई प्रकारके आलोक-मापकों (Photometers)का उपयोग, समय समयपर, किया जा चुका है। सबसे पीछेका बनाया हुआ आलोक-मापक वह है, जो बी० हिल्लैंड हैन्सनने बनाया है और जिसे उसने उत्तरी एटलांटिक महासागरमें "माइकेल सार्स" की यात्रामें इस्तेमाल किया था।

(६) **धारामापक**— समुद्री धाराओंकी गति (Velocity) और दिशा (Direction) जाननेके लिये बहुतसे ढंग उपयोगमें लाये जाते हैं। समुद्रके ऊपरी पानीके प्रवाहकी गति तथा दिशाकी जानकारी भिन्न प्रकारके पदार्थोंके बहावसे जानी जाती है और उसकी तथा उसके नीचेके पानीका अध्ययन उनके भौतिक तथा रासायनिक गुणोंसे —उदाहरणार्थ, तापक्रम, खारीपन और उसमें घुली हुई अर्थात् मिश्रित विशेष प्रकारकी गैसोंके अध्ययन द्वारा किया जाता है। बहुत गहराईकी धाराओं अथवा जल-प्रवाहोंकी जानकारीके लिये धारामापक (Currentmeter) नामक यन्त्रकी सहायता ली जाती है। सबसे पीछेका सुव्यवस्थित रूपका धारा-मापक, वी० डब्ल्यू० इक्मान महोदयका बनाया हुआ, है।

(७) **द्रवघनत्वमापक**—समुद्रजलके घनत्वको, एक ही बारमें, जानकारी प्राप्त करनेके लिये द्रव-घनत्वमापक (Hydrometer) नामक यन्त्रकी सहायता ली जाती है, जो शीशेका बना हुआ होता है और जलमें तैरता अथवा उतराता रहता है।

(८) **घनत्वमापक**—समुद्र-जलका आपेक्षिक घनत्व (Relative density) जाननेके लिये भेदसूचक घनत्व-मापक (Differantial Densimeter) नामक यन्त्रका निर्माण जे० जे० मैनले महोदयने किया है। यह यन्त्र प्रधानतः समुद्र-तटस्थ प्रयोगशालाओंमें, प्रयोगके लिये, बनाया गया था; इसलिये जहाजोंपर प्रयोगमें लानेके लिये इसमें कुछ परिवर्तन तथा सुधार किये गये हैं और इस **परिवर्धित भेद-सूचक घनत्वमापक**का उपयोग एन० पी० केम्पबेल महोदयने, लङ्का-यात्राके समय, ओरियंट मेल नामक जहाजी कम्पनीके किसी जहाजपर, किया था। सफलतापूर्वक अच्छी जानकारी भी प्राप्त हुई थी।

१ **समुद्रकी गहराई**—समुद्रकी औसत गहराई पहाड़ोंकी औसत ऊँचाईसे अधिक है। हिमालय पर्वतकी सबसे ऊँची चोटी ("एवरेस्ट शिखर") समुद्रके सबसे गहरे भागसे आँख भी नहीं मिला सकती।

समुद्रके गहरे भाग, "एटलांटिक महासागर" और "प्रशान्त महासागर" में ४००० फैदमसे अधिक गहरे हैं। समग्र समुद्रमें, सन् १९१९ ई० तक, ४००० फैदम से अधिक गहरे केवल ४६ भागोंका और ५००० फैदम (अर्थात् ३०००० फीट) से अधिक गहरे केवल आठ भागोंका पता लगा था। इन आठोंमेंसे तीन गहरे भाग फ्रेंडली और केरमाडेक द्वीपोंके निकट, प्रशान्त महासागरके उस गहरे समुद्रमें, स्थित हैं, जिसका नाम, सागर-आविष्कारकोंने, "एल्ड्रिच डीप" (Aldrich Deep) रख दिया है। चार गहरे भाग उत्तर-पश्चिम प्रशान्त महासागरके "चैलेंजर डीप" नामक गहरे समुद्रमें स्थित हैं। आठवीं गहराई अर्थात् संसारकी सबसे ज्यादा गहराई (जिसकी गहराई ५२४८ फैदम है) जर्मन जहाज "प्लैनट"ने, सन् १९१२ ई० में,

प्रशान्त महासागरमें ही मिनडानाओसे कुछ दूरीपर, "स्वायर डीप" नामक गहरे समुद्रमें खोज निकाली। यह गहराई ३५०८६ फीट होनेके कारण ६ अंग्रेजी मीलोंसे ४०६ फीट अधिक है। यदि संसारका सबसे ऊँचा पहाड़ "एवरेस्ट शिखर" प्रशान्त महासागरकी इस गहराईमें रख दिया जाय, तो उसकी चोटी ३०८७ फीट गहरे पानीसे ढकी रहेगी! केवल प्रशान्त महासागरमें ही (जिसका क्षेत्र-फल ६ करोड़ ६० लाख वर्ग मील है) ५००० फैदमसे अधिक गहराइयाँ पायी जाती हैं।

ऐटलांटिक महासागरको (जिसका क्षेत्रफल ४ करोड़ २० लाख वर्ग मील है) * सबसे अधिक गहराई ४६६२ फैदम है, जो कि, "वेस्ट इंडीज" द्वीप-समूहके उत्तरमें स्थित है। भारतीय महासागरकी (जिसका क्षेत्रफल २ करोड़ ६० लाख वर्गमील है) सबसे अधिक गहराई (जो ३८२८ फैदमकी है) जावा द्वीपके दक्षिणमें है। आर्कटिक महासागरकी सबसे अधिक गहराई २२०० फैदमकी है।

भिन्न-भिन्न गहराइयोंपर, हजारों नापोंके आधारपर, समुद्रतलका क्षेत्रफल निकाला जा चुका है, जो निम्न लिखित प्रकारसे है—

गहराई	समुद्र-तलका क्षेत्र-फल (वर्गमीलोंमें)	प्रतिशतके अनुसार समग्र समुद्र-तलका क्षेत्रफल
० (शून्य) से लेकर १००० फैदमतक	२२००००००	१६
१००० फैदम " " २००० " "	२७००००००	१९
२००० " " " ३००० " "	८१००००००	५८
३००० " " " ४००० " "	९८०००००	७
४००० " " " ५००० " "	१९५०००	[१ से कम]
५००० फैदमसे अधिक गहराई तक	५०००	
	१४००००००	१००

२ समुद्रका खारापन—जब कि, नदीके जलका खारापन केवल १२ ग्राम प्रति गैलन या '१८ भाग प्रति हजार है, समुद्रके जलका खारापन ३५ भाग प्रति हजार है अर्थात् समुद्रका जल नदी-जलसे लगभग १९४'४ गुना अधिक खारा है। सर जान मरे महोदयके अनुसार प्रतिवर्ष नदियों द्वारा ५०००, ०००,००० टन लवण समुद्रमें जाता है; परन्तु सन् १९१० ई०में किये गये एफ० डब्ल्यू क्लार्क महोदयके उसीसे मिलते-जुलते अनेक पुराने तथा नवीन प्रयोगोंके आधारपर प्रतिवर्ष २, ७००, ०००, ००० टन लवण समुद्रमें नदियों द्वारा जाता है, जो सर जान मरेके हिसाबके आधेसे कुछ अधिक है। यद्यपि नदियों द्वारा समुद्रमें लवण बृहत मात्रामें जाता है; परन्तु सागरमें जितना नमक पानीमें घुला हुआ मौजूद है, उसकी मात्राके सामने वह बहुत ही न्यून है। इस प्रकार समुद्रका खारापन करोड़ों वर्षोंमें बढ़ता जा रहा है; परन्तु यह वृद्धि इतनी धीमी गतिसे हो रही है कि, साधारणतः उसका पता नहीं लगता।

समुद्रमें घुले हुए लवण विशेषतः सोडियम, मैगनीशियम, पोटासियम और काल्सियमके क्लोराइड और सल्फेट हैं। साधारण नमककी मात्रा इनमें ७७'८ प्रतिशत है अर्थात् सागरके समग्र लवणोंमें तीन-चौथाईसे अधिक है; परन्तु नदी-जलमें जो लवण मौजूद हैं, उनमें साधारण नमककी मात्रा केवल २'२ प्रतिशत है। समुद्रके लवणोंमें

* इसमें आर्कटिक सागर, नारवीजियन सागर भूमध्यसागर और कैरिबीयन सागर, इत्यादि भी सम्मिलित हैं।

सल्फेटकी मात्रा १'८ प्रतिशत है और केल्सियम कार्बनेट केवल ०'३४५ प्रतिशत है। इनके अतिरिक्त समुद्र-जलमें लगभग सभी ज्ञात मूल पदार्थोंकी न्यूनातिन्यून मात्रा घुली हुई है।

चैलेंजर आविष्कारक दल द्वारा संगृहीत समुद्र-जलके ७७ नमूनोंकी परीक्षा करके डब्ल्यू॰ डिट्टमारने जो फल निकाला है, उसके अनुसार सागरमें भिन्न-भिन्न लवण निम्नलिखित मात्रामें पाये जाते हैं—

सोडियम क्लोराइड	२७'२१३	भाग प्रति हजार
मैगनीशियम क्लोराइड	३'८०७	" "
मैगनीशियट सलफेट	१'६५८	" "
काल्सियम सलफेट	१'२६०	" "
पोटास्यियम सलफेट	०'८६३	" "
काल्सियम कार्बनेट	०'१२३	" "
मैगनीशियम ब्रोमाइड	०'०७६	" "
कुल	३५'०००	

भिन्न-भिन्न परीक्षाओं द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि, समुद्र-जलमें लवणोंकी मात्रा समुद्रके प्रत्येक भाग और प्रत्येक गहराईपर सर्वदा, एक समान, रहती है अर्थात् भस्मों (Bases) और अम्लोंके पारस्परिक मात्रा-क्रम (Ratio) में कोई भेद नहीं पड़ता।

साधारणतः अधिक खारापन उन्हीं भागोंमें पाया जाता है, जहाँ तापक्रम और पानीका भाप बनना अधिक है तथा वर्षा कम होती है। कम खारापन वहाँ पाया जाता है, जहाँ इन परिस्थितियों (तूफान इत्यादि)में ठीक उल्टी परिस्थितियाँ पायी जाती हैं।

प्रचलित पवनों और विशेष प्रकारकी परिस्थितियोंके कारण भी सागरके भिन्न-भिन्न भागोंमें खारापनमें थोड़ा-बहुत भेद पाया जाता है।

समुद्रजलकी सतहके नीचे खारापनमें साधारणतः ८०० फैदम या १००० फैदमकी गहराई तक कमी होती है और उसके बाद समुद्रतलकी ओर बढ़नेपर खारापनमें वृद्धि पायी जाती है।

३ समुद्रजलमें गैसें-समुद्रजलमें गैसें भी पानीमें घुली हुई पायी जाती हैं। जहाँ तापक्रम अधिक होता है, वहाँ गैसकी मात्रा कम पायी जाती है। इस नियमके अनुसार ध्रुव-स्थित समुद्रजलमें घुली हुई गैसोंकी मात्रा भूमध्य-रेखाके इर्द-गिर्दके पानीमें घुली हुई गैसोंकी मात्रासे स्वभावतः अधिक है।

समुद्र-जलके भिन्न-भिन्न नमूनोंकी परीक्षासे यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि, समुद्रके प्रत्येक भागमें सतहसे लेकर समुद्र-तल तक आक्सीजन गैस मौजूद है; परन्तु कुछ घिरे हुए अर्थात् चारों ओरसे बन्द समुद्रोंमें (जिनमें पानीके नीचे-ऊपर परिक्रमा करनेकी गतिका लगभग अभाव है) आक्सीजन गैसका भी अभाव गहरे पानीमें पाया जाता है।

समुद्र-जलमें कार्बोनिक एसिड् गैस (Carbonic Acid Gas) अति न्यून मात्रामें, बिना घुली, अर्थात् स्वतन्त्र अवस्थामें पायी जाती है।

समुद्र-जलकी सतहके नीचे स्वतन्त्र कार्बोनिक एसिड गैस, कुछ स्थानोंमें, गहराईकी वृद्धिके साथ-साथ, मात्रामें अधिक होती जाती है।

४ समुद्र-जलका तापक्रम—तापक्रमका विस्तार-विभाग साधारणतः भौगोलिक परिस्थितिपर निर्भर है और इसके अनुसार समुद्र-जल ध्रुवोंपर बर्फके समान ठंढा रहता है तथा भूमध्यरेखापर ८० डिगरी फेहरनहीटके तापक्रमपर गरम रहता है। ध्रुवों और भूमध्यरेखाके बीचके भागोंपर समुद्र-जलका तापक्रम मध्यवर्ती होता है। तापक्रमके इस नियमित विस्तार-विभागपर (क) प्रचलित पवनों, (ख) भूभागोंकी निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती स्थिति और (ग) बृहत्तम तथा अल्पतम दबाववाले भागोंकी उपस्थितिका प्रभाव पड़ता है, जिससे तापक्रम-रेखाओं (Isothermal

lines) में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन हो जाता है।

पृथ्वीके चारों ओर, भूमध्यरेखाके इर्द-गिर्द, ८० डिगरी फैहरन हीटकी गर्मी रहती है और ६० डिगरी फैहरन हीटसे कुछ अधिक दर्जेका औसत तापक्रम भूमध्यरेखाके ४० डिगरी उत्तर और ४० डिगरी दक्षिणके अन्दर (सिवाय उत्तरी एटलांटिक महासागरके, जहाँ ४० डिगरी उत्तरकी रेखाके बाहर तक प्रचलित है) पाया जाता है। ४० डिगरी फैहरन हीटका औसत तापक्रम दक्षिणी भूभागमें ५५ डिगरी दक्षिणी रेखा तक परिमित है; परन्तु उत्तरी भूभागमें उसका विस्तार ७० डिगरी उत्तरी रेखातक, नार्थ केपके बाहर तक, पाया जाता है। समग्र समुद्रकी सतहके १६ प्रतिशत भागपर ४० डिगरी फैहरन हीटसे कमका औसत तापक्रम पाया जाता है।

किसी एक विशेष स्थानपर समुद्रकी सतह (surface) के पानीका तापक्रम दिन प्रतिदिन और प्रत्येक वर्ष घटता-बढ़ता रहता है; परन्तु स्थलकी अपेक्षा कम।

खुले समुद्रमें, किसी भी स्थानपर, समुद्रकी सतहके जलके तापक्रमका औसत दैनिक परिवर्तन एक डिगरी तक भी नहीं पाया जाता।

किन्हीं विशेष स्थानोंपर समुद्रकी सतहके पानीके तापक्रमका वार्षिक परिवर्तन ५० डिगरी फैहरन हीटसे अधिक तक पाया जाता है, जहाँ एक विशेष ऋतुमें ध्रुव-प्रदेशोंसे ठंडा पानी बहकर समुद्रकी सतहपर फैल जाता है। किसी दूसरी ऋतुमें पृथ्वीके मध्यवर्ती भागसे गरम पानी आकर समुद्रकी सतहपर फैल जाता है; परन्तु ऐसे भी अनेक विस्तृत भाग पृथ्वीके मध्यवर्ती और ध्रुव-स्थित समुद्रों (Tropical and Polar waters) में हैं, जहाँ वर्षमें तापक्रमका यह परिवर्तन कुछ डिगरीसे अधिकका नहीं पाया जाता।

समुद्रकी सतहपरके इस समय तकके ज्ञात तापक्रमोंमें सबसे कम तापक्रम केवल २६ डिगरी फैहरन हीट है, जो उत्तरी एटलांटिक महासागरमें, "नोवा स्काशिया" के पूर्वमें, पाया गया है। खुले समुद्रमें पाया गया सबसे अधिक तापक्रम ८० डिगरी फैहरन हीट है, जो मध्यवर्ती प्रशान्त महासागरमें, भूमध्यरेखाके उत्तर और दक्षिण, दोनों ही ओर पाया जाता है और ८४ और ८६ डिगरी फैहरन हीटका तापक्रम क्रमानुसार लाल सागर (Red Sea) और ईरानकी खाड़ी (Persian Gulf) में, (जो समुद्रके घिरे हुए भाग हैं) पाया जाता है। इस प्रकार सबसे अधिक "तापक्रमका विस्तार" (Range of Temperature), संसार भरके समुद्रोंकी सतहके पानीमें ७० डिगरी फैहरन हीट (२६ से ८६ डि० तक) है, जो पृथ्वी अथवा स्थलके २२० फैहरन हीटसे अधिकके सबसे अधिक तापक्रम-विस्तारके सामने बहुत ही कम है।

उत्तर और दक्षिणके परम दूरवर्ती हिमाच्छादित प्रदेशों और कुछ अन्य भागोंको छोड़कर खुले समुद्रमें समुद्र-जलका तापक्रम सतहसे समुद्रतलतक लगातार घटता हुआ पाया जाता है; परन्तु घिरे हुए समुद्र (enclosed sea) में विशेष गहराईके बाद (जहाँसे उसका गहरा तलवर्ती भाग खुले समुद्रसे पृथिवीकी जल-निमग्न चट्टान-रूपी दीवार अथवा रोकके कारण एक प्रकारसे अलग हो जाता है) तापक्रमका घटना रुक जाता है और उस तलवर्ती भागके जलका तापक्रम उतना ही रहता है, जहाँ तापक्रमका घटना जलनिमग्न चट्टानकी चोटीके ठीक ऊपरसे अर्थात् छूकर बहती हुई पानीकी तहमें पहुँचकर एकदम रुक जाता है।

समुद्र-जलके तापक्रमका ऋतु-कालिक परिवर्तन (Seasonal variation) समुद्रकी सतहसे नीचेकी ओर बढ़नेपर घटता हुआ पाया जाता है; परन्तु केवल १०० फैदमकी गहराईपर पहुँचकर एकदम ही लुप्त हुआ जान पड़ता है। उसके पश्चात् जो तापक्रम साधारणतः पाया जाता है, वह तापक्रमका अच्छा वार्षिक औसत समझा

जाता है। आर० ई० पीक महोदयके उत्तरी ऐटलांटिक महासागरमें किये हुए प्रयोगोंके आधारपर (जो १९१० ई० में माइकेल सार्सके प्रयोगों द्वारा कुछ कुछ प्रमाणित भी हुए हैं) यह जाना गया है कि, गहरे पानीमें भी तापक्रमका कुछ ऋतुकालीन तथा अन्य प्रकारका परिवर्तन होता हुआ जान पड़ता है, जो बहुत ही कम होता है।

३० डिगरी फेहरन हीटसे कम तापक्रम केवल आर्कटिक और एंटार्कटिक महासागरों (Arctic and Antarctic Oceans) के हिमाच्छादित भागोंमें ही पाया जाता है।

चैलेंजर-खोज-दल द्वारा समुद्रके सब भागों और भिन्न-भिन्न गहराइयोंपर किये गये प्रयोगों द्वारा समुद्रतलकी ओर बढ़नेपर तापक्रम जिस-जिस प्रकार घटता हुआ पाया गया है, वह इस प्रकार है—

समुद्रकी गहराई	औसत तापक्रम
१०० फैदम	६०·७ फेहरन हीट
२०० „	५०·१ „
३०० „	४५·७ „
४०० „	४१·८ „
५०० „	४०·१ „
६०० „	३९·० „
७०० „	३८·१ „
८०० „	३७·५ „
९०० „	३६·८ „
१००० „	३६·५ „
११०० „	३६·१ „
१२०० „	३५·८ „
१३०० „	३५·६ „
१४०० „	३५·४ „
१५०० „	३५·३ „
२२०० „	३५·२ „

समस्त गहरे समुद्रोंमें तापक्रम सम्बन्धी प्रयोगों द्वारा जो सबसे अधिक दृष्टिगोचर होनेवाली बात है, वह यह है कि, सागरकी अधिक गहराईपर बहुत कम तापक्रम पाया जाता है। उदाहरणार्थ २००० फैदमकी गहराईपर (यहाँतक कि, भूमध्यरेखाके नीचे पड़नेवाले जलमें भी, जहाँ सूर्यकी गरमी संसारके सभी भूभागोंसे अधिक तीव्र रहती है और लगातार लगभग एक समान बनी रहती है) सम्पूर्ण समुद्रमें पानीका तापक्रम ताजे पानीके जमावपर आनेवाले अर्थात् जम जानेवाले तापक्रमसे कुछ ही अधिक रहता है।

५—समुद्रकी धाराएँ—पानीका एक स्थानसे दूसरे स्थानको नदियों अर्थात् धाराओंके रूपमें बहकर जाना साधारणतः प्रत्येक महासागरमें पाया गया है। इनमें ठंढे और गरम, दोनों ही प्रकारके जलोंकी धाराएँ पायी जाती हैं। इनकी उत्पत्ति तथा अस्तित्वके दो **प्रधान कारण** हैं। प्रथम (क) समुद्र जलकी भिन्न-भिन्न गहराइयोंपर भिन्न-भिन्न घनत्वका होना और (ख) दूसरे प्रचलित पवनोंका प्रभाव। धाराओंकी उत्पत्ति तथा विकासके कुछ **गौण** तथा **सहायक कारण** भी हैं; जैसे (क) वर्षाका अति आधिक्य, (ख) अधिक तापक्रम तथा घनत्वकी समुद्रजलकी सतहके नीचेकी धाराएँ, जो भूमध्यसागर तथा लाल सागरसे निकलती हैं, (ग) पूर्वी प्रशान्त महासागर और ऐटलांटिक तथा भारतीय महासागरोंके लगभग समान भागोंमें पानीका ऊपर आकर अधिक मात्रामें इकट्ठा हो जाना और (घ) भूमध्यरेखाके कुछ उत्तर और कुछ दक्षिणके भीतर अल्पतम औसत दबाव (Lowest mean barometric pressure) का अस्तित्व, जिसके कारण दक्षिण ऐटलांटिक महासागरकी अपेक्षा उत्तर ऐटलांटिक महासारमें और उत्तर प्रशान्त महासागरकी अपेक्षा दक्षिण-पश्चिम प्रशान्त महासागरमें तापक्रममें अधिक वृद्धि होती है।

धाराओंकी उत्पत्ति तथा विकासके उपर्युक्त प्रधान कारणोंमेंसे समुद्र-जलका घनत्व (Density) समुद्रके खारापन और तापक्रमपर निर्भर रहता है और वायु-

प्रवाह, वायुके दबाव (Atmospheric Pressure) के भेद अर्थात् कम और अधिक होनेपर निर्भर रहता है।

समुद्रकी ठंडी और गरम, दोनों ही प्रकारकी धाराएँ (जिनके नाम भी रख दिये गये हैं) जहाँ-जहाँसे होकर बहती हैं, वहाँ-वहाँके भूभागोंके जल-वायुपर पूर्ण प्रभाव डालती हैं; उदाहरणार्थ "लैब्राडोर धारा" (Labrador current), "गल्फ स्ट्रीम" (Gulf-Stream) और "कियुरो सीवो" (Kuro Sivo) इत्यादि। स्थानाभावके कारण समुद्रकी सब प्रधान-प्रधान धाराओंके नामोंका यहाँ उल्लेख करना ठीक नहीं जँचता एवम् वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भी नामोंका कोई विशेष महत्त्व न होनेके कारण उनका नामोल्लेख, इस संक्षिप्त लेखमें, विशेष उचित तथा आवश्यक नहीं जान पड़ता।

६ **समुद्रकी लहरें**—खुले समुद्रोंमें तीव्र पवनोंके झकोरों तथा तूफ़ानोंके कारण समुद्रजलमें सतहपर लहरें उत्पन्न होती हैं, जिनमें साधारणतः पानीके कण तो अपने ही स्थानोंपर विशेष परिधिके भीतर हिलते-डोलते रहते हैं; परन्तु पानीके हिलने-डोलनेसे लहरोंके जो रूप बनते हैं, वे ही आगे बढ़ते रहते हैं।

छिछले जलमें, तीव्र पवनोंके कारण, कुछ पानी लहरोंमें आगेकी ओर भी प्रस्थान कर जाता है, जिसे साधारणतः लहरका परिवर्द्धित रूप (Wave of translation) समझते तथा कहते हैं। समुद्रतटसे तिरछे टकरानेपर लहरें कभी-कभी समुद्रतटस्थ धाराएँ उत्पन्न कर देती हैं।

सबसे बड़ी लहरें उत्तरी ऐटलांटिक महासागरमें तथा दक्षिण महासागर (Southern i. e. Antarctic Ocean) में उत्पन्न होती पायी जाती हैं, जिनकी लम्बाई ५६० फीट और ऊँचाई ५० से ६० फीट तककी होती है।

७ **समुद्रके ज्वार-भाटे**— समुद्रके ज्वार-भाटों (Tides) के सम्बन्धमें यह समझ लेना आवश्यक है कि, इन्हें बड़े आकारकी लहरें समझना भूल है। इनकी उत्पत्ति सूर्य और चन्द्रके आकर्षणके कारण होती है। प्रतिदिन ज्वार-भाटे एक नियमित समयके अनन्तर, उत्पन्न होते हैं, जो कि, लगभग १२ घंटेके अर्थात् ठीक १२ घंटे २५ मिनटके होते हैं। साधारणतः समुद्रतटके निकट बसनेवाले प्रतिदिन देखा करते हैं कि, दिन-रातमें अर्थात् लगभग २५ घंटे अथवा ठीक २४ घंटे ५० मिनटमें दो बार ज्वार-भाटे, १२ घंटे २५ मिनटके अन्तरपर, उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह विदित है कि, ज्वार-भाटे प्रतिदिन एक ही समयपर नहीं उत्पन्न होते; वरन उनका समय परिवर्तित होता रहता है, जो कि, चन्द्रमाके स्थान-परिवर्तनके कारण ही होता है।

८ **समुद्रके वनस्पति**—समुद्रके वनस्पति तीन वर्ग अथवा कोटिके हैं—१ फ़ेनेरोगम्स (Phanerogams), २ ऐल्गी (Algae) और ३ बैक्टीरिया (Bacteria)।

फ़ेनेरोगैमिक वनस्पतियोंके "ज़ास्टीरेसी" कुटुम्बके वनस्पति समुद्रमें पाये जाते हैं। इस कुटुम्बके वनस्पति "ज़ास्टीरा मेरीना" (Zostera Marina) ऐटलांटिक महासागरके सुरक्षित स्थानोंके पङ्किल तथा मुलायम मिट्टीवाले तलपर अधिकतासे उगे हुए पाये जाते हैं।

समुद्री वनस्पतियोंमें ऐल्गी वर्ग, कोटि अथवा सम्प्रदायके वनस्पतियोंकी ही प्रधानता तथा आधिक्य है। यह चार प्रकारके हैं—(क) क्लोरोफ़ाइसी (Chlorophyceae) अथवा हरी ऐल्गी, (ख) सियेनोफ़ाइसी [Cyanophyceae] अथवा नीली-हरी ऐल्गी, (ग) फिओफ़ाइसी [Phaeophyceae] अथवा भूरी ऐल्गी और (घ) रोडोफ़ाइसी (Rhodophyceae) अथवा लाल ऐल्गी। इनमेंसे प्रथम दो प्रकारके वनस्पति अर्थात् हरी और नीली-हरी ऐल्गियाँ भूरी और लाल ऐल्गियोंकी अपेक्षा साधारणतः छिछले पानीमें रहती हैं। भूरी और लाल ऐल्गियाँ विशेषतः गहरे पानीमें ही रहती हैं। इन चारों कुटुम्बोंके वनस्पतियोंके अनेक रूप तथा भेद हैं। ये भिन्न भिन्न नामोंसे सम्बोधित होते हैं। भूरी ऐल्गीका एक प्रसिद्ध रूप डायटम (Diatom) है, जिसका

बाह्य रूप-रंग परम-कला-कौशलपूर्ण, चमत्कारक, आकर्षक तथा आश्चर्यजनक है। डायटम सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखे जाते हैं। ये संसार भरके समग्र ताजे और खारे जलोंमें और सभी नम अथवा शीत-प्रधान स्थानोंमें रहते हैं। यह केवल समुद्रमें ही तैरते हुए नहीं रहते; वरन दूसरी ऐल्गियों और जानवरोंपर चिपटे हुए, लगभग सभी देशोंमें, पाये जाते हैं। डायटमके भी कई भेद अथवा रूप हैं।

बेक्टीरिया (जो कि, फंगाई अथवा फंजाई (Fungi) वर्गके वनस्पतियोंसे विशेषत: मिलती-जुलती तथा सम्बन्ध रखती हैं) बहुधा संसारमें उत्पन्न हुए जीवित पदार्थोंके प्रारम्भिक रूपोंमें समझी जाती है। उसका विस्तार संसारके सभी जीवित पदार्थोंसे अधिक है; क्योंकि वह वायु, स्थल और जल, तीनोंमें ही पायी जाती है। यह वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओंके शरीरोंमें रहती है और उन्हींके शरीरोंका रस चूसकर अपना पालन-पोषण करती है। यह भी सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखी जाती है। साधारणत: यह तीन प्रकारकी बनावटकी जान पड़ती है— गोल बिन्दुके समान, छोटी छड़के समान और डोंगके समान। वैज्ञानिक अनुभवों द्वारा यह जाना गया है कि, जीवित पदार्थोंका जीवन बिना बेक्टीरियाके नहीं चल सकता; इसलिये नहीं कि, यह उन्हें उत्पन्न करती है अथवा उनकी उत्पत्तिका मूल कारण है; वरन इसलिये कि, वह जीवित पदार्थोंको जीवित रखनेके लिये आवश्यक पदार्थ पहुँचाती है। बेक्टीरिया भी अनेक प्रकारकी होती है। यह समुद्रतटके निकट तथा छिछले पानीमें अधिक होती है। मरे हुए जानवरों और सड़ते हुए वनस्पतियोंसे भी अधिकतर इसका जीवन पुष्ट होता है। गहरे तथा ठंढे पानी और खुले समुद्रोंमें इसकी कमी होती है। सतहवाले जलमें तो इसका परम बाहुल्य होता है और जहाँ ठंढी और गरम धाराएँ एक दूसरेमें मिलती हैं, वहाँ इसकी गति तीव्र हो जाती है। यद्यपि १४० डिग्रीके तापक्रमपर यह जीवित नहीं रह सकती, परन्तु यह ठंढक पहुँचाकर जमा दिये जानेपर केवल गति-शून्य हो जाती और बहुत कम तापक्रमपर भी जीवित बनी रहती है। फास्फोरेसेंट बेक्टीरिया केवल समुद्री जलमें ही पायी जाती है और मरी हुई मछलियों तथा अन्य समुद्री जीवोंमें भी रहती है।

बेक्टीरियाको छोड़कर (जिसका अस्तित्व समुद्रकी अधिक गहराइयों तक पाया जाता है और समुद्रतल तक भी किसी-न-किसी न्यून मात्रामें अनुमान किया जाता है) समुद्रके प्रधान वनस्पति ३००० और अधिक-से-अधिक चार हजार फीटकी गहराइयों तक साधारणतः पाये जाते हैं। तीन हजार फीट या उससे कुछ ही अधिक गहराई तक प्रकाशकी किरणें भी पहुँचती हैं। समग्र समुद्रजलकी इस बाहरी तहको सूर्य-प्रकाश पानेके कारण "प्रकाश-क्षेत्र" (Photic Zone) कहते हैं। प्रकाश-क्षेत्रके नीचे सिवा बेक्टीरियाके वनस्पतियोंका पूर्ण अभाव है।

६ समुद्रके जीव-जन्तु — जिस प्रकार पृथ्वीपर अनेक प्रकारके जीव-जन्तु पाये जाते हैं, उसी प्रकार सैकड़ों प्रकारके जीव-जन्तु सागरके प्रत्येक भागमें और प्रत्येक गहराईपर पाये जाते हैं (६ मील अथवा उससे अधिक गहरे समुद्रतलपर भी ये पाये जाते हैं, जहाँ सूर्यके प्रकाशका पाँच मील या उससे कुछ अधिक ऊपर तक पूर्ण अभाव पाया जाता है)। समुद्रकी अधिक गहराई और जीव-जगत्‌के विशाल विस्तार तथा व्यापकताको देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि, भूभागोंकी अपेक्षा समुद्रोंमें जीवित पदार्थोंकी सम्पूर्ण मात्रा बहुत अधिक है।

समुद्री जीव-जन्तु दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं—एक वे, जिनका लहू साधारणतः गरम होता है और दूसरे वे, जिनका लहू साधारणतः ठंढा होता है। गरम लहूवाले जीव-जन्तुओंमें मैमल वर्गके वे सभी समुद्री जानवर सम्मिलित हैं, जो साँस लेते अथवा साँस द्वारा वायु-सेवन करते हैं; उदाहरणार्थ ह्वेल (Whale), पारप्वायज (Porpoise), डाल्फिन (Dolphin), सील (Se l), वालरस

(Walrus) इत्यादि जानवरोंका नामोल्लेख किया जा सकता है। मैमल वर्गके इन समुद्री जानवरोंके लहूका तापक्रम ९८डिगरीसे १०४ डिगरी फैहरन हीट तक पाया जाता है और (चाहे वे ध्रुव-प्रदेशोंके ठंडे जलमें रहते हों या भूमध्यरेखाके निकटवर्ती गरम जलके समुद्रोंमें रहते हों) उनही होता है, जितना उस जलका, जिसमें वे रहते हैं या उससे कुछ ही अधिक। इस वर्ग अथवा कोटिमें मछलियाँ और वे सब जानवर हैं, जिनमें रीढ़की हड्डी नहीं होती (Invertebrates)। तापक्रमकी दृष्टिसे टनी मछली (Tunny-fish) इस नियमका अपवाद है; क्योंकि जिस
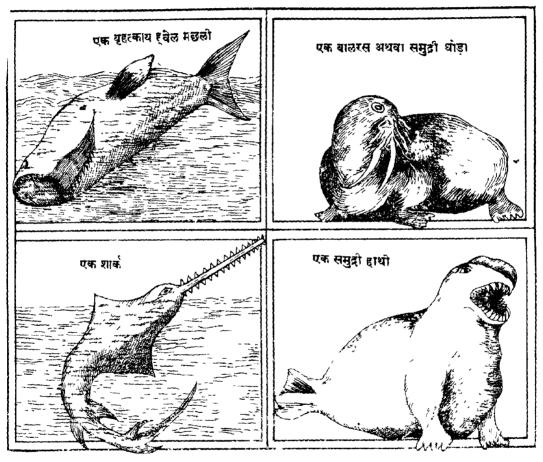
समुद्रके मनोरञ्जक जीव-जन्तु

का तापक्रम साधारणतः बिलकुल एक समान अर्थात् अपरिवर्तित रहता है, जैसे कि, हम लोगोंके लहूका तापक्रम भी सभी ऋतुओंमें अपरिवर्तित अर्थात् एक समान रहता है।

समुद्री जीव-जन्तु अधिकतर दूसरी श्रेणीके अर्थात् ठंढे लहूवाले होते हैं। उनके लहूका तापक्रम साधारणतः उतना

जलमें वह रहती है, उसके तापक्रमकी अपेक्षा इसका तापक्रम कभी-कभी ६ डिगरी फैहरन हीट अधिक तक पाया जाता है।

समुद्री जानवरोंको उनके रहन-सहनकी दृष्टिसे भी दो भागोंमें बाँटा जा सकता है—(क) एक वे, जिन्हें

हम "समुद्रतल-द्वेषी" (Plankton) ※ कह सकते हैं; क्योंकि वे समुद्रकी सतह, सतहके पास और मध्यवर्ती जलमें रहते हैं और [ख] दूसरे वे, जिन्हें हम समुद्रतलप्रेमी (Benthos) ※ कह सकते हैं; क्योंकि या तो वे समुद्तलपर चिपटे रहते अथवा सटे रहते हैं या वे समुद्तलपर रेंगते अथवा चलते-फिरते रहते हैं।

(क) "समुद्रतलद्वेषी" श्रेणीके जीवोंमें लगभग सभी वर्गों, उपवर्गों तथा कुटुम्बोंके समुद्री जानवर पाये जाते हैं, चाहे वे ठंढे जलोंमें रहते हों, चाहे गरम जलोंमें; उदाहरणार्थ रेप्टाइल्स (Reptiles) (अर्थात् साधारणतः रेंगनेवाले सर्प इत्यादि), मछलियाँ, ट्यु निकेट (Tunicate), क्रस्टेशिया (Crustacea), घोंघे और शंख (Mollases), कीड़े-मकोड़े, सीलनट्रेट (Coelenterate) और प्रोटोजाआ (Protozoa) का उल्लेख किया जा सकता है। स्पंजी जीवोंका अभाव है और यचीनोडर्म (Echinoderm) जीवोंमें एक मात्र पिलेजोथुरिया (Pelagothuria) पाया जाता है।

प्रोटोजोआ-कुटुम्बके जीवोंका (फारेमिनिफिरा और रेडियोलेरियाका) समुद्रतल-द्वेषी जीवोंमें प्रधानत्व है; क्योंकि वे परम लघु तथा नन्हें होनेपर भी गरम और साधारण तापक्रमवाले समुद्रोंमें अगणित संख्यामें पाये जाते हैं, जिनके कड़े खोल और खखड़ियाँ अनेक सागरोंमें, लाखों मीलके क्षेत्रोंमें, समुद्रतलपर, बिछी हुई हैं।

समुद्री जीवोंमें सम्भवतः क्रस्टेशिया-कुटुम्बके जीव सब जीवोंसे अधिक पाये जाते हैं, विशेषकर कोपीपोडा और ऐम्फीपोडा।

मोलस्क कुटुम्बके (हीटिरोपोड और टीरीपोड) जीव समुद्रके गरम भागोंमें ही विशेषतः रहते हैं।

ट्यु निकेट कुटुम्बके जीव (सैल्पा, डोलियोलम, पाइरोजोमा, अप्पेंडीकुलेरिया) समुद्रतल-द्वेषी श्रेणीके समुद्री जीवोंमें प्रमुख हैं। मछलियाँ और सिफेलोपोडा कुटुम्बके तैरनेवाले जीव समुद्रमें बहुत हैं और समुद्री जीवोंमें प्रधान जीवोंमेंसे हैं।

(ख) समुद्रतलप्रेमी (Benthos) श्रेणीके जीवोंका आधिक्य समुद्र-तटस्थ जलमें पाया जाता है और समुद्रतटसे दूर जानेपर तथा अधिक गहराईपर उनकी न्यूनता पायी जाती है। इन जीवोंमें सबसे अधिक प्रकारके जीवोंका बाहुल्य सम्भवतः भूमध्यक्षेत्र (Tropical region) के छिछले जलोंमें, विशेषतः भूभागों और मूँगेसे बनी हुई चट्टानोंके निकट, पाया जाता है। इस श्रेणीमें जिन जीवोंकी गणना होती है, उनके नाम ये हैं—स्पंज, हाइड्रायड, ब्राइओजोआन, मेरपुलिड, एक्टीनियन, एल्सीडीनियन, मजेल, एस्टेरिड, स्पेटैंजिड, वर्मस, क्रस्टेशिया, लैन्सलेट, सैंड-ईल, कोरल अर्थात् मूँगा, गार्गोनिड, एल्सयोनेरियन, चिटान, ब्रैकियोपोड, ब्रिटिलस्टार, स्टार—फिश अर्थात् तारा-रूपी मछली, एचीनिड, क्रिनाइड, हालोथूरियन, राइजोपोड, स्कैफोपोड और पेक्टाटुलिड इत्यादि।

अनेक समुद्री जानवरोंके शरीर भिन्न-भिन्न प्रकारके रंगोंके होते हैं, जिनके कारणका सूर्यके प्रकाशकी भिन्न-भिन्न मात्राओंका भिन्न-भिन्न गहराइयोंपर पहुँचनेसे सम्बन्ध जान पड़ता है। गहरे जलोंके जीवोंमें साधारणतः गहरा अर्थात् गाढ़ा रंग पाया जाता है।

※ प्लैंकटन (Plankton) और बेन्थाज (Benthos) को मैंने अपनी निजी परिभाषामें क्रमानुसार "समुद्रतलद्वेषी" और "समुद्रतल-प्रेमी" कहा है। उक्त विदेशी शब्दों अथवा पारिभाषिक शब्दोंके मेरे बनाये ये पारिभषिक शब्द ठीक ठीक उल्था भले ही न हों; परन्तु निस्सन्देह वे ठीक-ठीक तात्पर्य-सूचक पर्यायवाची पारिभाषिक शब्द बन सके हैं। अर्थकी दृष्टिसे उल्था कर पारिभाषिक शब्दोंकी रचना करनेमें बहुधा तात्पर्य ठीक-ठीक व्यक्त नहीं किया जा सकता, जिससे अर्थका अनर्थ हो जानेकी सम्भावना रहती है और पारिभाषिक शब्द भी सुन्दर नहीं बन पाते।

लगभग सभी प्रकारके समुद्री जीवोंमें किसी-न-किसी मात्रामें फास्फोरेसेंट प्रकाश पाया जाता है, यद्यपि ताजे जलके जीवों तथा वनस्पतियोंमें इसका पूर्ण अभाव पाया जाता है। समुद्री जीवोंमें फास्फोरेसेंट अङ्गोंका विकास तथा वृद्धि ठंढे जलकी अपेक्षा गरम जलमें अधिक पायी जाती है।

साधारणतः बड़े आकारके जीव गहरे जलमें और छोटे आकारके जीव छिछले जलमें पाये जाते हैं। यहाँतक कि, एक ही प्रकार अर्थात् एक ही नस्लके जीव, जो गहरे जलमें पाये जाते हैं, बड़े आकारके हैं; परन्तु उसी नस्लके जीव, जो छिछले या कम गहरे पानीमें पाये जाते हैं, छोटे आकारके हैं। समुद्रके वृहत्काय जीव पृथिवीके बड़े-से-बड़े

समुद्रके मनोरञ्जक जीव-जन्तु

जीव अर्थात् हाथी और ऊँट इत्यादिसे कई गुने बड़े और भारी होते हैं। उनमें वनस्पति-भक्षक और मांसाहारी, दोनों ही प्रकारके जीव होते हैं।
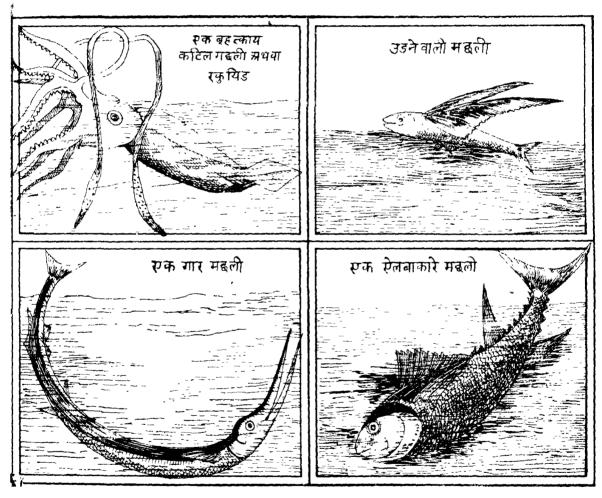
समुद्री जानवरोंकी आँखोंकी बनावटका सम्बन्ध सूर्यके प्रकाशकी पहुँच तथा फास्फोरेसेंट प्रकाशसे है। कम गहराई अर्थात् अधिक प्रकाशके भागमें रहनेवाले जीवोंकी आँखें कम प्रकाशके भागोंमें अर्थात् अधिक गहराईपर रहनेवाले जीवोंकी अपेक्षा बड़े आकारकी होती हैं।

गरम जलमें नीचेके ठंडे जलोंकी अपेक्षा जानवर तेजी गतिसे डूबते हैं; इसलिये उनके शरीरमें आवश्यकतानुसार

भिन्न-भिन्न प्रकारके तैरनेवाले प्राकृतिक साधनों तथा यन्त्रोंका विकास हुआ है। इन साधनोंमें शरीरसे चर्बी और तेलका निकलना, हवासे भरी हुई झिल्लियाँ, शरीरका छोटा हो जाना, शरीरकी बनावटमें विशेष प्रकारके परिवर्तन हो जाना और भिन्न-भिन्न प्रकारके अङ्गोंका उत्पन्न हो जाना इत्यादि सम्मिलित हैं।

१० समुद्रतल—पृथिवीके बाहरी भूभागके समान ही समुद्रतल भी नीचा-ऊँचा तथा ऊबड़-खाबड़ है। समग्र गहरे समुद्रोंके समुद्र-तल भिन्न-भिन्न प्रकारकी खादर * अथवा खादसे (जो कि, असंख्य जीवोंके खोलों तथा खखड़ियों [Shells and Skeletons] के चूर्णसे बनी हुई होती हैं) ढका हुआ है। भिन्न-भिन्न भागोंमें विशेष-विशेष प्रकारके जीवोंका निवास तथा बाहुल्य होनेके कारण यह खादर (ooze)* अथवा खाद भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती है। छिछले अथवा कम गहरे समुद्रोंके समुद्र-तल, जो समुद्रतटोंके निकट पड़ते हैं, साधारणतः पत्थरके टुकड़ों, बालू और भूभागोंके समुद्रतटोंसे प्राप्त भिन्न-भिन्न प्रकारकी मिट्टियोंसे बने हुए कीचड़से ढके हुए हैं। गहरे समुद्रतलोंपर अन्धकारका पूर्ण साम्राज्य है और ठंडक बर्फके समान है।

विद्युत्‌के विकासका इतिहास

श्रीयुत ललितकिशोर सिंह एम० एस-सी०

विद्युत्‌का प्रकृत विकास गत तीन शताब्दियोंमें ही हुआ है; और, इन्हीं तीन शताब्दियोंमें यह विषय इतना उन्नत और व्यापक हो गया है, जितना विज्ञानका कोई भी दूसरा अङ्ग नहीं हो सका। एक ओर तो उपपत्ति-कल्पना और निर्णयात्मक प्रयोगके संयोगसे विद्युत् इस सचराचर सृष्टिका एकमात्र उपादान बन गयी है; दूसरी ओर, संसार-व्यवहारमें इसने ऐसा चमत्कार दिखाया है कि, आज मानव-समाजकी सुख-समृद्धिका प्रधान साधन इसीको कहें, तो अत्युक्ति न होगी।

विद्युच्छास्त्रके इतिहासपर विचार करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि, प्राचीन कालमें विद्युत्-सम्बन्धी ज्ञानकी विशेष वृद्धि नहीं हुई थी। कहा जाता है कि, माइलेटस-निवासी थेल्सने (६२४-५४७) ई० पूर्व (जो ग्रीसके सात सन्तोंमेंसे एक माना जाता था) निरीक्षण किया कि, एम्बर (तृणमणि) को रगड़नेसे उसमें छोटी-छोटी हल्की चीजोंको अपनी ओर खींच लेनेकी क्षमता आ जाती है। इसकी उत्पत्तिमें उसने युक्तियाँ भी लगायीं, जिनकी चर्चा एरिस्टाटलने की है।

इसके अतिरिक्त इसका प्रसंग ग्रीसवासी थेओफ्रेस्टस (३२१ ई० पू०) और चीनी वैज्ञानिक कुओफो (४ थी शताब्दी) के लेखोंमें भी मिलता है। फारसीमें एम्बरको काम्बा (तिनकोंका आकर्षण) और चुम्बकको अहाम्बा (लोहेका आकर्षण) कहते हैं। इससे यह अनुमान निकलता है कि,

---

* Ooze के लिये "खादर" शब्द मेरी निजी परिभाषा है। साधारण खादसे एक प्रकारकी विशेषता सूचित करनेके लिये ही ऐसा किया गया है; क्योंकि 'खादर' से तात्पर्य केवल उसी खादसे है, जो जीवोंके कड़े खोलों तथा खखड़ियों अर्थात् हड्डियोंसे बनी हुई हो और साधारण खादमें मिट्टी, गोबर, मल-मूत्र तथा वनस्पति इत्यादि अनेक प्रकारकी सड़ी-गली चीजोंका मिश्रण रहता है।—लेखक।

फारसमें भी विद्युत्-सम्बन्धिनी सामान्य धारणा प्रचलित थी; किन्तु प्राचीन कालमें वैज्ञानिक प्रयोगोंके नितान्त अभाव और तत्त्वदर्शियोंके दार्शनिक ऊहापोहके कारण विद्युत्-शास्त्रका विकास लगभग दो हजार वर्षों तक रुका रहा।

सोलहवीं सदीमें विद्युद्-विषयक अनुसन्धानका श्रीगणेश महारानी एलिजाबेथके राजवैद्य विलियम गिलबर्टने (१५४०–१६०३ ई०) किया। उसने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि, घर्षणके अनन्तर आकर्षण-शक्ति केवल एम्बरमें ही नहीं पैदा होती—यह गुण अनेक द्रव्योंमें पाया जाता है; जैसे, हीरा, नीलम, ओपल, नमक, अबरख, फिटकरी आदि। ऐसे द्रव्योंका नाम उसने "एलेक्ट्रिक्स" (वैद्युत द्रव्य) रखा। उसने यह भी देखा कि, नमीसे घर्षण द्वारा विद्युत् पैदा करनेमें कठिनाई होती है और तापसे विद्युत् का क्षय होता है। उसने बताया कि, चुम्बक केवल अयोधातु (लोहा, इस्पात) को ही आकर्षित करता है; पर घर्षणसे आविष्ट वैद्युत द्रव्य सभी हलकी चीजोंको आकर्षित कर सकता है। इस प्रकार उसने चुम्बक और विद्युत्के भेदकी ओर संकेत किया।

गिल्बर्टके आविष्कारोंसे प्रोत्साहित होकर अनेक वैज्ञानिक विद्युत्के अध्ययनमें लग गये। वान गैरिकने (१६०२–१६८६ ई०) पहले पहल विद्युद्-यन्त्रका आविष्कार किया। यह यन्त्र बहुत ही सीधा-सादा था। गन्धकका एक बड़ासा गोला लकड़ीके फ्रेममें, लकड़ीकी धुरीपर, जड़ दिया गया था। इस गोलेके साथ सूखी हथेलीकी रगड़से विद्युत् पैदा की जाती थी। इस यन्त्रके द्वारा गैरिकने देखा कि, विद्युत्के उत्पादनका परिमाण बढ़नेपर विद्युत्के साथ ही साथ चटचटाहट शब्द और अनल-स्फुलिङ्ग जैसा प्रकाश भी पैदा होता है। उसने विद्युत्का, दूरसे उपपादनका, गुण भी निरीक्षण किया। गैरिकके ही सामयिक बायलने "एलेक्ट्रिक्स" की संख्या बहुत ही बढ़ा दी और यह आविष्कार किया कि, विद्युत्के आकर्षणकी क्रिया शून्यमें भी होती है। प्रायः इसी समय पिकार्डने विरल (कम दावकी) गैसोंको विद्युत् द्वारा आविष्ट करनेपर प्रकाशका आविर्भाव देखा।

स्टीफेन ग्रेने (१६६६-१७३६ ई०) परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध किया कि, विद्युत् एक वस्तुसे दूसरीमें स्थानान्तरित की जा सकती है। जिस समय वह अपना प्रयोग, एक मित्रके सहयोगमें, विस्तार-रूपसे कर रहा था, उसी समय अकस्मात् उसने निरीक्षण किया कि, विद्युत्का सञ्चार सभी पदार्थोंमें नहीं होता। इस प्रकार उसने "चालक" और "अचालक" के नामसे पदार्थोंके दो भेद किये। इसके अतिरिक्त ग्रेने यह प्रदर्शित किया कि, विद्युत्का स्थान पदार्थके बाहरका तल ही होता है; क्योंकि खोखली नलीके भीतर विद्युत्का आकर्षण नहीं पाया जाता।

ग्रेके प्रयोगके द्वारा ड्यूफे (१६९८-१७३९) इस परिणामपर पहुँचा कि, "वैद्युत द्रव्य" और "अवैद्युत द्रव्य" का भेद केवल पदार्थोंकी "चालकता" पर निर्भर है अर्थात् "वैद्युत द्रव्य" में विद्युत् का सञ्चार अधिक होता है और "अवैद्युत द्रव्य" में बहुत ही कम। दो प्रकारको विद्युत्का आविष्कार ड्यूफेका बहुत ही महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। उसने निरीक्षण किया कि, विद्युत्-आविष्ट काचसे किसी दूसरे आविष्ट काचका प्रतिसारण होता है और आविष्ट एबोनाइट या एम्बरका आकर्षण। इससे यह सिद्ध होता है कि, काचसे उत्पन्न विद्युत् एबोनाइट या एम्बरसे उत्पन्न विद्युत्से भिन्न है। पहलेका

नाम उसने 'वीट्रियस" रखा और दूसरेका "रेजि-नस"। पीछे ये ही क्रमशः "धनात्मक" और "ऋणात्मक" के नामसे प्रचलित हुए। इसी आविष्कारके आधारपर इसने विद्युतके द्वि-तरल-सिद्धान्त का प्रस्ताव किया। इसने यह भी सिद्ध किया कि, प्रत्येक पदार्थ, अनुकूल अवस्थाओंमें, विद्युत् द्वारा आविष्ट किया जा सकता है।

विद्युत्-उपपादनका आभास गेरिकने पाया था; पर १७५३ ई० में जोन कैंटनने "उपपादन" का विशेष रूपसे अध्ययन किया। उसने देखा कि, यदि विद्युत्-आवेशके निकट कोई पृथगन्यस्त पदार्थ हो, तो उसमें दोनो प्रकारकी विद्युत् प्रकट होती है—आवेशके निकट विषम विद्युत् और उसकी दूसरी ओर सम विद्युत्। यदि इसी दशामें, इस पदार्थको हाथसे छू दें, तो पदार्थमें विषम विद्युत् रह जाती और सम विद्युत् लुप्त हो जाती है।

घर्षण-यन्त्रसे निकले हुए शब्द और स्फुलिङ्गके आधारपर बेंजामिन फ्रैंकलिनने (१७०६-१७९०) यह कल्पना की कि, सम्भवतः 'तड़ित' (आसमानी बिजली) एक विशाल विद्युत्-स्फुलिङ्ग है। यह धारणा इससे पहले भी कई वैज्ञानिकोंकी थी; पर इसीने पहले पहल "तड़ित्" की स्पष्ट उपपत्ति सामने रखी और प्रयोग द्वारा उस उपपत्तिको सिद्ध कर दिखाया। इस सम्बन्धमें फ्रैंकलिनका पतङ्ग-प्रयोग प्रसिद्ध है। इसने, कागजकी जगह, रेशमी कपड़ेका एक पतङ्ग इस लिये बनाया कि, वह पानीसे नष्ट न होने पावे। उस पतङ्गमें धातुकी एक नोकीली सींक लगा दी, जिसके द्वारा विद्युत सञ्चित की जा सके। पतङ्गके धागेमें इसने चाँदीका महीन तार लपेट दिया, जिससे विद्युतका सञ्चालन आसानीसे हो सके। जिस समय आँधी—पानीके साथ आसमानमें बिजली कड़क रही थी, इसने अपना पतङ्ग उड़ाया। जब पतङ्ग मेघोंके स्पर्शमें आया, तो धागेके निचले छोरसे लगी हुई कुंजीसे स्फुलिङ्ग निकलने लगा। इस स्फुलिङ्गके साथ प्रयोग करके फ्रैंकलिनने यह निर्विवाद सिद्ध कर दिया कि, "तड़ित्" विद्युत् स्फुलिङ्गको छोड़ कर और कुछ नहीं है। इसी प्रयोगके कारण फ्रैंकलिनकी मूर्त्तिपर यह लेख पाया जाता है—"इसने मेघोंसे बिजली छीन ली और अनियन्त्रित शासकके हाथसे राज-दण्ड!"

फ्रैंकलिनने इस आविष्कारके बाद ही "तड़ित्-चालक" की कल्पना की, जिसके द्वारा आज बिजलीसे बड़ी-बड़ी इमारतोंकी रक्षा होती है।

फ्रैंकलिनके समयमें यह कल्पना प्रचलित थी कि, प्रत्येक पदार्थमें दो प्रकारके अति-सूक्ष्म, भार-हीन विद्युत्-तारल्य सदा वर्तमान रहते हैं। साधारणतः ये दोनों तारल्य बराबर मात्रामें रहते हैं; इसीसे पदार्थमें विद्युत्का आभास नहीं मिलता। जब एक प्रकारका तारल्य दूसरे प्रकारके तारल्यसे अधिक हो जाता है, तब पदार्थ उसी प्रकारके विद्युत्से आविष्ट दीखता है। यह अतिरिक्त विद्युत दूसरे पदार्थके संघर्षसे आती है। ये दोनों तारल्य अलग-अलग भी किये जा सकते हैं। इस कल्पनाके द्वारा विद्युत्के दो भेद, उसका एक पदार्थसे दूसरेमें प्रवेश करना और उपपादन, ये सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। फ्रैंकलिनने इस कल्पनामें एक विशेष सुधार किया। उसने यह मत प्रकट किया कि, साथ-साथ रहनेवाले दो प्रकारके परस्पर-विरोधी तारल्योंकी कल्पना निरर्थक है; एक ही प्रकारकी धनात्मक तरलताकी कल्पनासे भौतिक घटनाओंकी पूरी व्याख्या हो जाती है। दूसरी तरलताका स्थान द्रव्य ले लेता है। इस कल्पनाकी सार्थकता आधुनिक "एलेक्ट्रोन सिद्धान्त" से प्रकट होती है।

अबतक विद्युत्के प्रभाव और गुणके सम्बन्धमें

ही प्रयोग हो रहे थे; विद्युत्‌के मापनेकी ओर वैज्ञानिकोंका ध्यान नहीं गया था। १७८५ ई० में कूलम्ब (१७३६-१८०६) इस ओर अग्रसर हुआ। उसने अपने ऐंठनतुला (Torsion balance) का उपयोग करके विद्युत्-आवेश और चुम्बकीय ध्रुवोंके पारस्परिक आकर्षणका नियम आविष्कृत किया। उसने आकर्षणका बल नापकर सिद्ध किया कि, दो विद्युत्-आवेश या चुम्बकीय ध्रुवोंका पारस्परिक आकर्षण-बल दोनोंके बीचकी दूरीके उत्क्रम-वर्गका अनुपाती होता है। इसको "उत्क्रम-वर्ग-नियम" कहते हैं। इससे पहले ही कैवेंडिशने इस नियमका आविष्कार किया था; पर उसने इसे प्रकाशित नहीं किया। पीछे १८७९ ई० में मैक्सवेलने उसकी पाण्डुलिपियोंमेंसे ढूँढ़कर इसे प्रकाशित किया। कूलम्बकी कृतिके आधारपर लैप लास, लायोट, पोइस्प आदिने इस विषयकी गणनाको बहुत ही परिवर्धित किया और बहुत-सी समस्याओंको हल करनेमें इसका उपयोग किया।

लगभग इसी समय एक ऐसा आविष्कार हुआ, जिससे विद्युत्‌के इतिहासमें एक नये युगका उपक्रम हुआ। अबतक केवल घर्षणसे ही विद्युत् उत्पन्न की जाती थी; पर इस आविष्कारने विद्युत् उत्पन्न करनेका नया साधन प्रकट कर दिया। बोलोग्नाके आचार्य गैल्वेनीने यह देखा कि, हालके मरे हुए मेढ़कके पाँव घर्षण-विद्युत्‌से सङ्कुचित हो जाते हैं। वह यह देखना चाहता था कि, इसपर तड़ित्‌का भी कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं? इस अभिप्रायसे १७९० ई० में वह मेढ़कको ताँबेके काँटेके सहारे लोहेकी रेलिंगसे लटका रहा था। अकस्मात् उसने देखा कि, ताँबेका स्पर्श लोहेसे होते ही मेढ़कके पाँवोंमें पहलेसा ही सङ्कोच होता है। इस आकस्मिक घटनाको देखते ही गैल्वेनीने यह अनुमान किया कि, इसका कारण जीवस्थ विद्युत् है। गैल्वेनीके प्रयोगको १८०० ई० में वोल्टाने (१७४५-१८२७ ई०) फिरसे किया और फलकी विवेचनाके द्वारा इस परिणामपर पहुँचा कि, इस सङ्कोचका कारण जीवस्थ विद्युत् नहीं है; वरन दो भिन्न धातुओंके स्पर्शसे उत्पन्न विद्युत् है। उसने ताँबे और जस्तेकी गोल पट्टियोंके बीच कपड़ेका टुकड़ा, गन्धकके हलके तेजाबमें भिँगोकर, फैला दिया और इस प्रकारकी बहुतसी जोड़ियाँ यथाक्रम एक-पर-एक जमा कर दीं। इस समूहकी नीचे और ऊपरवाली ताँबे और जस्तेकी पट्टियोंमें दो तार लगाकर जब इनके दोनों छोरोंको वह पास पास लाया, तो विद्युत्-स्फुलिङ्गका आविर्भाव हुआ। यही पट्टियोंका समुदाय "वोल्टेक पाइल"के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसमें एक त्रुटि यह थी कि, तेजाबके सूख जानेपर इसकी क्रिया बन्द हो जाती थी; इसलिये वोल्टाने ताँबे और जस्तेकी पट्टियोंको उपर्युक्त तेजाबसे भरे हुए बर्तनमें डाल दिया, जिससे तेजाबके जल्द सूख जानेका डर जाता रहा। इस उपकरणका नाम "वोल्टेक सेल" पड़ा। कालक्रमसे इसमें अनेक सुधार हुए और अनेक प्रकारके सेल और बैटरियाँ तैयार हुईं, जिनकी चर्चा विस्तार-भयसे यहाँ नहीं की जायगी।

"वोल्टेक सेल"से उत्पन्न विद्युत्‌में और घर्षणसे उत्पन्न विद्युत्‌में यह भेद पाया गया कि, घर्षण-विद्युत्‌का आवेश हाथके या भूमिसे लगे हुए किसी चालकके स्पर्शसे क्षण मात्रमें ही लुप्त हो जाता है; पर वोल्टेक-सेलसे प्राप्त विद्युत्‌की क्रिया लगातार बनी रहती है, मानों विद्युत्-आवेश का निरन्तर प्रवाह हो। इसीसे इसको "विद्युत्-धारा" कहा जाने लगा। साथ-ही-साथ इन दोनोंके गुण और कार्यकी समतासे यह मानना

पड़ा कि, दोनोंकी प्रकृतिमें कोई भेद नहीं, केवल अवस्थाका भेद है। एक आवेश स्थितिकी अवस्थामें है, दूसरी गतिकी अवस्थामें; जैसे तालाबका जल और नदीकी धारा। अब यह सोचनेकी बात है कि, स्थिर जलकी अपेक्षा जल-प्रवाहमें कितनी अधिक शक्ति सन्निहित है। इसीसे यह आविष्कार युग-प्रवर्त्तक आविष्कार समझा जाता है।

इस नयी रीतिसे प्राप्त विद्युत्-धाराका उपयोग पहले पहल द्रव्योंके विश्लेषणमें हुआ। सन् १८०० ई० में निकाल्सनने (१७५३-१८१५ ई०) जलमें विद्युद्धाराका सञ्चार करके हाइड्रोजन और आक्सीजनका उद्भव निरीक्षण किया। १८०७ ई० में डेवीने सोडा और पोटाशका विश्लेषण करके सोडियम और पोटाशियम तत्त्वोंका आविष्कार किया। इस प्रकार अनेक द्रव्य, जो मौलिक माने जाते थे, विद्युद्-धाराके प्रयोगसे यौगिक सिद्ध हुए।

उन्नीसवीं सदीके आरम्भमें बहुतसे वैज्ञानिक विद्युत् और चुम्बककी क्रियाके साम्यको देखकर इन दोनोंके सम्बन्धका अन्वेषण कर रहे थे। अन्तमें ओर्स्टेड (१७७७-१८५१) इस अन्वेषणमें सफल हुआ। उसने १८२० ई० में निरीक्षण किया कि, वोल्टेक बैटरीके दोनों पट तारसे जोड़ देनेपर उसके निकट रखी हुई चुम्बकीय सूई घूम जाती है। इस घटनाका यह निष्कर्ष हुआ कि, गतिकी अवस्थामें विद्युत्में चुम्बकके गुण आ जाते हैं। कहा जाता है कि, यह आविष्कार भी आकस्मिक ही था; पर इस प्रकारकी आकस्मिक घटनाएँ प्रतिभाशाली आविष्कर्ताओंका ही ध्यान आकर्षित करती हैं—बलवान् मस्तिष्कमें ही स्फूर्ति पैदा करती हैं।

इस आविष्कारके कुछ ही महीनों बाद अम्पेयरने (१७७५-१८३६ ई०) यह निरीक्षण किया कि, जैसे विद्युद्-धारा और चुम्बकके बीच सञ्चालन-बल होता है, वैसे ही विद्युद्-धारा-वाहिका दो कुण्डलियोंके बीच भी होता है। यदि दोनों कुण्डलियोंमें धाराएँ परस्पर विपरीत दिशामें हों, तो आकर्षण होता है और एक ही दिशामें हों, तो प्रतिसारण। धारा-वाहिका कुण्डली और चुम्बकके प्रभावकी समताका विचार करके वह इस धारणापर पहुँचा कि, चुम्बकत्वका कारण अनुगत "विद्युद्-धारा" है।

अम्पेयरने बड़े ही कौशलके साथ अनेक प्रयोग किये और अपने प्रयोगोंके परिणामोंको गम्भीर विवेचनाके पश्चात्, गणित-शास्त्रके आधारपर, खड़ा किया। उसकी प्रयोगकी कुशलता और विवेचनाकी प्रौढ़ता देखकर ही मैक्सवेलने उसे "विद्युद्-शास्त्रका न्यूटन" कहा है।

ओर्स्टेडके आविष्कारका अनुशीलन करके १८२१ ई० में फैरेडेने (१७९१-१८६७) विद्युत् मोटरका, बीज-रूपमें, आविष्कार किया। उसने एक उथले बर्तनके पेंदेमें मोम चिपकाकर उसमें पारा भर दिया और एक चुम्बक उस मोममें इस प्रकार गाड़ा कि, उसका कुछ अंश पारेके बाहर रहे। फिर एक तारके निचले छोरमें एक काग अटका कर पारेके ऊपरी तलपर छोड़ दिया। काग पारेके ऊपर उतराता रहा, जिससे तारका स्पर्श पारेसे सदा बना रहता था। इस प्रकारकी योजना करके उसने तारमें विद्युद्-धाराका सञ्चार किया। जब तक विद्युद्-धाराका सञ्चार होता रहा, तबतक तार चुम्बकके चारों ओर घूमता रहा। इसीका विकसित रूप आज विद्युत् मोटरके नामसे पंखे, बड़ी-से-बड़ी कलें, ट्राम गाड़ी आदि चलानेमें हमारे काम आ रहा है।

१८३१ ई० में फैरेडेने इससे भी अधिक मह-

त्वका आविष्कार किया, जिसने संसारके व्यावसायिक जीवनमें क्रान्ति पैदा कर दी। चुम्बक अपने समीपके लोहेमें चुम्बकत्व पैदा करता है। इसे "उपपादन" कहते हैं। यह उपपादन स्थिर विद्युत्‌में भी पाया जाता है। फैरेडेने सोचा कि, इसी प्रकार विद्युद्-धाराका उपपादन भी हो सकता है। इस उद्देश्यसे किये गये अनेक प्रयोगोंके विफल होनेपर उसे अन्तमें सफलता मिली। उसने देखा कि, एक बद्ध कुण्डलीके निकट, जिसमें धारा-मापक लगा हो, किसी दूसरी कुण्डलीमें बेटरीसे विद्युद्-धारा प्रवाहित की जाय, तो जिस समय इस दूसरी कुण्डलीमें धारा शुरू होती है या जिस समय धारा काट दी जाती है, उस समय पहली कुण्डलीके धारा मापककी सूई घूम जाती है अर्थात् उस कुण्डलीमें क्षणिक धारा आपसे आप प्रवाहित होने लगती है। पीछे उसने यह भी निरीक्षण किया कि, तारके वेष्टनमें चुम्बक डालने या निकालनेके समय उसमें धारा प्रवाहित होती है अर्थात् वेष्टनके भीतर चुम्बकके सञ्चालनसे ही धाराका उपपादन होता है—स्थितिसे नहीं।

फैरेडेने चुम्बकके दो विपरीत ध्रुवोंके बीच एक ताँबेकी गोल पट्टी धुरीपर जमायी और एक तारसे पट्टीको धुरीसे जोड़ दिया। अब पट्टीको घुमानेसे तारमें विद्युद्-धारा चलने लगी। इसीका विकसित रूप "डायनेमो" हुआ, जो विद्युत्-शक्ति पैदा करनेका सबसे बड़ा साधन है। यह बड़ी रोचक बात है कि, जिस फैरेडेने बाल्यावस्था दरिद्रतामें बितायी, युवावस्थाके आरम्भमें दफ्तरीका काम किया और प्रौढ़ावस्थामें धनको पाँवोंसे ठुकरा दिया, उसने संसारकी सम्पत्ति बढ़ानेवाले सबसे बड़े उपकरणकी सृष्टि की।

फैरेडेने केवल इन अतीव उपयोगी उपकरणोंका ही निर्माण नहीं किया; उसने विद्युत्-चुम्बकीय प्रभावका यथार्थ ज्ञान और उसकी सुबोध उपपत्तिके अनुसन्धानको भी आगे बढ़ाया। अम्पेयर जैसे गणितज्ञोंको तो इतनेसे ही सन्तोष हो सकता है कि, उन्होंने विद्युत् या चुम्बकके आकर्षण-प्रतिसारणका नियम जान कर उसे गणितकी भाषामें प्रकट कर लिया। किन्तु फैरेडे, जिसका गणितमें अधिक प्रवेश नहीं था, यह प्रत्यक्ष रूपसे जानना चाहता था कि, दूर-दूर रखी हुई वस्तुओंमें, बिना किसी स्थूल सम्पर्कके, आकर्षण या प्रतिसारणकी क्रिया कैसे घटित होती है और अलगसे ही विद्युत्, चुम्बकत्व या विद्युद्-धाराका उपपादन कैसे होता है? वह विवेचना द्वारा इस परिणामपर पहुँचा कि, ये क्रियाएँ तभी सम्भव हो सकती हैं, जब बीचका आकाश या माध्यम भी सहायक हो। उसने कल्पना की कि, एक प्रकारका व्यापक माध्यम समस्त आकाशमें फैला हुआ है। विद्युत्-आवेश या चुम्बक अपने चारों ओरके इस माध्यममें खिँचाव पैदा करता है और वह खिंचाव चारों ओर फैलकर दूसरे पदार्थोंपर असर डालता है। जैसे, एक फैली हुई चादरको, बीचमें, मुट्ठीसे दबावें, तो सारी चादरमें खिंचावका असर होगा। आकर्षण और प्रतिसारणकी क्रिया सीधी रेखामें देखकर उसने यह भी कल्पना की कि, जैसे चादरका खिंचाव धागोंके द्वारा फैलता है, वैसे ही चुम्बक या विद्युत्‌का प्रभाव असंख्य बल-रेखाओं द्वारा सञ्चारित होता है। "बल-रेखाओं" की यह कल्पना आगे चलकर बड़े महत्त्वकी सिद्ध हुई; क्योंकि इसीके आधारपर मैक्सवेलने एक बड़े ही गवेषणापूर्ण सिद्धान्तका निरूपण किया, जो तत्त्व और व्यवहारकी दृष्टिसे बहुमूल्य है और जो मैक्सवेलकी विलक्षण प्रतिभाका परिचायक है।

यह बताया जा चुका है कि, फैरेडेकी धारणाके अनुसार विद्युत्-आवेशकी तीव्रता माध्यममें, एक नियत दिशामें, खिंचाव पैदा करती है। मैक्सवेलने (१८३१-१८७९) इस धारणाको थोड़ा और आगे बढ़ाया। उसने कल्पना की कि, सभी प्रकारके माध्यममें, चाहे वह ताँबेकी नाईं चालक हो या काचकी नाईं अचालक हो या शून्य हो, विद्युत्-आवेशकी तीव्रता विद्युत्-स्थानान्तर पैदा करती है। भेद इतना ही है कि, अचालक और शून्यमें विद्युत्-स्थानान्तर अधिक नहीं होता—तीव्रताकी दिशामें बहुत ही थोड़ा और क्षणिक होता है। इस विद्युत्-स्थानान्तरके परिमाणमें रीतिमान् परिवर्तनसे नियत विद्युद्-धारा पैदा होती है। इस प्रकार मैक्सवेलने दो भाँतिकी विद्युद्-धाराओंकी कल्पना की। एक वह, जो चालकमें चलती है और दूसरी वह, जो अचालक या शून्यमें चलती है। पिछलीका नाम उसने "स्थानान्तर-धारा" रखा।

अम्पेयरने विद्युद्-धारा और उससे उत्पन्न चुम्बकीय बलका और फैरेडेने बल-रेखाओंकी संख्याके न्यूनत्वाधिक्य और इससे उत्पन्न विद्युद्-धाराका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया था। मैक्सवेलने सोचा कि, ये नियम "स्थानान्तर-धारा" में भी लगने चाहिये। इन नियमोंका स्थानान्तर-धारामें उपयोग करके गणित द्वारा वह इस परिणामपर पहुँचा कि, फैरेडे द्वारा कल्पित माध्यममें विद्युत्-चुम्बकीय बलका सञ्चार नियत वेगसे होता है। उसने इस नियत वेगका मान निकालनेका उपाय भी सोच निकाला; और, मान निकाल कर यह दिखाया कि, विद्युत्-चुम्बकीय बलके गमनका वेग प्रकाशके वेगके बराबर है। इन महत्त्वपूर्ण परिणामोंको उसने "रायल सोसाइटी" के सामने, १८६४ ई० में, प्रकाशित किया।

इससे पहले ही अनेक वैज्ञानिक इस निश्चयपर पहुँच चुके थे कि, प्रकाशका गमन "ईथर" नामक एक अति सूक्ष्म भारहीन माध्यममें, तरङ्गके रूपमें, होता है, किन्तु तरङ्गका परिमित वेग सिद्ध करनेके लिये वैज्ञानिकोंको ईथरमें ऐसे गुणोंका आरोप करना पड़ा, जिससे ईथरकी समस्या और भी जटिल हो गयी। मैक्सवेलने विद्युत्-चुम्बकीय आन्दोलन और प्रकाशके वेगोंकी समताके आधारपर दोनोंकी गतिके लिये एक ही माध्यमकी कल्पना करके इस जटिलताको आसानीसे सुलझा दिया। उसने गणितके द्वारा अपने क्षेत्रीय-समीकरणसे ही वर्त्तन, परावर्त्तन, ध्रुवीकरण आदिके सभी नियम निकालकर यह प्रदर्शित किया कि, प्रकाशको भी विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्ग मान लेनेसे माध्यमकी जटिलता तो सुलझती ही है, साथ ही साथ प्रकाशके नियमोंका भी व्यभिचार नहीं होता।

फिर भी कुछ ऐसी बे-मेल बातें रह गयी थीं, जिनसे प्रकाशके इस "विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्त" को माननेके लिये वैज्ञानिक तैयार नहीं दीखते थे। पर हर्ट्ज़ने (१८५७-१८९४) १८८७ ई० में विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्ग पैदा करके प्रत्यक्ष दिखा दिया, जिससे मैक्सवेलके सिद्धान्तकी पुष्टि हो गयी। उसने उपपादन-वेष्टनके द्वितीय वेष्टनमें स्फुलिङ्ग उत्पन्न करके विद्युत्-चुम्बकीय आन्दोलनकी सृष्टि की और धातुके तारकी एक कुण्डली बनायी, जो एक स्थानपर कटी हुई थी। इस कुण्डलीको जब उसने उपपादन-वेष्टनसे विशेष दूरीपर रखा, तब कुण्डलीके कटे हुए स्थानमें आपसे आप विद्युत्-स्फुलिङ्ग प्रकट हुआ। हर्ट्ज़ने इस विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्गके साथ प्रयोग करके परावर्त्तन, वर्त्तन आदि सारे नियम सिद्ध किये, जिन्हें मैक्सवेलने गणित द्वारा निकाला था। इस प्रकार हर्ट्ज़ने

मैक्सवेलके सिद्धान्तका निर्णय, बड़ी ही स्पष्ट रीतिसे, किया। जैसे ओर्स्टेडके आविष्कारसे चुम्बक और विद्युत्का सारूप्य सिद्ध हुआ, वैसे ही मैक्सवेल और हर्ट्जकी कृतियोंसे प्रकाश और विद्युत्के बीचका अन्तराल लुप्त हो गया।

विद्युत्-सम्बन्धी सिद्धान्तोंकी इतनी उन्नति होनेपर भी विद्युत्के भौतिक रूपकी धारणा ज्योंकी त्यों बनी रही—लोग इसे अविरल और असम्पीड्य तारल्य ही समझते रहे। फैरेडेके विद्युत्-विश्लेषण-सम्बन्धी प्रयोगोंने इस धारणाको पहले पहल आघात पहुँचाया। फैरेडेने १८३३ ई० में तनु-गन्धकाम्लका विद्युद्-धाराके द्वारा भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें विश्लेषण करके कुछ नियमोंका आविष्कार किया। क्लासियसने (१८२२-१८८८) विद्युत्-विश्लेषणकी भौतिक प्रक्रियाका स्पष्टीकरण करके इन नियमोंकी सार्थकता बतायी।

क्लासियसकी कल्पनासे परिणाम निकाला गया कि, प्रत्येक अणुके साथ नियत आवेशका संयोग रहता है। इस नियत आवेशको विद्युत्का एक परमाणु कह सकते हैं। १८७४ ई० में जोन्स्टन स्टोनीने विद्युत्की परमाणु-रूपताका, बड़ी योग्यतासे, प्रतिपादन किया और इस आवेशका मान भी निकाला। आवेशके इस परमाणुका नाम उसने "एलेक्ट्रोन" रखा। "विद्युत्-तारल्य" की धारणापर यह पहला आक्रमण हुआ।

दूसरी ओर क्रूक्स, फैरेडे आदि प्रमुख वैज्ञानिक गैसपर विद्युद्-धाराके प्रभावका अध्ययन कर रहे थे। साधारणतः गैस अचालक होती है। काचकी एक बन्द नलीमें दोनों सिरोंमें प्रविष्ट धातुकी दो सीकोंके द्वारा विद्युद्-धारा प्रवाहित करनेकी योजना की जाय, तो पहले तो गैसमें धारा नहीं चलती; पर पम्प द्वारा गैस निकाली जानेपर धीरे-धीरे गैसमें चालकता आ जाती है और नलीमें विद्युद्-धाराका मार्ग सुन्दर रंगोंके प्रकाशसे आलोकित हो जाता है। १८५९ ई० में प्लुइकरने (१८०१-१८६८) यह निरीक्षण किया कि, गैसका दाब बहुत ही कम हो जानेपर नलीके भीतर अन्धकार हो जाता है; किन्तु नलीकी दीवार प्रतिदीप्त हो उठती है। हिट्टोर्फने १८६९ ई० में देखा कि, इस अवस्थामें यदि नलीमें कोई वस्तु रखी जाय, तो ऋण द्वार (कैथोड) के सामने नलीकी दीवारपर उस वस्तुकी छाया पड़ती है, मानो कैथोडसे किसी प्रकारके प्रकाशकी किरणें निकल रही हों। लगभग इसी समय क्रूक्सने (१८३२-१९१९) दिखाया कि, नलीके भीतर अबरखकी पत्तियोंकी एक घिरनी जमा देनेसे वह घूमने लगती है और वह ऐसी दिशामें घूमती है, जैसे कैथोडसे कुछ कण निकलकर पत्तियोंपर जोर-जोरसे लगते हों। इसके साथ ही साथ यह भी पाया गया कि, नलीको चुम्बकीय क्षेत्रमें रखनेपर कैथोडके सामनेकी प्रतिदीप्ति स्थानान्तरित हो जाती है। स्थानान्तरकी दिशासे यह अनुमान किया गया कि, प्रतिदीप्तिका कारण ऋण-आविष्ट कण हैं। इन्हीं आविष्कारोंके आधारपर क्रूक्सने सङ्केत किया कि, उपर्युक्त परिणामोंको समझनेके लिये यह मानना पड़ेगा कि, कैथोडसे बड़े वेगके साथ ऋण-आविष्ट कण निकलते हैं। उसने इन कणोंके अस्तित्वको द्रव्यकी चौथी अवस्था बतायी। पर जर्मनीके हर्ट्ज आदि अनेक वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं थे। वे कैथोड-किरणको प्रकाशकी भाँति ही ईथर-तरङ्ग मानते थे। हर्ट्ज और लेनार्डने यह आविष्कार किया कि, कैथोड-किरण धातुके पतले वरकको आर-पार कर जाती है और जिस गैसके सम्पर्कमें आती है, उसे चालक बना देती है। इस आविष्कार-

से कैथोड-किरणका रूप-विषयक विवाद और भी गहन हो गया; किन्तु पेराँने १८९५ ई० में प्रयोग द्वारा कैथोड-किरणमें ऋण-आवेशका अस्तित्व सिद्ध कर दिया, जिससे क्रूकसकी धारणा सत्य निकली।

टाम्सनने १८९७ ई० में कैथोड-किरणपर विद्युत्-क्षेत्र और चुम्बकीय क्षेत्रका प्रयोग करके इसके कणोंका, व्यष्टि-रूपमें, वेग तथा आवेश और जाड्यका अनुपात निकाला। उसने देखा कि, यह अनुपात, चाहे नलीमें कोई भी गैस हो, सदा समान रहता है। आवेशको अन्य प्रयोगों द्वारा मापकर वह इस परिणामपर पहुँचा कि, एक कणका भार हाईड्रोजनके परमाणुके भारका लगभग १८००-वाँ हिस्सा है। इस छोटे कणका नाम टाम्सनने "कणिका" रखा; किन्तु पीछेके लेखकोंने जान्स्टन स्टोनीके दिये हुए नाम "एलेक्ट्रोन" का ही व्यापक रीतिसे व्यवहार किया।

टाम्सनके एलेक्ट्रोनके आविष्कारके कुछ ही दिनों बाद यह पाया गया कि, एलेक्ट्रोन भिन्न-भिन्न रीतियोंसे प्रकट किया जा सकता है। किसी धातुपर नील लोहितोत्तर प्रकाश पड़नेसे या किसी धातुको गर्म करनेसे एलेट्रोन निकलते हैं। सोडिय पोटाशियम आदिसे तो साधारण प्रकाश भी इसे प्रकट कर सकता है।

इससे पहले ही, १८९६ ई० के लगभग, लारेंजने "एलेक्ट्रोन सिद्धान्त" का निरूपण किया था। मैक्सवेलके "विद्युत्-चुम्बकीय सिद्धान्त"से प्रकाशका गमन तो स्पष्ट हो गया था; पर भिन्न-भिन्न तरङ्ग-दैर्घ्यके प्रकाशकी उत्पत्ति सिद्ध करनेका प्रयास नहीं किया गया था। लारेंजने कल्पना की कि, विशेष-विशेष तरङ्ग-दैर्घ्यका प्रकाश परमाणुओंके भीतर छोटे-छोटे विद्युत्-आवेशके कम्पनसे उत्पन्न होता है। इस कल्पनाका उपयोग करके उसने वर्ण-विश्लेषण आदि प्रकाश-सम्बन्धी अनेक तथ्योंकी व्याख्या की। लगभग इसी समय जीमनने निरीक्षण किया कि, सोडिय-वर्णपटकी पीली रेखा, तीव्र चुम्बकीय क्षेत्रमें, कई रेखाओंमें विभक्त हो जाती है। लारेंजने इसकी व्याख्या, अपने "एलेक्ट्रोन सिद्धान्त" के आधारपर, बड़ी सरलतासे की और इसीसे उसने एलेक्ट्रोनके आवेश और उसके जाड्यका अनुपात भी निकाला। पीछे टाम्सनका अनुपात लारजके अनुपातके समान ही निकला।

अब यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि, प्रत्येक द्रव्यके परमाणुओंमें "एलेक्ट्रोन" विद्यमान हैं, जो द्रव्यके सारे वैद्युतिक गुणों और कार्योंके कारण हैं। विद्युत्की धारा इन्हीं एलेक्ट्रोनोंका सामूहिक प्रवाह है। फ्रैंकलिनके "एक तरल सिद्धान्त" से "एलेक्ट्रोन सिद्धान्त" का भेद इतना ही है कि, उसके अनुसार धाराका कारण धनात्मक तरलताका सञ्चार था, इसके अनुसार ऋणात्मक एलेक्ट्रोनका प्रवाह है; विशेषता यह है कि, काल्पनिक तरलताके स्थानमें एक भौतिक मूलकी स्थापना हुई।

१८९५ ई० में रून्टगेनने (१८४५-१९२३) एक्स किरणका आविष्कार किया था। इससे प्रेरित होकर १८९६ ई० में बिक्वेरलने (१८५२-१९०८) यह आविष्कार किया कि, यूरेनियमके लवणोंसे भी ऐसा प्रकाश निरन्तर निकलता रहता है, जो एक्स-रेकी भाँति ही फोटोग्राफके प्लेटको काला कर देता है। यूरेनियमके अनेक लवणोंकी परीक्षा करके १८९८ ई० में श्रीमती क्यूरीने अपने पतिकी सहयोगितामें पोलोनियम और रेडियम नामक दो तत्त्वोंका आविष्कार किया, जिनमें उपर्युक्त प्रकाशकी तीव्रता बहुत ही अधिक पायी गयी। तत्त्वके इस गुणका नाम "रेडियम-धर्मिता" पड़ा। श्रीमती क्यूरीने, बड़े ही कठिन परिश्रमके पश्चात् लगभग एक टन

यूरेनियम खनिजसे प्रायः एक 'ग्राम'के पाँचवें हिस्सेके बराबर रेडियम निकाला। रेडियमसे निकले हुए प्रकाशसे केवल फोटोग्राफके प्लेटपर ही असर नहीं होता, गैसमें भी चालकता आ जाती है। गीजेलने १८६६ ई० में यह निरीक्षण किया कि, इस स्वाभाविक प्रकाशकी किरणोंमें कैथाड-किरणके सभी गुण हैं। इसी समय रदरफोर्डने आविष्कार किया कि, ये किरणें दो भाँतिकी किरणोंका मिश्रण हैं। इनमेंसे एकका नाम उसने आल्फा-किरण रखा और दूसरीका बीटा-किरण। कुछ दिनों बाद वीलार्डने इसीमें एक तीसरी भाँतिकी किरणका अस्तित्व सिद्ध किया, जिसमें आल्फा और बीटा-किरणोंसे कहीं अधिक भेदनकी क्षमता पायी गयी। इसका नाम गामा-किरण रखा गया।

बीटा-किरण अति वेगवान् एलेक्ट्रोनोंका समूह सिद्ध हुआ, जिनका वेग प्रकाशके वेगके लगभग है। १६०२ ई० में रेमूजे और साडीने आल्फा-किरणकी परीक्षा की और इस परिणामपर पहुँचे कि, आल्फा-कण हीलियम गैसके परमाणु हैं, जिनपर दो एलेक्ट्रोनोंके बराबर धन-आवेश है। गामा-किरण एक्सरेसे भी छोटे तरङ्ग-दैर्घ्यकी है; अतएव इससे भी अधिक भेदनशील विद्युत्-चुम्बकीय तरङ्ग पायी गयी।

रेडियम या किसी अन्य 'रेडियमधर्मी' द्रव्योंसे इन किरणोंके उद्भवके ऊपर रासायनिक या भौतिक क्रियाका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिससे यह सिद्ध होता है कि, इन किरणोंका उद्गम-स्थान द्रव्योंका परमाणु है, अणु नहीं।

सन् १६०२ ई० में रदरफोर्ड और साडीने यह मत प्रकट किया कि, जिस तत्त्वके परमाणुसे ये किरणें अबाध रूपसे निकला करती हैं, वह तत्त्व क्रमशः दूसरे तत्त्वमें परिवर्तित होता जाता है। इस प्रकार एक तत्त्वके परमाणुसे दूसरे तत्त्वका परमाणु केवल आल्फाकण (हीलियम परमाणु) और बीटा-कण (एलेक्ट्रोन) के जोड़-घटावसे प्राप्त हो सकता है। इससे भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके परमाणुओंका पारस्परिक सम्बन्ध और सारूप्य प्रकट होता है।

रदरफोर्डने यह भी निरीक्षण किया कि, आल्फा-कण किसी धातुके वरक को पार करनेमें अपने सीधे-मार्गसे विक्षिप्त हो जाता है। इसीके आधारपर उसने परमाणुके "केन्द्रीय संस्थान"का प्रस्ताव किया। इसके अनुसार धनावेश और परमाणुका समस्त जाड्य केन्द्रके रूपमें, बहुत ही घनीभूत अवस्थामें, रहता है और एलेक्ट्रोन इसके चारों ओर चक्कर काटते हैं, मानों प्रत्येक परमाणु सूर्य-मण्डलकी प्रतिमूर्त्ति हो। उदाहरणमें हाईड्रोजनका एक परमाणु लें, तो उपर्युक्त कल्पनाके अनुसार, इसके केन्द्रपर एक एलेक्ट्रोनके आवेशके बराबर घनीभूत धनावेश ('प्रोटोन') है, जो हाईड्रोजन परमाणुके भारका कारण है; और, इस 'प्रोटोन' के चारों ओर, कुछ दूरीपर, एक एलेक्ट्रोन प्रायः वृत्तमें चक्कर काटता रहता है। हीलियमके केन्द्रमें चार "प्रोटोन" और दो "एलेक्ट्रोन" हैं और दो "एलेक्ट्रोन" इस केन्द्रके चारों ओर घूमते हैं। अन्य सभी तत्त्वोंके परमाणु भी इन्हीं "एलेक्ट्रोन" और "प्रोटोन" की नियमित योजनासे बने हुए हैं। परमाणु-संस्थानकी इस धारणाको बोरने, बड़ी ही विलक्षण कल्पनाओंका उपयोग करके, पुष्ट किया और उससे बहुतेरी रहस्यमयी भौतिक घटनाओंका उपपत्ति-साधन किया, जो प्रस्तुत प्रसङ्गके बाहरकी बात है।

परमाणु-संस्थानकी इस कल्पनासे यह परिणाम निकलता है कि, इस जड़ सृष्टिके मूलमें जितने तत्त्व हैं, उनका एकमात्र उपादान "एले-

क्ट्रोन" और "प्रोटोन" का द्वन्द्व है । टाम्सनने १८८१ ई० में "विद्युत्-चुम्बकीय जाड्य"के सिद्धान्तका निरूपण किया था। इसीके आधारपर लारमरने १८९५ ई० में यह सिद्ध किया कि, एलेक्ट्रोनके जाड्यका कारण केवल उसका विद्युत्-आवेश है; द्रव्य नामक इससे भिन्न किसी पदार्थका उसमें अस्तित्व नहीं। वस्तुतः जो द्रव्य हमारी इन्द्रियोंका विषय है, वह विद्युत्-शक्तिका समुच्चय है।

विद्युत्-शास्त्रके इस अद्भुत विकाससे द्रव्य और शक्तिके बीचकी दीवार नष्ट-प्राय हो गयी है। क्रमशः चुम्बकत्व और प्रकाश विद्युत्की विशेष अभिव्यक्तियाँ सिद्ध हुए; अब तो द्रव्य भी विद्युत्की ही गोचर अभिव्यक्ति जान पड़ता है। एक "एलेक्ट्रोन" और एक "प्रोटोन"के संयोगसे हाईड्रोजनका एक परमाणु बनता है। क्रमशः "एलेक्ट्रोन" और "प्रोटोन"की संख्या नियमित रूपसे बढ़नेसे अन्य तत्त्वोंके परमाणुओंकी रचना होती है। परमाणुओंके मेलसे अणुका सङ्गठन होता है। फिर ये अणु, भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें, एक दूसरेसे मिलकर इस जटिल, अनेक रूपरङ्गवाली जड़ सृष्टिको प्रकट करते हैं। सृष्टिके उद्भवकी इस प्रक्रियाको "शाक्त-परिणामवाद" का द्वैत सिद्धान्त कह सकते हैं। सम्भव है कि, इस द्वैत-सिद्धान्तसे किसी अद्वैत-सिद्धान्तका जन्म होनेपर मनुष्यकी स्वाभाविक जिज्ञासाको कुछ शान्ति मिले। यद्यपि आइन्स्टाइनने द्रव्य और शक्तिका सारूप्य, व्यापक रीतिसे, सिद्ध कर दिया है और भौतिक विज्ञानके नव्यतम युगके प्रवर्त्तक डी० ब्रोग्लीने द्रव्यको तरङ्गावलिको सम्पुटित शक्तिके रूपमें चित्रित किया है; किन्तु विद्युत्-शास्त्रकी समस्या तब तक हल नहीं होती, जबतक "एलेक्ट्रोन" और "प्रोटोन"का भेद समझमें नहीं आता।

तात्कालिक प्रश्न यह है कि, ईथरका अस्तित्व क्या सचमुच कल्पना-ही-कल्पना है या यह कोई महत्तत्त्व है, जिसका विकार अवस्था-भेदसे "एलेक्ट्रोन" और "प्रोटोन"के रूपमें प्रकट होता है? कुछ वैज्ञानिकोंका ईथर-भ्रमर-न्याय भ्रम ही है या उसमें कोई तथ्य भी है? यदि उसमें कोई तथ्य हो, तो यह महाप्रश्न उठता है कि, यह महत्तत्त्व विचलित कैसे होता है और विचालक शक्तिका उद्गम-स्थान कहाँ है?

यह प्रश्न-शृङ्खला अनादि और अनन्त है। कौन कह सकता है कि, इस प्रश्नका अन्तिम उत्तर कभी मिलेगा या नहीं? किन्तु जब तक मनुष्य इस अन्तिम उत्तरके अनुसन्धानमें दत्तचित्त है, तभी तक उसकी मनुष्यता है।

आइनस्टाइनका अपेक्षावाद

श्रीयुत ज्योतिःस्वरूप भटनागर

अपेक्षावाद आधुनिक विज्ञान-संसारका एक प्रधान विषय है। इसके सम्बन्धमें स्वयम् वैज्ञानिकोंकी ही विभिन्न धारणाएँ हैं। कहते हैं कि, 'अपेक्षावाद'ने विज्ञानके अब तकके समस्त सिद्धान्तोंको समूल नष्ट कर डाला। कुछका विचार है कि, 'अपेक्षावाद'ने विज्ञान-साम्राज्यमें घोर क्रान्ति उत्पन्न कर दी। कोई कहता है कि, 'अपेक्षावाद' नवीन सिद्धान्त नहीं है, प्राचीन विद्वानोंको यह भली भाँति विदित था; डाक्टर आइनस्टाइनने केवल वैज्ञानिक रूपसे उसको विवेचना करके एक प्रकारसे प्राचीन विद्वानोंकी आशाओंकी पूर्ति की है। अनेक वैज्ञानिक (सर आलिवर लाज आदि)

तिरंगे लाइन ब्लाकका नमूना

("फोटो प्रोसेस इनग्रेविंग" लेखसे सम्बद्ध चित्र)

तो इसके विरोधी ही हैं और उन्होंने इसके खण्डनार्थ पुस्तकें भी लिखी हैं।

इन सब विभिन्नताओंका अर्थ केवल यही हो सकता है कि, अभी इस सिद्धान्तको अच्छी तरह समझनेवाले अधिक नहीं हैं। कुछ समय पूर्व तो यह एक लोकोक्ति-सी थी कि, 'अपेक्षावाद'को समझनेवाले संसारमें केवल बारह मनुष्य हैं! इस कथनमें अतिशयोक्तिसे काम लिया गया है; किन्तु यह सत्य है कि, इस सिद्धान्तकी सिद्धिमें बहुत ऊँची श्रेणीकी गणितविद्या तथा भौतिक विज्ञानसे काम लिया गया है। 'यूक्लिड'के निर्माण किये हुए रेखा-गणितको अपर्याप्त समझकर 'अपेक्षावाद'की पुष्टिके लिये एक नवीन चतुःपरिमाणीय रेखागणितको सृष्टि की गयी, जिसकी सहज कल्पना करना सर्वथा असम्भव है; क्योंकि इस सिद्धान्तकी विचारशैली मनुष्य-मस्तिष्ककी अबतक की विचार-प्रणालीसे सर्वथा भिन्न है। इसकी कल्पना उसी समय हो सकती है, जब हम अपनी अबतककी समस्त मूल कल्पनाओंको पुनः शोधित करें।

मेरा विचार है कि, जिस विषयके 'विशेषाङ्क' निकाले जाते हैं, उस विषयके विद्वानोंके निमित्त ही वे नहीं निकाले जाते। उनका मुख्य उद्देश उस विषयसे अनभिज्ञ विद्वानों तथा जनसाधारणतक ज्ञान पहुँचाना होना चाहिये। 'गङ्गा'को 'विज्ञानाङ्क' निकालनेकी कल्पना एक अति उच्च कल्पना है, जो अबतक किसी अन्य साहित्यिक पत्रिकाने नहीं की। जो हो, मैंने अपने लेखको यथासम्भव सरल बनानेका प्रयत्न किया है। मैं स्वयम् भी वैज्ञानिक नहीं हूँ, न पठन-पाठन ही मेरा व्यवसाय है; परन्तु 'अपेक्षावाद'से मुझे बहुत प्रेम है; इसलिये मैंने स्वयम् 'आइनस्टाइन' तथा अन्य विद्वानोंकी 'अपेक्षावाद'के पक्ष तथा विपक्षमें लिखी गयी कई पुस्तकें देखी हैं। इतनेपर भी, मुझे दुःख है कि, मैं इस सिद्धान्तको स्वयम् आइन-स्टाइनके समान नहीं समझ सका हूँ। यह बात भी मेरे विपक्षमें न होकर पक्षमें ही है; क्योंकि, मैं अवैज्ञानिक होनेसे, अवैज्ञानिक विद्वानोंकी 'अपेक्षावाद'-सम्बन्धी कठिनाइयोंको स्वयम् अनुभव कर चुका हूँ; और, इसीलिये इस सिद्धान्तको उनतक पहुँचानेके लिये वैज्ञानिकोंकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त हूँ!

ऐतिहासिक कालके पूर्वसे ही मनुष्य संसारके सम्बन्धमें विचार और कल्पनाएँ करता आया है। आदिम अवस्थामें जब मनुष्यके पास विचार करनेके अतिरिक्त ज्ञानप्राप्तिका और कोई साधन न था, तब मनुष्यने संसारकी समस्त क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं तथा घटनाओं-को 'आत्माओं' अथवा 'देवताओं'पर निर्भर माना था। ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ता गया, इन क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं और घटनाओंके कारण पराप्राकृतिक तत्त्व (Supernatural principles) माने जाने लगे—'सर्वव्यापी-आत्मा', शरीरव्यापी जीव आदि। तत्पश्चात्, वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञानके कालमें, इन कारणोंको प्राकृतिक, यान्त्रिक तथा शक्तिका सम्बन्धी माना जाने लगा। इन तीन प्रकारके भिन्न-भिन्न कालके कारणोंको हम आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक कह सकते हैं। पश्चात् संसारके उपादान-कारणपर अधिक परिश्रम और विचार किया जाने लगा। जिस तत्त्वसे संसारका निर्माण हुआ है, उस तत्त्व (Reality) में और हमारी इन्द्रियों द्वारा जिसका ज्ञान प्राप्त होता है, उस दृश्य जगत्में क्या सम्बन्ध है तथा इन दोनोंका जो ज्ञेय है, उसका ज्ञातासे क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार सिद्धान्त-वादियोंकी दो मुख्य शाखाएँ हो गयीं। जिन्होंने इन्द्रिय-जगत्को मुख्य माना और ज्ञाताको केवल एक बाह्य हस्तक्षेपक माना, वे वास्तविकतावादी (Realists) कहलाये और जिन्होंने इस दृश्यजगत्को मिथ्या अथवा गौण माना एवम् इसको केवल नाम-रूपका जगत् समझकर उस परम तत्त्वको, जिसमें नाम-रूपका आरोप होनेसे इन्द्रिय-जनित संसार दृष्टि आता है, मुख्य माना तथा ज्ञाताको भी वही परम तत्त्व जाना, वे तत्त्ववादी (bsolutists)

कहलाये। Absolute शब्दका अर्थ है निकाला हुआ। द्रव्यमेंसे गुणोंको पृथक् करके मानना तत्त्ववादीको मान्य था। उदाहरणार्थ हमें सर्वदा ठंढी और गरम वस्तुओं का ही ज्ञान होता है, कभी पदार्थ-रहित गर्मी अथवा ठंढकका ज्ञान नहीं होता। परन्तु तत्त्ववादी गुणोंकी स्वतन्त्र सत्ताकी कल्पना कर सकता था। ये दोनों प्रकारके विचार यूनानमें बहुत प्रचलित थे। उस समय एक दृष्टान्त बहुत दिया जाता था—"यदि आँधी किसी स्थानपर किसी समय एक पेड़को, उखाड़कर फेंक दे और उस जगह कोई गिरनेके शब्दको सुननेवाला न हो, तो उसके गिरनेका शब्द होगा कि, नहीं?" तत्त्ववादी कहता था कि, 'नहीं होगा' और वास्तविकतावादी कहता था कि, 'होगा'। आज कल इसका उत्तर दिया जाता है कि, नहीं होगा; परन्तु इसका कारण तत्त्ववादीके कारणसे भिन्न है अर्थात् शब्दका होना सुननेवाले और बाह्य जगत्, दोनोंकी संयुक्त उपस्थितिमें ही सम्भव है। यदि सुननेवाला हो और पेड़ न गिरे, तो भी शब्द न होगा; और, यदि पेड़ गिरे और सुननेवाला न हो, तो भी शब्द न होगा। मतलब यह कि, प्रत्येक ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेयके संयोग-पर ही निर्भर है। एक प्रकारसे इसको 'अपेक्षावाद' कह सकते हैं। एक ज्ञाताको एक वस्तुके खट्टी होनेका ज्ञान होता है और दूसरेको उसी वस्तुके मीठी होनेका, एक मनुष्य एक तस्वीरको सुनहरी देखता है, दूसरा रूपहरी, एक मनुष्यको तोपकी आवाज सुनाई देती है और दूसरेको नहीं सुनाई देती है। यहाँ वास्तविकतावादी और तत्त्व-वादी वाद-विवाद करेंगे कि, वास्तवमें वह वस्तु खट्टी है या मिठी? तस्वीर सुनहरी है या रुपहरी? शब्द वास्तव-में हुआ या नहीं? 'आइनस्टाइन' सीधा उत्तर देता है कि, यह सत्य है या वह, इसका निर्णय ज्ञाता और बाह्य जगत्की अपेक्षासे ही हो सकता है। एकके लिये खट्टा होना, सुनहरी होना और शब्दका होना उतना ही सत्य है, जितना कि दूसरेके लिये मीठा; रुपहरी और शब्द न होना सत्य है। यह 'अपेक्षावाद'का दार्शनिक रूप कहा जा सकता है। परन्तु 'आइनस्टाइन' कोई दर्शनशास्त्री नहीं है, न उसकी समस्त विवेचनाओंमें कहीं दर्शन-शास्त्र अथवा तत्त्वज्ञानकी शैलीका प्रयोग ही हुआ है। यह अवश्य है कि, उसकी विवेचनासे वर्तमान दार्शनिक विचारोंपर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। डाक्टर एलबर्ट आइनस्टाइन कट्टर यहूदी हैं। अपनी अल्प आयुसे ही वे संसारके गूढ़तम रहस्योंको, वैज्ञानिक रूपसे, सुलझानेमें प्रवृत्त हुए। जब वे केवल १६ वर्षके थे, तब उन्होंने एक सारगर्भ छोटा निबन्ध जर्मनीके वैज्ञानिकोंकी एक सभामें पढ़ा, जिसकी प्रशंसा सब उपस्थित वैज्ञानिकोंने, मुक्त कण्ठसे, की। बालक आइनस्टाइनके विचारोंसे वे चकित हुए। कहा जाता है कि, इस घटनासे पूर्व उन्होंने एक निबन्ध अपने अध्यापकको दिखाया था, जिसको न समझ सकनेके कारण उनके अध्यापकने कहा था, 'आइनस्टाइन, तू कहीं पागल तो नहीं हो गया है, जो ऐसी निर्मूल कल्पनाएँ किया करता है?" आइनस्टाइनने सबसे पहले इस विचारको लिया कि, संसारकी समस्त वस्तुओंका ज्ञान तथा माप किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षासे ही हो सकता है; कोई ज्ञान निरपेक्ष नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ कल्पना कीजिये कि, संसारके समस्त पदार्थ (सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, पृथिवी, नक्षत्र आदि) नष्ट हो गये हैं और सम्पूर्ण आकाशमें केवल एक गोलक स्थित है, तो उसकी स्थिरता या गति-का ज्ञान होना असम्भव है, चाहे वह एक लाख मील प्रतिपलके वेगसे चल रहा हो, चाहे दो लाख मील प्रति-पलके वेगसे; क्योंकि उसका फासला किसी दूसरी वस्तुसे घट-बढ़ नहीं रहा है। फिर कल्पना कीजिये कि, एक दूसरा गोलक आकाशमें आ गया। यदि दोनोंमें समान देशान्तर सतत रहता है, तो हम नहीं जान सकते कि, वे दोनों स्थिर हैं या दोनों ही समान गतिसे एक ओरको चले जा रहे हैं; क्योंकि व्यवधान दोनों ही अवस्थाओंमें समान रहेगा। यदि उन दोनोंमें १० मील प्रतिपलके हिसाबसे

फासला बढ़ रहा हो, तो भी हमें इस १० मील प्रतिपल की सापेक्ष गतिके अतिरिक्त किसी वास्तविक गतिका ज्ञान किसी साधनसे नहीं हो सकता, चाहे एक १०० मील और दूसरा ११० या ९० मीलके वेगसे चल रहा हो, चाहे एक ५५० और दूसरा ५६० या ५४० मीलके वेगसे अथवा एक स्थिर हो और दूसरा १० मीलके वेगसे या दोनों विपरीत दिशाओंमें ५-५ मीलके वेगसे चल रहे हो; क्योंकि इन सब दशाओंमें हमें उनकी १० मील प्रतिपलकी सापेक्ष गतिका ही ज्ञान होगा। इसी प्रकार दोसे तीन और तीनसे चार और बढ़ते-बढ़ते वर्तमान सूर्य्य, चन्द्र, पृथ्वी नक्षत्र आदि गोलकोंकी कल्पना हम कर सकते हैं। इनमेंसे किसीको स्थिर मान कर हम अन्यकी सापेक्ष गतियोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु इनकी, देशमें, निरपेक्ष गतिका ज्ञान किसी भी साधन द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते।

संसारके पृथ्वी आदि गोलकोंकी गतिके आपेक्षिक होनेका ज्ञान "न्यूटन" तथा "गलीलियो"को भी था, परन्तु उस समयके मनुष्योंमें निरपेक्षताका विचार इस अवस्थाको पहुँच चुका था कि, इस ज्ञानके होते हुए भी स्वतन्त्र गति (Absolute Motion) की कल्पना सदैव बनी रहती थी। अमेरिकाके एक वैज्ञानिकका कहना है कि, "सोलहवीं शताब्दीके पश्चात् ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक नियमोंका समूह बढ़ता गया, त्यों-त्यों यह अस्वाभाविक विचार दृढ़ होता गया कि, यदि प्रयोग-कर्त्ताओंको अपने निरीक्षणके लिये कोई निरपेक्ष स्थिर स्थान मिल जाय अर्थात् बजाय गतिशील पृथ्वीपरसे निरीक्षण करनेके किसी ऐसे स्थानसे निरीक्षण तथा प्रयोग किये जायँ, जो सर्वथा गति-शून्य हों, तो ये वैज्ञानिक नियम अर्थात् इनके बीजगणित-रूपी सूत्र (Formulae) अत्यन्त सरल रूपमें प्रकट हो सकेंगे।"

प्राकृतिक नियम प्रकृतिके व्यवहारों तथा क्रियाओं को समझानेके लिये किये गये मनुष्यके अपूर्ण प्रयत्नों-का नाम है; उनमें अवश्यम्भावी भाव छू तक नहीं गया है। प्राकृतिक नियम काम-चलाऊ विचारोंसे अधिक कुछ नहीं हैं, जो, ज्यों-ज्यों मनुष्यका दृष्टि-विस्तार बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों बदले जा सकते हैं, घटाये-बढ़ाये जा सकते हैं या सर्वथा त्यागे जा सकते हैं। उनमें कोई धार्मिक पवित्रताका भाव नहीं छिपा है, जिसके कारण यदि वे हमारे अनुभवोंके सर्वथा प्रति-कूल भी होते, तो भी उनका त्यागना पाप होनेसे असम्भव हो जाता। वैज्ञानिक लोग प्रयोगों द्वारा तथा निरीक्षण द्वारा प्रथम प्रकृतिकी क्रियाओंका अनुभव प्राप्त करते हैं; फिर ऐसे एकविषयी समस्त अनु-भवोंको एकत्र करते हैं। समस्त परिश्रमका आन्तरिक भाव यह होता है कि, अधिकसे अधिक अनुभवोंमें कोई सम्बन्ध ज्ञात हो जाय और उस सम्बन्धको बीजगणित-रूपी formula में लिख सकें। यही रूप या सम्बन्ध प्राकृतिक नियम कहलाता है। किसी प्राकृतिक नियमकी जाँचकी कसौटी यह है कि, अब-तक उससे सम्बन्ध रखनेवाले जितने विषय हैं, सब-पर वह समान रूपसे लागू हो और भविष्यमें उसी प्रकारके विषयोंको पहलेसे ही निर्धारित करनेकी शक्ति रखता हो, जिसकी आवश्यकताके अनुसार परीक्षा की जा सके। यदि ऐसे कोई नये अनुभव प्राप्त हों, जो उस नियमके अन्तर्गत होते हुए भी प्रतिकूल सिद्ध हों, तो या तो उस नियमको इस प्रकार शोधित करना पड़ता है कि, उन नवीन अनु-भवोंका समावेश भी उसमें हो सके; अन्यथा, उसको सर्वथा त्याग कर एक ऐसा नया नियम बनानेकी चेष्टा की जाती है, जिसमें पिछले प्राप्त किये गये तथा नवीन, सभी अनुभव खप जायँ। किसी वैज्ञानिकने कहा है कि, हम संसारको अपने नियमोंमें बैठानेके लिये ठोक-पीट नहीं सकते; बल्कि नियमोंको ही प्रकृति-के अनुसार बनानेके लिये ठोकना-पीटना पड़ेगा।

कहनेका तात्पर्य यह है कि, नियमोंकी कल्पित सरलता प्राप्त करनेके आशयसे एक निरपेक्ष स्थिर पदार्थकी खोजमें विज्ञानी लोग लगे हुए थे। खोजते खोजते उनको एक जगह कुछ आशा दिखाई दी और उसीका परिणाम 'अपेक्षावाद'का सिद्धान्त है। निरपेक्षताकी कल्पनाओंपर अवलम्बित दो प्रसिद्ध नियम 'न्यूटन'के कालसे, माने जाते थे। एक यह था कि, यदि कोई पदार्थ स्थिर अथवा एक ओरको गतिशील हो, तो वह सर्वदा स्थिर अथवा उसी ओरको गतिशील रहेगा, जबतक कोई अन्य शक्ति स्थिरको चलायमान तथा गतिशीलको स्थिर अथवा दूसरी ओरको चलायमान न कर दे। दूसरा नियम गतियोंके योगका था अर्थात् यदि 'अ' १० मील प्रतिपलके वेगसे गतिशील है और 'ब' विपरीत दिशामें २५ मील प्रतिपलके वेगसे चल रहा है, तो उनकी आपेक्षिक गति २५+१०=३५ मील प्रतिपल होगी और यदि 'ब' उसी दिशामें २५ मील प्रतिपलकी गतिसे चल रहा है, तो दोनोंकी सापेक्ष गति २५ – १० = १५ मील प्रतिपल होगी।

'न्यूटन' के मतानुसार प्रकाशकी रश्मियाँ अटूट रेखाएँ न होकर छोटे-छोटे कणोंसे बनी हैं, जो अनन्त वेगसे प्रदीप्त पदार्थसे निकल कर चारों ओर फैलते हैं। अनन्त वेगका अर्थ यह है कि, दीप्त वस्तुसे दूरतम तथा निकटतम देशमें तत्काल पहुँच जाते हैं। किन्तु "डेनमार्क"देशके एक ज्योतिषी ("हाईगेंस" ने यह विचार प्रकट किया कि, प्रकाश-रश्मियाँ एक प्रकारकी तरङ्गें हैं। बहुत काल तक तो 'न्यूटन का 'कणिका-सिद्धान्त' (Corpuscular Theory) ही माना जाता था। परन्तु कुछ समयके बाद यह सिद्ध कर दिया गया कि, दो रश्मियोंका परस्पर योग होनेसे कभी दूना प्रकाश हो जाता है और कभी अन्धकार हो जाता है, यह उसी दशामें हो सकता है, जब प्रकाशकी रश्मियाँ तरङ्ग-रूप हों; क्योंकि दो तरङ्गें परस्पर दो प्रकारसे मिल सकती हैं। या तो उनका संयोग इस प्रकार हो सकता है कि, ऊपरके भाग ऊपरके भागोंसे मिलें और नीचेके भाग नीचेके भागोंसे अथवा ऊपरके भाग नीचेके भागोंसे और नीचेके भाग ऊपरके भागोंसे, जो A और B से प्रकट है—

इनमें पहली दशामें दूना प्रकाश तथा दूसरी दशामें एक तरङ्ग दूसरीको नष्ट कर देती है, जिससे अन्धकार हो जाता है। यही स्थिति जल-तरङ्गोंके साथ भी होती है, जो प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। तरङ्ग-रूप माननेपर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि, प्रकाशमानसे यह तरङ्गें किस माध्यम द्वारा चारों ओर फैलती हैं? विज्ञानकी दृष्टिमें दो पृथक् पदार्थोंमें बिना माध्यमके कोई प्रभाव एक दूसरेपर होना अमान्य था। इसको वे Action at a Distance या माध्यम-रहित क्रिया कहते थे। मान लीजिये कि, 'अ' और 'ब' दो मनुष्य एक दूसरेको खींचना चाहते हैं; परन्तु वे खींच नहीं सकते, जब तक रज्जु-रूपी माध्यमका एक दूसरेसे सम्बन्ध न कर दिया जाय। इसी प्रकार प्रकाशमानसे देशान्तरमें रश्मि-तरङ्गोंको पहुँचानेवाले माध्यमको मानना भी अनिवार्य हो गया। इसलिये 'ईथर' नामके एक अति-सूक्ष्म और सर्वव्यापी पदार्थकी कल्पना की गयी, जिसके द्वारा प्रकाश-तरङ्गें एक स्थानसे दूसरे स्थान तक आ जा सकें। परन्तु 'सर्वव्यापी' शब्दसे ही सिवा ईथर' के शेष समस्त अस्तित्वका अभाव होना चाहिये—इस आपत्तिसे बचनेके लिये 'ईथर'को पदार्थके अन्तिम अभाज्य परमाणुओंके भीतर न मानकर उनके मध्यवर्ती आकाशमें व्याप्त माना गया।

यही कल्पित "ईथर" वह पदार्थ था, जिसमें वैज्ञानिकोंको उस निरपेक्ष स्थिर पदार्थके मिलनेकी आशा हुई, जिसको वे बहुत कालसे खोज रहे थे; क्योंकि 'डाक्टर पिकरिंगने

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि, पदार्थके साथ-साथ ईथर गति नहीं करता; बल्कि पदार्थके अणुओं और परमाणुओंके बीचमें होकर छन जाता है और पदार्थ 'ईथर' को ज्योंका त्यों छोड़कर उसमें गति करता है। अतः ईथर निरपेक्ष रूपसे स्थिर है। परन्तु ऐसे निराकार और एकरस 'ईथर' को किस प्रकार निरीक्षणका Standard बनाया जाय, यह समस्या उत्पन्न हो गयी। 'प्रकृति' ने फिर सहायता की अर्थात् प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हो गया कि, प्रकाश अनन्त गतिसे नहीं चलता; प्रत्युत उसकी गति 'ईथर' में एक लाख छियासी हजार तीन सौ तीस मील प्रति सेकिंड है। अतः अब इस प्रकार तर्क किया गया कि, यदि पृथ्वी 'ईथर' में किसी ओरको २० मील प्रति सेकिंडके वेगसे चल रही है, तो सूर्य्यकी सम्पूर्ण प्रदक्षिणाके कालमें अर्थात् वर्ष भरमें किसी एक समय अपनी निरपेक्ष २० मील प्रति सेकिंडवाली गतिकी दिशामें अवश्य जायगी और उसके छ महीने पश्चात् अपनी निरपेक्ष गतिकी प्रतिकूल दिशामें जायगी।
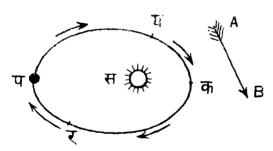
उदाहरणार्थ मान लीजिये कि, ऊपरवाले चित्रमें 'स' सूर्य तथा 'प' पृथ्वी है, जो अपने भ्रमणपथमें वर्ष भरमें सूर्यकी प्रदक्षिणा कर लेती है। भ्रमणपथके अण्डाकार होनेसे पृथ्वी प्रत्येक दिशामें गति करती है। अब यदि पृथ्वीकी निरपेक्ष गति 'ईथर' में A से B की ओर २० मील प्रति सेकिंड है, तो 'य' स्थानपर पृथिवीकी सूर्यकी अपेक्षाकी गति तथा निरपेक्ष 'ईथर' में गतिका योग होगा और 'र' स्थानपर विपरीत दिशामें चलनेके कारण उनका अन्तर हो जायगा। भ्रमणपथमें पृथिवीकी गति भी लगभग २० मील प्रति सेकिंड है (वास्तवमें १८½ है) अर्थात् 'य' से 'क' की ओर जाते समय पृथिवीकी 'ईथर' की अपेक्षासे २०+२० = ४० मील प्रति सेकिंड और 'र' से 'प' की ओर जाते समय २०–२० अर्थात् शून्य गति होनी चाहिये अर्थात् 'र' पर निरपेक्ष रूपसे स्थिर होनी चाहिये। जब यह सिद्धान्त-रूपसे निश्चय हो गया, तो पृथिवीकी निरपेक्ष गतिका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये प्रयोग किये गये। यदि दो मील स्थिर पानीमें तैरा जाय और एक मील बहते पानीमें बहावकी ओर तथा १ मील बहावके प्रतिकूल तैरा जाय, तो स्थिर पानीके २ मील तैरनेमें और बहावके अनुकूल तथा प्रतिकूल २ मील तैरनेमें एक ही समय न लगेगा। साधारणतया जो लोग स्वयम् तैरनेवाले नहीं हैं, वे यह समझेंगे कि, समय बराबर ही लगना चाहिये; क्योंकि, एक मील पानीके साथ तैरनेमें पानीकी गतिका लाभ होता है, उतनी ही १ मील पानीसे उलटा तैरनेमें हानि होगी और लाभ तथा हानि बराबर होनेसे दो मीलमें उतना ही समय लगेगा, जितना दो मील स्थिर पानीमें तैरनेसे लगेगा। परन्तु तनिक हिसाब लगानेसे इस विचारकी असत्यता प्रकट हो जायगी। यदि तैराक स्थिर पानीमें २ मील प्रति घंटा तैरता है, तो उसे दो मील तैरनेमें १ घंटा लगेगा। यदि पानीका बहाव १ मील प्रति घंटा है, तो अनुकूल १ मील तैरनेमें २० मिनिट और उलटा तैरनेमें १ घंटा लगेगा अर्थात् कुल १ घंटा २० मिनिट लगेगा। इन दोनोंमें २० मिनिटका अन्तर है। इसी अनुभवको सामने रखते हुए "मीकिलसन" तथा "मोर्ले"ने दो लम्बे बराबर-बराबर दण्ड AB तथा BC बनाये,
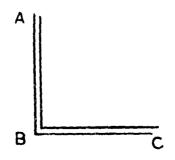
जिनमें B से एक ही समयमें प्रकाश भेजा जा सके। पृथिवीके सम्पूर्ण भ्रमण-कालमें कभी BA कभी BC पृथिवीकी निरपेक्ष गतिकी ओर चल रहे होंगे और दूसरी भुजा उस दिशासे समकोणपर होनेसे स्थिर पानीमें तैराकके सदृश होगी। यदि इन दोनों भुजाओंमेंसे एक भी पृथिवीकी निरपेक्ष गतिकी ओर न हो, तो भी प्रकाशकी गतिमें दोनों भुजाओंमें अन्तर अवश्य आना चाहिये। ये वर्ष भरमें केवल दो ही समय छः महीनेके अन्तरसे ऐसे होंगे, जब दोनों भुजाओंमें भेजे गये प्रकाशकी गति समान हो अर्थात् जब दोनों भुजाएँ निरपेक्ष गतिकी दिशासे ४५-४५ डिग्रीका कोण बनावें। अन्य सब समय इन दोनों भुजाओंमें प्रकाश समान समयमें नहीं आ जा सकता। "मिकिलसन" और "मोर्ले"का यह यन्त्र इतना सूक्ष्म-दर्शक था कि, छोटे-से-छोटे अन्तरको भी माप सकता था। परन्तु भिन्न-भिन्न ऋतुओं तथा भिन्न-भिन्न स्थानों-पर किये गये प्रयोगोंमेंसे किसीमें भी प्रकाशकी गतिमें कोई अन्तर नहीं आया। प्रत्येक दिशामें पृथिवी स्थिर होनी चाहिये, अन्यथा प्रकाशकी और पृथिवीकी आपेक्षिक गतिका किसी-न-किसी दिशामें अधिक न्यून होना आवश्यक था। पृथ्वीको सर्वथा स्थिर मानना भी एक असम्भव और प्रत्यक्षके विरुद्ध बात थी! इन परस्पर-विरोधोंका समाधान इस प्रकार किया गया कि, प्रत्येक पदार्थ अपनी गतिकी ओर ठीक उतना ही सिकुड़ जाता है, जितना अन्तर प्रकाशके वेगमें उस पदार्थकी सापेक्ष गतिके कारण होना चाहिये—वह पूरा हो जाता है; क्योंकि प्रकाशको उस सिकुड़नके कारण थोड़ा और आगे चलना पड़ता है। और, आगे चलनेमें जो समय लगता है, वह ठीक उतना होता है, जितना कि, उस पदार्थको आपेक्षिक गतिसे प्रकाशकी ओर बढ़नेके कारण प्रकाशको उसतक पहुँचनेमें कम लगता। यह सिकुड़न गतिकी ओर ही होती है---उससे लम्बी दिशामें नहीं होती। 'आइन-स्टाइन'ने कहा कि, हमको ऐसा कदापि नहीं मान लेना चाहिये कि, प्रकृतिकी सब शक्तियोंने मिलकर हमें धोखेमें रखनेके लिये एक षड्यन्त्र रच लिया है और पृथ्वीमें वह ठीक उतनी सिकुड़न उत्पन्न कर देती है, जिससे हम धोखेमें पड़ जायँ। अतः हमको उलटा चलना चाहिये और अपने इस अनुभवको सत्य मानकर कि, "सब दर्शकोंको सब स्थानोंमें और सब समय प्रकाशकी गति समान दिखाई देती है, चाहे हममें और प्रकाशमें कितनी भी सापेक्ष गति हो" अपने पूर्वके सिद्धान्तोंको इस प्रकार संशोधित करना चाहिये कि, इस नये अनुभवका भी उनमें समावेश हो जाय। यहींसे 'अपेक्षावाद'का सबसे कठिन और वास्तविक भाग प्रारम्भ होता है। पहला नियम, जो आइनस्टाइनने बनाया, वह यह है—"निरपेक्षता एक असम्भव कल्पना है, न गति निरपेक्ष है, न समय निरपेक्ष है और न आकाश।" फिर उसने यह नियम बनाया कि, "आकाशमें प्रकाशको देखनेवाले समान वेगसे चलता हुआ देखेंगे, चाहे द्रष्टा और प्रकाश-मानमें कितनी ही गति क्यों न हो।" यह नियम साधारण बुद्धिके सर्वथा विपरीत है और 'न्यूटन'के गतियोग—नियमके भी विरुद्ध है; क्योंकि इसका अर्थ यह है कि, यदि मैं १ लाख मील प्रति सेकिंडके वेगसे प्रकाशमानकी ओर जा रहा हूँ और तुम १ लाख मील प्रति सेकिंडके वेगसे प्रकाशमानसे दूर जा रहे हो, तो मुझे और तुम्हें दोनोंको ही प्रकाश वही १८६३३० मील प्रति सेकिंडके वेगसे अपने पाससे होकर जाता मालूम होगा। वास्तवमें मुझे ९८६३३० मील और तुम्हें ३८६३३० मील प्रति सेकिंडके वेगसे जाता हुआ ज्ञात होना चाहिये। परन्तु 'आइन-स्टाइन' उसी 'मिकेलसन' और 'मोर्ले'वाले प्रयोगकी गवाहीमें पेश करता है, जिससे सब द्रष्टाओंको प्रकाशकी गति समान मालूम होती है। चाहे पृथ्वी प्रकाशकी ओर जा रही हो, चाहे उससे विपरीत; किन्तु प्रकाशकी गति सर्वथा समान है। 'आइनस्टाइन'का कहना है कि, ऐसा उसी दशामें सम्भव हो सकता है, जब मेरी सेकिंड तथा मीलकी

कल्पना तुम्हारी सेकिंड तथा मीलकी कल्पनाओंसे भिन्न हों अर्थात् 'आकाश' और समय दोनों कल्पनाएँ हैं, जो स्वतन्त्र सत्ता न रखते हुए ज्ञाताकी अपेक्षासे भिन्न होती हैं तथा स्वयम् भी निरपेक्ष न होकर एक दूसरेपर निर्भर हैं। जिस प्रकार ठंडी तथा गरम वस्तुमें ठंडक और गर्मीकी और इनकी अधिकता तथा न्यूनतासे उत्पन्न तापक्रमकी कल्पना की गयी है, उसी प्रकार विस्तार-स्थान-पृथक्त्वसे आकाशकी कल्पना और घटनाओंके व्यवधानसे समयकी कल्पना की की गयी है। परन्तु जब हम इन कल्पनाओंको द्रव्य और घटनाओंके समान गुण प्रदान कर देते हैं, तब भ्रममें पड़ जाते हैं। हम आकाश तथा समयके किन्हीं दो भागोंका उस प्रकार मुकाबला नहीं कर सकते, जिस प्रकार दो वस्तुओंका मुकाबला कर सकते हैं। हम आकाशको ऊपर-नीचे, दायें-बायें, आगे-पीछे, फैला हुआ एकरस, अनन्त, त्रिपरिमाणीय मानते हैं और समयको एक परिमाणीय अर्थात् एक ओरको बहनेवाला पीछे न लौटनेवाला, अनन्त मानते हैं; परन्तु हमको स्मरण रखना चाहिये कि, यह समस्त गुण द्रव्यके गुणोंकी कल्पनाओंपरसे प्रदान किये गये हैं। 'आकाश' उसी अर्थमें विद्यमान नहीं है; जिस अर्थमें न आकाशस्थित पदार्थ और न 'समय' उसी अर्थमें घटित होते हैं, जिस अर्थमें 'समय' में घटनाएँ घटित होती हैं। इसपर अधिक सावधानीसे विचार करना चाहिये; क्योंकि हमारे ज्ञान-प्राप्तिके समस्त साधन पदार्थकी गतियोंसे सम्बद्ध हैं और गतिकी कल्पनामें 'समय' और 'आकाश' निर्विकल्प रूपसे ओत-प्रोत हैं। हम यह कैसे समझ लेते हैं कि, जो सेकिंड गुजर गया, वह अगले सेकिंडके बराबर है? समयके किन्हीं दो भागोंको ऊपर तले रखकर हम नाप तो सकते नहीं। फिर यह ज्ञान कैसे होता है कि, समयका अमुक भाग दूसरे अमुक भागके बराबर है? अतः समयको नापनेके लिये हम एक काल्पनिक रीतिसे काम लेते हैं। हम मान लेते हैं कि, अमुक वस्तु समान गतिसे चल रही है। समान गतिका अर्थ हम यह करते हैं कि, वह वस्तु बराबर समयोंमें बराबर आकाशोंको तय करती है। उदाहरणार्थ पृथ्वीकी दैनिक अथवा वार्षिक गतिको समान मानकर हम एक दिवसके ८६४०० भाग कर लेते हैं और इन भागोंको किसी घड़ीके लटकनकी चालके बराबर कर लेते हैं। यह रीति समय नापनेकी है; परन्तु यदि देखा जाय, तो इसमें अनवस्थादोष आता है। हम समयके बराबर भागोंको नापनेके लिये जो साधन प्रयोगमें लेते हैं, उसमें हम अज्ञानरूपसे उसीको सिद्ध मान लेते हैं, जिसे सिद्ध करना है अर्थात् यह कि, अमुक वस्तु बराबर समयोंमें बराबर देश चलती है। अतः स्पष्ट है कि, समयके बराबर होनेका ज्ञान होना असम्भव है। फलतः समयका सच्चा तथा निरपेक्ष नापना भी स्वप्न है। परन्तु कदाचित् हम यह विचार करें कि, देशकी लम्बाई तो हम एक मापक दण्डको दूसरेके ऊपर रखकर ठीक ठीक जान सकते हैं; इसलिये देशके सम्बन्धमें भी सावधानीसे विचार करना चाहिये। हम एक मापक दण्डको दूसरी वस्तुपर उसी समय रखकर नाप सकते हैं, जब हम उस वस्तुकी अपेक्षासे स्थिर हों। यदि हम रेलमें चल रहे हैं, तो रेलगाड़ीकी समस्त वस्तुओंको रेलमें रखे हुए मापक-दण्डसे नाप सकते हैं; और, यदि हम पृथ्वीपर हैं, तो पृथ्वीपरकी समस्त वस्तुओंको मापक दण्डसे नाप लेंगे। परन्तु चलती रेलमेंसे पृथ्वीपरकी वस्तुओंको, पृथ्वीपरसे चलती रेलकी वस्तुओंको, किस प्रकार नाप सकते हैं? संसारके सभी गोलक सापेक्ष गतिसे चल रहे हैं; इसलिये कमसे कम इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि, मापक-दण्डके दोनों सिरे एक ही समयमें द्रष्टाको दिखाई देने चाहिये। उदाहरणार्थ मान लीजिये कि, सापेक्ष गतिसे चलनेवाली C D

C D

A K G B

और A B दो लम्बाइयाँ हैं और एक द्रष्टा दोनोंको नापना चाहता है। यह भी मान लीजिये कि, सापेक्ष स्थिरता की दशामें C D, A B से छोटी है। द्रष्टाको जिस समय D सिरा B सिरेसे मिला हुआ दिखाई दिया, उस समय C सिरा K बिन्दुपर था; परन्तु उस समय द्रष्टा C सिरेपर उपस्थित न था। अब जिस समय द्रष्टाने C सिरेको देखा, तो सापेक्ष गतिके कारण यदि A B, B की ओर जा रही है, तो C सिरा A सिरेपर दिखाई देगा। द्रष्टाको ज्ञान होगा कि, C D, A B के बराबर है और A B, A की ओर जा रही है, तो द्रष्टा C सिरेको G पर देखेगा और समझेगा कि, A B का G B भाग—जो वास्तवमें C D से छोटा है—C D के बराबर है। अतः द्रष्टाके लिये दोनों सिरोंका एक ही समयमें देखना ठीक-ठीक लम्बाई नापनेके लिये अनिवार्य है।

परन्तु द्रष्टा अधिकसे अधिक यह कर सकता है कि, एक सिरेपर तो उपस्थित रहे और दूसरे सिरेसे सिगनल (Signal) मँगावे। वह सिगनल भी अनन्त वेगसे चलनेवाला होना चाहिये, जिससे सिरेका मिलना और Signal का द्रष्टा तक पहुँचना तत्काल (In no time) हो। परन्तु ऐसा अनन्त वेगसे चलनेवाला कोई Signal उपलब्ध नहीं है! सबसे अधिक वेगसे चलनेवाला Signaller यही प्रकाश है, जिसके द्वारा हमें घटनाओंकी सूचना मिल सकती है। यहाँ यह विचार करना भी उचित है कि, एक समयका क्या अर्थ है? क्या एक-समयता कोई निरपेक्ष कल्पना है? मान लीजिये कि, A B एक रेलपथ है और C D उसके बराबरकी भूमि है, जिसपर K तथा L दो स्थानोंपर बिजली एक ही समयमें चमकती हैं, जिन्हें M (K L के मध्य) पर स्थित द्रष्टा एक साथ देखता है। यदि एक रेलगाड़ी भी रेलपथपर B से A की ओर जा रही है, तो जिस समय बिजलियाँ चमकीं, उस समय रेलगाड़ीमें K, M और L के सम्मुख तीन स्थान 'क', 'म' और 'ल' अवश्य होंगे। मान लीजिये कि, रेलगाड़ीमें 'म' स्थानपर एक दूसरा द्रष्टा उपस्थित है। अब चूँकि रेलगाड़ी A की ओर जा रही है; इसलिये 'म' वाला द्रष्टा K पर की बिजलीके प्रकाशसे मिलने आगे बढ़ रहा है और L परकी बिजलीके प्रकाशसे दूर हटता जा रहा है। अतः 'म' द्रष्टाको M वाले द्रष्टासे पहले K वाली बिजली दिखाई दे जायगी और L वाली बिजली बादमें दिखाई देगी। अतः जो घटनाएँ M द्रष्टाके लिये समकालीन हैं, वे ही घटनाएँ 'म' द्रष्टाके लिये आगे-पीछे होती हैं। अतः एक-समयता भी ज्ञाताकी गति पर निर्भर तथा सापेक्ष है। फलतः जो समय M वाले द्रष्टाको शून्य है, वही समय 'म' वाले द्रष्टाको कुछ पलोंके बराबर होगा; अतः 'सेकिंड' की कल्पना भिन्न होगी। और जब हमारा, समस्त लम्बाइयोंका, नाप एकसमयताकी कल्पनापर निर्भर है, तब अवश्य ही लम्बाइयोंकी कल्पना भी द्रष्टाओंकी गतिके अनुसार सापेक्ष है। यदि रेलवाला द्रष्टा भूमिपरकी किसी लम्बाईको नापेगा, तो अपनी समकालीनताकी कल्पनाके अनुसार और भूमिवाला नापेगा, तो अपनी समकालीनताकी कल्पनाके अनुसार दोनों सिरोंपर एक ही समयमें उपस्थित रहकर नापेगा। एक दूसरा, अपनी लम्बाइयों तथा समयोंको दूसरेके अनुसार ठीक नहीं
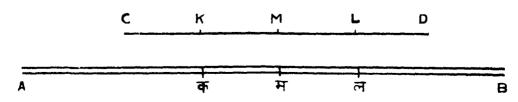
कर सकता; क्योंकि उन दोनोंमें किसके नाप ठीक हैं और किसके गलत, यह पूछना व्यर्थ है। दोनों ही सापेक्ष गतिसे चल रहे हैं। एकको दूसरेके समय बड़े और लम्बाइयाँ छोटी मालूम होंगी। 'आइनस्टाइन' कहता है कि, यह प्रश्न ही व्यर्थ है कि, "वास्तविक लम्बाई क्या है?" हम 'दिशा' को भी निरपेक्ष नहीं समझते ― कलकत्तावालेके लिये उज्जैन पश्चिममें और गुजरात वालेके लिये पूर्वमें, लाहोरवालेके लिये दक्षिणमें तथा मद्रास वालेके लिये उत्तरमें है। किन्तु हम कभी यह प्रश्न नहीं करते कि, उज्जैनकी वास्तविक दिशा कौनसी है? आइनस्टाइनका कहना है कि, दो बिन्दुओंके बीचकी लम्बाई या दो घटनाओंके बीचका समय उन बिन्दुओं अथवा घटनाओंके प्राकृतिक गुण नहीं हैं, बल्कि दिशाओंके समान दर्शक और दृश्यके सम्बन्धपर निर्भर हैं अर्थात् प्रत्येक द्रष्टाके लिये उसका माप ठीक है।

अनुभव तथा गणितसे यह सिद्ध हुआ है कि, यदि किसी द्रष्टाके लिये एक अपनी अपेक्षासे स्थिर वस्तुपरकी लम्बाई ल और समय स है, तो एक दूसरे द्रष्टाके लिये जो ल लम्बाईकी ओर 'आ' आपेक्षिक गतिसे जा रहा है, वह लम्बाई $ल \times \sqrt{१ - \frac{आ^२}{पा^२}}$ होगी और स समय उसके लिये $\frac{स}{\sqrt{१ - \frac{आ^२}{पा^२}}}$ होगा।

इसमें 'आ' पहले और दूसरे द्रष्टाओंकी सापेक्ष गति है, 'पा' प्रकाशकी गति है। यह अन्तर छोटी और धीमी गतियोंके लिये नगण्य है; परन्तु प्रकाशकी गतियोंमें इसका चमत्कार अधिक देखनेमें आता है। यह उदाहरणोंसे अधिक स्पष्ट हो जायगा।

एक रेलगाड़ीकी लम्बाई रेलमें बैठे हुए मापकके लिये ५०० गज है, तो एक भूमिपरके द्रष्टाके लिये उसकी लम्बाई क्या होगी, जब रेलगाड़ी उसके सामनेसे ६० मील प्रति सेकिंडके वेगसे जा रही है? उपर्युक्त फार्मूलाके अनुसार इसकी लम्बाई

$$५०० \times \sqrt{१ - \frac{८८ \times ८८}{(१८६३३० \times १७६०)^२}} = ४९९.९९९९९$$

९९९९९९९९९८ गज होगी। यह अन्तर इतना कम है कि, बारीक-से-बारीक वैज्ञानिक यन्त्रोंसे भी नहीं जाना जा सकता। इसका अर्थ है कि, यदि पाँच शंख गजकी रेल होती, तो उसमें केवल २ गजका अन्तर जान पड़ता; किन्तु ज्यों-ज्यों प्रकाशका वेग आपेक्षिक गतिमें आता जाता है, त्यों-त्यों यह अन्तर बढ़ता जाता है। यहाँतक कि, प्रकाशका वेग प्राप्त कर लेनेपर सब लम्बाइयाँ शून्य हो जाती हैं और काल अनन्त हो जाता है अर्थात् यदि दो ग्रह, पृथ्वी और प्लूटो, प्रकाशके बराबर सापेक्ष गतिसे चल रहे हैं, तो जो लम्बाई एक पृथ्वीपरके द्रष्टाको १००० मील पृथ्वीमें नापनेसे आयगी, वही पृथ्वीपरकी लम्बाई 'प्लूटो' ग्रहपर स्थित द्रष्टाको शून्य मालूम होगी और जो समय पृथ्वीपर १ घंटा होगा, वह 'प्लूटो' को अनन्त मालूम होगा; क्योंकि उसका सेकिंड शून्यके बराबर है। इसी प्रकार पृथ्वी वाला द्रष्टा प्लूटोवालोंकी लम्बाइयों को शून्य तथा समयोंको अनन्त समझेगा। यह और इसी प्रकारके अपेक्षावादके सिद्धान्तसे अनेक परिणाम निकलते हैं, जो मनुष्यको इस सिद्धान्तमें विश्वास करानेमें आड़े आते हैं। उदाहरणार्थ, यदि प्रकाशसे अधिक वेगवाली गतियोंको इस फार्मूलामें लगाया जाय, तो असम्भव परिणाम निकलते हैं अर्थात् काल्पनिक अङ्क प्राप्त होते हैं, जिससे प्रकट होता है कि, प्रकाशकी गतिसे अधिक तीव्र गतिका होना असम्भव है। प्रकाशकी गति गणितज्ञोंकी 'अनन्तता' का कार्य करती है। जिस प्रकार अनन्त वेगसे अधिक वेग नहीं हो सकता, उसी प्रकार प्रकाशकी गतिसे भी तीव्र वेग नहीं हो सकता। आइनस्टाइनके उपर्युक्त परिणामोंमें और 'न्यूटन' के पूर्वोक्त गतियोग-नियममें विरोध पड़ता है; क्योंकि 'न्यूटन' के

गतियोग-नियमके अनुसार यदि दो पदार्थ 'य' और 'व' वेगसे विपरीत दिशाओंमें चल रहे हों, तो उनकी सापेक्ष गति 'य' + 'व' होगी। यद्यपि आइनस्टाइनके गणित और उपर्युक्त नियमोंके अनुसार कोई गति प्रकाशकी गतिसे अधिक नहीं हो सकती; परन्तु प्रकाशसे कम तो हो ही सकती है। अब मान लीजिये कि, दो पदार्थ एक एक लाख मीलकी गतियोंसे विपरीत दिशाओंमें चल रहे हैं, तो दोनोंकी सापेक्ष गति एक लाख+एक लाख अर्थात् दो लाख मील हो जायगी, जो प्रकाशके वेगसे अधिक है। अतः दो सम्भव गतियोंके अस्तित्वसे एक असम्भव परिणाम निकलता है। अतः या तो 'न्यूटन' का गतियोग-नियम गलत है या आइनस्टाइनका उपर्युक्त सिद्धान्त। इस विरोधको समझकर आइनस्टाइनने 'न्यूटन' के गतियोग-नियमके स्थानमें यह नियम बनाया कि, यदि दो पदार्थोंकी 'य' और 'व' गतियाँ हैं, तो उनकी सापेक्ष गति $\frac{\text{य+व}}{१+\frac{\text{य×व}}{\text{पा}^२}}$ होगी। हमारे नित्य अनुभवमें तथा प्रयोगोंमें आनेवाली गतियाँ इतनी धीमी होती हैं कि, $\frac{\text{य×व}}{\text{पा}^२}$ सदा शून्यके बराबर माना जा सकता है; इसलिये 'न्यूटन'के नियममें और आइनस्टाइनके उपर्युक्त नियमके परिणामोंमें इतना कम अन्तर पड़ता है कि, उसे हम विस्मरण कर सकते हैं। परन्तु यदि हम 'य' तथा 'व' को पृथक्-पृथक् प्रकाशकी गतिके बराबर भी मान लें, तो भी आइनस्टाइनके सिद्धान्तके अनुसार दोनोंकी सापेक्ष गति प्रकाशके बराबर ही होगी।

एक समतलमें स्थानोंके निर्धारित करनेके लिये गणितज्ञ दो परस्पर रेखाएँ खींचते हैं और किसी स्थान k को निर्धारित करनेके निमित्त उस k स्थानसे दो माप x तथा y मालूम कर लेते हैं—
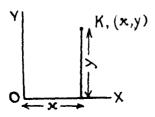
साधारण विद्वानोंको गणितज्ञके इस माप-विधानमें कदाचित् कोई अनोखापन मालूम हो; किन्तु यदि वे तनिक विचारसे काम लें, तो उन्हें भली भाँति विदित हो जायगा कि, किसी रेखामें अर्थात् एक परिमाणीय पदार्थमें, किसी स्थानको निर्धारित करनेके लिये, एक माप पर्य्याप्त होगा। किसी समतलमें अर्थात् द्विपरिमाणीय पदार्थमें, किसी स्थानको निर्धारित करनेके लिये कम-से-कम दो मापोंकी आवश्यकता होगी तथा किसी त्रिपरिमाणीय पदार्थमें (जैसे आकाश) किसी स्थानको निर्धारित करनेके लिये कम-से-कम तीन नापोंकी आवश्यकता होगी। समतलमें किसी विन्दु k को स्थानापन्न करनेके लिये OX तथा OY उपरि चित्रित दो रेखाएँ परस्पर लम्ब मानकर उस बिन्दुका उन्हीं दोनोंसे फ़ासला माप लेते हैं, जिसको x तथा y कहते हैं और आकाशमें मापनेके लिये तीन परस्पर लम्ब रेखाएँ निम्न चित्रके अनुसार मान लेते हैं, जिनको ox, oy तथा oz कहते हैं और किसी बिन्दु k को निर्धारित करनेके लिये उन्हीं तीनोंसे उस बिन्दुका फ़ासला x, y और z नाप लेते हैं।
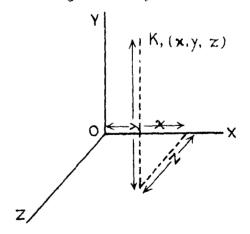
इस साधनको अँगरेजीमें को-आरडीनेट सिस्टम अथवा रिफरेंस फ्रेम कहते हैं। हम इसको हिन्दीमें 'मापक साधन' कहेंगे। प्रत्येक द्रष्टाके लिये उसके मापक साधन की भुजाओंकी दिशाएँ उसके लिये विशेष अथवाली होंगी।

बतानेकी आवश्यकता होती है, तब वह केवल X—x और Y—y ही बताना जानता है, तो वह जिस समय यह जानेगा कि, अन्य द्रष्टा उसी लम्बाईके अन्य नापके और ही नाप X'–x' और Y'--y' आदि बताते हैं, तो वह अत्यन्त आश्चर्यान्वित होगा; क्योंकि उसके अनुभवमें तो सदैव G k का नाप X-x, Y-y ही होगा। वह समझेगा कि, मेरा नाप ही सत्य है और दूसरेका असत्य, तब हमें उसको K G रेखा बतानी पड़ेगी और यह भी समझाना पड़ेगा कि, X और Y नाप K और G बिन्दुओंके प्राकृतिक गुण नहीं हैं, बल्कि द्रष्टाकी अपेक्षासे सापेक्ष हैं;

क्योंकि G K रेखाकी लम्बाई नापनेके लिये एक द्रष्टा O X तथा O Y और दूसरा द्रष्टा O' X' तथा O' Y' भिन्न-भिन्न दिशाओंमें अपने मापक साधनोंकी भुजाओंको रखते हैं। पहला द्रष्टा G K की लम्बाईको मालूम करनेके लिये M' G तथा M' K नाप लेगा और दूसरा द्रष्टा M' G और M' K। अतः दोनों द्रष्टाओंके नापोंमें इनके मापक साधनोंकी दिशाओंकी विभिन्नताके कारण अन्तर आ जायगा। किसी स्थानका फासला पृथ्वीपर बतानेके लिये हम भी कहते हैं कि, वह पांच मील उत्तर और ६ मील पूर्व है। किन्तु K G की लम्बाई दोनों द्रष्टाओंके लिये वही आवेगी; क्योंकि G K की लम्बाई

$$=\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2} = \sqrt{MG^2+MK^2}$$

$$=\sqrt{(X'-x')^2+(Y'-y')^2} = \sqrt{M'G^2+M'K^2}$$

यह दोनों यूकलिडके अनुसार बराबर हैं।

अब यदि थोड़ी देरके लिये यह मान लिया जाय कि, एक द्रष्टाके पास G K लम्बाई नापनेके लिये सिवा O X और O Y दो दिशाओंके नाप बतानेके अन्य कोई विधान नहीं हैं अर्थात् यदि उसका मापक साधन (उत्तर-पूर्व) दिशाओंमें है, तो जब किसी लम्बाईका माप

परन्तु G K की लम्बाई ही उन बिन्दुओंका एक निरपेक्ष गुण है, जो द्रष्टाकी स्थितिपर निर्भर नहीं है। प्रत्येक द्रष्टाके लिये वह एक ही है, चाहे उनके मापक साधनकी भुजाएँ किसी दिशाकी ओर हों। उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, उत्तर पश्चिम अथवा अन्य असंख्य परस्पर भुज युग्मके नाप, जिनको प्रत्येक द्रष्टा खड़ी और पड़ी भुजाओंके नाप कहेगा, उन K और G बिन्दुओं और भिन्न-भिन्न द्रष्टाओंके सम्बन्ध मात्र हैं। भिन्न-भिन्न द्रष्टा K G रेखाको भिन्न भिन्न खड़ी-पड़ी दिशाओंके नापोंमें विभक्त करेंगे। एकको दूसरेके नापोंमें अविश्वास इस लिये होगा कि, प्रत्येकने अपनी खड़ी दिशाको पड़ी दिशासे पृथक् समझ लिया है तथा प्राकृतिक मान लिया है और दूसरेकी दिशाओंको भी अपनी दिशाओंके अनुकूल माना है।

इसी प्रकार हमने 'आकाश' और 'समय' को भी पृथक्-पृथक् मान लिया; परन्तु हमें आजतक कभी घटना-रहित स्थान और स्थान-रहित घटनाका अनुभव नहीं हुआ। यदि कोई वस्तु आकाशमें स्थित होकर समयमें स्थित न हो अथवा समयमें रहकर स्थानमें न हो, तो वह अस्तित्वहीन ही है। अतः यह संसार त्रिपरिमाणीय न होकर चतुष्परि-

माणीय है । यह कोई भयानक कल्पना नहीं है । इसका केवल इतना ही अर्थ है कि, संसारमें किसी घटनाको निर्धारित करनेके लिये X, Y, Z तीन आकाशीय नापोंसे ही काम नहीं चल सकता; बल्कि एक चौथे नाप T अर्थात् समयकी भी आवश्यकता है । संसार असख्य बिन्दुओंका जमघट न होकर घटनाणुओंका समुदाय है । घटनाणु देशके किसी बिन्दुपर कालके किसी क्षणको कहते हैं । यह घटनाणु चार नापवाले हैं और किसी चतुष्परिमाणीय मापक साधनकी भुजाओंपर आगे-पीछे, दायें-बायें, ऊपर-नीचे और पूर्व-पश्चात् अपेक्षाओंसे नापे जाते हैं । बहुतसे घटनाणुओंके समुदायको घटना' कहते हैं । किसी घटनाणु 'अ' को निर्धारित करनेके लिये X, Y, Z की आवश्यकता होगी । किसी दूसरे घटनाणु 'ब' के नाप x, y, z और t होंगे, जो पृथक्-पृथक् 'अ' के नापोंसे भिन्न होंगे; परन्तु दोनोंका समयाकाश व्यवधान $\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2+(Z-z)^2-(CT-ct)^2}$ प्रत्येक द्रष्टाके लिये ठीक उसी प्रकार समान होगा, जिस प्रकार द्विपरिमाणीय देश तथा त्रिपरिमाणीय देशमें क्रमानुसार $\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2}$ और $\sqrt{(X-x)+(Y-y)^2+(Z-z)^2}$ अर्थात् दो बिन्दुओंके मध्यकी सीधी रेखाके नाप सारे द्रष्टाओंके लिये एक ही होंगे—उनके मापक साधनकी भुजाओंके पृथक्-पृथक् नाप X,x—Y,y और Z, z भले ही भिन्न हों । मतलब यह कि, जिस प्रकार हम अपने स्वाभाविक देशकी ऊँचाई, चौड़ाई तथा लम्बाईको भिन्न स्वतन्त्र सत्ताएँ न मानकर सबके मिश्रणको देश कहते हैं, उसी प्रकार समय और आकाशको भी दो स्वतन्त्र सत्ताएँ न मानकर दोनोंके मिश्रणको समयाकाश-विस्तार (Space time continuum) मानना चाहिये । दो भिन्न द्रष्टाओंको चाहे एक दूसरेके देश (लम्बाई चौड़ाई आदि) के मापों और समयके मापोंमें अन्तर प्रतीत होगा, किन्तु दो घटनाणुओं (Point-events) के मध्यवर्ती व्यवधान—(जो न समय ही है और न आकाश ही प्रत्युत दोनोंका अपृथक्करणीय सम्मिश्रण)—सब द्रष्टाओंके लिये समान होगा, चाहे वे किसी सापेक्ष गतिसे चल रहे हों । यही एकमात्र ज्ञान निरपेक्ष है, शेष समस्त ज्ञान सापेक्ष ।

आइनस्टाइनकी कीर्त्ति "अपेक्षावादका विशेष सिद्धान्त" (Special Theory of Relativity) के नामसे प्रसिद्ध है । इसमें केवल सीधी समान वेगवाली गतियोंका ही विचार किया गया है और उन्हींकी सापेक्षताको सिद्ध किया गया है एवम् उस सापेक्षताके कारण उत्पन्न हुए भ्रान्त ज्ञानको संशोधित करनेका मार्ग बताया गया है । परन्तु इसके बाद "अपेक्षावादके सामान्य सिद्धान्त" का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें सीधी सरल गतियोंके अतिरिक्त घूमनेवाली, वेगान्तरवाली गतियों तथा आकर्षण-सामर्थ्य-मात्रा आदिपर विचार किया गया है और इन सबको, 'अपेक्षावाद' की दृष्टिसे, विवेचना की गयी है । इसमें गूढ़तम गणित क्रियाओं तथा एक नवीन 'कैल्कुलस' (जिसको "कैल्कुलस आव टेंसर्स"—Calculus of Tensors कहते हैं) का प्रयोग किया है, जो संसारके किसी विश्वविद्यालयमें नहीं पढ़ाया जाता और जिसके सम्बन्धमें स्वयम् आइनस्टाइनने यह प्रश्न उठाया था कि, क्या संसारमें एक दर्जन गणितज्ञ ऐसे होंगे, जो इस Abstruse कैल्कुलससे अभिज्ञ हों ? बिना गणित जाने मनुष्य केवल इसके परिणामोंकी सत्यतापर विश्वास ही कर सकता है, उनको समझ नहीं सकता । आकर्षणको 'न्यूटन'ने एक शक्ति माना था, जो अदृश्य रूपसे प्रत्येक पदार्थके अणुओंमें स्थित है और जिसके कारण हर दो पदार्थाणु एक दूसरेको अपनी ओर खींचते हैं । यह आकर्षण-शक्ति पदार्थकी मात्रा पर निर्भर है अर्थात् १ सेर पदार्थमें दो सेर पदार्थसे आधी आकर्षण-शक्ति होगी । पृथ्वीमें सूर्यकी अपेक्षा कम आकर्षण-शक्ति है और चन्द्रमाकी अपेक्षा अधिक है; क्योंकि पृथ्वी सूर्यसे मात्रामें कम और चन्द्रमासे

अधिक है। परन्तु यह शक्ति न्यूटनके मालूम किये हुए नियमके अनुसार (ज्यों-ज्यों पदार्थसे फ़ासला बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों) कम होती जाती है। यहाँतक कि, कुछ दूरके बाद इसका अस्तित्व ही नहीं रहता। इस शक्तिमें दो विशेषताएँ भी हैं। प्रथम तो यह हर प्रकारके पदार्थपर अपना प्रभाव डालती है अर्थात् पृथ्वीको लें, तो यह लोहा, चाँदी, लकड़ी, पानी, हवा सब प्रकारके पदार्थोंपर समान प्रभाव डालती है अर्थात् सबको अपने केन्द्रकी ओर खींचती है; दूसरे आकर्षक और आकर्षित पदार्थोंके बीचमें कितनी भी रुकावट पैदा कर दें, कितने भी मोटे-मोटे परदे तान दें; परन्तु यह शक्ति उन समस्त बाधाओंको बेधकर भी अपना प्रभाव डालती है। यह आकर्षण एक प्रकारका Action at a distance अर्थात् माध्यम-रहित क्रिया है, जिसको वैज्ञानिक असम्भव समझते हैं; अतः चुम्बकके अनुभवके अनुसार यह माना गया है कि, प्रत्येक पदार्थके चारों ओरके देशमें एक आकर्षणीय क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है, जिसमें शक्ति-रेखाएँ चारों ओरको फैल जाती हैं और इन शक्ति-रेखाओंके किसी पदार्थसे स्पर्श हो जानेसे वह आकर्षण शक्ति खींचने लगती हैं। परन्तु यह केवल कल्पनामात्र और मन-बहलाऊ सिद्धान्त था; क्योंकि शून्यमें रेखाओंका होना एक अचिन्त्य कल्पना है। आकर्षण-शक्तिसे जो पदार्थ खिंचता है, वह वेगान्तरसे आकर्षकको ओर आता है और यह वेगान्तर उस आकर्षित पदार्थकी किस्म (लोहा, लकड़ी आदि) के आश्रित नहीं होता, सब प्रकारके पदार्थोंमें वही वेगान्तर उत्पन्न होता है।

घूमनेवाली गतियोंमें भी वेगान्तर होता है। वेगान्तरका प्रभाव तुरत मालूम पड़ने लगता है। समस्त आकाशमें यदि एक ही घूमता हुआ पदार्थ स्थित हो, तो उस पदार्थपरके किसी भी द्रष्टाको बिना बाहरी पदार्थोंकी अपेक्षाके अपने गतिशील होनेका ज्ञान हो जायगा; क्योंकि 'केन्द्रीय शक्ति' (Centrifugal Force) इसमें अधिक उत्पन्न हो जाती है, जो उसको समस्त स्थिर तथा सरल गति वाले पदार्थोंसे भिन्न सिद्ध कर सकती है। यह अपेक्षावादीको अमान्य है। उसका कहना है कि, पृथ्वीको घूमती और समस्त विश्वको स्थिर माना जाय, तो समस्त क्रियाएँ, घटनाएँ आदि ठीक उसी प्रकारकी होनी चाहिये, जैसी कि, पृथ्वीको स्थिर और समस्त विश्वके उसके चारों ओर घूमनेकी दशामें होतीं। किन्तु अनुभव इसके विरुद्ध साक्षी देता है। यदि कोई रेलगाड़ी सरल गतिमें चल रही हो, तो हमें, यदि हम भी उसीमें बैठे हैं, उसकी स्थिरता अथवा गति-शीलताके मालूम करनेका कोई भी साधन प्राप्त नहीं। चलती रेलमें जितने भी प्रयोग आदि किये जायँगे, वे ठीक उसी परिणामपर पहुचेंगे, जिसपर स्थिर रेलमें किये गये प्रयोग पहुँचते। परन्तु यदि वही रेलगाड़ी स्टेशन आनेपर धीरे-धीरे थमने लगे, तो हमें उसकी गतिशीलताका ज्ञान, बिना किसी बाह्य पदार्थकी अपेक्षाके, स्वतः होने लगता है। हमारा शरीर एक ओरको झुकने लगता है। यहाँ तक कि, यदि हम सावधान न हों, तो हम गिर भी जाते हैं। यह इस लिये होता है कि, ठहरते समय रेलकी समान गति न रहकर वेगान्तरवाली गति हो जाती है और Inertia के कारण हमें धक्का लगता है। जिसे इसका नया अनुभव होगा, वह शरीरका झुक जाना किसी अदृश्य शक्तिका कारण होना अनुमान करेगा। घूमना भी एक प्रकारकी वेगान्तर गति है। अतः आइनस्टाइनने विचारा कि, सम्भव है कि, आकर्षण और वेगान्तर, दोनों ही पदार्थकी मात्रापर निर्भर होनेके कारण कहीं एक ही न हों। आकर्षणशक्ति तथा वेगान्तर-जनित शक्तिकी समानता सिद्ध करनेके लिये आइनस्टाइनने एक उदाहरण भी दिया है।

मान लीजिये कि, एक कमरा (जिसमें एक मनुष्य भी है) देशमें एक ऐसे स्थानपर ले जाया गया है, जो समस्त

पदार्थोंसे बहुत दूर है अर्थात् कोई आकर्षण-क्षेत्र उसके समीप नहीं है। उस कमरेमें पृथ्वीकी सी दशा न होगी। जो पदार्थ कमरेके फर्श, और छतके बीचमें छोड़ दिया जायगा, वह वहीं लटका रहेगा। परन्तु कल्पना कीजिये कि, एक देव उस कमरेकी छतमें एक रस्सी बाँधकर वेगान्तरसे उस कमरेको खींचकर ले जाता है। अब एकदम उसके पैर फ़र्शपर आ जमेंगे. उसको ऊपर नीचेका ज्ञान होने लगेगा (जो स्थिरतामें उसे न था)। जो चीज़ वह हाथसे गिरावेगा, वह वेगान्तरसे फ़र्शकी ओर गिरती प्रतीत होगी। प्रत्येक वस्तु, चाहे वह लोहेकी हो अथवा लकड़ी आदिकी, समान वेगान्तरसे फर्शकी ओर गिरेगी। अपने पूर्व अनुभवके आधारपर वह मनुष्य कल्पना करेगा कि, वह तथा उसका कमरा एक आकर्षणीय क्षेत्र (Gravitational Field) के अन्दर है। एक मनुष्य (जो दूर देशमें स्थित उस देवकी क्रियाको देख रहा था) समझ लेगा कि, यहाँ कोई आकर्षण-क्षेत्र नहीं; परन्तु कमरेके अन्दरवाले मनुष्यने जो आकर्षण-क्षेत्रकी कल्पना की, वह भी बुद्धि-रहित न होकर उसके अनुभवपर ही निर्भर है। मतलब यह कि, एक वेगान्तरसे चलते हुए पदार्थको स्थिर माना जाकर हम वेगान्तरके प्रभावोंको आकर्षण द्वारा समझाया जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त दृष्टान्त पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिके सम्बन्धमें विषम है; क्योंकि पृथ्वीपर कोई पदार्थ कमरेके फर्शके सदृश एक ही ओर को नहीं गिरता, बल्कि पृथ्वीके चारों ओरके पदार्थ प्रत्येक दिशामें पृथ्वीके केन्द्रकी ओर गिरते हैं। यदि उपर्युक्त दृष्टान्तका कुछ मूल्य है, तो यह मानना चाहिये कि, पृथ्वी प्रत्येक दिशामें वेगान्तर गतिसे उठ रही है अर्थात् फुटबालमें हवा भरनेके समान वेगान्तरसे चारों ओरको फूलती जाती है। यह एक उन्मत्त कल्पना है। अतः आइनस्टाइनने कहा कि, देशके गुण 'यूकलिड'के माने हुए गुणोंसे भिन्न होंगे। उसने एक उदाहरण दिया है। मान लीजिये कि, एक मनुष्य 'क' एक गोल चपटे चक्रपर स्थित है। वह चक्र घूमने लगा, तो उसको प्रत्येक वस्तु उसपरसे बाहरको भागती दिखाई देगी। अब यदि वह उस वृत्त-तलके केन्द्रपर एक 'घ' घड़ी रख
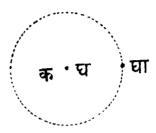
दे और दूसरी 'घा' घड़ी उसके सिरेपर और यदि वह केन्द्रपर स्थित है, तो उसको 'घा' घड़ी 'घ' से सदा सुस्त चलती प्रतीत होगी। यदि एक तीसरी घड़ी इन दोनोंके बीचमें रख दी जाय, तो वह घड़ी 'घा' से तेज और 'घ'से सुस्त चलती प्रतीत होगी। अतः हम एक सामान्य नियम बना सकते हैं कि, आकर्षण-क्षेत्रके अन्दर घड़ियाँ अपने स्थानके अनुसार भिन्न-भिन्न गतिसे चलेंगी अर्थात् यदि कोई द्रष्टा अपने मापक साधनकी अपेक्षासे किसी आकर्षण-क्षेत्रमें स्थिर हो और घड़ियाँ भी उसकी अपेक्षासे स्थिर हों, तो वह समयकी कोई परिभाषा नहीं बना सकता, न समय नापनेका एक सुयोग्य नियम ही ढूँढ़ सकता है। अब यदि वह किसी मापक दण्डसे उस घूमते हुए वृत्तको सिरेपरसे नापना आरम्भ करे, तो उसका मापक दण्ड उसकी गतिकी दिशामें छोटा हो जायगा; परन्तु Diameter (व्यास) की ओर उसमें सिकुड़न प्रतीत न होगी; क्योंकि Diameter गतिकी दिशासे लम्बकी दिशामें नापे जायँगे। अतः वृत्तपरिधि तथा Diameter का जो सम्बन्ध स्थिरताकी दशामें होता है, उसे बड़ा विदित होगा। अतः आकर्षण-क्षेत्रमें यूकलिडकी रेखागणित अशुद्ध सिद्ध होगी। वेगान्तरके कारण सरल रेखाएँ वक्र हो जायँगी। जहाँ पदार्थ है, वहाँ आकर्षण है, जहाँ आकर्षण है, वहाँ वेगान्तर और जहाँ वेगान्तर है, वहाँ यूक्लिडकी रेखागणित अशुद्ध है। प्रत्येक आकर्षण-क्षेत्रका एक अपना रेखागणित होता है, जो

उसी क्षेत्रमें ठीक होता है, अन्यमें नहीं। इन भिन्न रेखा-गणितोंमें तथा भिन्न भिन्न आकर्षण-क्षेत्रोंमें क्या सम्बन्ध है, यह ज्ञात होनेपर एक सार्व-भौमिक नियम बनाया जा सकता है, जो सब रेखागणितोंको समान रूपसे लागू होता हो। इसीको सम्पूर्ण समयाकाश-विस्तार का रेखा-गणित कह सकते हैं। आइनस्टाइनने इस अखिल ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी रेखा-गणितको जिस गणितकी सहायतासे और जिस विधिसे प्राप्त किया, वह सब उल्लेख करना अत्यन्त दुस्तर है और वह इस लेखका विषय भी नहीं हो सकता।

यूनानके प्रसिद्ध गणितज्ञ 'यूक्लिड' ने ईसासे तीन शताब्दियाँ पूर्व "आकाश और उसके मापका विधान" नामक एक सुप्रबन्धयुक्त रेखागणितका निर्माण किया और आजकल जो स्वयंसिद्धियाँ आदि स्कूलों और कालेजोंमें पढ़ायी जाती हैं, वे 'यूक्लिड' की ही कल्पना की हुई हैं। यूक्लिडने सीधी-सादी बातसे आरम्भ किया—आकाश बिन्दुओं, रेखाओं तथा समतलोंका बना है। बिन्दु निष्परिमाणीय है, रेखा एक परिमाणीय तथा समतल द्विपरिमाणीय। निष्प-रिमाणीय बिन्दुके एक ओर बढ़नेसे एक परिमाणीय रेखा, एक परिमाणीय रेखाके एक ओर बढ़नेसे द्विप-रिमाणीय समतल और द्विपरिमाणीय समतलके एक ओर बढ़नेसे त्रिपरिमाणीय आकाश उत्पन्न होते हैं। यह आकाशका काल्पनिक विश्लेषण है; क्योंकि संसार-में न वास्तविक बिन्दु ही विद्यमान है और न वास्त-विक रेखा अथवा समतल ही; तथापि इस विभागसे नापने तथा गणनामें बहुत सहायता मिली। परन्तु यूक्लिडकी समस्त कीर्तिपर पानी फेरनेवाला उसका Parallel postulate था। इसकी सिद्धिके लिये बड़े-बड़े गणितज्ञोंने अपनी समस्त शक्ति लगा डाली; पर जब वे इसको सिद्ध न कर सके, तब उनको यह सन्देह होने लगा कि, कहीं 'यूक्लिड'का सम्पूर्ण रेखागणित ही निर्मूल भित्तिपर न बना हो। अतः इटलीमें 'सेकरी'ने, जर्मनीमें 'गौस'ने, फ्रान्समें 'लीजेंडर'ने, हंगरीमें 'बुलये'ने और रूसमें 'लोबाश्यूस्की'ने (जो सब 'यूक्लिड'के रेखागणितके पण्डित थे) अन्य किसी प्रकारसे आकाशके विभाग करनेकी कल्पना की और उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें कई एक अन्यूक्लिडीय रेखागणित (Non-Euclidean Geometries) यूरोपके कई देशोंमें लगभग साथ ही साथ प्रकाशित हो गये; परन्तु सन् १८५४में 'रीमैन'ने जिस अन्यूक्लिडीय रेखागणितका निर्माण किया, वह अन्य रेखागणितोंकी अपेक्षा 'आइनस्टा-इन'की दृष्टिमें प्रकृतिकी सत्ताके अधिक समीप था। आइनस्टाइनको "अपेक्षावादका सिद्धान्त" निकालनेमें उस भूमितिकी सहायता बहुत मिली।

आइनस्टाइनका रेखागणित चतुष्परिमाणीय है। चौथा परिमाण समयका है; किन्तु चार परिमाण होनेसे ही यह सिद्ध नहीं होता कि, देश अन्यूक्लिडीय है। जिस प्रकार तीन परिमाणका देश होनेसे यूक्लिडके द्विपरिमाणीय समतल तथा एक परिमाणीय रेखाका खण्डन नहीं होता, उसी प्रकार तीन परिमाणोंमें एक और मिल जानेसे तीन परिमाणवाले आकाशका नाश हो जाना अथवा असत्य सिद्ध हो जाना आवश्यक नहीं है। समयको चौथा परिमाण मानकर भी देशकाल यूक्लिडीय हो सकता है। रूसके गणितज्ञ 'मिंकोस्की'ने जो चतुष्परिमाणीय रेखा-गणित बनाया है, वह यूक्लिडीय ही है। देश चतुष्परिमाणीय तथा यूक्लिडीय कैसे हो सकता है?

कल्पना कीजिये कि, देश यूक्लिडका एक ही परिमाण-वाला है अर्थात् एक रेखा मात्र है। इस देशमें दो बिन्दुओं-के बीचका अन्तर जाननेके लिये मापक साधन (Reference Frame) की केवल एक ही भुजा होती, जिसको OX कहते और वह अन्तर $\sqrt{(\overline{x-x})^2} = \overline{x-x}$ होता। यदि देश दो परिमाणका होता, तो दो बिन्दुओंके बीचके अन्तरको प्राप्त करनेके लिये भुजयुग्मकी दो भुजा

OX तथा OY की आवश्यकता होती और वह अन्तर $\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2}$ होता। यदि देश तीन प्रकारका होता (जैसा कि, सम्भवतः है), तो भुजत्रयकी तीन भुजा ों OX, OY तथा OZ की आवश्यकता होती और दो बिन्दुओंका अन्तर $\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2+(Z-z)^2}$ होता। इसी प्रकार यदि देश चार परिमाणका होता, तो यूक्लिडके रेखागणितके अनुसार मापक साधनकी चार भुजा OX, OY, OZ तथा OT की आवश्यकता होती और उस चतुष्परिमाणीय देशकालमें दो बिन्दुओंके बीचका अन्तर $\sqrt{(X-x)^2+(Y-y)^2+(Z-z)^2+(T-t)^2}$ होता। किन्तु आइनस्टाइनके रेखागणितमें चौथे कोष्ठकके पहले 'धन' का चिह्न न होकर ऋणका चिह्न है। बस, यही ऋणका चिह्न है, जो आइनस्टाइनके चौथे परिमाणकी कल्पनाको अन्यूक्लिडीय बना देता है। यदि हम देशके तीनों परिमाणोंके लिये एक ही भुजा OS का प्रयोग करें, तो आइनस्टाइनके चतुष्परिमाणीय समयाकाश-विस्तारमें दो घटनाओंके बीचका व्यवधान $\sqrt{(S-s)^2-(T-t)^2}$ इस सिद्धान्तसे प्राप्त होगा अर्थात् इस समयाकाश-विस्तारमें किसी समकोण त्रिभुज (Right-angled Triangle) की Hypotenuse का वर्गमूल शेष दोनों भुजाओंके वर्गमूलोंका योगफल न होकर उनका शेषफल होगा। यह तभी सम्भव है, जब उस देशकाल-विस्तारमें संकीर्णता अथवा वक्रता हो। यह वक्रता पदार्थके आस-पासके समयाकाशमें अधिक होती। पदार्थसे दूर कम होती जाती है। पदार्थमें कोई आकर्षण-शक्ति नहीं है। यह आकर्षण-शक्ति वेगान्तरके कारण खींचती हुई प्रतीत होती है। वास्तवमें यह पदार्थके आस पासके समयाकाशका गुण है कि, पदार्थ वहाँ विकीर्ण रूपसे चलने लगता है और द्रष्टाको आकर्षण-शक्तिका वेगान्तरके कारण धोखा होता है। यूक्लिडके मतसे बाधा-रहित पदार्थ स्थिर रहेगा। न्यूटनके मतानुसार बाधा-रहित पदार्थ सरल रेखामें समान गतिसे चलेगा। आइनस्टाइनके मतानुसार अबाधित पदार्थ न्यूनपथ (Geodesics) में चलेगा और जब पदार्थके समीप आयगा, तब उसकी गतिमें वेग उत्पन्न हुआ प्रतीत होगा तथा वक्र चलेगा; क्योंकि पदार्थके पासके न्यून पथ इसी प्रकारके होते हैं। पदार्थ कभी स्थिर नहीं रह सकता; क्योंकि पदार्थके कण-कणमें महान् सामर्थ्यका होना पदार्थके कभी स्थिर न रहनेमें एक बड़ा प्रमाण है। अनुभव भी यही कहता है कि, छोटेसे छोटे परमाणु तथा ऋणाणुसे लेकर बड़ेसे बड़े सूर्य, नक्षत्र, नीहारिकाएँ आदि जहाँतक मनुष्यके यन्त्रोंकी पहुँच है, सब गतिशील हैं। अतः सिद्ध हुआ कि, प्रत्येक अणु, परमाणु तथा सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि अपने-अपने न्यून पथोंपर गिर रहे हैं।

आइनस्टाइनके सिद्धान्तकी पुष्टिमें कई एक प्रमाण ऐसे हैं, जो अकाट्य हैं। आइनस्टाइनने पहलेसे ही बतला दिया था कि, प्रकाश भी न्यून पथपर चलनेके कारण जब किसी बड़े पदार्थके समीप होगा, तब उस देश-कालकी वक्रताके कारण उस पदार्थकी ओर झुक जायगा। अतः जो तारे सूर्य्यके बिम्बके किनारेके पीछे होनेके कारण देखे नहीं जा सकते, वे प्रकाश झुक जानेके कारण दिखाई देने लगेंगे। मान लीजिये कि, सूर्य्यके पीछे 'ता' एक
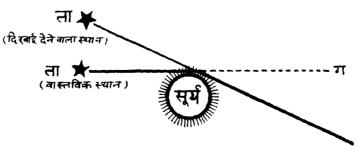
तारा है और 'आ' पृथ्वीपरके एक दर्शककी आँख है। 'ता'से प्रकाश-रश्मियाँ निकलकर चारो ओर फैलती हैं; परन्तु तारे और आँखकी ओटमें सूर्यके होनेसे कोई प्रकाश-रश्मि आँखतक नहीं पहुँच सकती। अतः तारा आँखको नहीं दिखाई दे सकता। परन्तु आइनस्टाइनके मतानुसार तारेसे जो रश्मि म' तक जाती है, वह अपने सीधे पथ 'म ग'को त्याग कर देश-कालके वक्र होनेके कारण 'म'से 'आ'की ओर झुक जाती है। अतः आँख उस रश्मिके द्वारा 'म' की सीधमें 'ता'पर देखती है; क्योंकि आँखका गुण है कि, प्रकाशकी रश्मिके साथ वह नहीं घूमती, बल्कि सीधा देखती है। सन् १९१९ की २५ मईको जब सूर्य्य-ग्रहण पड़ा था, तब ज्योतिषियोंने आइनस्टाइनकी इस अग्रिमोक्ति (Prediction) की परीक्षा की, तो बिलकुल सत्य पाया।

दूसरी परीक्षा बुध ग्रहकी चालके सम्बन्धमें थी। आकर्षणके कारण समस्त ग्रह सूर्यकी प्रदक्षिणा वृत्ताकार पथमें न करके अण्डाकार पथमें करते हैं और सूर्य उस अण्डाकार पथके केन्द्रमें न रहकर एक ओरको हटा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि, ग्रह अपने प्रदक्षिणा-पथमें कभी तो सूर्यके अति निकट आ जाता है और कभी अति दूर। प्रदक्षिणापथके उस भागको, जो सूर्यके निकटतम है, Perihelion ('निकट पथ') तथा दूरतमवाले भागको Aphelion ('दूर पथ') कहते हैं।

न्यूटनके नियमके अनुसार यदि सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेवाला केवल एक ही ग्रह होता, तो उसका प्रदक्षिणापथ (अचल नक्षत्रोंकी अपेक्षासे) कभी अपना भ्रमणपथ (Orbit) न बदलता, जबतक किसी बाह्य कारणसे उसमें बाधा न पड़ती। परन्तु जहाँ किसी सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेवाले एकसे अधिक ग्रह होंगे (जैसे कि, हमारे सौर जगत्‌में हैं), तो प्रत्येक ग्रहके भ्रमणपथका 'निकट पथ' एक चक्करमें अर्थात् एक वर्षमें ग्रहकी गतिकी ओर कुछ बढ़ जायगा। कितना बढ़ जायगा, यह गणितसे सरलतासे मालूम हो सकता है। हिसाब लगानेसे बुधके perihelion को प्रति शताब्दी ५३२" बढ़ जाना चाहिये; परन्तु वास्तवमें वह ५७४" बढ़ता है। अतः सौ वर्षमें ४२" अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार निरीक्षणमें और आकर्षणके सिद्धान्तमें बहुत अन्तर पड़ता था, जिसके कारण वैज्ञानिक बड़े असमञ्जसमें थे। आइनस्टाइनसे पूर्व इस समस्याको सुलझानेका प्रयत्न इस प्रकार किया गया था कि, सूर्यके बिम्बको वृत्ताकार न मानकर ध्रुवोंपर किञ्चित् चपटा मान लिया गया था। यदि सूर्यका अक्षांशिक व्यास (Equatorial Diameter) ध्रुवोंके मध्यके व्यास (Polar Diameter) से केवल आधा इंच बड़ा हो, तो भी यह ४२" प्रति शताब्दी बुधके निकट पथका बढ़ जाना ठीक हो सकता है; परन्तु ऐसा माननेसे और परिणाम भी होने चाहिये थे, जो नहीं होते अर्थात् बुधके भ्रमणपथको ३" प्रति शताब्दी झुक जाना चाहिये था; परन्तु झुकता नहीं। आइनस्टाइनने बिना कोई बात माने केवल अपेक्षावादके सिद्धान्तसे यह सिद्ध कर दिया कि, सूर्य जैसा बड़ा पदार्थ बुधके निकटपथके पास कितना संकीर्ण समयाकाश उत्पन्न करेगा और उस देश-कालकी वक्रताके कारण बुधकी गतिमें कितना वेगान्तर उत्पन्न हो जायगा? हिसाब लगानेपर वह वेगान्तर ४३" प्रति शताब्दी निकला, जो यन्त्रोंकी निरीक्षण-सम्बन्धी त्रुटियोंका ध्यान रखते हुए

बहुत ठीक है। यह वेगान्तर अन्य ग्रहोंमें भी होता है; परन्तु बुध सूर्यके समीपतम है, अन्य ग्रह दूर हैं; इसलिये यह वेगान्तर अन्य ग्रहोंमें बहुत कम होता है। मङ्गल ग्रहके निकटपथमें ४" प्रति शताब्दीका अन्तर आता था। आइनस्टाइनने हिसाब लगाकर २·७" प्रति शताब्दी वेगान्तर होना सिद्ध किया है। १·३" यन्त्रोंकी त्रुटियोंके कारण न्यूनाधिक हो सकता है। इसी प्रकार और परीक्षाओंमें भी "अपेक्षावादका सिद्धान्त" उत्तीर्ण हुआ है, जिनका यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है।

अपेक्षावादके सिद्धान्तकी नींवको सुदृढ़ कर चुकनेके पश्चात् आइनस्टाइनका ध्यान संसारके समष्टि-रूपकी ओर गया है। अनेक उदाहरणों द्वारा उसने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि, यह संसार अपरिमित होते हुए भी अनन्त नहीं है। वह कहता है कि, यह संसार चार परिमाणोंमें उसी प्रकारका है, जैसा कि, अण्डाकार तल। अण्डाकार तलपर रहनेवाला द्विपरिमाणीय व्यक्ति जिस प्रकार अपनी दुनियाको नापेगा, (तो जो रेखाएँ सीधी समझकर वह उसपर स्थापित करेगा, वे सब वक्र होंगी और बढ़ते-बढ़ते पुनः अपने ही ऊपर लौट जायँगी।) उसी प्रकार हमारे इस चतुष्परिमाणीय जगत्में भी कोई सीधी रेखा नहीं खींची जा सकती। हम जिसे सरल रेखा कहते हैं, वह वास्तवमें एक बड़े वृत्तका न्यून भाग है। यदि हम उसको दोनों ओर बढ़ावें, तो उसके दोनों सिरे मिल जायँगे। अतः यह संसार अनन्त [Infinite] नहीं है; परन्तु Bounded, परिमित अथवा घिरा हुआ भी नहीं है।

इस संसारमें प्रत्येक ऋणाणु अपने न्यून पथपर चलता है और इस प्रकार प्रत्येक ऋणाणुका इतिहास एक वक्र (Curve) द्वारा चतुष्परिमाणीय समयाकाशमें चित्रित किया जा सकता है। वह वक्र उस ऋणाणुकी World-line है, जिसको "संसार-रेखा" कह सकते हैं। प्रत्येक ऋणाणुकी एक अपनी संसार-रेखा है, जो उसका इतिहास है। इस प्रकार संसारमें जितने ऋणाणु हैं, संसार उतनी ही "संसार रेखाओं"से परिपूर्ण है। जब कोई ऋणाणु दूसरेसे टकराता है, तब वहाँ एक ऋणाणुकी "संसार-रेखा" दूसरेकी "संसार-रेखा"को काटती है। जहाँ दो संसार-रेखाएँ कटती हैं, वहीं किसी घटनाका होना चित्रित होता है। इस प्रकार यह संसार 'संसार-रेखाओं'के जालसे भरा है, जो एक दूसरेको काटती हैं। संसारकी समस्त क्रियाएँ और घटनाएँ इन्हीं संसार-रेखाओंके परस्पर मिलनसे विदित होती हैं। संसार-रेखाओंका यह जाल सम्पूर्ण संसारका इतिहास है। इस जालको हम इधर-उधर टेढ़ा-बाँका कर सकते हैं; परन्तु संसारके घटना-क्रम ज्योंके त्यों रहेंगे। प्रत्येक द्रष्टा अपने स्थिति-विशेषके कारण इस जालको खींच-तान सकता है। उसके लिये संसार वही रूप धारण कर लेगा; परन्तु सब द्रष्टाओंके लिये घटनाओंका क्रम और परस्परका सम्बन्ध वही रहेगा। यह घटनाक्रम और परस्परका सम्बन्ध ही वास्तविक, निरपेक्ष रूपसे, सत्य है। द्रष्टाकी अपेक्षासे शेष सब सत्य असत्य हो सकते हैं।

विकासवाद

श्रीयुत द्वारकाप्रसाद श्रीवास्तव्य एम० एस-सी०

मनुष्यजातिकी उत्पत्ति—मनुष्यजाति ही क्यों, सारे ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिकी समस्यापर सभी कालके धुरन्धर विद्वानोंने माथापच्ची की है। इस समस्याके गूढ़तम प्रश्नोंका सन्तोषजनक उत्तर न पानेके कारण मनुष्यके मस्तिष्कने एक सर्व-शक्तिमान् ईश्वरकी कल्पना कर ली है; और, उसे ही ब्रह्माण्डका रचयिता मानकर समस्त शङ्काओंका समाधान भी कर लिया है।

इस विषयको सांसारिक भाषामें सर्वांशतः सिद्ध

करना असम्भव ही है। जो कुछ, न्यूनाधिक, युक्तियाँ दी गयी हैं, वे विभिन्न आचार्योंके मतोंपर निर्धारित हैं; और, इन युक्तियोंको जो कुछ गौरव प्राप्त है, वह केवल इतना ही है कि, वे एक सीमातक कुछ बातोंकी सत्यताको प्रकट कर सकी हैं। प्राचीन समयसे ही जड़ और चेतनकी सृष्टिपर पृथक्-पृथक् विचार किया गया है। इस ब्रह्माण्डको वर्तमान स्थितिमें परिणत करनेवाली शक्तियोंके विषयमें जो कुछ भी मतान्तर हों; परन्तु यह सार्वभौमिक सत्य है कि, यह स्थिति क्रमशः विकासका फल है। वैदिक साहित्यमें सृष्टिका मूल कारण प्रकृति मानी गयी है। इस प्रकृति या जड़ पदार्थोंका अग्नि या शक्तिसे संयोग होनेके कारण स्फूर्ति पैदा हुई और स्फूर्तिकी अधिकताके कारण प्रकृति-रूपी केन्द्रसे शून्यमें अनेक खण्ड वितरित हो गये, जिन्होंने नक्षत्र, ग्रह आदिका रूप धारण किया। बड़ेसे बड़ा आस्तिक भी इस बातको माननेके लिये उद्यत नहीं होगा कि, विश्वकी रचना प्रारम्भिक कालसे इसी रूपमें थी, जिस रूपमें वह आज हमें दृष्टिगोचर हो रही है। अभाग्यवश, चेतन जगत्की उत्पत्तिपर प्रारम्भिक कालसे ही वाद-विवाद होता रहा है और धार्मिक कट्टरताके कारण इससे विज्ञानकी उन्नतिमें सर्वदा बाधा पड़ती रही है। इस बातका अनुभव करते हुए भी कि, चेतन संसारमें किसी प्रकारका विकास हो रहा है, हिन्दूसमाज विकासवादका मनन करनेमें बाधाएँ डालता रहा है, जब कि, सारा संसार इस बातको माननेके लिये प्रस्तुत है कि, यह वाद केवल कल्पना ही नहीं है।

हमारे पूर्वजोंने इस बातका उल्लेख, कई स्थानोंमें, किया है कि, ईश्वर संसारमें अवतारों द्वारा यदा-कदा आया करता है। किन्तु अवतारवादसे विकासवादके सिद्धान्तकी ही पुष्टि होती है। नीचेकी श्रेणियोंसे आरम्भ कर (जैसे मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन आदि) उच्चसे उच्चतर मनुष्यके रूपमें ईश्वरका अवतरण हुआ है। उच्च श्रेणीके अवतार होनेके पश्चात् किसी भी धर्मग्रन्थमें नीचेकी श्रेणीके अवतारका होना नहीं पाया जाता। ऐसे कितने ही प्रमाण पुराणोंमें मिलते हैं, जिनमें ऐसे देवताओंको माना गया है, जिनमें आदमी और अन्य जानवरोंके मिश्रित स्वरूप पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ गणेश, नरसिंह आदिको लीजिये। इस अनुभवका सबसे बड़ा प्रमाण रामायणमें मिलता है, जहाँ मनुष्यों और बन्दरोंमें घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाया गया है। वे एक दूसरेकी भाषा क्या, बल्कि हार्दिक भावोंको जानते और आपसमें प्रेम रखते थे। उनके उस कालके रहन-सहन और व्यवहारसे यह अनुमान कर लेना कि, वे कुछ काल पहले एक ही पिताकी सन्तान थे, सम्भव ही नहीं, एक हदतक स्पष्ट भी है। सम्भव है कि, ये बन्दर, विकासमें, मनुष्य और बन्दरके मध्यकी श्रेणीके हों, जो कुछ काल बाद मनुष्य-रूपमें परिवर्तित हो गये हों; परन्तु उक्त कथनकी पुष्टिमें हमारे पूर्वजोंने कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं दिया है, या यदि दिया है, तो सम्भव है कि, वह साहित्य मुसलमानोंके राज्यकालमें नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो। इस सिद्धान्तके पुनरुद्धारका गौरव पाश्चात्य विद्वानोंको है। जीवन-विज्ञान-वेत्ताओंके लिये इस विज्ञानकी सब बातोंके लिये एक ही युक्ति है। वह यह है कि, भू-मण्डलके सब चर और अचर जीव अपनी वर्तमान अवस्थामें विकास द्वारा आये हैं। यह विकास प्रारम्भिक कालसे अबतक होता चला आया है और आगे भी होता रहेगा। इस विकासमें नीचेकी श्रेणीके जीव धीरे-धीरे उच्च श्रेणीमें परिवर्तित होते रहे हैं। प्राणि-शास्त्रके अध्ययनका एक-एक पृष्ठ इस सिद्धान्तके पुष्टीकरणमें यथेष्ट सहायता करता है। सृष्टिके विभिन्न प्राणियोंकी शरीर-रचना-शैलीके सामञ्जस्य और विभेदका अध्ययन उनके उत्तरोत्तर विकासको सिद्ध करता है।

उनके वंश-वृक्षकी परम्परासे हमको उनकी उत्पत्तिको स्थिर करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। विकास-वाद इस बातका स्पष्टीकरण करता है कि, समस्त रीढ़दार प्राणियोंमें मत्स्य-जाति (Fishes), मेढ़क आदि (Amphibians), घड़ियाल, सर्प, छिपकली आदि (Reptiles), पक्षियों (Birds) तथा मनुष्य, गाय, बन्दर, बैल आदि (Mammals) में एक ही प्रकारके ढाँचेकी बनावट मिलती है, जिसमें एक ही प्रकारकी इन्द्रियाँ, जाति-विशेषके आवश्यकतानुसार, घट-बढ़कर, एकसे ही रचना-सूत्रमें ग्रथित पायी जाती हैं। इस समानता या ऐसी ही अन्य समानताओंको, [जैसे चिड़ियों और चमगीदड़ोंके डैनोंमें ह्वेल मछलीके पंखों (fins) में और मनुष्यके हाथोंमें मुख्यतः एकसी ही अस्थियोंके होनेको] विकासवादके सिद्धान्तके सिवा, अन्य प्रकारसे, समझाया ही नहीं जा सकता। इससे भी अधिकतर कठिनाई इस बातका उत्तर देनेमें होगी कि, जो इन्द्रिय एक प्राणिवर्गमें कार्य्य करने योग्य और आवश्यक है, वही उस वंशजके दूसरे प्राणि-वर्गमें पायी जाती है—यद्यपि वह नितान्त अनावश्यक-सी प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ, साधारणतया चिड़ियोंके पंख उनके उड़नेके काममें आते हैं; किन्तु न्यूज़ीलैंडमें पायी जानेवाली एक प्रकारकी 'कीवी' नामक चिड़िया है, जिसके डैने बिलकुल बेकार होते हैं; तो भी इसके और साधारण चिड़ियोंके डैनोंकी बनावटमें कोई भेद नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यके बाहरी कानोंके पट्टे बेकार होते हैं—यद्यपि उनकी भीतरी बनावट वैसी ही होती है, जैसी कि, खरगोश या गाय, घोड़े आदिकी, जिनसे वे शब्द-तरङ्गोंको प्राप्त करनेके लिये कानोंको घुमानेके काममें लाते हैं। इन दृष्टान्तों द्वारा यह परिणाम निकलता है कि, सम्भवतः यह कीवी पक्षी ऐसे वंशजोंसे सम्बद्ध है, जिनके पंख थे। इसी प्रकार मनुष्य भी ऐसे प्राणियोंसे सम्बद्ध है, जिनके कानके पट्टे काम करते थे। प्राणिमात्रका गर्भस्थित बालक, प्रारम्भिक दशामें, प्रायः एक-सी ही बनावटका होता है; पर विकासकी भिन्न-भिन्न सीढ़ियोंमें होता हुआ मनुष्यका रूप धारण कर लेता है। परन्तु जिस प्राणीकी बनावटमें मनुष्यकी बनावटसे जितना ही कम अन्तर है, गर्भाशयमें भी उसी हिसाबसे न्यूनाधिक कालतक गर्भ-पिण्डमें समानता दृष्टिगोचर होती है। जैसे कि, दूध पिलानेवाले प्राणी अर्थात् Mammals में प्रारम्भिक अवस्थामें गिल्स पाकेट और गिल्स आर्चेजसे मिलती-जुलती विसरल आर्चेज (Visceral arches) होती हैं और रक्त-सञ्चारके लिये उन्हींके अनुसार नाड़ियाँ होती हैं, जो आगे चलकर क्रमशः परिवर्तित होती जाती हैं। इसी प्रकार मण्डूक, अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें, Tadpole stage मछलीसे एकदम मिलता-जुलता है। इन बातोंको बुद्धि-गम्य बनानेके लिये विकासवाद ही एक मात्र आधार है।

इसका एक प्रबल प्रमाण पृथ्वीकी पुरानी चट्टानोंमें पाये जानेवाले चिह्नों और हड्डियोंके द्वारा मिलता है। वर्तमान कालके वैज्ञानिकोंने इन चट्टानोंको तेरह खण्डोंमें विभाजित किया है। वे खण्ड ये हैं—

१ पैलोजोइक या प्राइमरी —
- १ लारेनशियन
- २ केम्ब्रियन
- ३ डेवोनियन
- ४ कारबोनीफरस
- ५ परमियन

२ मेसोजोइक या सेकंडरी —
- ६ क्रिटेशस
- ७ जूरासिक
- ८ ट्राइसिक

३ केनोजोइक या टरशरी —
- ९ ईयोसीन
- १० मायोसीन
- ११ प्लायोसीन
- १२ क्वाटर्नरी और रीसेंट

इन चट्टानोंमें दबकर उस समयके वृक्ष, जीव आदि

पत्थरोंमें परिवर्त्तित हो गये हैं। इन पाषाणोंका निर्माण वैसा ही है, जैसा उन वृक्ष, जीव आदिका है, जिनसे वे बने हैं। इन चट्टानोंमेंसे जो नवीन हैं, उनमें प्राप्त ये पाषाण वर्तमान कालके प्राणियों और वृक्षोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं और प्राचीनतम चट्टानोंमें पाये जानेवाले पाषाण (Fossils) वर्तमान कालके वृक्षों और जीवोंसे इतने भिन्न हैं कि, वे आधुनिक कालके किसी भी जीवसे नहीं मिलाये जा सकते। दाँतवाली चिड़ियाँ और पानीमें रहनेवाली बड़ी-बड़ी उरोगामिनी मछलियाँ आदि ऐसी मिलती हैं, जो वर्तमान समयके जीवोंसे बिलकुल भिन्न हैं।

चट्टानोंमें मिलनेवाले इन चिह्नोंके अध्ययनसे क्रमशः प्राणि विकास प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ वरटो ब्रेटा (रीढ़दार प्राणी) लिये जायँ, तो दूध पिलानेवाले प्राणियों (Mammals) के, भूमण्डलपर, अस्तित्वका पता ट्राइसिक काल (Triassic) से पहले नहीं चलता। उरोगामी जन्तु permian period तक मिलते हैं। मण्डूक आदि Dedomen period तक प्राप्त होते हैं। इसके पहलेकी चट्टानोंमें (अर्थात् Silurian और Cambrian में) मत्स्यके अतिरिक्त और प्राणियोंके अस्तित्वका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इन श्रेणियोंमें एक प्रकारका विकास ज्ञात होता है। उक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेके पश्चात् कि, भूमण्डलके समस्त प्राणी क्रमशः विकासके ही कारण वर्त्तमान रूपमें आये हैं, हमको इस बातका पता लगता है कि, यह विकास किन कारणोंसे हुआ है। लामार्क महोदयका मत है कि, इस विकासका कारण प्राणियोंपर देश, काल आदि बाहरी परिस्थितियोंका प्रभाव और उनका अपनी इन्द्रियोंका उपयोग तथा अनुपयोग है। इन कारणोंका व्यक्ति-विशेषपर जो प्रभाव पड़ता है, उसका कुछ अंश उसकी सन्तानोंमें भी पाया जाता है और लाखों वर्षकी इस परम्परा द्वारा प्राप्त सम्पत्तिके कारण ही विकासकी क्रिया सम्पन्न होती है। इस सिद्धान्तपर वे सर्पोंके हस्तपादादि अङ्गोंका न होना इत्यादि सिद्ध करते हैं।

इस विषयमें सबसे सन्तोषजनक सिद्धान्त डारविन महोदयका है, जो प्राकृतिक संग्रह (Natural Selection)के नामसे प्रसिद्ध है। इस सिद्धान्तके दो विभाग हैं; एक जीवन-संघर्ष (Struggle for Existence) और दूसरा विभेद (Variations)। प्राकृतिक संग्रहको पूर्णतया जाननेके लिये इन दोनों विभागोंका पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

जीवन-संघर्ष चर और अचर, सबमें होता रहता है। वृक्षोंके जीवनके लिये यह आवश्यक है कि, पृथ्वीपर जहाँ कहीं वे उगे हों, वहाँ उनके लिये कुछ खाद्य पदार्थ, प्रकाश और जल हों। उन स्थानोंपर, जहाँ सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हैं, वृक्षोंमें परस्पर संघर्ष होता रहता है। यह देखा गया है कि, जहाँ घास और कुछ दूसरे पौधे एक साथ उगते हैं, वहाँ कुछ दिनोंके पश्चात् घास बढ़ जाती है और दूसरे कोमल पौधे सूख जाते हैं। किन्तु पौधोंका परस्पर संघर्ष केवल स्थान, प्रकाश और रक्षाके लिये ही नहीं होता। इन पौधोंको पारस्परिक संघर्षके अतिरिक्त अनेक जानवरोंका भी सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ यह देखनेमें आता है कि, नवीन पौधे प्रायः घोंघों तथा अन्य कृमियोंके आखेट बनते हैं। डारविन महोदयकी परीक्षाका अनुभव है कि, कुछ पौधोंकी जड़ोंको खोदकर कुछ दिन छोड़ रखनेके पश्चात् वे पौधे घोंघों तथा अन्य कृमियोंके आखेट बनकर निर्जीव बन गये। इस प्रकारके आघात केवल छोटे-छोटे कृमि ही नहीं पहुँचाते; बड़े-बड़े जानवर भी पहुँचाते हैं। किसी भी देशकी वनस्पतिके नाशका प्रधान कारण बकरी, बैल इत्यादि बड़े जानवर ही रहे हैं। ये बड़-बड़े जानवर पौधोंका प्रारम्भिक अवस्थामें इस प्रकार नाश करते हैं कि, फिर कभी उनके बढ़नेकी आशा ही नहीं रह जाती। डारविन महोदयने अनुभव किया कि, यदि इन पौधोंको घेर दिया जाय और उनकी, बाह्य आघातोंसे, रक्षा हो

सके, तो उनकी पूर्ण वृद्धि होगी; परन्तु जहाँ कहीं उनकी रक्षाका प्रबन्ध नहीं होगा, वहाँ वे कभी भी वृद्धिको प्राप्त न कर सकेंगे।

इन जानवरों तथा पौधोंमें हर प्रकारसे जीवन-संघर्ष हुआ करता है। यह जीवन-संघर्ष जानवरोंमें भी इसी प्रकार होता है। हम देखते हैं कि, छोटी श्रेणीके जीव बहुधा करोड़ों अंडे देते हैं; परन्तु उनमें-से अधिकतर, अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें ही, बरबाद हो जाते हैं—बहुत थोड़े पूर्ण वृद्धिको प्राप्त करते हैं। जानवरोंमें केवल एक श्रेणीमें ही भोजन आदि-के लिये यह संग्राम नहीं होता; कुछ जानवर दूसरे जान-वरोंका मांस खाते हैं; और, इसलिये, उनका शिकार करते हैं। इससे बचनेके लिये दूसरे जानवर अपनेमें भागने या छिपने इत्यादिकी शक्ति पैदा करते हैं।

यह देखा जाता है कि, एक ही पूर्वजकी कई सन्तानों-में सब बातें समान रूपसे नहीं पायी जातीं और यह अन्तर दिनों दिन बढ़ता जाता है। यह बात प्रायः पालतू जानवरों और पौधोंमें देखी जाती है। उदाहरणतः एक ही प्रकारके जंगली कुत्तोंसे भिन्न-भिन्न प्रकारके कुत्ते हो गये हैं और इन कुत्तोंकी सब जातियाँ एक दूसरेसे मिलकर सन्तानोत्पत्ति कर सकती हैं, जो उनका एक ही पूर्वजके साथ सम्बद्ध होना प्रकट करता है।

डारविन महोदयका विचार है कि, प्रकृति देवी इन परिस्थिति-जन्य भेदोंमेंसे कुछको, जो उस जाति-विशेषके लिये अधिक उपयोगी होते हैं, अपना लेती है; जैसे कि, एक माली अपने बागके वृक्षोंमेंसे अच्छे-अच्छे वृक्षोंको संग्रह किया करता है। प्रकृतिका यह संग्रह कैसे होता है, इसके लिये डारविन महोदय कहते हैं कि, चारो तरफ घोर जीवन-संग्राम हो रहा है; इस संग्राममें अधिकतर वही बचते हैं, जो अपनेमें कोई विशेष शक्ति (भागने, छिपने, दौड़ने, रंग बदलने या लड़नेकी) पैदा करते हैं। यह शक्ति वे अपनी सन्तानको कुछ न कुछ प्रदान कर जाते हैं। इसी प्रकार सारे जीव दिनों दिन इस संघर्षके लिये अधिकाधिक तैयार होते जाते हैं। जीवोंके इस परस्पर संघर्षके अतिरिक्त और भी कारण हैं, जिनसे उनमें विकास होता है; जैसे कि, किसी कारणवश किसी स्थानकी जलवायु बदल जानेसे केवल वही जीव, जो कि, अपनेको नयी परिस्थितिके अनुकूल बना लेते हैं, बच जाते हैं। इस प्रकार उनमें जो क्रमशः परिवर्त्तन होता है, उसका भी प्रभाव उनकी सन्तानपर पड़ता है। यह परिवर्तन उत्तरोत्तर इतना बढ़ जाता है कि, दो हजार पीढ़ियोंके बाद भी सन्तान अपने पूर्वजोंसे इतनी भिन्न हो जाती है कि, उसको उसके पूर्वजकी श्रेणी-से ही अलग कर देना पड़ता है!

वर्तमान विज्ञान मछलीसे मनुष्यकी उत्पत्ति इन्हीं आधारोंपर सिद्ध करता है। मछली अनेकानेक श्रेणि-योंमें परिवर्तित होकर मनुष्य-श्रेणीमें आयी। वास्तविकता कुछ भी हो; किन्तु बात युक्ति-संगत अवश्य है। वर्तमान-प्रभूत शक्तिशाली मनुष्य चाहे इस बातको मान-नेको तैयार न हो; क्योंकि अब अरबों वर्ष बीत जानेके बाद उसमें और उसके जलचर पूर्वजमें एक तरहसे कुछ भी सामञ्जस्य नहीं पाया जाता। इस सिद्धान्तके अनुयायी और इसके विपक्षी विज्ञानवेत्ता अब भी इस खोजमें घोर परिश्रम कर रहे हैं। अन्तिम निर्णय क्या होगा, यह समयकी गति ही बतलायगी। यह जानकर कि, हम और जलचर, थलचर आदि एक ही पूर्वजसे उत्पन्न हैं, स्वाभि-मानी मनुष्यके अभिमानको ठेस अवश्य लगती है; किन्तु सत्यके सामने तो सिर झुकाना ही पड़ेगा। बात विचारणीय है और मनीषी लोग किसी न किसी अन्तिम निर्णयपर अवश्य पहुँचेंगे। आइये, तबतक ईश्वरसे यही प्रार्थना की जाय कि, वह डिग्री हमारे अनुकूल दे और हमको बन्दरकी औलाद होनेकी विडम्बनासे बचावे।

पृथ्वीकी आयु

श्रीयुत अनन्त गोपाल भिंगरन एम० एस-सी०
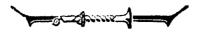
साधारणतया हम यह कभी नहीं सोचते कि, पृथ्वीकी भी कुछ आयु होगी। सांसारिक मायामें फँसे हुए मनुष्य तो इस प्रकारके प्रश्नोंसे कोसों दूर रहना चाहते हैं। प्रथम तो ऐसे प्रश्न उनके मनमें उठते ही नहीं और यदि कभी किसीने उनका ध्यान इस ओर आकर्षित भी किया, तो वे इसे "वेदान्तिक" विषय कहकर छोड़ देते हैं; और, नहीं तो सत्ययुग, कलियुगकी गाथा गाने लगते हैं!

यह प्रश्न नवीन हो, सो बात नहीं। यह समस्या तो उतनी ही पुरानी है, जितना कि, मानवी सभ्यताका विकास। हाँ, जब कि, मनुष्य बिलकुल असभ्य और जंगली था, आखेट ही उसके जीविकोपार्जनका एक मात्र अवलम्ब था और जब कि, उसकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम थीं, संक्षेपमें, जब कि, वह केवल जीनेके लिये ही जीवित था, उसके जीवनका कुछ उद्देश्य, कुछ मर्म अथवा तत्त्व न था, तब तो निःसन्देह उसने इन प्रश्नों अथवा समस्याओंको कभी स्वप्नमें भी न सोचा होगा। परन्तु सभ्यताके विकासके साथ ही साथ ऐसे प्रश्न भी उत्पन्न होते रहे हैं और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए कौतुकके कारण मनुष्य सदैव ही पृथ्वी और प्रकृतिके इन गुप्त भेदोंका पता लगानेकी चेष्टा करता रहा है।

इस प्रकारके प्रश्नोंकी व्याख्या सबसे प्रथम पौराणिक कथाओंमें मिलती है। लगभग सभी जातियोंके पुराण पृथ्वीकी उत्पत्तिकी विधि और समय आदिकी कथाओंसे भरे हुए हैं। यह कथाएँ बड़ी ही रोचक तथा औपन्यासिक हैं और इनको पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता है। बचपनसे ही सुनते आनेके कारण अपने पुराणोंसे हम पूर्णतः परिचित हो गये हैं और उनमें कुछ धार्मिक अंश मिला होनेसे हमें कुछ भी विचित्रता प्रतीत नहीं होती। परन्तु दूसरी जातियोंके पुराणोंके विषयमें हमारी धारणा ऐसी नहीं है; और, यही कारण है कि, उनको पढ़नेमें कुछ विशेष आनन्द तथा कौतूहल प्रतीत होता है।

पौराणिक कालमें विज्ञानका इतना विकास नहीं हुआ था। न तो उस समय दूरबीनें थीं, न सूक्ष्मदर्शक यन्त्र, न किरणचित्रमापक (Spectrometer) और न और ही कोई वैज्ञानिक यन्त्र। विज्ञानके इन आविष्कारों तथा इस विकासका श्रेय अधिकांशमें आधुनिक कालको ही है। उस समय तो मनुष्य जो कुछ नेत्र द्वारा देख सकता अथवा कान द्वारा सुन पाता, उसीसे प्रकृतिको समझनेकी चेष्टा करता था। वह अपनी इन्द्रियशक्तिपर ही पूर्णतः निर्भर था। बहुत सम्भव है कि, मानसिक कल्पना-शक्तिमें वह कदाचित् उतना ही बढ़ा-चढ़ा हो, जितना कि, अर्वाचीन मनुष्य। परन्तु अपने काल्पनिक सिद्धान्तकी सत्यताको प्रमाणित करनेके लिये उसके पास कुछ भी साधन नहीं था।

एक बात और है। पृथ्वीकी उत्पत्तिके इन सभी सिद्धान्तोंमें कुछ न कुछ धार्मिकता मिली हुई है। लगभग सभीमें यह सिद्धान्त निहित है

कि, सृष्टिकर्त्ताके पास कुछ द्रव्य था और उसमेंसे थोड़ासा अंश निकालकर उसने पृथ्वीकी रचना की। बहुसे धर्म्मभक्त पुरुषोंका विश्वास है कि, मनुष्य जब कभी अधर्म करता है, तब देवगण उससे रुष्ट हो जाते हैं और क्रुद्ध होकर मनुष्यका अनिष्ट करते हैं। उनके विचारसे यह पर्वतमालाएँ, शिखर, झीलें आदि सब दैवी कोपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जब यह कोप चरम सीमापर पहुँच जाता है, तब ज्वालामुखीके उद्गारों और भूचालोंके रूपमें प्रकट होता है।

ये कथाएँ परम्परासे चली आती हैं और इनमें धार्मिक अंश मिला होनेके कारण इन्होंने मनुष्यके मस्तिष्कपर भली भाँति अधिकार कर रखा है। यद्यपि ज्ञानकी वृद्धिने इन सिद्धान्तोंको निर्मूल सिद्ध कर दिया है, तथापि केवल धार्मिक अवहेलना और ईश्वरीय कोपके डरसे मनुष्यने इनमें उलट-फेर करना नितान्त अनुचित समझा। जिन दो-चारका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और जिन्होंने इनमें कुछ सुधार करना चाहा, उनके प्रयत्नको केवल अनधिकार चेष्टा बताकर उनके मार्गमें अनेक बाधाएँ डाली गयीं।

चैलडियन्स [Chaldeans] (जिनकी सभ्यता सबसे पुरानी समझी जाती है और जिसमेंसे आधुनिक पश्चिमीय सभ्यताका विकास हुआ है) का विश्वास था कि, लगभग २० लाख वर्ष हुए, पृथ्वीकी उत्पत्ति एकार्णव (Chaos) मेंसे हुई थी। बेबीलोनियन्स (Babyloneans) की धारणा थी कि, मनुष्यकी उत्पत्ति आजसे ५ लाख वर्ष पूर्व हुई थी। परन्तु उनके पुराणोंमें पृथ्वीकी उत्पत्तिका कोई अलग समय नहीं दिया गया है। बहुत सम्भव है कि, उन्होंने पृथ्वी और मनुष्यकी उत्पत्तिको भिन्न-भिन्न न समझा हो और उनका यही विश्वास रहा हो कि, दोनोंकी उत्पत्ति एक ही साथ हुई है।

मिश्रियोंके अनुसार (जिनकी सभ्यता चैलडियन्सके समकालीन मानी जाती है) पृथ्वी और अन्तरिक्ष प्राथमिक जलमें गाढ़ आलिङ्गन किये लेटे हुए थे। सृष्टि उत्पन्न होनेके समय उस जलमेंसे एक नये देवता 'शू' की उत्पत्ति हुई और उसने अपने दोनों हाथोंसे अन्तरिक्षको ऊपर उठा दिया यही अन्तरिक्ष-देवी आकाश बन गयी और दोनों हाथ और दोनों पैर (जिनपर कि, वह खड़ी है) आकाशके खम्भे बन गये। दुर्भाग्यसे मिश्री पुराणोंमें इस सृष्टिके कालका कुछ वर्णन नहीं है।

ईरानी पुराणोंके अनुसार पृथ्वीकी सृष्टि आजसे १२००० वर्ष पूर्व हुई थी।

सृष्टिकी उत्पत्तिका सबसे पुराना उल्लेख, हमारे साहित्यमें, मनुस्मृतिमें (अध्याय १, श्लोक ६८,७२,७९,८०) है, जिसके अनुसार संवत् १९९० विक्रमीयमें सृष्टिको हुए १ ९७२९४९०३४ वर्ष हुए हैं। इसका समर्थन भास्कराचार्यजीके सूर्यसिद्धान्त द्वारा भी होता है [सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार २०-२४]। सम्पूर्ण सृष्टिकी आयु ४३२०००००० वर्ष है।

सृष्टिकी आयुकी गणना इस प्रकार की गयी है—सम्पूर्ण सृष्टि = १४ मन्वन्तर + १५ सन्ध्याएँ = १४ × ७१ चतुर्युगी + १५ सन्ध्याएँ = १४ × ७१ × ४३२०००० वर्ष + १५ सन्ध्याएँ।

प्रत्येक दो मन्वन्तरोंके बीच एक सन्ध्या पड़ती है, जिसका परिमाण सत्ययुगके समान १७२८००० वर्ष है—

सम्पूर्ण सृष्टि = [१४ × ७१ × ४३२००००]
+ [१५ × १७२८०००

=[४२६४०८००००+२५९२००००]

=४३२००००००० सौर वर्ष

यह तो सृष्टिकी सम्पूर्ण आयु है । इस समय सृष्टिके आरम्भसे ६ मन्वन्तर तो पूरे बीत चुके हैं; और, सातवें मन्वन्तरकी २७ चतुर्युगी पूरी बीत गयी है, २८ वीं चल रही है, जिसमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापर पूरे बीत चुके हैं; कलियुगके संवत् १९९० विक्रमीयमें ५०३४ वर्ष बीते हैं। सृष्टिकी वर्त्तमान आयु निम्न प्रकार है—

१ मन्वन्तर = ७४ चतुर्युगी

सत्ययुग १७२८००० वर्ष, त्रेता १२९६००० वर्ष, द्वापर ८६४००० वर्ष, कलियुग ४३२००० वर्ष। १ चतुर्युगी = ४३२०००० वर्ष। सृष्टिकी आदिमें एक सन्ध्या थी और प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें एक सन्ध्या हुई; अतः सात सन्ध्याएँ हुईं।

सन्ध्या = १ सत्ययुग = १७२८००० वर्ष।

वर्त्तमान आयु = ६ मन्वन्तर + ७ संध्या + २७ चतुर्युगी + सत्ययुग + त्रेता + द्वापर + ५०३४ वर्ष।

६ मन्वतर = ६ ×७१ चतुर्युगी = ६× ७१× ४३२०००० वर्ष

=१८४०३२०००० ”

७ सन्ध्या = ७ ×१७२८००० = १२०९६००० ”

२७ चतु० = २७ ×४३२०००० = ११६६४०००० ”

सत्ययुग = १७२८००० ”

त्रेता = १२९६००० ”

द्वापर = ८६४००० ”

कलियुग = ५०३४ ”

योग = १९७२९४९०३४ वर्ष

आर्य्यभट्टने जो गणना दी है, उसके हिसाबसे सृष्टिकी वर्तमान आयु १९८६१२५०३१ वर्षकी होती है। सूर्यसिद्धान्तमें लिखा है (मध्यमाधिकार, श्लोक २४) कि, इस सृष्टिमें ग्रह, नक्षत्र, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत आदिके विकासमें १७०६४००० वर्ष लगे।

अब हम इन प्राचीन व्याख्याओंको छोड़कर मध्यकालीन समयमें आते हैं। इस कालमें पृथ्वीकी दीर्घकालीन आयुका विचार बिलकुल ही जाता रहा और मनुष्यके विचार बहुत संकीर्ण हो गये।

उस समय इंगलिस्तान आदि देशोंमें पढ़ने-लिखनेका काम विशेष कर पादरी लोग ही करते थे। इन्होंने पृथ्वीकी आयुके प्रश्नपर विचार किया और जहाँ तक इनकी कल्पना-शक्ति और मस्तिष्कने काम किया, इन्होंने इस प्रश्नका उत्तर देनेकी चेष्टा की। इनके अनुसार पृथ्वीकी आयु ६००० वर्षसे अधिक नहीं हो सकती। आर्क बिशप (महापादरी) उशरने तो यहाँ तक कहा कि, पृथ्वीकी सृष्टि ईसासे ४००४ वर्ष पूर्व, जनवरी मासके प्रथम सप्ताहमें, हुई थी! यह तारीख आजकल भी अंग्रेजीकी प्रत्येक बाइबिलके पृष्ठोंके किनारोंपर छपी रहती है।

इस कालमें जो कुछ वैज्ञानिक प्रयास हुए, उनका फल भी बहुत ही कम आया। तत्कालीन वैज्ञानिकोंके अनुसार पृथ्वीकी उत्पत्ति सूर्यसे हुई है। कुछ विशेष शक्तियाँ [Forces] और तनाव [Tension] के कारण एक बहुत बड़ा टुकड़ा सूर्यसे टूटकर अलग हो गया और यही बादमें पृथ्वी बना। सूर्यसे अलग होनेके समय पृथ्वी बहुत ही गरम थी और तबसे यह बराबर ठंढी होती जा रही है। बफन नामके वैज्ञानिकने गणना की थी कि, पृथ्वीको उस ऊँच तापक्रमसे साधारण तापक्रम तक आनेमें ७५००० वर्ष लगे होंगे। उसके अनुसार यही पृथ्वीकी आयु है।

इसी प्रकार और भी जितनी गणनाएँ इस मध्यकालीन समयमें हुईं, उन सभीका फल बहुत ही कम है। परन्तु अर्वाचीन समयमें आते ही एक बार फिर हम पृथ्वीके बहुत ही पुरानी और बूढ़ी

होनेका स्वप्न देखने लगते हैं । बहुत सम्भव है कि, ये गणनाएँ यदि बिलकुल ठीक नहीं, तो बहुत अंशोंमें ठीक ही हों ।

यहाँ एक और विचारका वर्णन करना अनुचित न होगा । हिन्दू पुराणों और अर्वाचीन भूतत्त्व-शास्त्रके काल-विभागोंमें एक आश्चर्यजनक समता प्रतीत होती है । पुराणोंके अनुसार समयके चार महाभाग हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग । भूतत्त्वशास्त्रमें भी वैदिक (Primary), पौराणिक (Secondary), द्रविड़ (Tertiary) और आर्य (Quaternary) चार कल्प हैं । यहाँ तक कि, इनका नामकरण भी लगभग पर्य्यायवाची ही है, केवल क्रमका अन्तर है । पौराणिक त्रेता वैज्ञानिक Secondary (पौराणिक) है और पौराणिक द्वापर वैज्ञानिक Tertiary (द्रविड़) है । सत्ययुग primary (प्राथमिक) और कलियुग Quaternary या आधुनिकके समानान्तर है ।

इसके अतिरिक्त एक और भी समानता है । भौतात्त्विक काल-विभागमें यह कल्प २० छोटे-छोटे विभागोंमें विभाजित हैं । भूतत्त्वविदोंके अनुसार इनमेंसे प्रत्येक विभाग पृथ्वीके पदार्थके एक परिभ्रमण (अर्थात् उसका वायु, जल, वर्षा, नदी, बर्फ, सर्दी, गर्मी आदिके प्रभावसे टूटना, समुद्र, झील अथवा किसी जलाशयकी तहपर जमना और फिर पृथ्वीके किसी आन्तरिक बल अथवा अन्य किसी कारणसे जमकर पर्याप्त ठोस और कड़ा होकर जलके ऊपर निकल आना) का द्योतक है । पृथ्वीके जीवन भरमें अबतक इसके पदार्थके लगभग २० परिभ्रमण हो चुके हैं । हो सकता है कि, प्राचीन पौराणिक हिन्दुओंका भी यही मत हो । अभी तक इतिहासज्ञोंके अनुसार (जो कि, हिन्दू सभ्यताका समय ठीक-ठीक निश्चित नहीं कर सके हैं) पुराण केवल बड़ी-बड़ी गल्पमालाएँ हैं ! यह बात ठीक नहीं है—यह तो निश्चयात्मक रूपसे नहीं कहा जा सकता; परन्तु गल्पमालाके अतिरिक्त ये कुछ और भी हो सकते हैं । इसके विरुद्ध भी कोई विशेष प्रमाण नहीं है ।

सम्भव है कि, ये पुराण भी पृथ्वीके इतिहासकी कहानियाँ हों, जिनमें कि, इनके लेखकोंने अपनी कल्पनाके अनुसार पृथ्वीकी अवस्थाओं [दैहिक, दैविक, भौतिकका वर्णन किया हो । पुराणोंकी संख्या (१८) और पृथ्वीके परिभ्रमणोंकी संख्या (१८-२०) में समानता होनेसे इस अनुमानकी पुष्टि होती है । पुराणोंमें लगभग एक ही प्रकारकी कहानियाँ हैं - वही राक्षसों और दैत्योंके अत्याचार, देवताओंकी तपस्यामें विघ्न, विष्णुका अवतार, दुष्टोंका संहार आदि आदि । प्रत्येक पुराण पृथ्वीके एक परिभ्रमणका इतिहास हो सकता है ।

२० विभाग ये हैं—१ ऊर्द्ध्व टरशरी, २ निम्न टरशरी, ३ ऊर्द्ध्व क्रिटेशस, ४ निम्न क्रिटेशस, ५ जूरासिक, ६ ट्राइसिक, ७ परमो-ट्राइसिक, ८ परमो कारबोनीफरस, ९ ऊर्द्ध्व कारबोनीफरस, १० मध्य कारबोनीफरस, ११ निम्न कारबोनीफरस, १२ ऊर्द्ध्व डेवोनियन, १३ मध्य डेवोनियन, १४ निम्न डेवोनियन, १५ साईलूरियन, १६ ऊर्द्ध्व आरडोवीसियन, १७ मध्य आरडोवीसियन, १८ निम्न आरडोवीसियन, १९ ऊर्द्ध्व केम्ब्रियन, २० निम्न केम्ब्रियन ।

पौराणिक अवतारोंके विषयमें भी एक बात विशेष उल्लेखनीय है । सब अवतार २४ हैं, जिनमेंसे कृष्ण, राम, परशुराम आदि तो मनुष्य-रूपमें हैं; परन्तु कुछ (जैसे मत्स्य, कूर्म वाराह आदि) दूसरे जीवोंके रूपमें हैं; और, जीव-जन्तुओंवाले अवतार पहले माने जाते हैं । जीव-विकास-सिद्धान्तके अनुसार भी ये ही जीव

पहले उत्पन्न हुए हैं। मनुष्यकी उत्पत्ति बहुत बादमें हुई है। उस पुराणमें, जिसमें कि, पृथ्वीकी मत्स्य-सम्बन्धिनी अवस्था (अर्थात् वह काल, जब कि, मत्स्य ही सबसे अधिक विकसित और उन्नत जीव था) का वर्णन है, मत्स्यको ही ईश्वरके अवतारका रूप दिया है; और, इसी प्रकार सर्पीय अवस्था [Age of Reptiles] (अर्थात् वह काल, जब कि, विसर्पी जीवोंका ही आधिक्य था) में कूर्मका अवतार हुआ माना जा सकता है।

बहुत सम्भव है कि, यह कोरी कपोल-कल्पना हो अथवा केवल आकस्मिक सम्मेलन हो; परन्तु इसमें कुछ सत्यता भी हो सकती है। जो कुछ भी हो, यदि इसी धारामें इस प्रश्नपर कुछ अन्वेषण किया जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि, हमारा बहुत सा प्राचीन इतिहास (जो कि, अभी तक घोर अन्धकारमें पड़ा है) प्रकाशमें लाया जा सकता है।

जीव-विज्ञानका इस विषयमें बहुत कम भाग है। न तो जीवशास्त्र-विशारदोंके पास कोई ऐसा आधार ही है, जिसपर वे गणना कर सकें; और, न उन्होंने कभी पृथ्वीकी आयुको संख्या-विशेषमें देनेका प्रयास ही किया है; किन्तु फिर भी, वे पृथ्वीकी वासयोग्य अवस्थाके लिये एक ऐसी संख्या चाहते हैं, जिसमें जीवोंका सम्पूर्ण विकास सम्भव हो।

डारविनका जीवविकासका यह सिद्धान्त कि, उच्च श्रेणीके जीव निम्न श्रेणीके जीवोंसे उत्पन्न हुए हैं, अब भली भाँति मान्य हो चुका है। इस विकासके प्रमाण-पत्र विश्वकी स्तर-संस्थित (Stratified) चट्टानोंमें जीवावशेष (Fossil) के रूपमें वर्त्तमान हैं और इन्हींसे पृथ्वीके जीव-इतिहासका पता चलता है। जैसा कि, हक्सले (Huxley) ने कहा है कि, जीवशास्त्र अपना समय भूतत्त्व-शास्त्रसे लेता है; और, यदि भूतत्त्व शास्त्रकी घड़ी गलत हो, तो जीव-शास्त्र-वेत्ताओंको केवल अपने विकासकी गतिके विचारोंको तदनुसार सुधार लेना होगा। परन्तु साथ ही साथ जितने जीवावशेष-प्रमाण मिल सकते हैं, उन सबको सामने रख कर जीव-विकासकी गतिके विषयमें कोई भी ठीक अनुमान करना यद्यपि असम्भव नहीं, तो सरल भी नहीं है। सबसे पुराने जीवावशेष 'क्रसटेसिया' [Crustacea] और 'ट्राइलोबाइट्स' [Trilobites] और उनके जीवित निकटस्थ सम्बद्ध जातियों (जैसे बिच्छू इत्यादि) की शरीर-व्यवच्छेद-सम्बन्धिनी [Anatomical] परीक्षासे भली भाँति पता चलता है कि, आधुनिक जीव न तो इन्द्रिय-कर्तव्योंमें ही कुछ अधिक सिद्ध हुए हैं [Perfection of Organic Function] और न शारीरिक बनावटमें ही कुछ अग्रसर हुए हैं [Specialization and Advancement of Structure]। उन प्राचीन जीवावशेषोंके उत्तराधिकारी निरन्तर अपने आपको सँवारने और सुधारनेकी चेष्टा करते रहे हैं; परन्तु इतने अधिक समयमें भी कोई ऐसा जीव उत्पन्न नहीं कर सके, जिसको उनसे कुछ भी उच्च श्रेणीमें रखा जा सके।

फिर इस असीम अवधिमें क्या हुआ है? निस्सन्देह नाना प्रकारके जीवधारी (जिनका कि, सबसे प्राचीन प्रस्तरोंमें कहीं लवलेश भी नहीं मिलता है) उत्पन्न हुए हैं; परन्तु यह किस प्रकार हुआ, इसका पता नहीं! डारविन और वालेसका विश्वास था कि, इस विकासके लिये कमसे कम करोड़ों वर्षोंकी आवश्यकता हुई होगी।

किन्तु सबसे दुःखकी बात यह है कि, पृथ्वी भरमें कहीं भी कोई ऐसा चिह्न वा प्रमाण नहीं मिलता, जिससे जीवका आरम्भ वा उसकी

अवस्था जानी जा सके। सबसे प्राचीन स्तर-संस्थित चट्टानोंके जीवावशेष भी जीवविकासकी सीढ़ीमें यथेष्ट ऊपर आते हैं। उस समयके सबसे अधिक विकसित जीव 'ट्राइलोबाइट्स [Trilobites] हैं, जो कि, आधुनिक वृश्चिकवर्ग (बिच्छू आदि) से बहुत मिलते-जुलते हैं और प्राणि-वर्ण-क्रम (Zoological Classification) में एरथोपोडा (Arthopoda) विभागमें आते हैं।

विकास-सिद्धान्तानुसार जीव प्रारम्भमें एक-कोष्ठिक रहा होगा। वह क्रमशः बढ़ता और विकसित होता गया, जिससे कि, नाना प्रकारके जीव उत्पन्न हो गये। गतिके प्रारम्भकी ही भाँति इस रूपान्तरका प्रारम्भ भी बहुत ही धीरे-धीरे हुआ होगा; परन्तु एक बार गतिशक्ति (Momentum) के उत्पन्न हो जानेसे क्रिया बराबर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वेगसे होती रही होगी। डारविनके विचार "केमृब्रियन [Cambrian] से पहलेका समय केम्ब्रियनसे आज तकके समयके बराबर अथवा इससे भी अधिक होगा" में बहुत कुछ सत्यता प्रतीत होती है।

पृथ्वीकी दीर्घ आयुके इस मतके विरुद्ध लार्ड केलविनने अपनी भौतिक गणनाओंके आधारपर कहा कि, पृथ्वी दस करोड़ वर्षोंसे अधिक पुरानी नहीं हो सकती। एक दूसरे भौतिकज्ञ (प्रोफेसर टेट) ने इस संख्याको केवल एक करोड़ ही कर दिया। प्राणि-शास्त्र-विज्ञोंने इन गणनाओंपर बहुत आपत्ति की; क्योंकि, उनके मतानुसार वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं, दोनोंमें ही पूर्ण विकास होनेके लिये इससे कहीं अधिक समयकी आवश्यकता है। परन्तु वे किसी प्रकार भी प्रमाणित न कर सके कि, लार्ड केलविन अथवा टेटकी गणनाएँ अशुद्ध हैं। इसके विपरीत भौतिकज्ञोंने अपनी गणनाओंके पक्षमें यह सिद्ध करनेके लिये कि, जीवोंका सम्पूर्ण विकास इतने थोड़े समयमें भी हो सकता है, बहुत-से काल्पनिक सिद्धान्त बनाये; परन्तु वे किसी प्रकार भी प्राणि-शास्त्र-विज्ञोंको सन्तुष्ट न कर सके।

लार्ड केलविनने कहा कि, बहुत सम्भव है कि, कोई टूटता हुआ तारा (Meteorite) किसी दूसरे ग्रहसे जीवको पहले पृथ्वीमण्डलपर लाया हो। इस प्रकार विकासका प्रारम्भ तो किसी दूसरे ही ग्रहपर हुआ और पृथ्वीपर उसका केवल उत्तरार्द्ध हुआ हो; परन्तु प्राणि-शास्त्र–विशारदोंके समयकी समस्या-पूर्ति इस प्रकार नहीं होती। उनका कथन है कि, हम तो विकासके कमसे कम उस भागके लिये समय चाहते हैं, जिसके प्रमाण जीवावशेष-स्वरूप पृथ्वीपर मिलते हैं और जो निश्चय ही पृथ्वीपर हुआ है, अन्यत्र नहीं। निस्सन्देह जीवके प्रारम्भसे ट्राइलोबाइट और नाटीलस (Nautilus या सबसे पुराने प्राणि-अवशेष) जैसे उच्च जीवों तकके विकासमें भी बहुत ही अधिक समय लगा होगा; परन्तु यह तो केवल उक्त समयको और भी अधिक बढ़ा देता है।

एक दूसरे मतके अनुसार वह जीव, जो टूटते हुए तारे द्वारा सबसे पहले पृथ्वीपर आये, स्वयमेव यथष्ट विकसित थे। पृथ्वीपर आनेके बाद इनमेंसे कुछने तो विकसित होकर अपनेसे उच्च श्रेणीके जीवोंको उत्पन्न किया और कुछ विकासकी सीढ़ीमें नीचेकी ओर चलने लगे, जिससे उत्तरोत्तर निम्न श्रेणीके जीवोंका विकास होता गया। इस प्रकार विकास धन (Positive) और ऋण (Negative), दोनों दिशाओंमें बराबर साथ-साथ होता रहा। यदि यह क्रिया हो, तो निस्सन्देह प्राणि-शास्त्रज्ञों द्वारा माँगा हुआ विकासका समय

आधा ही रह जायगा। परन्तु सब प्रमाण इस सिद्धान्तका खण्डन करते हैं। उत्तरोत्तर नयी चट्टानोंकी परतों (Beds) में बराबर अधिक विकसित जन्तुओंके अवशेष मिलते जाते हैं। निम्न श्रेणीके जीव भी मिलते अवश्य हैं; परन्तु किसी नयी परतमें किसी निम्न जीवकी उत्पत्ति पहली ही बार कभी नहीं होती।

प्रोफेसर टेटने एक और सिद्धान्त बनाया था। इसके अनुसार यह जीव-विकास किसी अज्ञात ग्रहमें किसी भी अज्ञात गतिसे होता रहा है और वहाँसे सभी जीव-जन्तु नये-नये विकसित जीवोंकी बानगी (Sample)की तरह टूटते हुए तारों द्वारा आते रहे हैं। पृथ्वीपर अलग कोई विकास हुआ ही नहीं। परन्तु यह सिद्धान्त तो देखनेमें ही ऐसा निरर्थक, ऊट-पटाँग और हास्यास्पद प्रतीत होता है कि, इसपर किसी प्रकारका वाद-विवाद करना भी व्यर्थ ही जान पड़ता है।

वनस्पति-साम्राज्यका विकास भी पृथ्वीकी दीर्घ आयुके मतका समर्थन करता है। छत्र-बीजक (Angiosperms), सबसे उच्च श्रेणीके पेड़, द्रविड़ कल्पके लगभग अन्तिम भागमें उत्पन्न हुए; परन्तु बीजोत्पादक वृक्ष—टेरीडोस्परम्स (Pterido-sperms) और कारडाइटोज़ (Cordaites) चिलगोजाके निकट-सम्बन्धी पौराणिक कल्पके डेवोनियन विभाग तकमें पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि, केवल बीजोत्पादक वृक्षोंके विकासमें ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ कल्प लग जाते हैं। उस समयका, जिसमें कि, वृक्षोंके और विभागों [समाङ्गोद्भिद् (Thallophyta), सैलयोद्भिद् (Bryophyta) और पर्णाङ्गोद्भिद् (Pteridophyta), जिनमें कि, असंख्य वंश (Family), वर्ग (Order), गोष्ठियाँ (Genera) और जातियाँ (Species) है] का विकास हुआ होगा, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है।

संक्षेपमें प्राणि-वर्गोंके विकासमें अनन्त समय लगा होगा। जैसा कि, लार्ड सैलिसबरीने एक बार कहा था कि, "यदि गणितज्ञोंकी गणना ठीक है, तो प्राणिशास्त्रवेत्ताओंको वाञ्छित समय नहीं मिल सकता !" तब जेलीफिशकी जीवन-लीला बहुत ही शीघ्र समाप्त हो जाती और उसे उस लाभदायक इन्द्रिय-परिवर्त्तनके परखने और दिखानेका समय कदापि न मिल सकता, जिसमें कि, वह मनुष्यका पूर्वज बननेमें समर्थ होती है।

जो कुछ भी हो, जब तक प्राणि-शास्त्र-वेत्ता प्राणि-साम्राज्यके विकासकी गतिसे अनभिज्ञ हैं, पृथ्वीकी आयु, संख्या-विशेषमें, नहीं कह सकते। जबतक कि, जीवोंके पूर्ण विकासके लिये यथेष्ट समय मिलता है, पृथ्वीकी आयुके लिये कोई भी संख्या ग्रहण करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं। अपनी ओरसे तो वे केवल यही कह सकते है कि, पृथ्वी कमसे कम करोड़ों वर्षोंकी बूढ़ी है। *

* "विज्ञान" से।

भू-विकासका इतिहास

श्रीयुत ललितप्रसाद नैथानी

यों तो इस विषयमें भू-शास्त्र-वेत्ताओंके भिन्न-भिन्न मत हैं, तथापि अधिकांशतः यह अनुमान किया जाता है कि, पृथ्वी सूर्यका एक टुकड़ा है, जो अति प्राचीन कालमें अत्युष्ण-प्रवाही पदार्थका एक गोला थी और धीरे-धीरे वायुमण्डलके प्रभावसे ठंडी पड़ती गयी। जिस प्रकार गरम दूधके ठंडा पड़ जानेसे उसके ऊपर मलाई जम जाती है, ठीक उसी प्रकार पृथ्वीके ठंडी पड़नेपर उसके ऊपर एक तह जम गयी, जिसकी गहराई धीरे-धीरे बढ़ती गयी। वायुमण्डलमें प्रथमसे ही वाष्प विद्यमान था। कोई-कोई यह भी अनुमान करते हैं कि, उस कालमें पृथ्वीके अन्दर ही वाष्प था। जो कुछ भी हो, इसके बाद पृथ्वी इतनी ठंडी पड़ गयी कि, उसमें जल रहने लगा। पृथ्वी अत्युष्ण-प्रवाही पदार्थका एक गोला थी, यह साबित करनेके लिये यही काफी है कि, जब हम खानोंमें उतरते हैं, तब चट्टानोंका तापक्रम बढ़ता पाया जाता है। यह प्रत्यक्ष है कि, ६० फीटकी गहराईमें एक डिगरी फहरनहाइट तापक्रम बढ़ जाता है। इस हिसाबसे १०००० फीटकी गहराईमें इतनी यथेष्ट उष्णता होगी कि, पानी खौलाया जा सके। जब सोते बहुत गहराईसे निकलते हैं, तब उनका पानी बहुत गरम रहता है। इस प्रकारके गरम सोते [Thermal Springs] न्यूजीलैंड और आइसलैंडमें अधिकतर पाये जाते हैं, जो गिसर्स [Geysers] कहलाते हैं। बदरीनाथके पास तप्त कुण्ड भी इसी प्रकारका सोता है। यही नहीं, पृथ्वीके अन्तस्तलसे कभी-कभी अत्युष्ण-प्रवाही पदार्थ बड़े वेगसे ऊपर निकलता है। अतः पृथ्वीका अन्तस्तल अभी भी अत्युष्ण है, इसमें सन्देह नहीं। इसी लिये उक्त कल्पना भी ठीक मानी जा सकती है। उपर्युक्त युग [Ozoic Period] निश्चेतन युगसे पहलेका है।

तत्पश्चात् भिन्न भिन्न युगोंमें, भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें पृथ्वीकी बाह्य तथा आन्तरिक शक्तियों द्वारा भू-विकास हुआ।

निश्चेतन युग (Ozoic Period)

हम यह प्रथम ही लिख चुके हैं कि, पृथ्वी धीरे-धीरे ठंडी पड़ती गयी, ताकि इसमें पानी रुक सके। निश्चेतन युगसे चट्टानें बननी प्रारम्भ हुईं। इसी युगमें बिल्लौरी पत्थरकी भी सृष्टि हुई। निश्चेतन युग तीन भागोंमें विभाजित किया जाता है--[१] नीस, [२] मैकाशिष्ट और [३] क्लेस्लेट।

नीस चट्टानें पानीके अन्दर बनी हैं। वे पृथ्वीके विकासके साथ ऊपर आ निकलीं। नीस और ग्रेनाइटके पृथक्करणसे मैकाशिष्ट और क्लेस्लेट चट्टानें बनी हैं। निश्चेतन युगमें भी पृथ्वी इतनी ऊष्ण थी कि, नीस और मैकाशिष्ट चट्टानें अर्द्ध रूपमें जमी थीं; अतः ये अव्यवस्थित हैं; किन्तु क्लेस्लेट, उसके बाद बननेसे, व्यवस्थित प्रतीत होती हैं। इन्हीं चट्टानोंका अध्ययन करनेसे हमें भली भाँति प्रतीत होता है कि, भूविकास क्रमशः हुआ और निश्चेतन युगके अन्तमें पृथ्वी काफी ठंडी पड़ गयी थी।

निश्चेतन युगकी चट्टानें भारतमें कई स्थानोंमें पायी जाती हैं। हिमालयमें नीस और मैकाशिष्टकी चट्टानें मिली हुई हैं। इससे ज्ञात होता है कि, हिमालयके स्थानमें जब समुद्र था, तभी पानीके अन्दर इन चट्टानोंकी रचना हुई और फिर ज्वालामुखीके उद्गारसे ये पृथ्वीके ऊपर आ गयीं, जिनका अध्ययन आज भी निश्चित रूपसे किया जा सकता है। नर्मदाकी समस्त घाटीमें निश्चेतन युगकी चट्टानें पायी जाती हैं। यह भी एक प्रमाण है कि, दक्षिण पठार हिमालयसे बहुत पहले बन चुके थे। निश्चेतन युगकी चट्टानें अव्यवस्थित होनेके कारण मकान बनानेके काममें असुविधाजनक

होती हैं। फिर भी संसारका अधिकांश धन इन्हीं चट्टानोंमें गड़ा हुआ है। भारत भी इसका भागी है। अजमेरमें शीशा और ताँबा तथा महाराष्ट्रमें लोहा और ताँबा मिलता है। इसके अतिरिक्त बहुतसे कीमती पत्थर भी इसी युगकी चट्टानोंमें मिलते हैं।

पैलियोजोइक युग (Palaeozoic Period)

पैलियोजोइक चट्टानोंमें सर्वप्रथम जीव-जन्तुओंके अवशेष पाये गये हैं। यह युग चार भागोंमें विभाजित किया जाता है।

सिलूरियन-स्तरसञ्चय—यह स्तर सबसे पहले वेल्स प्रान्तमें (जहाँ सिलूरियन लोग रहते थे) पाया गया है, अतः इसका नाम सिलूरियन-स्तरसञ्चय पड़ा। यह स्तर बालूके पत्थर [Sand stone], चूनेके पत्थर (Lime Stone) तथा कंकड़ोंके समावेशसे बना है। इस युगके अवशेषोंसे ज्ञात होता है कि, प्राणी सर्व-प्रथम समुद्रमें ही पैदा हुए, जो प्रवाल कीड़े [Zoophytes] कहलाते हैं। कहते हैं कि, यह प्राणी एक अद्भुत जीव था, जिसमें वनस्पति और प्राणी, दोनोंके गुणोंका योग था। मोलस्का [Molusca] और ट्रिलोबाइट [Trilobite] नामके प्राणी इसी युगमें थे। ये प्राणी समुद्रमें तैरकर छोटे-छोटे जीवोंको खाते थे और कई बार चमड़ा बदलते थे। भारतके आस-पास भी इसी वर्गके प्राणियोंके अवशेष पाये जाते हैं।
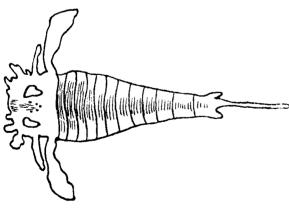
सिलूरिन [Silurian] युगका एक प्राणी-ट्रिलो बाइट [Trilobite], जिसका अवशेष रूसमें मिला है।

बोहिमिया, रूस और अमेरिकामें सिलूरियन-स्तर-सञ्चय मिलता है। इस स्तरमें सोना, चाँदी ताँबा, शीशा, पारा आदि धातुएँ मिलती हैं। कुमायूँकी पहाड़ियोंमें जो ताँबा मिलता है, उससे प्रतीत होता है कि, हिमालयमें भी सिलूरियन-स्तर-सञ्चय है। हिमालयमें यह स्तर नीस-स्तरके साथ मिलता है।

लाल-बालू-स्तर-संचय (Devonian Period) युग—सिलूरियन चट्टानोंके ऊपर लाल बालूकी चट्टानें हैं। इगलैंडके डेवनशायर प्रान्तमें पहले यह स्तर मिला था; अतः इसका नाम डेवोनियन दिया गया है। यह स्तर (बालू और आक्साइड् आफ आइरन (Oxide of Irons) के योग से बना है। यही कारण है कि, इसका रंग लाल होता है।

इस युगको हम मत्स्य-युग भी कह सकते हैं; क्योंकि इस युगमें मछलियोंका ही आधिपत्य था, जो सपक्ष थीं।
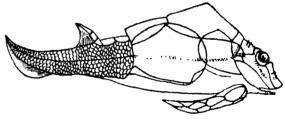
लाल-बालू-स्तर-संचयमें प्राप्त एक मछलीका अवशेष

इन बालूकी चट्टानोंमें समुद्रकी लहरोंके चिह्न पाये जाते हैं। विन्ध्याचलमें इसका निरीक्षण आज भी हो सकता है। डेवोनियन युगके अन्तमें ही वनस्पतियोंकी सृष्टि हुई, जो आज भी अवशेषके रूपमें मिले हैं। अनुमान किया जाता है कि, उस युगमें उत्तरी ध्रुवमें भी वृक्ष थे।

कार्बोनीफोरस-स्तर-सञ्चय-युग (Carboniforous Period)—इस युगको हम वनस्पति-युग भी कह सकते हैं; क्योंकि वनस्पतिका विकास, पूर्ण रूपसे, इसी युगमें हुआ। ऐसा अनुमान किया जाता है कि, इस युगमें कार्बन (Carbon) बहुत था, जिससे कार्बोनीफोरस युगकी तहें

बनीं। इस स्तर-सञ्चयमें चूनेकी चट्टानोंके साथ सीपी और शङ्ख अधिकांशमें पाये जाते हैं। इससे यह साबित होता है कि, कार्बन (Carbon) समुद्रमें विद्यमान था और प्रवाल कीड़े इससे सीपी और शंख बनाया करते थे।

कार्बोनीफोरस युगकी सीपियाँ

उक्त कल्पनामें कोई भी सन्देह नहीं रहता, जब शङ्ख और सीपीके साथ हमें प्रवाल कीटोंके अवशेष इन चट्टानोंमें मिलते हैं।

बीसवीं शताब्दीका महत्त्व-पूर्ण धन, कोयलेका स्तर (Coal measure), इसी युगकी चट्टानोंमें मिलता है। कोयला वनस्पतिसे बनता है। जीर्ण पेड़ वायुमण्डलके प्रभावमें आकर आक्सिजन और कार्बनके संयोगसे कार्बन-डाइ आक्साइड (Carbon-di-oxide) बनकर वायु-मण्डलमें उड़ जाता है। किन्तु अकसर ऐसा होता है कि, पेड़ोंके अवशेष मिट्टीके अन्दर दब जाते हैं। आक्सिजन मिट्टीके अन्दर इतना नहीं है कि, कार्बन और आक्सिजन के संयोगसे यहाँ भी Carbon-di-oxide बन सके। इसका परिणाम यह होता है कि, पेड़ोंके अवशेष कोयलेका रूप धारण कर लेते हैं। इसी विधानके कारण कोयला जमीनके अन्दर मिलता है। कोयला भिन्न-भिन्न युगोंमें बनता रहता है; किन्तु अधिकांश कोयला इसी युगका है; क्योंकि वन-स्पतिकी अधिक वृद्धि इसी युगमें हुई। आधुनिक कोयलेकी तहें, कलकत्तेके पास, गंगा नदीके डेल्टामें, पायी गयी हैं।

कोयलेकी तहोंके साथ शिलाजीत (Bitunine) मिलती है। शिलाजीत गढ़वालमें अधिक पायी जाती है। इससे अनुमान होता है कि, हिमालयमें कोयलेकी बड़ी बड़ी खानें हैं; परन्तु इस ओर अभी किसीका ध्यान नहीं गया। कोयलेके साथ-साथ आइरन आक्साइड भी मिलता है। भारतमें कोयलेकी खान बंगालमें अधिक हैं। झरिया और रानीगंज अधिक प्रसिद्ध हैं। मध्यप्रदेशमें उमरिया खान है। इन्हींके साथ लोहा भी मिलता है। ताता कम्पनीकी सफ़-लताका कारण यही है।

कार्बोनीफोरस युगमें सब प्राणी समुद्रमें रहा करते थे। स्थल-जीवोंका बिल्कुल अभाव था। इस युगकी मछलियोंके अवशेष अब भी पाये जाते हैं।

परमियन-स्तर-सञ्चय (Permian Rocks Period) युग—इसका नामकरण रूसके पर्मिया नामके ग्रामसे हुआ क्योंकि सर्वप्रथम यह स्तर यहीं पाया गया था। इस स्तरमें चूनेकी चट्टानें पायी जाती हैं। मछलियों, मोलस्का और प्रवाल कीड़ोंके अवशेष इस स्तरमें पाये जाते हैं। इस स्तरमें सबसे अधिक न्यस्तावशेष पाये गये हैं। इस युगमें और भी प्राणी पाये जाते हैं, जिनकी सृष्टि पहले हो गयी थी। ओ-अलिटिक युगतक इनका विकास होता रहा।
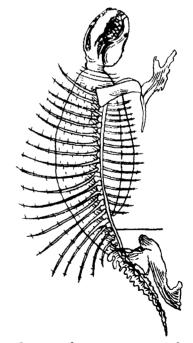
परमियन युगके एक प्राणीका अवशेष

मिसोजोइक युग (Mesozoic Period)—यह तीन भागोंमें बाँटा जाता है—

१ त्रयसिक-स्तर-सञ्चय-युग (Triassic Period)—यह स्तर जर्मनीमें अधिक पाया जाता है। इस युगमें एक विचित्र प्राणी पाया जाता है, जिसके लम्बे-लम्बे दाँत होते थे।

२ ओअलिटिक स्तर सञ्चय-युग (Oolitic Period)-इसके भी तीन भाग हैं—लियासिक (Liasic), जूरासिक (Zurasic) और ओलाइट (Oolite)। लियासिक और जूरासिक युगमें जानवरोंकी सृष्टि हुई। मगरमच्छ, सपक्ष सर्प और अन्य भयंकर जीव भी इसी युगमें पैदा हुए। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सर्प जंगलोंमें उड़ा करते थे; क्योंकि इनके पंख होते थे। इस युगके अवशेषोंसे ज्ञात होता है कि, वे प्राणी बहुत ही भयङ्कर रहे होंगे। उस वर्गके प्राणी अब नहीं पाये जाते। मगरमच्छ और सर्पोंके आकारमें भी अन्तर आ गया है। ओअलिटिक युगका एक अवशेष मिला है, जिसकी लम्बाई ५० फीट है। अतः उन जानवरोंकी कल्पना की जा सकती है कि, वे कितने बड़े रहे होंगे! उनके जबड़ों और दाँतोंसे मालूम होता है कि, वे मांसाहारी थे।
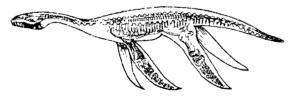
मिसोजोइक युगके एक प्राणीका अवशेष

३ क्रिटेशियन-स्तर-सञ्चय-युग—इस युगके समुद्रवासी जीवोंके अवशेष मिले हैं। इस युगमें अजगर, शंख और सीपी हिमाइटस (Hamaites), स्केफाइटस (Scaphites) और अन्य प्राणियोंके भी अवशेष पाये जाते हैं।

निओजोइक युग (Neozoic Period)—यह युग दो भागोंमें विभाजित किया जाता है- टरशरी (Tertiary) और रिसेंट (Recent)। टरशरीके भी तीन उपभाग किये जाते हैं—इयोसीन (Eocene), मियोसीन (Miocene) और प्लायोसीन (Pliocene)।

इयोसीन युगकी चट्टानें भारतमें पायी जाती हैं। इनमें सीपियाँ अधिक पायी जाती हैं। ये सिक्केके आकारकी होती हैं। हिमालयकी १६००० फीटकी ऊँचाईपर यह मिलती हैं।

पेरीम द्वीपके नष्टावशेषोंमें मियोसीन युगका एक प्राणी (जिसे मस्तोदन Mastodon कहते हैं) मिला है। इसका आकार गैंडेका-सा है। हिमालयमें इस युगके सबसे अधिक अवशेष मिलते हैं। इन्हीं अवशेषोंसे मालूम होता है कि उस युगमें घोड़े, एक अद्भुत प्रकारकी मछली, हाथी, हाथीके समान बड़े-बड़े हिरन और मस्तोदन वर्गके प्राणी रहते थे। एक हाथी-दाँत (जो हिमालयमें मिला है) की लम्बाई ९ फीट ६ इंच और गोलाई २७ इंच है। इनके अतिरिक्त मगरमच्छ, जिराफ, गेंडा, ऊँट, हिरन, बन्दर आदि के भी अवशेष मिले हैं। इस युगमें एक अद्भुत प्राणी रहता था, जिसे सिवेथिरियम (Sivatharium) कहते हैं। यह अनुमान किया जाता है कि, यह प्राणी सब प्राणियोंसे बड़ा रहा होगा और अब भी इतने बड़े प्राणीकी सृष्टि नहीं हो सकी है। इसके हाथीकी तरह सूँड और बैलकी तरह सींग होती थी। यह प्राणी मांसाहारी नहीं था।

प्लायोसीन-स्तर सञ्चय युगमें मियोसीन स्तरके नीचे एक पत्थरकी छुरी मिली है। इससे सिद्ध होता है कि, इस युगमें भी आदमी रहते थे, जो बिलकुल जंगली रहे होंगे। यही एक प्रमाण है, जिससे हम जानते हैं कि, इस युगमें मानव-जातिकी सृष्टि हो गयी थी, अन्यथा और कोई भी प्रमाण नहीं है, जिससे हम कह सकें कि, इसमें भी प्रथम आदमी पृथ्वीपर रहते थे।

आधुनिक युग (Recent Period —जिस कालसे हमें इस कालके प्राणियोंके अवशेष मिलते हैं, उसको भूतत्त्ववेत्ता आधुनिक युग कहते हैं। इस युगका प्रारम्भ और मानवजातिकी उत्पत्ति एक ही समय हुई। सबसे पहले मनुष्यकी हड्डियाँ ग्वाडेलूपकी चट्टानोंमें मिली हैं। हाँ, मानव-जातिका अवशेष जमीनकी सतहपर ही पाये जाते हैं।

वायुमण्डल-विज्ञान

पं० रामनिवास शर्मा

वायु-मण्डल-विज्ञान एक महत्त्व-पूर्ण विज्ञान है। इसके विशेष महत्त्वका विश्लेषण म० K. S. के शब्दोंमें सुनिये—

"वायुमण्डलसे साधारणतः जिस वस्तुका बोध होता है, वह शतशः शक्तियों, पदार्थों और तत्त्वोंसे गर्भित है। साथ ही पृथ्वी, सूर्य और तद्गत वस्तु-स्थितिके साथ इसका तादात्म्य-भावसा है। विद्युत् आदि उन सर्वव्यापी तत्त्वोंके साथ भी इसका गहरा सम्बन्ध है, जिन्हें वैज्ञानिक सृष्टिके मूल तत्त्व तक मानते हैं। इस विचारसे वायुमण्डल एक ऐसी खोजकी वस्तु हो जाता है, जिसके आवरणमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपसे सामान्यतः समस्त सृष्टिका समावेश हो जाता है। तात्त्विक रूपसे तो इससे कोई वस्तु बच ही नहीं सकती। इसके छोटे-छोटे अणु-परमाणुओंमें भी, सूक्ष्म रूपसे, समस्त सृष्टि बन्द है।"

शास्त्र हमें बतलाते हैं कि, जिस मोटरपर बैठे हुए हम, अनन्त कालसे, आकाशकी सैर कर रहे हैं, उसका Astronomical (ज्योतिर्विज्ञान-सम्बन्धी) नाम पृथ्वी है। यह हमारी मोटर जन्मकालसे ही सफरमें है। इसका यह सफर कुछ नहीं, केवल अपने इष्टदेव (सूर्य)की प्रदक्षिणा करना है। दिन-रातके २४ घंटोंमें यह अपनी प्रदक्षिणाको समाप्त कर लेती है। इस प्रदक्षिणामें यह अपने साथी और सम्बन्धी (ग्रह, उपग्रह और नक्षत्र आदि)को दायें-बायें छोड़ती हुई और अपने इष्टदेवको कुछ देती और उनसे कुछ लेती हुई इस यात्रामें निरन्तर संलग्न रहती है। इसकी इस यात्रामें योगीके कम्बल और मकानके छप्परकी तरह इसपर एक ढक्कन रहता है, जिसे हम वायु-मण्डल कहते हैं।

यह बताना कठिन है कि, मनुष्य-जातिको वायु-मण्डलका ज्ञान पहले पहल कब हुआ, तथापि आधुनिक खोज हमें बताती है कि, यूनान, मिश्र और भारतके निवासियोंको इसका थोड़ा बहुत ज्ञान बहुत पहलेसे था। भारतवर्षके विषयमें तो विद्वानोंका निश्चित मत है कि, ईसासे शताब्दियों पूर्व भारतीय ज्योतिर्विद् वायुमण्डल-विज्ञानसे परिचित थे। इनका ज्योतिर्विज्ञान इस विषयपर अच्छा प्रकाश भी डालता है। इनका खगोल-विज्ञान भी इस बातका प्रबल प्रमाण है। यूरोपमें मध्यकालमें इसकी खोज की गयी।

वायुमण्डलकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसके उपादान-कारण या तत्त्व क्या हैं? इनके उत्तरमें विद्वानोंके विभिन्न मत हैं। इसकी उत्पत्तिका कारण कोई Atomic Theory (परमाणु-विज्ञान)को बताते हैं, कोई Theory of Energy (शक्ति-विज्ञान) को। किसी किसीके मतमें तो उल्कावाद ही इसकी उत्पत्तिका हेतु है। कुछ लोग वैदिक विज्ञानका सहारा लेते हैं; परन्तु इनमें आधुनिक विज्ञान-वाद-समर्थित एक भी बात नहीं। वर्तमान कालके वैज्ञानिक इन सिद्धान्तोंपर विश्वास नहीं करते। वे Nebula Theory (नीहारिका-वाद) को ही विशेषता देते हैं और उसे ही वायु-मण्डलकी उत्पत्तिका कारण मानते हैं। उनके मतानुसार वायु-मण्डलकी उत्पत्तिकी परम्परा इस तरह है—

अनन्त आकाशमें वर्णपट-दर्शक (Spectroscope) के द्वारा जो जलते हुए वाष्पकी तरह एक पदार्थ मालूम होता है, वही नीहारिका-समुदाय है। वैज्ञानिक लोगोंका खयाल है कि, हमारा सूर्य नीहारिका-

समूहका परिणाम है। यही सूर्य अन्य ग्रहोंके साथ हमारी पृथ्वीका उपादान-कारण भी है। म० K. S. कहते हैं कि, इन्हीं नीहारिकाओंसे अनेक ज्योतिःपिण्ड उत्पन्न हुए हैं और होते रहते हैं। हमारी पृथ्वी भी इन्हींकी परम्परा है। सूर्यकी तरह ही यह पृथ्वी भी पहले उत्तप्त पिण्डके रूपमें थी। जब यह ठंडी होने लगी, तब इसके तीन रूप हुए—एक घन (ठोस, Solid), दूसरा द्रव (Liquid) और तीसरा वह पदार्थ, जो तापक्रमके कम होनेसे गैसके रूपमें रहा। इनमेंसे पहला पृथ्वी, दूसरा जलनिधि और तीसरा वायुमण्डल है। वायुमण्डलकी उत्पत्तिका यही संक्षिप्त विवरण है।

वायुमण्डलका भाषा-विज्ञानात्मक अर्थ हवाका ग्लोब या गोल है; परन्तु यह भौगोलिक गोलक नहीं है, हवाका एक पतला खोल या स्तर (Layer) है। इसका नीचेका भाग पृथ्वीकी सूरतसे मिलता-जुलता है। इसके विरुद्ध ऊपरका भाग ठीक गोल न होकर एक गोलार्द्ध रूप है। इसके नीचेके भागकी हवा ५० मील तक, अपेक्षाकृत, अधिक गाढ़ी है और इससे आगे, उत्तरोत्तर २०० मील तक, किसी-किसीके मतसे ४०० मीलतक, हलकी है। इस गाढ़ी और हलकी हवाका नाम ही "वातावरण" या वायुमण्डल है।

हमारी पृथ्वीकी तरह यह भी उसीके साथ अनन्त आकाश मण्डलमें, अनन्त नक्षत्र राशिके साथ, सूर्यकी चारो ओर, घूमा करता है।

इसके दो ध्रुव हैं—एक उत्तरी और दूसरा दक्षिणी। इन दोनोंपर सदैव ज्वाला या प्रकाश बना रहता है।

वातावरण-विज्ञानका अनुशीलन हमें बताता है कि, वातावरण जहाँ अनेक दुःखोंसे हमें बचाता है, वहाँ हमारे जीवनकी रक्षामें भी उसका बड़ा भारी हाथ है। मेडिकल विज्ञान इस बातको सिद्ध करता है कि, मनुष्य, पशु और वनस्पतिका जीवन प्रकृतिके तापक्रमपर निर्भर है। यदि इसमें नाममात्र भी गड़-बड़ पैदा हो जाय, तो इनका जीवन अस्त-व्यस्त हो जाय। विशेषतः मनुष्यके तो बौद्धिक और चरित्र-सम्बन्धी सब क्रिया-कर्म इसीपर निर्भर हैं। इस तापक्रमकी रक्षामें हमारा वातावरण बहुत बड़ा सहायक है। वह रातमें हमारी पृथ्वीकी गरमीको बाहर जानेसे रोकता है और दिनमें सूर्यके उत्तप्त किरण-जालकी गरमीको अपने अस्तित्वसे प्रशान्त कर हम तक पहुँचने देता है। यदि ये दोनों बातें न हों, तो पृथ्वीकी गरमीके अधिक मात्रामें बाहर निकल जाने और सूर्यकी गरमीके आ जानेसे हमारे तापक्रमकी स्वाभाविक अवस्था बिगड़ जाय और हमारा जीना ही कठिन हो जाय। यही नहीं, प्रत्युत सारी पृथ्वी झुलस जाय और पृथ्वीपर जीवनका नाम तक न रहे। *

शीतकालमें जैसे ऊनी कम्बल और लबादे शीतसे हमारी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार प्रकृति-दत्त हवाका यह ग्लोब भी पचासों आपत्तियोंसे इस पृथ्वीकी रक्षा करता है। इन सब बातोंके सिवा यह हमारी पृथ्वीको बाहरी विषैले घातक गैसोंसे भी सुरक्षित रखता है। पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिसे खिचकर आनेवाली करोड़ों उल्काओंको अपने वेगसे छिन्न-भिन्न कर, उनके रजःकणोंको अपने अन्दर लीन कर, उनके आघातसे हमें बचाता है। हमारे श्वास-निःश्वास भी इसीपर निर्भर हैं। हमारा जीवन-जल भी हमें इसीकी कृपासे मिलता है। यदि वायुमण्डल सूर्यकी गरमीको थोड़ी बहुत अपनेमें लीन करनेकी शक्ति न रखता हो, तो उससे पानी अधिक मात्रामें भाप बनने लगे। यही नहीं, अपितु समुद्र भी उबलने लगे और चट्टानें तक पिघलने लगें! इस तरह यह वायु-मण्डलका छत्र, छत्रकी तरह ही, सब आपत्तियोंसे हमें बचाये रखता है।

इसका एक विशेष लाभ यह भी है कि, इससे हमें अपने मौखिक व्यापारोंमें भी सहायता मिलती है। इसके

* जल-वाष्प भी गरमीकी रक्षा करनेमें एक सहायक कारण है, क्योंकि वह स्वयम् उष्णताका खजाना है।

बिना हमारे सब शाब्दिक प्रवचन और कथाएँ बन्द हो सकती हैं। यहाँ तक कि, इन सबके आधार-स्वरूप शब्दका तो कहीं पता तक न चले! उष्णता और प्रकाशके लिये वातावरणकी उतनी आवश्यकता नहीं; क्योंकि उनका आवागमन ईथरकी सहायतासे होता है; परन्तु ईथरमें ध्वनिका कम्पन उत्पन्न नहीं हो सकता और न आ जा सकता है। ऐसी दशामें शब्दके लिये ईथर एकदम निरुपयोगी ठहता है। यह सर्व-सम्मत बात है कि, बात-चीत करनेमें हमें वायु-मण्डलसे ही सहायता मिलती है; क्योंकि हवा ध्वनि-वाहिका है। यद्यपि दूसरे पदार्थोंमें भी ध्वनि-कम्पन उत्पन्न होता है; परन्तु वह श्रवण-ग्राह्य नहीं। उसका हवाकी तरह कानोंके साथ सीधा सम्बन्ध नहीं और न वह हवाकी तरह उतना ध्वनि-वाहक ही है।

वायुमण्डलमें क्या-क्या वस्तुएँ और पदार्थ हैं? इसका ठीक ठीक पता किसीको नहीं; परन्तु अब तककी खोजसे जो कुछ मालूम हुआ है, वह यह है कि, इसमें सर्व-श्रेष्ठ पदार्थ ईथर है। उसके बाद विद्युतका* नम्बर है। वैसे किसी दृष्टिसे शक्ति ही वायुमण्डलकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु है; परन्तु वायु-मण्डलकी मुख्य वस्तुओंमें रजः-कण, गैस और जलीय वाष्प हैं। इनमें रजः-कणके प्रकार-भेद इस तरह हैं—१ पृथ्वीके तलसे उड़नेवाले, २ ज्वालामुखी पहाड़ोंके उद्गारसे उत्पन्न होनेवाले, ३ उल्काओंके छिन्नभिन्न होनेसे पैदा होनेवाले और ४ कारखानोंसे उत्पन्न होनेवाले।

वायुमण्डलमें मुख्यतः दो प्रकारकी गैसें हैं—एक वह, जिनका अनुपात हवामें सदा एकसा रहता है। दूसरी वह, जिनका अनुपात स्थानानुसार बदलता रहता है। इन दोनोंके क्रमशः निम्न लिखित प्रकार हैं—

क नाइट्रोजन, ख आक्सिजन, ग आर्गन। १ कार्बोनिक अम्ल गैस, २ अमोनिया गैस, और ३ जल—वाष्प। इनके सिवा नियन, हीलियम, जेनोन, क्रिप्टन आदि गैसें भी पायी जाती हैं; परन्तु इनकी मात्रा वायुमें बहुत कम है।

क वायुमें नाइट्रोजनकी मात्रा प्रायः ७९ प्रतिशत, आक्सि-जनकी २० प्रतिशत और आर्गनकी एक प्रतिशत है। कार्बोनिक अम्ल गैसकी मात्रा तो बहुत ही कम है। यह दस हजार हवाके भागोंमें ३-४ भाग पायी जाती है। जलीय वाष्पकी मात्रा निश्चित नहीं, इसकी मात्रा स्थानिक ताप-मानपर निर्भर है। ख आक्सि-जन पहाड़ों और जंगलोंकी हवामें और स्वच्छ स्थानोंमें अधिक पाया जाता है। कार्बोनिक अम्ल गैस दल-दलों और नगरकी हवामें अधिक मिलती है। कार्बन वनस्पति-योंमें अत्यधिक मिलता है, साथ ही प्राणियोंके शरीरोंमें भी पर्याप्त मात्रामें पाया जाता है। वायुमण्डलसे मनुष्यके जीव-नका घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह इसलिये कि, मनुष्य वायु-मण्डलसे आक्सिजन लेता है। कदाचित् यह कहा जाय कि, वायुमण्डलकी अपेक्षा उसे वनस्पतियोंसे आक्सि-जन अधिक मिलता है, तो भी यह कहना पड़ेगा कि, वन-स्पति-संसारका जीवन भी तो वायुमण्डलके कार्बोनिक अम्ल गैसपर निर्भर है। इस दृष्टिसे वायुमण्डल ही मनुष्य-जीवनका प्रत्यक्ष और परोक्ष साधन ठहरता है। यही नहीं, प्रत्युत उसके आक्सिजनका मुख्य कारण वनस्पति-संसारका जीवन भी वायु-मण्डलपर ही निर्भर है।

वायुमण्डलमें हमें अद्भुत आनन्द, दृश्य और चमत्कार दिखाई देते हैं। इनके मुख्य कारण सूर्य और विद्युत हैं। इन चमत्कारोंका सम्बन्ध वातावरणके रजः-कण और वाष्पसे भी है। इन दृश्यों और चमत्कारोंका संक्षिप्त विवरण सुनिये—

१ प्रातःकाल, अरुणोदयके बाद, जिस समय हमें सूर्यके दर्शन होते हैं, उस समय वह हमें लोक-बन्धु ही प्रतीत होता है। सूर्यकी सौम्य मूर्ति हमें न जाने क्या-क्या सोच-नेको बाधित करती है। ऐसा ही दृश्य सायंकालका भी होता है। उस समय भी सूर्यदेव हमें प्यार करते हुए मालूम होते हैं। परन्तु दोपहरका समय, जब कि, सूर्य शीर्ष-बिन्दु (Zenith) पर होता है, इन दोनोंसे भिन्न

---

*वायुमण्डलके प्रत्येक स्थान और हर एक समयके वायुमें विद्युत नहीं रहता। – सम्पादक।

है। उस समय वह असलमें प्रचण्ड मार्तण्ड होता है। इन दोनों रूपोंसे यह रूप विलक्षण है। एक ही सूर्यकी इन विभिन्न अवस्थाओंका कारण यह है कि, सुबह-शाम सूर्यकी किरणोंका मार्ग बढ़ जाता है; उसकी तिर्यग्गामिनी किरणे भी इसमें सहायक होती हैं। इसके विरुद्ध, पूर्वकथनानुसार, दोपहरके सूर्यके प्रखर रूपका मुख्य कारण है उस समय उसकी किरणोंके मार्गका कम हो जाना। फिर भी उस समय वातावरण और उसके रजः-कण हमारे सहायक न हों, तो दोपहरका सूर्य न जाने कितना गजब ढाय।

प्रातःकाल, अरुणोदयके समय, हमें सूर्यके दर्शन ही नहीं होते—उस समय हमें उषा महारानी और अरुण मित्रके भी दर्शन होते हैं। ऐसे ही, सायंकालको, जब सूर्य अस्त हो जाता है, तब भी हमें पश्चिम आकाशके क्षितिजपर इससे मिलता-जुलता दृश्य दिखाई देता है। वह समय भी हमारे आनन्दको बढ़ानेवाला होता है; परन्तु प्रश्न यह होता है कि, प्रातःकाल और सायंकाल हमें सूर्यके दर्शन नहीं होते, तो भी हमें ललाई क्यों दिखाई देती है? इसका कारण वायुमण्डलके रजः-कण हैं। उन्हींपर सूर्य-किरणोंका थोड़ा-बहुत आभास, शान्त रूपमें, हमें मिलता है; और, सूर्य इसलिये दिखाई नहीं देता कि, उस समय सूर्य क्षितिजसे १८° नीचे रहता है। इसलिये उसकी किरणें आकाशमें बहुत ऊँची चली जाती हैं। साथ ही वे, पृथ्वीके गोल होनेके कारण, वायुमण्डलमें तिरछी रहती हैं और वायुमण्डलके रजः-कणोंपर प्रतिबिम्बित होकर हमें ललाईके रूपमें दिखाई देती हैं। किन्तु किरणोंके तिरछेपनकी कमीसे अस्तोदयकी यह ललाई फिर क्रमशः प्रचण्ड प्रकाश और घोर अन्धकारमें बदल जाती है; इसलिये ललाई दिखाई नहीं देती। ❀

प्रातःकाल और सायंकाल क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी आकाश-मण्डल हमारे लिये एक और विचित्र वस्तु हो जाते हैं। इन दोनों समयोंमें हमें आकाशमें रंगोंकी प्रदर्शनी-सी दिखाई देती है। प्रायः सारा आकाश रञ्जित हो जाता है। कदाचित् उस समय बादल हुए, तो वे इस शोभाको और भी बढ़ा देते हैं। फिर यदि वर्षा-ऋतु हुई, तो इन्द्रदेवके धनुषोंकी भी अधिकता इस रंग-बिरंगी शोभाको द्विगुणित कर देती है। किन्तु इस रंग-प्रदर्शनीमें लाल, नारंगी और पीला रंग ही अधिक होते हैं और, इनमें लाल रंगकी ही कुछ विशेषता होती है। इन सबका कारण रजः-कण, जलीय वाष्प और किरणोंके तरङ्ग-दैर्घ्यसे होनेवाले प्रतिबिम्ब, वर्तन और वर्णविश्लेषण हैं।

२ हर्ज़के हान पर्वतकी बुकन नामकी चोटीपर वहाँके निवासियोंको प्रातःकाल दैत्यगण खेलते दिखाई देते थे और लोग उनसे बहुत भीत रहते थे। वे समझते थे कि, यह दैत्य लोगोंकी बस्ती है। आखिर एक साहसी मनुष्यने उस पर्वतके पास जाकर यह पता लगाया कि, उसकी सूरत-शकल और प्रत्येक हरकतका पर्वतके राक्षसपर असर होता है। ऐसी दशामें वह वास्तविकताको समझ गया और उसने घोषणा की कि, "इस दृश्यका भूत-प्रेतसे कोई सम्बन्ध नहीं है। असलमें इसमें किसी मनुष्य या वस्तुकी छाया मात्र है, जो अस्त होते हुए सूर्य और निकलते हुए चन्द्रमाके प्रकाशके कारण वाष्पाच्छन्न क्षितिजपर प्रक्षिप्त होती है।"

३ कभी-कभी मारवाड़ आदि रेतीले प्रदेशोंमें हमें एक आकाश-सरोवरसा भी दिखाई देता है। उसमें भूत-प्रेतोंके स्नान करनेकी कल्पना कर ली जाती है। लोग उसे प्रेतोंका आकाश-सरोवर समझते हैं! परन्तु सच बात तो यह है कि, धरातलकी गरमीके कारण उसके पासकी हवा ऊपरकी हवाको अपेक्षा हलकी होती है और एक विशेष दशामें, पूर्ण प्रतिबिम्बके कारण, यह दृश्य दृष्टि-गोचर होता है।

❀ सन्धि प्रकाशका यह समय भी स्थानानुसार मर्यादित होता है। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायनका भी इसपर प्रभाव पड़ता है।

४ वातावरणकी एक विचित्र बात यह है कि, उसमें वायुयान और गाय, ऊँट, घोड़े आदि प्रायः उलटे दिखाई देते हैं। उस समय एक अद्भुत दृश्य मालूम होता है, एक विचित्र सृष्टि दीख पड़ती है! परन्तु इसका कारण यह है कि, कोई भी वस्तु या प्राणी निश्चित सीमासे बाहर होकर जब दृष्टि-पथसे दूर हो जाता है, तब उसका प्रतिबिम्ब आकाशीय वाष्पमें पड़कर नीचेकी ओर उलटा दिखाई देता है।

५ पृथ्वीके दोनों पोलोंपर आकाशमण्डलमें एक प्रकार की दिव्य छटा दिखाई देती है। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानों प्रकृति सुन्दरी अपने मस्तकपर रत्न-जटित मुकुट धारण किये हुए अनन्त आकाशमें प्रकाशित हो रही है। यह ज्योति कुमेरुकी अपेक्षा सुमेरुपर अधिक दिखाई देती है और इसे मेरु-प्रभा कहते हैं। इसका वैज्ञानिक कारण यही हमारा वायु-मण्डल है। वायुमण्डलके उन्नत प्रदेशमें इसकी विद्युत् के साथ पृथ्वीकी विद्युत्के सम्मिश्रणसे ही यह ज्योति प्रकट होती है।

६ आजसे बहुत पहलेकी बात है कि, समुद्रसे आने-वाले जहाजोंके मस्तूलोंपर रोमके लोगोंको एक विशेष प्रकारकी चमक दिखाई देती थी। साथ ही उसके दर्शन, वृक्षोंकी ऊँची शाखाओं और पर्वतोंकी चोटियों-पर भी, होते थे। उस समय लोग इसे देवता, पितर और दैवी शक्तिके चमत्कारोंमें गिनते थे। जहाजोंके मस्तूलोंकी ज्योतिको तो रोमके लोग देवताकी कृपाका फल मानते थे। उनका खयाल था कि, हमारे इष्टदेव, हमारी रक्षाके लिये, सदैव जहाजोंपर घूमा करते हैं! परन्तु असलमें वायुमण्डलकी विद्युत्के भावात्मक (Positive) और अभावात्मक (Negative) संघर्षण ही इसका कारण हैं।

७ कुछ दूर तक, रातके समय, वातावरणमें नित्य ही आगके खेल दिखाई देते हैं। ऐसा मालूम होता है, मानो अग्निकी वर्षा हो रही है। इस खेलका वैज्ञानिक नाम उल्कापात है और इसका कारण वायु-मण्डलके रजः-कण और ठोस पदार्थ हैं। इनके आपसके संघर्षणसे ही, रासायनिक क्रिया द्वारा, आकाशमें ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं।

यह हमारा दो सौ मीलका वायुमण्डल अनन्त शक्तियोंका भाण्डार है। साथ ही आविष्कारोंका भी सच्चा क्षेत्र है। इसके द्वारा हम पचासों तत्त्वों और पदार्थोंका आविष्कार कर सकते हैं। अब तक इसके द्वारा अनेक बातें आविष्कृत हुई हैं। ग्रामोफोन आदि वायुमण्डलके उपयोगके ही फल हैं। बन्दूकें भी इसीकी करामात हैं। नाना प्रकारके स्फोटक पदार्थ भी वायु-मण्डलकी गैसका ही प्रताप हैं। अब तो वायुमण्डल-के दबावके द्वारा रेलके चलानेके भी परीक्षण किये जा रहे हैं। पौधोंकी बढ़तीके लिये भी इसके परी-क्षण हो रहे हैं। विद्युत्के द्वारा कृषि-कार्यमें लाभ उठानेके प्रयत्न भी हो रहे हैं और उनमें सफलता भी मिलती जा रही है। इसीके द्वारा मङ्गल और चन्द्रलोककी यात्राके स्वप्न भी देखे जा रहे हैं।

वायुमण्डलमें उसके जीवन-कालमें ही परिवर्तन जारी है। वस्तु-परिस्थितिसे यह मानना पड़ता है कि, आगे भी परिवर्तन जारी रहेंगे। वैसे भी संसारकी प्रत्येक वस्तु परि-वर्तन-शील है—संसार और जगत् शब्द भी इस बातके प्रमाण हैं। वैज्ञानिकोंका भी खयाल है कि, वायुमण्डल परिवर्तन-शील है। वे यह मानते हैं कि, वातावरणकी कार्बो-निक अम्ल गैस (जो प्रतिदिन बढ़ रही है) एक दिन मानव-समाजके जीवनके लिये दुःखद सिद्ध होगी। भयङ्कर आपत्ति उपस्थित करेगी। इस भयका प्रत्यक्ष प्रमाण वे यह बताते हैं कि, प्राकृतिक कारणोंसे दिन दिन इस गैसकी वृद्धि हो रही है। मनुष्य भी स्वयम् इसकी वृद्धिमें सहायक हो रहा है। दूसरी ओर कुछ लोग इसके विरुद्ध सोचते हैं। उनका खयाल है कि, लता, गुल्म, वनस्पति आदिके द्वारा आक्सि-

जनकी वृद्धि हो रही है और यही वृद्धि किसी दिन संसारके लिये भयङ्करता उपस्थित करेगी; परन्तु अनेक विज्ञानाचार्य, चिर मननके पश्चात्, इस परिणामपर पहुँचे हैं कि, ये दोनों शङ्काएँ निर्मूल हैं। इसका कारण यह है कि, जब ये दोनों ही गैसें बढ़ रही हैं, तब साम्य स्वतः सिद्ध है। इसके सिवा यदि दूसरे मतके अनुसार अक्सिजनकी अत्यधिक वृद्धि भी हुई, तो इससे प्राणि-संसार बढ़ेगा और इसके साथ ही आक्सिजनका व्यय भी बढ़ जायगा। साथ ही इसके द्वारा कार्बनिक अम्ल गैसकी वृद्धिकी गति भी तेज हो जायगी। इस तरह इन दोनों गैसोंका साम्य सदा ही बना रहेगा।

वैदिक कालसे ही वायुमण्डल वैज्ञानिकोंके विचारका विषय रहा है। अब भी ये लोग इसपर बराबर विचार करते ही रहते हैं। पूर्व-कथनानुसार लगभग दो शताब्दियोंसे विद्वान् इसपर कुछ न कुछ विचार करते आ रहे हैं।

आजकलके विज्ञान-वेत्ता वायुमण्डलसे सम्बन्ध रखनेवाली निम्नलिखित बातोंके परीक्षणमें व्यस्त हैं—१ आकाशका नीला रंग, २ वायुमण्डलका ऊपरी संगठन, ३ वायुमण्डलकी रेडियम-धर्मिता, ४-कृषिपर वायुमण्डलकी विद्युत्का प्रभाव, ५ पौधों और मनुष्योंपर वायुमण्डलका प्रभाव, ६ वायुमण्डल और जल-वायु तथा ७ वायुमण्डलका मानव-परिस्थितिपर प्रभाव।

अबतक नीले रंगके कई कारण ढूँढ़ निकाले गये हैं। इनमें वायुके रजः-कण, वाष्पः और प्रकाशका प्रतिबिम्ब आदि हैं; किन्तु इनमें ध्रुवीकरण-सिद्धान्त-सम्मत प्रकाशका प्रतिबिम्ब ही मुख्य है। परन्तु कइयोंकी सम्मतिमें आकाशके ऊपरी भागोंमें नाइट्रोजनका जलना ही आकाशके नीलेपनका समधिक सत्य-पूर्ण उत्तर है।

वायुमण्डलके ऊपरी संगठनके विषयमें अबतक प्रतिष्ठित सम्मति तो यही है कि, इस वायुमण्डलके ऊपर और नीचेके भागोंमें उसका संगठन साधारणतः एकसा है। परन्तु इसके विरुद्ध वैज्ञानिकोंकी यह भी सम्मति है कि, आकाशके ऊपरके भागोंमें नाइट्रोजन अधिक मात्रामें है और हलकी गैस (हीलियम और हाइड्रोजन) बहुत कम मात्रामें। वर्णपट-दर्शकके द्वारा देखनेसे मालूम हुआ है कि, ध्रुवोंके ऊपरी भागोंमें ४०० मीलकी दूरीपर सुमेरु कुमेरुके प्रकाशमें हरी रेखाएँ मालूम होती हैं, जो नाइट्रोजनकी ही हो सकती हैं। इससे वैज्ञानिकोंने यह समझा है कि, ऊपरका नाइट्रोजन अबतक गैसीय अवस्थामें नहीं आया है, प्रत्युत सूक्ष्म अणु-समूहोंके रूपमें है। ये समूह असलमें नाइट्रोजनकी धूलि हैं; क्योंकि यह नाइट्रोजन प्रयोगशालाके नाइट्रोजनके अनुरूप नहीं है।

आजकल वायुमण्डलकी सबसे बड़ी बात (जो संसारको अपनी ओर खींच रही है) रेडियम-धर्मिता है। संसारमें इसके महत्त्वकी धूम है। इसके द्वारा आजकल पचासों काम होने लगे हैं। इसीके प्रतापसे रेडियोफोन आदि अनेक उपयोगी यन्त्र बन चुके हैं। इसके सिवा आरोग्य-विज्ञानमें भी इससे सहायता लेनेके उपक्रम हो रहे हैं। रेडियोसे सम्बन्ध रखनेवाली और भी वायुमण्डल-सम्बन्धिनी पचासों बातें हैं।

विषाक्त गैसें और उनका प्रयोग

प्रोफेसर महादेवलाल सराफ

मानव सभ्यताके इतिहासमें युद्धोंकी कमी नहीं; किन्तु बीसवीं शताब्दीकी सभ्यताकी ठेकेदार पाश्चात्य जातियोंने विगत यूरोपीय महायुद्धमें पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेषसे अन्धी होकर अपनी क्रूरता एवम् हिंसाप्रिय प्रवृत्तिकी तुष्टिके लिये जिन साधनोंका आविष्कार किया, उनमें सम्भवतः विषाक्त गैसें ही सबसे अधिक भयङ्कर तथा महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु ये रक्तलोलुप जातियाँ भी युद्धकालमें ही इन गैसोंकी क्लेशकारिणी शक्तिसे भयभीत हो उठीं तथा

युद्धके समाप्त होते-होते "विषाक्त गैसोंका प्रयोग" एक अन्ताराष्ट्रिय प्रश्न बन गया। उस समयसे लेकर अद्यावधि भिन्न-भिन्न सभा-समितियोंकी योजना की गयी तथा विषाक्त गैसोंको लेकर पर्य्याप्त वाद-विवाद हुआ। कुछ मनुष्योंका कहना है कि, युद्ध एवम् प्रणयमें सभी कुछ न्यायसङ्गत तथा युक्तियुक्त है एवम् रणक्षेत्रमें विषाक्त गैसोंका प्रयोग किसी भी प्रकार दूषित तथा गर्हित नहीं ठहराया जा सकता। इसके विपरीत विरोधी पक्ष इन्हें अमानुषिक तो नहीं ठहराता; किन्तु उसका कथन है कि, इनके प्रयोगसे ग्रामों तथा नगरोंमें रहनेवाली निरीह तथा निर्दोष जनताकी सुखशान्तिमें विघ्न-बाधा उपस्थित कर हम उस असीम करुणामयके प्रति अपनी कृतघ्नता तो अवश्य ही प्रदर्शित करते हैं। जो कुछ भी हो, यह तो स्पष्ट ही है कि, विषाक्त गैसोंके प्रयोगने युद्ध-कलामें एक महान् परिवर्तन उपस्थित कर दिया है और आज इस बातका स्पष्ट आभास मिलता है कि, भविष्यमें एक वीर सैनिककी अपेक्षा रसायनशालामें बैठा हुआ एक दुर्बल वैज्ञानिक विषाक्त गैसों, शक्तिशाली विद्युल्लहरों तथा संक्रामक रोगोंके कीटाणुओंको व्यवहृत कर अपनी शक्ति तथा महत्त्वका अधिक प्रदर्शन कर सकेगा। सम्भवतः इसी कारण सैनिकगण विषाक्त गैसोंके प्रयोगको अनुचित और वर्जनीय समझते हैं।

वास्तवमें गैसोंका प्रयोग प्राचीन कालसे चला आ रहा है। पुत्रशोकोन्मत्त अर्जुनकी प्रतिज्ञापूर्तिके लिये कृष्ण द्वारा दिन रहते सूर्य्य छिपा देनेमें गैसोंके प्रयोगकी सम्भावना की जा सकती है। ईसाके ४३१ वर्ष पूर्वसे ४०४ वर्ष पूर्वतक होनेवाले स्पार्टा तथा एथेन्सके युद्धोंमें स्पार्टावालोंने गन्धक तथा 'पिच'के मिश्रणको जलाकर एथेन्सवालोंकी सेना भगानेकी चेष्टा की। मध्यकालीन यूरोपमें भी गन्धकको जलाकर बनायी हुई "सल्फर-डाइ-आक्साइड" नामक गैसका प्रयोग किया गया; पर उस समय प्रायः पूर्ण रूपसे सफलता प्राप्त नहीं हुई।

आधुनिक समयमें इन गैसोंके सम्बन्धमें युक्तिसङ्गत और क्रमपूर्ण विचार सर्वप्रथम ब्रिटिश जलसेना-नायक लार्ड डंडोनाल्डके मनमें उठे। सिवास्टोपलकी चढ़ाईके अवसरपर (१८५५ ई० में) आपने गन्धक, कोयला एवम् तारकोल जलाकर रूसी सेनाको कुछ विशेष दुर्गोंसे भगानेकी योजना उपस्थित की थी। सरकारी कमिटीने यद्यपि इस योजनाको उपयुक्त समझा; किन्तु उसके प्रयोगकी आज्ञा नहीं दी; क्योंकि उसकी सम्मतिमें इसका प्रभाव बड़ा ही भयानक और असभ्य समझा गया।

इधर विषाक्त गैसोंका प्रयोग सर्व-प्रथम १९१५ ई० की २२ वीं अप्रैलको हुआ, जब कि, जर्मन सेनाने फ्रेंच सेनापर क्लोरिन नामक गैससे धावा किया। एक मास पश्चात् मित्रदल (Allies) ने उसका उत्तर गैसके द्वारा ही दिया और तत्पश्चात् तो दोनों पक्ष इस युद्ध सम्बन्धी नवीन साधनको अधिकाधिक दृढ़ और परिपक्व करनेमें दत्तचित्त हो गये।

फ्रीज तथा वेस्ट नामक दो सेनापतियोंका कथन है कि, इन विषाक्त गैसोंसे केवल दो प्रतिशत ही अमेरिकन धराशायी हुए एवम् ऐसे मनुष्योंकी संख्या तो बहुत ही थोड़ी थी, जो जीवन-पर्यन्त कार्याशक्त तथा विकृतावयव हो गये। इसके विपरीत बम गोलोंकी मारसे २५ प्रतिशत मारे गये और ५ प्रतिशत अङ्गविहीन तथा विकृत-शरीर हो गये। उक्त साक्ष्यसे यह भली भाँति प्रकट होता है कि, युद्धमें विषाक्त गैसोंका प्रयोग मनुष्यताके विचारसे सर्वोत्तम है तथा जंगली जातियों और अन्य सामान्य शत्रुओंके विरुद्ध विषाक्त गैसोंका प्रयोग इतनी कुशलतासे किया जा सकता है कि, जन-संहार और रक्तपात भी न हो एवम् कार्यसिद्धि भी हो जाय। परन्तु इसके साथ ही एक यह भी समस्या उपस्थित हो जाती है कि, मनुष्य बमके गोलोंसे तो अपनी रक्षा कर भी सकता है; किन्तु गैसोंके प्रभावसे बचना तो कठिन ही नहीं;

किन्तु एक प्रकारसे असम्भव है। आघातक्षेत्रके विस्तृत होनेके कारण ये गैसें अधिक मनुष्योंको घायल भी करती हैं।

विषाक्त गैसोंके विषयमें यह सब बातें सुनकर यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि, आखिर ये हैं क्या? युद्धमें प्रयुज्य रासायनिक द्रव्य ही विषाक्त गैसोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। पर वस्तुत: अधिकांश विषाक्त गैसे ठोस तथा तरल पदार्थ ही हैं। साधारणतया हम विषाक्त गैसोंको पांच श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—यद्यपि यह वर्गीकरण बहुत युक्तिसङ्गत नहीं है; क्योंकि इस प्रकार कई पदार्थ समान रूपसे कई श्रेणियोंके अन्तर्गत आ जाते हैं। फिर भी निम्नलिखित वर्गीकरण सामान्यत: सङ्गतसा है—

१ प्राणनाशक पदार्थ। ये चार प्रकारके होते हैं—

(अ) वे जहरीले पदार्थ, जो कष्टदायक न होनेपर भी प्राणघातक हैं। उनमें हाइड्रोस्यानिक अम्ल, स्यानोजन ब्रोमाइड और कार्बन मोनोक्साइड विशेष उल्लेखनीय हैं।

(ब) श्वासरोधक विषैली गैसें। ये फेफड़ेकी झिल्लियोंको नष्ट कर रुधिरके मिश्रणके लिये वायुके आने-जानेकी छोटी-छोटी नलियाँ अवरुद्ध कर देती हैं। अत: रुधिरको आक्सिजन न मिलनेके कारण मनुष्यका दम घुट जाता है तथा फल-स्वरूप जीवनसे हाथ धोने पड़ते हैं। इन गैसोंमें फासजीन, ट्राइक्लोर मेथिल फोरमेट तथा क्लोरोपिक्रीनके नाम उल्लेखनीय हैं।

(स) वे विष, जो वायुवाहक धमनियोंपर आघात कर उन्हें नष्ट कर देते हैं; फेफड़ोंमें वायुका सञ्चार नहीं हो पाता तथा श्वासावरोध हो जाता है। यदि व्रण अधिक घातक होता है, तो फलस्वरूप तुरत ही मृत्यु हो जाती है; किन्तु आघातके प्रबल न होनेपर यदि मृत्यु नहीं भी होती, तो भी फेफड़े इतने अशक्त हो जाते हैं कि, उनमें जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं एवम् मनुष्यको ब्रोंकाइटिस और निमोनियासे ग्रसित कर प्राणोंको नष्ट कर देते हैं। मस्टर्ड गैस और एथिल डाइक्लोर आर्सीन गैसें इसी श्रेणीकी हैं।

(द) वे विष, जो केवल नाक और गलेपर ही आघात करते हैं। इन विषोंसे भयानक दर्द, शिर:पीड़ा, कै, छातीका भारी होना, छींकना, आँखोंके सामने अँधेरा, मूर्च्छा और शारीरिक दुर्बलता आदि रोग मनुष्यको घेर लेते हैं। डाइफेनिल क्लोर आर्सीन तथा डाइफेनिल स्यान आर्सीन गैसें इस श्रेणीमें मुख्य हैं।

२ अश्रूत्पादक गैसें। ये गैसें आँखोंपर आघात करती हैं और कमसे कम कुछ कालके लिये मनुष्यको अंधा बना देती हैं! इस श्रेणीके विष बहुत ही ध्यान देने योग्य हैं; क्योंकि नेत्र ही मानव-शरीरमें सबसे कोमल अवयव हैं। आरम्भमें युद्धमें ऐसे द्रव्योंके प्रयोगकी चेष्टा की गयी थी, जो नेत्रोंको अत्यधिक हानि पहुँचावें। इन द्रव्योंके प्रयोगमें एक सुगमता यह रहती है कि, बहुत ही कम मात्राकी आवश्यता पड़ती है; और, जब तक वायुमण्डलमें इनका कुछ भी भाग शेष रहता है, तबतक देखना तो एक प्रकारसे मनुष्यके लिये असम्भव ही हो जाता है! ये इतनी विषैली होती हैं कि, वायुके एक करोड़ भागोंमें इनका एक भाग भी मिश्रित हो जाय, तो नेत्रोंपर बड़ा ही भयानक प्रभाव पड़ता है! इससे थोड़ी भी अधिक मात्रामें मिश्रित कर देनेपर योद्धाको रण-क्षेत्रसे ही भागना पड़ता है अथवा वह अन्धा होकर वहीं गिर जाता है। 'फ्रीज' साहबका कथन है कि, किसी भी अच्छी अश्रूत्पादक गैसका एक गोला श्वासावरोधक फासजीन गैसके ५०० से १००० गोलोंके बराबर है। सतत अश्रु-प्रवाह तथा नेत्रोंकी सूजन मनुष्यको थोड़ी देरके लिये अन्धा बना देते हैं। इस श्रेणीमें क्लोरऐसेटोफिनोन, ब्रोमबेनजील साइनाइड, ब्रोम ऐसीटोन, एथिल आयोडो, ऐसिटेट, क्लोरोपिक्रीन, क्लोर ऐसीटोन, बेनजील क्लोराइड, बेनजील ब्रोमाइड, जाइलिल ब्रोमाइड मुख्य हैं।

३ शरीराङ्गोंपर छाला डालनेवाली गैसें। इनसे शरीरपर बहुत ही दुःखदायक घाव हो जाते हैं तथा

शरीरके जिस किसी अङ्गका भी ये स्पर्श करती हैं, वहीं भयानक पीड़ा होने लगती है एवम् छाले पड़ जाते हैं। इनमें श्वासावरोधक तथा अश्रूत्पादक गैसोंके गुण भी होते हैं; क्योंकि श्वासके साथ ये फेफड़ोंमें प्रवेश कर जाती हैं और आँखोंपर आघात कर मनुष्यको अन्धा बना देती हैं।

इस श्रेणीमें कुछ ये हैं—मस्टर्ड गैस तथा मृत्युकी ओस (Dew of Death)।

४ इन गैसोंके सूँघनेसे मनुष्यको छींक आना आरम्भ हो जाता है। जब युद्धमें इन गैसोंका प्रयोग किया जाता है, तब सैनिकोंको अपने मुखोंपरसे कृत्रिम चेहरा हटाना पड़ता है और इसके हटाते ही अन्य विषैली गैसोंका आक्रमण हो जाता है। डाइफेनील क्लोर आर्सीन अथवा 'नीला क्रास' एक ऐसी ही गैस है।

५ भ्रान्ति-उत्पादक गैसें। इनका प्रयोग युद्ध-क्षेत्रमें इसलिये किया जाता है कि, वायुमण्डलमें व्याप्त विषाक्त गैसोंका ज्ञान न हो अथवा इनको ही विषाक्त गैसें समझ कर सैनिकगण अपने मुखोंपरसे कृत्रिम चेहरे न उतार सकें एवम् हृदयपर भार रहनेके कारण अत्यन्त पीड़ा सहें।

विषैली गैसोंका प्रभाव उनके समाहरण (Concentration) तथा प्रसारकालपर निर्भर है। समाहरण तथा प्रसारकाल, दोनोंका प्रभाव एक ही प्रकारका है। उदाहरणार्थ फासजीन गैसका एक व्यक्तिपर एक मिनटमें प्रायः उतना ही प्रभाव पड़ेगा, जितना कि, दो मिनटोंमें उस फासजीन गैसका, जिसका समाहरण पहली गैसके समाहरणसे आधा है।

विषाक्त गैसोंकी वाष्पशीलता (Volatility)। किसी विषाक्त गैसके प्रभावक्षेत्रके अधिक व्यापक होनेके लिये यह आवश्यक है कि, वह गैस वाष्पशील हो, परन्तु इतनी वाष्पशील नहीं कि, कुछ कालमें ही उड़ जाय। यही कारण है कि, दो समान रूपसे विषाक्त गैसोंका प्रभाव युद्धक्षेत्रमें सर्वथा भिन्न होता है। गैसें बहुत ही शीघ्र वायुमण्डलमें फैल जाती हैं और अनुभव यह बतलाता है कि, प्राणनाशक गैसोंके बम फूटते ही ये इतनी द्रुत गतिसे वायुमण्डलमें व्याप्त हो जाती हैं कि, गैसोंके बादलोंमें समाहरण प्रतिशत एकका दशांश या उससे भी कम हो जाता है। परन्तु यह बात उस समयकी है, जब बम फूटते ही हैं; पर इसके कुछ ही काल बाद तो ये बहुत ही क्षुद्र हो जाती हैं। हाइड्रोस्यानिक एसिड गैसका सबसे बड़ा दुर्गुण यही है कि, यह सबसे अधिक विषैली गैस होनेपर भी वायुमण्डलमें शीघ्रतया व्याप्त हो जाती है तथा उसका समाहरण द्रुत वेगसे घटने लगता है। अतएव उसका विषाक्त प्रभाव भी नहींके बराबर हो जाता है। फासजीन गैस हाइड्रोस्यानिक गैससे बहुत भारी होनेके कारण जल्दी उड़ती नहीं है। इसी प्रकार अन्य तरल तथा ठोस पदार्थ (जिनका क्वथनाङ्क ऊँचा है) अधिक समयतक वायुमें ठहरते हैं तथा उनका प्रभाव भी अधिक व्यापक और कालक्षम होता है।

गैस-प्रहार। गैस-प्रहार आर्टिलरी अथवा वायुयान प्रोजेक्टाइलसे सफलतापूर्वक किया जाता है। अश्रूत्पादक गोलोंका उपयोग प्रथम बार १९१५ ई० के मई मासमें हुआ था और १९१६ ई० के जुलाई मासमें विषाक्त गोलोंका। ऐसा कहा जाता है कि, सन् १९१८ में कई युद्धोंमें गैसोंके २ लाख पचीस हजार गोले २४ घंटोंमें ही फेंके गये! जहाँ बमके गोलोंका प्रभाव फूटते ही समाप्त हो जाता है, वहाँ विषाक्त गोलोंका प्रभाव, फूटनेपर, आरम्भ होता है; और, कभी-कभी दस-दस दिनोंतक रहता है! फिर बमके गोलोंसे रक्षा करनेको बनाये हुए कंक्रीट तथा लोहे आदिके किले रासायनिक विषाक्त गैसोंके गोलोंके सामने व्यर्थ ही रहते हैं; क्योंकि इन गैसोंका धूँआ कोनों तथा छिद्रोंके द्वारा प्रविष्ट होकर अपना आघात कर सकता है।

फासजीन गैस। यूरोपीय महायुद्धके पहले ही जर्मनीने इस गैसकी निर्माण-विधिको आविष्कृत कर इसे बड़े परिमाणमें बनाना आरम्भ कर दिया था। यह गैस जान्तव कोयलेके समान कोयलोंसे उत्पन्न विषाक्त गैस कार्बन मोनोक्साइड तथा हरी-पीली क्लोरिन गैस के संयोगसे उत्पन्न होती है।

यह गैस तरल पदार्थ है। इसका क्वथनाङ्क ८'२° श है तथा विशिष्ट घनत्व १'४३२° (०° श) है। यह गैस बहुत ही जहरीली है तथा इसका प्रभाव हृदय-पर धीरे-धीरे होता है; और, कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है कि, अब इसका कोई प्रभाव नहीं रहा; पर अन्तमें मृत्यु हो जाती है! यह गैस फेफड़ोंपर भी बड़ा भयानक प्रभाव डालती है तथा इसकी दुर्गन्ध तो इतनी तीव्र और असह्य होती है कि, केवल एक बार सूँघ लेनेपर भी मनुष्य जीवन पर्य्यन्त दुर्गन्ध नहीं भूलता! इसके गुणोंका बखान वैज्ञानिक भिन्न-भिन्न प्रकारसे करते हैं। कोई कहते हैं कि, इसका विषाक्त गुण फफड़ोंमें जाकर हाइड्रोक्लोरिक गैस बननेसे स्थापित होता है तथा कुछ लोगोंका मत है कि, मनुष्यका श्वास-नलीमें हवाका स्थान फासजीन गैस ग्रहण कर लेती है; और, फलस्वरूप साँस न ले सकनेके कारण मनुष्यका दम घुट जाता है एवम् उसकी मृत्यु हो जाती है। इसके रोगीका निदान केवल यही है कि, वह पूर्ण रूपसे विश्राम ले और आक्सीजन गैस सूँघे।

क्लोरोपिक्रीन। इस गैसको बड़े परिमाणमें उत्पन्न करनेमें इंगलैंड तथा अमेरिकाने अच्छी सफलता प्राप्त की है। यह गैस पिक्रिक एसिड तथा क्लोरिन गैसके मिश्रणसे बनती है। इस गैसका रंग पानीका-सा है तथा विशिष्ट घनत्व १'६५४ (२० श°) है एवम् क्वथनाङ्क ११२° श° है। यह प्राणनाशक तथा अश्रूत्पादक, दोनों श्रेणियोंकी होती है। स्टैनिक क्लोराइड-के साथ मिश्रित कर रणक्षेत्रमें इसका उपयोग किया जाता है। बम फूटनेपर छ घंटेतक वायुमण्डल इसके विषसे पूर्ण रहता है।

मस्टर्ड गैस। अमेरिका, इंगलैंड तथा जर्मनीने इसका उपयोग किया था। यह तरल पदार्थ है एवम् इसका रंग पानीका-सा है। इसका क्वथनाङ्क २१५° श° है। इसका प्रभाव सर्वप्रथम नेत्रोंपर होता है तथा मनुष्यको बहुत पीड़ा होती है और कनीनिका (Cornea) नष्ट हो जाती है! इसका प्रभाव इतना तीव्र होता है कि, थोड़ी-सी मात्रासे मनुष्य कुछ समयके लिये अन्धा बन जाता है। यह कहा जाता है कि, यदि इसका एक भाग वायुके डेढ़ करोड़ भागोंके साथ मिश्रित कर दिया जाय, तो कंजंटीवीटिज (Conjuntivitis) हो जाती है। शरीरके गीले स्थानोंपर इसका प्रभाव अधिक पड़ता है तथा कक्षादि स्थानोंपर घाव हो जाते हैं। इस गैसके विषयमें ब्रिटिश सेनाकी विज्ञप्ति यह है—

(१) इससे प्रभावित होनेपर सबसे प्रथम छींकका आना आरम्भ हो जाता है और १२ घंटेके पश्चात् नाक बहना, आँखोंकी सूजन और कै इत्यादि शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

(२) चेहरे और गलेपर छाले पड़ जाते हैं।

(३) जंघास्थलका मध्यवर्ती स्थान लाल हो जाता है, भयानक पीड़ा होती है एवम् छाले पड़ जाते हैं।

(४) शरीरपर आघात होते ही तो किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता; किन्तु कुछ समयके पश्चात् शरीरमें असह्य पीड़ा होने लगती है।

मस्टर्ड गैसका विष बहुत ही सामान्य होता है—यहाँ तक कि, सूँघकर भी इसका पता नहीं लगाया जा सकता। बम फूटनेके कई दिन बादतक इसका प्रभाव रहता है। बहुत ही धीमी गन्ध होनेके कारण इसकी पहचान बड़ी ही कठिनतासे हो सकती है; और, यदि इसकी मात्रा भी संयोगवश कम हुई, तो पता लगाना एक प्रकारसे असम्भव

ही हो जाता है। उधर योद्धा लोग कृत्रिम चेहरे हर समय नहीं पहने रह सकते; क्योंकि इस अवस्था-में काम करनेमें बड़ी असुविधा पड़ती है। अतः इसकी परीक्षाके लिये भी अन्य रासायनिक साधनोंको ढूंढ़ निकाला गया है।

वायुमण्डलमें इसकी उपस्थिति जाननेका एक सरल-सा उपाय यह है कि, फ्रोम एलो लाल हो जाता है। विगत युद्धमें यह प्रयुक्त की गयी थी।

इस गैसके आघातसे पीड़ित व्यक्तिका उपचार यह है कि, ६६ भाग क्लोरामिन 'टी' को एक भाग सोडियम स्टीयरेटमें मिश्रित किया जाय तथा आहत व्यक्तिके शरीरपर इसका लेप कर दिया जाय।

मस्टर्ड गैसके विषसे बचनेके उपाय—आँख तथा श्वास-नलीकी रक्षा तो कृत्रिम चेहरोंके उपयोगसे हो सकती है और शरीरके बचावके लिये विशेष प्रकार-के कपड़े बनाये जा सकते हैं; पर वे भारी तथा महँगे होंगे। नीचे लिखी हुई चीजोंका लेप कर लेनेसे शरीरपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। जिंक आक्साइड ४० प्रतिशत, तीसीका तेल २० प्रतिशत, सूअरकी चर्बी २० प्रतिशत, लेनोलिन (भेड़के ऊनका तेल), २० प्रतिशत। परन्तु आँख, नाक तथा फेफड़ोंके बचावका उपाय ढूंढ़ निकालना अभी बाकी है।

क्लूकास (छींक लानेवाली गैस)। इस गैसका निमार्ण-कार्य बहुत कठिन है और यह आर्सेनिकसे बनती है तथा ठोस होती है। इसका गलनाङ्क ४४° श० है। यह प्रायः उच्च कोटिके विस्फोटक सेलसमें भर कर प्रयोगमें लायी जाती है। जब इसके गोले फूटते हैं, तब इसके विषका कुहासा [Mist] बन जाता है और वह कृत्रिम चेहरोंतकमें घुस कर छींकनेके लिये मनुष्यको बाध्य कर देते हैं। छींकनेके लिये कृत्रिम चेहरा हटाना पड़ता है और इसके हटाते ही और भी कई प्रकारकी अति विषैली गैसें [जो वहाँ विद्य-मान रहती हैं] मनुष्यपर अकस्मात् धावा करती हैं। यही इन छिंकानेवाली गैसोंका उपयोग है।

ड्यू आफ डेथ (Dew of Death) लूइसाइट। यह तरल पदार्थ है तथा पानीमें इसका मिश्रण नहीं होता। शरीरपर भयानक छाले डालनेमें तो कोई भी अन्य गैस इसकी समता नहीं कर सकती। इसके तनु-विल-यनकी दो एक बूँदें भी बड़े ही भयङ्कर फफोले डाल देती हैं। अपने विषमय प्रभावमें तो यह मस्टर्ड गैससे भी बढ़-कर है। चूहेके पेटपर कई प्रयोग करके यह सिद्ध हुआ है कि, इसकी केवल तीन बूँदें ही उसको १ से ३ घंटेकी अवधिमें मार सकती हैं। इसका प्रहार फेफड़ों, नाक और गलेमें बहुत ही भयानक रूपमें होता है और छींकोंके मारे तो मनुष्य पागल हो जाता है। इस विषसे रक्षा करनेके लिये अभीतक किसी भी कृत्रिम चेहरेका आविष्कार नहीं हुआ है। ये कृत्रिम चेहरे प्रायः लकड़ीके कोयले, सोडा लाइम तथा सोडियम परमैंगनेटसे बनते हैं।

शत्रुकी गैसोंसे बचनेके लिये धूम्रावरण (Smoke Screens) भी काममें लाये जाते हैं। इनका संगठन प्रायः निम्न लिखित पदार्थोंसे होता है—जस्ता ३५ प्रतिशत, कार्बन टेट्रा क्लोराइड ४० प्रतिशत, सोडियम क्लोरेट १० प्रतिशत, अमोनियम क्लोराइड १० प्र० श० और मेगनीशियम कार्बो-नेट ५ प्र० श०। इन पदार्थोंसे सगठित धूम्रावरणके द्वारा शत्रुको धोखा दिया जाता है एवम् अपनी रक्षा भी हो जाती है।

ऊपर गैसोंका एक सामान्य-सा विवेचन किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, वास्तवमें ये गैसें ही नहीं; किन्तु इनमें बहुतसे तरल तथा ठोस पदार्थ भी हैं; और, साथ ही इस बातका भी आभास मिलता है कि, भविष्य-का युद्ध कितना भयङ्कर तथा लोक संहारक हो सकता है। सम्भव है, विषाक्त गैसोंके इस विवरणसे कुछ पाठक यह धारणा बना लें कि, स्वयम् विज्ञान ही मानव-समाजके लिये हानिकारक तथा दुःखप्रद है; परन्तु आवश्यकता इस बातकी

है कि, हम स्थिर बुद्धिसे इसपर कुछ विचार करें। विज्ञानने मानव-सुख-समृद्धिके लिये जिन साधनोंको जुटाया है, उनकी उपेक्षा कर केवल उसके संहारक पक्षकी ओर ही दृष्टिपात कर उसके विरुद्ध कोई धारणा बाँध लेना युक्तियुक्त तथा न्याय-सङ्गत नहीं होगा। विज्ञानके दो पक्ष हैं--लोकोपकारक तथा लोकापकारक। यदि मनुष्य सात्त्विक भावोंसे पूर्ण होकर विज्ञानको लोक-कार्योंमें नियोजित करेगा, तो अवश्य ही उसका कल्याण होगा; परन्तु यदि वह तामसिक भावों तथा विचारोंसे ही पूर्ण होकर विज्ञानका उपयोग करेगा, तो उसका रूप अवश्य ही लोकसंहारक हो जायगा। अतएव सब कुछ मनुष्यपर ही निर्भर है। विज्ञान तो बेचारा व्यर्थमें ही कलङ्कित है। अतः यह मनुष्यके लिये आवश्यक-सा होता है कि, वह विज्ञानकी उन्नतिके साथ ही साथ सदाचारको भी ध्यानमें रखे।

सूर्यसे शक्ति-ग्रहण

श्रीयुत रामगोपाल सक्सेना बी० एस-सी०

इस पृथ्वीके सारे जीवोंको जीव और शक्ति देनेवाला सूर्य ही है, इस बातको मान लेनेमें आज किसीको आपत्ति नहीं। आज ही नहीं, प्राचीन कालमें भी इस सिद्धान्तपर लोगोंकी श्रद्धा थी। परन्तु सूर्य-शक्ति प्राकृतिक नियमों द्वारा ही प्राणियोंको प्राप्त हुआ करती थी अथवा यों कहना उपयुक्त होगा कि, सूर्यसे शक्ति-ग्रहण करनेमें आजसे १ शताब्दी पूर्व मनुष्यका कुछ हाथ न था।

विज्ञान द्वारा यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि, सूर्यकी रश्मियोंसे ही वह रासायनिक परिवर्तन होता है, जिसके द्वारा छोटे-से-छोटे तृणसे लेकर बड़ेसे बड़े वृक्ष तक हरे-भरे रहते हैं। निम्न श्रेणीके शरीरधारी जीवोंका भी (जैसे खरगोश, हिरन, बकरे आदिका) पोषण इन्हीं उद्भिज्ज पदार्थोंसे होता है। उच्च श्रेणीके जीवधारी (जैसे मनुष्य, शेर, गाय, इत्यादि) इन्हीं उद्भिज्ज पदार्थों अथवा निम्न श्रेणीके जीवधारियोंको भक्षण कर जीवित रहते हैं। इसी सूर्यके प्रकाशसे वाष्प बनता है, जिसके द्वारा वर्षा होती है और वर्षाके कारण कितने ही उद्भिज्ज पदार्थों और चलने-फिरनेवाले प्राणियोंका जन्म हो जाता है, यह किसीसे छिपा नहीं। जिन अदम्य उत्साही व्यक्तियोंने उत्तरी एवम् दक्षिणी ध्रुवोंकी यात्रा की है, उनका कहना है कि, वहाँ किसी प्रकारके प्राणी एवम् वनस्पति, वृक्ष इत्यादि-का नाम तक नहीं—वे स्थान जीवन-शून्य हैं; इस लिये शक्ति-शून्य भी हैं; क्योंकि वहाँ सूर्यका प्रकाश बहुत कम है। इस प्रकाशको पाकर जिस नियमसे पौधे बढ़ते हैं, जिस प्रक्रियासे उनमें प्रस्तार होता है, उसमें वृद्धि अथवा न्यूनता करना मनुष्यकी शक्तिसे परे था। वर्तमान कालमें मनुष्यने सूर्यकी शक्तिपर भी अपना अधिकार जमा लिया है। अब सूर्यकी प्रत्येक रश्मि केवल उष्णताका कारण ही नहीं रही, वरन कोयला, मिट्टीका तेल और पेट्रोल इत्यादिके सदृश मनुष्य सूर्य-रश्मि द्वारा अन्यान्य कार्य भी करता है!

उष्णता भी शक्तिका एक स्वरूप है। उष्णता और यान्त्रिक कार्य (Mechanical work) का सम्बन्ध अथवा तापका यान्त्रिक तुल्याङ्क (Mechanical equivalent of heat) सबसे प्रथम विज्ञान-वेत्ता मि० जूल (Mr. Joule) ने, सन् १८४३ ई०में,

बतलाया था। उसने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि, १ ग्राम (gramme) पानी (१६.५ शतांशपर)का तापक्रम १ डिग्री शतांश और बढ़ानेके लिये ४.२ × १०⁷ अर्ग (Ergs) कार्य करना पड़ता है अथवा १ केलारी (Calorie) तापकी शक्तिसे ४.२×१०⁷ अर्ग (Ergs) कार्य किया जा सकता है। इन्हीं महाशयने उष्णता और विद्युत्-शक्तिका परस्पर सम्बन्ध बतलाया था।

इसके पूर्व, सन् १८२१ ई० में, महाशय सीबेक (Seebeck) जर्मनने सर्व-प्रथम यह ज्ञात किया कि, यदि दो पृथक्-पृथक् धातुओं (उदाहरणार्थ ताम्र (Copper) और बिस्मथ (Bismuth) के गोल सरिये इस प्रकार मिलाकर रखें, और उनके एक जोड़को गर्म करें तथा दूसरा ठंडा रखें, तो उस कक्षामें विद्युत्-प्रवाह होने लगता है, जिसका ज्ञान उन दोनोंके मध्यमें एक चुम्बककी सूई लटकानेसे होता है। इस प्रकारकी दो पृथक्-पृथक् धातुओंके योगको "ताप-विद्युत्-युग्म"(Thermo-couple) कहते हैं।

उक्त महाशयने अनेक विभिन्न धातुओंकी एक नामावली इस प्रकारको बनायी कि, उसमेंसे कोई भी दो धातुएँ लेकर यदि कथित योग बनाया जाय, तो ठंडे जोड़में विद्युत्-प्रवाह उच्च श्रेणीकी धातुसे निम्न श्रेणीकी धातुमें होकर होगा। वह नामावली, कुछ विभिन्न धातुओंकी, इस प्रकार है – (१) एंटीमनी (आँजन), (२) लोहा, (३) जस्ता, (४) रजत (चाँदी), (५) सुवर्ण, (६) बंग (राँगा), (७) सीसम, (८) ताम्र, (९) प्लाटीनम और (१०) बिस्मथ। इनमेंसे यदि हम जस्ता और राँगा लेकर ताप-विद्युत्-युग्म बनावें और एक जोड़को गरम करें, तो ठंडे जोड़में विद्युद्-धारा जस्तेसे राँगेमें होकर प्रवाहित होगी। ऐसे योगमें प्रवाहकी शक्ति बहुत ही अल्प होगी। यदि ऐसे दो योगोंकी एक शृङ्खला इस प्रकारकी बनायी जाय कि, ऐसी दो पृथक् धातुओंके बहुतसे सरिये एकके पश्चात् दूसरी धातुवालोंसे परस्पर जोड़ दिये जायँ और केवल एक ओरके जोड़ोंको ही गरम किया जाय, तो प्रवाह विशिख द्वारा बतलायी हुई दिशामें होगा।

कृत्रिम सूर्यकी सेवामें रोगमुक्त होनेके अभिलाषी बालक

सूर्यके तापको एक विशेष प्रकारके काच (जिसे एकीकरण ताल [Lens, Condensing] भी कहते हैं) द्वारा एकत्र कर इतना तापक्रम बढ़ाया जा सकता है कि, कागज, कपड़ा इत्यादि शीघ्र जल जानेवाली वस्तुओंमें आग लग जाय। ऐसा काच बाजारसे मोल लेकर बालक यही

करते हुए प्राय: प्रति दिन देखनेमें आते हैं। यह कोई नवीन बात नहीं; परन्तु इसी सिद्धान्तपर एक इंजिनके बायलर (Boiler) का पानी उबालकर वाष्प बनाया जा सकता है, जिससे इंजिन चल सके। एक ऐसे ही इंजिनका निर्माण अमेरिकामें किसी समय हुआ था। परन्तु ये सब साधन पूर्ण सफलता-पूर्वक सूर्यका ताप कार्यमें परिणत करनेमें समर्थ नहीं हुए।

हालमें ही डाक्टर ब्रूनो लेंगने (Dr. Bruno Lange) (जो बर्लिनके एक बड़े विज्ञान-वेत्ता हैं) कैसर विल्हेम इन्स्टीट्यूटकी अपनी निजकी प्रयोगशालामें एक ऐसे यन्त्रकी रचना की है, जिससे सूर्यका ताप लगातार विद्युत्-शक्तिमें बदलता रहता है। यह यन्त्र हमारा ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित करता है कि, बहुत सम्भव है, निकट भविष्यमें हम एक ऐसे अनन्त शक्तिके आगारको (जिसे हम अबतक एक प्रकारसे भुलाये हुए थे) कार्यमें ला सकें। इस यन्त्रके आविष्कर्ता और निर्माता डा० ब्रूनो लेंग २८ सालके एक नवयुवक हैं। आपका कथन है कि, भविष्यमें शीघ्र ही उनके बनाये हुए अद्भुत चमत्कारी प्लेटोंको (जो उस यन्त्रका प्रधान अङ्ग हैं) सहस्रोंकी संख्यामें इस हेतु कार्यमें लाया जायगा कि, वे सूर्यके तापको विद्युत्-शक्तिमें बदलकर उससे विशालकाय यन्त्रालय, रुईके मिल इत्यादि चलावें।

ये प्लेट उतने ही व्ययमें, जितनेसे कि, आजकल जल-प्रपात या वाष्प शक्तिसे घूमनेवाले डायनेमो (विद्युत् पैदा करनेवाला यन्त्र) कार्य कर रहे हैं, उतनी विद्युत्-शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार वाष्प-शक्तिसे चलनेवाले इंजिन और जल-प्रपातसे घूमनेवाले (Turbines) से प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे।

इस घटनासे कुछ वर्ष पूर्व डाक्टर लेंग और डाक्टर ग्रोनडाल (Dr. L. O. Grondahl) और पाल जीगर (अमेरिकन) ने यह आविष्कार किया कि, शुद्ध ताम्रकी (Pure Copper) दो पत्तियोंके बीचमें यदि पिसा हुआ ताम्र आक्साइड [Copper Oxide] भर दिया जाय और तार द्वारा जोड़कर सूर्य-तापमें रखा जाय, तो उनके मध्यमें एक अशक्त विद्युत् धाराका प्रवाह होता है। परन्तु प्रयोगशालाके प्रदर्शनके अतिरिक्त ऐसे यन्त्रसे भी विद्युत्-शक्ति प्राप्त करना असम्भव सिद्ध हुआ। अब जिस धातुके मिश्रणका आविष्कार हमारे नवयुवक जर्मन विज्ञान-वेत्ताने किया है, उसके गर्भमें अनेक आश्चर्य-जनक गुण भरे पड़े हैं। ताम्र आक्साइडके स्थानमें वह रजत सिलिनाइड [Silver Selenide] उपयोगमें लाते हैं। यह रजत सिलिनाइड चाँदी और गन्धकका (सजातीय एक तत्त्व, Sitenium, जो काचोंको लाल रंगका बनानेके काममें भी आता है, इन दोनोंका) यौगिक (Compound) है। यह मसाला दो पतली चद्दरोंके बीचमें "भरनेवाली वस्तु" का काम देता है। इसके ऊपर वह एक गुप्त धातुकी बहुत पतली झिल्ली चढ़ाते हैं, जो इतनी पतली होती है कि, केवल कुछ अणु [Molecules] ही मोटी होती है।

ज्योंही सूर्यका प्रकाश इस पारदर्शक झिल्लीमेंसे निकलता है, धातुकी दोनों तहोंके मध्य विद्युद्-धारा पैदा करता है। जब यह प्रवाह नापा गया, तो ताम्र आक्साइडके प्लेटों द्वारा पैदा किये प्रवाहसे १५० गुना तीव्र पाया गया। ऐसी ही धातुके मसालेसे भरे हुए प्लेटों द्वारा (जो आकारमें सम्भवतः डाकखानेके चार टिकटोंसे किसी प्रकार बड़े नहीं थे) एक ऐसे दिनकी गर्मीसे, जब कि, बादलके कारण सूर्यका प्रकाश बहुत धीमा था, विद्युत्

पैदा कर प्रयोगशालाकी एक छोटी मोटर चलायी गयी, तो बराबर चलती रही।

आविष्कर्त्ताका यह अनुमान है कि, जितने मूल्यसे एक (३०००००) किलोवाटका जल-प्रपातसे चलनेवाला विद्युदालय बनता है, उतने ही मूल्यसे ३००००० किलोवाटका सूर्य-शक्तिसे विद्युत पैदा करनेवाला बिजली घर निर्माण किया जा सकता है। ऐसा करनेके लिये शक्ति-उत्पादन करनेवाले प्लेट्स क्षेत्रफलमें लगभग १ वर्ग मीलके लेने पड़ेंगे। इसका व्यय लगभग ६००) से ७००) रु० प्रति किलोवाट या इससे कुछ न्यून पड़ेगा। इतनी ही शक्तिका जलप्रपात-सञ्चालित बिजली-घर बनानेमें २५०) से ७५०) रु० प्रति किलोवाट जलके सुभीतेके अनुसार पड़ता है। परन्तु इसमे अधिकता इस बातकी है कि, जलप्रपात-सञ्चालित बिजली-घर केवल उसी जगह बन सकता है, जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं अथवा पानी अधिक परिमाणमें बहुत जमा करनेका (किसी ऊँचे स्थानपर) सुभीता है। सूर्य-शक्तिसे सञ्चालित बिजली-घरका निर्माण किसी भी स्थानपर किया जा सकता है। विशेषकर भूमध्यरेखाके पासवाले या उष्ण कटिबन्धवाले देशोंमें तो इसके द्वारा विद्युत्-शक्ति बहुत ही सस्ती पड़ सकती है।

यदि सूर्यसे शक्ति ग्रहण करनेका यह स्वप्न पूर्ण हुआ, जिसकी कि, पूर्ण आशा है, तो फिर शिल्प-कलाके विकास और उत्तरोत्तर उन्नतिमें इस पृथ्वीपर कोयले और तेलके भविष्यमें अभाव होनेके कारण [जिसके चिह्न विज्ञान-वेत्ताओंको अभीसे दृष्टिगोचर हो रहे हैं] कोई बाधा पड़नेकी सम्भावना नहीं रहेगी। ऐसे यन्त्रालयके एक बार बन जानेपर फिर उसके चलानेका व्यय 'कुछ नहींके' समान होगा।

डाक्टर लैंगके यह नवीन प्लेट बड़े बड़े यन्त्रालयोंका सूर्य-शक्तिसे चलानेके अतिरिक्त अन्य कई प्रकारसे भी बड़े लाभके सिद्ध हुए हैं। इनके द्वारा चित्र लेनेवाले प्लेटों [Photographic Plates] पर सूर्यका यथोचित प्रकाश डालनेके लिये एक यन्त्र [जो स्वतः कार्य कर सके] भली भाँति बन सकता है। यह प्लेट परा लाल या उपरक्त (Infra-red) किरणोंसे प्रभावान्वित हो सकते हैं। ये किरणें आँखोंसे नहीं दीखतीं; परन्तु घने कोहरेमेंसे पार हो सकती हैं। अतएव समुद्रमें चलनेवाला जहाज और वायुमें उड़नेवाला यान प्लेटोंके इस गुणसे अर्थात् उनपर परा-लाल किरणों द्वारा भयकी चेतावनी प्राप्त करके अधिक लाभ उठा सकेंगे। वायुयान, जो कोहरेमे फँस गया हो, सूर्यकी दशाका ज्ञान इन प्लेटों द्वारा प्राप्त कर सकता है।

जर्मनीके एक सबसे बड़े जहाजमें, हालमें ही, अग्नि बुझाने वाला एक यन्त्र, इसी सिद्धान्तपर, बनाकर लगाया गया है। यह यन्त्र स्वतः इस बातको ज्ञात कर कि, आग जहाजके किस प्रान्तमें लगी है, उसे बुझा भी सकता है। इसका संक्षेपमें प्रबन्ध इस प्रकार है कि, जहाजके विभिन्न प्रान्तोंसे हवा पम्प द्वारा, नलियोंमें होकर, एक प्रकाश-विद्युत्-यन्त्र (Photo Electric Device) के सामनेसे निकाला जाता है। जब हवामें धूएँका मिश्रण होता है, तब उस यन्त्रपर गिरनेवाले प्रकाशमें न्यूनता होती है, जिसके कारण यन्त्रमें बहनेवाली विद्युद्-धारा कम हो जाती है। इस कमीसे एक सङ्केतकी घंटी बजने लगती है, जिसके द्वारा वह स्थान, जहाँ आग लगी है, ज्ञात हो जाता है; और, ऐसा विद्युत्-सम्बन्ध हो जाता है, जिसके द्वारा आग बुझानेवाला पम्प उस जगह कार्य प्रारम्भ कर दे।

भविष्य इस बातको बतावेगा कि, यह यन्त्र सूर्यसे शक्ति-ग्रहण करनेमें कितनी सहायता करता है।

"कागजपर रंगीन फोटो" लेखसे सम्बद्ध चित्र

कासमोलाजी

श्रीयुत वटेकृष्ण दास बी० एस-सी०

विश्व रहस्यमय है। उसकी अनेक लीलाएँ बड़ी ही विचित्र हैं। करीब १९०६ ई० में जब एक आविष्ट विद्युद्-र्शकको बेलूनमें ऊपर ले जाया गया था, तब यह देखा गया कि, उसके विसर्ग होनेका क्रम ज्यादा हो जाता है। यह भी देखा गया कि, जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे कोई चीज बढ़ती जाती है। इसका क्या कारण है? क्या वहाँ कोई ऐसी चीज है, जिसके द्वारा यह कार्य होता है? विज्ञानके द्वारा हमें यह मालूम है कि, आकाशसे कोई कण नहीं आता। तब इससे यही सिद्ध होता है कि, कोई पदार्थ एक तरहकी अदृश्य रश्मि या किरण है, जिससे यह अद्भुत कार्य होता है।

सांसारिक जीव बड़े आलसी होते हैं; और, प्रकृति भी यह नहीं चाहती कि, मनुष्य उसकी रहस्यमयी सम्पदाकी खोज करके उसके कुछ अंशको पा लें। फलत: बहुत वर्षोंतक इस विषयका कुछ कार्य नहीं हुआ; लेकिन कुछ ही सालकी बात है कि, प्रोफेसर मिलिकनका ध्यान इस ओर गया और उन्होंने इस विशेष किरणका नाम "कासमिक किरण" (Cosmic Rays) रखा। जिस विज्ञानकी विशेष शाखाके द्वारा इसका अध्ययन होता है, उसे कासमोलाजी कहते हैं।

यह कासमिक किरण क्या है और कहाँसे आती है? इस प्रश्नका उत्तर मिलिकन और दूसरे वैज्ञानिकोंने दिया है, जो शायद कल्पना मात्र ही है!

क्या यह किरण हम लोगोंको तारोंसे मिलती है? इसके उत्तरमें सर जीन्सका कथन है कि, नहीं। यदि यह किरण तारोंसे आती, तो हम लोग इसको सूर्यसे ज्यादा परिमाणमें पाते और हमको रातकी अपेक्षा दिनमें यह किरण ज्यादा मिलती; पर मिलिकनने यह प्रमाणित किया है कि, दिन और रातमें कासमिक किरण समान परिमाणमें ही मिलती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, कासमिक किरण नक्षत्रोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखती।

अन्तमें, बहुत खोजके बाद, यह निश्चय हुआ कि, यह किरण आकाशके तारोंसे नहीं आती। इसके बारेमें मिलिकनका कहना है कि, "I conclude that they do not come from the masses of matter in the Univers, but from the interstellar space". अर्थात् "मैं इस सिद्धान्त पर पहुँचता हूँ कि, यह किरण सृष्टिके जड़ पदार्थकी मात्राओंसे नहीं आती, वरन यह तारोंके बीचके स्थानोंसे आती है।" इस कथनका समर्थन और-और वैज्ञानिकोंने भी किया है। कहा है कि, यह किरण तारोंके बीचके स्थानोंसे आती है।

ऊपरके कथनका एक बड़ा प्रमाण यह है कि, यह किरण पृथ्वीके चुम्बकीय क्षेत्रके प्रभावसे विक्षिप्त नहीं हो जाती। साथ ही साथ मिलिकनने यह भी बतलाया है कि, समस्त कासमिक किरणोंकी 'प्रवेश-शक्ति' बराबर नहीं है। कम शक्तिवाली किरणको मृदु किरण कहते हैं। यह मृदु किरण ९० प्रतिशतके हिसाबसे कुल कासमिक किरण [जो हमें मिलती है] वर्तमान रहती है। मृदु किरणकी शक्ति "गामा-किरण" [V-rays] से प्रायः दसगुनी ज्यादा है।

कुछ ही दिनोंकी बात है कि, प्रो० पिकार्डने बेलूनमें उड़कर कुछ आश्चर्यजनक बातें मालूम की थीं। उनका कहना है कि, 'कासमिक किरण' अपने स्थानसे

चलकर इस पृथ्वीपर पहुंचनेके पहले हवा [atmosphere] के प्रभावसे अपनी गति कम कर देती है। हम जितना ऊपर जाते हैं, उतनी ही ज्यादा 'कासमिक किरण' प्राप्त होती है। यहाँतक कि, १० मीलकी ऊँचाईपर यह किरण अङ्गोंपर, पानीकी बूँदोंके समान, आ-आकर टपकने लगती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि, यह शक्ति (Energy) कहाँसे आती है? कुछ वैज्ञानिकोंकी यह धारणा है कि, तारों (Stars) में जो पदार्थ (Matter) टूटते (annihilate) हैं, उन्हींकी 'शक्ति' यह 'कासमिक किरण' है; लेकिन मिलिकनका विचार इससे भिन्न है। उन्होंने कहा है कि, "They have nothing in common with stars" अर्थात् इनका तारोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस कठिन समस्याकी पूर्त्ति "मिलिकन"ने ही की है। वही हमको भूले हुए रास्तेसे खींचकर ठीक पथपर लाये हैं। उन्होंने "परमाणु-बन्धन" (Atom-building) की बात हमें बतायी है। जो पदार्थ बहुत छोटे-छोटे कण (Particles)से बने हैं, उन्हें परमाणु (Atom) कहते हैं। इन परमाणुओंका एक केन्द्र होता है, जो धन-विद्युदाविष्ट होता है और जिसे प्रोटोन कहते हैं। इस प्रोटोनकी चारो तरफ एलेक्ट्रन हैं, जो उक्त विद्युत्से आविष्ट होकर घूमते रहते हैं। उदाहरणके लिये हाइड्रोजनको लीजिये। इसके एक परमाणुको देखिये। इसमें एक 'प्रोटोन' होता है, जिसका आवेश एलेक्ट्रनके आवेशके बराबर होता है। यह कक्षमें घूमता है। हीलियम (Heleum) को देखनेसे मालूम होता है कि, इसमें चार प्रोटोन और चार एलेक्ट्रन हैं। इनमें चार प्रोटोनके साथ दो एलेक्ट्रन सम्मिलित हैं और दो एलेक्ट्रन बाहर कक्षमें घूमते हैं। बस, हाइड्रोजन और हीलियमके परमाणु (Atoms) में यही भिन्नता है। यदि हम अब हाईड्रोजनके परमाणु और हीलियमके परमाणुको तौलें, तो यह मालूम होगा कि, हीलियमका परमाणु हाईड्रोजनके परमाणुसे चारगुना भारी नहीं है; बल्कि उससे कुछ कम है। इसका कारण यह है कि, हीलियमका केन्द्रमें पेचीला क्लियस है। इस तौलकी कमी ही उस शक्ति (Energy) के रूपमें बदलती है, जिसे हम लोग 'कासमिक किरण' कहते हैं।

इससे यह प्रमाणित होता है कि, हीलियमसे हाइड्रोजन बना है। यह कहा जा सकता है कि, बड़े और भारी परमाणु छोटे-छोटे परमाणुओंसे बनते हैं। यदि यह बात ठीक है, तो तत्त्व हर समय आकाशमें बनते हैं। मिलिकनने कहा है—

"I take it that the Cosmic Rays are the wireless signals of the building in interstellar space of at least some of the heavier elements out of the lighter." अर्थात् मैं यह समझता हूँ कि, हलके तत्त्वोंसे भारी तत्त्वोंके ग्रहोंके बीचके स्थानोंमें बननेके कारण 'कासमिक किरण' बेतारका समाचार है।

ऊपर कही गयी बातोंमें बहुत मतभेद है। इस मतभेदपर बहस करना हमारे इस छोटेसे लेखमें सम्भव नहीं है। जो कुछ भी हो, जन-साधारणका अधिकतर यही विचार रहता है कि, जब इनको एक वस्तु मिल गयी, तब उसका उपयोग किस तरह किया जाय। उन लोगोंको 'कासमिक किरण'से लाभ उठाने और उसको अपने काममें लानेसे मतलब है।

हम लोगोंको यह देखना है कि, 'कासमिक किरण' की शक्ति कितनी है और यह मनुष्यके अस्तित्व-पर कुछ प्रभाव डाल सकती है या नहीं।

'कासमिक किरण'की शक्ति बहुत बड़ी है। क्या यह शक्ति काममें लायी जा सकती है? मनुष्य क्या नहीं कर सकता? उसने ही जल-बलको अपना गुलाम बनाया, उसीने कोयलेकी गरमीसे अपना काम कराया; उसीने बिजली पैदा की और उससे काम लिया।

क्या वही मनुष्य कासमिक किरण [Cosmic Rays] को अपने अधिकारमें लाकर उससे कुछ कार्य कर सकता है ?

इसका उत्तर "हाँ" में दिया जा सकता है। इस सम्बन्धमें आज बहुत-सी विज्ञानशालाओंमें प्रयोग किये जा रहे हैं, जिनसे भविष्यमें बहुत कुछ आशा की जाती है। वह दिन दूर नहीं है, जब कि, हमारे घरोंकी चतुर स्त्रियाँ कोयले और बिजलीके चूल्हेको बिदा करके अपने-अपने घरोंमें 'कासमिक किरण'के चूल्हे जलायँगी।

यह रहस्यमयी रश्मि हमारे डाक्टरोंकी भी बहुत सेवा कर सकती है। वे लोग आजतक रेडियमकी कड़ी किरणोंकी सहायतासे बड़े-बड़े असाध्य रोगोंकी चिकित्सा करते थे। पर अब वह दिन आ गया है, जब कि, कानसरकी चिकित्सा 'कासमिक किरण'के द्वारा की जायगी; और, असाध्य रोगोंकी चिकित्सा करनेके लिये 'कासमिक किरण'के स्वास्थ्य स्थान खुलेंगे।

हम लोगोंको 'कासमिक किरण'की उन्नति और उसके उज्ज्वल भविष्यकी कामना करनी चाहिये।

बोलते-चालते चित्र

बा० श्यामनारायण कपूर बी० एस-सी०

बोलते-चालते चित्र अथवा टाकी फिल्म इन दिनों साधारणसी बात है; परन्तु इनका निर्माण हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। अब भी बहुतसे लोग पहली ही बार बोलती हुई तस्वीरें देखनेके आश्चर्यजनक अनुभव बतानेसे नहीं चूकते। वास्तवमें यह घटना कलकी बातसी है। सिनेमामें बोलते हुए चित्रोंको पहली बार देखनेपर कितना आश्चर्य होता है, इसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। इन चित्रोंमें आवाज कैसे पैदा होती है ? स्वाभाविकताका पुट कैसे दिया जाता है ? चित्रोंकी गति तथा उनके हाव-भाव और शब्दोंके उतार-चढ़ावमें पूर्ण सामञ्जस्य कैसे पैदा होता है? अभिनेताओं एवम् अभिनेत्रियोंकी बातचीत, सोते हुए मनुष्यकी छातीके उतार-चढ़ाव एवम् उसके खुर्राटे लेनेकी आवाज, वीणाके तारोंके हिलनेके साथ ही साथ उनसे झङ्कार निकलना आदि बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनका उत्तर पानेके लिये आज दिन भी बहुतसे लोग उत्सुक हैं। इस लेखमें बोलते हुए चित्रोंके रहस्यको समझानेकी चेष्टा की जायगी।

मूक चित्रोंके आविष्कारको अभी पूरे सौ वर्ष भी नहीं हुए हैं। १९ वीं शताब्दीके अन्तमें मूक चित्रोंने वास्तविक नाटकोंके स्थानमें सर्व-साधारणका मनोविनोद आरम्भ किया; और, जनता इनकी ओर आकर्षित हुई एवम् चारों ओर इनका स्वागत हुआ। शीघ्र ही मूक चित्र बहुत लोक-प्रिय हो गये। लोकप्रियताके साथ ही उन्हें अधिकाधिक उन्नत बनाया जाता रहा। ३० वर्षोंके अनवरत परिश्रम एवम् प्रयोगोंके पश्चात् ये मूक चित्र कला और ज्ञानके प्रसारके साधन, दोनोंकी ही दृष्टिसे, उन्नतिके उच्चतम शिखरपर पहुँच गये; परन्तु वैज्ञानिकोंने उन्हें उसी स्थलपर धीरे-धीरे पुनः अन्धकारमें विलीन हो जानेके लिये छोड़ना उचित न समझा।

उधर सर्व साधारण भी इन छाया-चित्रोंको और भी अधिक उन्नत बनाने तथा वास्तविक

नाटकोंके निकटतम लानेके लिये कोलाहल करने लगे। इस उद्योगमें लगे हुए व्यवसायी और पूँजीपति भी अपने व्यवसायको अधिक उन्नत और श्रेष्ठतम रूप देनेके लिये लालायित थे। मूक चित्र बनाना संसारका एक प्रमुख व्यवसाय है। आर्थिक लागतके हिसाबसे इसका तीसरा नम्बर है। उन्नतिके उच्च शिखरपर पहुँचनेके बाद छायाचित्र उतने अधिक लोक-प्रिय न रह सके, जितने वे शुरू-शुरूमें थे। धन-कुबेरोंको (जिन्होंने सिनेमा-व्यवसायमें अपनी लम्बी-चौड़ी पूँजी लगा रखी थी) कम लाभ होने लगा। वे लोग चिन्तित हो उठे और उन्हें निकट भविष्यमें ही इस उद्योग-धंधेके नष्ट होनेकी आशङ्का होने लगी। यही इन छायाचित्रोंमें ध्वनिके उत्पन्न होनेका इतिहास है।

मूक चित्रोंके आविष्कारके कुछ ही दिनोंके बाद संसारके सम्मुख एक और महत्त्वपूर्ण आविष्कार किया गया था। वह था एडिसन-का ग्रामोफोन। मूक चित्रोंके साथ ही साथ ग्रामो-फोन भी उन्नतिके उच्चतम शिखरतक पहुँच चुका था। मूक चित्रोंको अधिक स्वाभाविक बनानेके लिये शुरू-शुरूमें लोगोंका ध्यान इसी ग्रामोफोनकी ओर आकर्षित हुआ। इन दोनों-को सम्बद्ध करनेमें भी कई वर्ष लग गये।

सबसे सरल तरकीब (जो उस समय सूझी) मूक चित्रोंकी फिल्म लेनेके साथ ही साथ तत्स-म्बन्धी बातचीत, गाना-बजाना तथा अन्य ध्वनियोंके ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार करना थी। परन्तु इससे सन्तोष-जनक नतीजा न निकला। मूक चित्रोंकी गति और ग्रामोफोन रिकार्डोंमें समकालीनता स्थापित न हो सकी। वास्तवमें पूर्ण समकालीनता ही सवाक् चित्रोंकी प्रधान विशेषता है। कुछ दिनों तक फिल्मके साथ ग्रामोफोनके रिकार्डोंको चलाकर उनमें ध्वनि उत्पन्न की जाती रही; परन्तु इसके दोष शीघ्र ही प्रकट हो गये और जनता इसकी ओर अधिक आकर्षित न हो सकी। आँख और कान, दोनों-को ही समकालीनताका अभाव खटकने लगा। शुरू-शुरूमें ग्रामोफोन-रिकार्डको हाथसे चलाकर उसकी ध्वनिको मूक चित्रोंके बराबर रखा जाता था।

इस पद्धतिमें सुधार करना बहुत आवश्यक हो गया। मूक चित्रों और ग्रामोफोनकी ध्वनिमें समकालीनता लानेके लिये मशीनोंका प्रयोग किया जाने लगा। इससे भी अधिक लाभ न हुआ। ग्रामोफोन रिकार्ड साधारणतया बहुत छोटे होते हैं। उन्हें कुछ अधिक बड़ा बनानेपर भी वे साधार-णतया काममें लायी जानेवाली लम्बी फिल्मोंकी बराबरी नहीं कर सकते। एक रिकार्ड अधिक-से-अधिक ६-७ मिनटतक आवाज पैदा कर सकता है; और, एक फिल्म कम-से-कम १५ मिनटतक जरूर ही चलती है। ग्रामोफोनमें एक रिकार्डके समाप्त हो जानेपर दूसरे रिकार्डकी जरूरत पड़ती है। यह रद्दोबदल भी इस तरहसे हो कि, दर्शकों और श्रोताओंको इसका आभास भी न मिल सके और न किसी तरहकी गड़बड़ी ही पैदा हो। सेकिंडोंके फरकसे सब गुड़ गोबर हो सकता है। इस मसलेको हल करनेके लिये दो प्रोजेक्टिंग मशीनें काममें लायी जाने लगीं। जितनी देर एक मशीन काम करती, इसी बीचमें दूसरी तैयार कर ली जाती। इस दूसरी मशीनमें आगेका ग्रामोफोन रिकार्ड रहता और उसीके अनुकूल मूक चित्रकी फिल्म। पहले रिकार्डके खतम होनेके कुछ सेकिंड पहले ही यह दूसरी मशीन काम करने लगती; और, इस

बीच पहलीको ठीक करके दूसरे रिकार्डसे आगेका काम करने लायक तैयार कर लिया जाता। इस पद्धतिमें दो मशीनोंके साथ ही साथ दो सिनेमा फिल्मोंकी भी जरूरत पड़ी। हाँ, समकालीनता जरूर स्थापित हुई। कुछ दिनोंतक यह पद्धति काफी सन्तोषजनक समझी गयी; परन्तु यह 'आदर्श' न बन सकी। ग्रामोफोन रिकार्डोंके सहयोगसे संगीत, वाद्य आदिकी ध्वनि जरूर अच्छी होती; परन्तु अभिवर्धनसे उसके गुण बहुत कुछ नष्ट हो जाते। उस जमानेमें बहुत बढ़िया लाउड स्पीकर्स और बढ़िया अभिवधक यन्त्र बने भी न थे। इस दोषको दूर करना बहुत मुश्किल बात थी। दूसरी दिक्कत ग्रामोफोन रिकार्डोंका अत्यधिक भारीपन था। उन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थानतक ले जानेमें अनेक दिक्कतें पड़ने लगीं। वैज्ञानिकोंको फिर इस ओर ध्यान देना पड़ा और फल-स्वरूप एक नवीन पद्धतिका आविष्कार हुआ। यह पद्धति ध्वनिमार्ग–पद्धति-(Sound Track System) के नामसे प्रसिद्ध है।

कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकोंने ध्वनिकी रुकावट—प्रतिष्टम्भ—(Impedance) और विद्युत्की रुकावट (Impedance) में सम्बन्ध ढूँढ़ निकाला था। इस खोजने छाया-चित्रोंको अधिक उन्नत बनानेमें बहुत सहायता दी। इस खोजकी सहायतासे ध्वनि विद्युद्-धारामें परिवर्तित की जाने लगी। परन्तु इससे दूसरा प्रश्न उपस्थित हुआ कि, इस प्रकार जो ध्वनि पुनः पैदा की जायगी, उसे दर्शकोंकी बृहत् संख्यातक कैसे पहुँचाया जायगा? रेडियो एवम् लाउड स्पीकरके आविष्कारसे यह मसला भी हल हो गया। इस पद्धतिके लिये संक्षेपमें इतना कहना काफी होगा कि, इसका रिकार्डिंग करने और इसे जनता तक पुनः ध्वनिके रूपमें पहुँचानेके लिये सर्वप्रथम मूल ध्वनिको विद्युत्-तरङ्गोंमें और बादमें इन्हीं विद्युत्-तरङ्गोंको प्रकाशके उतार-चढ़ावमें परिवर्तित किया जाता है। ये प्रकाशके उतार-चढ़ाव तत्सम्बन्धी दृश्यकी मूक फिल्मके साथ ही साथ अङ्कित हो जाते हैं। सिनेमा हालमें ठीक इसके विपरीत कार्यवाही होती है। लाउड-स्पीकरमेंसे आवाज उत्पन्न करानेके लिये प्रकाशके उतार-चढ़ावको पुनः विद्युत्-तरङ्गोंमें बदलना पड़ता है। हम इन सब बातोंपर अलग-अलग विचार करेंगे।

ध्वनिको बिजलीकी तरङ्गोंमें बदलना आज दिन बहुत साधारण-सी बात हो गयी है। हम सब आये दिन ही इस सिद्धान्तको व्यवहारमें लाते हैं। टेलिफोन इसी सिद्धान्तपर काम करता है। जब हमें किसी वक्ताके भाषणको बृहत् जन-समुदायतक पहुँचाना होता है और वक्ताका स्वाभाविक आवाज उन तक नहीं पहुँच पाती, तब हम माइक्रोफोन अथवा सूक्ष्म-शब्द-ग्राही यन्त्र व्यवहारमें लाते हैं। बेतार और ब्राडकास्टिंग इसी माइक्रोफोनपर निर्भर हैं। माइक्रोफोन ध्वनिको विद्युत्-तरङ्गोंमें बदल देता है। इन सबमें ध्वनिकी तरङ्गें एक प्रकारकी झिल्ली [diaphragm] पर आकर टकराती हैं। झिल्लीमें सह-कम्पन [Sympathetic Vibrations] पैदा हो जाते हैं। झिल्ली हरकत करने लगती है और इस हरकतके फलस्वरूप माइक्रोफोनके सरकिट [Circuit] में विद्युत्-तरङ्ग पैदा हो जाती है। यह तरङ्ग पूर्णतया झिल्लीकी हरकतपर निर्भर होती है; और, इसकी तेजी अथवा सुस्तीके अनुसार शक्तिशाली अथवा कमजोर होती है। ध्वनिके स्वरमें परिवर्त्तन होनेके साथ ही साथ इस तरङ्गमें भी परिवर्त्तन होता जाता है। माइक्रोफोनकी यह परिवर्त्तनशील तरङ्गें कुछ अन्य उपकरणोंसे प्रकाशके उतार-चढ़ावमें बदल दी जाती हैं। इसके

लिये कई तरकीबें प्रचलित हैं। एक पद्धतिमें गेल्वनामीटर—विद्यु्द्-धारा-मापक यन्त्र—काममें लाया जाता है। इसकी सूईसे विद्युद्-धाराके मापका पता मिलता रहता है। यह सूई धाराका माप बतानेके लिये हरकत करता रहती है। इस सूईके बजाय छोटासा शीशा (आइना) लगा दिया जाता है। यह आइना भी हरकत करता है। इस शीशेकी सहायतासे प्रकाशकी किरणें एक स्लिट (Slit) में होकर भेजी जा सकती हं। इन किरणोंका परिमाण पूर्णतया शाशेकी हरकत—अर्थात् विद्युत्-तरङ्गोंकी शक्तिपर निर्भर होता है।

अब अगर इस स्लिटके पीछ एक सिनेमा फिल्म भी खींची जा रही है, तब उसपर इन किरणोंके प्रभावसे कहीं अँधेरा और कहीं उजेला हो जायगा। इस तरह फिल्मपर प्रकाश और अन्धकारके रूपमें ध्वनि अङ्कित हो जाती है। मूल ध्वनिके स्वरोंमें जैसे-जैसे उतार-चढ़ाव होता जाता है, वैसे ही वैसे वह फिल्मपर अङ्कित होता जाता है। कभी-कभी गेल्वनामीटरके बजाय एक विद्युत्-चुम्बक (Electro-magnet) व्यवहारमें लाया जाता है।

इस फिल्मकी जाँच करनेपर मालूम होता है कि, धीमी आवाजके लिये बहुत ही धुँधली रेखाएं अङ्कित हुई हैं और तेज आवाजके लिये तेज रेखाएँ। जब पाजिटिव फिल्म बनायी जाती है, तब यह बात बिलकुल उलट जाती है। तेज आवाजके लिये धुँधली रेखाएँ अङ्कित हो जाती हैं। यह धारीदार फिल्म साउंड ट्रैक कहलाती है। इस फिल्मपर ध्वनिके साथ ही साथ मूक चित्र भी अङ्कित होते जाते हैं। ध्वनि-आलेखन और दृश्य-आलेखन एक ही समय और एक ही साथ होते जाते हैं। उन्हें सुनाने या दिखानेके लिये समकालीनताका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

ध्वनि-चित्रको दर्शकोंके सम्मुख उपस्थित करनेमें सम्पूर्ण कार्यवाही उलट दी जाती है। विक्षेपक [projecting] मशीनके द्वारा एक प्रकाशावली फिल्मके ध्वनि-मार्गपर फेँकी जाती है। ध्वनि-मार्ग ज्यों-ज्यों इस प्रकाशसे होकर गुजरता है, अपने ऊपर फेँके जानेवाले स्थायी प्रकाशको रोकता है। इस तरह प्रकाशमें फिर वे ही कम्पन पैदा हो जाते हैं, जिनके चित्र लिये गये थे। ये कम्पन तब विद्युत्-कक्षोंमें हो कर गुजरते हैं और पुनः विद्युत्-कम्पनोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। यह विद्युत्-कम्पन विस्तृत (amplify) किये जाते हैं और विद्युत्-तारोंके द्वारा लाउड-स्पीकर्स तक पहुँचाये जाते हैं, जहाँसे वे शब्द बनकर निकलते हैं।

ध्वनि-मार्गके ध्वनि-चित्रको विद्युत्-तरङ्गोंमें बदलनेके लिये तथा लाउड-स्पीकर्सका सञ्चालन करनेके लिये एक विशेष प्रकारका यन्त्र काममें लाया जाता है। इसे फाटो-इलेक्ट्रिक सेल [Photo Electric Cell] कहते हैं। वास्तवमें फोटो इलेक्ट्रिक सेल क्षुद्र विद्युद् धाराएँ प्राप्त करनेका एक साधन मात्र है।

यों समझिये कि, एक सेल है। सेलसे सम्बद्ध अभिवर्धक और लाउड स्पीकर हैं। सेलके सामने एक बड़ा गोलाकार प्लेट है। इसमें बराबरकी दूरीपर छोटे-छोटे छेद किये गये हैं। ये प्रकाशके लिये खिड़कीका काम करते हैं। इस प्लेटकी दूसरी तरफ एक विद्युत् लैम्प है। यह लैम्प छिद्रोंके तथा सेलके प्रवेश-छिद्रके ठीक सामने रखा जाता है। प्लेट मोटर द्वारा घुमाया जाता है। जब प्लेटका छिद्र, लैम्प और सेलका प्रवेश-छिद्र, तीनों एक ही सीधी

रेखामें होते हैं, तब सेलकी विद्युद्-धारामें परिवर्त्तन हो जाता है और यह परिवर्तन लाउड-स्पीकरके शब्द द्वारा प्रकट होता है। परन्तु जब लैम्प और सेलके बीचमें प्लेटका छिद्र-हीन भाग आ जाता है, तब सेलकी विद्युद्-धारामें कोई परिवर्तन नहीं होता और लाउड स्पीकर भी शान्त रहता है। अगर प्लेट को तेजीसे घुमाया जाय, तो जोरोंका शब्द होता है और धीरेसे घुमानेपर आवाज भी बहुत धीमी पड़ जाती है। अगर प्लेट और सेलके बीचमें कार्ड-बोर्डका एक टुकड़ा रख दिया जाय, तो आवाज एकदम बन्द हो जाती है। सेलके अन्दर जानेवाली विद्युद्-धाराको रोक देनेपर भी यही हालत होती है। सेल द्वारा शब्द उत्पन्न करानेके लिये हाई वोल्टेज (High Voltage) की विद्युद्-धारा और प्रकाश, दोनों ही आवश्यक हैं।

अब यदि ऊपरके प्रयोगमें प्लेटके स्थानपर सिनेमा फिल्मका ध्वनि-मार्ग लगा दिया जाय, तो दूसरा चित्र बदलकर तीसरेमें परिवर्तित हो जायगा और सिनेमाकी, प्रोजेक्शन लैंटर्न (Projection Lantern) की, कार्य्य-पद्धतिका हाल बतलायगा। प्रोजेक्शन लैंटर्न और उसकी अन्य सामग्री बहुत ही पेचीदी होती है। यहाँ तो केवल उसका एक विवरण मात्र देकर उसकी कार्य्य-पद्धतिको समझानेकी चेष्टा की गयी है।

बहुत-सी सिनेमा कम्पनियाँ ध्वनि-मार्ग-पद्धतिके साथ ही साथ अभीतक पुरानी ग्रामोफोन-पद्धति भी व्यवहारमें लाती हैं। ध्वनिमार्ग-पद्धतिके सिद्धान्त पर अनेक प्रोजेक्टर बन गये हैं। इन सबकी कार्य्य-पद्धति एक सी ही है, यन्त्रोंमें थोड़ा-बहुत फरक जरूर होता है। उदाहरणके लिये आर० सी० ए० फोटोफोन दो भागोंमें बाँटा जा सकता है। असली प्रोजेक्टर (विक्षेपक) ऊपरका ही भाग होता है—फिल्म पहले ऊपरके भागके सामनेसे होकर गुजरती और लेंस बाक्स (Lens box) में जाती है। वहाँ फिल्मके ऊपर आर्क लाइट या कोई और बहुत तेज प्रकाश फिल्मके ऊपर संसृत किया जाता है। प्रोजेक्शन लेंस फिल्मपर अङ्कित चित्रको कई गुने बढ़े-चढ़े आकारमें सिनेमाके पर्देपर फेंकना है। यहाँसे फिल्म ध्वनि-स्थानमें होकर गुजरती है। उसके सम्मुख फोटो इलेक्ट्रिक सेल लगा रहता है। फोटो इलेक्ट्रिक सेलमें पैदा होनेवाली विद्युद्-धारा अभिवर्धक यन्त्रमें जाती है और लाउड स्पीकरमें होकर श्रोताओंतक ध्वनिके रूपमें पहुँच जाती है। फिल्म आगे बढ़ जाती है और लिपटती जाती है। फिल्म इतनी तेजीसे घूमती है कि, प्रोजेक्शन लेंससे फोटो इलेक्ट्रिक सेलतक पहुँचनेमें समय नहींके बराबर लगता है। ध्वनि एवम् चित्रमें पूर्ण समकालीनता आ जाती है। ध्वनिमार्ग अङ्कित करनेकी विधिमें अब बहुत सुधार हो गये हैं। अब ध्वनिको अधिकाधिक स्वाभाविक रूप देनेकी चेष्टा की जा रही है।

सृष्टिके आरम्भसे ही ध्वनि (शब्द) मनुष्यको एक विशेष प्रकारसे अपनी ओर आकर्षित करती रही है। चलचित्रोंमें ध्वनिके जन्मने इस आश्चर्यमय यन्त्र, कला और विज्ञानके युगमें एक नवीन और अद्भुत आश्चर्य उपस्थित कर दिया है। चल-चित्र वैसे भी—मूक अवस्थामें भी—जन साधारणको अपनी ओर आकर्षित करनेमें समर्थ थे; परन्तु ध्वनिकी उत्पत्तिने उन्हें और अधिक और विशेष आकर्षक शक्ति प्रदान की है।

इधर हालमें जो श्रेष्ठतर बोलते-चालते चित्र

तैयार हुए हैं, उन्हें देखकर संसारको विश्वास हो गया है कि, शब्द-चित्र-विज्ञान एक निश्चित कलाका रूप धारण कर रहा है। विनाशकारिणी आलोचनाओंकी परवाह न करते हुए भी इसने एक स्थायी रूप प्राप्त कर लिया है। बोलते चित्र तीव्र गतिसे उन्नतिके क्षेत्रमें प्रवेश कर रहे हैं और इसने उन विशुद्ध नवीन क्षेत्रोंमें पदार्पण किया है, जिनका किसीको स्वप्नमें भी ध्यान नहीं हो सकता था। इतना सब होते हुए भी अभी प्रयोगात्मक और संक्रान्तिके युगमें ही विचरण किया जा रहा है। यह युग कठिनाइयोंसे परिपूर्ण है। यह व्यवसाय अभी अपनी शैशव अवस्थामें ही है। आये दिन इसमें बड़े-बड़े रद्दोबदल हो रहे हैं। बोलते-चालते चित्र अपने पूर्व-गामी मूक चित्रोंसे गुण और कला, दोनोंकी ही दृष्टिसे उच्चतर सिद्ध हुए हैं। इनमें परिवर्तन इतनी जल्दी हो रहे हैं कि, जो बात आजसे डेढ़-दो वर्ष पूर्व अद्वितीय और अभूतपूर्व कही जाती थी, आज वह साधारण और कहीं-कहीं प्राचीन भी समझी जाने लगी है।

दूरदर्शनके अविष्कारने सिनेमा-क्षेत्रमें एक नवीन क्रान्ति पैदा कर दी है। वह दिन अब दूर नहीं मालूम होता, जब ब्राडकास्टिंग, टेलीविजन और बोलते-चालते चित्र, सब एकमें ही सम्बद्ध होकर मनुष्य-समाजके लिये मनोविनोदका एक और बढ़िया साधन प्रस्तुत कर दें। इस पद्धतिमें फिर आपको और अधिक सिनेमा तक जानेका कष्ट न उठाना पड़ेगा। आप अपने घरमें अपने स्त्री-बच्चों सहित बैठे हुए संसारकी सर्वश्रेष्ठ फिल्मों-को देख सकेंगे। सिर्फ आपको रेडियो सरीखा एक यन्त्र रखनेकी जरूरत पड़ेगी। आगामी तीन-चार वर्षोंमें इस प्रकारके यन्त्रोंके तैयार हो जानेकी बहुत कुछ सम्भावना है।

वायु-यान

प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

मनुष्यके हृदयमें आकाशमें उड़नेकी पहले-पहल कब इच्छा उत्पन्न हुई, इसका पता लगाना असम्भव है। पर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि, जबसे मनुष्यमें सोचने और समझनेकी शक्तिका विकास हुआ होगा, तबसे ही पक्षियोंको स्वच्छ-न्दतासे आकाशमें भ्रमण करते देखकर उसने भी भ्रमण करनेकी इच्छा की होगी। अनन्त कालसे मनुष्य पक्षियोंको आकाशमें उड़ते हुए देखता आया है। वह आश्चर्य करता था कि, पक्षी कैसे उड़ते हैं, कैसे ऊपर उठते हैं, कैसे कभी-कभी एक ही स्थानपर, बिना पंख हिलाये, स्थिर हो जाते हैं, कैसे एक-ब-एक सैकड़ों गज नीचेकी ओर उतर जाते हैं; कैसे आँधीके विरुद्ध, बिना किसी स्पष्ट चेष्टाके, सरलतासे उड़ जाते हैं! जैसे-जैसे समय बीतता गया, मनुष्यकी चेष्टा, पक्षियोंके आकाश-भ्रमणको देखकर, स्वयम् आकाशमें भ्रमण करनेकी बलवती होती गयी; और, उसके साथ-साथ इस चेष्टाको कार्यान्वित करनेकी चेष्टाएँ भी बढ़ती गयीं।

कतिपय उत्साही व्यक्तियोंकी चेष्टाका ही फल है कि, प्रत्येक देशके साहित्यमें इस इच्छाकी छाप पड़ी है और उसमें इस विषयकी अनेक पौराणिक कथाओं तथा आख्या-यिकाओंका समावेश हुआ है। प्रत्येक युगमें और प्रायः

प्रत्येक देशमें उड़नेवाले व्यक्तियोंकी पौराणिक तथा कल्पित कथाएँ मिलती हैं। इन कथाओंकी विशेषता यह है कि इनमें कोई भी, अनिश्चित भाषामें भी, यह वर्णन नहीं करता कि, वायु-यान आकाशमें कैसे उड़े थे!

कवियोंको कविताओंमें भी आकाशमें भ्रमण करनेकी आकाङ्क्षाओंके अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। धर्मग्रन्थोंमें तो देवी शक्तिवाले व्यक्तियोंके भी आकाशमें उड़नेकी शक्तिका वर्णन मिलता है। यूनानके प्राचीन कवि ओविड [Ovid] ने फीटन [Phaeton] की कथाका वर्णन किया है। इस कविताका अनुवाद एडिसन (Addison) ने किया है। कहा गया है कि, फीटन ऐसे घोड़ोंपर चढ़कर आकाशमें भ्रमण करता था, जो घोड़े आग निकालते थे।

इस कवितामें यह भी वर्णन किया गया है कि, किस प्रकार फीटन बिजली लगनेसे मरकर गिर पड़ा।

आइकर्कस [Icarcus] जब अपने शरीरपर मोमके द्वारा पंखोंको साटकर उड़नेकी चेष्टा करता है, तब उसका वृद्ध पिता उसे उपदेश देता है —

"वत्स, सावधानीसे मध्य मार्गसे ही उड़ते हुए तुम जाना। यदि बहुत निचले मार्गसे जाओगे, तो तुम्हारे पख भींग जायँगे। यदि बहुत ऊँचे मार्गसे जाओगे, तो सूर्यके द्वारा, तुम्हारा मोम पिघल जायगा। अतः तुम मध्य मार्गसे ही उड़ना। आकाशमें बहुत उत्तरकी ओर भी मत जाना और न बहुत दक्षिणकी ओर ही जाना। उड़नेके सम्बन्धमें ये नियम मैं तुम्हारे सम्मुख रखता हूँ। सावधानीसे इन नियमोंका पालन करना।" इस प्रकार उपदेश देते हुए बड़े प्यारसे वह पंखोंको अपने पुत्रके शरीरसे काँपते हुए हाथोंसे साट रहा है; और, जैसे-जैसे वह बोलता जाता है, वैसे-वैसे उसके सिकुड़े गालोंपर आँसुओंकी बूँदें टपकती हैं।

कविने अपनी ऊँची कल्पनासे (आकाश-मार्गसे पृथ्वीका जैसा दृश्य देख पड़ेगा, उसका) सुन्दर वर्णन किया है और अन्तमें सूर्यकी गरमीसे मोमके पिघल जानेसे आइकर्कस कैसे धरतीपर गिर पड़ता है, इसका भी वर्णन किया है।

जर्मन देशके प्राचीन ग्रन्थोंमें भी एक व्यक्तिका वर्णन मिलता है। किसी राजाने उसके पैर काट डाले थे। पैरोंके अभावमें उसने पंखोंका एक ऐसा वस्त्र बनाया, जिसके द्वारा वह अपने देशको, उड़कर, लौट आया।

चीनके प्राचीन ग्रन्थोंमें भी उड़नेकी बात मिलती है। इससे पता लगता है कि, हजारों वर्ष पहले चीनके लोगोंका ध्यान उड़नेकी ओर गया था। हमारे हिन्दू-ग्रन्थोंमें भी उड़नेवाले विमानोंका उल्लेख है। हम 'पुष्पक-विमान' को जानते हैं। इस विमानके स्वामी कुबेर थे। यह विमान आकाश-मार्गसे चलता था। कुबेरको हराकर रावणने यह विमान छीन लिया था। रावणके बधके पश्चात् श्रीरामचन्द्र इसपर बैठकर लङ्कासे अयोध्याको गये थे। श्री-रामने इस विमानको फिर कुबेरको लौटा दिया। और भी अनेक देशोंके ग्रन्थोंमें उड़कर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेका वर्णन मिलता है; पर इन सभी ग्रन्थोंमें इन विमानोंके उड़नेका कुछ भी उल्लेख नहीं!

कल्पना-संसारसे अलग होते हुए जब हम वास्तविक संसारमें प्रविष्ट होते हैं, तब हम १३ वीं शताब्दीमें आते हैं। इसी शताब्दीमें रौजर बेकन (Roger Bacon) नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ, जिसने सोचा कि, वायु-मण्डल कुछ ऐसे पदार्थोंसे बना है, जिसके तलपर पात्र वैसे ही रखे जा सकते हैं, जैसे जलके तलपर जहाज रखे जाते हैं। इस वायुतलपर तैरनेवाला पात्र कैसा होना चाहिये, इस सम्बन्धमें उसका कथन है कि, जहाज एक बड़े खोखले, बहुत पतले ताँबे या अन्य किसी उपयुक्त धातुका ऐसा गोलाकार होना चाहिये कि, वह बहुत हलका हो। यह किसी ऐसे ईथरीय वायु या तरल आग्नसे भरा हुआ होना चाहिये कि, यदि वह किसी ऊँचे स्थानसे लुढ़का दिया जाय, तो जलपर जहाजोंके तैरनेके सदृश वायुमें तैरने लगे। रौजर बेकनके लेखोंसे पता नहीं लगता कि, उसने वास्तवमें इस उपायको कार्यान्वित करनेकी कभी चेष्टा भी की थी। पर उसी लेखके अन्तमें वह स्वयम् लिखता है कि, यह अवश्य ही एक उड़नेवाली मशीन है; फिर भी मैंने किसी व्यक्तिको इस मशीनमें उड़ते हुए नहीं देखा है; किन्तु मैं उस व्यक्तिसे विशेष रूपसे परिचित हूँ, जिसने इस मशीनकी रचना की है।

बड़े विश्वासके साथ इस खोखले गोलका वर्णन करते हुए रौजर बेकन लिखता है कि, इस प्रकारकी उड़नेकी मशीन बनायी जा सकती है, जिस मशीनमें बैठकर और किसी यन्त्रको चलाकर कृत्रिम पंखे वायुमें उसी प्रकार चलाये जा सकते हैं, जिस प्रकार पक्षी अपने पंखोंको हवामें फड़-फड़ाते हैं।

बिशप विलकिन्सने (जिनकी मृत्यु १६७२ ई० में हुई थी)

एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकका नाम है—डीडेलस Daedalus वा Mechanical Motion। इस पुस्तकमें इन्होंने अनेक उपायोंका वर्णन किया है, जिनसे मनुष्य आकाशमें उड़ सका है अथवा उड़ सकता है। ये उपाय निम्न लिखित हैं—(१) देवदूतों या प्रेतोंकी सहायतासे, (२) मुर्गों या अन्य पक्षियोंकी सहायतासे, (३) शरीरपर पंखोंको साटकर और (४) उड़न-खटोलेकी सहायतासे।

मुर्गों या गिद्धोंकी सहायतासे उड़नेके सम्बन्धमें ऐसा

गुब्बारेके द्वारा गगन-मण्डलकी सैर करनेका परिणाम

कहा जाता है कि, फारस देशके शाह कैकायूसने अपने दरबारियोंसे आकाशमें उड़नेकी इच्छा प्रकट की। उसके दरबारियोंने बहुत सोच-विचारकर यह उपाय बतलाया। एक छोटा तख्त बनवाया गया और उसके चारों कोनोंपर गिद्ध बाँध दिये गये। जब ये गिद्ध उड़े, तब उनके साथ तख्त भी उड़ा। उस तख्तके साथ कैकायूस भी कुछ समयतकके लिये आकाशमें उड़ा था।

चतुर्थ जेम्सके समयमें एक पादरीको पक्षियोंके पंखोंको बाँधकर हवामें उड़नेकी सूझी। वह अपने शरीरमें बड़े मजबूत पंखोंको बाँधकर एक ऊँचे मीनारसे कूद पड़ा। उसे आशा थी कि, ऊपरसे नीचे आनेपर उसके कृत्रिम पंख उसी प्रकार कार्य करेंगे, जैसे पक्षियोंके पर उड़नेके समय कार्य करते हैं; पर वैसा नहीं हुआ। वह बेचारा धरतीपर गिरा। यद्यपि वह मरा नहीं; पर उसके हाथ-पैर टूट गये।

बेलून उड़ानेकी प्रथा अपेक्षाकृत पुरानी है। अलबर्ट्स मैगनस (जो ११७० ई० में पैदा हुआ था) अपनी पुस्तक "De Mirabilibus Naturae" के अन्तमें लिखता है—"एक पाउंड गन्धक, दो पाउंड कजली और एक पाउंड नमकको संगमरमरके खरलमें महीन पीसकर, उसे पतले कागजके आच्छादनमें रख कर, उसमें आग लगानेसे गर्जन होता है। यदि यह इच्छा हो कि, यह आच्छादन वायुमें ऊपर उठे और उड़े, तो यह लम्बा, देखनेमें सुन्दर और महीन चूर्णसे भरा हुआ होना चाहिये। पर यदि केवल गर्जन उत्पन्न करना हो, तो इसका छोटा, मोटा और केवल आधा भरा हुआ होना ही पर्याप्त है। चीन देशके कैंटन नगरमें फादर विसो [Vissow] नामक एक पादरी रहते थे। उन्होंने १६९४ ई० में एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने एक बेलूनका वर्णन किया है, जो शाहंशाह फोकियेन (Fokien) के शासनारूढ़ होनेके अवसरपर, १३०६ ई० में, आकाशमें उड़ाया गया था।

१७ वीं शताब्दीमें फ्रांसिस लाना [Francis Lana] नामक एक व्यक्तिने यह अनुमान किया था कि, यदि किसी पात्रसे वायु बिलकुल निकाल ली जाय, तो वह पात्र वायुमें ऊपर उठेगा। इसके लिये उन्होंने ताँबेके ४ खोखले गोल तैयार किये, जिनकी (प्रत्येककी) परिधियाँ २० फीट थीं और वह इतना पतला था कि, उसका तौल वायुके बराबर आयतनके तौलसे कम था। पर वे यह बात भूल गये कि, ऐसे पात्रको आकाशमें उठनेके लिये इतना पतला होना चाहिये कि, वह वायुमण्डलके दबावसे शीघ्र ही

चिपट जाय।

१७६६ ई० में हाइड्रोजन नामक गैसका आविष्कार हुआ। यह गैस वायुसे १४ गुनी हलकी होती है। उस समय इसका नाम दहनशील वायु था। एडिनबराके ब्लैक नामक रसायनज्ञने १७६७ ई० में यह विचार प्रकट किया कि, यदि किसी थैली वा ब्लैडरको इस दहनशील वायुसे भर कर छोड़ा जाय, तो वह हलका होनेके कारण आकाशमें ऊपर उठेगा। कैवैलो [Cavallo] पहला व्यक्ति था, जिसने १७८२ ई० में साबुनके बुलबुलेको हाइड्रोजनसे भरकर आकाशमें उठाया था। इसी वर्षके नवम्बर मासमें स्टेफन मांटगोफियेर [Stephen Montgolfier] और जोसेफ गोफियेर [Joseph Montgolfier] नामक दो भाइयोंने चिमनीसे धूआं निकलते देखकर यह विचार किया कि, गरम वायुके प्रयोगसे वस्तुएँ आकाशमें उड़ सकती हैं। उन्होंने कागज़का थैला बनाकर ज्यों ही उसे आगके ऊपर रखा, वह थैला गरम हवासे भर कर ऊपर उठ चला। तप्तवायु बेलूनकी यही जन्म तिथि है और इसी कारण तप्तवायु बेलूनको मौंटगोफियेर (Montgolfiers) के नामसे भी पुकारते हैं। १७८३ ई० में इन दोनों भाइयोंने पहले पहल जनताके सम्मुख अपने आविष्कारका प्रदर्शन किया। १७८३ ई० को ५ वीं जून थी, दिन बृहस्पति था, जब इन दोनों बन्धुओंने लियो (Lyons) से ३६ मील दूर अनोने (Annonay) नामक स्थानपर राज्य-कौंसिलोंके सदस्योंको निमन्त्रित किया। राज-कर्मचारियों और दर्शकोंके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन लोगोंने एक आम बगीचेमें ११० फीट परिधिका एक बड़ा गेंद (जिसके पेंदेमें १६ फीट तलका एक ढांचा लगा हुआ था) अपने सामने खड़ा देखा। इस बृहत्काय थैलेका तौल प्रायः ३०० पाउंड था। इसमें २२००० घन फीट गेस भरी जा सकती थी। लोगोंके कौतूहल-की सीमा न रही, जब यह घोषित किया गया कि, ज्यों ही यह बृहत्काय गेंद गैसोंसे भर जायगा, आपसे आप उड़कर बादलोंमें मिल जायगा। जितने दर्शक वहां उपस्थित थे, उनमें शायद ही कोई ऐसा रहा हो, जो इस घोषणापर विश्वास कर सका हो। सबको पूरी आशा थी कि, यह घोषणा असत्य प्रमाणित होगी। दोनों बन्धु गैसके बनानेमें दत्तचित्त थे। धीरे-धीरे वह गेंद फैलने लगा। अब वह देखनेमें सुन्दर लगने लगा। अन्तमें वह बड़ा गेंद गैससे भरकर हवामें छोड़ दिया गया। वह शीघ्र ही ऊपर चला गया और १० मिनटोंमें ही प्रायः ६००० फीटकी ऊँचाईपर चढ़ गया। फिर

टिटलर नामक अँग्रेजका गुब्बारा

यह १७६८ फीट क्षेतिज दिशामें चलकर धीरे-धीरे धरतीपर गिर पड़ा।

इसी वर्षके अगस्त महीनेमें शां द मार (Chanp de Mars) नामक स्थानपर एक सुप्रसिद्ध उड़ान हुई। इस बेलूनके भरनेका कार्य पैलेस द विक्ट(Palace de Vict) में २३ अगस्तको शुरू हुआ। इसके प्रतिदिनके कार्य होनेका विवरण निकलता था। इस बेलूनको देखनेके लिये इतनी अधिक भीड़

इकट्ठी होती थी कि, २६ अगस्तको अँधेरी रात्रिमें गुप्त रूपसे वह वहाँसे २ मील दूर हटाया गया, ताकि भीड़ इकट्ठी न हो सके । एक प्रत्यक्षदर्शीने इस बेलूनके हटाये जानेके समयके दृश्यका इस प्रकार वर्णन किया है—

जेपालनाका जन्मदाता काउट जेपालन

"इस बेलूनके हटाये जानेके दृश्यसे बढ़कर दूसरा कोई अद्भुत दृश्य सोचा ही नहीं जा सकता । इस बेलूनके आगे-आगे मशाल जा रहे थे और बेलूनको चारो ओरसे पैदल सिपाही, घुड़सवार तथा अन्य संरक्षक घेरे हुए थे । अंधेरी रात्रिमें सैनिकोंका गमन, बेलून का वह रूप और आकार, सावधानतासे सञ्चालन, रात्रिकी निस्तब्धता, वह कुसमय, ये सब उन लोगोंके मनमें (जो इसके कारणको न जानते थे) बहुत अद्भुत और रहस्यमय भाव उत्पन्न कर रहे थे । इस दृश्यको देखकर गाड़ीवान इतने चकित हो जाते थे कि, वे गाड़ियोंको खड़ी कर और सिरसे टोप उठा कर, बड़े आदरसे, घुटने टेकते थे ।

इस ४२० फीट लम्बे जेपलिनको काउंटने १९०६ में बनाया था

"वह स्थान प्रातः कालसे ही सैनिकोंसे घेर लिया गया । वहाँके मकानों और उनके शिखरोंपर जहाँ कहीं स्थान मिल सका, उत्सुक दर्शकोंकी अपार भीड़ इकट्ठी हो गयी । ५ बजे सन्ध्याको तोप छूटी, जो इस बेलूनके वायुमें छोड़े जानेकी घोषणा थी । दर्शकोंके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब दो मिनटोंमें ही ३१२३ फीटकी ऊँचाईपर चढ़कर वह बादलोंमें प्रविष्ट हो गया । घन-घोर वर्षासे उसकी गतिमें कोई रुकावट नहीं आयी । पृथ्वीसे उठकर आकाशमें किसी वस्तुके उठनेका यह दृश्य इतना नवीन और इतना दिव्य था कि, दर्शक उत्साहसे पागल हो उठे ! महिलाएँ इस ऊपर उठते हुए बेलूनका नवीन दृश्य देखनेमें बहुमूल्यसे बहुमूल्य वस्त्रोंके भीँगनेका विचार बिलकुल भूल गयीं । प्रायः ४५ मिनटों तक यह बेलून वायुमण्डलमें रहकर १५ मीलकी दूरीपर रेशमके फट जानेके कारण धरतीपर गिर पड़ा ।"

मौंटगोल्फियेरकी सफलताने सारे संसारमें हलचल मचा दी । इसके बाद भी अनेक समय तक कोई व्यक्ति बेलूनपर चढ़कर आकाशमें उड़नेका साहस न कर सका । सबसे पहले बेलूनपर एक मुर्गा, एक बत्तक, और एक भेंड़ चढ़ा कर उड़ाये गये थे । जब ये सकुशल धरतीपर लौट आये, तब धीरे-धीरे मनुष्यका साहस बढ़ने लगा । पहले ये बेलून रस्सीसे बाँधकर जमीनपर खम्भोंसे बाँध दिये जाते थे । ऐसे बेलूनको "बद्ध बेलून" कहते हैं । आवश्यकतानुसार इन बेलूनोंको नीचे, रस्सीसे खींचकर,

लाया जा सकता था। पहले पहल जो व्यक्ति इस बेलूनपर उड़नेका साहस कर सका था, वह फ्रान्स देशका एक नवयुवक पिलाम्र द रोजिये (M. Pilatre De Rozier) था, जो २० मिनटों तक आकाशमें उड़ता रहा। वह पृथ्वी-तलसे ४०० फीट-की ऊँचाई तक ऊपर उठा था। वह सकुशल उतर आया। दो वर्षोंके बाद ब्रिटिश चेनेल पार करनेकी चेष्टामें वह अपनी जान खो बैठा। १७८४ ई०में तप्त वायुके बेलूनपर जो दूसरा व्यक्ति उड़ा था, उसका नाम था मारकि दे आरलां [Marquis d' Arlandes]।

एक व्यक्ति उड़ा था। इस उड़ानका वर्णन एक संवाद-दाताने २७ अगस्तके "लंडन क्रानिकल"में इस प्रकार छपवाया है—

"मि० टिटलर (Tytler) ने अपने बेलूनमें बहुत सुधार किये हैं। इसके पूर्व उनकी असफलताका कारण यह था कि, उनका बेलून ऐसे वस्त्रोंसे बना था, जिनसे हवा निकल जाती थी। इस दोषको दूर करनेके लिये उन्होंने वस्त्रोंको ऐसे वार्निशसे रँगा है, जो बेलूनके भर जानेपर उसकी दहनशील हवा-को निकलनेसे रोक देता है।
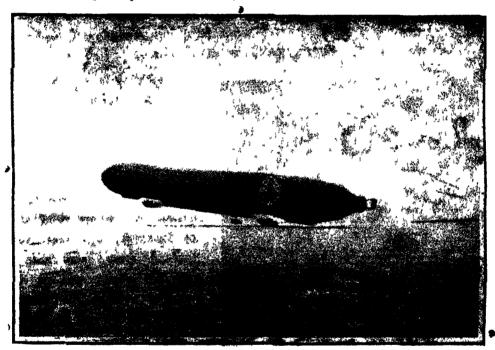
बड़ा ज़ेपलिन

यह पेरिस शहरपर उड़ा था। इसी वर्ष एक बहुत बड़ा बेलून, १२० फीटकी ऊँचाईका, सात यात्रियों-को लेकर लियो (Lyons) में उड़ा था। ३००० फीट ऊपर जाते-जाते यह फट गया; पर यात्रियोंको बिना किसी हानिके नीचे उतार लाया।

१७८४ ई० की १७वीं दिसम्बरको राबर्ट और चार्ल्स (Robert and Charles) हाइड्रोजन भरे बेलूनपर चढ़कर प्रायः १० हजार फीट ऊँचे उठे थे। ग्रेट ब्रिटेनमें पहले पहल इसी वर्षमें बेलूनपर चढ़कर

"आज प्रातःकाल यह उत्साही व्यक्ति पहली बार वायुमें उड़ा है। यह बेलून कमली बगीचेमें भरा गया था। इसकी टोकरीमें वह स्वयम् बैठा था। रस्सीके काट डालनेपर यह बेलून बहुत ऊँचा उठा और फिर धीरे-धीरे रेसटालरिजकी सड़कपर (जहाँसे उठा था, वहाँसे प्रायः आध मीलकी दूरीपर) वह उतर आया। इससे दर्शकोंको बहुत आनन्द हुआ।

"मि० टिटलर अब बड़ी उमङ्गमें हैं। वे अब उन अविश्वासी लोगोंपर हँसते हैं, जो उनके उड़नेकी योज-

नाको अक्रियात्मक और पागलोंका प्रलाप कहकर हँसी उड़ाते थे। ग्रेट ब्रिटेनमें टिटलर पहला व्यक्ति है, जिसने आकाशमें भ्रमण किया है।"

इसके कुछ ही समयके बाद लंडनमें लुनार्डिकी सुप्रसिद्ध उड़ान हुई। जिस समय यह उड़ाका लंडनपर मँडरा रहा था, ग्रेट ब्रिटेनके राजा अपने मन्त्रियोंके साथ कुछ मन्त्रणा कर रहे थे। जब उन्हे यह खबर मिली कि, लुनार्डि आकाशमें उड़ रहा है, तब ऐसा कहा जाता है कि, राजाने अपने मन्त्रियोंसे कहा—"हम लोग इच्छानुसार अपनी मन्त्रणा पीछे भी कर सकते हैं; पर बेचारे लुनार्डिको फिर हम जीवित नहीं देख सकते।" इसके बाद वह राज-सम्मेलन भङ्ग हो गया और राजा पिट्ट, अन्यान्य मन्त्रियोंके साथ, दूर-दर्शकसे, जबतक लुनार्डि आकाशमें उड़ता रहा, देखते रहे। उस समय समाचारपत्रोंने लुनार्डिकी बड़ी प्रशंसा की और लोगोंने उसके स्मारकमें (जिस स्थानपर वह उतरा था, वहाँ) लोहेकी छड़से सुरक्षित एक पत्थरका खम्भा खड़ा कर दिया।

प्रायः सैकड़ों वर्षोंतक इस प्रकारके बेलूनके प्रयोग होते रहे। इसके सुधारमें अनेक कठिनाइयाँ थीं। ये बेलून आकाशमें आप-से-आप उड़ जाते थे। इन्हें किसी निर्दिष्ट दिशामें ले जानेका कोई साधन नहीं था। वायुके झोंके इन्हें जहाँ ले जायँ, वहीं ये जाते थे। यही कारण था कि, इनका कोई विशेष प्रयोग नहीं हो सकता था। ये केवल विनोदके साधन समझे जाते थे! केवल आमोद-प्रमोदके विचारसे ही लोग इनपर बैठकर कभी-कभी उड़ा करते थे! ऐसे बेलूनके बनाने और उनपर उड़ना दिखानेके लिये दर्शकोंसे पर्याप्त धन प्राप्त हो जाता था। पहले पहल १८६२ ई० में क्रेसविक और ग्लैशर [Creswick and Glaisher] नामक व्यक्तियोंको आकाशमें वैज्ञानिक निरीक्षण करनेके लिये ब्रिटिश एसोशियेशनकी ओरसे कुछ धन मिला। यह पहला अवसर था, जब विनोदके स्थानमें वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये बेलूनका प्रयोग आरम्भ हुआ। ग्लैशरके निरीक्षण बहुत महत्त्वके सिद्ध हुए और इससे वायुमण्डलके ज्ञानमें बहुत कुछ वृद्धि हुई। ग्लैशरके आकाश-भ्रमणका वृत्तान्त "ट्रेवल्स इन दि एयर" [Travels in the Air] नामक पुस्तकमें विस्तार-पूर्वक दिया हुआ है। इस पुस्तकके एक भ्रमण-वृत्तान्तका यहाँ मैं कुछ उल्लेख करता हूँ। यह चिर-स्मरणीय उड़ान १८६२ ई०की ५वीं सितम्बरको वोल्वर हैम्पटन नामक स्थानमें, ग्लैशर और काक्सवेल द्वारा, हुई थी। इस उड़ानमें ये उड़ाके प्रायः २९०००फीट, ६ से ७ मीलतक ऊँचे, उठे थे। इस उड़ानका वर्णन करते हुए ग्लैशर लिखता है—

काउंटकी प्रतिभाके सूचक दो जेपलिन (अमेकिन)

"प्रयोग करनेके विचारसे जब मैंने अपना हाथ मेजपर रखा, तब देखा कि, वह बिलकुल शक्तिहीन हो गया है! शक्तिका यह विनाश उसी क्षण हुआ था। मैंने दूसरे हाथको प्रयुक्त करनेकी चेष्टा की; पर उसे भी शक्तिहीन ही पाया। तब मैंने अपने शरीरको हिलानेकी चेष्टा की और उसे हिला सका। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि, मेरे हाथ-पैर नहीं हैं! तब मैंने बैरोमीटर दबाव-मापककी ओर देखा। देखते ही देखते मेरा सिर बायें कन्धेपर गिर पड़ा। मैंने हाथ-पैर हिलानेकी चेष्टाएँ कीं; पर उन्हें न हिला सका। मैंने अपने सिरको

उपर उठाया, पर वह एक क्षणमें ही कोचपर गिर पड़ा; और, फिर मैं भी पीछेकी ओर गिर पड़ा! मेरी पीठ टोकरीसे सटी हुई थी और मेरा सिर टोकरीके किनारेपर था। ऐसी स्थितिमें मैंने काक्सवेलकी ओर दृष्टिपात किया। जब मैंने अपने शरीरको हिलाया, तब मेरी पीठमें पर्याप्त शक्ति थी; पर हाथ-पैर-बिलकुल बेकार हो गये थे। वस्तुतः ऐसा प्रतीत हुआ कि, मेरे हाथ पैर हैं ही नहीं! कुछ ही क्षणोंमें हाथोंके सदृश पीठ और गर्दनकी शक्तियाँ भी नष्ट हो गयीं! धुँधली दृष्टिसे मैंने काक्सवेलको देखा और उनसे बोलनेकी चेष्टा की; पर बोल न सका। फिर शीघ्र ही अँधेरा छा गया और देखनेकी शक्ति अकस्मात् लुप्त हो गयी! ज्ञान मुझे अब भी था और मस्तिष्क उतना ही तीव्र था, जितना इस वृत्तान्तके लिखनेके समय है। ऐसा प्रतीत हुआ कि, मेरी साँस रुक गयी और यदि शीघ्र नीचे न उतारूँ, तो मर जाऊँगा। कुछ विचार भी मस्तिष्कमें प्रविष्ट किये और फिर मैं वैसेही अचेत हो रहा, जैसे कोई निद्रामें हो जाता है। सुननेकी शक्तिके विषयमें मैं कुछ नहीं कह सकता। वहाँ बिलकुल निस्तब्धता फैली हुई थी। पृथ्वी-तलसे ६ से ७ ही मीलके ऊपर इतनी शान्ति थी कि, कोई शब्द वहाँ कानोंको पहुँचा ही नहीं था!"

इस प्रकार जब ग्लैशर अचेत पड़ा हुआ था, काक्सवेलके भी हाथ बेकाम हो गये थे। बेलूनको ऊपर उठनेसे रोकनेके लिये काक्सवेलने दाँतोंसे वल्वकी रस्सीको खोल दिया। इस उड़ानमें ग्लैशर और काक्सवेल अवश्य ही प्रायः ७ मीलकी ऊँचाई तक उठे थे। ग्लैशरके बराबर ऊँचा, बेलूनमें चढ़कर, आजतक कम ही लोग उठे हैं, इसमें सन्देह नहीं। उसके मिनिमम थर्मामीटरमें तापक्रम—१२° था। हाँ,१९०१ ई० में बर्लिन नगरमें सुरिंग और बर्सन (Suring and Berson) प्रायः ३५१०० फीट ऊँचे उठे थे। इस ऊँचाईपर ०°से नीचे ३८°F पर तापक्रम था।

इसके बाद मैसन (Mason) द्वारा ग्रेट नसाँ बेलून (Nassan Balloon) में एक प्रसिद्ध भ्रमण १८३६ ई० में हुआ। डेढ़ बजेके समय यह बेलून आकाशमें उठा और भ्रमण करता हुआ कैंटरबरीहोकर आगे बढ़ा। मेयरके लिये इसपरसे पत्र गिराया गया। डोवरमें भी एक पत्र गिराया गया। ये दोनों पत्र अपने अपने स्थानोंपर पहुँच गये। जब ये लोग ब्रिटिश चैनेलके ऊपर आये, तब इन लोगोंने निर्देशक रस्सीके प्रयोगकी परीक्षा करनी चाही। जबतक इन लोगोंने रस्सीको गिराया, तबतक चैनेल समाप्त हो चुका था। इस प्रकार रातभर इधर-उधर भ्रमण करते हुए ये लोग प्रातःकाल नीचे उतरे। सबसे बड़े बेलून (जो स्वतन्त्र उड़ानके लिये बनाया गया था)का नाम जायंट था। यह था नादारका। इसका समावेशन २१५००० घन फीट था। इसकी विशेषता यह थी कि, इसके साथ-साथ एक दूसरा छोटा बेलून भी लगा हुआ था। ये दोनों ही उच्चतम कोटिके श्वेत रेशमसे बने थे। इसमें २२००० गज रेशम लगा था। इसकी सब सिलाई हाथसे हुई थी। यह बेलून ४॥ टन बोझ

वायुयानके महान् आविष्कारक राइट बन्धु

उठा सकता था। इसमें इतना अधिक उत्प्लावन होनेके कारण बैठनेके स्थान बड़े सोच-विचारके साथ बनाये गये थे। यह दोमंजिला था। ऊपरकी मंजिल खाली थी। इसकी ऊँचाई लगभग ७ फीट और चौड़ाई लगभग १३ फीट थी।

१८५० ई० में पहला नियम्य बेलून (Balloon) गिफार्ड [Giffard] द्वारा बनाया गया। यह सिगारके आकारका ११४ फीट लम्बा और ३६ फीट व्यासमें था। इसका सञ्चालन वाष्प इंजिनसे होता था। अनेक आविष्कारकोंने इसमें, समय समयपर, सुधारकी चेष्टाएँ की थीं। अबतक कुछ यन्त्र हाथोंसे, कुछ पैरोंसे, कुछ विद्युत्-बलसे सञ्चालित होते थे; और, फिर अन्तमें पेट्रोल इंजिनका व्यवहार शुरू हुआ। पेट्रोल इंजिनके प्रयोगसे ही नियम्य बेलून और वायु-पोतका सञ्चालन सम्भव हुआ।

१८५३ ई० में एक बृहत्काय बेलूनपर उड़ान हुई। १५ व्यक्ति इसपर चढ़े थे। इस बेलूनका नायक नादार था। गोडार्ड बन्धु इसके नायब थे। इस बेलूनपर राज-कुमार, काउंट और राज-कुमारी भी बैठी थीं। यह बेलून नौ बजे रात्रिमें जमीनपर उतरा। उतरनेमें कोई आपद् न आवे, इसका पूरा प्रबन्ध किया गया था; पर यह बेलून उतरनेके स्थानसे प्रायः १ मीलतक घसीटता हुआ भागता रहा! इसके यात्री भयसे अन्दर बैठनेके स्थानमें ऊपर चढ़कर रस्सीसे चिपट पड़े। उनमें अधिकांशका शरीर खरोंचसे छिल गया था और रक्त बह रहा था।
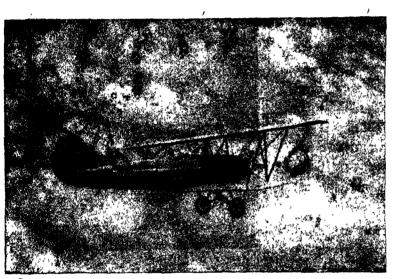
राइट बन्धुओंका वैज्ञानिक पक्षी

सबसे बड़ा बेलून, जो अबतक उड़ा है, वह गिफार्डका था। इसका समावेशन ४५०००० घन फीट था। यह १८६६ ई० में दो बार उड़ा था। आजकलके बेलून साधारणतया २० हजारसे ८० हजार घन फीटके होते हैं। इनमें अपवाद केवल Mammoth बेलून है, जिसका समावेशन १०८००० घन फीट था, जो गौड्रन [Gaudron] द्वारा १९०७ ई० में लंडनमें बनाया गया। इसपर चढ़कर १५ यात्री पहले पहल उड़े थे, जिनमें एक युद्धका संवाददाता और अनेक समाचारपत्रोंके सम्पादक थे। इसी बेलूनपर एक १११७ मीलकी उड़ान हुई थी।

अब बेलूनकी प्रतियोगिता साधारण बात हो गयी। अनेक देशोंमें ऐरो क्लब खुल गये, जिनमें उड़नेकी शिक्षा दी जाने लगी।

इस बेलूनके प्रकरणको समाप्त करनेके पहले काउंट जेपलिनका उल्लेख अत्यावश्यक है। काउंट जेपलिनने हवासे हलके हवाई जहाजको बनानेमें बहुत सुधार किये। इन्होंने जो हवाई जहाज बनाये, उनका नाम ही आजकल जेपलिन है। जेपलिनने जो वायु-यान बनाये, वे बहुत लम्बे आकारके होते थे। उनका बाहरी ढांचा तांबे, निकल वा अलुमिनियमका होता था। वे हलका होते हुए भी बहुत मजबूत होते थे। उनके ऊपर कैनवास लगा हुआ रहता था। जो गैस उनमें प्रयुक्त होती थी, वह अनेक छोटी-छोटी कोठरियोंमें बाँट दी जाती थी। जेपलिनमें प्रायः हाइड्रोजन गैस ही प्रयुक्त होती थी। गैसोंकी अनेक कोठरियोंके होनेसे लाभ यह था कि, एक थैलीके फट जाने या खराब हो जानेसे यह यान नीचे नहीं गिर जाता था, वरन् अन्य थैलियोंके कारण ऊपर ही उड़ता रहता था। इस वायु-यानको बनानेमें इन्हें अनेक प्रयोग करने पड़े थे और उनमें बहुत धन खर्च हो गया था। उनके सिर बड़ा भारी कर्ज भी हो गया; पर अन्तमें उन्हें सफलता मिली। उनकी एक मशीनने २७० मीलकी यात्रा की। अब उन्हें जर्मन सरकारसे बहुत सहायता और उत्साह मिला और उनका वायु-यान युद्धके लिये प्रयुक्त होने लगा। उनके जन्म-दिवसके उपलक्षमें एक सभा हुई थी, जिसमें जर्मनीके कैसरने यह कहा था कि, "हमें इस बातका गर्व है कि, मैं ऐसे समयमें पैदा हुआ हूँ, जब आकाशपर विजय पानेवाला व्यक्ति भी पैदा हुआ है।" जेपलिनकी मृत्यु १९१७ ई० में हुई।

वायुसे भारी उड़नेकी मशीनके सम्बन्धमें १८६७ ई० से कार्य आरम्भ हुआ। अमेरिकाके लाँगलेने वायुमें तलोंके दबावके सम्बन्धमें अनेक प्रयोग किये। सर हिराम मैक्सिमने भी इस सम्बन्धमें अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये। पर जिन

कार्योंसे इसमें पूरी सफलता मिली. उनमें अमेरिकाके लिलियेन्थल बन्धुओं और दोनों राइट बन्धुओंके कार्य प्रमुख हैं। लिलियेन्थल बन्धुओंमें एककी १८९६ ई० में प्रयोग-करनेमें ही मृत्यु हो गयी । इन व्यक्तियोंने पतङ्ग उड़ानेके कारणकी ओर विशेष ध्यान देकर उसे बाक्स-पतङ्गका रूप देकर देखा कि, इसमें मनुष्यको उठानेकी शक्ति विद्यमान है। इस बाक्स-पतङ्गको सुधारकर उन लोगोंने (gliders) आविष्कार किया और इनसे आधुनिक वायु पोतों (Aero-

अंग्रेजोंका बनाया हुआ आर० १०० जेपलिन

planes) का आविष्कार हुआ। ऐसे वायु-पोतोंपर पहली बार राइट-बन्धु १९०४ ई० में अपने हाथसे बनाये दुपंखी वायु-पोतपर उड़े थे। १९०६ ई० में हेनरी फारमान अपने दुपंखी वायु-पोतपर आध मीलतक उड़ा था।

जब १९०८ ई० में ओरविल राइट (Orville Wright) अमेरिकामें ६० मील या इससे कुछ अधिक उड़ रहा था, उस समय विलबर राइट (Wilber Wright] पेरिसके आस-पास उड़कर लोगोंको तमाशा दिखा रहा था। पेरिसकी इस उड़ानके लिये उसे २० हजार पाउंडका पारितोषिक मिला। १९०८ ई० के दिसम्बर मासमें विलबर राइट २ घंटे २० मिनट तक आकाशमें उड़ता रहा। अब तक राइट-बन्धुओंने जिन वायु-पोतोंका प्रयोग किया था, वे दुपंखी थे। १९०९ ई० में एकपंखी वायु-पोतका प्रयोग आरम्भ हुआ। लंडनके "डेली मेल" ने ब्रिटिश चैनेल पार करनेके लिये १० हजार पाउंडके पारितोषिककी घोषणा की। यह पारितोषिक ब्लेरियोको मिला। अपने नामके वायु-पोतपर चढ़कर यह १९०९ ई० के जुलाई मासमें उड़ा था। अन्तोयनेत (Anteonette) नामक एकपंखी वायु-पोतपर उड़कर ब्रिटिश चैनेल पार करनेकी चेष्टामें ह्यूबर्ट लैथम (Hubert Latham) समुद्रमें गिर पड़ा और पीछे जहाजपर उठा लिया गया।

इसके बाद इन विभिन्न वायु-यानोंकी बड़ी शीघ्रतासे उन्नति हुई। संसारके प्रत्येक भागमें 'वायुयान क्लब' स्थापित हुए। प्रत्येक देशमें वायु-यानोंके उतरनेके स्थान (एरो-ड्रोम) बने। ३० मील प्रति घंटेके हिसाबसे से प्रारम्भ होकर अब १५० मील प्रति घंटेके हिसाबसे ये वायु-पोत भ्रमण कर सकते हैं। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, अमेरिका इत्यादि देशोंमें बहुत बड़ी संख्यामें एरो ड्रोम स्थापित हो गये हैं। इन एरो ड्रोमोंके साथ-साथ 'उड़ना सीखने'के स्कूल भी, अनेक देशोंमें, स्थापित हो गये हैं। इन स्कूलोंका सञ्चालन वायु-यानोंके निर्माण-कर्त्ताओं अथवा एरो-ड्रोमोंके सञ्चालकोंके द्वारा होता है। अब दूरसे दूर देशोंकी यात्रा, इन वायु-यानोंके द्वारा, की जाती है। यूरोपसे अमेरिका, एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलियाकी यात्राएँ नियमसे होती हैं। १९११ ई० तक वायु-पोतोंकी उड़ानकी प्रतियोगिता बहुत अधिकतासे होती थी। १९११ ई० में एक बहुत बड़ी उड़ान [जिसमें १४ उड़ाके सम्मिलित हुए थे] लंडनमें हुई थी। अन्तमें यह प्रतियोगिता फ्रांसके सामुद्रिक सेना-विभागके लेफ्टिनेंट कोनों (Connean) और वहांके ही मिकेनिक वेद्रीं [Vedrins] के बीच रही। ब्रिस्टल एरो-ड्रोमका रास्ता भूल जानेके कारण वेद्रीं पीछे पड़ गया और कोनोंकी जीत हुई। अब ऐसी प्रतियोगिता नहीं होती। आज कल तो कम-से-कम समयमें दूरसे दूर जानेकी थोड़ी बहुत प्रतियोगिता चल रही है, जो

दैनिक समाचारपत्रोंके पढ़नेसे मालूम होता है। वायु-यानने जो उन्नति की है, वह आशातीत है। किसे यह खयाल था कि, लंडनका एक डाक्टर, एक सप्ताहमें ही वहाँसे भारतमें पहुँचकर, अभ्यन्तर भागमें रहनेवाली, एक नेपाली महिलाका आपरेशन करेगा ?

यह प्रश्न उठ सकता है कि, बेलून वायुमें क्यों उड़ता है ? बेलून वायुमें उसी कारणसे उड़ता है, जिस कारणसे नाव पानीपर तैरती है। हमारी पृथ्वी वायुसे भरी हुई है। यह वायु अनेक मीलोंतक ऊपर फैला हुआ है। जैसे-जैसे हम आकाशमें ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे हवा पतली होती जाती है। अन्तमें यह हवा इतनी पतली हो गयी है कि, उसमें हम साँस लेकर जीवित नहीं रह सकते। बहुत ऊपर जानेपर हमारा दम घुटने लगता है और हम बेहोश होकर मर जा सकते हैं। इस वायुमें प्रधानतः दो गैसें (नाइट्रोजन, प्रतिशत ७८ भाग और आक्सिजन, प्रतिशत २१ भाग) हैं। इनके अतिरिक्त इनमें आर्गन नामक एक गैस, कुछ जल-वाष्प और अत्यल्प मात्रामें कुछ अन्य गसें भी हैं। इस वायुमें जल-वाष्पको सोखनेकी शक्ति है। यह शक्ति तापक्रमके परिवर्तनसे घटती-बढ़ती है। वायुके इस आवरणको वायुमण्डल कहते हैं। वायुका वजन भी होता है। इस वजनके कारण ही वायुका दबाव होता है। वायुका यह दबाव बैरोमीटर या वायु-दबाव मापकके द्वारा नापा जा सकता है। यदि किसी हवासे भरा बेलून वायुमण्डलमें रहे, तो वायुमण्डलकी हवा उसे दबाती है। यह ठीक उसी प्रकार होता है, जैसे नावके पेंदेको जल दबाता है।

बेलूनपर बैठनेके स्थान, उसपर बैठनेवाला व्यक्ति, उसपर रखा हुआ पदार्थ—ये सब गुरुत्वाकर्षणके कारण बेलूनको नीचेकी ओर खींचते हैं। वायुका दबाव उसे ऊपर उठाता है। यदि ये दोनों बल (गुरुत्वाकर्षण और वायुके दबाव) बराबर हों, तो बेलून जहाँका तहाँ स्थिर रहेगा। यदि बेलूनका वजन वायुके दबावसे कम है, तो बेलून ऊपर उठेगा ऊपर उठनेपर यदि बेलूनका तौल किसी प्रकार बढ़ाया जा सके, तो बेलून नीचे उतर आवेगा।

पहले पहल जो बेलून प्रयुक्त होते थे, वे बहते बेलून थे। वे साधारणतः गोलाकार होते थे, जिनमें कोई हलकी गैस भरी होती थी। गैसके थैलेके ऊपर जाली लगी रहती थी। इसी जालीसे एक टोकरी लटकी रहती थी, जिसपर आदमी बैठता था। इस टोकरी और इसमें रखे सामानोंका तौल इतना होना चाहिये कि, गैसके थैले इन्हें उठा सकें। गैसके गोल थैले भिन्न-भिन्न वस्तुओंसे बने होते हैं। ये प्रधानतः रेशमके होते हैं। यदि अन्य प्रकारके वस्त्रसे बने हों, तो ऐसा होना चाहिये कि, हाइड्रोजन इनसे निकल न सके। ऐसे बेलूनोंके उड़ाके टोकरीमें कुछ लकड़ीका बुरादा रखे रहते थे; ताकि यदि उनकी ऊपर जानेकी इच्छा हो, तो इन्हें फेंककर बेलूनको हलका कर वे ऊपर जा सकें। पीछे एक बड़ी रस्सी भी रखी जाने लगी,
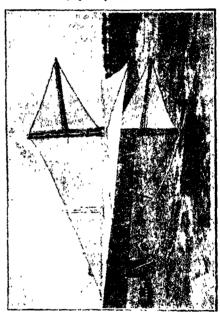
तिपंखा वायुपोत

जिसके लटकानेसे खिंचाव पैदा किया जा सके। अनन्तर इस बेलूनमें डोरीके द्वारा कार्य करनेवाला एक वल्व भी लगा दिया गया, जिससे आवश्यकतानुसार थैलेकी हवाको बाहर निकाला जा सके।

इस बहते बेलूनमें दोष यह था कि, वायु इसे जहाँ ले जाय, वहीं जा सकता था। कभी-कभी अनुकूल निर्दिष्ट दिशामें ले जानेके लिये वायुकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। ऊपर उठकर देखना पड़ता था कि, किस ऊँचाईपर अनुकूल हवा बह रही है। इस बहते बेलूनके द्वारा पहले पहल बहुत कार्य हुआ था।

इसके बाद नियम्य बेलूनका आविष्कार हुआ यह चुरुटके आकारका होता था। इसकी टोकरी भी लम्बी

होती थी। यह चालक बलके द्वारा वायुमें निर्दिष्ट दिशामें चलाया जा सकता था। चुरुट, सिगारके आकारका बेलून अधिक सुविधाजनक सिद्ध हुआ; क्योंकि इसपर वायुके संघर्षणका प्रभाव कम पड़ता है।

इसका विस्तार छोटे-से-छोटा (जिसमें एक व्यक्ति बैठ सकता है) और बड़े-से-बड़ा (जिसपर एक दर्जन व्यक्ति बैठ सकते हैं) होता था। एक टन वजन उठानेके लिये ३५००० घन फीट हाइड्रोजन लगता था। कोयलेकी गैसमें उठानेकी शक्ति इसकी आधी होती है। ये बेलून कभी कभी बिल्कुल धातुओंकी चादरके भी बनाये जाते थे, ताकि दृढ़ताके साथ-साथ हलके भी हों। इस बेलूनमें बैठनेकी टोकरी वैसे ही लटकायी जाती है, जैसे बहुत बेलूनमें लटकायी जाती है। इसकी टोकरीमें ही सञ्चालकके बैठनेका स्थान, इंजिन और उत्प्रेषक होते हैं। बड़े-बड़े लम्बे बेलूनमें गैसके थैलेसे धातुका एक लम्बा शहतीर लटकाया हुआ रहता है; और, इसी शहतीरपर बैठनेके स्थान होते हैं इसमें जो इंजिन प्रयुक्त होता है, वह पेट्रोलका होता है। ३५ से ४०० अश्वबलके इंजिन इसमें प्रयुक्त होते हैं। बड़े-बड़े बेलूनमें एकसे अधिक इंजिन भी प्रयुक्त होते हैं। यह बेलून दाहिने और बायें, उसी प्रकार घुमाया जा सकता है, जैसे नावें जलमें दाहिने और बायें, घूमती हैं। इसके लिये पतवार प्रयुक्त होता है। यह कैनवास या इसी प्रकारके पदार्थोंका बना होता है। इसको दाहिने घुमानेसे बेलून दाहिने घूमता है और बायें घुमानेसे बायें घूमता है। इसका सञ्चालन ठीक नावके पतवारके जैसा ही होता है।

यह बेलून नीचे या ऊपर, इच्छानुसार, उठाया जा सकता है। यह इस प्रकारसे हो सकता है कि, जिस कोणमें उत्प्रेषक (Propeller) चक्कर लगाता है, उस कोणको क्षैतिज कर्ण (पतवार) द्वारा बदला जाय जो इंजिन बेलूनमें प्रयुक्त होता है, वह एक या अधिक उत्प्रेषकको वायुमें बड़ी शीघ्रतासे घुमाता है। साधारणतः दो उत्प्रेषक प्रयुक्त होते हैं। यह उत्प्रेषक बिजलीके पंखेके जैसा होता है। केवल इसके ब्लेड अधिक लम्बे, बड़े और मजबूत होते हैं। जब बेलूनको सीधे सामने ले जाना होता है, तब उत्प्रेषकोंको ऊर्द्ध्वाधार-तलपर उस दिशाके लम्बमें चलाते हैं, जिस दिशामें बेलूनको ले जाना होता है। जब इसे ऊपर या नीचे ले जाना होता है, तब इसको किसी कोणमें नत कर देते हैं। जब बेलूनको किसी दिशामें नत करते हैं, तब बेलूनकी नाक नीचेकी ओर घूम जाती है; और, वह उसी दिशामें आगे बढ़ता है। क्षैतिज पतवार वैसा ही होता है, जैसा समुद्रस्थ जहाजोंमें प्रयुक्त होता है। यह एक या दो तलोंका कैनवास या इसी प्रकारके पदार्थोंका बना होता है, जो किसी ढांचेपर चढ़ा होता है। यह ऐसे रखा जाता है कि, बेलूनकी दोनों ओर इसे ऊपर उठाने या नीचे ले आनेसे इसपर वायु लग सके। इस क्षैतिज पतवारको नीचे करनेसे बेलून नीचे उतरता है और ऊपर करनेसे ऊपर उठता है। इस प्रकार इंजिन उत्प्रेषक, ऊर्द्ध्वाधार, पतवार और क्षैतिज पतवारकी सहायतासे किसी भी नियत दिशामें, इच्छानुसार, बेलूनको ले जा सकते हैं।

एकपंखी वायुपोत

भिन्न भिन्न प्रकारके बेलून आजकल प्रयुक्त होते हैं। जेपलिन, परसीवल, ग्रौस बेलून प्रसिद्ध हैं। इनके तीन प्रकार होते हैं। कुछ बेलून लचकदार होते हैं, कुछ दृढ़ और कुछ अर्ध दृढ़।

ग्लायडर वायु-पोतोंका जन्मदाता है। इसका जन्म पतङ्गसे हुआ है। पतङ्ग वायुके दबावके कारण आकाशमें उड़ता है। यदि हवा तेज होती है, तो पतङ्ग सरलतासे उड़ता है। पर यदि हवा धीमी होती है,

तो पतङ्गको उड़ानेके लिये विशेष दक्षताकी आवश्यकता होती है। यदि एक पतङ्गके स्थानमें दो पतङ्ग, किसी दृढ़ पदार्थके द्वारा, जुड़े हुए हों, तो वह सन्दूकके आकारका हो जाता है। इस प्रकारके पतङ्गको 'बाक्स पतङ्ग' (Box-kite) कहते हैं। इन बाक्स-पतङ्गोंके दोनों पृष्ठ-भागोंपर वायुका झोंका लगता है और इससे यह आकाशमें उड़ सकता है। एक समय फ्रांस देशमें ऐसे ही पतङ्गकी डोरीसे एक मनुष्य बाँध दिया गया। उस बेचारेकी बड़ी दुर्दशा हुई। जब हवा कुछ तेज बहती, तब तो वह ऊपर उठता और ज्यों ही हवा धीमी पड़ जाती, वह जमीनपर गिर पड़ता। इस प्रकार अनेक समय तक वह उठता और गिरता रहा। इसी बाक्स पतङ्गके सुधारसे Glider की सृष्टि हुई। इसमें दो तल एकके ऊपर दूसरे जोड़े हुए रहते हैं। निचले

वायु-पोत वायुमें उसी सिद्धान्तसे उड़ता है, जिससे पक्षी आकाशमें उड़ते हैं और Glider ऊपरसे नीचे बहुत धीरे-धीरे उतरता है। वायुके ऊपरकी ओर-के दबावके कारण ऐसा होता है। यदि किसी वायु-पोतको ऊपर उठाकर ऐसी वायुमें छोड़ दिया जाय, जहाँ हवा बड़ी तीव्रतासे बह रही हो, तो आँधीके बहनेके कारण वह वायु-पोत उसपर तैरता रहेगा। यह आँधी प्राकृतिक हो वा कृत्रिम, इसमें कोई भेद न होगा। सब वायु पोतोंमें कुछ ऐसे तल होते हैं, जो बड़ी तीव्रतासे वायुमें घुमाये जाते हैं। पहले ये प्रति घंटा २५ और ३० मीलके हिसाबसे घुमाये जाते थे; पर अब उनका वेग, ५०, ८० और १५० मील प्रति घंटे तक पहुँच गया है।

वायु-पोतोंके तल (Plane) वस्तुतः ठोस तल
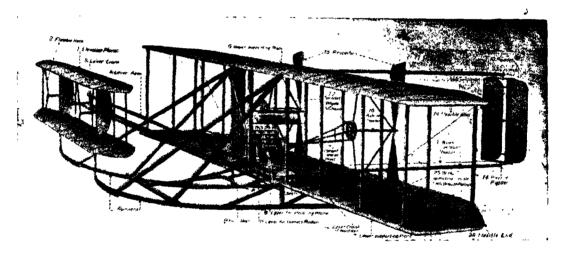
दुपंखी वायुपोत

तलपर ऐसा प्रबन्ध रहता है कि, मनुष्य उसपर बैठ सके। ऐसे ग्लायडर (Glider) को किसी पर्वतके शिखरपर वा किसी ऊँचे मीनारपरसे ढकेल देते हैं। इसके गिरनेसे वायुमें कुछ गति उत्पन्न होती है, जिससे वायुका दबाव बढ़ जाता है। अतः सीधे नीचे गिरनेके स्थानमें वह धीरे-धीरे नीचे उतरता है। ऐसे ही ग्लायडरके साथ प्रयोग करते हुए लिलियेंथल द्वि-बन्धुओंमें एककी मृत्यु हो गयी; क्योंकि जिस Glider पर वह उतर रहा था, वह उलट गया; और, उसकी देहपर ही वह गिरा, जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी।

नहीं होते। ये लचकदार पदार्थ नावोंके पालोंके सदृश पदार्थोंके बने होते हैं। इनके नीचेका तल नतोदर (Concave) होता है और ऊपरका तल उन्नतोदर (Convex)। जब मशीन उड़ती है, तब ये तल ८ डिगरीके कोणपर नत होते हैं। इस कोणको "आयतन कोण" (the angle of incidence) कहते हैं। इसी कोणपर वायुको चीरता हुआ वह तल आगे बढ़ता है।

इस तलके द्वारा बहती हुई हवा ऊपरकी ओर दबाव डालती है। जो दबाव इस प्रकार पड़ता है, उसका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध उस तल (Plane)

के समस्त पृष्ठ-भागके साथ होता है। इस दबावका सम्बन्ध, जिस गतिसे वह तल गमन करता है, उसके साथ भी होता है। इस ऊपरके दबावपर ही वायु-पोतोंमें वजनके ले जानेकी क्षमता होती है। भिन्न-भिन्न वायु-पोतोंमें भार वहन करनेकी क्षमता विभिन्न होती है। यह बहुत कुछ उनके तलके प्रसारपर निर्भर करता है।

आजकल प्रधानतः दो प्रकारके वायु-पोत प्रयुक्त होते हैं। जिस वायु-पोतमें केवल एक तल होता है, उसे एकपंखी वायु-पोत कहते हैं। जिन वायु-पोतोंमें दो तल होते हैं, उन्हें दुपखी वायु-पोत कहते हैं और जिन वायु-पोतोंमें तीन तल होते हैं, उन्हें तिपखी वायु-पोत कहते हैं।

तिपखी वायु-पोतोंमें तीन तल एक दूसरेसे जुड़े और अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। ये तीनों तल एकके ऊपर दूसरे स्थित रहते हैं। इसके अधस्तलमें बैठनेका स्थान और इंजिन होता है। तिपंखी वायु-यान केवल प्रयोगके लिये एक समयमें बना और प्रयुक्त हुआ था; पर अब यह न बनता और न प्रयुक्त होता है।

एकपंखी वायु-पोतोंमें केवल एक तल होता है। यह देखनेमें सुन्दर और ठीक पक्षियों जैसा होता है। The antronette और Blenot मशीनें दूरसे एक विशाल पक्षीके सदृश दीख पड़ती हैं।

दुपंखोमें दो तल ऊर्द्ध्वाधार एकके ऊपर दूसरे होते हैं। इनमें पीछे उत्प्रेषक इंजिन और अन्यान्य आवश्यक भाग होते हैं। इनमें निचला तल वास्तवमें एक मञ्च होता है, जिसपर इंजिन, बैठनेका स्थान और अन्य आवश्यक सामान रहते हैं। राइट बन्धुओंके दुपंखो वायु-पोतके ढाँचे काठके बने थे। ये पहले बाँस या अन्य किसी लकड़ीके भी बनते थे। इनके दोनों ही तल उठानेवाले तल होते हैं और दोनों पर ही वायुका दबाव पड़ता है। दोनों तल खम्भोंसे जुड़े होते हैं। ऐसे खम्भे होते हैं, जिनपर वायुका कमसे कम दबाव पड़ सके। निचले तलके मध्य भागसे पीछे तक जो भाग फैला हुआ होता है, उसे Fuse-llage कहते हैं। इसके पिछले भागमें ही पतवार होता है। पतवारको घुमानेके लिये तार लगा रहता है। इसके मध्य भागमें इंजिन होता है।

वायु-पोतोंको समुद्रमें गिरने और उसमें डूबनेसे बचानेके लिये उनके नीचेके तल ऐसे बने होते हैं कि, वे समुद्रमें तैर सकें। ऐसे वायु-पोतोंको जलीय वायु-पोत कहते हैं।

उपर्युक्त दो वर्गोंके वायु-यानों (हवाई जहाज और वायु-पोतों) में कौन उत्तम है? इस सम्बन्धमें बहुत दिनोंसे वाद-विवाद चल रहा है। जर्मनीने पहले वर्गके वायु-यानोंमें ही विशेष उन्नति की है। इसके प्रयोगमें अधिक धन-व्यय किया है; और, एक-से-एक बड़ी मशीनोंका निर्माण किया है। फ्रांस और इंगलैंडने दूसरे वर्गके वायु-यानोंके निर्माणमें अधिक धन और समय लगाया है।

विस्तारमें हवाई जहाज बड़े होते हैं; अतः वे उतने द्रुतगामी नहीं हो सकते, जितने वायु-पोत होते हैं। वे बहुत ऊँचे भी नहीं उठ सकते; क्योंकि ऊपरकी हवा हल्की होनेके कारण उनके भारको उठा नहीं सकती। हवाई जहाज अब तक प्रायः १३ हजार फीट तक ऊँचे उठे हैं और वायु-पोत प्रायः २६ हजार फीट तक चढ़ सके हैं। भार उठानेमें हवाई जहाजोंकी क्षमता बहुत होती है और अधिक समय तक सरलतासे वायुमें उड़ सकते हैं। जर्मनीके ग्राफ जेपलिनमें जर्मनीसे अमेरिकाको सौसे अधिक यात्रियोंने यात्रा की थी। वायु-पोतोंमें भार उठानेकी इतनी अधिक क्षमता नहीं होती। इसी कारण, हवाई जहाजोंमें अनेक त्रुटियाँ होनेपर भी, अनेक दुर्घटनाएँ होनेपर भी, उनका प्रयोग कम नहीं हो रहा है। हवाई जहाजके निर्माणमें अपेक्षाकृत बहुत अधिक धन-व्यय होता है। ऐसे जहाज शीघ्रतासे बन भी नहीं सकते। इन्हें रखनेके लिये बड़े-बड़े बन्द स्थान चाहिये, जहाँ ये सुरक्षित रखे जा सकें। ऐसे जहाजोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जानेमें अधिक परिश्रम भी करना पड़ता है। अन्धड़-तूफानसे ऐसे जहाजोंकी हानि होती है और अनेक जेपलिन अब तक इनके कारण नष्ट हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त जेपलिनको सञ्चालित करनेके लिये अनेक आदमियोंकी आवश्यकता भी होती है। वायु-पोतोंके सञ्चालनके लिये एकसे दो व्यक्ति पर्याप्त हैं।

वायु-यानोंका इतिहास

डा० धर्मचन्द्र खेमका "चन्द्र"

कैरोलिनाकी दूरस्थ बालुकामयी वायुविकम्पित पर्वतस्थलीपर आज भी, घोर अन्धकारके समय, उस प्रकाशस्तम्भका गगनचुम्बी अलौकिक प्रकाश सुदूर शून्यमें दिखाई पड़ता है, जो रात्रिके समय उड़ाकोंके लिये पथ-प्रदर्शकका काम करता है।

इसके विषयमें एक आकर्षक और विशेष बात यह है कि, यह उस स्थानका निर्देशक है, जहाँसे आरविल राइटने आजसे २६ वर्ष पूर्व सर्वप्रथम वायु-यानका सञ्चालन किया था। अभी थोड़े दिन पहले उस ऐतिहासिक शुभ दिवसके वार्षिकोत्सव-पर समस्त भूमण्डलके कोने-कोनेसे उस शान्त और क्षीणकाय व्यक्तिके पास धन्यवाद-सूचक तारोंकी वर्षा हो रही थी।

वह मनस्वी व्यक्ति सोचता अधिक और बोलता कम है। वह अब भी अपनी शान्त प्रयोग-शालामें बैठा हुआ वायु-यानोंकी अधिकाधिक उन्नतिके लिये प्रयोग कर रहा है। वायु-यानोंके वर्तमान चमत्कारको किस प्रसन्नतासे वह देखता होगा!

राइटसे कोई यह आशा नहीं कर सकता कि, वे भविष्यके सम्बन्धमें कुछ कहेंगे, प्रत्युत वे इन बातोंसे बहुत दूर रहते हैं। हर हारपर लिखते हैं "आजसे कई वर्ष पूर्व मुझे एक दिन उनके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वह दिन मुझे आजन्म नहीं भूल सकता। मेरी बड़ी उत्कट इच्छा थी कि, उनके मुँहसे वायु-यानोंके भविष्यके विषयमें कुछ सुनूँ; परन्तु मैं अपने उद्योगमें नितान्त असफल रहा। वे दोनों भाई "आरविल राइट" और "विलबर" बहुत ही नम्र स्वभावके व्यक्ति हैं। विलबरने मुझसे केवल इतना ही कहा कि, पक्षियोंमें बोलनेकी शक्ति केवल तोतेमें है; किन्तु वह तेज उड़नेवाला पक्षी नहीं है। सत्य तो यह है कि, वे बोलनेमें समय नष्ट करना नहीं चाहते, वे तो केवल उड़नेमें ही व्यस्त रहते हैं। यदि वे कुछ कहते भी, तो कदाचित् उन दिनों, उनका कोई किसी प्रकार विश्वास भी न करता।"

न्यूयार्कके एक पत्रने अपने एक विशेष संवाद-दाताको, राइटके पास, उनकी प्रथम उड़ानोंको देखनेके लिये भेजा था। किसी-न-किसी प्रकार, सतत परिश्रमके बाद, उसे इस काममें सफलता मिली। एक दिन उसने देखा, वे दोनों एक दुपंखी जहाजमें बैठकर उड़े और एक खेत (जिसमें किसान और उसके मजदूर काम कर रहे थे) के ऊपर चक्कर लगाते हुए शान्तिपूर्वक पृथ्वीपर उतर आये। इस आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर वह संवाददाता दौड़ा हुआ समीपके तारघरसे एक विस्तृत तार अपने पत्रको भेजा। परन्तु इसपर किसीको विश्वास नहीं हुआ। वह तार फाड़कर रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया गया; और, उस संवाददातापर असम्भा-वित समाचार भेजनेका दोषारोपण कर छ सप्ताहके लिये नौकरीसे अलग कर दिया गया!

वास्तवमें संसारमें हवाई जहाजकी पहली उड़ान-की रिपोर्ट किसी भी पत्रमें उड़ानके कई दिन बाद तक प्रकाशित नहीं हुई! उसके बाद भी यह

न्यूयार्कके दो-एक पत्रोंमें उसी तरह प्रकाशित हुई, जैसे कोई असम्भव बात हो। इनमें राइटके दुर्पक्षा वायु-यानका "हवाई जहाज" न कहकर उसे एक प्रकारका गुब्बारा घोषित किया जाता था।

यह आजसे २६ वर्ष पहलेकी बात है। आज संसारमें . लाख मीलतक वायु-यानोंकी लाइनें बन गयी हैं, जिनसे मेल आती-जाती है। इनके पहुँचनेका समय इतना नपा-तुला है कि, अफ्रीकाका एक गल्फका खिलाड़ी अपने खेलका ठीक यह समय रखता है, जब "इम्पीरियल एयरवेज"का वायु-यान केपटाउन जाते समय उसके सिरपर होकर गुजरता है। सारांश यह कि, हजारों मील चल चुकनेपर, उसके निर्धारित समयमें, एक मिनटका भी फर्क नहीं पड़ता।

अन्य महान् आविष्कारोंकी भाँति वायु-यानको भी अपने बाल्य कालमें लोकोपहासका सामना करना पड़ा है। जाज स्टिफेंसनको ही लीजिये। जब उन्होंने रेलवे इंजिन बनाना प्रारम्भ किया, तब इंजीनियर लोग कहने लगे कि, तुम्हारा इंजिन फट जायगा, और, यात्री गिरकर चकनाचूर हो जायंगे। गाटलीब डेमलर जब मोटरकारका इंजिन बनानेकी धुनमें थे, तब उनसे कहा गया, यदि वे (Power-Plant) में अधिक तेजी लानेका उद्योग करेंगे, तो इंजिन उस गर्मी और ताकतको न सह सकनेके कारण या तो टूट या जल जायगा। इसी प्रकार जब रेलवेके सर्वप्रधान कारनीलिस वांडर विल्टको वायु ब्रेकसे रेल रोकनेका प्रबन्ध दिखलाया गया, तब उन्होंने कहा—"क्या आप यह समझते हैं कि,

पार्श्वस्थित चित्र देखनेसे मालूम होता है कि, जहाज, रेलके इंजिन, मोटरगाड़ियाँ और वायुयान किस प्रकार क्रमशः उन्नति करते गये हैं। बायीं ओर, सबसे ऊपर, उस सर्व-प्रथम स्टीम-जहाजका चित्र है, जो पैरसे चलाया जाता था। उसकी दाहिनी ओर सर्व-सुखसाधन-सम्पन्न विशालकाय वर्तमान जहाजका चित्र है। उसके नीचे, बायीं ओर, पुराने रेलवे इंजिनकी समता आजकलकी डाकगाड़ीवाले शक्तिशाली इंजिनसे की गयी है। इसके नीचे आप प्राचीन मोटरकारकी तुलना सन् १९३३की सर्वोत्तम कारसे कर सकते हैं। अन्तमें आविष्कारोन्नति-सूचक इस

चित्रमें बायीं ओर आप १२ घोड़ोंकी शक्तिवाला वह छोटा वायुयान देख सकते हैं, जिसमें सन् १९०३ में राइट ब्रादर्स उड़े थे और उसकी दाहिनी ओर 'इम्पीरियल एयरवेज' की २२०० घोड़ोंकी शक्तिवाला वायुयान, जो आजकल ब्रिटिश वायुयान लाइनपर उड़ता है और जिसके आरामदेह कमरोंमें ३८ यात्रियोंके अतिरिक्त कमांडर, फर्स्ट आफिसर, वायरलेस आपरेटर और स्टिवार्ड्स भी रहते हैं, है।

रेलगाड़ी हवासे रुक सकती है ?" उत्तर मिला—"यदि वायु वास्तवमें वायु है, तो अवश्य ऐसा हो सकता है।" इसपर वांडर विल्टने कहा—"मुझे ऐसी मूर्खतापूर्ण बातोंमें दिमाग खर्च करनेका समय नहीं है!"

इसी प्रकार जब आजसे १३ वर्ष पूर्व, लंडन और पेरिसके बीच, वायु-यान सर्विस जारी हुई थी, तब बहुतोंको यह कहते सुना गया था कि, यह विचार मूर्खतापूर्ण है। यह बात मानी जाती थी कि, वायु-यान तेज उड़ सकते हैं; किन्तु हर मौसममें इनपर एकसा काबू रखनेका विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी इस सर्विसके प्रारम्भिक सप्ताहमें एक उड़ाका ऐसे भयङ्कर तूफ़ानको सकुशल निबाह गया था, जिसकी गति कतिपय समुद्रतटवर्ती नगरोंमें १०० मील प्रति घंटा कूती गयी थी। इसके तीन महीने बाद वायु-यानोंपर इतना अधिक विश्वास बढ़ गया कि, पोस्ट आफिसने शाही डाक (Royal Mail) को नियमित समयपर पहुँचानेका भार भी वायु-यान-विभागको सौंपना समुचित समझा। आज ये हवाई पोस्टमैन वर्ष भर, प्रत्येक ऋतुमें, हजारों मील उड़ते रहते हैं और उनपर सौ प्रतिशत विश्वास किया जाता है।

इस उड़नेवाली मशीनका इतिहास देखनेसे मालूम होता है, इसने कितनी शीघ्रतासे चामत्कारिक उन्नति की है। अभी ३० वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि, राइट मशीनने पहले पहल भूमि छोड़ी थी। उस समय केवल ·१२ सेकिंड तक एक मनुष्यको लेकर कुछ फीटकी ऊँचाईपर उड़ती थी। इसके पाँच साल बाद मीलोंका हिसाब हुआ और पहले पहल वायु-यानने ब्रिटिश चैनेलको पार किया। ब्लेरियटकी २५ घोड़ोंकी शक्तिवाले मोनोप्लेनने उसे ३७ मिनटमें फ्रांससे इंगलैंड पहुँचाया! इसके दस वर्ष पश्चात् ही वायु-यानोंके इतिहासका दूसरा पृष्ठ उलट गया; और, एक मशीनने एक पाइलाट और दो यात्रियोंको चैनेलके पार पहुँचाया। यहींसे वायु-यानकी दैनिक सर्विसका श्रीगणेश हुआ। इस प्रकार उत्पन्न वायु-यानोंकी इतनी शीघ्र उन्नति हुई कि, ३० वर्षके अन्दर ही लकड़ी और तारवाले प्रथम वायुयानके स्थानपर आज सुदृढ़ लोहेके बड़े-बड़े, कई टन वजनके और सहस्रों घोड़ोंकी शक्तिवाले वायुयान ४० यात्रियोंको, सामान और मेल सहित, लेकर हवामें उड़ते हैं!

पहले ये केवल थोड़ी ही दूरतक उड़ सकते थे; परन्तु इनकी विजय दिनपर दिन बढ़ती गयी और अब इनकी बड़ी-बड़ी लाइनें खुल गयी हैं, जिनसे दिन प्रतिदिन हजारों मीलके सफर होते रहते हैं। आजकल कई इंजिनवाले वायु-यान बड़े-बड़े समुद्रोंको पार करनेके लिये बना लिये गये हैं, जिनसे अत्यन्त तेजीके साथ महासागरों और महाद्वीपोंको पार करनेका प्रयास किया जा रहा है! कड़ीके बाद कड़ी जोड़कर वायु-यानोंकी जंजीर बनायी जा रही है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—चारों दिशाओंमें मध्य आकाशमें होकर तीव्र गतिसे जानेमें सारी बाधाओंको अतिक्रम करनेका प्रयास किया जा रहा है। हवाई बोझे बढ़ रहे हैं और उनके ढोनेका व्यय क्रमशः कम होता जा रहा है।

"कागजपर रंगीन फोटो" लेखसे सम्बद्ध चित्र

दूरदर्शनका भविष्य
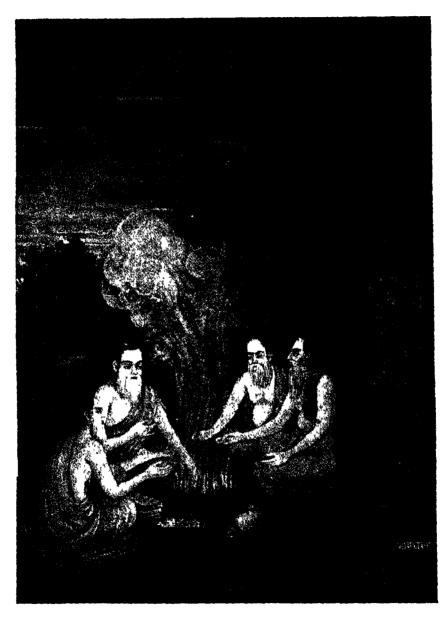
बा० श्यामनारायण कपूर बी० एस-सी०

दूरदर्शन-विज्ञान संसारका नवीनतम आविष्कार है। इसकी सहायतासे आप घर बैठे संसारकी समस्त घटनाओंके प्रतिबिम्ब, उनके घटित होते समय ही, देख सकते हैं। जिस तरह आजकल रेडियो द्वारा एक बटनके दबाते ही संसारके किसी भी भागके संवाद हमें आप ही आप सुनाई पड़ने लगते हैं, उसी तरह वह दिन भी शीघ्र ही आनेवाला है, जब एक बटनके दबाते ही हम संसारके किसी भी देशमें घटित होनेवाली घटनाएँ देख लिया करेंगे; एवम्, उनका सविस्तर विवरण भी प्राप्त कर लिया करेंगे। दूरदर्शनके भविष्यके बारेमें विभिन्न वैज्ञानिकोंके विभिन्न मत हैं। मतमतान्तर होते हुए भी भविष्यके आशामय होनेमें किसीको भी सन्देह नहीं है। वैज्ञानिक इसे बराबर अधिकाधिक व्यावहारिक बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। मई, सन् १९३० में एक थियेटर सम्बन्धी प्रदर्शन किया गया था। उसमें काफी सफलता भी मिली थी। उसके थोड़े ही दिनों बाद अमेरिकाके मि० जेहेमंड नामक वैज्ञानिकने न्यूयार्कके पास एक और प्रदर्शन किया। उसके द्वारा उन्होंने यह दिखलानेकी कोशिश की कि, दूरदर्शन हवाई जहाज चलानेवालोंको पृथ्वीपर उतरने लायक स्थान बतलानेमें भी मदद देगा। मौसिम खराब होने या घना कोहरा पड़नेपर भी उस यन्त्रकी सहायतासे उतरनेवाले स्थानका प्रतिबिम्ब जहाजपर बैठे-बैठे ही देखा जा सकेगा! दूरदर्शन यन्त्रोंके आविष्कारक मि० बायर्डने भी एक ऐसा ही यन्त्र बनाया था। उसे नाक्टोवाइजर (Noctovisor) कहते हैं। इसके द्वारा अँधेरे और कोहरेमें भी दूर-दूर तककी चीजें, बखूबी, देखी जा सकेंगी।

मि० बायर्डने यह आविष्कार सन् १९२६ में कर लिया था। इस यन्त्रमें प्रकाशकी साधारण किरणें व्यवहारमें लानेके बजाय परा लाल या उपरक्त (Infra Red) किरणें व्यवहारमें लायी जाती हैं। इन किरणोंकी लम्बाई साधारण किरणोंसे कुछ ज्यादा होती है, साधारणतया इन किरणोंका आँखोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; पर बायर्डने पता लगाया कि, इन किरणोंको दूरदर्शन यन्त्रोंके काममें लाया जा सकता है। इस आविष्कारकी सहायतासे अँधेरेमें रहनेवाले पदार्थोंको भी दूरदर्शित करना सम्भव हो गया। ये परा लाल किरणें प्रकाशकी साधारण किरणोंकी तुलनामें, कोहरेमें भी, अधिक सहूलियतसे प्रवेश कर सकती हैं। आगे चलकर, उन्नत होनेपर, यह नवीन यन्त्र अवश्य ही बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। केवल हवाई जहाजोंको ही नहीं, वरन् समुद्रपर चलनेवाले जहाजोंको भी बड़ी सहायता मिलेगी। कोहरेमें छिप जानेपर भी इन्हीं किरणों एवम् नाक्टोवाइजर (Noctovisor) यन्त्रकी सहायतासे जहाज आपसमें सन्देश भेज सकेंगे और एक दूसरेको देख सकेंगे। इस यन्त्रका सार्वजनिक प्रदर्शन बायर्डने सर्वप्रथम, दिसम्बर, १९२६ में,

लंडनकी रायल सोसाइटीके सदस्योंके सम्मुख किया था। उसके बाद तो कई एक प्रदर्शन किये गये। परन्तु अभीतक यह आविष्कार व्यावसायिक रूप नहीं प्राप्त कर सका है।

इससे भी अधिक दिलचस्प और उपयोगी आविष्कार फोनोवीजन (Phonovision) है। इसकी सहायतासे प्रकाशकी किरणें शब्द-तरङ्गोंमें परिवर्तित होकर स्थायी रूपसे आकर्षित की जा सकेंगी। दूरदर्शन यन्त्रोंमें किसी पदार्थसे परावर्तित होकर जो प्रकाश आता है, वह फोटो इलेक्ट्रिक सेलों द्वारा बिजलीके तारकी विद्युद्-धारामें या बेतारकी तरङ्गोंकी गतिमें उतार चढ़ाव पैदा कर देता है। यह चढ़ाव-उतार मामूली टेलीफोनके ग्राहक यन्त्रके द्वारा अच्छी तरह सुना जा सकता है। मुँहकी जरा-सी हरकततक इन तरङ्गोंमें काफी रद्दोबदल पैदा कर देती है। फोनोवीजनकी सहायतासे प्रकाशकी तरङ्गोंके इस शाब्दिक रूपको स्थायी रूपसे अङ्कित किया जा सकेगा। इस प्रकाशको जब चाहें, तब, फिरसे प्रकाशकी तरङ्गोंमें बदलकर मूल पदार्थका प्रतिबिम्ब प्राप्त किया जा सकेगा। फोनोग्राफका सम्बन्ध एक सूक्ष्म-शब्दग्राही यन्त्र (Microphone) से किया जायगा। यह यन्त्र दूरदर्शक अर्थात् टेलीवाइजरसे जुड़ा होगा। टेलीवाइजरमें मूल प्रकाशका प्रतिबिम्ब देख पड़ेगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि, अब दूरदर्शन यन्त्रों द्वारा देखे जानेवाले प्रतिबिम्ब स्थायी भी बनाये जा सकेंगे। जिस तरह ग्रामोफोनके रिकार्डोंकी सहायतासे हम मनचाहा गाना या वार्ता सुननेमें समर्थ हैं, उसी तरह जब चाहेंगे और जिस चित्रको चाहेंगे, उसका रिकार्ड मशीनपर चढ़ाकर देख लिया करेंगे। इतना ही नहीं, फोनोवीजनके भविष्यके बारेमें बड़ी-बड़ी आशाएँ की जा रही हैं। लोगोंका अनुमान है कि, वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब अन्धे मनुष्य पदार्थोंको, उनसे आनेवाले प्रकाशकी आवाजसे, पहचान लिया करेंगे! परन्तु अभी इसमें देर है!

बहुधा वैज्ञानिक लोग कहा करते हैं कि, जनताको नये विचारों और आविष्कारोंके महत्त्वको समझनेमें बहुत देर लग जाती है। जनताका सहयोग प्राप्त करने तकमें कठिनाइयाँ पड़ती हैं। परन्तु दूरदर्शनका इतिहास कुछ और ही हाल बतलाता है। दूरदर्शनके बारेमें यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। पाश्चात्य जनताने दूरदर्शनको बहुत जल्दी अपना लिया है और वह उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ करने लगी है। १९०१ में जब मारकोनीने ऐटलांटिक महासागरके उस पार अँग्रेजीके एस (S) अक्षरको बेतारकी तरङ्गों द्वारा भेजा था, उस समय, उस ओर किसीने ध्यानतक नहीं दिया था, उससे आशाएँ करना तो बहुत दूरकी बात है। उस घटनाके पूरे बीस वर्ष बीत जानेपर सर्व-साधारण उस आविष्कारके महत्त्वको कुछ-कुछ समझ सके थे। निजी मकानोंमें रेडियो यन्त्र लगानेका नम्बर तो बहुत बादको आया था। अब ३३ वर्षोंके बाद कहीं जाकर रेडियोको अपना उचित स्थान प्राप्त हुआ है।

मि० बायर्डको ऐटलांटिक महासागरके उस पार दूरदर्शनका सन्देश भेजे हुए मुश्किलसे पाँच-छ वर्ष बीते हैं; परन्तु इंगलैंडके लोग अभीसे कहने लगे हैं कि, दूरदर्शन यन्त्रों द्वारा फुटबालके मशहूर मैच और अन्य खेलोंके दृश्य क्यों नहीं दिखाये जाते! वास्तवमें रेडियो और बेतारके तारकी तुलनामें दूरदर्शन यन्त्रोंने बड़ी तेजीसे उन्नति की है; और, अभी कुछ दिनोंतक यही रफ्तार बनी भी रहेगी।

अब धीरे-धीरे लोगोंकी समझमें दूरदर्शनका व्यावसायिक महत्त्व भी आने लगा है। कुछ मास पूर्व ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशनने, अपने यन्त्रोंकी सहायतासे, नवीनतम फैशनोंका प्रदर्शन किया था। उस प्रदर्शनको देखकर विज्ञापनके विशेषज्ञोंने कहा था कि, टेलीवीजनकी सहायतासे रेडियो द्वारा विज्ञापन करनेकी शक्तियाँ बहुत कुछ बढ़ जायँगी। रेडियो द्वारा अबतक जिन चीजोंका केवल वार्तिक वर्णन किया जा सकता है, उनके प्रतिबिम्ब दिखाये जा सकेंगे! इसके साथ ही बकोंको भेजे जानेवाले हस्ताक्षरकी सत्यताकी भी जाँच की जा सकेगी। बैंक मैनेजरको चेकके ऊपरके हस्ताक्षरमें जरा भी सन्देह होनेपर वह फौरन ही हस्ताक्षर करनेवालेको उसका प्रतिबिम्ब दिखलाकर उसकी सत्यताकी जाँच कर लेगा—वह व्यक्ति चाहे सेकड़ों कोसोंकी दूरीपर ही क्यों न हो!

अमेरिकामें दूरदर्शन यन्त्रोंके व्यावहारिक प्रयोगके इस भावी स्वरूपकी आशासे बहुतसे अधिकारियोंने अभीसे पुलिसके लिये कुछ विशेष लम्बाईकी तरङ्गें सुरक्षित करा ली हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि, दूरदर्शनसे पुलिसके काममें बड़ी सहायता मिलेगी। किसी भी सन्दिग्ध व्यक्ति अथवा उसकी तसवीरको दूरदर्शन यन्त्रके पर्देके सामने खड़ा करके बात-की-बातमें पुलिसके हेड क्वाटरको दिखाया जा सकेगा। अपराधियोंको जहाज, रेल अथवा वायुयान, सभी जगह सहूलियतके साथ पकड़ा जा सकेगा।

विदेशोंकी महत्त्वपूर्ण घटनाएं, घटित होनेके साथ ही, दूरदर्शनके पर्देपर देखी जा सकेंगी! हालमें ही लंडनके एक सिनेमा हालमें आयलंडकी सुप्रसिद्ध डर्बीकी घुड़दौड़का दृश्य दिखलाया गया था। उस प्रदर्शनको सब प्रकारसे पूर्ण तो नहीं बतलाया जा सकता; पर इतना अवश्य कहा जायगा कि, दूरदर्शनके पर्देपर दर्शकोंने अधिक सहूलियतसे और अधिक स्पष्ट दृश्य देखे। बहुतोंको डर्बीमें भीड़-भाड़के कारण उतना साफ दृश्य देखनेको भी नसीब न हुआ होगा। अब आशा की जाती है कि, भ्रान्तियाँ बहुत जल्द दूर हो जायँगी। अभी बहुतसी कठिनाइयोंका सामाना करना होगा; पर इन सबसे फुर्सत मिलते ही दूरदर्शनका अन्तारार्ष्ट्रिय महत्त्व बहुत बढ़ जायगा। टेलीवीजन यन्त्र रेडियोकी ही तरह लोकप्रिय हो जायँगे। आज कल रेडियो और ब्राडकास्टिंगके सिद्धान्तसे बिलकुल अनभिज्ञ लोग भी रेडियो सेट खरीदकर संसार-भरकी बातें सुन सकते हैं। इसी तरह वह भी दिन शीघ्र ही आयगा, जब कोई भी शौकीन व्यक्ति संसार-भरकी बातें सुननेके साथ-ही-साथ देश-देशान्तरोंकी घटनाओंको, उनके घटित होते समय ही, देख सकेगा!

कुछ लोग इससे भी आगे बढ़ रहे हैं। अभी जो यन्त्र बने हैं, उनसे केवल वक्ताको ही देखा जा सकता है; वक्ता अपने श्रोताको नहीं देख सकता। ऐसे यन्त्रोंकी बड़ी माँग थी, जिनसे श्रोता और वक्ता, दोनों ही एक दूसरेको देख सकें—वे चाहे कितनी ही अधिक दूरीपर क्यों न हों। वैज्ञानिकोंने इन यन्त्रोंके बनानेमें भी कामयाबी हासिल की है। कुछ महीने हुए यूरोपमें इन यन्त्रोंका उद्घाटन भी हो गया। इन यन्त्रोंका सर्वप्रथम व्यवहार करनेका सौभाग्य पेरिसको प्राप्त हुआ है। फ्रांसके व्यापार और व्यवसाय-विभागके मन्त्री मि० लुईगालिन और उनसे बातचीत करनेवाले एक मित्रने काफी दूरसे बात-चीत करते समय एक दूसरेके प्रतिबिम्ब भी देखे—मानों बातचीत करते समय वे दोनों पास-ही-

पास, आमने-सामने, बैठे हों ! टेलीफोनसे बात-चीत करना तो बहुत पुरानी बात हो गयी। अब दूरदर्शनके इस नवीन स्वरूपसे बातें करनेके साथ ही साथ एक दूसरेको देखा भी जाने लगा है! जिस परदेपर प्रतिबिम्ब देख पड़ते थे, वह १० इंच लम्बा और ५ इंच चौड़ा था। चेहरेकी प्रायः सभी रेखाएं स्पष्ट थीं। नाक्टोवीजन यन्त्रोंके व्यवहारसे काफी मदद मिली थी। साधारणतया नेत्रोंको न देख पड़नेवाली परा लाल किरणोंका व्यवहार किया गया था। बातचीत करनेके लिये एक मामूली टेलीफोन काममें लाया गया था।

अब फ्रांसके लायंस और पेरिस नगरोंमें ये यन्त्र स्थायी रूपसे लगा दिये गये हैं। पेरिसवाले लायंसके निवासियोंसे बातचीत करते समय उन्हें देख सकेंगे! लायंस-वासियोंको पेरिसवालोंकी सूरतें दिखाई देंगी। इन दोनों नगरोंमें २५० मीलका फासला है। यह दूरदर्शनका बिलकुल नया स्वरूप है। यदि यह प्रायोगिक अवस्थाको पार करके व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त कर सका, तो टेलीवीजन यन्त्रोंका उपयोग और भी अधिक बढ़ जायगा। जहाँ असंख्य मनुष्योंको यह यन्त्र दैवी विभूतिसे मालूम होंगे, कुछ लोग ऐसे भी होंगे, जिन्हें इन यन्त्रोंका इस्तेमाल बहुत अखर जायगा।

टेलीवीजनकी उन्नतिके लिये इंगलैंडमें टेली-वीजनके प्रेमियोंने एक टेलीवीजन सोसाइटी बनायी है। इस सोसाइटीकी ओरसे प्रति वर्ष टेलीवीजन यन्त्रोंकी नुमाइश होती है; और, नवीनतम यन्त्रोंका प्रदर्शन किया जाता है। हालमें ही सोसाइटीके अधि-कारियोंने चतुर्थ वार्षिक प्रदर्शनी की था। उसे देख-कर विशेषज्ञ लोग इस नतीजेपर पहुँचे थे कि, यद्यपि यन्त्रोंमें काफी उन्नति होती जा रही है; फिर भी उन्हें लोकप्रिय रूप देने एवम् प्रतिबिम्बोंसे जनताको सन्तुष्ट करनेमें अभी काफी देर लगेगी।

जर्मनीका डाक-विभाग भी इन यन्त्रोंकी उन्न-तिमें बड़ी दिलचस्पी ले रहा है। अभी बहुत छोटे आकारके दृश्य देख पड़ते हैं। जर्मनीवाले इनका आकार बढ़ानेकी कोशिश कर रहे हैं। वहाँवालोंका अनुमान है कि, आगामी साल दो-सालमें इस काममें पूर्ण सफलता मिल जायगी; और, उसके दो-तीन साल बाद सुलभ और सस्ते दूरदर्शन यन्त्र तैयार होने लगेंगे। फिर लोगोंका और अधिक सिनेमा जानेकी जरूरत न पड़ेगी। दूरदर्शन यन्त्रसे घर बैठे सिनेमाके सब दृश्य देख लिये जाया करेंगे।

इस समय यूरोपमें ३५००० के लगभग दूरदर्शन यन्त्र काममें लाये जा रहे हैं; परन्तु इन यन्त्रोंको अभी मध्यम श्रेणीके लोग नहीं खरीद सकते। केवल कुछ धनी आदमी ही अपने मनोविनोदका साधन बना सकते हैं। अभी उन्हें जन-साधारण तक पहुँचने में काफी समय लगेगा; परन्तु चार-पाँच सालसे अधिक नहीं! भारतमें इन यन्त्रोंका प्रवेश कब होगा, यह तो भारतके भाग्य-विधाता ही जानें।

कर्णपट-विज्ञान

श्रीयुत भृगुनाथनारायण सिंह एम० एस-सी०

विश्वके वे सब स्थान, जो शून्य प्रतीत होते हैं, 'ईथर' नामके एक असाधारण पदार्थसे ओत-प्रोत हैं। इस पदार्थ का अस्तित्व प्रत्यक्ष-सिद्ध नहीं है; किन्तु यदि इसका अस्तित्व नहीं माना जाय, तो बहुतसे वैज्ञानिक जटिल प्रश्न हल नहीं हो सकते; इसलिये इसका अस्तित्व माना गया है।

जलकी तरङ्गोंसे पाठक परिचित होंगे ही। हवामें भी तरङ्गें उत्पन्न होती हैं; और, ये ही हवाकी तरङ्गें जब हमारे कानोंके परदोंसे टकराती हैं, तब "शब्द"का संवेदन उत्पन्न होता है। जल और वायुकी भाँति ईथरमें भी भिन्न-भिन्न लम्बाइयोंवाली तरङ्गें उत्पन्न होती हैं। इन सभी तरङ्गोंकी गति शून्यमें प्रायः १८६००० मील प्रति सेकिंड है। इन तरङ्गोंके साथ विद्युत् और चुम्बकका घना सम्बन्ध है। इसी कारण इनको विद्युच्चुम्बकीय तरङ्ग (Electro-Magnetic Waves) कहते हैं।

तरङ्गकी गतिको तरङ्ग-दैर्घ्य (Wave-length) से भाग देनेपर जो भागफल आता है, उसे उस तरङ्गकी आवृत्ति (frequency) कहते हैं। तरङ्ग-दैर्घ्य और आवृत्तिके अतिरिक्त तरङ्गोंका निर्देश उनकी तरङ्ग-संख्यासे भी किया जाता है। एक सेंटीमीटर लम्बाईमें जितनी तरङ्ग आ सकें, वे ही उन तरङ्गोंकी तरङ्ग-संख्या (Wave number) होंगी। यह स्पष्ट है कि, तरङ्गका तरङ्ग-दैर्घ्य जितना अधिक होता जायगा, तरङ्ग-संख्या और आवृत्ति उतनी ही कम होती जायगी। तरङ्गका तरङ्ग-दैर्घ्य सेंटीमीटरमें न लिखकर ऐंगस्ट्राम इकाई (Angstrom Unit) में लिखते हैं। १०००००००० ऐंगस्ट्राम एक सेंटीमीटरके बराबर होता है।

ईथरकी भिन्न-भिन्न तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें, जब पदार्थोंसे संघर्ष होनेपर, भिन्न-भिन्न प्रकारके विकार उत्पन्न करती हैं। ऐसी तरङ्गें, जिनका तरङ्ग-दैर्घ्य ४००० ऐंगस्ट्राम और ८००० ऐंगस्ट्रामके बीच है, जब हमारी आँखोंपर पड़ती हैं, तब प्रकाशका संवेदन उत्पन्न होता है। यदि तरङ्ग-दैर्घ्य ४००० ऐं० के लगभग हो, तो कासनी (Violet) रंगके प्रकाशकी संवेदना उत्पन्न होती है और यदि ८००० ऐं० के लगभग हो, तो लाल रंगके प्रकाशकी ऐं० ८००० और ४००० ऐं० के बीचकी तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें दूसरे भिन्न भिन्न रंगोंकी संवेदना उत्पन्न करती हैं।

ऐसी तरङ्गें, जिनका तरङ्ग-दैर्घ्य ८००० ऐं० से अधिक है, तापवाहिका होती हैं। ये आँखोंपर पड़नेपर प्रकाशकी संवेदना तो उत्पन्न नहीं करतीं; परन्तु किसी भी जड़ पदार्थपर पड़नेपर उसके तापक्रम (Temperature)को बढ़ा देती हैं। सूर्यका ताप पृथ्वीपर उन्हीं तापवाहिका तरङ्गों द्वारा आता है। इन तरङ्गोंको "उपरक्त" (Intra Red) के नामसे भी पुकारते हैं। जिन तरङ्गोंका तरङ्ग-दैर्घ्य १०^८ ऐं० अर्थात् १० सेंटीमीटरसे भी अधिक होता है, उनको 'हर्जियन तरङ्ग' (Herzian Waves) कहते हैं। इन्हीं तरङ्गोंकी सहायतासे बे-तार (Wireless) की खबर, गाना, स्पीच आदि इतनी तीव्र गतिसे, एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजे जाते हैं।

४००० ऐं० से कम तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गोंको नीललोहितोत्तर (Ultra-Viloet) कहते हैं। इनका विशेष गुण यह है कि, ये रासायनिक परिवर्त्तन करनेकी विशेष शक्ति रखती हैं; और, इसी कारण, फोटोग्राफी पट्टपर

और तरङ्गोंकी अपेक्षा, शीघ्र प्रभाव पहुँचाती हैं। नीललोहितोत्तर तरङ्गोंसे भी कम लम्बाईवाली तरङ्गें क्रमशः एक्स-किरण, गामा किरण और कासमिक किरणके नामोंसे पुकारी जाती हैं। एक्स किरणें नीललोहितोत्तर तरङ्गोंकी भाँति फोटोग्राफी पट्टपर शीघ्र प्रभाव पहुँचानेवाली होती हैं; परन्तु भेदनेकी शक्ति, उनकी अपेक्षा, अधिक रखती हैं।

गामा किरण एक्स–किरणसे भी अधिक भेदनेवाली तरङ्ग होती है। इन सबसे अधिक भेदकारिणी किरण कासमिक किरण है।
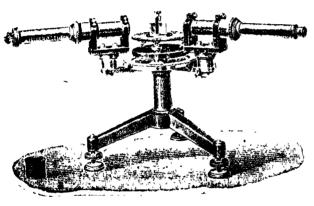
वर्णपटदर्शक यन्त्र

हर्जियन तरङ्गोंको छोड़कर ईथरकी बाकी तरङ्गोंका अध्ययन ही वर्त्तमान वर्णपट-विज्ञान (Spectroscopy) का विषय है। इन तरङ्गोंके उत्पत्ति-स्थान अणुओं (molecules) और परमाणुओं (atoms) के भिन्न-भिन्न भाग हैं। ये अणु और परमाणु इतने छोटे होते हैं कि, अति सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों (Microscopes) की सहायतासे भी इनको देखना असम्भव है। इस कारण इन तरङ्गोंकी उत्पत्ति कैसे और क्यों होती है, यह प्रत्यक्ष रूपसे जानना सम्भव नहीं। ऐसी अवस्थामें भिन्न-भिन्न पदार्थोंसे, उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमेंसे, निकली हुई तरङ्गोंकी परीक्षा करके ही हम तरङ्गोंकी उत्पत्तिकी विधिके विषयमें अनुमान लगा सकते हैं। साथ-ही-साथ अणुओं और परमाणुओंकी आभ्यन्तरिक रचना (Inner Structure) के विषयमें भी, इसी प्रकारके अध्ययन और खोजसे, कुछ जानना सम्भव हो सकता है। वास्तवमें इस विषयमें हमारा वर्त्तमान ज्ञान जो कुछ भी है, उसका मुख्य श्रेय इसी शास्त्रको प्राप्त है।

इस शास्त्रको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक प्रयोगात्मक (Experimental) और दूसरा मीमांसात्मक (Theoretical)। ईथरकी इन तरङ्गोंकी परीक्षाके लिये भिन्न-भिन्न प्रकारके यन्त्रोंकी आवश्यकता होती है। ये यन्त्र बड़े सूक्ष्मग्राही और अधिक मूल्यके होते हैं। इन यन्त्रोंकी सहायतासे ईथर तरङ्ग उत्पन्न करनेवाले जितने प्राकृतिक (Natural) उद्गम (Sources) हैं, उन सभीकी तरङ्गोंकी परीक्षा की जाती है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीपर जितने प्रकारके ईथर तरङ्ग उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं, उनसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें ईथर तरङ्गें उत्पन्न करके उनकी भी परीक्षा की जाती है। यह काम अभीतक जारी है। विद्युत् और चुम्बकीय क्षेत्रोंका, इन तरङ्गोंपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी खोज करना भी प्रयोगात्मक भागका एक प्रधान कार्य है।

प्रयोगात्मक अनुसन्धानके परिणाम-स्वरूप जो-जो बातें मालूम होती हैं, उनकी सहायतासे वैज्ञानिक तरङ्गोंकी उत्पत्तिके ढंगकी कल्पना करते हैं; और, उन अणुओं और परमाणुओंकी (जिनसे इन तरङ्गोंकी उत्पत्ति होती है) भीतरी रचनाके विषयमें भी अपनी-अपनी राय कायम करते हैं।

इस शास्त्रकी विशेष उन्नति गत पचास वर्षोंके भीतर ही हुई है और मुख्यतः वर्त्तमान शताब्दीके आरम्भसे ही। पर इतने ही दिनोंके अनुसन्धानका इतिहास यदि थोड़ेमें

भी दिया जाय, तो एक खासी पोथी तैयार हो जायगी। इसलिये वर्त्तमान लेखमें, जो कुछ बातें अबतक मालूम हुई हैं, उनमें मुख्य-मुख्य बातोंका विवरण ही, अत्यन्त संक्षेपमें, दिया गया है। बहुतसी महत्त्वपूर्ण बातें इस कारण छोड़ दी गयी हैं कि, या तो वे विशेष ज्ञानके सम्बन्ध की (Technical) हैं या विना गणितकी सहायतासे नहीं समझी जा सकतीं।

सभी तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें किसी उद्गमसे उत्पन्न होनेपर, एक ही साथ, एक ही गतिमें, चलती हैं; इसलिये सबसे पहली आवश्यकता इस बातकी होती है कि, भिन्न-भिन्न तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें एक दूसरेसे अलग कर दी जायँ। यह कार्य वर्णपटदर्शक (Spectroscope) के द्वारा होता है। पर तरङ्गोंको उनके तरङ्ग-दैर्घ्यके अनुसार अलग-अलग कर देनेसे ही काम नहीं चलता। जैसा कि, कहा जा चुका है, ८००० ए०से ४००० ए०ं तककी तरङ्ग दैर्घ्यवाली तरङ्गोंके अतिरिक्त दूसरी-तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें दृष्टिगोचर नहीं होतीं; इसलिये उन तरङ्गोंके अनुसन्धानके लिये फोटोग्राफी पट्ट [Photographic Plates] की आवश्यकता पड़ती है। वर्णपट-दर्शकमें ऐसी व्यवस्था रहती है कि, भिन्न-भिन्न तरङ्गदैर्घ्यवाली तरङ्ग फोटोग्राफी पट (पट्ट) पर भिन्न-भिन्न स्थानोंपर पड़ती है; और, हर एक तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्ग अपने प्रतिनिधि-स्वरूप एक-एक रेखापटपर बना दी जाती है। फोटोग्राफी पटपर आये हुए इस प्रकारके चित्रको उद्गमका वर्णपट (Spectrum) कहते हैं। इसी वर्णपटकी सहायतासे तरङ्गोंका तरङ्ग दैर्घ्य (Wave length), तीव्रता (Intensity) आदिका पता लगाया जाता है। वास्तवमें दृष्टिगोचर तरङ्गोंका अनुसन्धान भी, इसी प्रकारके फोटोग्राफी पटपर आये हुए वर्णपटकी सहायतासे, किया जाता है।

तापवाहक होनेके कारण उपरक्त (Infra red) तरङ्गके अनुसन्धानका कार्य कभी-कभी फोटोग्राफी पटके स्थानपर सूक्ष्म तापमापक यन्त्रों (Sensitive Thermameters) की सहायतासे भी होता है। गामा और कासमिक किरणोंके तरङ्ग दैर्घ्यका माप उनकी भेदनकी शक्ति (Penetrating power) का पता लगा कर किया जाता है।

यों तो वर्णपट-दर्शक कई प्रकारके होते हैं; परन्तु उपरक्त दृष्टिगोचर प्रकाश (visible) और लोहितोत्तर (Ultra violet) के अनुसन्धानके लिये जो यन्त्र साधारणतः काममें लाये जाते हैं, उनमें मुख्य त्रिपार्श्व वर्णपट-दर्शक
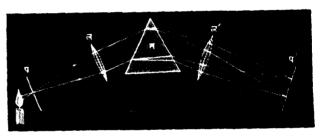
प्रकाशका वर्तन

(Prism Spectroscope) और विवर्तन ग्रेटिंग (Diffraction Grating Spectroscope) हैं। परन्तु इन भिन्न-भिन्न भागोंके अनुसन्धानके लिये इन यन्त्रोंमें भी परिवर्त्तनकी आवश्यकता पड़ती है।

त्रिपार्श्व-वर्णपटदर्शक यन्त्रमें उद्गम (Source) से आनेवाले प्रकाशके एक पतले किरण-पुञ्ज (Beam) को एक लेंस (Lens) की सहायतासे समानान्तर किरणोंमें परिवर्तित कर विज्ञान-वेत्ता त्रिपार्श्वपर डालते हैं। त्रिपार्श्वमें प्रवेश करनेपर भिन्न-भिन्न तरङ्गदैर्घ्यवाली किरणें अलग-अलग हो जाती हैं। त्रिपार्श्वसे निकलनेपर एक दूसरे लेंस (Lens) द्वारा भिन्न-भिन्न तरङ्ग-दैर्घ्यवाली किरणोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंपर एकत्र कर फोटोग्राफी पटपर डाला जाता है। यदि तरङ्गें दृष्टिगोचर होनेवाली हों, तो उनको समानान्तर रेखाके रूपमें, फोटोग्राफी पट हटा कर, एक अभिनेत्र लेंसकी सहायतासे हम देख सकते हैं।

विवर्त्तन ग्रेटिंग वर्णपट-दर्शकमें त्रिपार्श्वके स्थानपर काच या और किसी दूसरे पारदर्शक (Transparent) पदार्थका पालिश किया हुआ एक चौखूँटा टुकड़ा रहता है। इस टुकड़ेपर (जो डेढ़ या दो इंच लम्बा होता है) बहुत बड़ी सख्यामें (१०००० से ४०० ०) समानान्तर रेखाएँ खींची रहती हैं। किसी-किसी विवर्त्तन ग्रेटिंगमें तो एक नतोदर दर्पण (Concave Miror)पर ही इस प्रकारकी रेखाएँ खींची रहती हैं; और, इस प्रकारके वर्णपटदर्शक यन्त्रोंमें लेंसकी सहायताके विना ही बड़े स्पष्ट वर्णपट आते हैं। इस प्रकारके यन्त्रको नतोदर ग्रेटिंग कहते हैं।

जो त्रिपार्श्व यन्त्र नीललोहितोत्तर वर्णपटके लिये बनते हैं, उनके त्रिपार्श्व और लेंस काचके बदले कार्टज (Quartz) नामके पारदर्शक पदार्थके बने रहते हैं। इसी प्रकार उपरक्त वर्णपट लानेवाले यन्त्रोंके त्रिपार्श्व लेंस राक साल्ट (Rock Solt) नामक एक दूसरे पारदर्शक पदार्थ के बने रहते हैं। इसका कारण यह है कि, काच नीललोहितोत्तर और उपरक्त तरङ्गोंका शोषण कर लेता है।

एक्स-किरणकी तरङ्गोंका अनुसन्धान जिस वर्णपट-दर्शकसे होता है, वह बिलकुल दूसरे ही प्रकारका होता है।

वर्णपटकी रेखाओंकी तीव्रता (intensity) का नाप माइक्रोफोटोमीटर (MicroPhotometer) नामक यन्त्रकी सहायतासे किया जाता है।

वैज्ञानिकोंको जब यह बात ज्ञात हो गयी कि, अणुओं और परमाणुओंकी भीतरी बनावटका रहस्योद्‌घाटन, उनसे उत्पन्न तरङ्गोंके द्वारा, होना सम्भव है, तब इस बातकी आवश्यकता पड़ी कि, भिन्न-भिन्न जड़ पदार्थोंके अणुओं और परमाणुओंसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें तरङ्ग उत्पन्न कर उनका निरीक्षण किया जाय। तापक्रम (Temperature) बढ़ानेसे सभी जड़ पदार्थ, घन और द्रव अवस्थामें, प्रज्वलित हो जा सकते हैं; परन्तु उनसे उत्पन्न तरङ्गोंका वर्णपट अविच्छिन्न (Continuous) रहता है। इस प्रकारके वर्णपटसे अणुओं और परमाणुओंकी भीतरी बनावटके विषयमें क्या, तरङ्गोंके विषयमें भी, कुछ निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं। भिन्न-भिन्न जड पदार्थोंके अविच्छिन्न वर्णपटमें कोई विशेष अन्तर भी नहीं मालूम पड़ता। पर इस अविच्छिन्न वर्णपटका एक उपयोग यह है कि, वर्णपटके भिन्न-भिन्न भागोंकी तीव्रताका नाप लेकर मूलके तापक्रमका अन्दाजा लगाया जा सकता है। इस रीतिसे ऐसे प्रज्वलित मूलोंके तापक्रमका (जिनका तापक्रम साधारण तापमापक यन्त्रोंसे नापना सम्भव नहीं अथवा जिनकेपास पहुँचना ही सम्भव नहीं) पता लगाया गया है।

परन्तु अविच्छिन्न वर्णपटका और कोई दूसरा उपयोग नहीं है। जड़ पदार्थ, जब गैस अवस्थामें प्रज्वलित होते हैं, तब उनसे उत्पन्न तरङ्गोंका वर्णपट रेखामय वर्णपट (Line Spectrum) होता है। गैस, चाहे वह किसी मूल पदार्थकी हो या किसी यौगिक पदार्थ (Compound) की, जबतक आणविक अवस्था (Molecular State) में रहती है, उसके वर्णपटमें रेखाओंके कई एक समूह रहते हैं। प्रत्येक समूहमें रेखाएँ इतनी पास-पास रहती हैं कि, साधारण वर्णपटदर्शकसे आनेवाले वर्णपटोंमें एक गंडासा मालूम पड़ती हैं। परन्तु जब गैस परमाणविक अवस्था (Atomic State) में परिवर्त्तित हो जाती है, तब रेखाएँ स्पष्ट और दूर-दूर मालूम पड़ती हैं। इस प्रकारके वर्णपटको परमाणविक वर्णपट (Atomic Spectra) भी कहते हैं। परमाणविक वर्णपट केवल मूल पदार्थों (Elements) का ही होता है। इस प्रकारके वर्णपटको लानेके लिये मूल पदार्थको परमाणविक अवस्थामें परिवर्त्तित कर उनसे तरङ्गोंको उत्पन्न करना पड़ता है।

कुछ मूल पदार्थ (सोडियम आदि) ऐसे हैं, जो केवल अग्निशिखामें गरम करनेसे ही परमाणविक अवस्थामें परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु अधिकांश मूल पदार्थोंके लिये

यह बात लागू नहीं । मूल पदार्थोंको परमाणविक अवस्था-में परिवर्तित करनेके लिये विद्युत्‌की आवश्यकता पड़ती है। जो मूल पदार्थ घन अवस्थामें रहते हैं, उनके दो टुकड़ोंके बीचमें विद्युत्-सञ्चार करनेपर आर्क (Arc) उत्पन्न होता है। विद्युत्-वेगमें घन पदार्थके कण परमाणुओंमें परिवर्तित हो जाते हैं और उनसे जो प्रकाश उत्पन्न आते हैं। इनको द्वितीय स्फुलिङ्ग वर्णपट (Second Spark Spectrum) और तृतीय स्फुलिङ्ग वर्णपट (Third Spark Spectrum) के नामोंसे पुकारते हैं।

यौगिक और मूल तत्त्वोंको आणविक अवस्थामें परि-वर्त्तन करनेका कार्य उतना कठिन नहीं है। यह कार्य भी ताप और विद्युत्‌की सहायतासे होता है। परन्तु विद्युत्‌का

परमाणविक वर्णपट— ताँबेके स्फुलिङ्ग वर्णपट (Spark Spectrum) का एक भाग

होता है, उसका वर्णपट मूल पदार्थका "परमाण-विक वर्णपट" होता है। जो मूल पदार्थ गैसके रूपमें रहते हैं, उनको किसी पारदर्शक पदार्थकी नलीमें कम दबावपर भर दिया जाता है। इस नलीके दोनों सिरोंपर धातुके दो टुकड़े जड़े रहते हैं। इन्हीं टुकड़ोंके बीचमें विद्युत्-सञ्चार करनेपर गैस प्रज्वलित (Luminous) हो जाती है और इस प्रकाशका वर्णपट गैसका परमाणविक वर्णपट होता है। इसको आर्क या वोल्ट विद्युत्-प्रकाश वर्णपट कहते हैं। भिन्न-भिन्न मूल पदार्थोंके "परमाणविक वर्णपट" भिन्न-भिन्न होते हैं। पहले वैज्ञानिकोंकी यह धारणा थी कि, प्रत्येक मूल पदार्थका परमाणविक वर्णपट एक ही होता है; परन्तु पीछेसे यह बात मालूम हुई कि, धातुके टुकड़ोंके बीच या गैससे दोलित धारा-विद्युत् दौड़ानेसे जो प्रकाश उत्पन्न होता है, उसका वर्णपट भी रेखाओंवाला होता वेग कम होना चाहिये। यदि पदार्थ गैस हो, तो उसका दबाव भी कम नहीं होना चाहिये—जैसा कि, गैसको परमाणविक अवस्थामें परिवर्त्तन करनेके समय रहना आवश्यक है।

अणुओं और परमाणुओंसे उत्पन्न इन वर्णपटोंके अतिरिक्त एक दूसरे प्रकारका वर्णपट होता है, जिसको शोषण वर्णपट (Absorption Spectrum) कहते हैं। यदि अविच्छिन्न वर्णपटवाले प्रकाशको किसी पदार्थके अणुओं या परमाणुओंकी एक तरङ्गसे भेजा जाय, तो अविच्छिन्न वर्णपटमें बहुत सी काली-काली रेखाएँ दिखलाई पड़ने लगती हैं। वर्णपटपर ये रेखाएं उन्हीं स्थानोंपर होती हैं, जिन स्थानोंपर उस पदार्थके अणुओं या परमा-णुओंसे उत्पन्न चमकती रेखाएँ आती हैं। इससे यह

लोहेके शोषण वर्णपट (Absorption Spectrum) का एक भाग

है। परन्तु इसकी रेखाएँ, उस मूल पदार्थके आर्ककी रेखाओंसे, भिन्न होती हैं। इस वर्णपटको स्फुलिङ्ग-वर्णपट (Spark Spectrum) कहते हैं। विद्युत्-वेग और भी बढ़ानेसे तीसरी और चौथी रेखाओंके समूह वर्णपटपर सिद्ध होता है कि, जो अणु या परमाणु जिन-जिन तरङ्गोंको उत्तेजित अवस्थामें उत्पन्न करते हैं, साधारण [Normal] अवस्थामें उन्हींका शोषण भी कर लेते हैं। सूर्यके वायुमण्डलमें बहुतसे मूल पदार्थ

[Elements] गैसके रूपमें रहते हैं। इनका तापक्रम, सूर्यके धरातलके तापक्रमकी अपेक्षा, कम रहता है। इसलिये सूर्यसे आनेवाले प्रकाशसे इन मूल पदार्थोंके परमाणु उन तरङ्गोंका शोषण कर लेते हैं, जिन तरङ्गोंको वे स्वयं उत्पन्न करते हैं। इसी कारण सूर्यके वर्णपटमें इन मूल पदार्थोंकी चमकती रेखाओंके स्थानपर काली-काली रेखाएँ दिखलाई पड़ती हैं। न रेखाओंको "फ्रानहोफर" रेखाएँ कहते हैं।

नाइट्रोजन वर्णपटका एक भाग

शोषण वर्णपट [Absorption Spectrum] का अनुसन्धान भी बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। जो पदार्थ साधारण तापक्रमपर, गैस अवस्थामें, रहते हैं, उनका शोषण वर्णपट तो अधिक सुगमतासे आ जाता है; परन्तु जो घन या द्रव अवस्थामें रहते हैं, उनको गैसकी अवस्थामें लानेके लिये अधिक तापक्रमकी आवश्यकता पड़ती है।

ईथर तरङ्गोंपर चुम्बकीय और विद्युत्-क्षेत्रका क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी परीक्षा, तरङ्ग उत्पन्न करनेवाले मूलको लेंसके आकारवाले विद्युत्-चुम्बक (Electro Magnet)के ध्रुवोंके बीचमें रखकर, करते हैं। यह विद्युत्-चुम्बक लोहेका होता है, जिसकी चारो तरफ पृथग्न्यस्त तार (Insulated Wire) लपेटा रहता है। तारसे विद्युत्की धारा दौड़ानेपर लोहेमें चुम्बककी शक्ति आ जाती है। इस प्रकारके चुम्बकके क्षेत्रमें मूलको रखनेसे उसके वर्णपटकी प्रत्येक रेखा, कई रेखाओंमें, विभक्त हो जाती है। रेखाओंपर चुम्बक-क्षेत्रके इस प्रभावका आविष्कार जीमन महोदयने किया था। इसी कारण इस प्रभावको जीमनका प्रभाव (Zeeman's Effect) कहते हैं। इन रेखाओंपर चुम्बकीय क्षेत्रकी भाँति विद्युत्-क्षेत्रका भी उसीसे मिलता-जुलता प्रभाव पड़ता है। इस प्रभावका आविष्कार प्रो० स्टार्क महोदयने किया था। इस कारण इस प्रभावको स्टार्कका प्रभाव (Stark's Effect) कहते हैं।

जिन भिन्न-भिन्न प्रयोगों (Experiments) का उल्लेख ऊपर किया गया है, वे सभी तरङ्गोंकी उत्पत्तिकी विधि और अणुओं तथा परमाणुओंकी बनावटपर प्रकाश डालते हैं। आणविक वर्णपटकी सहायतासे अणुओंकी बनावटका पता चलता है।

परन्तु आणविक वर्णपटपर अभीतक उतना काम नहीं हुआ है और यह विशेषकर रसायन-शास्त्रके लिये अधिक महत्त्वपूर्ण है। भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे अणुओंकी बनावट उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसलिये इस लेखमें परमाणविक तरङ्गोंकी उत्पत्तिकी विधि और उनकी बनावटके विषयमें जो बातें अबतक मालूम हो सकी हैं, उन्हींका यथासम्भव विवरण दिया जाता है। भिन्न भिन्न प्रयोगोंका क्या क्या निष्कर्ष निकलता है; और, उनसे वैज्ञानिक किस प्रकार उल्लिखित प्रश्नोंको, आंशिक रूपमें, हल करनेमें सफल हुए हैं, इसका वर्णन करना इस लेखमें सम्भव नहीं।

संसारमें प्रायः नब्बे मूल पदार्थ (तत्त्व) हैं। इनके परमाणु भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु इन भिन्न-भिन्न प्रकारके परमाणुओंकी रचना दो प्रकारकी विद्युत्-धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) परमाणुओंसे हुई है। प्रोटोन (Proton) का भार एलेक्ट्रनके भारसे प्रायः १८०० गुना अधिक होता है। हाइड्रोजन (Hydrogen) के परमाणु सब मूल पदार्थोंके परमाणुओंसे हलके होते हैं। यदि सब मूल पदार्थोंको उनकी बढ़ती मात्राके अनुसार पङ्क्ति-बद्ध कर दिया जाय, तो हाइड्रोजनसे लेकर उनका

जो नम्बर आता है, उसे उस मूल पदार्थका "परमाणु-क्रमाङ्क" (Atomic Number) कहते हैं।

हाइड्रोजन परमाणुके केन्द्रमें एक प्रोटोन रहता है। इसीकी चारो तरफ एक एलेक्ट्रन चक्कर काटता रहता है। इन विद्युत्-परमाणुओंका व्यास मूल पदार्थके परमाणुओंके व्यासके अनुपातमें बहुत ही कम रहता है; इस लिये इनका विशेष भाग खाली ही रहता है। प्रोटोन और एलेक्ट्रनके बीच एक दूसरेको अपनी तरफ खींचनेवाली विद्युत्-शक्ति रहती है। यही इन परमाणुओंको बिखरने नहीं देती।

हाइड्रोजनसे अधिक भारी मूल पदार्थ हीलियम (Helium) है। इसकी परमाणु-संख्या दो है। इसके केन्द्रमें चार प्रोटोन और दो एलेक्ट्रन रहते हैं। केन्द्रकी चारों तरफ दो एलेक्ट्रन चक्कर लगाया करते हैं। इस प्रकार हीलियमके परमाणुका भार हाइड्रोजनके परमाणुके भारसे प्रायः चारगुना अधिक होता है; क्योंकि प्रोटोनकी अपेक्षा एलेक्ट्रनका भार नहींके बराबर होता है।

किसी भी तत्त्वके परमाणुमें केन्द्र (Nucleus) की चारों तरफ चक्कर लगानेवाले एलेक्ट्रनकी संख्या उस मूल पदार्थके 'परमाणु-क्रमाङ्क'के बराबर होती है और परमाणुका भार मुख्यतः केन्द्रमें स्थित प्रोटोनके संयुक्त भारके बराबर होता है। प्रत्येक परमाणुमें प्रोटोन और एलेक्ट्रनकी संख्या बराबर रहती है। इसी कारण परमाणु "विद्युत् रहित" [Non-electrified] रहते हैं।

केन्द्रके बाहर जितनेमें एलेक्ट्रन चक्कर लगाते हैं या लगा सकते हैं, उनकी जगह और संख्या निर्दिष्ट रहती है। जब कोई एलेक्ट्रन अपने कक्षका परिवर्त्तन करता है, तब परमाणुकी शक्ति [Energy] में परिवर्त्तन होता है। यदि एलेक्ट्रन किसी बाहरी कक्ष [Outer Orbit] से किसी भीतरी कक्ष [Inner-Orbit] में आता है, तो परमाणुकी शक्तिमें ह्रास होता है और जब किसी भीतरी कक्षसे बाहरी कक्षमें जाता है, तब परमाणुकी शक्ति [Energy] में वृद्धि [Gain] होती है। शक्तिका ह्रास या वृद्धि जितने परिमाणमें होती है, वह उन कक्षोंपर अवलम्बित रहती है। जो परिवर्त्तनमें भाग लेती है, कक्षोंकी संख्या और स्थान निश्चित रहनेके कारण यह स्पष्ट है कि, जब कभी परमाणुकी शक्तिमें वृद्धि या ह्रास होता है, तब निश्चित परिमाणोंमें ही। जो परमाणु जितने भिन्न-भिन्न परिमाणोंमें शक्ति लाभ कर सकता है, उसकी शक्तिका ह्रास भी उन्हीं उन्हीं परिमाणोंमें हो सकता है।

आणविक वर्णपट—नाइट्रोजन-वर्णपट [Band Spectrum]का एक भाग। एक लेंसकी पास-पासकी रेखाएं। इस वर्णपटमें पास-पासकी रेखाएं साफ दृष्टिगोचर होती हैं।

परमाणुकी शक्तिमें जब कभी ह्रास होता है, तब शक्ति परमाणुमें ईथर-तरङ्गके रूपमें निकलती है; और, इस प्रकार उत्पन्न तरङ्गका तरङ्ग-दैर्घ्य शक्तिके परिमाणपर निर्भर रहता है। शक्ति जितने अधिक परिमाणमें निकलेगी, तरङ्गकी संख्या उतनी ही कम होगी। तरङ्ग-दैर्घ्य और शक्ति-परिमाणमें एक निश्चित सम्बन्ध है। इसी कारण किसी मूल वस्तुके परमाणुसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंका तरङ्ग-दैर्घ्य निश्चित रहता है।

परमाणुकी साधारण (Normal) अवस्थामें उसके भीतरी कक्ष ही एलेक्ट्रनों (Electrons) से भरे रहते हैं। इसलिये यदि परमाणुसे तरङ्ग उत्पन्न करना हो, तो यह आवश्यक है कि, किसी एलेक्ट्रनको (साधारणतः वह एलेक्ट्रन, जो सबसे बाहर हो) बाहरी कक्षोंमें पहुँचा

दिया जाय। उदाहरणके लिये हाइड्रोजन (Hydrogen) के परमाणुको लीजिये। हाइड्रोजनके परमाणुके केन्द्रमें केवल एक प्रोटोन (Proton) रहता है। मान लीजिये कि, इसके निर्दिष्ट कक्षोंके नाम क-कक्ष, ल-कक्ष, म कक्ष, न-कक्ष, अ-कक्ष आदि हैं। हाइड्रोजनमें केन्द्रके बाहर केवल एक ही एलेक्ट्रन रहता है। यह परमाणुकी साधारण अवस्था (Normal state) में क-कक्षमें चक्कर लगाता है। हाइड्रोजनके परमाणुसे तरङ्गोंको उत्पन्न करनेके लिये यह आवश्यक है कि, एलेक्ट्रनको बाहरी कक्षोंमें भेज दिया जाय। यदि यह म कक्षमें भेज दिया जाय, तो किसी भी भीतरी कक्षमें आनेपर, परमाणुकी शक्ति (Energy) में जो ह्रास होगा, वह तरङ्ग रूपमें परमाणुसे निकलेगा।

एकसे अधिक एलेक्ट्रन परमाणुसे बिलकुल अलग हो जाते हैं। ऐसा होनेसे परमाणुके निर्दिष्ट कक्षोंकी शक्तिमें कुछ परिवर्तन हो जाता है; और, इस अवस्थामें जो तरङ्गे परमाणुसे उत्पन्न होती हैं, वे साधारण परमाणुसे उत्पन्न तरङ्गोंसे सर्वथा भिन्न होती हैं। एक एलेक्ट्रनके निकल जानेपर परमाणुसे जो तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, उन्हीके वर्णपटको 'प्रथम स्फुलिङ्ग वर्णपट' कहते हैं। दो एलेक्ट्रनोंके निकल जानेपर जो वर्णपट आता है, उसे द्वितीय स्फुलिङ्ग वर्णपट' कहते हैं। इसी भाँति तीन और चार एलेक्ट्रनोंके निकल जानेपर तृतीय और चतुर्थ स्फुलिङ्ग वर्णपट आते हैं।

भिन्न भिन्न तरंग-दैर्ध्यवाली तरंगोंके साथ भिन्न-भिन्न परिमाणमें शक्ति आबद्ध रहती है। इसलिये

लोहेके वोल्ट विद्युत्प्रकाश (Arc) वर्णपटका एक भाग। चुम्बकीय क्षेत्रमें उसी प्रकाशका वर्णपट। नीचे के वर्णपटमें रेखाओंके अधिक चौड़ी हो जानेका कारण यह है कि, प्रत्येक रेखा दो या दोसे अधिक रेखाओंमें विभक्त हो गयी है; परन्तु विभाजित रेखाएं पास-पास होनेके कारण एक ही प्रतीत होती हैं।

परन्तु किसी भी परमाणुमें एलेक्ट्रन बाहरी कक्षोंमें भेजनेके लिये शक्ति (Energy) की आवश्यकता पड़ती है। जिन परमाणुओंमें सबसे बाहरवाले एलेक्ट्रनका बन्धन ढीला रहता है, उसको बाहरी कक्षोंमें भेजनेके लिये ताप-शक्ति द्वारा ही काम चल जाता है। इसी कारण सोडियम आदि मूल पदार्थोंके परमाणु केवल ताप द्वारा ही उत्तेजित (Excited) अवस्थामें पहुँच जाते हैं। परन्तु जिन मूल पदार्थोंके परमाणुओंमें सबसे बाहरवाले एलेक्ट्रन जकड़े रहते हैं, उनमें विद्युत्की सहायता लेनी पड़ती है। यह कार्य आर्क (Arc) में होता है। यदि विद्युत्की शक्ति अधिक तीव्र होती है, जैसा कि, विद्युत् स्फुलिङ्ग (Electric Spark) में होता है, एक या

यदि अविच्छिन्न वर्णपटवाले प्रकाशको किसी मूल पदार्थकी साधारण अवस्थामें स्थित परमाणुओंसे भेजा जाय, तो परमाणु उन्हीं तरंग-दैर्घ्यवाली तरंगोंकी शक्तिका सञ्चय कर सकेगा, जिन तरंग-दैर्घ्यवाली तरंगोंको वह स्वयम् उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता है। इस कारण अविच्छिन्न वर्णपटमें उन तरंग-दैर्घ्यवाली रेखाओंके स्थान खाली हो जाते हैं। इसी प्रकारके वर्णपटको शोषण वर्णपट (Absorption Spectrum) कहते हैं। सूर्यके अविच्छिन्न वर्णपटमें जो काली रेखाएँ दिखलाई पड़ती हैं, उसका कारण भी यही है।

जिन परमाणुओंमें एलेक्ट्रनकी संख्या अधिक रहती है, उनमें भिन्न-भिन्न एलेक्ट्रन भिन्न-भिन्न कक्षोंमें

रहते हैं। भीतरी कक्षोंवाले एलेक्ट्रन बाहरी कक्षोंवाले एलेक्ट्रनकी अपेक्षा स्वभावतः अधिक जकड़े हुए होते हैं। यदि किसी भीतरी कक्षवाले एलेक्ट्रनको बाहर निकाल दिया जाय, तो बाहरी कक्षवाले एलेक्ट्रन उसके स्थानपर जायँगे। इस प्रकारके कक्ष-परिवर्त्तनमें शक्तिका जो ह्रास होता है, उसका परिमाण अधिक होता है और यही एक्स-किरणोंकी तरङ्गोंके रूपमें परमाणुसे निकलती है।

गामा-किरणोंकी उत्पत्ति सभी मूल पदार्थोंसे नहीं होती। कुछ मूल पदार्थ ऐसे हैं, जिनके केन्द्रसे गामा-किरणके अतिरिक्त एलेक्ट्रन और केन्द्रके बाहर चक्कर लगानेवाले दो एलेक्ट्रनसे रहित हीलियमके परमाणुओंकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। केन्द्रकी शक्तिमें परिवर्त्तन होनेके फल-स्वरूप ही गामा-किरणोंकी उत्पत्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं; पर केन्द्रकी शक्तिमें परिवर्त्तन केवल गामा-किरणों द्वारा ही नहीं होता। केन्द्रमें इन गामा-तरङ्गोंकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है और केन्द्रकी भीतरी बनावट क्या है, इन प्रश्नोंपर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ा है; परन्तु स्थानाभावसे उसका उल्लेख यहाँ नहीं किया जायगा।

तत्त्वोंके अणु तत्त्वोंके दो या दोसे अधिक परमाणुओंसे, और यौगिक पदार्थके अणु भिन्न-भिन्न तत्त्वोंके परमाणुओंकी भिन्न-भिन्न संख्याओंसे, बने हुए होते हैं। इन अणुओंकी शक्तिका ह्रास भी निश्चित परिमाणोंमें ही होता है; और, इसी कारण आणविक वर्णपट भी रेखाओंवाला वर्णपट होता है। अणुकी शक्तिका परिवर्त्तन तीन कारणोंसे हो सकता है। इसी कारण आणविक वर्णपट अर्थात् गराडेदार वर्णपट अधिक जटिल होते हैं।

घन और द्रव अवस्थामें अणु इतने पास-पास हो जाते हैं कि, अणुओंकी शक्तिमें निर्दिष्ट परिमाणोंके स्थानपर सभी परिमाणोंमें परिवर्त्तन होने लगता है और सभी तरङ्ग-दैर्घ्यवाली तरङ्गें उत्पन्न होने लगती हैं। इसी कारण घन और द्रव पदार्थोंसे उत्पन्न प्रकाशका वर्णपट अविच्छिन्न रहता है।

जब कभी विद्युत् गतिशील होती है, तब चुम्बकीय क्षेत्रका प्रादुर्भाव होता है। परमाणुओंमें एलेक्ट्रन बराबर चक्कर लगाते ही रहते हैं; इस कारण परमाणुओंमें चुम्बकीय क्षेत्रका रहना स्वाभाविक ही है। इसी कारण परमाणुओंपर बाहरी चुम्बकीय क्षेत्रका प्रभाव पड़ता है। बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र (External Magnetic Field) परमाणुओंके निर्दिष्ट कक्षोंकी संख्याको बढ़ा देता है और वर्णपटमें प्रत्येक रेखाके स्थानपर दो या दोसे अधिक रेखाएँ दिखलाई पड़ने लगती हैं। चुम्बकीय क्षेत्रकी भाँति विद्युत्-क्षेत्रमें भी कक्षोंकी संख्या बढ़ जाती है और प्रत्येक रेखा विभाजित होकर बहुतसी रेखाओंमें परिणत हो जाती है।

परमाणुओंकी भीतरी बनावट किस प्रकारकी है, इसका आभास पाठकोंको मोटे तौरपर मिल गया होगा। कक्ष किस प्रकारके हैं, भिन्न-भिन्न मूल तत्त्वोंके परमाणुओंमें एलेक्ट्रन किन-किन कक्षोंमें चक्कर लगाते हैं, चुम्बकीय और विद्युत्-क्षेत्रमें कक्षोंकी संख्या क्यों बढ़ जाती है, इत्यादि प्रश्नोंपर भी बहुत प्रकाश पड़ा है। परन्तु वास्तवमें परमाणुकी भीतरी बनावटका चित्र अभी पूरा नहीं हुआ है।

वर्णपट-विज्ञान उल्लिखित महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रश्नोंपर प्रकाश डालनेके अतिरिक्त अन्य अनेक वैज्ञानिक प्रश्नोंको सुलझानेमें भी सहायक हुआ है। यह लिखा ही जा चुका है कि, आणविक वर्णपट रसायनशास्त्रके बड़े कामका है। इसके अतिरिक्त किसी यौगिक पदार्थके परमाणविक वर्णपटकी परीक्षा कर, यौगिक पदार्थ किन-किन मूल तत्त्वोंसे बना है, इसका पता, बड़ी सुगमतासे, लग सकता है। प्रत्येक मूल पदार्थकी रेखाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं; इसलिये यौगिक पदार्थके परमाणविक वर्णपटमें जिन-जिन मूल पदार्थों-

की रेखाएँ मौजूद रहती हैं, वे सब यौगिक पदार्थमें अवश्य रहेंगी। इस वर्णपट-विश्लेषण [Spectrum Analysis] की विशेषता यह है कि, कोई मूल पदार्थ कितने ही कम परिमाणमें क्यों न हो, उसकी रेखाएँ वर्णपटपर अवश्य आयँगी। रूबीडियम और सीजियम नामके दो तत्त्वोंका आविष्कार तो वर्णपट द्वारा ही हुआ है।

सूर्य और भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंसे आनेवाले प्रकाशका वर्णपट यदि परमाणविक हुआ, तो उसकी सहायतासे इस बातका पता लग जाता है कि, उनमें कौन-कौनसे तत्त्व हैं। यही नहीं, भिन्न-भिन्न रेखाओंकी तीव्रता [Intensity] आदिका पता लगाकर अब तो यह बतलाना भी सम्भव हो गया है कि, नक्षत्रोंका तापक्रम, दबाव [Pressure] आदि क्या हैं। इस सम्बन्धमें हमारे देशके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० मेघनाद साहाने बहुमूल्य कार्य किया है।

यदि कोई नक्षत्र पृथ्वीकी तरफ आ रहा हो, तो उसके वर्णपटकी रेखाएँ कम तरङ्ग-दैर्घ्यकी तरफ थोड़ा सरक जाती हैं; और, यदि नक्षत्र पृथ्वीसे दूर हट रहा हो, तो रेखाएँ अधिक तरङ्ग-दैर्घ्यकी तरफ सरक जाती हैं। यदि नक्षत्र पृथ्वीसे बराबर एक ही दूरीपर रहता हो, तो उसके वर्णपटकी रेखाएँ अपने साधारण स्थानपर ही रहती हैं। रेखाएँ कितना सरकती हैं, यह नक्षत्रकी गतिपर निर्भर है। इसलिये नक्षत्रके वर्णपटकी सहायतासे दृष्टिकी सीधमें नक्षत्रोंकी क्या गति है, इसका भी पता चल जाता है।

एक्स-किरण

श्रीयुत नन्दलाल सिंह एम० एस-सी०

सन् १८९५ ई० में जर्मन वैज्ञानिक रौंटगेन महाशयने एक्स-किरणका आविष्कार करके विज्ञान-संसारमें क्रान्ति पैदा कर दी। इस किरणने लकड़ी, चमड़ा, मांस इत्यादिकी बात तो दूर रहीं; लोहे, हड्डी इत्यादि ठोस पदार्थोंके अन्तस्तल देखनेकी भी शक्ति प्रदान कर दी। इस किरणके द्वारा शरीरके भीतरकी अवस्थाकी परीक्षा करके बहुतसे गुप्त रोगोंके वास्तविक रूपका भी पता लगाया जा सका है। यही नहीं, चर्म रोग जैसे रोगोंकी चिकित्सामें भी यह उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इस अद्भुत आविष्कारने वैज्ञानिकोंके लिये एक नवीन शक्ति और ज्ञानका भण्डार खोल दिया। जड़ पदार्थकी भीतरी बनावटके विषयमें अबतक जितना ज्ञान प्राप्त हो चुका था, वह अधूरा मालूम पड़ने लगा। इसको लेकर इंगलैंड और फ्रांसके वैज्ञानिकोंने तरह तरहके प्रयोग और अन्वेषण, "विकीर्ण जड़ पदार्थ" (Radiant Matter) के रूपके बारेमें, करना प्रारम्भ किया। उन्नीसवीं शताब्दीके समाप्त होते-होते वैज्ञानिकोंको उस मूल तत्त्वका ठीक पता लग गया, जिससे संसारके सारे जड़ पदार्थ रचे गये हैं।

संसारके बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण आविष्कार वैज्ञानिकोंके साधारण प्रयोगों द्वारा ही हुए हैं, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण एक्स-किरणका आविष्कार है। किसको यह विश्वास था कि, एक साधारण शून्य काचकी नलीमें विद्युत्का सञ्चार करनेसे ही ऐसी महत्त्वपूर्ण किरणका पता लगेगा। एक काचकी नलीमें विद्युत्का सञ्चार करनेसे क्या होता है, इसी बातके अन्वेषणमें करीब पचासों सालतक बहुतसे वैज्ञानिकोंने अपने जीवनका बहुत बड़ा भाग लगा दिया। पहले काचकी नलीके दोनों सिरोंपर धातुके टुकड़े जड़े गये। उन टुकड़ोंके बाहरी हिस्से एक बैटरीके दोनों ध्रुवोंसे जोड़ दिये गये। धातुके उस टुकड़े (जो बैटरीके

ऋणात्मक ध्रुवसे लगा हुआ था) का नाम कैथोड (ऋणद्वार) रखा गया; और, जो धनात्मक ध्रुवसे लगा हुआ था, वह एनोड (धनद्वार) कहलाया। अब एक पम्प द्वारा इस नलीसे जितनी हवा निकाली जा सकती थी, उतनी निकालकर उसमें विद्युत्का सञ्चार किया गया। विद्युत् बैटरीसे चलकर, धनद्वारसे नलीमें प्रवेश कर, ऋणद्वारसे बहिर्गत हो, पुनः बैटरीमें लौट जाती है। वे वर्षों तक इसी प्रयोगके निरीक्षणमें लगे रहे; परन्तु किसी भी महत्त्वपूर्ण बातका पता न चल सका। १८५८ ई० में प्लकर महाशयने एक ऐसे पम्पका आविष्कार किया, जिसके द्वारा नली अधिक अंशतक शून्य की जा सकी। ऐसी अवस्थामें नलीमें विद्युद् धाराका सञ्चार करनेसे एक नवीन किरणके प्रादुर्भावका पता, नलीके बाहरी तलपर तरह-तरहके रङ्गोंके प्रकट होनेसे, चला। इस किरणका नाम कैथोड किरण रखा गया; क्योंकि सन् १८६५ ई० में हिटार्फ महाशयने पता लगाया कि, यह किरण ऋणद्वारसे निकल कर धनद्वारकी ओर जाती है।

कैथोड (ऋणद्वार) पम्पकी नली एनोड (धनद्वार)

इस किरणके वास्तविक रूपके विषयमें अंग्रेज और जर्मन वैज्ञानिकोंमें बहुत दिनों तक वाद-विवाद होता रहा। अंग्रेज़ वैज्ञानिक विलियम क्रूक्सका मत था कि, कैथोड किरण ऋणविद्युत्से आविष्ट छोटे-छोटे जड़ कणोंका समूह है, जो कैथोड उसे निकलकर बड़ी तीव्र गतिसे एनोडको जाती है। जर्मन वैज्ञानिक हर्टज़ अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करनेकी चेष्टा कर रहे थे कि, कैथोड किरण विद्युत् तरङ्गसे बनी है। इसका समर्थन उन्हींके शिष्य लेनार्ड महोदयने, और-और तरहके प्रयोगों द्वारा, किया।

सन् १८९५ ई० में रौंटगन महाशयने लेनार्डके प्रदर्शित पथपर प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रयोगमें उसी वर्ष अकस्मात् उन्हें एक्स-किरण आविष्कार करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस आकस्मिक आविष्कारकी कहानी बड़ी ही मनोरञ्जक है। प्रो० रौंटगेन एक बन्द अन्धेरे कमरेमें कैथोड किरणपर प्रयोग कर रहे थे। पासमें उन्होंने उद्घाटित करनेके लिये फोटोग्राफीका एक प्लेट, काले कपड़ेसे खूब ढक कर, रखवा दिया था। उद्घाटित करनेके बाद जब उन्होंने उस प्लेटको तैयार करवाया, तब प्लेटपर जैसा चित्र आना चाहिये था, वैसा न आकर वह बिलकुल काला निकला। इसका मतलब यह था कि, या तो प्लेट पहलेसे ही खराब था या उद्घाटित करनेसे पहले या बादको ठीक ढका नहीं गया था। इसपर वे अपने सहायकोंपर बहुत रुष्ट हुए और एक दूसरा प्लेट अपने ही हाथमें, खूब सावधानीके साथ, उद्घाटित कर स्वयम् तैयार भी किया। प्लेटको पुनः काला पाकर आप झुँझलाये हुए फोटोग्राफरके पास पहुँचे और उसको भी ऊँची नीची सुनायी। उसने बिलकुल नये पैकेटसे एक प्लेट निकाल कर दिया। रौंटगनने उसी प्रयोगको फिर दुहराया। फिर भी प्लेट काला ही निकला। अब हर तरहसे हैरान होकर आप अपनी कैथोड किरणकी नलीके पास आकर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे कि, आखिर यह प्लेट काला क्योंकर हो जाता है! अन्तमें उन्होंने यह अनुमान किया कि, नलीसे शायद कोई ऐसी किरण निकलती हो, जो काच और काले कपड़ेको पार कर फोटोग्राफी प्लेटको काला कर देती है। संयोगवश पास ही एक प्रतिदीप्त परदा पड़ा था। इस बार उन्होंने नलीको ही काले कपड़ेसे ढककर प्रयोग प्रारम्भ किया। उन्होंने देखा कि, जब नली काम करने लगती है, तब ढकी

रहनेके कारण उसमेंसे कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती; परन्तु वह प्रतिदीप्त परदा चमक उठता है। वे परदेको नलीके पास लाकर उसकी चमक देखने लगे। अकस्मात् अपने हाथकी उँगलियोंकी हड्डियोंकी छाया परदेपर देखकर और भी घबराये। उस छायामें केवल हड्डियां थीं, मांस, खून तथा नसोंका पता ही नहीं था! धैर्य्य-पूर्वक विचार करते-करते वे इस निष्कर्षपर पहुँचे कि, एक अगोचर किरण नलीसे निकलती है, जो मांस, खून, लकड़ी इत्यादिको पार कर सकती है। इसका पता प्रतिदीप्त परदेकी चमक तथा फोटोग्राफी प्लेट द्वारा लग सकता है। इसके अन्य गुण न जान सकनेके कारण आपने इसका नाम "एक्स-किरण" रखा—अर्थात् ऐसी किरण, जिसके विषयमें कुछ भी जानकारी न हो!

इस तरह इस वाद-विवादमें एक्स-किरणका पता लग गया। अब जर्मन विज्ञानवेत्ताओंने अपने सिद्धान्तके समर्थनमें यह कहना प्रारम्भ किया कि, एक्स-किरण कैथोड किरणका वह सूक्ष्म भाग है, जो काच, कपड़े, खून, मांस इत्यादिको पार कर सकता है। उधर अंग्रेज वैज्ञानिक जर्मनोंके शोर गुलपर ध्यान न देकर क्रूक्सके ही सिद्धान्तपर डटे रहे। सर जे० जे० टाम्सन केवेंडिशकी प्रयोगशालामें धैर्य-पूर्वक ऋणद्वार-किरणके प्रयोगोंमें लगे रहे। उन्होंने १८९७ ई० में कैथोड नलीसे एक बहुत अच्छे पम्प द्वारा अधिक अंशमें हवा निकाल कर अधिक ऊँचे त्रिभवपर विद्युत्‌का सञ्चार करके स्पष्ट रूपसे दिखला दिया कि, किस भाँति कैथोड किरण नलीमें पैदा होती है और यही ठोस पदार्थपर पड़कर किस भाँति बिलकुल दूसरी प्रकारकी किरण, जिसे एक्स-किरण कहते हैं, पैदा करती है। कैथोड किरण ही एक्स-किरण नहीं है; बल्कि यह एक्स-किरणकी जननी है।

काचकी नलीमें हवाके बहुत ही कम रह जानेपर नलीमें सञ्चरित विद्युत् हवाके परमाणुओंको तोड़कर छोटे-छोटे कणोंमें विभाजित कर देती है। ये सूक्ष्मतम कण ऋणात्मक विद्युत्‌के परमाणु हैं। इन्हें इलेक्ट्रोन कहते हैं। नलीमें यदि हवाके स्थानमें कोई दूसरी गैस हो, तो उसके परमाणुओंसे भी बिल्कुल इसी प्रकारके एलेक्ट्रन निकलते हैं। ये एलेक्ट्रन संसारके सभी तत्त्वोंके परमाणुओंमें पाये गये हैं। इन्हींकी धारा नलीमें बड़ी ही तीव्र गतिके साथ ऋणद्वारसे धनद्वारकी ओर जाती है। इनकी गति कभी-कभी ६०० मील प्रति सेकिंडकी होती है। इस तरह कैथोड किरण ऋणात्मक विद्युत्-परमाणुओंकी धारा मात्र है। इस धारामें और विद्युत्‌की उस धारामें, जिसको हम दिन-रात उपयोगमें लाते हैं, बहुत कुछ समानता है। एक चुम्बकको पास लानेसे यह कैथोड किरण उसी भाँति विक्षिप्त हो जाती है, जिस भाँति विद्युत्-वाहक तार विक्षिप्त हो जाता है।

क्रूकर महोदयने नलीके काचपर जो तरह-तरहके रंग देखे थे, वे इन्हीं ऋणात्मिका कणिकाओंके धक्के लगनेपर काचके परमाणुओंसे पैदा होते हैं। इनके साथ ही साथ इसी भाँति एक्स-किरण भी थोड़ी मात्रामें पैदा होती रहती है। यह एक्स-किरण कैथोड किरणकी भाँति चुम्बक द्वारा विक्षिप्त नहीं होती। यह साधारण प्रकाशकी भाँति ईथर तरङ्ग है। इन तरङ्गोंकी लम्बाई प्रकाश-तरङ्गोंकी लम्बाईसे बहुत छोटी है, अन्यथा दोनोंमें कोई अन्तर नहीं। ईथरकी तरङ्गें हर तरहकी (छोटी और बड़ी) होती हैं। उन्हीं तरङ्गोंके आँखोंपर पड़नेसे प्रकाशका अनुभव होता है, जिनकी लम्बाई 3936×10^{-8} सम०से 7594×10^{-8} सम० है—इनसे बड़ी या छोटी लम्बाईवाली लहरोंसे नहीं। एक्स-किरणकी लम्बाई एक इंच के $\frac{1}{100000000}$ अर्थात् 254×10^{-10}सम० से भी कम होती है; इसीलिये यह अदृश्य किरण है। यह प्रकाशकी तरङ्गोंकी अपेक्षा ज्यादा ठोस पदार्थोंको भेदनेकी शक्ति रखती है। एक्स-किरणकी तरङ्गोंकी लम्बाई जितनी ही

छोटी होती है, उतनी ही वे अधिक भेदनेवाली होती हैं।

यों तो कैथोड किरणके धक्केसे नलीके काचसे कम भेदनेवाली एक्स-किरण पैदा होती ही रहती है; परन्तु यदि कैथोड-किरणके रास्तेमें किसी धातुका एक टुकड़ा रख दिया जाय, तो उससे एक्स-किरण अधिक मात्रामें पैदा होती है और अधिक भेदनेवाली भी होती है। धातुके टुकड़ेको टारजेट कहते हैं। धातु जितने ही अधिक परमाणुभार या अधिक क्रमाङ्ककी होगी, उतना ही अधिक भेदन करनेवाली किरण पैदा होगी। इसके अतिरिक्त नलीमें, जितने ही कम अंशमें, हवा रहेगी और विद्युत्-विभव जितना ही अधिक ऊँचा रहेगा, उतना ही अधिक भेदनेवाली किरण पैदा होगी। इन्हीं सबके अभावसे रौंटगेनके पूर्ववर्त्ती वैज्ञानिक एक्स-किरणका पता न लगा सके—यद्यपि कम भेदनेवाली किरण, थोड़ी बहुत मात्रामें, नलीके काचसे निकलती ही रहती थी। पर ज्यों ही रौंटगेन महाशय नलीकी हवा अधिक अंशमें निकाल सके और विद्युत् अधिक विभवमें प्रवाहित कर सके, त्यों ही नलीसे अधिक भेदनेवाली एक्स-किरण पैदा होने लगी और उसका असर काले कपड़ेसे लपेटे हुए फोटोके प्लेटपर और प्रतिदीप्त परदेपर मालूम पड़ने लगा। इस प्रकार रौंटगेन महाशयके लिये एक्स-किरणका आविष्कार सम्भव हुआ।
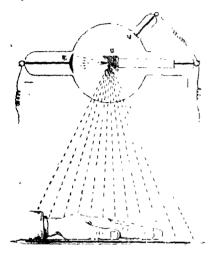
एक्स-किरण नली

ग—टंगस्टन धातुका टुकड़ा, जिसे टारजेट कहते हैं। क कैथोड। ख—एनोड

एक्स-किरणके यन्त्र आजकल प्रायः सभी बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं और अस्पतालोंमें रहते हैं। अस्पतालोंमें एक्स-किरणके यन्त्र विशेष कर तीव्र किरण पैदा करनेवाले होते हैं। इन तीव्र किरणों द्वारा डाक्टर लोग शरीरके किसी भी भागके भीतरकी वास्तविक दशाको देख सकते हैं। इसके पूर्व वे बहुतसे रोगोंका अनुमान केवल बाहरी लक्षणोंसे ही करते थे। राजयक्ष्मा आदि भीषण रोगोंका पता लगाना इस किरण द्वारा अत्यन्त सुगम हो गया है। अक्सर लोगोंकी अँतड़ी उलझ जाती है और उसमें गाँठें पड़ जाती हैं। स्थानका पता लगानेके लिये रोगीको कुछ ऐसा रासायनिक पदार्थ खिलाया जाता है, जिसका परमाणुभार अधिक हो जैसे बिस्मथके लवण, शीशेके लवण आदि। अधिक परमाणुभारके कारण एक्स किरण फोटोमें अंतड़ीके उस स्थानकी छाया घनी आती है, जहाँ लवण, उलझनके कारण, रुक जाता है।

टूटी हुई हड्डियोंका पता लगाना इस किरण द्वारा एक खेलसा हो गया है। एक्स-किरणके सामने टूटे अंगको रखकर आप प्रतिदीप्त परदेपर अपनी आँखोंसे देख सकते हैं कि, चोट कैसी है। फिर उसका उचित उपचार किया जा सकता है। शरीरमें छर्रे आदि घुस जानेपर अब आप उनके स्थानका पता ठीक-ठीक लगाकर डाक्टर द्वारा सुगमतासे निकलवा सकते हैं, अन्यथा छर्रेकी खोजमें शरीरका बहुतसा भाग कटवाना पड़ता। बच्चे अक्सर खेलते-खेलते धातुकी गोलियाँ, पैसे आदि निगल जाते हैं। इन्हीं किरणों द्वारा डाक्टर पेटमें उनके ठीक स्थानका पता लगाकर सरलतापूर्वक निकाल लेते हैं और बच्चोंकी जान बच जाती है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह किरण चर्म-रोगोंको दूर करनेमें बहुत लाभदायक सिद्ध

परन्तु अधिक देर तक शरीरपर पड़नेसे यह चमड़ेको जला देती है। इसका घाव किसी तरह भी अच्छा नहीं होता। यही नहीं, बल्कि नपुंसकता भी पैदा कर देती है। इन्हीं कारणोंसे एक्स-किरणपर सर्वदा काम करनेवाले मनुष्य अपने शरीरकी, विशेषकर आँखोंकी, रक्षा पूर्णतया करते हैं। एक्स-किरण यन्त्र मोटे शीशेकी चद्दरोंसे घेर दिया जाता है। इन चद्दरों-को पार करनेमें यह किरण असमर्थ है। प्रयोगके लिये किरण, एक छिद्र द्वारा, बाहर लायी जाती है।

कह सकते हैं। जिस भाँति प्रासादकी रचना नियमित रूपसे एकपर एक ईंट रखकर की जाती है, उसी भाँति मणिभकी रचना प्रकृति द्वारा इन्हीं एकाङ्कोंके नियमित क्रमसे हुई है। इस नियमित क्रमके कारण ही मणिभ समतल फलकोंसे घिरा रहता है, जिनसे प्रकाश परा-वर्तित होकर मणिभमें चमक पैदा करता है। एकाङ्कमें अणु तथा परमाणु, दोनों सम्मिलित रहते हैं। कुछ अणुओंके एक विशेष रूपसे सङ्गठित होनेसे यह एकाङ्क बनता है। फिर यही एकाङ्क आपसमें, एक नियमित
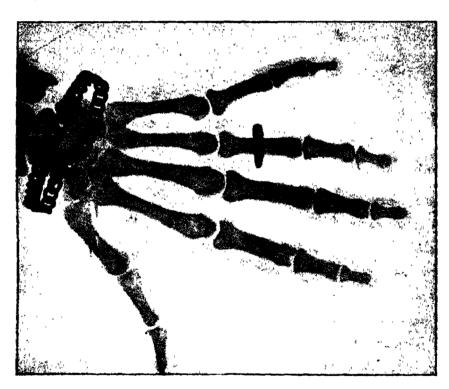
एक्स-किरण द्वारा हस्तास्थि-प्रदर्शन

एक्स-किरण द्वारा हम मणिभकी भीतरी बनावट का पता भली भाँति लगा सकते हैं। नमक, फिटकिरी आदि खादर पदार्थ मणिभ होते हैं। उनके बाह्याकार और चमकको देखकर यह अनुमान होता है कि, उनकी भीतरी रचना भी रमणीक होगी। मणिभ छोटे-छोटे, किन्तु पूर्ण एकाङ्कोंका समुदाय है। एकाङ्कको हम मणिभकी ईंट

रूपसे, एकके बाद जुटते जाते हैं। इस तरह आकार बढ़ जाता है। क्रमशः यह इतना बड़ा हो जाता है कि, पहले सूक्ष्मदर्शकसे और फिर आँखोंसे दिखाई पड़ने लगता है। यही बड़ा होनेपर मणिभ कहलाता है। अमणिभ पदार्थोंमें भी इसी भाँतिके एकाङ्क हैं। किसी कारणवश वे आपसमें सङ्गठित नहीं

होते। यदि होते भी हों, तो ऐसा बृहद् रूप धारण नहीं करते कि, हम उन्हें देख सकें। अब यह प्रश्न उठता है कि, एकाङ्कमें कितने अणु होते हैं? एकाङ्कमें कमसे कम उतने अणु रहते हैं, जितनेसे पदार्थके विशेष गुण एकाङ्कमें आ जायँ। स्फटिक शैलभस्म नामक रासायनिक पदार्थसे बना है, जिसके अणुमें एक शैलका परमाणु और दो आक्सीजनके परमाणु रहते हैं। इस प्रकारके तीन अणुओंके एकत्र होनेपर स्फटिकके गुण प्रदर्शित होते हैं। इसलिये स्फटिकके एकाङ्कमें कमसे कम तीन अणु विद्यमान रहते हैं।

मणिभमें यही पूर्ण एकाङ्क नियमित रूपसे तीन दिशाओंमें रखे हुए हैं, जो जालीदार आकार बनाते हैं। अब यदि प्रत्येक एकाङ्कमें एक बिन्दु लें (जैसे कि, कुछ परमाणुओंका केन्द्र) तो मणिभमें ऐसे ही अपरिमित बिन्दु नियमित क्रमसे मिल जायँगे। यदि इन बिन्दुओंसे रेखाएं खींची जायँ, तो एक बहुत ही अच्छी जाली तैयार हो जाती है, जो मणिभके किसी भी स्थानसे देखनेसे एक-सी प्रतीत होती है।

ऊपर कहा जा चुका है कि, एकाङ्कका सुव्यस्थित समूह बृहदाकार होनेपर ही मणिभ कहलाता है; क्योंकि कोई वस्तु तभी दिखलाई पड़ती है, जब कि, वह प्रकाशका परिक्षेपण कर सके। इसलिये वस्तुका आकार प्रकाशके तरङ्ग-दैर्घ्यसे बड़ा होना चाहिये। हम प्रकाशके तरङ्ग-दैर्घ्यसे कई गुनी छोटी वस्तुओंके अस्तित्वका अनुमान कर सकते हैं—इतनी छोटी कि, प्रकाशकी तरंग, सरलतापूर्वक, उनके बीच होकर पार कर जाय। अणु, परमाणु और एकाङ्क ऐसे ही सूक्ष्म पदार्थ हैं; अतएव साधारण प्रकाश द्वारा इनके बारेमें कुछ भी पता नहीं लगाया जा सकता।

सन् १६०७ ई० में वीन महोदयने पता लगाया कि, एक्स-किरणका तरङ्ग-दैर्घ्य लगभग ६.७५×१०-६ सम० के है अर्थात् इन किरणोंका तरङ्ग-दैर्घ्य साधारण प्रकाशके तरङ्ग-दैर्घ्यसे १०,००० गुना छोटा है। इस अनुसन्धानसे लोग बड़ी ही सुगमतासे एक्स-किरणके वास्तविक रूपको समझ सके। लोगोंकी समझमें अब आ गया कि, विवर्त्तन ग्रेटिंग द्वारा इन किरणोंका विश्लेषण, साधारण प्रकाशकी भांति, क्यों नहीं हो सकता? विवर्त्तन ग्रेटिंगकी रेखाओंकी आपसकी दूरी एक्स-किरणके तरंग-दैर्घ्यसे कई हजार गुनी ज्यादा है। पर वह साधारण प्रकाशके तरङ्ग-दैर्घ्यके बराबर होती है। एक्स-किरणके तरङ्ग-दैर्घ्यको इतना छोटा पाकर प्रो० वान लावेने १६११ ई० में अपने गणितके आधारपर यह मत प्रकट किया कि, मणिभ (जो नियमित क्रमसे जुटे हुए परमाणु-समूहसे बना है) एक्स-किरणके लिये एक प्राकृतिक विवर्त्तन ग्रेटिंगका काम कर सकता है। इसी आधारपर "फ्रेडरिक" और "नीपिंग" ने प्रयोग प्रारम्भ किया और सफल हुए। प्राकृतिक परमाणुके ग्रेटिंग द्वारा एक्स-किरणका विश्लेषण हो गया। एक्स-किरण और साधारण प्रकाशमें और भी अधिक समानता पायी गयी। एक बहुत बारीक छिद्र द्वारा एक्स-किरण लेकर मणिभपर गिरायी गयी। मणिभके ठीक पीछे फोटोग्राफीका एक प्लेट रखा गया। कुछ देरके बाद जब प्लेट धोया गया, तब मुख्य किरणका एक बड़ा धब्बा और उसकी चारों ओर कई छोटे-छोटे धब्बे, चित्रपटके सदृश, प्लेटपर अङ्कित दिखलाई पड़े। प्रत्येक धब्बा मुख्य किरणावलिमेंसे उन किरणोंकी छाप था, जो मणिभके आभ्यन्तरिक समतलमें स्थित परमाणु द्वारा इस दिशामें परावर्त्तित हुआ था।

एक्स-किरणका तरङ्ग-दैर्घ्य इतना सूक्ष्म होनेसे ही हमें एक नये प्रकारका प्रकाश मिला, जिससे हम अणु, परमाणु और मणिभ एकाङ्क जैसी सूक्ष्म वस्तुओंका वास्तविक रूप जान सकें। कठिनाई केवल इस बातकी है कि, साधारण प्रकाशकी भांति हमारे नेत्रोंपर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। इस कारण इसके प्रभावको जाननेके लिये नये-नये तरीके निकालने पड़े। अपने प्रथम प्रयोगमें फ्रेडरिक और नीपिंग

मणिभको प्रेषण ग्रेटिंग (Transmission Grating) की भाँति काममें लाये थे, जिसमें एक्स-किरण मणिभको पार कर गयी और मार्गमें इसका कुछ अंश, भिन्न भिन्न तलोंसे भिन्न-भिन्न दिशाओंमें, विक्षिप्त हो गया। प्रो० ब्रेगने प्रथम बार मणिभको परावर्त्तन ग्रेटिंग (Reflection Grating) की भाँति प्रयुक्त किया। एक्स-किरणके सम्बन्धमें परावर्त्तनका वह अर्थ नहीं है, जो साधारण प्रकाशके सम्बन्धमें समझा जाता है। साधारण प्रकाशका असर केवल बाहरकी सतहपर ही होता है; परन्तु एक्स-किरणका परावर्त्तन सतहके भीतरी भागसे होता है। कोई भी सतह एक्स-किरणके लिये चिकनी नहीं कही जा सकती। प्रो० विलियम एच० ब्रेग और प्रो० विलियम एल० ब्रेगने परमाणुओंके तलकी दूरी, एक्स-किरणके तरङ्ग-दैर्घ्य और किरणके विक्षेपकोणका सम्बन्ध एक सूत्रमें प्रकट किया, जिसके द्वारा यदि दो मालूम हों, तो तीसरा सरलतापूर्वक निकल आता है। प्रो० ब्रेगने एक यन्त्र बनाया, जिसे एक्स-किरणका वर्णपट-मापक कहते हैं। इस यन्त्रसे ये तीनों सरलतासे नापे जा सकते हैं। इस यन्त्रमें एक्स-किरण एक छिद्रसे निकलकर मणिभपर गिरती है। मणिभ एक अंशाङ्कित वृत्तमें रखा रहता है, जिसमें मणिभ-की सब तहें एक्स-किरणको परावर्त्तित करनेमें लग सकें। मणिभ धीमी गतिसे घुमाया जाता है। परावर्त्तित किरण एक छिद्र द्वारा अपनी नलीमें प्रवेश करती है। इस नलीमें ऐसी गैस भरी रहती है, जिसके परमाणु शीघ्र आनीत हो सकें। प्रायः मिथील ब्रोमाइड गैसका व्यवहार किया जाता है। नलीमें प्रवेश कर किरण गैसको आनीत कर देती है, जिससे विद्युत्‌का सञ्चार हो जाता है। इस विद्युत्-सञ्चारका परिमाण विद्युत्-दर्शकसे मापा जाता है। जितनी मात्रामें किरण प्रवेश करती है, उसीके अनुसार विद्युत्‌का भी सञ्चार होता है। इस भाँति विक्षिप्त किरणकी तीव्रता और दिशाका पता चलता है। फिर ब्रेगके सूत्रसे चाहे किरण-तरङ्गका तरङ्ग दैर्घ्य निकाल सकते हैं या मणिभकी तहोंकी दूरी। परन्तु दोमेंसे एक अवश्य मालूम रहना चाहिये।

भिन्न-भिन्न तत्त्वोंसे निकली हुई एक्स-किरणोंका तरङ्ग-दैर्घ्य भिन्न-भिन्न होता है। इनको माप कर ही माज़िली सब तत्त्वोंके पारस्परिक सम्बन्धको जान सके थे। इस ज्ञानसे माज़िलीने कुछ तत्त्वोंका आविष्कार किया और कुछ अज्ञात तत्त्वोंके गुण बताये, जो बादको सत्य निकले।

इस नयी रीतिके प्रयोगसे मणिभके रचना-सम्बन्धी अन्वेषणमें बड़ी ही सहायता मिली। इस विधिसे किसी भी स्थूल पदार्थका विश्लेषण पूर्णतया किया जा सकता है और पदार्थके सभी गुण—जैसे, कठोरता, चिपटापन, स्थितिस्थापकत्व, उपार्जन शक्ति इत्यादिकी व्याख्या, भली भाँति, परमाणुओंके भीतरी क्रमपर, की जा सकती है। हाँ, यह आवश्यक है कि, मणिभ बड़े आकारके हों, जिससे इनके साथ सारी क्रियाएँ हाथसे की जा सकें। साथ ही इन समतलोंसे एक्स-किरण परावर्त्तित करानेके लिये मणिभको लगातार धीमी गतिसे घुमानेकी भी आवश्यकता है। इन्हीं सब कठिनाइयोंको देखकर डिबाई, शेरर और हलने स्वतन्त्र रूपसे एक नयी विधिसे, अन्वेषण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने बताया कि, मणिभको दीर्घाकार होनेकी आवश्यकता ही नहीं है। हम मणिभका बारीक चूर्ण बना कर एक्स-किरणके मार्गमें रख सकते हैं। चूर्णमें छोटे-छोटे अनगिनत मणिभ और उनके भीतरके तल सब ओर व्याप्त रहते हैं; अतएव घुमानेकी कोई आवश्यकता नहीं। प्रयोगके लिये बहुत बारीक चूर्ण बनाकर और काचकी पतली नलीमें भरकर एक्स-किरणके मार्गमें रख दिया जाता है। उसके पीछे फोटोग्राफीका प्लेट रहता है। धुलनेपर प्लेटपर कई सकेन्द्रीय वृत्त दिखाई पड़ते हैं। इस प्रयोगमें ज्ञात तरंग-दैर्घ्यवाली एक-वर्ण किरण एक

बहुत बारीक छिद्र द्वारा काममें लायी जाती है ।

इन वृत्तोंकी व्याख्या बड़ी ही सरल है। हम जानते हैं कि, बारीक चूर्णमें परमाणु-तल सब दिशाओंमें व्याप्त हैं; अतएव कुछ ऐसे अवश्य होंगे, जो किरणको परावर्त्तित कर सकें। आपको अनुभव होगा कि, चाँदनी रातमें एक बड़े जल-समूहके तटपर खड़े होनेमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब आँखपर पड़ ही जाता है; क्योंकि हवाके झोंकेसे उठी हुई अनगिनत लहरियोंमेंसे कुछ ऐसी स्थितिमें अवश्य रहती हैं, जो चन्द्रमाकी किरणोंको परावर्त्तित कर आपके नेत्रोंपर डाल सकें। आप एक शङ्कुकी शिखाके बिन्दुका ध्यान कीजिये । इस बिन्दुपर थोड़े-थोड़े परमाणु-तल प्रत्येक दिशामें व्याप्त हैं । अब यदि इस शिखापर किरणें पड़ें, तो वे परावर्त्तित होकर शङ्कुके आधारकी चारों ओर वृत्ताकार पड़ेंगी और हमें प्लेटपर वृत्त दिखलाई पड़ेंगे। इन वृत्तों द्वारा छोटे छोटे परमाणु-तलकी स्थितिकी सूचना मिलती है । ऐसे अनगिनत तल होनेके कारण कई वृत्त प्लेटपर आ सकते हैं । प्रो० ब्रैगने थोड़ा अदल-बदल कर इस चूर्ण विधिको अपने आयनिक वर्णपट-मापकके योग्य बनाया । इस मिश्रित विधिसे मणिभ-अन्वेषणमें सुविधा हुई है ।

प्रो० मूलरने एक नया वर्णपट-मापक बनाया है, जिसमें एक्स-किरणका प्रभाव, फोटोग्राफी प्लेट, द्वारा देखा जाता है। इस यन्त्र द्वारा लावे, डिवाई, शेरर तथा हलके प्रयोग सुगमतासे किये जा सकते हैं। इस यन्त्रमें ब्रैगके प्रयोगके लिये भी उचित प्रबन्ध किया गया है अर्थात् मणिभको एक मोटरसे जितना चाहे, उतना घुमा सकते हैं।

रसायनमें एक्स-किरण कितनी उपयोगिनी हुई और हो रही है, इसका पता केवल दो एक उदाहरण, कार्बन रसायनसे, दे देनेसे ही चल जायगा । कार्बन सामान्य पदार्थ होते हुए भी बड़ा ही अद्भुत तत्त्व है । इसमें तरह-तरहके गुण पाये जाते हैं, जो कार्बनके परमाणुओंके क्रमपर निर्भर हैं। ग्रेफाइट और हीरा, दोनों कार्बनके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। उनमें ग्रेफाइट बहुत सस्ता और मुलायम होता है; अतएव चिकनाहट पैदा करनेके काममें लाया जाता है। इसके विपरीत, हीरा बहुत कम पाया जाता है। यह बहुमूल्य होता है और सारे पदार्थोंसे कड़ा होता है। इस कारण चिकनाहटके काममें नहीं आता। प्रो० ब्रैगने इन दोनोंकी भीतरी बनावटका पता, एक्स-किरण द्वारा, लगाकर इनके भिन्न भिन्न गुणोंकी व्याख्या, बड़ी ही सुन्दरतासे, की है। अपने वर्णपट-मापक यन्त्रके द्वारा कार्बनके परमाणुओंकी दूरीको आपने नापकर दोनोंके मणिभका प्रतिरूप तैयार कर डाला।

कई वर्षोंसे जीव-शास्त्र वेत्ता अणुओंकी बनावटका अनुमान करते रहे हैं । उन्होंने परमाणु-ग्रहण-शक्ति (Valency) द्वारा यह मालूम कर लिया था कि, बहुतसी वस्तुओंके अणु कार्बनके ६ परमाणुओंके वृत्ताकार-संयोगसे बने हुए हैं—जैसे, बेंज़ीन वृत्त इत्यादि। इसी भाँति बहुतसे पदार्थ एक जंजीरकी तरह एकके बाद दूसरे परमाणुसे मिलकर बने हुए हैं—जैसे, पराफीन इत्यादि । इन सब बातोंकी सार्थकता केवल एक्स-किरणसे ही प्रमाणित हो सकी । कार्बन रसायन वेत्ताओंने एक्स-किरण-वर्णपट-मापककी सहायतासे बहुतेरी वस्तुओंके प्रतिरूप तैयार कर लिये हैं । रूई और नकली रेशमके भीतरी तत्त्वमें [जिसे सेलुलोज (Cellulose) कहते हैं] पैठ कर दिखाया जा चुका है कि, ये भी मणिभाकार हैं और ६ कार्बन, १० हाइड्रोजन और ५ आक्सीजनके परमाणुओंसे इस मणिभका एकाङ्क बना हुआ है । एक्स-किरणके अन्वेषणसे यह भी ज्ञात हो गया है कि, यदि सेलुलोजपर किसी रसायनका प्रयोग किया जाय , तो इसके मणिभ बहुत छोटे हो जाते हैं अर्थात् यह अमणिभ

हो जाता है। आपको आश्चर्य होगा कि, इन्हीं किरणों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि, काच अमणिभ है, जिसको देखकर कोई नहीं कह सकता कि, यह अमणिभ होगा, जब कि रेशम और रूई मणिभ सिद्ध हुए हैं। किसे यह ज्ञात था कि, उन नमकके टुकड़ोंमें, जिन्हें हम प्रतिदिन काममें ला रहे हैं, सोडियम और क्लोरीनके परमाणु इस खूबीसे एकके बाद एक सजाये गये हैं? परन्तु इन्हीं किरणोंके द्वारा हमें इनकी सजावटका पूरा पूरा पता लग गया है। रबर अमणिभ है; परन्तु खींचनेपर मणिभाकार हो जाता है।

धातु-शोधन-विद्या (Metalleergy)के लिये तो एकुस-किरण मानों जादूका काम करती है। पहले पहल Dr. Anne Westgreen ने इस ओर दृष्टि-पात किया। असलमें यह अमेरिकाके हल साहबका शुरू किया हुआ कार्य था। साधारण तापपर स्वच्छ लोहेका एकाङ्क घनाकार है। घनके प्रत्येक कोने और केन्द्रपर परमाणु स्थित हैं। कोनेके आठ परमाणु निकटवर्ती आठ एकाङ्कोंमें सम्मिलित होनेसे एक एकाङ्कमें केवल दो ही परमाणु हैं। इस लोहेको 'अल्फा' लोहा कहते हैं। इसीको यदि १०००° श० तक गरम कर दिया जाय, तो इसकी प्रकृति ही बदल जाती है। इसे 'गामा' लोहा कहते हैं। इसकी भीतरी बनावट अल्फा लोहेसे भिन्न होती है। इसका भी एकाङ्क घनाकार अवश्य होता है और प्रत्येक कोनेपर परमाणु स्थित हैं; परन्तु घनके केन्द्रपर परमाणु न रहकर घनके फलकके केन्द्रपर स्थित हैं। इसके एकाङ्कमें चार परमाणु हैं। इन सब बातोंका अन्वेषण *एकुस-किरण-वर्णपट-मापक यन्त्रमें* ही हो सका है। इस भीतरी बनावटकी भिन्नताके कारण इनके गुणोंमें भी बहुत अन्तर पड़ गया है। कहीं एक प्रकारके लोहेकी आवश्यकता पड़ती है, कहीं दूसरे प्रकारकी। अतएव आप जान सकते हैं कि, एकुस-किरण कितनी उपयोगिनी है। इमारतोंके लिये लोहेके बड़े बड़े शहतीर ढाले जाते हैं। इनमें कहीं कुछ गड़बड़ी तो नहीं रह गयी, कहीं अन्य धातु तो मिश्रित नहीं है आदि बातोंका निपटारा तुरत, शहतीरका फोटो लेकर, हो जाता है। कैसी अद्भुत है यह किरण?

शुरू-शुरूमें लोगोंकी धारणा थी कि, एकुस-किरण रासायनिक विश्लेषणमें बहुत ही सहायता पहुँचायगी। अभीतक इस दिशामें लोगोंका ध्यान कम आकर्षित हुआ है—यद्यपि हल साहबको इसपर काम करनेसे बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो चुकी है। इनकी विधि बहुत सरल है। ये अपनी चूर्ण-रीतिका प्रयोग करते हैं। सिद्धान्त यह है कि, दो वस्तुओंके अणुका परिमाण एकसा नहीं होता, चाहे उनकी बनावट एकसी हो जाय। चूर्ण रीतिसे फोटो लेनेपर वस्तुमें जितने प्रकारके अणु होंगे, सब अपने-अपने अलग-अलग वृत्त देंगे। केन्द्रसे इनकी दूरी नापकर तथा प्लेटकी दूरी चूर्णसे जानकर और उनकी तीव्रताका पता लगा कर सारे अवयवोंका पता लगाया जा सकता है। इस विधिका प्रयोग, रासायनिक विश्लेषणमें, किसी त्रुटिके कारण, नहीं हो रहा है, सो बात नहीं है; बल्कि अन्य रासायनिक विश्लेषणकी विधियाँ इससे बहुत सरल हैं। बहुत आशा है कि, भविष्यमें व्यावसायिक लोग व्यापारकी उन्नतिके लिये इसका अधिक प्रयोग करेंगे।

द्रव पदार्थोंमें भी परमाणुओंकी सजावट इसी तरह, एक सुव्यवस्थित रूपसे, है। इस बातका पता हालमें ही काशी विश्वविद्यालयके डा० सी० एम० सोगानी-ने लगाया है। आजकल अमेरिकामें स्टिवर्ट महाशय बड़े जोरोंसे द्रव पदार्थोंपर प्रयोग कर रहे हैं। द्रव पदार्थोंके प्रयोग बिल्कुल उसी भाँति किये जाते हैं, जैसे चूर्ण किये हुए मणिभके अबरककी एक छोटी नली बन्द कर किरणके मार्गमें द्रवको रख दिया जाता है। उसके पीछे एक फोटोग्राफीका प्लेट रहता है। प्लेट धुलनेपर एक या दो सकेन्द्रीय वृत्त चूर्णरीतिके समान देखे जाते हैं। दोसे अधिक वृत्त अभीतक किसी भी द्रवमें नहीं पाये गये हैं।

तार और समुद्री तार

श्रीयुत नन्दलाल सिंह एम० एस-सी०

१—तार

कुछ दिन हुए मेरे एक मित्रने तार-प्रेषणके विषयमें एक बड़ी ही मनोरञ्जक कहानी सुनायी थी। चाहे कहानी सत्य हो या असत्य; परन्तु उसमें एक बड़ी ही गूढ़ बात निहित है।

किसी स्टेशनके पास दो अहीर अपनी भैंसें चरा रहे थे। साथमें एक पालतू कुत्ता भी था। ट्रेन आनेका समय हुआ। तार-घरमें घंटी बजी। तार बाबू दौड़ कर गये। कुछ कट-कट की आवाज़ बाहर वालोंको सुनाई पड़ी। तार बाबूने पुकार कर कहा—"ट्रेन आ रही है। लाइन-क्लियर दे दो।" पासमें दोनों अहीर यह तमाशा देख रहे थे। थोड़ी ही देरमें ट्रेन आकर चली गयी। बाबूने दूसरे स्टेशनपर तार द्वारा सूचना दी कि, "ट्रेन छोड़ दी गयी।" एक अहीर दूसरेसे बोला, "देखेय, सरकार कइसन अकिल निकाले बा। बाबूसे तार कुछ कहेसि और वो जान गयेन कि, गाड़ी आवति बा। तनिकई भरेमें आइ पहुँचो। धन्न ई गउरमेंट हअ।" दूसरेने कहा, "सचउ यार, बड़ अचरज क बात बा। तू त भाई, कइअउ बार कलकत्ता, बम्बई ग हयअ। जानथ, कइसे तरवा जाथ?" पहला बड़ा होशियार था। उसने कहा, "मानि ल कि, हमरे कुकुरा क देहिआँ खूब लम्बी होइ जाय—एतनी लम्बी कि, एहि टेसनसे वहि टेसन तक पहुँच जाइ। त जब हम ओकरे पोंछियापर एहि ओर मारब, त ऊ दूसरके टेसनियाँपर भूँकी। लेकिन कुकुर लम्बा कइसे कइ जाइ? त सरकारका किहेसि कि, एकठे तार लगाइ दिहेसि। टेसन बाबू धीरेसे तरवासे एहरिआँ कहि देथेनि। ऊ उहइ वहि टेसन बाबूसे जाइके कहि देथ।"

चाहे इस गल्पसे हमें पूरी तरह समझमें न आ सके कि, किस विधिसे तार द्वारा समाचार भेजा जाता है; किन्तु हमें एक बहुत बड़ी बातका ज्ञान हुआ कि, एक स्थानसे दूसरेको समाचार भेजनेके लिये किसी माध्यमकी अत्यन्त आवश्यकता है। माध्यम चाहे दूत हो, चाहे हवा, तार या सर्वव्यापक ईथर हो। दो मनुष्य जब आपसमें बातचीत करते है, तब एकके मुँहसे निकले हुए शब्द दूसरेके कर्ण-पटल पर, हवाकी लहरों द्वारा, ले जाये जाते हैं। दूत द्वारा पत्र भेजकर दूर-स्थित व्यक्ति बात-चीत कर लेते हैं। इसी भाँति तार-प्रेषणमें माध्यम खम्भोंपर लगे हुए तार है। आजकल लोग सुनकर घबरा जाते हैं कि, कैसे विना तारके अर्थात् विना माध्यमके समाचार, गाने, भाषण आदि एक स्थानसे दूसरेको भेजे जाते हैं; परन्तु यह उनका गलत विचार है। इस नवीन रीतिमें भी माध्यमका उपयोग किया जाता है। वह माध्यम सर्व-व्यापक ईथर है, जो दृष्टिगोचर नहीं होता।

जैसा कि, वर्णन किया जा चुका है, तार-

प्रेषणमें खम्भोंपर लगे हुए तार माध्यम हैं, विद्युत्-धाराके रूपमें समाचार एक स्थानसे दूसरे स्थानको, तार द्वारा भेजा जाता है। यह विद्युत्-धारा दूसरे स्थानपर एक चुम्बकीय सूईको इधर-उधर घुमाती है। इसीके सङ्केतसे समाचार मालूम होता है। आजकल स्काउट दूर खड़े होकर झंडियों द्वारा बातचीत कर लेते हैं। प्राचीन कालमें भी शत्रुओंके आक्रमणकी सूचना बत्तियों द्वारा दी जाती थी। एक बहुत ऊँची पहाड़ी पर एक मनुष्य रहता था। जब उसे दूरपर दुश्मनोंकी सेना दिखलाई पड़ती थी, तब वह नियत सङ्केतसे सूचना देता था कि, वैरी लोग इतनी दूरीपर हैं। आजकल भी ट्रेनके गार्ड साहब ड्राइवरको हरी या लाल बत्तीके सङ्केतसे ट्रेन चलाने या रोक देनेकी सूचना देते हैं। फलतः निश्चित सङ्केतों द्वारा दूरीसे भी बातचीत की जा सकती है।

सन् १८१६ ई० में हैंस क्रिश्चियन आरस्टेडने पता लगाया कि, एक चुम्बकीय सूईके निकट विद्युत्वाहक तार लानेसे सूई इधर-उधर विक्षिप्त हो जाती है। यदि धारा तारमें सूईके ऊपर दक्षिणी ध्रुवकी ओरसे उत्तरी ध्रुवकी ओर जाती है, तो उत्तरी ध्रुव पूरब दिशामें विक्षिप्त हो जाता है। यदि वही तार सूईके नीचे रखा जाय, तो उत्तरी ध्रुव पश्चिमकी ओर घूम जाता है। यदि धाराका दिक्परिवर्त्तन किया जाय, तो उत्तरी ध्रुव विपरीत दिशाओंमें विक्षिप्त हो जाता है। अब यदि तारके (चित्र-संख्या १ देखिये) स्थानपर सूईके चारों ओर एक तारका एक वेष्ठन रखकर विद्युत्-सञ्चार किया जाय, तो सूईका घुमाव और अधिक होगा।

विद्युत्-धारा और चुम्बकके बीचका यह सम्बन्ध बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। यह आविष्कार तार-यन्त्र-रचनाका प्रथम सोपान कहा जा सकता है। यह स्पष्ट है कि, यदि एक मनुष्यके पास एक वेष्ठन और एक चुम्बकीय
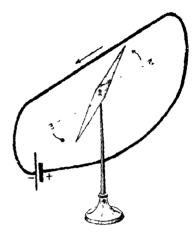
चित्र-संख्या १

सूई हो और दूसरेके पास बैटरी और दिक्-परिवर्त्तक कुंजी तथा यदि वेष्ठन और बैटरी तार द्वारा जुड़े हों, तो दूसरा व्यक्ति इच्छानुसार कुंजी द्वारा पहलेकी सूईको जिधर चाहे, उधर घुमा सकता है। यदि दोनोंमें पहलेसे ही निश्चित हो चुका है कि, सूईके किधरके घुमावका क्या अर्थ है, तो दूसरा बड़ी आसानीसे कुछ समाचार पहलेके पास भेज सकता है। सूई-तार प्रेषणमें इस वेष्ठन और चुम्बकके अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। इन्हींको छोटे सुडौल आकारका बना देते हैं। चुम्बक एक तकुएके बीचमें जड़कर एक लकड़ीके ऊर्ध्वाधार तख्तेके पीछे लगा दिया जाता है। इसकी चारों ओर तारका वेष्ठन रहता है। इस भाँति सूई दाहिने-बायें सरलता-पूर्वक घूम सकती है। चुम्बकका घुमाव देखनेके लिये इसीके समानान्तर एक दूसरी सूई, तकुएके दूसरे सिरे-

पर जड़ दी जाती है। यह सूई सामनेकी ओर रहती है और दाहिने-बायें घूमती हुई दिखलाई पड़ती है। यह तख्तेकी पीछेवाली असली सूईका अनुकरण करती है। विद्युत्-सञ्चार सङ्केतानुसार बैटरी और दिक्‌परिवर्त्तक कुंजी द्वारा किया जाता है। अंग्रेजी वर्णमालाके २६ अक्षरोंके लिये एक-एक सङ्केत निश्चित किया गया है। यह सङ्केत-सूची नीचे दी गयी है। बायीं ओरके विक्षेप को (|) चिह्नसे और दाहिनी ओरके विक्षेपको (/) चिह्नसे प्रदर्शित करना निश्चित किया गया है—

बायीं ओरके
विक्षेपका सङ्केत (|)

A |/　　H ||||　　O ///　　U ||/
B /|||　　I ||　　P |/|　　V |||/
C /|/|　　J |///　　Q //|/　　W |//
D /||　　K /|/　　R |/|　　X /||/
E |　　L |/||　　S |||　　Y /|//
F ||/|　　M //　　T /　　Z //||
G //|　　N /|

दाहिनी ओरके
विक्षेपका सङ्केत (/)

इन्हीं दो विक्षेपोंके मेलसे २६ अक्षरोंमें किसी-के लिये भी चार बारसे अधिक सूईको इधर उधर घुमानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जिन अक्षरोंका प्रयोग अधिक होता है, उनके लिये सूक्ष्म सङ्केत रखा गया है—
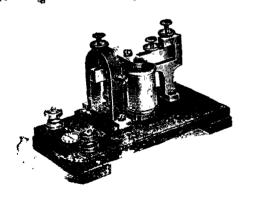
चित्र-संख्या २

जैसे E के लिये |, T के लिये / इत्यादि। इस भाँति विद्युद्-धारा द्वारा भेजे हुए सङ्केत बहुत सरलता-पूर्वक जाने जा सकते हैं।

सूई-तार-प्रेषणका प्रारम्भ इंगलैंडमें कूक्स और ह्वीटस्टोनने किया; लेकिन आविष्कारका श्रेय पेरिसके प्रो० ऐम्पियरको दिया जाता है, जिन्होंने इससे १५ वर्ष पहले इसी प्रकारकी योजना तैयारी करके समाचार भेजनेकी विधि बतलायी थी और जर्मनी आदि देशोंमें इसी आधार-पर प्रयोग भी किये गये थे।

इसी समय इससे भी सरल रीतिसे न्यूयार्कमें प्रयोग हो रहा था। इस समय तक लोगोंको ज्ञात हो चुका था कि, विद्युच्-चुम्बक द्वारा एक लौह-पट्ट इच्छानुसार आकर्षित तथा प्रतिसारित किया जा सकता है। अतएव इस नयी विधिमें लोहेका एक पट्ट एक कमानीसे ठीक विद्युच्-चुम्बकके ध्रुवोंपर लटकाया जाता है। जब विद्युच्-चुम्बकके तारमें विद्युत्-सञ्चार किया जाता है, तब यह पट्ट ध्रुवोंसे चिपक जाता है; परन्तु ज्यों ही विद्युद्-धाराका प्रवाह रोक दिया जाता है, लौह-पट्ट कमानी द्वारा उठा लिया जाता है। पट्ट लीवरके एक सिरेपर

जड़ा रहता है। लीवरका दूसरा सिरा दो अव-रोधों (Stops) के बीच डोलता-फिरता रहता है। जब लौह-पट्ट नीचेको आकर्षित होता है, तब लीवरका दूसरा हिस्सा नीचेके अवरोधसे टकरा कर 'कट' का शब्द करता है। (चित्र २ देखिये।) इसी ध्वनिपर अक्षरोंका सङ्केत नियत किया गया है। यदि लीवर अवरोधसे टकराकर झट ऊपर उठ जाता है, तो कटकी धीमी ध्वनि होती है और E अक्षरका बोध होता है। यदि विद्युत्-सञ्चार देरतक किया जाय, तो पट्ट देरतक चिपका रहता है और कटकी ध्वनि लम्बी होती है और T अक्षरका बोध होता है। यदि लीवर द्वारा लगातार कट-कटकी तीन ध्वनि हो, तो S अक्षरका बोध होता है इत्यादि। इस अमेरिकन विधिमें विद्युत्का दिक्परिवर्त्तन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं, केवल धाराको प्रवाहित करने और रोकनेकी
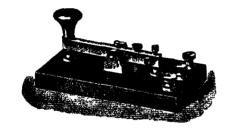
चित्र-संख्या ३

आवश्यकता है, जो डेमी नामक यन्त्र द्वारा किया जाता है। (चित्र-संख्या ३ देखिये।) इस विधिको अमेरिकन वैज्ञानिक हेनरीने सन् १८३१ ई० में बतलाया था; परन्तु इसका उपयोग सन् १८३७ ई० तक न हो सका, जबतक कि, उसी देशके वैज्ञानिक मोर्सने तार-प्रेषण-यन्त्रको इसके उपयुक्त न बनाया। ठिक प्रणालीको मोर्स ग्राहक कहते हैं। सङ्केत-सूचीमें धीमी ध्वनिको बिन्दुसे और लम्बी ध्वनिको रेखासे प्रदर्शित करना निश्चित किया गया है। यही सङ्केत-सूची मोर्स-लेखक-यन्त्रमें भी काम आती है।

A - —	J - — — —	S - - -
B — - - -	K — - —	T —
C — - — -	L - — - -	U - - —
D — - -	M — —	V - - - —
E -	N — -	W - — —
F - - — -	O — — —	X — - - —
G — — -	P - — — -	Y — - — —
H - - - -	Q — — - —	
I - -	R - — -	Z — — - -

मोर्स-ग्राहक यन्त्र प्रायः सब देशोंमे प्रयुक्त किया जाता है। इस विधिमे तथा सूई-तार-प्रेषणमें भेजनेवालोंको प्रत्येक शब्दके एक-एक अक्षरके लिये सङ्केत-सूचीके अनुसार डेमी द्वारा कम या अधिक विद्युत्-सञ्चार करके ग्राहक-यन्त्रमें धीमी या लम्बी ध्वनि पैदा करनी पड़ती है। अतएव स्पष्ट है कि, एक विशेषज्ञ द्वारा समाचार भेजनेमे भी मुँहसे कहनेकी अपेक्षा अधिक समय लगेगा। पता लगाया गया है कि, जितने समयमें १८० शब्दोंका उच्चारण किया जा सकता है, उतने ही समयमें केवल ३५ शब्दोंके सङ्केत मोर्स-ग्राहक-यन्त्र द्वारा भेजे जा सकते हैं। इस हिसाबसे दो घंटेके व्याख्यानको भेजनेके लिये पूरी रातकी आवश्यकता पड़ेगी। इस कारण नयी-नयी रीतियाँ निकाली गयी हैं, जिनसे दो घंटेका व्याख्यान आधे घंटेमें भेजा जा सकता है। व्याख्यान समाप्त होते ही संवाददाता व्याख्यानकी लिपिको तार-घरके कार्य-कर्ताओंको दे देता है। वे कागजकी पत्तीपर एक छेदनेवाली मशीनसे मोर्स-सङ्केत-सूचीके अनुसार छिद्र बना देते हैं।

अच्छे कर्मचारियों द्वारा सारे व्याख्यानका सङ्केत छिद्र तुरत तैयार कर लिया जाता है। इस कागजकी पत्तीको एक घटिका-यन्त्र द्वारा इस प्रकार प्रेषक यन्त्रमें चलाते हैं कि, डेमीका काम इन्हीं छिद्रों द्वारा चल जाता है अर्थात् सङ्केतानुसार तारमें विद्युत सञ्चार होता रहता है। अब जिस वेगसे समाचार भेजा जा रहा है, उसी वेगसे उसे ग्रहण भी करना आवश्यक है। अतएव ग्राहक यन्त्रमें भी उन्नति की गयी। नवीन ग्राहक-यन्त्रको मोर्स-लेखक-यन्त्र कहते हैं। लीवरके दूसरे सिरेपर एक पहिया लगा देते हैं, जो लीवरके गिरे रहनेपर एक बर्तनमें रखी हुई रोशनाईमें डूबा रहता है और लीवरके उठनेपर एक कागजको छू देता है, जिसपर निशान बन जाता है। यदि पहिया छूते ही गिर जाता है, तो एक बिन्दु बन जाता है। यदि कुछ देर तक छुए रहता है, तो एक छोटी रेखा बन जाती है। बिन्दु या रेखाका बनना 'कट' की धीमी या लम्बी ध्वनिके समान विद्युत्-सञ्चार की अवधिपर निर्भर है। बिन्दु और रेखाके संयोगसे जो मोर्स-सङ्केत सूची बनी है, उसीकी सहायतासे समाचार मालूम होता है।

तार चीनी मिट्टीके पृथग्न्यासकोंके द्वारा खम्भोंसे पृथग्न्यस्त रहते हैं। एक तारसे विद्युद्-धारा-प्रेषण-यन्त्रसे चलकर ग्राहक यन्त्रमें होता हुआ विहित कुण्डली बनाकर दूसरे तारसे पुनः प्रेषण-यन्त्रकी बैटरीमें लौट आता है। सन् १८३८ ई० में एक ऐसी घटना हुई, जिससे तार-प्रेषणका व्यय आधा हो गया। म्यूनिच की रेलवे लाइनपर तार लगाकर समाचार भेजना प्रारम्भ किया गया। संयोगवश एक तार टूट गया और उसके दोनों सिरे पृथ्वीको अच्छी तरह छूने लगे। तब भी विद्युद्-धारा-का प्रवाह दूसरे तारमें पूर्ववत् होता रहा और भेजा हुआ समाचार ग्राहक द्वारा मिलता रहा। इससे लोगोंने विचारा कि, एक ही तार पर्याप्त होगा; दूसरेका काम स्वयं पृथ्वी कर सकती है। बैटरीके ऋणात्मक ध्रुवमें एक छोटा तार जोड़ दिया जाता है, जिसका दूसरा सिरा पृथ्वीमें गाड़ दिया जाता है। धनात्मक ध्रुवको उस बड़े तारसे जोड़ देते हैं, जो बहुत दूर स्थित ग्राहकके वेष्टनके एक सिरेसे या विद्युच्चुम्बकके तारके एक सिरेसे जुटा रहता है। वेष्टन या विद्युच्चुम्बकके तारका दूसरा सिरा पृथ्वीमें गाड़ दिया जाता है। इस प्रकार विद्युत्-बैटरीसे चलकर तारसे ग्राहक-यन्त्रमें प्रवेश करती है। वहाँ चुम्बककी सूई या लौहपट्टवाले लीवरपर प्रभाव डालकर पृथ्वीमें चली जाती है। फिर पृथ्वीसे होती हुई बैटरीमें लौट आती है। (चित्र-संख्या ४ देखिये।)
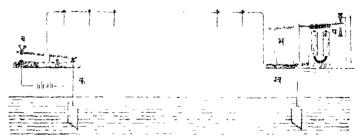
चित्र संख्या ४

क—डेमी, ख—ग्राहक-यन्त्र

दो स्थानोंकी दूरी चाहे कितनी ही हो, मोर्स-लेखक-यन्त्र द्वारा समाचार सरलतापूर्वक भेजा जा सकता है। यहाँ तक कि, पृथ्वीके

एक सिरेसे दूसरे सिरेतक तार बिछाकर समाचार भेज सकते ह। इतना अवश्य है कि, दूरी अधिक होनेपर बेटरीमें सेलोंकी संख्या अधिक करना पड़ता है, ताकि विद्युद्-वाहक बल अधिक हो जाय और लौह पट्ट आकर्षित हो सके। एक प्रकारसे और विद्युत्-शक्ति बढ़ायी जाती है। एक यन्त्र [जिसे पुनर्निवेशक (Relay) कहते हैं] ग्राहक यन्त्रोंमें लगा दिया जाता है। तारकी निर्बल धारा द्वारा एक बहुत हलके लौह-पट्टको आकर्षित कर एक बेटरीकी कुण्डलीको पूरा कर दिया जाता है। इसी कुण्डलीमें वह बड़ा चुम्बक रहता है, जिससे बड़ा लौह-पट्ट आकर्षित होता है। ध्वनि कर्ण-गोचर होती है या लेखक-यन्त्रमें स्पष्ट बिन्दु और रेखाएँ कागजपर पड़ जाता है। पुनर्निवेशकका काम यह है कि, जितना बार और जिस भाँति समाचार भेजनेवाला डमीको दबावे, उसी प्रकार लोह—पट्ट भी आकर्षित या प्रतिसारित होता रहे और बड़े चुम्बक तथा बेटरीकी कुण्डली पूर्ण हुआ करे या खुलती रहे। पुनर्निवेशक डमीका पूर्ण अनुकरण करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि, ग्राहक-यन्त्रमें ही प्रेषक भी लगा दिया गया है।

ऊपर जो विधियाँ दी गयी है, उनके द्वारा समाचार केवल एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजा जा सकता है—अर्थात् क से ख की ओर। यदि ख स्थानवाला व्यक्ति क को कुछ कहना चाहे, तो क्या करे? क्या उसे भी ठीक इसी प्रकारके दूसरे यन्त्र और तारकी आवश्यकता पड़ेगी? इसमें तो सन्देह ही नहीं कि, ख पर एक डेमी और क पर ग्राहक अवश्य ही रखना होगा; किन्तु दूसरे तार और बेटरीकी आवश्यकता न पड़ेगी। ऐसी युक्तियाँ निकाली जा चुकी है कि, एक ही तारसे ५—६ समाचार क से ख की ओर और ख से क को भेजे सकते है। ब्योरेवार सारी कार्यकियोंके बिना बताये यह समझाना नितान्त कठिन है कि, किस भाँति ५ या ६ समाचार एक ही तारसे इधर-उधर भेजे जा सकते हैं। स्थानाभावके कारण सबका वर्णन भी नहीं हो सकता।

अच्छा, मान लीजिये कि, दो समाचार इधर उधर भेजने है अर्थात् तारके प्रत्येक सिरे-पर दो व्यक्ति है। एक समाचार भेज रहा है और दूसरा उधरके भेजे हुए समाचारको ग्रहण कर रहा है। अब यदि एक स्थानका ग्राहक-यन्त्र उस स्थानकी विद्युद् धारासे बिलकुल सुरक्षित हो और केवल दूसरे स्थानसे आनेवाली धारासे प्रभावित हो सके, तो इसका मतलब यह होगा कि, प्रत्येक स्थानका प्रेषण यन्त्र समाचार भेज रहा है और ग्राहक-यन्त्र प्रत्येक स्थानपर उसी तारसे भेजे हुए समाचारको ग्रहण कर रहा है। बड़े-बड़े केन्द्रोंमे एक ही तारपर ८ आदमी काम करते है, चार इधर और चार उधर। उनमें प्रत्येक स्थानसे दो आदमी समाचार भेजते है और बाकी दो दूसरी ओर भेजे हुए समाचारको इस प्रकार ग्रहण करते हैं—तारमें थोड़ी विद्युद्-धारा सदैव बहती रहती है। इस धाराका प्रभाव किसी भी ग्राहक-यन्त्रपर नहीं पड़ता। परन्तु यदि धाराकी शक्तिमें कुछ अन्तर पड़ जाय, तो एक स्थानके दो ग्राहक-यन्त्रोंमेंसे एकपर असर पड़ता है और यदि विद्युत्-दिक्परिवर्त्तन कर दिया जाय, तो दूसरेपर असर पड़ता है। बहुतसे लोग घबराकर पूछ बैठते

हैं कि, दोनों दिशाओंमें जानेवाली धाराओंसे दो गाड़ियोंके समान मुठभेड़ क्यों नहीं हो जाती? शायद उन्हें विद्युत्-वेगका ध्यान नहीं। विद्युत्की गति लगभग प्रकाशकी गतिके बराबर होती है। अतएव समझना चाहिये कि, डेमी दबाते ही ग्राहकमें कट की ध्वनि होती है या मोर्स चिह्न अङ्कित हो जाता है।

एक दूसरी रीतिमें प्रत्येक प्रेषकको एक ही तार बारी-बारीसे मिलता है। इस पद्धतिमें तारके दोनों सिरोंपर एक-एक तुल्यकालिक मोटर रहती है, जिसके द्वारा तारका सम्बन्ध बारी-बारीसे प्रत्येक प्रेषण-यन्त्रसे किया जाता है और साथ-ही-साथ दूसरे सिरेको तुल्यकालिक मोटर द्वारा ग्राहक भी अपने प्रेषकके समकालीन तारका प्रयोग कर समाचार ग्रहण करते हैं। अतएव दोनों मोटरोका तुल्यकालिक होना बड़ा ही आवश्यक है। समाचार भेजने तथा ग्रहण करनेवाला कर्मचारी जितना ही कार्यकुशल होगा, उतनी ही शीघ्रतासे अपनी बारीपर समाचार भेज या ग्रहण कर सकेगा।

टेलीफोनिक ग्राहक-यन्त्रका प्रयोग कर एक दर्जन समाचार एक तारसे साथ ही भेजनेका प्रयत्न भी किया गया है।

ग्राहक-यन्त्रकी समाचार ग्रहण करनेकी शक्तिको बढ़ानेके लिये उसमें एक छोटा दर्पण लगा देते हैं और उस दर्पणका प्रकाश परावर्त्तित करा कर एक फोटोग्राफीके प्लेटपर डालते हैं। इस दर्पणकी गतिको प्रेषण-यन्त्रकी विद्युद्धारासे नियन्त्रित कर फोटोग्राफीके प्लेटपर प्रकाश द्वारा अक्षर अङ्कित कराते हैं। यदि आपकी समझमें न आया हो कि, ग्राहक-दर्पण किस भाँति समाचार को लिखता है, तो एक छोटा दर्पण हाथमें लेकर सूर्यके प्रकाशको परावर्त्तित कर एक दीवारपर डालिये। जो अक्षर लिखना हो, हाथकी क्रियासे दर्पणको हिला डुला कर, प्रकाश द्वारा दीवारपर लिखकर, ग्राहक दर्पणका अनुकरण कीजिये। फोटोग्राफीका प्लेट क्रमशः सरकाया कीजिये। इस भाँति समाचार सारे प्लेटपर अपने आप लिख जायगा। एक प्लेटके समाप्त हो जानेपर वह धो लिया जाता है और समाचार सरलतापूर्वक पढ़ा जा सकता है।

२—समुद्री तार

भूमिपर खम्भे गाड़कर दो स्थानोंके बीच तार फैलाया जा सकता है; परन्तु यदि दो स्थानोंके बीच बड़ा जल-समूह हो, तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। समुद्र कहीं-कहीं तीन-चार मील गहरे होते हैं। इतनी गहराईमें खम्भे नहीं गाड़े जा सकते; अतएव तारको समुद्रके पेंदेपर फैलाना पड़ता है। इस प्रकार पहली कठिनाई तारकी ही होती है; क्योंकि नंगे तारका उपयोग नहीं किया जा सकता। समुद्रका जल विद्युत्-वाहक होता है; इस कारण तारकी विद्युत् पानीसे होकर पृथ्वीमें चली जाती है। अतएव तारको पृथग्न्यस्त बनाना परमावश्यक है। कई मोटे मोटे ताँबेके तार, रस्सेकी भाँति, बट लिये जाते हैं। उनके ऊपर गट्टापर्चा या रबरका आवरण चढ़ा दिया जाता है; फिर उसके ऊपर लोहेके तारका एक पत्तर लपेट दिया जाता है। ऐसे तारको केबुल या समुद्री तार कहते हैं। आप देख सकते है कि, केबुल बनानेमें कितना व्यय पड़ता होगा। दूसरी कठिनाईका सामना केबुलको समुद्रके पेंदेपर फैलाते समय करना पड़ता है।

सबसे पहले डोवरसे कैले तक केबुल फैलानेका प्रयत्न किया गया था। पहले प्रयत्नमें लगभग ३ लाख रुपया भी व्यय हुआ और सफलता भी प्राप्त न हो सकी। दूसरी बार टी० आर० क्रेम्प्टन के उद्योगसे उतना ही चन्दा पुनः एकत्र किया गया। इस बार १८५० ई० में, केबुल डालनेमें, सफलता प्राप्त हुई। इसी प्रकार चार बार घोर प्रयत्न करनेपर इंगलैंड और आयर्लैंडके बीच केबुल डाला जा सका। अब लोगोंका साहस और बढ़ा। लोग इंगलैंड और अमेरिकाको ऐटलांटिक के आरपार केबुल डालकर, जोड़नेका विचार करने लगे। ७ लाख रुपया भी एकत्र कर लिया गया। २५०० मील लम्बा केबुल तैयार कर दो जहाजोंपर बिछाना प्रारम्भ किया गया। एक सिरा आयर्लैंडके किनारे डालकर जहाज आगे बढ़े। ५० मील जाते-जाते केबुल टूट गया। किनारेसे चलकर टूटे हुए सिरेका पता लगाया जा सका। फिर बाकी केबुलमें जोड़कर कार्य्य प्रारम्भ किया गया। ३८० मीलपर केबुल फिर टूटा। यहाँ समुद्रकी गहराई १२०० फीट थी। निराश होकर लोग लौट पड़े। किनारेपरसे करीब ५० मीलका केबुल मिल सका। बाकी सब लुप्त हो गया।

सन् १८५८ ई० में लगभग ३००० मील लम्बा केबुल लेकर दोनों जहाज फिर रवाना हुए। केबुल डालनेके लिये अच्छी-अच्छी मशीनें भी ले ली गयी थीं। बिछानेका कार्य्य महासागरके मध्यसे प्रारम्भ हुआ। यह निश्चय किया गया कि, एक जहाज बिछाते हुए इंगलैंड चला जाय और दूसरा अमेरिका। कार्य प्रारम्भ होते ही पुनः केबुल टूटा। जोड़कर दोनों जहाजोंने अपनी-अपनी ओर बिछाना फिर प्रारम्भ किया। इसी भाँति कई बार केबुल टूटा। अन्तमें निराश होकर जहाज पुनः लौट आये। केबुल कम्पनीके चेयरमैनने कार्य बन्द कर देनेकी आज्ञा दी। लेकिन लोगोंने एक बार और उद्योग करनेकी प्रार्थना की। पुनः दोनों जहाज लदकर मध्यमें गये। बड़ी ही होशियारीसे केबुल बिछाया जाने लगा। कई विपत्तियोंका सामना कर अन्तमें दोनों जहाज सन् १८५८ ई० के अगस्तमें किनारोंपर पहुँचे। धन्यवादकी सूचनाएँ दोनों ओरसे भेजी गयीं।

इस केबुलमें व्यय तथा श्रम, दोनों अधिक करने पड़े। पर इसका फल बहुत ही उपयोगी हुआ। इसके द्वारा पृथ्वीके दो बड़े बड़े खण्ड, जिनके बीच इतना बड़ा समुद्र था, जोड़ दिये गये। पहले यदि कोई सूचना कनाडाको भेजनी होती, तो कोई मेल जहाज खुलता, जिसमे अधिक व्यय और समय लगता; परन्तु केबुल लगनेसे समयके साथ—साथ व्ययमें भी बहुत कमी पड़ गयी। अभाग्यवश यह केबुल बहुत दिनोंतक न चल सका। थोड़े ही दिनोंके बाद जब विद्युद्धाराका सञ्चार किया गया, तो धारा दूसरे सिरेपर न पहुँच कर बीचमें ही क्षुप्त हो गयी। इस थोड़े ही कालमें लगभग सात आठ सौ समाचार इधर-उधर भेजे जा चुके थे; अतः लोगोंको केबुलका उपयोग ज्ञात हो चुका था। केबुल कम्पनीने ग्रेट ईस्टर्न नामक जहाजसे केबुल डालना प्रारम्भ किया। तीन चार बार ऐसी-ऐसी दुर्घटनाएँ हुईं कि, ग्रेट ईस्टर्नके कार्यकर्त्ता हताश हो गये। कार्य बन्द कर दिया गया। परन्तु कम्पनी दृढ़ बनी रही। बहुत धन एकत्र कर फिर कार्य शुरू किया गया। मनुष्य भी धन्य है! अदम्य उत्साह और दृढ़तासे सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इस बार सफ-

लता हुई । नया केबुल डाला गया; और साथ ही, खोया हुआ पुराना केबुल भी मिल गया।

अब तो सारे बड़े-बड़े देश (जो जलसमूहके द्वारा पृथक् किये हुए थे) केबुल द्वारा जोड़ दिये गये हैं। बम्बईमें केबुल ग्राहक-यन्त्रपर बैठा हुआ आदमी कनाडा, आस्ट्रेलियाके गेहूं इत्यादिका बाजार भाव जानकर क्षण मात्रमें अपने यहाँके बाजारोंको नियन्त्रित कर सकता है। आज केवल ऐटलांटिक महासागरमें ही लगभग ६०००० मील लम्बा केबुल बिछाया हुआ है। पृथ्वीके सब बड़े-बड़े सागर-तटस्थ व्यापारी नगर केबुल द्वारा नथे हुए हैं।

केबुलमें समाचार भेजनेके लिये तार प्रेषण-यन्त्रके ही समान यन्त्रका प्रयोग होता है; परन्तु तार-ग्राहक-यन्त्र तथा पुनर्निवेशक यन्त्र (जिनका प्रयोग स्थलके तारोंके साथ होता है) केबुलके साथ नहीं किये जा सकते। उनसे भी हलके तथा सुग्राहक यन्त्रोंका आविष्कार किया गया है। प्रो० विलियम टाम्सन (जिनको लार्ड केलविन भी कहते हैं) ने नया यन्त्र, सूई-तार ग्राहक यन्त्रके समान, बनाया। एक बहुत छोटी चुम्बककी सूईको टेकुएमें न लगा कर रेशमके बारीक धागेसे लटका दिया जाता है। इसी चुम्बकपर एक दर्पण चिपका दिया जाता है; चुम्बक और दर्पण, दोनोंका भार मिलाकर एक ग्रेनसे अधिक नहीं रहता। चुम्बक दर्पण-सहित उस वेष्ठनमें लटका दिया जाता है, जिसका एक सिरा केबुलसे जुटा रहता है और दूसरा पृथ्वीमें गाड़ दिया जाता है। दर्पणपर प्रकाश एक बारीक छिद्र द्वारा डाला जाता है। परावर्तित प्रकाश दीवार-पर या एक स्केलपर पड़ता है। केबुलकी सूक्ष्म तथा निर्बल विद्युद्-धारा चुम्बकको बहुत ही थोड़ा घुमाती है। यह थोड़ासा घुमाव परावर्तित प्रकाशको बहुत दूरतक विक्षिप्त कर देता है।

इन्हीं प्रतिभाशाली लार्ड केलविनने अपनी दूरदर्शिताको सङ्केत लिखनेके योग्य एक नये यन्त्रका आविष्कार किया। इसे साइफन लेखक-यन्त्र कहते हैं। यह दर्पण-यन्त्रसे भिन्न होते हुए भी उसी सिद्धान्तपर बनाया गया है। एक बारीक कांचकी नलीका एक सिरा रोशनाईमें डूबा रहता है और दूसरा सिरा एक कागजकी पत्तीको छुए रहता है। कागजकी पत्ती घड़ी-यन्त्र द्वारा एक गतिसे सरकती जाती है। यही कांचकी नली साइफनका काम करती है और चुम्बक द्वारा नियन्त्रित की जाती है। चुम्बकके साथ यह दाहिनी या बायीं ओर घूम जाती है और सङ्केत कागजपर बनते जाते हैं। केबुलकी सङ्केत-सूची सूई-तार-प्रेषणकी सङ्केत-सूचीके ही समान होती है।

केबुलमें तीसरी कठिनाई टूटे हुए स्थानका पता लगाना है। समुद्रकी पेंदी बराबर मैदानकी तरह नहीं होती; बल्कि पहाड़ोंकी तरह कहीं-कहीं उठी हुई और कहीं-कहीं घाटियोंके समान नीची होती है। मान लीजिये कि, पहाड़ी भूमिपर एक बेलूनसे तार बिछाया जा रहा है। यह कभी सम्भव नहीं कि, तार सर्वत्र भूमिको छूता रहे; बल्कि ऐसा होगा कि, एक पहाड़ीसे दूसरी तक तन जायगा। यही हाल केबुलका होता है। इस तनावके कारण भूकम्प या सामुद्रिक तूफानमें केबुल टूट जाता है। दूसरे, समुद्रकी बड़ी-बड़ी मछलियाँ [जो अपने भोजनके लिये इधर-उधर घूमा करती हैं] केबुलको खाद्य पदार्थ समझ कर काट कूट देती हैं। कई स्थानों-पर ह्वेल मछलीके चुभे हुए दाँत देखे गये हैं। तीसरे, समय पाकर रासायनिक क्रियासे तार स्वयं खराब हो जाता है। मरम्मत करनेके लिये छोटे-छोटे जहाज सदा प्रस्तुत रहते हैं। परन्तु इतने बड़े जल-समूहमें टूटे हुए स्थानका पता लगाना रेणुकामय

भूमिमें गिरी हुई सूईका पता लगानेसे कई गुना असाध्य है। केबुल कम्पनीको शायद प्रत्येक टूटे हुए स्थानका पता लगानेमें केबुल डालनेसे कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ता; पर भाग्यवश वैज्ञानिक रीतियों द्वारा यह भी सहज साध्य हो गया।

प्रत्येक तार या केबुलमें मोटाई तथा बनावट के अनुसार विद्युद् धाराके लिये निश्चित प्रतिरोध होता है। एक मील केबुलके प्रतिरोधका पता बिछानेसे पहले ही लगा लिया जाता है। जब कहीं कोई दुर्घटना हुई, तो केबुलके सिरेको एक विद्युत्-यन्त्रमें जोड़कर पृथ्वी द्वारा कुण्डली विहित-कर विद्युत्-सञ्चार करते हैं। इस विद्युद्-यन्त्र और बैटरीके विद्युत्-विभवसे उतने केबुलके प्रति-रोधका, जितनेमें विद्युत् सञ्चारित हो, पता चल जाता है। फिर हिसाब लगा लेते हैं कि, कितनी दूरपर केबुल टूटा है। यदि हिसाब लगानेसे १०० मील आया, तो नक्शेसे स्थानका अक्षांश और देशान्तरका पता लगा लेते हैं। अनन्तर तुरत जहाज वहाँ पहुँचकर और केबुलको उठाकर मरम्मत कर देता है।

रेडियो या बेतारका तार

श्रीयुत विश्वेश्वरदयालु एम० एस-सी०, बी० एस-सी० (आनर्स)

नदीके किनारे बैठकर अगर एक पत्थर पानीमें फेंका जाय, तो उसमें तरङ्गें दिखाई देंगी। अगर उन तरङ्गोंपर एक कागजका टुकड़ा डाल दिया जाय, तो वह सिर्फ ऊपर नीचे आता जाता मालूम होगा। यद्यपि तरङ्गें आगे बढ़ती हुई मालूम होती हैं; मगर पानीके कण आगे नहीं बढ़ते। वे ऊपर-नीचे कम्पन करते हैं। बाजारमें शीशेकी कलम बिकती है। उसपर सर्पाकार धाराएँ खिंची रहती हैं। अगर उसको हाथसे घुमाया जाय, तो धाराएँ आगेको बढ़ती प्रतीत होंगी; मगर कलम आगेको नहीं बढ़ती। ऐसी ही तरङ्गोंमें पानी आगे-पीछे नहीं बढ़ता, पानीकी विशेष अवस्था ही बढ़ती प्रतीत होती है।

पानीमें जिस स्थानपर पत्थर गिरता है, उस स्थानके कण नीचे चले जाते हैं। जब पत्थर नीचे पहुँच जाता है, तब जलकण ऊपर आते हैं; मगर अपने जड़त्वके कारण वे ऊपर, अपने पुराने तल तक, ही नहीं आते, वरन उससे भी ऊपर चले आते हैं। वहाँसे लौटकर फिर वे अपने तलसे नीचे चले जाते हैं और इस प्रकार कम्पन करते रहते हैं।

ठीक ऐसी ही घटना विद्युत्में भी होती है, जिसको उपपादन कहते हैं। एक मोटे तारमें अथवा एक सर्पाकार तारमें काफी उपपादन होता है। अगर इंडक (!)
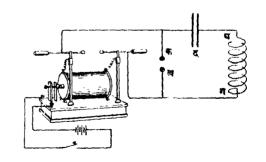
चित्र-संख्या १

की विद्युत् एक मोटे तारमेंसे विसर्जित की जाय, तो विद्युत् एक ओरसे दूसरी ओर 'क' तथा 'ख' के बीचमें कम्पन करती रहती है। अगर 'क'में धनीय

'कागजपर अंगीठी तापो' लेखसे सम्बद्ध चित्र

विद्युत् है और 'ख'में ऋणीय, तो 'क' से 'ख' में विद्युत् आकर बिलकुल उदासीन नहीं हो जाती; बल्कि अपने जड़त्वके कारण 'ख'में धनीय विद्युत् अधिक हो जाती है और 'क'में ऋणीय हो जाती है। इसी कारणसे फिर 'ख' से 'क' की ओर विद्युत् विसर्जित होती है। इससे विद्युत्की चिनगारियाँ (जैसा कि, आचार्य केल्विनने पहले-पहले सैद्धान्तिक रूपसे दिखलाया था) 'क' से 'ख'तक कम्पन करती रहती हैं।

इंडकमें दो पट्टिकाएँ होती हैं। एक तार द्वारा पृथ्वीसे लगायी जाती है और दूसरी पृथग्न्यस्त होती है। अगर एक तारको कुण्डलीमें एक इंडक और एक उपपादन (अर्थात् एक मोटा या सर्पाकार तार) हो, तो उसको दोलन कुण्डली कहते हैं। जिस चित्रका ऊपर वर्णन हुआ है, वह एक दोलन कुण्डली है। उसकी उपमा एक ऐसी कमानीसे दी जा सकती है, जिसमें एक ओर एक भार बाँध दिया गया हो। वह भार भी विद्युत्की भाँति दोलन करता है। भारकी उपमा उपपादन और कमानीके इंडकसे दी जा सकती है। अगर भार उठा दिया जाय, तो कमानीका सिरा कुछ देरतक दोलन करता है। मगर भारमेंसे थोड़ा-थोड़ा उठानेपर यह सिरा अपनी जगहपर, बिना कम्पित हुए भी, पहुँच सकता है। इसी प्रकार अगर इंडकके साथ बहुत पतला तार (अति प्रतिरोध) लगा दिया जाय, तो उसमेंसे विद्युत् धीरे-धीरे, बिना दोलन किये, विसर्जित हो जाती है। इसीलिये दोलन-कुण्डलीमें अति प्रतिरोध नहीं लगाया जाता है। विद्युत् एक सेकिंडमें जितनी बार दोलन करती है, उसको आवृत्ति कहते हैं। यह कुण्डलीके उपपादन और समावेशनपर निर्भर है। समावेशन (Capacity) इंडकका गुण है। इनमेंसे किसी एकके बदलनेसे आवृत्ति बदल सकती है। बिना तारके तारमें ऐसे इंडक उपयोगमें लाये जाते हैं, जिनका समावेशन आवश्यकताके अनुसार बदला जा सकता है। इनमें पट्टिकाओंका क्षेत्रफल अथवा दूरी बदली जा सकती है।

अगर एक कमानीका इस प्रकार दोलन हो कि, वह पानीके तलपर लगा करे, तो पानीमें तरङ्गें उठने लगेंगी। इन तरङ्गोंकी आवृत्ति कमानीकी आवृत्तिके बराबर होगी। दूसरे शब्दोंमें जितनी बार एक सेकिंड-में कमानी दोलन करती है, उतनी ही बार तरङ्गें उठेंगी। अगर पानीके तलपर दूसरी ऐसी ही कमानी किसी जगह हो, तो इन तरङ्गोंके कारण कमानी भी कम्पन करने लगेगी। उसकी आवृत्ति भी तरङ्गोंकी आवृत्तिके बराबर होगी। यह तरङ्गें पानीके तलपर होती हैं। पानीके भीतर कमानी रखनेसे आयतन तरङ्गें पैदा होंगी।

माइकेल फैरेडेने (जो अपनी प्रतिभाके कारण बिना उच्च शिक्षा प्राप्त किये जिल्दसाजसे बढ़कर रायल इंस्टीट्यूशनके प्राधानाचार्य हुए) पहले पहल यह बत-लाया कि, किसी वस्तुमें विद्युत् होनेके कारण उसकी चारों ओर आकाशमें कुछ तबदीली होती है। उन्होंने बतलाया है कि, वैद्युतिक शक्ति वास्तवमें आकाश या ईथरमें ही रहती है। अगर एक तारमें विद्युत् का प्रवाह हो रहा हो, तो उसके पास एक तारकी कुण्डली रखनेसे उस कुण्डलीमें भी विद्युत्का प्रवाह होने लगता है। मगर यह उसी समय होता है, जब पहले तारमें विद्युत्का प्रवाह शुरू किया जाय या बन्द किया जाय। इससे सिद्ध होता है कि, विद्युत्का प्रभाव आकाशमें होकर दूसरे तारमें पहुँच जाता है। इसी प्रकार विद्युत्के प्रवाहके कारण एक चुम्बक पत्थर आकर्षित अथवा प्रतिसारित होता है।
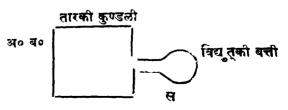
अगर 'अ' और 'ब के बीचमें विद्युत्का प्रवाह शुरू हो, तो जिस समय वह शुरू होगा, उसके कारण 'स'में बत्ती जल जायगी। 'अ' और 'ब'के बीचमें विद्युत्का प्रवाह शुरू होनेसे आकाशमें, स्थान-स्थान-पर, वैद्युत और चुम्बकीय बल नियत हो जाते हैं। यह बल हर स्थानपर, एक ही समयपर, पैदा नहीं हो जाते; बल्कि प्रकाशकी गतिसे आगे बढ़ते हैं। अगर विद्युत्का प्रवाह उलटा यानी 'ब'से 'अ'-की ओर होने लगे, तो यह बल पहलेके विरुद्ध दूसरी प्रकारके (दिशाके) पैदा हो जायंगे। अगर क्रमसे जल्दी-जल्दी 'अ'से 'ब'और फिर 'ब' से 'अ'की ओर विद्युत्-का प्रवाह हो, तो हर स्थानपर जल्दी-जल्दी एक दूसरेके विरुद्ध वैद्युतिक और चुम्बकीय बल पैदा होते रहेंगे तथा यह एकान्त अवस्था प्रकाशकी गतिसे आगे बढ़ती प्रतीत होगी। जिस प्रकार पानीकी तरङ्गोंमें पानीके कण ऊपर नीचे कम्पन करते रहते हैं और सिर्फ पानीकी अवस्था आगे बढ़ती दिखाई देती है, उसी प्रकार सर्वव्यापी ईथरके कणोंमें वैद्युत-चुम्बकीय बल बदलते रहते हैं और अवस्था आगे बढ़ती है। यह वैद्युत-चुम्बकीय तरङ्गें ही हैं, जो प्रकाशकी गतिसे भी आगे बढ़ती हैं। केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० मैक्सवेलने गणित द्वारा सर्व-प्रथम इन तरङ्गोंकी भविष्यवाणी की थी और युवक हर्जने कुछ समय पश्चात् इनको प्रयोग-शालामें बनाकर दिखलाया था।

ढूंहकमें विद्युत्के विसर्जनके समय 'अ' और 'ब'के बीच विद्युत जल्दी-जल्दी दोलन करती है; इस कारण उससे ऊपर लिखे अनुसार वैद्युत-चुम्बकीय तरङ्गें आकाशमें पैदा होंगी। इसके लिये आवश्यक है कि, पहले ढूंहकको आविष्ट और फिर विसर्जित किया जाय। आगेके चित्रमें एक दोलन कुण्डलीको उपपादन वेष्ठनसे लगाया गया है।
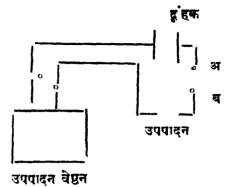
('अ' और 'ब'से वैद्युत-चुम्बकीय तरङ्गें चलेंगी)

उपपादन वेष्ठन (Induction coil) द्वारा ढूंहक पहले आविष्ट और फिर विसर्जित होता है। इस प्रकार 'अ' और 'ब'से वैद्युत-चुम्बकीय तरङ्गें पैदा होती रहेंगी।

इसी प्रकारसे 'अ'में ऋणीय विद्युत् हो जानेपर विसर्जन होकर घेरे आगे चलेंगे; मगर उनकी दिशा पहले के विरुद्ध होगी। इस प्रकार हर स्थानपर क्रमसे दोनों दिशाओंके घेरे प्रकाशकी गतिसे बढ़ते दिखाई देंगे। बेतार-के तारके प्रवर्त्तक मारकोनीने यह दिखलाया है कि, दो या अधिक दोलन कुण्डलियोंका अनुयोग करनेसे ये तरङ्गें अधिक दूरी तक जा सकेंगी।

इस सम्बन्धमें यह बात याद रखने योग्य है कि, हर एक कमानी एक सेकिंडमें बराबर ही दोलन करती है अर्थात् उनकी आवृत्ति एक ही है। अगले चित्रमें दो दोलन-कुण्डलियोंका अनुयोग दिखलाया है।(!) मारकोनीने यह भी दिखलाया है कि, दोलन-कुण्डलियोंमेंसे एकमें ढूंहककी जगह एक लम्बा तार अधिक उपयोगी है। इस लम्बे तारको एरियल कहते हैं। इसके द्वारा अधिक दूरी तक तरङ्गें भेजी जा सकती हैं।

अधिक शक्ति पैदा करनेके लिये उपपादन वेष्ठन (Induction coil) की अपेक्षा प्रत्यावर्त्तक डायनेमो (Alternator) और परिणामक (Transformer) का उपयोग किया जाता है।

अगर कुंजीको दबाया जाय, तो एरियलसे चारों

ओर वैद्युत-चुम्बकीय तरङ्गें चलने लगेंगी। अगर उसी आवृत्तिकी दोलन-कुण्डली कहींपर रखी हो, तो यह उसमें लगकर विद्युत्का कम्पन पैदा कर देगी। अगर कुंजीको नियमित तरीकेसे दबाया जाय, तो चिनगारियाँ देखनेवाला मनुष्य उससे मतलब भी निकाल सकेगा। ग्राहककी आवृत्ति प्रेषककी आवृत्तिके बराबर होनेसे ग्राहकका दोलन अधिक होगा। जिस समय पानीके कण ऊपर जाते होंगे, कमानी भी ऊपर जाती हुई होगी, जिसके कारण कमानीके कम्पनमें अधिक शक्ति होगी। इसीलिये ग्राहककी आवृत्ति प्रेषकके बराबर कर लेना अत्यावश्यक है। हर स्थानसे भिन्न-भिन्न आवृत्तिकी तरङ्गें भेजी जाती हैं। तारका पानेवाला मनुष्य अपने ग्राहकका उपपादन या समावेशन आवश्यकतानुसार बदलकर खबर मालूम कर लेता है। इसीलिये लड़ाईके दिनोंमें शत्रुके बेतारके तारके स्टेशनोंकी तरङ्गोंकी आवृत्ति जाननेके लिये बहुत कोशिश की जाती है।

प्रेषक
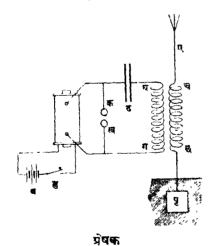
ग्राहककी दोलन-कुण्डलीमें विद्युत्का दोलन इतनी अधिक आवृत्तिसे होता है कि, अगर उसके साथ टेलीफोनका ग्राहक लगा दिया जाय, तो उसमेंसे आवाज़ नहीं निकल सकती। जैसे एक तख्तेको दो मनुष्य एक ही शक्तिसे दोनों ओरसे जल्दी-जल्दी पीटें, तो वहाँसे बिल्कुल नहीं हट सकता। टेलीफोन ग्राहकका उपयोग करनेके लिये आवश्यक है कि, विद्युत्का एक ओरका कम्पन बिलकुल बन्द कर दिया जाय।

ग्राहक
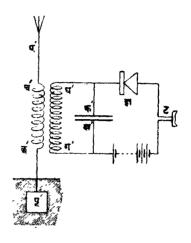
बेतारके तार या वायरलेसके इतिहासमें वाल्वका आविष्कार एक विशेष महत्त्व रखता है। फ्लेमिंग वाल्व में एक तार होता है, जिसको हम बैटरी द्वारा गरम कर सकते हैं। उसके ऊपर एक धातुकी पट्टिका होती है। गरम होनेपर तारमेंसे ऋणीय विद्युत्के एलेक्ट्रन निकलते हैं। जब पट्टिका और तारमें धनीय विभव लगा हो, तो ये एलेक्ट्रन पट्टिका तक चले जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें ऋणीय विद्युत्की धारा पट्टिका (Plate) और तारके बीच चलने लगती है। जब पट्टिका और तन्तुमें ऋणीय विभव होगा, तब ये एलेक्ट्रन पट्टिका तक नहीं जा पायँगे और धारा नहीं "प्रवाहित" होगी। आगेके चित्रमें मणिभके स्थानमें ऐसा वाल्व लगाया जा सकता है। तार "त" पट्टिकासे लगाया जाता है।

विद्युत्के दोलनके कारण जिस समय पट्टिका और तन्तुमें धनीय विभव होगा, तभी विद्युत्का प्रवाह होगा, अन्यथा नहीं। इस प्रकार इस वाल्व द्वारा टेलीफोनका ग्राहक काममें लाया जा सकता है। वाल्व अथवा मणिभके इस कार्य्यको शोधन कहते हैं।

ऐसा देखा गया है कि, दो बिन्दुओंके बीच एक और तार रखनेसे वाल्व अधिक उपयोगी हो जाता है। उसको जाल (Grid) कहते हैं। जाल एक सर्पाकार तार है, जो तन्तुओं (Filament) को घेरे रहता है।

तापायनिक वाल्व

अगर जालका विभव (—२) रखा जाय, तो उसका विभव बढ़नेसे धारा अधिक हो जायगी; मगर घटनेसे बहुत कम अथवा बिलकुल शून्य हो जायगी। अगर जालको यह विभव देकर चौथे चित्रमें लगाया जाय, तो उसमें धारा एक ही ओर बह सकेगी और यह वाल्व शोधनका कार्य्य करेगा। जब जालको विभव (Potential) पर रखा जायगा, तब विभवके बढ़नेपर प्रायः उतनी ही धारा बढ़ेगी, जितनी उसके कम होनेसे कम होगी। इसलिये इस जगहपर धाराका औसत वही रहेगा। इस जगह वाल्वको शोधित नहीं करेगी। मगर इस समय विद्युत्के दोलनमें शक्ति अधिक होगी। वाल्वका यह कार्य्य बड़े महत्त्वका है। छोटे प्रेषकसे भेजी हुई अथवा बड़ी दूरीसे भेजी हुई तरङ्गोंमें शक्ति कम रहती है और ग्राहकमें विद्युत्की धारा बहुत कम होती है। जालको विभवके लगभग देनेसे दोलनमें अधिक शक्ति होगी और हमको तार पढ़नेमें सुभीता होगा। अच्छे ग्राहकोंमें कई-कई वाल्व इसी उद्देशसे लगाये जाते हैं।

ऊपर लिखे रेडियो प्रेषकमेंसे विद्युत्का कम्पन एक ही कम्पन-विस्तारका नहीं होता, वह कम होते-होते नष्ट हो जाता है। ऐसी तरङ्गों द्वारा हम कोडके अनुसार तार भेज सकते हैं; मगर आवाजको नहीं भेज सकते। उसके लिये क्रमोन्नत तरङ्गोंकी आवश्यकता है।

टेलीफोनके माइक्रोफोनमें कोयलेके छोटे छोटे टुकड़े होते हैं। मनुष्यके बोलनेके कारण उसका एक
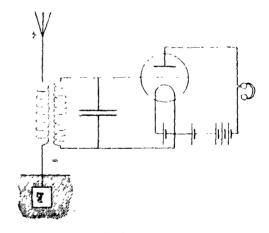
वाल्व ग्राहक

परदा कम्पन करता है, जिसके कारण विद्युत्का प्रवाह भी कम-बेश हो जाता है। अगर यह माइक्रोफोन ऐसी दोलन-कुण्डलीमें लगा दिया जाय, जिसमें क्रमोन्नत तरङ्गें पैदा हो रही हों, तो मनुष्यकी आवाजके कारण तरङ्गोंके विस्तारपर उसकी छाप पड़ जायगी। यह तरङ्गें ग्राहकमें जाकर उसके माइक्रोफोनपर अपना प्रभाव डालेंगी। उसका ततुपट फिर कम्पन करेगा और वही आवाज फिर सुनाई देगी। क्रमोन्नत तरङ्गें भी वाल्व द्वारा पैदा की जाती हैं।

टेलीफोनका आविष्कार और विकास

पटना विश्वविद्यालयका एक कला-कुमार

उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भिक वर्षोंमें टेलीग्राफ-का आविष्कार हो चुकने पश्चात् पाश्चात्य वैज्ञानिक तार द्वारा बातचीत करनेकी युक्ति ढूँढनेमें संलग्न हो गये। सर्व-प्रथम सर चार्ल्स ह्वीटस्टन (उस समय उन्हें सरकी उपाधि नहीं मिली थी) प्रयत्नशील बने। टेलीफोनके आविष्कारके पूर्व मि० ह्वीटस्टन टेलीग्राफके आविष्कारमें पर्याप्त साहाय्य प्रदान कर चुके थे। परन्तु टेलीफोनमें उन्हे सफलता न मिली।

इस घटनाके लगभग चालीस वर्ष बाद तक किसी भी वैज्ञानिकने इस ओर ध्यान नहीं दिया। ४० वर्षके बाद रीस [Reis] नामक एक जर्मन वैज्ञानिकने एक स्थानसे दूसरे स्थानतक शब्द और ध्वनि भेजने अर्थात् तार द्वारा बातचीत करनेके लिये टेलीफोन यन्त्रका निर्माण किया। इधर फ्रान्सके चार्ल्स बोरसेल (Charles Bourseul) ने फिलिप रीसके आविष्कारसे कुछ वर्ष पूर्व ही टेलीफोन बनानेकी एक ऐसी ही योजना की थी; परन्तु रीसका इस सम्बन्धमें मुतलक पता न था। साथ ही चार्ल्स बोरसेलने अपनी योजनाको प्रायोगिक रूपमें भी लानेकी कोशिश नहीं की थी।

रीसने जो यन्त्र तैयार किया था, उसकी सहायतासे स्वर अक्षरोंकी ध्वनियाँ, शोरगुल और कुछ अंशोंतक सङ्गीत भी सुनाई पड़ सकता था; किन्तु प्रबल प्रयत्नके पश्चात् भी वह अपने यन्त्र द्वारा बातचीत करनेमें असमर्थ रहा। फिर भी जर्मनीवाले बहुधा रीसको ही टेलीफोन-का वास्तविक आविष्कर्त्ता मानते हैं; किन्तु अन्य देशोंने स्काटलैंडके अलेक्जेंडर ग्रेहम बेल (Alexander Graham Bell) को वास्तविक आविष्कर्त्ता माना है।

अलेक्जेंडर बेलके पिताको बहरे मनुष्योंकी सहायता करनेका बड़ा शौक था। वह बराबर कोई-न-कोई ऐसी वैज्ञानिक युक्ति ढूँढा करता था, जिससे बहरोंका बहरापन दूर किया जा सके। अलेक्जेंडर अपने पिताको, इस कार्यमें, बहुत सहायता दिया करते थे। २४ वर्षकी आयुमें बेलको क्षयरोगको कुछ शिकायत मालूम हुई। बेलके दो बड़े भाई इस रोगसे मृत्यु प्राप्त कर चुके थे। अतः इनके पिता इन्हें शीघ्र ही एडिनबरासे अमेरिकाको ले गये। अमेरिकामें ही रहकर बेलने टेलीफोनका आविष्कार किया। प्रारम्भमें वह अपने पिताकी सहायता करते हुए बहरोंको पढ़ाते-लिखाते थे। इसी बीच आपकी मुलाकात दो प्रसिद्ध अमेरिकन धनी थामस सैंडर्स और गार्डनर हुवार्डसे हो गयी। सैंडर्सका पुत्र और हुवार्डकी कन्या बहरी थी। इन दोनोंको शिक्षा देनेमें बेलको आशातीत सफलता मिली। हुवार्ड और सैंडर्स, दोनों ही उनके कार्योंसे प्रसन्न होकर उन्हें वैज्ञानिक प्रयोगोंके लिये आर्थिक सहायता देने लगे। आगे चलकर इसी कुमारी हुवार्डके साथ बेलकी शादी भी हुई। अन्यान्य वैज्ञानिकोंकी तरह अलेक्जेंडर ग्रेहम बेल भी निर्धन थे। बहुत सम्भव था, यदि

उन्हें हुवार्ड और सैंडर्सकी आर्थिक सहायता नहीं प्राप्त होती, तो टेलीफोनके आविष्कार-का श्रेय किसी दूसरे वैज्ञानिकको मिलता। इस आर्थिक साहाय्यसे भी बढ़कर बेलको डा० वाट्सनका सहयोग मिला, जिससे उनकी तार द्वारा बातचीत करनेकी सफलता और भी शीघ्र-तासे हुई।

तार द्वारा बात करनेकी कोशिशका हाल सुनकर प्रारम्भमें बेलके मित्र गहरी हँसी उड़ाया करते थे। लगातार प्रयत्न करते रहनेपर भी कोई आशाजनक परिणाम नहीं निकलनेपर उन्हें मजाक करनेका अवसर भी मिल गया था। इन कारणोंसे स्वयम् बेल भी कुछ दिन बाद निराशसे हो उठे। उसी समय सौभाग्यसे अमेरिकन युवक विद्युत्-विशारद वाट्सनसे बेलका परिचय हो गया। अतः बेलकी सहायताका बहुत कुछ श्रेय मि० वाट्सन-को भी प्राप्त है। दो प्रयत्नशील वैज्ञानिकोंके अध्य-वसायने अपने कार्यपर अन्तमें विजय पा ही ली। सर्वसाधारणकी हँसी हँसी ही बनकर रही।

इस अनवरत परिश्रमके परिणाम-स्वरूप ३० मार्च, १८७५ को अपने २६ वें जन्मदिवसके अवसर-पर, बेलने इस महत्त्वपूर्ण और अमूल्य यन्त्रका अपने नामसे पेटेंट करा लिया। पेटेंट करानेके एक वर्ष बाद १० मार्च, १८७६को बेलको अपने यन्त्र द्वारा सर्व-प्रथम मौखिक सन्देश भेजनेमें सफ-लता मिली। उस समय दोनों वैज्ञानिक मित्र बोस्टन नगरके एक बोर्डिंग हाउसके ऊपरी भागमें रहते थे। इनके पास दो कमरे थे। एक सोने और आराम करनेके लिये, दूसरा प्रयोगादिके लिये। १० मार्चको बेल प्रयोगशालामें थे और वाट्सन शय-नागारमें। उसी तारीखको इसी कमरेमें मि० वाट्-सनको तार द्वारा मि० बेलका इतिहास प्रसिद्ध मौखिक सन्देश प्राप्त हुआ। संसारमें तार द्वारा बोले जाने और समझनेका यह प्रथम अवसर था। बेलने तार द्वारा वाट्सनसे कहा, "मि० वाट्-सन! यहाँ आइये। मुझे आपकी आवश्यकता है।" आवाज बहुत स्पष्ट थी। मि० वाट्सनने बेलके स्वरको तत्क्षण पहचान लिया। उस समय सम्भवतः मि० बेलको यह ध्यान न था कि, उनका यह कथन एक संसार-प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथन बन जायगा।

इस स्थलपर दो प्रसिद्ध अमेरिकन वैज्ञा-निकों (रायल हाउस और एलिस ग्रे) का उल्लेख भी परमावश्यक है। हाउसने बेलसे बहुत पहले ही एलेक्ट्रो-फोनेटिक टेलीग्राफ (Electro-phonetic Telegraph) का आवि-ष्कार किया था। वह भी टेलीफोनकी ह भाँति काम करता था। निर्माण-पद्धति भी प्रायः बेलके यन्त्रकी ही थी, परन्तु हाउसने स्वप्नमें भी इस यन्त्रके विश्वव्यापी प्रयोगकी बात न सोची थी। जिस दिन बेलने अपने यन्त्रकी रजिस्टरी करायी, ठीक उसी दिन, कुछ घंटे बाद, एलिस ग्रेने भी अपने यन्त्रको पेटेंट आफिस भेजा था। उसके पूर्व वे अन्यान्य पचासो यन्त्र रजिस्टर्ड करा चुका था। उसने बेलके विरुद्ध अदालतमें दावा भी किया; परन्तु सुप्रीम कोर्टने बेलके यन्त्रको ही स्वीकार किया।

बेलके यन्त्रमें आवाजसे उत्पन्न होनेवाले कम्पन चुम्बकीय शक्ति (Magnetic force)में परिवर्तन पैदा कर देते हैं। यही परिवर्तन वैद्युत-चुम्बकमें (Electric Megnet)में विद्युद्-धारा उत्पन्न करते हैं। विद्युत्-धारा तारोंकी सहायतासे ग्राहक यन्त्र तक जाती है। ग्राहक

यन्त्रमें पहुँचकर विद्युद्-धाराएँ पुनः चुम्बकीय शक्तिमें परिवर्तित हो जाती हैं। वे परिवर्तन प्रेषक यन्त्रमें होनेवाले परिवर्तनके समान ही होते हैं। इनसे ग्राहक यन्त्रकी डिस्क (Disc) में कम्पन-उत्पन्न होते हैं। इन कम्पनोंसे जो शब्द प्रेषक यन्त्रके सामने बोले गये थे, फिर उत्पन्न होते हैं एवम् साफ-साफ सुनाई पड़ते हैं।

टेलीफोनके आविष्कर्ता अलेकजेंडर ग्राहम बेल अपने पोते और पोतियोंके साथ

सन् १८७६में मि० बेलने अपना यन्त्र फिलाडेलफियाकी प्रदर्शनामें भेजा। इस यन्त्रको देखकर प्रख्यात वैज्ञानिक सर विलियम थामसन (बादमें लार्ड केलविन) ने कहा था—"यह बिजलीके तारका अत्यन्त चमत्कारिक विकास है। इसकी रचना अत्यन्त साधारण होते हुए भी पूर्ण मौलिक है। इसके बनानेमें घरेलू यन्त्र भी काममें लाये गये हैं।" वास्तवमें बात भी ऐसी ही है। बेल और वाट्सन पेशेवर वैज्ञानिक तो थे नहीं। दोनों सिर्फ शौकसे उसका प्रयोग कर रहे थे। अतएव उन्होंने जो यन्त्र तैयार किये थे, उनमें अत्यन्त साधारण वस्तुओंका भी उपयोग किया गया था। उनकी प्रयोग-शाला भी अत्यन्त साधारण श्रेणीकी थी। उन्हें बिजलीकी बहुत-सी आवश्यक बातोंका भी ज्ञान नहीं था। इसीलिये अमेरिकाके प्रमुख विद्युत्-विशारद मोजेज फारमरने कहा था—"यदि बेलको बिजलीके सिद्धान्तोंका समुचित ज्ञान होता, तो वे कभी भी टेलीफोनका आविष्कार नहीं कर पाते। मोजेज फारमरका यह कथन सिर्फ बेलपर ही लागू नहीं है; प्रत्युत विद्युत्-सम्बन्धी जितने भी आविष्कार हुए हैं, उन सबके लिये ऐसा ही कहा जा सकता है। फैरेडेसे लेकर लार्ड केलविन और थामस एल्वा एडिसन पर्यन्त जितने भी महान् विद्युत्-विज्ञान-विशारद हुए हैं, सबके सब प्रारम्भमें शौकिया प्रयोग ही किया करते थे। वे पेशेवर वैज्ञानिक नहीं थे। टेलीफोनके आविष्कारसे तत्कालीन यूरोप और अमेरिकामें एक तहलका-सा मच गया। केवल टेलीफोन यन्त्रको ही देखनेके लिये बहुतसे लोग लम्बी-लम्बी यात्रा कर प्रदर्शनियोंमें अमेरिका गये। इस यन्त्रको देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। इसके परिणाम-स्वरूप अलेक्जेंडर ग्रेहम बेलका नाम संसार-प्रसिद्ध हो गया। उस समय यह आविष्कार केवल प्रायोगिक अवस्थामे ही था। पेटेंट करानेके कोई दो वर्ष बाद इसकी एक स्वतन्त्र कम्पनी स्थापित हुई। इसके पूर्व बेल अपने यन्त्रके सर्वाधिकारको बेच ही देना चाहते थे; परन्तु कोई काफी मूल्य न दे सका। अतः मनोनीत विचारमें वह असफल रहे। अगस्त

१८७७ ई० में हुवार्ड, सैंडर्स, वाट्सन और बेलने मिलकर टेलीफोन एसोशियेशनकी स्थापना की। बहुत स्वल्प लागतपर कार्यारम्भ हुआ था; परन्तु शीघ्र ही कम्पनीके हिस्सोंका मूल्य बढ़कर प्रति शेयर १०० डालर तक हो गया एवम् कम्पनीका काम सुचारु-रूपेण परिचालित होने लगा। बेलकी जीवितावस्थामें ही संसारके कोने-कोनेमें टेलीफोन यन्त्रका प्रचार हो गया।

४ अगस्त, १९२२ ई० को इस महान् वैज्ञानिकको मृत्यु हुई। इनके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिये अमेरिका और कनाडाके १ करोड़ ७० लाख टेलीफोन यन्त्र एक मिनटके लिये बन्द कर दिये गये थे।

बेलकी मृत्युके बहुत पूर्व ही उनके बनाये यन्त्रमें बहुत कुछ परिवर्तन एवम् परिवर्द्धन किया जा चुका था। इन दिनों जिस टेली-फोन यन्त्रका व्यवहार हो रहा है, वह अनेका-नेक विज्ञान-विशारदोंकी खोज एवम् परिश्रम-का ज्वलन्त रूप है। इस सम्बन्धमें अमेरिकाके विख्यात वैज्ञानिक थामस एल्वा एडिसन और इंगलैंडके प्रमुख अन्वेषक प्रो० डेविड ह्यूजेजके नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें अमेरिकाके माइकेल पूपिनने और भी अनेक सुधार किये हैं, जिससे टेलीफोन सुदूर-स्थित प्रान्तोंकी बातचीत के साथ-साथ सन्देश-वाहक भी बन गया है। सामुद्रिक तारके निर्माणसे इस ओर बहुत-कुछ उन्नति हो गयी है। इधर तीस वर्षोंमें तो उसमें और भी बहुतसे परिवर्तन और परिवर्द्धन हुए हैं। इनकी सहायतासे टेलीफोन बहुत ही उपयोगी तथा मनुष्यकी दैनिक आवश्यकताकी वस्तु बन गया है। अब तो बेतारका तार भी बन चुका है।

पहले ही लिखा जा चुका है कि, अलेक्ज़ेंडर ग्रेहम बेलने १८७६में टेलीफोनका आविष्कार किया। उन दिनों उसका कुछ विशेष स्वागत न हुआ। बेलको इसकी उपयोगिता प्रकट करनेमें भी अनेक परिश्रम उठाने पड़े। पहले कोई इसके स्वत्वाधिकारको खरीदने तकको तैयार न था; किन्तु जब लाचार होकर बेलने स्वयम् उसकी रजि-स्टरी करायी, तब उनपर सैकड़ों मुकद्दमे दायर हुए।

टेलीफोन यन्त्रके परिष्कर्त्ता थामस एडिसन, चार्ल्स वाट्सन और डेविड हर्टज।

इन सब कारणोंसे बेलका बहुत समय झंझटोंमें ही नष्ट हुआ। १८७७में बेलके प्रतिनिधिने इंगलैंडकी सरकारसे टेलीफोन यन्त्रका सार्वजनिक प्रदर्शन करनेकी आज्ञा माँगी; परन्तु वह प्रार्थना अस्वीकृत हुई। हाँ, बादमें इंगलैंडकी रानी अलेक्ज़ेंडरा (जो उस समय वेल्सकी राजकुमारी थीं) ने अपने प्राइवेट रूममें टेलीफोन यन्त्र लगवाये थे। उसी वर्ष जर्मनीके कुछ शहरोंमें भी टेलीफोन यन्त्र लगाये गये।

१८७७ में न्यूयार्कमें सार्वजनिक टेलीफोन एक्सचेंजकी स्थापना हुई। यह शायद संसार-का सर्वप्रथम सार्वजनिक टेलीफोन एक्सचेंज था। इसके ठीक एक वर्ष बाद थोड़े-थोड़े समयके अन्तरसे, १८८१ तक मैंचेस्टर, ग्लासगो, पेरिस और बर्लिन आदि प्रमुख नगरोंमें टेलीफोन एक्सचेंज स्थापित हुए।

१८७२ में इंगलेंडमें टेलीफोनका प्रवेश हो तो अवश्य गया था; पर वह केवल नाममात्रका था। इसका प्रचार आगेके वर्षोंमें, विशेष रूपसे हुआ। सर्वप्रथम एक रेलवे कम्पनीने इसका उपयोग करनेका निश्चय किया। धीरे-धीरे ग्राहक-संख्या काफी बढ़ गयी और १८८०में कम्पनीको ग्राहकोंकी बाकायदा छपी हुई सूची प्रकाशित करनी पड़ी। उस वर्ष समस्त अमेरिकामें ३०००० टेलीफोन यन्त्र काममें लगे थे; किन्तु १९२२ में बेलकी मृत्युके समय इसकी संख्या १ करोड़ ७० लाख हो गयी थी। यूरोपमें उस समय ५००० यन्त्र काममें आते थे।

इंगलेंडमें १० वर्ष तक टेलीफोनकी उन्नतिकी गति बहुत ही शिथिल रही। इंगलेंडके कुछ खास-खास शहरोंको छोड़ कर अन्यत्र इसका प्रचार न हो सका। उन शहरोंमें भी केवल प्रथम श्रेणीके रईस लोग ही इसका उपयोग करते थे। १८९२ ई० में पोस्ट आफिसने ट्रंक लाइनका प्रबन्ध, अपने हाथोंमें, ले लिया। इसके पूर्व इसका प्रबन्ध कुछ प्राइवट कम्पनियों-के हाथोंमें रहनेके कारण बहुत ही असन्तोष-जनक था।

१९१० में नेशनल टेलीफोन कम्पनीका लाइसेंस समाप्त हो जानेपर तो इंगलेंडके समस्त यन्त्रोंका प्रबन्ध पोस्ट आफिसके हाथोंमें दे ही दिया गया। उस समय इंगलेंड भरमें लगभग ७ लाख टेलीफोन काममें लाये जाते थे। महा-युद्धके समयमें तो इसकी और भी उन्नति हुई। अतः संख्या बढ़कर इस समय २० लाख तक पहुंच गयी है।

शुरू-शुरूमें टेलीफोन द्वारा किसी निश्चित दूरी तक ही बातचीत की जा सकती थी। अधिकतर नगरके एक छोरसे दूसरे छोर तक बात करनेका प्रबन्ध, साधारणतया, सभी स्थानोंमें कर लिया गया था। समयके साथ-ही-साथ दूरीका प्रश्न भी हल हो गया। १८८४ ई० में न्यूयार्कसे २९० मीलकी दूरीपर स्थित बोस्टन नगरसे बात करना सम्भव हो गया था। १८९२ में नौ सौ मीलपर स्थित शिकागो शहरसे बातचीत होने लगी थी। १९१५ में ३००० मीलकी दूरीपर स्थित फ्रांसिस्को नगरसे बातचीत करनेमें सफलता मिल गयी थी। अब तो भारतसे इंगलैंड तक बातचीत करनेका प्रबन्ध हो गया है।

यूरोपवाले अपने आवश्यकतानुसार इसमें उन्नति करते जा रहे हैं। १८९१ में इंगलेंड और पेरिससे फोन द्वारा बातचीत करनेका प्रबन्ध हो गया था। तदनन्तर १९०२में बेलजियम, १९१४ में स्विटजर्लैंड और १९२२ में हालैंड से भी प्रबन्ध हो गया। १९२३ में यूरोपके विभिन्न भागोंमें फोन द्वारा बातचीत करनेके प्रबन्ध और नियन्त्रण आदिके लिये अन्तारार्ष्ट्रिय परामर्शदायिनी समिति (International Committee) की स्थापना की गयी थी। अब तो यूरोप और ग्रेट ब्रिटेनके सभी विभिन्न देशों और प्रान्तोंसे बातचीत करनेकी सुविधाएँ प्राप्त हैं। अन्तारार्ष्ट्रिय परामर्शदायिनी समितिके पदार्पणसे यूरोपके अन्तारार्ष्ट्रिय टेलीफोनका प्रबन्ध भी

अधिक सुचारु और सुव्यवस्थित अवस्थामें हो गया है।

दक्षिणी अमेरिकामें भी टेलीफोनका प्रचार बढ़ता जा रहा है। प्रिन्स आफ वेल्सकी दक्षिण अमेरिकाकी यात्रासे वहाँ फोनका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। युवराजने सॉंटियागोसे ७००० मील-की दूरीपर स्थित लंदनके बकिंघम राजभवनसे सम्राट् और साम्राज्ञीसे बातचीत करके वहाँकी जनताको आश्चर्यमें डाल दिया था। अब तो दक्षिण अमेरिकाके कई प्रतिष्ठित नगरोंमें टेली-

ब्राजिलके सम्राट् डोम पिडरो फिलाडेल्फियाकी प्रदर्शनीमें बेलके नूतन टेलीफोनको बड़े आश्चर्यसे कानोंमें लगा रहे हैं।

फोन लगाये गये हैं। किन्तु इन नगरोंमें अभी टेलीफोन व्यवहारके समय परिमित हैं। प्रातःकाल १½ घंटा और सायंकाल ३ घंटा। दक्षिण अमे-रिकाके ब्राजिल प्रदेशमें भी टेलीफोन लग गये हैं।

भारतमें प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरोंमें फोन-का प्रबन्ध है। एक ही स्थानसे विभिन्न नगरों-से भी बातचीत हो सकती है; किन्तु अभी यहाँ इसका उपयोग बड़े-बड़े वकील, डाक्टर और व्यापारी ही कर रहे हैं। कुछ-कुछ समाचार-पत्रोंमें भी इसका उपयोग हो रहा है। लागत अधिक होने और भारतकी गरीबीके कारण अभी यहाँ इसका उतना अधिक प्रचार नहीं हो सका है, जितना कि, अन्य पाश्चात्य नगरोंमें। भारत-में टेलीफोनका सारा प्रबन्ध स्वयम् सरकारने अपने हाथोंमें रखा है। इसीलिये जब भारतमें कांग्रेसका बहिष्कार-आन्दोलन चल रहा था, तब बहुत लोगोंने इसका भी बायकाट कर दिया था। परिणाम-स्वरूप टेलीफोनकी संख्या अल्पसे अत्यल्प हो गयी थी। हालमें दक्षिण भारतके विभिन्न नगरोंमें भी टेलीफोनका सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

इस समय संसार भरमें लगभग ३ करोड़ ५० लाख टेलीफोन यन्त्र व्यवहारमें लाये जा रहे हैं। इनमें २ करोड़, २० लाख यन्त्र तो अकेले उत्तरी अमेरिकामें ही हैं! बाकी १ करोड़, दस लाख यन्त्र यूरोपमें। शेष यन्त्र संसारके विभिन्न भागोंमें व्यवहृत हो रहे हैं। यूरोपके १ करोड, १० लाख यन्त्रोंमेंसे अकेला इंगलैंड २० लाख यन्त्र व्यवहारमें ला रहा है।

पाश्चात्य देशोंमें यह यन्त्र बहुत ही लोकप्रिय है। इनकी लोकप्रियताका अंदाजा निम्न आँकड़ेसे लग सकता है।

प्रति १०० व्यक्तियोंमें अमेरिकामें १७, कना-डामें १४, न्यूजीलैंडमें ११, डेनमार्कमें ६, ग्रेट ब्रिटेन

और जर्मनीमें ५, आस्ट्रेलिया, नार्वे और स्वीट्जलैंडमें ७, फ्रान्स, आस्ट्रिया, बेलजियम और अरजेंटाइनमें ३। अमेरिकाके ६ बड़े-बड़े प्रसिद्ध और विशाल नगरोंमें सो चार व्यक्तियोंपर एक टेलीफोन रहता है। लन्दन, पेरिस तथा बर्लिनमें यही सख्या १० और १२ के बीच है। इंगलैंड-की तुलनामें अमेरिकामें टेलीफोन लगानेमें खर्च भी अधिक पड़ता है। फिर भी वहाँ इसका विशेष प्रचार है। इस प्रचारका एक मात्र कारण अमेरिकाकी विशेष आय ही है। अमेरिकाके मजदूरसे लेकर उच्च-पदाधिकारी तकका वेतन इंगलैंडसे बहुत ज्यादा है। लंदन इस विषयमें सिर्फ अमेरिकासे ही पिछड़ा हो, ऐसी बात नहीं, वह अभी बर्लिन और पेरिससे भी पीछे है। बर्लिन और पेरिस प्रति १०० व्यक्ति १२ टेलीफोन व्यवहारमें लाते है। लंदनमें यही संख्या १० है।

आँकड़ोंसे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि, पाश्चात्य देशोंमें टेलीफोन दिन प्रतिदिन एक दैनिक व्यवहारकी वस्तु बनता जा रहा है। जैसे-जैसे इसका प्रचार बढ़ रहा है, वैसे-ही-वैसे इसे अधिक उपयोगी और लोक-प्रिय बनानेके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। उसे अधिक रोचक और मनोविनोदपूर्ण बनानेका भी प्रयत्न हो रहा है।

लाउड स्पीकर (Loud Speakers) के आविष्कारसे टेलीफोनकी उपयोगिता और अधिक बढ़ गयी है। इसकी सहायतासे एक ही ग्राहक यन्त्रसे एक वक्ताका भाषण बहुतसे व्यक्ति एक साथ सुन सकते हैं। इस यन्त्रका उपयोग भारत-वर्षमें भी बड़ी सभाओं आदिके अवसरपर किया जाने लगा है। इंगलैंड और अमेरिका आदि देशोंमें तो इसका प्रयोग नित्य प्रति ही किया जाता है। चुनाव आदिके अवसरोंपर इंगलैंड और अमेरिकाकी विभिन्न पार्टियोंके नेता इसका भली-भाँति उपयोग करते हैं। एक स्थानपर बैठे-बैठे टेलीफोनके प्रेषक यन्त्रके सामने अपना भाषण देते हैं। वही भाषण अन्यत्र, किसी दूरस्थ स्थानमें, एक सहस्र व्यक्तियोंको एक साथ सुनाई पड़ता है। अभी भविष्यमें इसका उपयोग और अधिक बढ़ेगा, ऐसी आशा है।

स्वयम् कार्य करनेवाले टेलीफोनके आविष्कार-से टेलीफोन यन्त्रकी यान्त्रिक उन्नति भी चरम सीमापर पहुँच गयी है। इस यन्त्रसे टेली-फोनके प्रबन्ध और ऐक्सचेंजका काम बहुत ही सुगम हो गया है। जनताकी शिकायतें भी बहुत कम हो गयी हैं; और, जो कुछ होती भी हैं, वे बहुत ही जल्दी दूर कर दी जाती हैं। अब इंगलैंडके प्रायः सभी पिछले एक्सचेंज धीरे-धीरे आटोमेटिक यन्त्रों द्वारा परिवर्तित किये जा रहे हैं। टेलीफोन द्वारा लम्बी दूरी तक सन्देश भेजने और बातचीत करनेकी विधि भी अब बहुत उन्नत हो गयी है। बेतार के तारसे फ्लेमिंगके काममें आपनेवाली थर्म आयनिक वाल्वस (Thermeornic Valves) की सहायतासे तार पद्धतिका आविष्कार किया गया है। यह यन्त्र Repeaters के नामसे पुकारा जाता है। इसकी सहायतासे बहुत दूरी-पर स्थित स्टेशनों तक पहुँचनेवाली विद्युद्-धाराएँ अभिवर्द्धित (Amplified) हो जाती हैं। फल-स्वरूप उन स्टेशनोंपर पहुँचनेवाली विद्युद् धाराएँ उतनी ही शक्तिशालिनी हो जाती हैं, जितनी थोड़ी दूरीपर स्थित स्टेशनोंपर होती हैं। ये Repeaters यन्त्र एक ही लाइनमें सुविधानुसार

कई जगहोंपर लगा दिये जाते हैं। इन यन्त्रोंकी सहायतासे बर्लिन, वीना, पेरिस आदि अनेक यूरोपीय नगरोंसे प्रेषित किये जानेवाले संगीत आदि लंदनमें बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। भाषण और बातचीत सुननेमें तो और भी आसानी हो गयी है।

बेतारके तारके आविष्कारसे टेलीफोनकी कार्य-पद्धतिमें भी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रान्ति उत्पन्न हो गयी है। अब तक लम्बी-लम्बी दूरीपर फोन द्वारा सन्देश भेजनेमें अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। वे सब कठिनाइयाँ अब बेतारके तारके आविष्कार और टेलीफोन यन्त्रके साथ उसके संयोगसे दूर हो गयी हैं। वैसे तो १९०७ से ही बेतारके तारके टेलीफोन काममे आने लगे थे; परन्तु १९२३ तक सर्वसाधारणके उपयोग और व्यावसायिक रूपसे व्यवहारमे लाने योग्य नहीं बन सके थे। १९२३में अमेरिकन टेलीफोन और टेलीग्राफसे सबसे पहले बेतारके तारके टेलीफोन द्वारा एक भाषण, न्यूयार्कसे लंदन, भेजा गया था। तबसे अबतक इस पद्धतिमे आश्चर्यजनक उन्नति हो गयी है। अभी इस पद्धतिसे बातचीत करनेमें बहुत लागत लगती है; अतः सर्वसाधारण इसका उपयोग करनेमें असमर्थ है।

———

कागजपर रंगीन फोटो

डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस-सी०

आटोक्रोम प्लेट या पेगफा कलर प्लेटमें शीशेपर रंगीन छाया-चित्र खींचना बहुतसे फोटोग्राफर जानते हैं। वे बहुत ही सुन्दर बनते हैं; तो भी कागज़पर न रहनेके कारण उनसे सन्तोष नहीं होता। न तो वे चित्रावलीमें चिपकाये जा सकते हैं और न वे दीवारोंपर टाँगे ही जा सकते हैं। इन्हीं कारणोंसे प्रायः सभी फोटोग्राफर पूछते हैं कि, क्या रंगीन छाया-चित्र कागजपर नहीं खींचे जा सकते? इस लेखमें इसी प्रश्नका उत्तर दिया जायगा और एक ऐसी क्रिया बतलायी जायगी, जिससे रंगीन छायाचित्र साधारण कैमेरे और सुलभ पदार्थोंसे कागजपर छापे जा सकते हैं। अन्य रीतियोंका दिग्दर्शन भी करा दिया जायगा।

तिरंगे चित्र—शीशेपर रंगीन छाया चित्र खींचनेके लिये केवल एक प्लेटकी आवश्यकता पड़ती है; परन्तु अभी तक कोई भी ऐसी रीति नहीं निकली है, जिससे कागजपर रंगीन छाया-चित्र बनानेके लिये केवल एक प्लेटसे काम चल जाय। इसके लिये हमेशा तीन नेगेटिव बनानेकी आवश्यकता पड़ती है। इन नेगेटिवोंकी सहायतासे एक ही कागजपर तीन रंगोंमें तीन छाया-चित्र छाप दिये जाते हैं (या कोई ऐसी क्रिया की जाती है, जिसका परिणाम वही होता है, जो छापनेका)। इस प्रकार रंगीन छायाचित्र तैयार हो जाता है। *

* जो रंगीन चित्र मासिक पत्रिकाओं या पुस्तकोंमें छपते हैं, वे तीन ठप्पोंसे क्रमशः पीले, लाल और नीले रंगोंसे छापनेसे तैयार होते हैं। अन्यत्र छपे पाँच चित्रोंमें क्रमसे एक ठप्पेसे पीला, दूसरेसे लाल, तीसरेसे नीला, फिर पीला और लाल एकके ऊपर एक और अन्तमें तीनों ठप्पोंसे एकके ऊपर छापनेका परिणाम दिखलाया गया है।

सभी जानते हैं कि, वे रंगीन चित्र, जो मासिक पत्रिकाओं या पुस्तकोंमें छपते हैं, तीन ठप्पोंसे क्रमशः पीले, लाल और नीले रंगोंमें छापनेसे तैयार होते हैं। रंगीन छाया-चित्र भी इसी प्रकार बनते हैं;
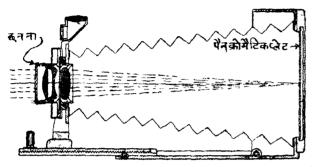
प्रकाश-दर्शन देते समय लेंसपर प्रकाश छनना लगा दिया जाता है। एक छनना लाल, एक हरा और एक नीला होता है।

अन्तर केवल इतना ही होता है कि छापनेकी मशीन ठप्पे और रंगीन स्याहियोंके उपयोगके बदले छपाई फोटोग्राफीकी सहायतासे की जाती है।

प्रकाशके छनने और पैनक्रोमैटिक प्लेट—तीनों चित्र भिन्न-भिन्न नेगेटिवोंमें छापे जाते हैं। इन नेगेटिवोंको तैयार करनेके लिये लेंसपर लाल प्रकाश-छनना लगाकर एक पैनक्रोमैटिक प्लेटको प्रकाश-दर्शन दिया जाता है; और, इसी प्रकार हरे और नीले प्रकाश-छननों-द्वारा दो अन्य पैनक्रोमैटिक प्लेटोंको प्रकाश-दर्शन दिया जाता है। * जबतक तीनों प्रकाशदर्शन न दिये जा चुकें, तबतक कैमेरे और विषयको जरा भी हिलने नहीं दिया जाता। तिरंगे प्रकाश-छनने (Tricolour filters) बिकते हैं। यदि अधिक व्यय करनेकी इच्छा न हो, तो इन तीन रंगोंकी जिलेटिनकी परतें (Gelatine films) मोल ली जा सकती हैं। † कागजके दो टुकड़ोंके बीच रखकर जिलेटिन कैंचीसे आवश्यकतानुसार नापकर काटा जा सकता है और फिर दफ्तीके चोंगेमें मढ़कर प्रकाश-छनना तैयार किया जा सकता है। ये प्रकाश छनने सस्ते तो पड़ते हैं; परन्तु जिलेटिनपर हाथ लगते ही खराब हो जाते हैं। फिर, ये बरसातके दिनोंमें आपसे आप खराब हो जाते हैं।

स्पष्ट है कि, इस रीतिसे तीन नेगेटिव बनानेका उपयोग केवल स्थिर विषयोंके ही लिये किया जा सकता है; क्योंकि *प्रकाश-दर्शन बारी-बारी* दिया जाता है। परन्तु ऐसे कैमेरे भी बनाये जा सकते हैं, जिनमें दर्पणोंकी सहायतासे तीनों प्लेटोंको एक साथ ही प्रकाश दर्शन मिल जाता है। ऐसे कैमेरे बने-बनाये नहीं बिकते। इनको
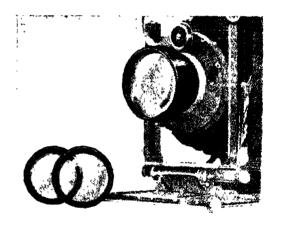
प्रकाश छनना—इस तरहके तीन प्रकाश छननोंकी आवश्यकता पड़ेगी; एक लाल, दूसरा हरा, तीसरा नीला। रंगीन छाया-चित्रणके लिये ये विशेष-रूपसे बनाकर बेचे जाते हैं।

स्वयं बनाना पड़ता है। इनमें प्लेटके नापके प्रकाश-छनने लगते हैं। इस लिये इनमें बहुत खर्च पड़ता है।

* रंगोंको शब्दोंसे सूचित करनेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। लाल प्रकाश छनना नारंगी रंगका भी कहा जा सकता है और नीला बैंगनी रंगका भी।

† साधारणतः ये भारतवर्षमें नहीं बिकतीं; परन्तु कोई भी कंपनी इनको इंगलैंड या जर्मनीसे मँगा देगी।

तीनों पैनक्रोमेटिक प्लेटोंको लाल, हरे और नीले प्रकाश-छननों द्वारा प्रकाश-दर्शन देनेके बाद इनको साधारण रीतिसे डेवेलप और स्थायी किया जाता है। [1] तीनों प्लेटोंको एक ही साथ डेवेलप करना अच्छा है। इनके प्रकाश-दर्शनोंको ऐसी मात्राओंका होना चाहिये कि, तीनोंमें घनत्व बराबर हो। कारखानेवाले स्वयं प्रकाश छननोंके साथ उचित प्रकाश-दर्शन बतला देते हैं; इस लिये कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

जिलेटिनकी परतोंसे बहुत सस्ते प्रकाश छनने बन सकते हैं।

इस प्रकार बने तीन नेगेटिवोंमें थोड़ा थोड़ा अन्तर होता है। कभी-कभी इसकी पहचान करनेमें कि कौन सा नेगेटिव किस रंगके प्रकाश छननेसे बना था, बड़ी कठिनाई पड़ती है। इसलिये प्लेट घरोंके भीतरी कोरमें एक, दो या तीन दाँती काट देनी चाहिये। ये नेगेटिवमें छप जायँगे और इसलिये इनकी पहचान सरल हो जायगी।

तीन नेगेटिवोंका बनाना प्रत्येक रीतिके लिये आवश्यक है; केवल इसके बादकी क्रियाओंमें भिन्नता है। एक क्रिया निम्नलिखित है —

तीन पाजिटिव—प्रत्येक नेगेटिवसे पहले एक पाजिटिव बहुत मंद प्लेटपर बनाना चाहिये। इसके लिये लेंटर्न स्लाइड प्लेट या बहुत मन्द गतिके साधारण प्लेटका उपयोग किया जा सकता है। प्लेटका जिलेटिन यदि कड़ा न किया हो, तो अच्छा है। ऐसे प्लेट विशेष रूपसे मँगाने पड़ेंगे; क्योंकि हिन्दुस्तानमें जितने प्लेट बिकते हैं, उनका जिलेटिन साधारणतः कड़ा किया रहता है। कड़े जिलेटिनवाले प्लेटोंका भी उपयोग किया जा सकता है; परन्तु इनके प्रयोगमें उतनी सुविधा नहीं होती। पाजिटिवोंके बनानेके लिये छापनेके चौखटेका प्रयोग नहीं किया जा सकता। इनको कैमेरेकी सहायतासे नेगेटिवोंकी नकल करके बनाना चाहिये और प्लेटको प्लेट घरमें रखते समय इसपर विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिये कि, प्लेट उलटा लगाया जाय, जिसमें नकल करते समय प्लेटका शीशा लेंसकी ओर पड़े और मसाला प्लेट घरकी ओर। फोकस करते समय फोकस परदेके अन्धे शीशेको भी उलटा लगाना चाहिये या यदि ऐसा न किया जाय, तो फोकस करनेके बाद लेंसको प्लेटकी मोटाईके बराबर पीछे हटा देना चाहिये, जिसमें पाजिटिवमें अतीक्ष्णता न आने पावे। पाजिटिवोंको डेवेलप और स्थायी साधारण रीतिसे किया जाता है; परन्तु उनको किसी प्रकार कड़ा न करना चाहिये। उनको पायरोसे डेवेलप नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे भी जिलेटिन कड़ा हो जाता है। उनमें धुन्ध (फाग) भी न रहे और यदि वे प्रोसेस प्लेटपर बनाये जायँ, तो डेवेलप करनेकी क्रिया कुछ कम ही समय तक करनी चाहिये,

[1] पैनक्रोमैटिक प्लेटोंके डेवेलप करनेकी रीति और अन्य कई एक उपयोगी बातें लेखककी पुस्तक "फोटोग्राफी" (इंडियन प्रेस) में मिलेंगी।

जिसमें प्रकाशान्तर (कानट्रैस्ट) बहुत अधिक न हो जाय ।

अब पाजिटिवको (चाहे सूखनेपर, चाहे धोनेके तुरत बाद ही) इस घोलमें रखना चाहिये—पोटैसियम बाइ-

पैनक्रोमेटिक प्लेट
हरा छनना
हरा-रहित छनना
पैनक्रोमेटिक प्लेट
नीला छनना
लाल छनना
पैनक्रोमेटिक प्लेट

एक साथ ही तीनों प्लेटोंकी प्रकाश-दर्शन देनेवाला कैमेरा । ऐसे कैमरेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है; परन्तु यदि यह बनाया जा सके, तो सुविधा होगी ।

क्रोमेट ४० ग्रेन, हाइड्रोक्लोरिक एसिड (शुद्ध) १½ ड्राम (९० मिनिम) और पानी २० औंस । तश्तरीको हिलाते रहना चाहिये । जब पाजिटिव सब जगह पीठ तक सफेद हो जाय, तब इसको जरासा धोकर गरम पानीमें डुबाना चाहिये । यदि प्लेटका जिलेटिन "ट्रापिकल" न हो अर्थात् गरम देशोंमें बिकनेके लिये उसका जिलेटिन कड़ा न किया हो, तो हाथके सहने लायक गरम पानी (तापक्रम लगभग १८५° फा०) से काम चल जायगा; अन्यथा बहुत गरम, लगभग खौलते हुए, पानीकी आवश्यकता पड़ेगी । इसके लिये पानीसे भरी कड़ाहीको स्टोव या चूल्हे-पर रखना चाहिये और उसमें पाजिटिववाली तश्तरीको रखना चाहिये । फिर पानीको धीरे-धीरे गरम करना चाहिये । हो सकता है कि, बाज कारखानोंके प्लेट इतने कड़े किये हों कि, खौलते पानीसे भी काम न चले । ऐसी दशामें दूसरे कारखानेके प्लेटोंका उपयोग करना चाहिये । गरम पानीमें बेकार जिलेटिन पिघल या घुल जायगा । केवल वहींका जिलेटिन बचा रह जायगा, जहाँ पाजिटिवमें पहले कालापन था । कालेपनकी न्यूनाधिक मात्राके अनुसार जिलेटिन भी न्यूनाधिक मात्रामें बचा रह जायगा; क्योंकि बाइक्रोमेटवाला घोल यहाँके लिये जिलेटिनको कड़ा कर देता है । यदि पानी आवश्यकतासे बहुत अधिक गरम हो जायगा, तो यहाँका भी जिलेटिन पिघल जायगा और चित्रके सूक्ष्म ब्योरे मिट जायँगे । यदि पानी काफी गरम न किया जायगा, तो बहुतसा जिलेटिन (जिसे निकल जाना चाहिये)
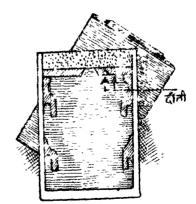
प्लेट घरके भीतरी कोरमें एक, दो या तीन दाँती काट देनी चाहिये । इससे नेगेटिवोंकी पहचानमें सुविधा होती है ।

प्लेटपर ही रह जायगा, जिससे चित्र भद्दा हो जायगा। जब सब अनावश्यक जिलेटिन बह जाय, तब प्लेटको ठंढा होने देना चाहिये और फिर इसको
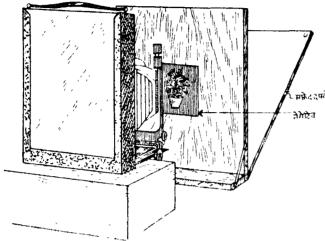
कैमेरेकी सहायतासे नेगेटिवोंकी नकल करके पाजिटिवोंको बनाना चाहिये।

ठंढे पानीमें धोना चाहिये, जिससे सब घुलनशील जिलेटिन बह जाय और इसमें बाइक्रोमेट जरा भी न रह

पाजिटिवके घुलनशील जिलेटिनको घुला डालना चाहिये। इसके लिये इसको स्वच्छ जलकी तश्तरीमें रखकर और तश्तरीको पानीकी कड़ाहीमें रखकर कड़ाहीको गरम करना चाहिये।

जाय। फिर इसको साधारण हाइपोके घोलमें स्थायी करना चाहिये। तब इसे थोड़े समय तक धोकर या तो सूखनेको रख देना चाहिये या आगेकी क्रिया करनी चाहिये।

पाजिटिवोंसे रंगीन छाप—ऊपरकी क्रियाके बाद पाजिटिवमें केवल जिलेटिन ही रह जाता है। जहाँ पाजिटिव खूब काला था, वहाँ अधिक और जहाँ यह बिल्कुल स्वच्छ था, वहाँ कुछ भी नहीं; अन्य स्थानोंमें पाजिटिवके घनत्वके अनुसार न्यूनाधिक मात्रामें। परन्तु जिलेटिनके स्वच्छ रहनेके कारण इस समय पाजिटिव प्रायः स्वच्छ शीशा-सा जान पड़ता है। अब इसको किसी भी रंगमें डुबानेसे जिलेटिनके मात्रानुसार सब जगह न्यूनाधिक रंग चढ़ जायगा और तब पाजिटिव स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगेगा। इस प्रकार रँगे पाजिटिवको जिलेटिन पुते कागजपर दबा देनेसे इसका रंग कागजमें घुस जायगा और कागजपर एकरंगा चित्र छप जायगा। फिर उसी कागजपर अन्य दोनों पाजिटिवोंसे भी इसी प्रकार छापनेसे रंगीन फोटो तैयार हो जायगा।
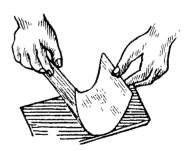
पाजिटिवसे छापना

रँगे पाजिटिवको चित रखना चाहिये। तब इसपर जिलेटिन पुते कागजको रखना चाहिये और सबसे ऊपर मोमी कागज रखना चाहिये।

इस रीतिमें उन्हीं रंगोंका प्रयोग किया जाता है, जो जर्मनी इत्यादि देशोंसे बुकनीके रूपमें आते हैं और साड़ियोंके रंगनेके काममें आते हैं। तीन रंगोंकी आवश्यकता पड़ेगी, गुलाबी, निबुआई (पीला) और नीला। इन

"कागजपर रंगीन फोटो" लेखमे सम्बद्ध चित्र

रंगोंकी कई जातियाँ होती हैं। इसलिये इनमेंसे थोड़ा-थोड़ा रंग लेकर और अलग अलग घोलकर तथा फिर उनको मिलाकर देख लेना चाहिये कि, पीला और नीला मिलानेसे हरा बनता है या नहीं, पीला और गुलाबीसे
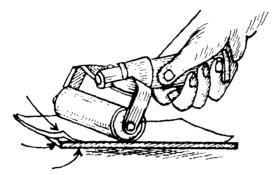
फिर इसपर बेलन कर देना चाहिये।

नारंगी रंग बनता है या नहीं, इत्यादि। कभी-कभी दो रंगोंको मिलानेमें इनमें कोई रासायनिक क्रिया हो जाती है और मिश्रण बदरंग हो जाता है। यदि ऐसा हो, तो दूसरे ट्रेडमार्क या नामके गुलाबी, निबुअई और नीले रंगोंका प्रयोग करना चाहिये। नीले प्रकाश-छनने द्वारा बने नेगेटिवके पाजिटिवको पीलेमें, हरे छननेवाले नेगेटिवके पाजिटिवको गुलाबीमें और तीसरेको नीलेमें रंगना चाहिये।

छापनेका कागज किसी भी ब्रोमाइड कागजको हाइपोके घोलमें ५ मिनट तक रखकर और फिर उसे धोकर और फ़ारमैलिनसे कड़ा करके सुखानेसे बनाया जा सकता है। कागजको एक भाग फारमैलिन और २० भाग पानीमें कड़ा करना चाहिये और फिर फारमैलिनको धोकर बहा न देना चाहिये। कागजको इस घोलसे निकालकर सूखनेको लटका देना चाहिये।

छापनेकी क्रिया—छापनेके लिये पहले नीले रंगमें डुबाये पाजिटिवको लेना चाहिये और इसको धोना चाहिये, जिसमें केवल वही रंग रह जाय, जो जिलटिनमें घुसा हो। शेष रंग बह जाय। तब एक टुकड़े कागजको तीन-चार मिनट तक भिगोना चाहिये; फिर कागजको किसी शीशेपर रखकर स्वच्छ सोखतेसे उसके ऊपर लगे पानीको सुखा देना चाहिये। इसको बीस सेकिंड तक यों ही रहने देना चाहिये। इसने समयमें पाजिटिवको पानीसे निकाल और पानी झाड़कर चित्त रख देना चाहिये (अर्थात् इसका मसाला ऊपर रहे)। फिर इसपर कागजको रख देना चाहिये (मसाला नीचे रहे)। कागजपर मोमी कागज रखकर बेलन (स्क्वीजी) कर देना चाहिये। १० मिनट बाद कागजका एक कोना उलटकर देखना चाहिये कि, काफी रंग उतर आया या नहीं। यदि रंग काफी न हो, तो इस कोनेपर फिर बेलन कर देना चाहिये। १० या १५ मिनटमें काफी रंग चढ़ आना चाहिये।

अब लाल पाजिटिवकी पारी आवेगी। इसको भी इसी तरह उसी कागजपर छापना चाहिये; परन्तु यह परमावश्यक है कि, लाल चित्र नीले चित्रके हिसाबसे बिलकुल ठीक स्थानपर कागज रखने ही पड़े। यदि एक बार लाल पाजिटिवको छू लेनेके बाद कागज हटाया जायगा, तो चित्रमें लीपा पोती हो जायगी।

एक कोना उठाकर देखना चाहिये कि, कागजपर काफी रंग चढ़ आया है या नहीं।

इसलिये बहुत पतले सेलुलायडके एक टुकड़ेकी आवश्यकता पड़ेगी। किसी फिल्म नेगेटिवके मसालेको गरम पानीमें धो डालनेसे सेलुलायड आसानीसे मिल-

जायगा। पाजिटिवपर पहले सेलुलायड इस प्रकार रखना चाहिये कि, एक ओर ½ इंच स्थान विना ढका रह जाय। फिर इसपर गीला जिलेटिन लगाकर कागज रखना चाहिये। कागजको सेलुलायडपर खिसका कर निश्चय कर लेना
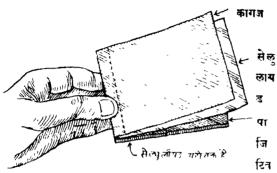
लाल पाजिटिवपर सेलुलायड इस प्रकार रखना चाहिये कि, एक ओर ½ इंच स्थान विना ढका रह जाय और तब इसपर जिलेटिनवाला कागज रखना चाहिये। इससे जिलेटिनवाले कागज-को ठीक स्थानपर रखनेमें सुविधा होती है।

चाहिये कि, यह ठीक स्थानमें है। इसके लिये पाजि-टिव और कागजके आर-पार देखना चाहिये। री-टचिंग डेस्कपर या पुस्तकोंकी दो गड्डियोंपर रखे शीशेपर पाजिटिव और कागजको रखनेसे और नीचे सफेद कागज या दर्पणको तिरछी स्थितिमें इस प्रकार रखनेसे कि, प्रकाश नीचेसे ऊपरको जाय, इस क्रियामें आसानी पड़ती है। जब कागज ठीक स्थितिमें आ जाय, तब उस ½ इंच चौड़े स्थानमें, जहाँ सेलुलायड नहीं है, कागजको दबाकर सेलुलायडको धीरेसे खींच लेना चाहिये। तब मोमी कागज रख कर बेलन किया जा सकता है।

इसी प्रकार पीले पाजिटिवसे भी छापना चाहिये। तब रंगीन फोटो तैयार हो जायगा।

जबतक तीनों रंगोंसे कागजपर छाप न लिया जाय, तब-तक इसे सूखने न देना चाहिये। यदि छपते समय कागजके सूखनेका डर हो, तो इसपर गीला सोखता रख देना चाहिये।

एक पाजिटिवसे कई बार छापा जा सकता है। केवल इसको प्रत्येक बार रंगमें डुबाना पड़ेगा।

त्रुटियाँ—यदि तैयार फोटोमें कोई रंग दूसरोंसे अधिक आ गया है, तो इसपर शेष रंगोंके पाजि-टिवोंसे फिर छापा जा सकता है। आवश्यकता हो, तो तीनों पाजिटिवोंसे दुबारा छापा जा सकता है। यदि फोटो बहुत गाढ़ा छप गया हो, तो इसको दूसरे विना छपे जिलेटिन लगे गीले कागजपर थोड़ी देरतक चिपकानेसे रंग कम किया जा सकता है। परन्तु चेष्टा ऐसी करनी चाहिये कि, पहली ही बार ठीक फोटो बने।

अन्य रीतियाँ—ऊपरकी रीतिके बदले निम्नलिखित रीतियोंका भी प्रयोग किया जा सकता है—

(१) तीनों नेगेटिवोंसे तीन रंगीन छाप, कार-बन रीतिसे, छाप कर तीनों चित्रोंकी परतोंको एक ही कागजपर जमा दिया जा सकता है।
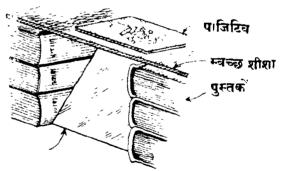
पुस्तकोंकी दो गड्डियोंपर शीशा और उसके नीचे दर्पण या सफेद कागज रखकर शीशेपर पाजिटिवके रखनेमें सुविधा होती है। कारण यह है कि, इस प्रकार प्रकाश पाजिटिवको पार करके आता है।

(२) तीनों नेगेटिवोंसे ऊपरकी रीतिकी तरह तीन पाजिटिव बनाये जा सकते हैं। फिर उनको ऐसे रासायनिक घोलोंमें रखा जा सकता है कि,

उनके जिलेटिनमें चित्रके कालेपनके अनुसार कम या अधिक रंग सोखनेकी शक्ति आ जाय। ऐसी दशामें जिलेटिनको गरम पानीसे बहा देनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। शेष क्रिया इस लेखमें ब्योरेवार बतलायी गयी रीतिकी-सी है।

(३) तीनों नेगेटिवोंसे ऊपरकी तरह तीन पाजि-टिव बनाकर और इनको तीन रंगोंका टोन करके इनके जिलेटिनकी परतोंको हाइड्रोफ्लोरिक एसिडकी सहायतासे उखाड़ कर एक ही कागजपर जमा दिया जा सकता है।

फोटो-प्रोसेस इनग्रेविंग

(लाइन, हाफटोन तथा रंगीन ब्लाक बनाना)

बा० सुरेन्द्रनाथ विद्यालङ्कार

प्रत्येक छापाखानेके सञ्चालक, प्रकाशक एवम् चित्र-कारका इस विषयसे सम्बन्ध है। इस विषयमें पूरी जानकारी रखनेसे उन्हें अपने कार्यमें विशेष सहायता मिलेगी। इसीका ध्यान रखते हुए इस विषयमें अपने कुछ क्रियात्मक अनुभव देनेका यत्न करूँगा। बहुतसे पाठकों-को इस विषयसे कुछ भी परिचय नहीं; इस कारण ब्लाक बनवानेके समय आर्डर देनेमें अथवा ब्लाक बनानेवालेके परामर्शको समझनेमें कठिनता होती है। ऐसे लोगोंके लिये यह लेख कुछ लाभदायक हो सकता है।

"फोटो-प्रोसेस इनग्रेविंग" शब्द बहुत प्रचलित है। इसका अभिप्राय है छाया-चित्रण (फोटोग्राफी) तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा तांबे और जस्ते-पर खोदाई करना। रेखाविधि (लाइन प्रोसेस) और हाफटोन, इन्हीं दो तरीकोंके लिये इस शब्दका विशेष रूपसे व्यवहार किया जाता है। इस विधिसे हर प्रकारके एक रंग तथा विविध रंगोंमें छापनेके लिये चित्र तैयार किये जाते हैं।

फोटो प्रोसेस इनग्रेविंग एक ऐसा हुनर है, जिससे फोटोग्राफी द्वारा धातुपर तेजाबका प्रतिरोधक पदार्थ जमाया जाता है और अरक्षित स्थानोंको तेजाबके द्वारा खिलाया या उड़ाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि, वह स्थान तेजाबसे खाये जाकर सतहसे नीचे हो जाते हैं और उस प्रतिरोधक पदार्थ द्वारा वे सुरक्षित स्थान छपाईकी सतह बन जाते हैं। इस प्रकारसे छापनेकी कोई भी पतर (प्लेट) हो, उसे "रिलीफ प्लेट" कहते हैं, जिसका अर्थ है सुरक्षित प्लेट—चाहे उस रिलीफ प्लेटकी निचली सतह तेजाब द्वारा अथवा यन्त्र द्वारा या हाथसे काटकर की गयी हो। टाइप तथा वुड-कट ब्लाक (लकड़ीपर खोदे गये ब्लाक) "रिलीफ प्लेट"के पुराने तरीके हैं।

प्रोसेस इनग्रेविंग प्रायः सारा ही फोटोग्राफीपर निर्भर करता है। प्रकाशके द्वारा किसी वस्तुकी पूर्ण एवम् स्थायी प्रतिलिपि लेनेकी कलाका नाम ही "फोटोग्राफी" है। इसी कारण फोटो इनग्रेविंग प्रोसेस भी एक उच्च वैज्ञानिक विधि है, जो कि, प्राकृतिक नियमोंपर अवलम्बित है।

जैसा कि, लिखा गया है, रेखा-विधि (लाइन प्रोसेस) तथा हाफटोन, दो मुख्य तरीके हैं। इनकी कई किस्में हैं और कई तरहसे इन्हें परस्पर

मिलाया भी जा सकता है। इसलिये इन्हीं दोनों विषयों-पर विशेष रूपसे प्रकाश डाला जायगा।

रेखा ब्लाक (लाइन ब्लाक)

इस तरीकेसे केवल ऐसे ही चित्र तैयार किये जा सकते हैं, जिनमें केवल रेखाएँ ही हों। इस तरीकेमें बीचके किसी भी प्रकारके रंग नहीं लाये जा सकते। जो भी आवश्यक अङ्ग है, केवल ठोस (सालिड) रेखाओंमें एक ही सतहमें होगा और स्याही लगानेपर सफेद या रंगीन कागजपर छापा जा सकेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि, लाइन ब्लाकोंके लिये ऐसे ही मूल चित्र (डिजाइन) सफेद कागजपर, गाढ़ी काली स्याहीसे फोटोमें वे रेखाएँ स्पष्ट नहीं आयँगी और ब्लाकको सुन्दर बनानेके स्थानपर भद्दी एवम् मोटी रेखाएँ ब्लाकमें हो जायँगी। इसमें ग्राहकका ही लाभ है—यदि मूल चित्र साफ-सुथरा तथा गाढ़ी काली स्याही-में अच्छी रेखाओं द्वारा बनाया जाय। किसी भी छायाचित्र (फोटोग्राफ) का लाइन ब्लाक नहीं बन सकता, जबतक कि, उसका रेखाओंमें मूल चित्र न बनाया जाय। लकड़ीके बने ब्लाक तथा लाइन

लाइन ब्लाकोंके नमूने।

परिमित रेखाओं द्वारा ही, बनाये जायँ; उनमें किसी प्रकारकी टूटी, किरकिरी या हल्की रेखाएँ अथवा जमीन रंगी [वाश टिंट] न होनी चाहिये; अन्यथा ब्लाकोंका परिणाम अच्छा नहीं होता।

बहुतसे चित्रकार इस तरीकेकी अनभिज्ञताके कारण लाइन डिजाइनोंमें ऐसी ही अनिश्चित, हल्की एवम् किरकिरी रेखाएँ दे देते हैं, जिनसे मूल चित्रमें स्याही-के हल्की तथा गहरी होनेके कारण देखनेमें तो कुछ सुन्दरता मालूम पड़ती है; परन्तु ब्लाक बनाने-पर वह असर नहीं रहता। कागज मैला होनेके कारण ब्लाकमें बड़ा अन्तर है। सुन्दरता तथा यथार्थताका इच्छुक व्यक्ति सदा लाइन ब्लाकको ही अच्छा सम-झता है। इसके कई कारण हैं। पहले, चित्रकारके द्वारा भावोंको पूर्ण रूपसे चित्राङ्कित किया जा सकता है और फिर वही चित्र जिस आकार (साइज) में छोटा या बड़ा रखना हो, ठीक उसी रूपमें, बिना परिवर्तन किये, लाइन ब्लाकमें लाया जा सकता है जो कि, 'वुड-कट ब्लाक' में सर्वथा सम्भव नहीं। दूसरे, लकड़ीपर उल्टी खोदाई होनेके कारण सुन्दरता कम होती है। तीसरे, लकड़ीके ब्लाक स्थायी नहीं होते।

लाइन ब्लाकोंमें गाढ़े रंगको हलका करनेके लिये कुछ टिंटों (शेडिंग मीडियम) का प्रयोग किया जाता है। ये कई प्रकारके होते हैं। ये केवल एक-रंगे या रंगीन ब्लाकोंमें रंगका परस्पर अन्तर करनेके लिये दिये जाते हैं। कुछ नमूने इस चित्रमें देखिये।

लाइनमें दोरंगे, तिरंगे, चार रंगे एवम् कई रंगोंके ब्लाक भी तैयार किये जा सकते हैं। लिथोके तरीके-

लाइन ब्लाकोंके शेडिंग मीडियम।

पर जितने रंगका चित्र बनाना हो, उतने ही रंगके ब्लाक तैयार करने पड़ते हैं। इस प्रकारके रंगीन लाइन ब्लाकोंके लिये भी एक-रंगे मूल चित्र, सफेद कागजपर, काली स्याहीसे बनाने चाहिये और मूल चित्र खुली रेखाओं (ओपन लाइन्स) द्वारा ही बनाया जाना चाहिये। मूल चित्रके ऊपर पारदर्शक कागज देकर अथवा डिजाइनकी पीठपर रंग देकर दिखाना चाहिये। मूल चित्रपर रंग दे देनेसे रेखाओंकी सफाई मारी जाती है और गाढ़े रंगोंमें काली अथवा अन्य रंगोंकी रेखाएँ रहनेसे उन्हें फोटो द्वारा अलग करना कठिन हो जाता है। प्रत्येक प्रकाशकको इस प्रकारके मूल चित्र बनवाते समय इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये।

लाइन डिजाइनकी प्रतिलिपि लेनेके लिये पहले उसे प्रोसेस कैमेरेको कापी बोर्डपर लगाना चाहिये। इसका कैमेरा बहुत बड़ा तथा भारी होता है और एक स्प्रिंगके स्टैंडपर भूलता है तथा उसीपर चित्रको छोटा बड़ा करनेके लिये छोटे पहियेके सहारे चलाया जाता है। (चित्र-संख्या ३ देखिये।) फोटो कैमेराकी अपेक्षा लेंसके अतिरिक्त एक त्रिपार्श्व (प्रिज्म) लगा रहता है, जिसमेंसे मूल चित्रका प्रतिबिम्ब लेंसमेंसे होकर सामनेके अन्ध शीशे (ग्राउन्ड ग्लास) पर पड़ता है। इससे मूल चित्र सीधा ही फोटो प्लेटपर उतर आता है। जब वह प्लेटसे ताँबे या जस्तेपर उतारा जाता है, तब वह उसपर उल्टा उतरता है और छापनेसे कागजपर ठीक मूल चित्रके अनुसार सीधा ही छप जाता है। इसी कारण इस प्रिज्मको इसमें लगाया जाता है। इसके न लगानेसे मूल चित्रकी प्रतिलिपि प्लेटपर उल्टी ताँबे या जस्ते पर सीधी तथा छापनेपर कागजमें उल्टी हो जायगी। धूपमें या आर्क लैम्पकी तेज रोशनीमें फोकस कर उसका फोटो लिया जाता है। इसमें मन्द गति (स्लो स्पीड) की पत्तरें ही व्यवहारमें लायी जाती हैं, जिन्हें प्रोसेस प्लेट कहते हैं। वे केवल अन्धेरी कोठरीमें लाल

रोशनीमें खोली जाती हैं। अब वह मूल चित्र आवश्यक साइज़में नेगेटिवपर उतारकर तैयार हो गया है। उसे ताँबे या जस्ते (जिंक) की धातुपर उतारनेके लिये उस प्लेटको पत्थरके चूर्णसे माँज-कर अमोनिया-बाई-क्रोमेट तथा एल्बूमिनके घोलका पतला लेप किया जाता है; क्योंकि यह घोल (सोल्यूशन) प्रकाशके असरको शीघ्र लेता है; इसलिये अन्धकारमें ही इसको लेपकर आगके ऊपर सुखा लेना चाहिये। यह ताँबे या जस्तेकी चादर पालिश की हुई १६ गजमें तैयार आती है। अब उस धातुकी प्लेटको फोटो नेगेटिवके
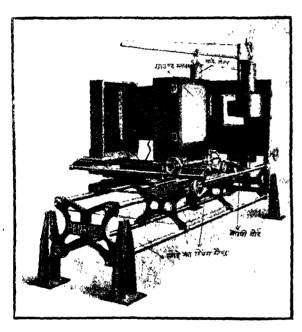
चित्र-संख्या ३। फोटो-प्रोसेस कैमरा।

चौरस ब्लाकका नमूना।

साथ एक फ्रेममें बन्द कर धूप या तीव्र प्रकाशमें रखा जाता है। एल्बूमिनके जिन भागोंपर प्रकाशका असर होता है, प्लेटपर स्याही देनेसे ये भाग स्याही पकड़ लेते हैं और शेष भाग पानीमें रगड़नेसे साफ हो जाते हैं। इस प्रकारसे उस मूल चित्रकी प्रतिलिपि ताँबे या जस्तेपर पूरी उतर आती है। अब उसपर रालका चूर्ण छिड़ककर गर्म करनेसे वह स्याहीमें पिघलकर मिल जाता है और स्याहीकी तह स्थिर हो जाती है।

उस प्रतिलिपिको प्लेटपर खोदनेके लिये जस्तेको शोरेके तेजाब (नाइट्रिक एसिड) तथा ताँबेको आयरन-पर-क्लोराइडसे खिलाया जाता है। खोदाई करते समय रेखाएँ नीचेसे न खोदी जायँ—उसे रोकनेके लिये मोमसे मिश्रित स्याही देकर गर्म किया जाता है, जिससे मोम पिघलकर रेखाओंके इर्द-गिर्द आकर जम जाती है अथवा खूब बारीक 'ड्रंगन्स ब्लडका' चूर्ण इन रेखाओंकी चारों ओर देकर गर्म करके पिघला दिया जाता है। इस प्रकार कई बार करनेपर आवश्यकतानुसार गहराई कर ली जाती है और बादमें उसे काटकर लकड़ीपर बिठा दिया जाता है। यह ब्लाक छापनेके लिये तैयार हो गया है। इसे जिस रंगमें छापना चाहे, उसी रंगकी स्याही देकर छाप सकते हैं।

हाफटोन प्रोसेस (हाफटोन ब्लाक)

जिस प्रकार लाइन ब्लाक काली तथा सफेद रेखाओंमें तैयार होता है, उसी प्रकार हाफटोन ब्लाक द्वारा बहुत तरहके मध्यस्थ प्रकाश (टोन्स) सहित चित्र तैयार किये जा सकते हैं—जैसा कि, साधारण छायाचित्र अथवा हाथके बने वाश डिज़ाइन में होता है। ये टोन्स बिन्दुओं द्वारा दिये जाते हैं, जो कि, समान अन्तरसे होते हैं। बहुत छोटे बिन्दुओं (डाट्स) द्वारा उच्चतम प्रकाश (हाई लाइट्स) तथा बड़े एवम् परस्पर जुड़े बिन्दु गहराई (शेड्स) के टोन देते हैं। इस विधिमें पूर्णता इतनी है कि, इस प्रकार टोन्सके साथ-साथ वही बिन्दु छाया-चित्र अथवा डिज़ाइनके पूरे ब्योरे (डिटेल) को अभिव्यक्त करनेमें सहायक होता है। यह बिन्दु एक विशेष प्रकारके काचके द्वारा दिये जाते हैं, जिन्हें स्क्रीन कहते हैं। स्क्रीन दो काचोंको मिलाकर बनाया जाता है।

प्रत्येक कांचपर समानान्तर कोणी रेखाएँ खुदी होती हैं और उन्हें इस प्रकारसे परस्पर जोड़ा जाता है कि, दोनों कांचकी रेखाएँ एक दूसरेपर समकोणके रूपमें आकर पड़ें। छोटे वर्गोंकी शकल कांचपर बन जाती है। फोटो नेगेटिव बनानेसे पूर्व लेंस और नेगेटिवके बीचमें स्क्रीनको रखकर प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़) दिया जाता है।

स्क्रीनमें ये रेखाएँ इंचमें ४५ से लेकर ३०० तक होती हैं। प्रायः ६५ ८०--१००--१३३ तथा १५० प्रति इंच भेज देना चाहिये। इस ओर ध्यान न देनेके कारण ही दैनिक पत्रोंके ब्लाक केवल स्याहीके धब्बेके समान ही छपते हैं और नीचेके छपे परिचयसे ही उस चित्रकी कल्पना करनी पड़ती है! अन्यत्र चित्रों द्वारा स्क्रीनोंके कुछ नमूने दिखाये गये हैं।

स्क्रीनोंका चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि, स्क्रीनकी रेखाएँ जितनी मोटी होंगी, उतना ही चित्रका ब्योरा कम हो जायगा। ६५ या ८५ रेखाके
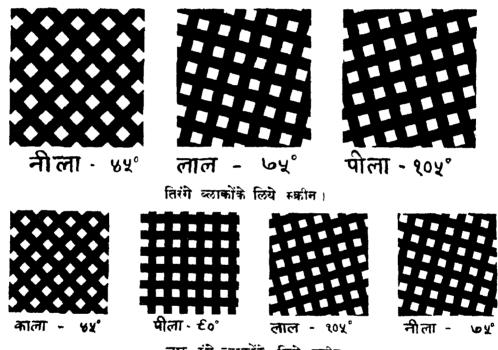
तिरंगे ब्लाकोंके लिये स्क्रीन।

चार रंगे ब्लाकोंके लिये स्क्रीन।

के रेखाओंवाले स्क्रीन ही अधिक व्यवहारमें लाये जाते हैं। जितना चिकना (ग्लेज़) कागज होगा, उसपर छापनेके लिये उतना ही सूक्ष्म (फाइन) स्क्रीन ब्लाकके लिये होना चाहिये और जितना खुर्दरा (रफ) कागज़ होगा, उतना ब्लाकका स्क्रीन भी मोटा होना चाहिये। छपाईकी उत्तमताके लिये ब्लाक बनानेसे पूर्व कागज-की किस्म निश्चित कर लेनी चाहिये। सबसे अच्छा तो यह होगा कि, यदि कागजके अनुसार स्क्रीन न जाँचा जा सके, तो ब्लाक बनानेवालेके यहां उस कागज़का नमूना साथ स्क्रीन दैनिक पत्रों या रफ कागजोंपर छापनेके लिये उपयुक्त स्क्रीन हैं। स्क्रीनकी रेखाएं जितनी बारीक होंगी, १३३–१५० आदि, वैसे ही छायाचित्र अथवा डिजाइनोंके डिटेल्स अधिक रहेंगे, जो कि चिकनी सतहके कागजपर छापे जा सकते हैं। १०० लाइन तथा १३३ लाइन साधारण मासिक पत्रों तथा पुस्तकोंके लिये तथा १५० एवम् उससे ऊपरके स्क्रीन चित्रावली अथवा मोटे आर्ट पेपरपर छापनेवाले चित्रोंके लिये व्यवहारमें लाने चाहिये।

नेगेटिव लेनेके बाद तांबे तथा जस्तेपर छापनेका

तरीका लाइन ब्लाक के ही समान होता है। हाफटोन ब्लाक ताँबेपर ही अच्छे, मजबूत तथा स्थायी बनते हैं; परन्तु मोटा स्क्रीन यदि प्रयुक्त किया जाय, तो जस्तेपर भी हाफटोन ब्लाक बनाया जा सकता है। धातुकी प्लेटपर उतारनेके लिये फिश ग्ल्यू तथा अमोनिया-बाइक्रोमेटके घोलकी पतली तहका लेप किया जाता है और प्रिंटिंग फ्रेममें नेगेटिवके साथ रखकर प्रकाशमें रखी जाती है। प्लेटपर चित्र उतर आनेपर उसे स्पष्ट रूपसे देखनेके लिये नीला रंग (नील) में प्लेटको डालकर आग पर सुखा दिया जाता है।

ब्लाककी खोदाई करते समय चित्रके शेड्स तथा उच्चतम प्रकाश (हाई लाइट्स) को ठीक रखनेके लिये कई बार करके धीरे-धीरे खोदाई की जाती है।

हाफटोन ब्लाक बनानेके लिये भी डिजाइनोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। मूल चित्र रंगीन पीलापन लिया हुआ, नीला, हरा तथा लाल रंगका न होना चाहिये। हलके छपे चित्रोंसे भी अच्छे ब्लाक नहीं तैयार होते।

हाफटोन ब्लाक कई प्रकारके बनाये जाते हैं—जैसे -चौरस, अण्डाकार, गोल, कट-आउट तथा विनेट इत्यादि। उनके नमूनेके कुछ चित्र अन्यत्र दिये गये हैं।

तिरंगे हाफटोन ब्लाक

एक छोटेसे सूराखसे यदि सूर्यकी किरण अंधेरी कोठरीमें आकर प्रिज्मसे टकराकर एक सामने लगे पर्देपर पड़े, तो उसका प्रतिबिम्ब इन्द्रधनुषके रंगोंके समान एक रंगीन रेखाके रूपमें पड़ेगा। इसका कारण यह है कि, उस प्रिज्मने सूर्यकी उस किरणको असल भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे प्रिज्मेटिक रंग कहते हैं। यह रंग भी इन्द्र-धनुषके रंगोंके क्रममें एक दूसरेके साथ समाये हुए होते हैं और उन्हें अलग-अलग विभक्त नहीं किया जा सकता। क्रम उनका इस प्रकार होता है—लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला तथा जामुनी। पीला रंग एक तरफ से धीरे-धीरे नारंगी रंगमें और दूसरी ओरसे हरे रंगमें मिल जाता है। इसी प्रकार अन्य रंग भी एक दूसरेसे मिलकर लुप्त हो जाते हैं। इन छः रंगोंको दो भागोंमें विभक्त किया जाय, तो तीन रंग (लाल, पीला तथा नीला) मुख्य रंग कहलाते हैं, जो किसी अन्य रंगके मिलानेसे नहीं बनते, बल्कि उन्हींके मिलानेसे अन्य रंग बनते हैं।

नारंगी (लाल पीला मिलानेसे), हरा (नीला पीला मिलानेसे) तथा बैंगनी (लाल नीला मिलानेसे)—ये तीन रंग गौण हैं। इन्हींको पूर्णतया समझनेके लिये गोला रंगीन चित्र देखिये। इन तीनों रंगोंको बराबर मिलानेसे काला रंग बनता है, जो कि चित्रमें बीचके चक्रसे पता लगता है।

इसी आधारपर तैलचित्र तथा जल रंगके बने चित्रोंको तीन या चार रंगके ब्लाकोंमें निकाला जाता है। ब्लाक बनानेवाला ब्लाक बनाते समय रंगको इस प्रकार विभक्त कर देता है कि, प्रेसमें उन तीनों ब्लाकोंको तीनों मुख्य रंगोंमें ठीक (एकपर एक) करके छापनेसे चित्रकी प्रतिलिपि तैयार हो जाती है।

दो भिन्न-भिन्न रंगोंकी वस्तुएँ लीजिये। जैसे, हरे पत्ते तथा लाल टमाटर। अब इन्हें हरे काचसे देखिये, तो टमाटरका रंग काला और पत्तोंका रंग हलकासा नजर आयगा। इसी प्रकार यदि हरे काचको बीचमें रख कर फोटो नेगेटिव लिया जाय और फिर काली स्याहीमें छापा जाय, तो टमाटर काला तथा पत्ते हलके रंगमें छपेंगे। यदि उसीको लाल स्याहीमें छापें, तो टमाटर लाल और पत्ते शेडिंगके हिस्सेके अतिरिक्त शेष भाग हलके छपेंगे।

अब इन्हीं वस्तुओंको लाल काचसे देखिये, तो हरे पत्ते लगभग काले नजर आयँगे और टमाटर हलके रङ्गमें नजर आयगा। इस रङ्गके काचसे लिया गया ब्लाक नीले रङ्गमें छापा जाता है।

इसी प्रकारसे बैंगनी रङ्गके काचमें पीला भाग
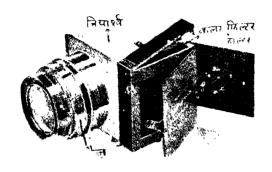
लेन्स तथा त्रिपार्श्व (प्रिज्म्) । विनेट ब्लाकका नमूना
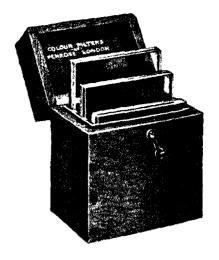
कलर फिल्टर । कट-आउट ब्लाकका नमूना

१५० लाइन

१३३ लाइन

१०० लाइन

८५ लाइन

६५ लाइन

स्क्रीनोंके भेद

[फोटो-प्रोसेस इनग्रेविंग" लेखसे सम्बद्ध चित्र]

नजर आयगा। तीन प्रकारके रंग छाननेके काचोंको कलर फिल्टर कहते हैं। (चित्र देखिये।) रंगीन फोटो उठाते समय यह कलर फिल्टर लेंसके आगे लगाये जाते हैं। (चित्र देखिये।) यह फिल्टर बाकी दो रंगोको हलका करके एक ही रंगको मुख्यतया निकालकर नेगेटिवपर डालते हैं। जैसे, बैंगनी रंगका फिल्टर पीले रङ्गको, हरा फिल्टर लाल रङ्गको तथा नारंगी या लाल रङ्गका फिल्टर नीले रङ्गको मुख्यतया खींचता है। यही तीन प्लेटें, छापनेके समय, पीले, लाल और नीले रङ्गमें (एकके ऊपर एक करके) छापी जाती हैं।

ऊपर बताया है कि, यदि तीनों रङ्ग ठीक एक दूसरेके ऊपर पड़ें, तो अमर काले रङ्गका होगा। इसी प्रकार इन तीनों प्लेटोंके बिन्दु भी यदि ठीक एकपर एक पड़ें, तो अन्य रंग देनेके स्थानपर काला असर देंगे। इसलिये स्क्रीनका उचित कोण कर देनेसे ही यह बेहूदापन दूर किया जा सकता है।

साधारणतया सभी हाफटोन ब्लाक ४५° अंशके कोण (डिग्री) में बनाये जाते हैं अर्थात् जिस स्क्रीन की रेखाएँ परस्पर एक दूसरेको ४५° अंशके कोणमें काटती हों, उस स्क्रीनसे नेगेटिव लिया जाता है। तिरंगे बनानेसे पूर्व हर एक रंगकी प्लेटके लिये स्क्रीनको भिन्न-भिन्न कोणोंमें घुमाया जाता है या उन-उन कोणोंवाले स्क्रीन बदल-बदलकर लगाये जाते हैं। पीलेके लिये १०५° या १५°, लालके लिये ७५° तथा नीलेके लिये ४५° कोणके स्क्रीन व्यवहारमें लाये जाते हैं। चित्रमें उन्हीं कोणोंको बड़े आकारमें दिखाया गया है। चार रंगे ब्लाकोंके लिये पीला ६०°, लाल १०५°, नीला ७५° तथा काला ४५° कोणमें स्क्रीन घुमाया जाता है। यदि आप किसी तिरंगे या चार रंगे छपे चित्रको शीशे (आई ग्लास) से देखें, तो सब रंगोंके कोण ठीक मालूम होंगे। उसे स्पष्टतया समझानेके लिये दाँतोंको बड़े रूपमें चित्रमें दिखाया गया है। रंगीन फोटो या मूल चित्रोंका नेगेटिव पैनक्रोमेटिक प्लेटपर एकदम अन्धकारमें उठाया जाता है।

इसकी विधि एकरंगे हाफटोन ब्लाकोंके समान ही है; परन्तु इसके लिये योग्य कारीगरकी आवश्यकता होती है, जो ब्लाकमें बिन्दुओंके साइजको इस अनुपातमें रखे कि, छापनेके बाद मूल चित्रके साथ छपे रंगोंका अधिकतर मेल हो। ब्लाकोंकी छपाई ऐसी ही स्याहीसे की जाय, जो पारदर्शक (ट्रान्सपेरन्ट) एवम् स्थायी हो और इसीके निमित्त तैयार की गयी हो। मनमानी—चेमेलकी स्याहीसे छापनेपर चित्रकी सुन्दरता नष्ट हो जायगी—चाहे ब्लाक कितना ही अच्छा क्यों न बना हो।

छापनेके समय पहले पीला ब्लाक, फिर उसपर लाल और अन्तमें नीला ब्लाक छापा जाता है। इस प्रकार तीनों रंग जब ठीक अपने कोणपर (एकपर एक करके) छप गये, तब एक बहुरंगा चित्र तैयार हो गया। चित्रकी अधिक सुन्दरताके लिये चौथा काला या भूरा (ब्राउन) रंग छापा जाता है। साधारणतया चौथे रंगकी आवश्यकता नहीं पड़ती; क्योंकि इन्हीं तीनों रंगोंसे ही वह अभिप्राय सिद्ध हो जाता है।

तिरंगे चित्रोंकी उत्तमता स्याही, छपाई, कागज़ एवम् ब्लाकपर निर्भर करती है। इनमेंसे यदि एक भी ठीक न हो, तो छपाई सुन्दर नहीं हो सकती।

रंगीन चित्रोंपर सुनहली या चाँदीका रंग भी छापा जाता है। उसका लाइन ब्लाक बनाकर सुनहली या चाँदीकी स्याही अथवा पाउडर देकर छापा जाता है। कोई भी हाफटोन ब्लाक सुनहली स्याहीमें नहीं छापा जा सकता।

लेख अधिक लम्बा हो रहा है; इसलिये इसके अन्य विषयोंकी चर्चा नहीं की जाती है। एक रंगे या रंगीन डिजाइन, ब्लाक बनानेके लिये, कैसे बनाने चाहिये, इसपर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा।

प्रत्यक्ष उत्तर तो यह है कि, लिङ्गात्मक प्रजनन (Sexual reproduction) अलिङ्गात्मक प्रजनन (Asexual

मनुष्यका शुक्राणु

reproduction) की अपेक्षा अधिक मितव्ययी होता है। लिङ्गात्मक प्रजननमें केवल दो सूक्ष्म कोष जनककी वास्तविक प्रतिमूर्त्ति उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं। दूसरा उत्तर यह है कि, अलिङ्गात्मक प्रजननका उच्च श्रेणीके प्राणियोंकी जटिल रचनासे मेल नहीं खाता। एक पक्षीका शरीर विभाजन द्वारा सन्तानोत्पादन करना अथवा एक हाथीका ग्रन्थि उत्पन्न करना तो हम लोगोंके ध्यान तकमें नहीं आ सकता। तीसरा उत्तर यह है कि, कीटाणुकोष (Germ cells)का साधारण शरीर-कोषोंसे विभिन्नताके औचित्यका इससे निदर्शन होता है कि, इसमें शरीरकोषोंके विकासके लिये स्वतन्त्र मार्ग मिल जाता है और शारीरिक जीवनकी घटनाओंके प्रभावसे सन्तानोत्पादक कोष कमसे कम कुछ अंशोंतक रक्षित रहते हैं।

क्रमशः धीरे-धीरे द्विरूपक कीटाणुकोष (Dimosphic germ cells) निश्चित रूपसे सन्तानोत्पादनके साधन बन गये। इनमें एक प्रकारका कीटाणुकोष, पोषक द्रव्योंसे भरा रहनेके कारण, अपेक्षाकृत दूसरेसे बड़ा होता है और डिम्भ (Ovum) कहलाता है। दूसरे प्रकारका कीटाणुकोष अपेक्षाकृत छोटा होता है और केन्द्रकके परिमाणसे अत्यल्प सिटोप्लाज्म (Cytoplasm) से युक्त होता है। इसे शुक्राणु (Spermatozoon) कहते हैं। इन द्विरूपक सन्तानोत्पादक कोषोंकी, जो परस्पर विषम, किन्तु सहायक गुणवाले होते हैं, उत्पत्ति कुछ श्रेणीके प्रोटोजोआके बड़े और सूक्ष्म शुण्डोंकी प्रतिकृति है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि, कीटाणु-कोषोंकी द्विरूपकताको क्यों औचित्य प्रदान किया गया। इसका उत्तर यह है कि, विषम-संयोग (Cross-Fertilisation) लाभदायक होता है। उन सभी प्राणियोंमें (जिनमें विषम-संयोगात्मक सन्तानोत्पादन होता है) पारस्परिक आनुवंशिक गुणों (Heredity) के सम्मिश्रणसे विशेष सत्त्ववान् सन्तानकी उत्पत्ति होती है। लिङ्गभेदके विकासमें इसके बादकी सीढ़ी
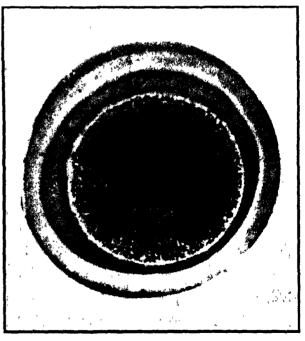
इसमें दुग्धपायी प्राणियोंके डिम्भ स्पष्ट दिखाई देते हैं

भिन्न प्रकारके दो जीवोंकी उत्पत्ति है—शुक्राणु-उत्पादक

(Spermproducer) और डिम्भ-उत्पादक (Ovum-producer)—नर और मादा । वौल्वौक्समें तो हम देखते हैं कि, एक उपनिवेश तो अगणित डिम्भ और शुक्राणु (Ova and Sperms) उत्पन्न करता है और दूसरे उप-

क्रोसोफिलाके अतिवर्द्धित क्रोमोसोम

निवेश केवल डिम्भ या केवल शुक्राणु पैदा करते हैं। यहाँ एक मूल प्रश्न उठता है कि, एक ही जीवश्रेणीमें कैसे दो प्रकारके जीवोंकी उत्पत्ति होती है ? यह पाया गया है कि, नर-शक्ति अपव्ययी (Katabolic) और मादा शक्ति विशेष

इसमें क्रोमोसोम दिखाई पड़ते हैं

मितव्ययी (Anabolic) होती है और शारीरिक प्रकिया (Metabolism) का यह भेद लिङ्गभेदसे सम्बद्ध समझा जा सकता है। स्पंजों (Sponges) में ये कीटाणु-कोष शरीरके मध्य स्तरमें पृथक्-पृथक् छितराये हुए उत्पन्न होते हैं और एक ही स्पंजमें डिम्भ और शुक्राणु, दोनोंकी उत्पत्ति देखी जा सकती है। लिङ्ग-भेदमें तब एक महत्त्वपूर्ण विकास हुआ, जब सन्तानोत्पादककोष (Gametes) की उत्पत्ति छितराये होनेके स्थानपर केन्द्रीभूत होने लगी और जब कोषोंके ये उत्पत्ति-केन्द्र आसन्न-शरीर तन्तुओं द्वारा आवृत होकर उनसे रक्षित और पोषित होने लगे। पहले तो डिम्भ-ग्रन्थि (Ovary) और शुक्रग्रन्थि (Testes) की विभिन्नता अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा ही ज्ञात हो सकती थी; परन्तु क्रमशः उनमें डिम्भ-प्रतिवर्द्धक [Egg-multiplying] और शुक्र-प्रतिवर्द्धक (Spermmultiplying) से सम्बद्ध सहायक अवयवोंकी विशेष उन्नति हुई। इसके अतिरिक्त
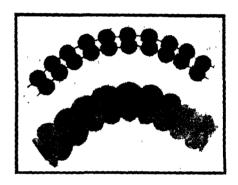
इसमे क्रोमोसोमके अभ्यन्तर 'गेने" दिखाई पड़ते हैं। 'गेने" ही वंश-परम्पराको स्थित "रखते हैं

डिम्भ-ग्रन्थि और शुक्राणुके साथ बहुतसे ऐसे तन्तु-जाल संयुक्त हो गये, जिनका डिम्भ-उत्पादन- (Oogenesis) अथवा शुक्र-उत्पादन (Spermatogenesis) से कोई भी सम्बन्ध नहीं था। सहायक ग्रन्थि एवम् रजोवीर्यवाहिनी नलिकाओंकी उत्पत्ति हुई।

बहुतसे मेरीदंडके साधारण प्राणियोंमें दोनों लिङ्ग, देखनेमें एक रूपके होते हैं और कोई निश्चित लिङ्ग सम्बन्धी आचरण भी प्रदर्शित नहीं करते। जैसे जैसे हम उच्च श्रेणीके प्राणियोंकी ओर बढ़ते जाते हैं, क्रमशः लिङ्गकी द्विरूपताका विकास स्पष्टतर होता जाता है। दोनों लिङ्गोंकी जननेन्द्रियोंके सहायक अवयवों

और तन्तुओंके आधारपर सम्पूर्ण शरीरकी रचना ही लिङ्गभेदके दृष्टि-कोणसे द्विरूपक होने लगी। बहुतसे अवयव (जिनका जननेन्द्रियसे कोई सम्पर्क नहीं) प्रकट होने लगे और इस प्रकार पुँल्लिङ्ग और स्त्री-

मनुष्यके क्रोमोसोम। पुरुषके शुक्राणुमें सम और विषम शुक्राणु संख्याओंमें क्रोमोसोम होते हैं और स्त्रीकी योनिमें सिर्फ सम संख्याओंमें क्रोमोसोम होते हैं।

लिङ्ग (नर और मादा) जीवोंकी उत्पत्ति हुई।

उन विपरीत लक्षणों और व्यवहारोंके (जिनसे लिङ्गकी द्विरूपता उत्पन्न होती है) कई प्रकार हैं। प्रथम तो मादाकी डिम्ब-ग्रन्थि और पुरुषकी शुक्र-ग्रन्थिमें (जो प्रधान जननेन्द्रियां हैं) यह द्विरूपता हो सकती है और इतने भिन्न हो सकते हैं कि, एक बार देख लेनेसे ही पहचाने जा सकते हैं। उदाहरणार्थ दुग्धपायी जीवों [Mammals]में शुक्र-ग्रन्थि (Testes), एक कोषमें, शरीरके बाहर, रहती है तथा डिम्बग्रन्थि [Ovary] शरीरके अन्दर रहती है। दूसरे यह द्विरूपता सहायक जननेन्द्रियों (नर और मादा) में वास्तविक रति-प्रसङ्ग करानेवाले अवयवोंकी प्रत्यक्ष विभिन्नतामें प्रकट हो सकती है। तीसरे प्रकारसे यह द्विरूपता अनेक प्रकार की विशेषताओंमें प्रकट हो सकती है, जैसे, बारह-सिंघेमें सींगोंका होना, सिंहमें अयालका होना, मयूरमें सुन्दर कलँगी और पुरुषमें मूँछोंका होना है। इनमें से बहुतसे लिङ्ग-विभेदात्मक अवयवोंके रचनात्मक और क्रियात्मक गुण होते हैं।

डार्विनने मैथुनिक चुनाव (Sexual Selection) के सिद्धान्तको, लिङ्ग-सम्बन्धी जो गौण लक्षण बारह-सिंघे, मयूर आदि प्राणियोंमें पाये जाते हैं, उनकी व्याख्या करनेके लिये प्रतिपादित किया था। उनके अनुसार नरोंमें मादा सङ्गीके लिये प्रतिस्पर्द्धा रहती थी और मादा उनमेंसे एकका वरण करती थी। ऐसी अवस्थामें मादा अधिक सुन्दर, हृदयहारी और फुर्तीले सङ्गीको पसन्द करती थी। किन्तु तुलनात्मक मनोविज्ञानसे पता चलता है कि, मादा किसी नरको गुण-विशेषके कारण पसन्द नहीं करती, वरन् वह ऐसे नरको आत्मसमर्पण करती है, जो उसकी रतिवासनाको पूर्ण रूपसे जागृत करनेमें सफल होता है। डार्विनका यह सिद्धान्त बहुत समय तक,
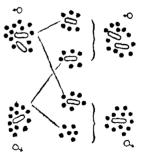
क्रोमोसोमका प्रभाव

बिना किसी शङ्काके, माना गया; परन्तु शीघ्र ही पता चल गया कि, कितनी ही प्रधान बातोंमें इससे काम नहीं चल सकता।

मैथुनिक चुनावके सिद्धान्तका एक प्रबल विरोधी

वालेस (Wallace) था। कनिंघम (Cunningham) के अनुसार ये द्विरूपताबोधक अवयव किसी उत्तेजना-विशेष (Special Irritation) के आनुवंशिक फलस्वरूप हैं। इस सिद्धान्तपर लामार्क (Lamarck)

पक्षी जिसमें आधे भागमें नरके, आधेमें मादाके लक्षण हैं

के स्वाभाविक विकासके सिद्धान्तकी छाप है। हेसे और डौफलाइन (Hesse and Doflein) ने लिङ्गसम्बन्धी इन द्विरूपक चिह्नोंकी व्याख्या करनेके लिये अति-शक्ति व्यवहारके सिद्धान्त Surplus Usage Theory) का प्रतिपादन किया है; किन्तु यह सिद्धान्त भी कामेरर (Kammerer) द्वारा गलत सिद्ध हो गया है। थामसन और गेडीज (Thomson and Geddes) ने इस घटना को शरीरान्तर्गत होनेवाली रासायनिक प्रक्रियाओंके फल के प्रारम्भिक विभेद द्वारा जनित माना है। फ्ल्यूगेर, स्टार्लिंग और शाफेर (Pfluger, Starling and Schafer) ने इसके लिये हारमोन सिद्धान्त (Hormone Theory) का प्रतिपादन किया है, जो वर्त्तमान समयमें प्रचलित है। इस सिद्धान्तके अनुसार उत्पादक ग्रन्थियोंसे कुछ द्रव्यविशेष उत्पन्न होते हैं, जो उस लिङ्गके लिये वैशेषिक (Specific) होते हैं और जो रक्तमें मिलकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाते हैं तथा उन्हींसे दोनों लिङ्गोंके द्विरूपक लक्षणोंकी उत्पत्ति होती है।

सन्तानके लिङ्ग-निर्णायक कारणोंके प्रश्नपर प्राचीन कालसे ही विशेष दिलचस्पी ली जा रही है। इस प्रश्नके उत्तरको समझनेके लिये उत्पादक तत्त्वों (Reproductive Elements) अर्थात् डिम्भग्रन्थि और शुक्राणुके सम्बन्धमें कुछ जानना आवश्यक है; क्योंकि एक नवीन जीवकी उत्पत्तिके लिये माता-पिता द्वारा प्रदत्त यही वस्तुएँ हैं। डिम्भ एक अपेक्षाकृत बड़ा और निष्क्रिय कोष है, जिसमें संगृहीत पोषक सामग्री भरी रहती है। इसमें एक केन्द्रक होता है, जो इसका ग यात्मक केन्द्र है। शुक्राणु एक बहुत छोटा कोष है। इसमें एक कम्पनयुक्त दुम रहती है, जिसके द्वारा यह वीर्यमें भली भाँति तैर सकता है। मैथुनके बाद रासायनिक आकर्षणसे शुक्राणु डिम्भकी ओर खिंचता है और फिर कुलबुलाता हुआ उसके भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इन्हीं दो कोषोंके संयोगसे नवीन जीवकी उत्पत्ति होती है। अब यह प्रश्न उठता है कि, वे कौनसे कारण हैं, जिनसे एक गर्भित डिम्भकोष [Fertilised egg cell] नर या मादामें परिणत हो जाता है। इस प्रश्नपर अङ्कोंका संग्रह कर [Statistically]
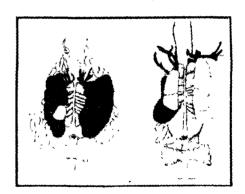
मेढ़क, जिसमें नर और मादा दोनोंके लिङ्ग विद्यमान हैं

प्रयोग द्वारा, कोषविज्ञान द्वारा [Cytologically] और उत्पादन द्वारा [Genetically] नाना प्रकारसे

अन्वेषण हुए हैं। अङ्कोंके संग्रह और प्रयोग (पोषण और उष्णता सम्बन्धी) से जो परिणाम निकले, वे परस्पर मतभेदक थे। किन्तु उत्पादन और कोषविज्ञानके अध्ययनसे बड़े महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकले, जिनसे यह प्रश्न स्पष्ट हो गया और लिङ्गनिर्धारण क्रियाका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना भी सम्भव हो गया।

डिम्बके केन्द्रक और शुक्राणुका पहले वर्णन किया जा चुका है। केन्द्रककी रचना अत्यन्त जटिल है और प्रधानतः यह क्रौमैटिन [Chromatin] पदार्थोंसे बना है। केन्द्रकका जनन-सम्बन्धी विस्तृत और क्रमपूर्वक अध्ययन करनेसे यह पता चलता है कि, यह क्रोमैटिन द्रव्य [Chromatin material] दण्डके समान आकार धारण कर लेता है, जो क्रोमोसोम कहलाता है। क्रोमोसोम आनुवंशिक गुणोंके वाहक समझे जाते हैं। ये क्रोमोमियर्स (Chromomeres) से बने होते हैं, जो क्रोमोसोमके वैभागिक खण्ड हैं। क्रोमोसोमोंमें माता-पिताके गुणोंकी स्थितिके मूल कारण कुछ चैतन्य पदार्थ समझे जाते हैं, जो "मूलक" [Genes] कहलाते हैं।
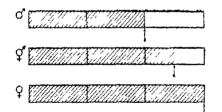
मेढ़कोंपर हारमोनका प्रभाव

जीवधारियों और पौधोंकी एक बड़ी संख्याके मेंडेलियन संयोगमें (Mendelian crossings) में इन प्रतिनिधि कणोंकी क्रमबद्ध रीतिसे परीक्षा की गयी, जिससे इस सिद्धान्तके अनुसार की गयी गणना इन प्रयोगोंके फलसे सिद्ध हो गयी और इससे क्रोमोसोम और मूलक (Chromosomes and Genes) का सिद्धान्त सुदृढ़ नींवपर स्थापित हो गया। वैयक्तिक क्रोमोसोमके "मूलक" गणित द्वारा स्थिर किये गये हैं और इन फलोंको विषम-उत्पादन (Cross-breeding) के प्रयोगों द्वारा जांचा गया है। इतना ही नहीं, "मूलक"
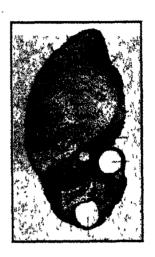
मनुष्यमें नर और मादाके संयुक्त अवयव

(genes) [जो बहुत कालतक काल्पनिक पदार्थ समझे जाते थे) वर्त्तमान समयमें विशेष उपायों द्वारा अणुवीक्षण यन्त्रसे देखे गये हैं; और, इस क्षेत्रमें गत २०-२५ वर्षोंके अन्वेषणसे आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं।

क्रोमोसोमके अनुसन्धानके समयसे प्राणिशास्त्रवेत्ता उन्हें ही आनुवंशिक गुणोंका स्थूल वाहक मानने लगे और कुछ वर्षोंतक उनका ध्यान उस ओर इतना केन्द्रित रहा कि, न केवल वे (क्रोमोसोम) आनुवंशिक गुणोंके वाहक ही सिद्ध हुए, वरन लिङ्गके निर्धारक भी पाये गये। जीव-विद्या (Biology) के क्षेत्रमें यह बड़ा महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान हुआ। विभिन्न जातियोंके प्राणियोंका, बहुत बड़ी संख्यामें, क्रोमोसोम (Chromosome) सम्बन्धी विषमताकी दृष्टिसे अध्ययन किया गया और छोटी-से-छोटी बातोंका अत्यन्त सूक्ष्मतासे निरीक्षण किया गया। इसके फलस्वरूप बहुत-सी बातोंपर प्रकाश पड़ा। उदाहरणार्थ यह पाया गया

कि, एक ओर तो कुछ प्राणियोंमें नर समशुक्राणु (Homogamous—the same Kind of Spermatozoon) और मादा विषम डिम्भाशयी (Hetrogamous) हैं, तो दूसरी ओर कुछ अन्य प्राणियोंमें मादा समडिम्भाशयी (Homogamous) और नर विषम शुक्राणु (Hetrogamous) हैं। पहली दशामें नरसे ऐसे शुक्राणु
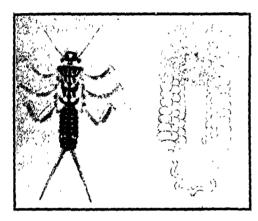
पेरला मार्जिनेटा, जिसके ऊपरके भागमें मादाके और नीचेके भागमें नरके अवयव हैं

उत्पन्न होते हैं, जिनके क्रोमोसोमोंकी संख्या समान रहती है; किन्तु मादा दो प्रकारके डिम्भ (Eggs) उत्पन्न करती है, जिनके क्रोमोसोमोंकी संख्या भिन्न रहती है। यह पाया गया है कि, किसी-किसी दशामें प्राणीका लिङ्ग क्रोमोसोमकी असम संख्यासे सम्बद्ध रहता है। ये क्रोमोसोम एक्स 'क्रोमोसोमो' (X'Chromosome) या विषम क्रोमोसोम (Hetrochromosome) कहलाते हैं। उदाहरणार्थ प्रोटेंटर नामक प्राणीके नरकी क्रोमोसोम संख्या १३ है और मादाकी १४। अतः नर दो प्रकारके शुक्राणु उत्पन्न करता है। एक प्रकारके शुक्राणुमें ६ क्रोमोसोम और दूसरेमें ७ क्रोमोसोम रहते हैं। किन्तु मादा केवल एक ही प्रकारके डिम्भ उत्पन्न करती है, जिनमें समान रूपसे हर एकमें ७ क्रोमोसोम होते हैं। यदि ६ क्रोमोसोमवाले शुक्राणुका ७ क्रोमोसोमवाले डिम्भसे संयोग हो, तो उनसे उत्पन्न सन्तति (Zygote) में ६+७=१३ क्रोमोसोम होंगे और यह सन्तान नर होगी। किन्तु यदि ७ क्रोमोसोम संख्यावाले शुक्राणु (Spermatozoon) से डिम्भका (जिसकी क्रोमोसोम संख्या भी ७ ही है) संयोग हो, तो सन्तति (Zygote) में ७ + ७ = १४ क्रोमोसोम होंगे और वह मादा होगी।

इस प्रकारके उदाहरण अनगिनत बताये जा सकते हैं; पर मूल बातें सबमें एक ही हैं अर्थात् कुछमें नर समशुक्राणु और मादा विषमडिम्भाशयी तथा कुछमें इसके विपरीत होता है। लिङ्गका यही "क्रोमोसोमक सिद्धान्त" है। यद्यपि इसमें गत वर्षोंमें कुछ सुधार और परिवर्तन किया गया है, फिर भी यह सिद्धान्त आज भी सर्वमान्य है।

अभीतक हमने अपना ध्यान दोनों स्वाभाविक लिङ्गोंकी सीमामें ही परिमित रखा है; और, ऐसी दशाओंपर विचार नहीं किया है, जिनमें किसी जीवका लिङ्ग अनिर्धारणीय हो और एक ही व्यक्तिमें न्यूना-

लिमांट्रिया डिस्पारमें नर और मादा, दोनोंके अवयव है

धिक मात्रामें दोनों लिङ्गोंके लक्षण और अवयव पाये जाते हों। बहुत समय तक ऐसे जीव प्रकृतिके खिलवाड़ समझे जाते थे और उनके वैज्ञानिक विश्ले-

षणका प्रयास नहीं किया गया । क्रोमोसोमके सिद्धान्तके विस्तार और उत्पादन-तत्त्वज्ञों तथा कोष-तत्त्वज्ञोंके वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी वृद्धिके साथ-साथ इस प्रश्नपर भी ध्यान डाला गया और अन्तमें प्रोफेसर गोल्डश्मिड्टके द्वारा इसके रहस्यका भी उद्घाटन हुआ है ।

द्विलिङ्गात्मता [Intersexuality]के वास्तविक स्वरूपका विश्लेषण करनेकी चेष्टामें प्रो० गोल्डश्मिड्ट लिङ्गके वास्तविक स्वरूपके रहस्यको पा गये । पक्षियों और कीड़ोंमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें एक ही जीवधारीमें स्त्री-पुरुषेन्द्रिय संयुक्त रूपसे वर्त्तमान हों [Gynandromorphism] और मनुष्य तथा अन्य जीवोंमें हीजड़ोंके [जिनमें स्त्री-पुरुष दोनोंके लक्षण हों — Hermaphroditism] उदाहरण बहुत समयसे ज्ञात थे; परन्तु उनके यथार्थ स्वभावका ज्ञान नहीं था । किन्तु असामान्य उदाहरणों [Abnormal Cases] से कभी-कभी परोक्ष प्रश्नों [Obscure problem] पर विशेष प्रकाश पड़ता है और ऐसा ही [Gynandromorphic] [ऐसे जीव जिनके शरीरके आधे भागमें पुरुषके और आधे भागमें स्त्रीके लक्षण होते हैं] और [Hermaphroditic] [ऐसे जीव, जिनमें नर और मादा, दोनोंके लक्षण कभी बाहरी और कभी भीतरी साथ-साथ होते हैं]

नर-कुक्कुट, जिसकी बधिया करनेसे मादाके लक्षण धीरे-धीरे प्रकट हो रहे हैं

जीवोंकी दशामें हुआ । यहाँ यह आवश्यक प्रतीत होता है कि, कुछ उदाहरणोंको लेकर इस विषयको समझाया जाय, जिसमें पाठकोंको यह पूर्ण रूपसे विदित हो जाय ।

उपर्युक्त दोनों प्रकारके जीव [Hermaphroditism and Gynandromorphism] असम्बद्ध घटनाएँ नहीं हैं, जैसा कि, बहुत दिनों तक समझा जाता था । इधर कुछ वर्षोंसे इनका व्यवहार उठ

मादा कुक्कुट, जिसमें नरके काँटे और पंख आये हैं

गया है और इनके स्थानपर द्विलिङ्गात्मताका शब्द प्रयुक्त होता है । ऐसे जीवोंके उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं । ऐसे असामान्य उदाहरण मेढ़कोंमें प्रायः मिलते हैं, जिनमें मादाओंमें शुक्रग्रन्थि और नरोंमें डिम्भग्रन्थि पायी जाती है ।

पिछली दशामें तो डिम्भवाहिनी नलिकाएँ भी पायी जाती हैं । विशी [Witschi]ने इस प्रश्नका यूरोपियन मेढ़कोंके विषयमें, अत्यन्त सूक्ष्म रूपसे, अध्ययन किया है । उन्होंने अपने इस अनुमानके पक्षमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण दिये हैं । जहाँ कहीं भी मेढ़कोंके सामान्य नर और मादाओंकी कुछ सख्या रहती है, वहाँ कुछ अनिर्धारणीय [Indeterminate] या द्विलिङ्गात्मक [Intersexual] मेढ़क भी अवश्य रहते हैं । इससे इस अनुमानका समर्थन होता है कि, ये प्राणी युवावस्थामें भी अपना लिङ्ग-परिवर्तन करते हैं ।

कछुओंमें भी इस प्रकारकी शुक्रग्रन्थि (Ovotestis) पायी गयी है । कबूतरोंमें तो नरकी शुक्र-

ग्रन्थिमें डिम्भका पाया जाना अनेक बार देखा जा चुका है। पक्षियोंके लिङ्ग-विज्ञानके विद्यार्थी यह भली भांति जानते हैं कि, विशीकी मेढ़कोंके सम्बन्धमें जो बात लागू है, वह पक्षियोंमें भी लागू है।
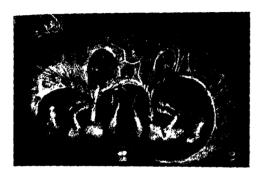
पशुका यमज, पहले एक नर और एक मादा था, पीछे दोनों एक लिङ्गके हो गये।

बेकर (Baker) ने न्यू हेब्राइड्स (New Hebrides) के सूअरोंकी द्विलिङ्गात्मता (Intersexual Condition) का अध्ययन किया है, जहां प्रतिशत सूअरोंकी एक बड़ी संख्या इस दशामें पायी जाती है। न्यू हेब्राइड्सके सूअरोंकी एक बड़ी संख्याकी परीक्षा करनेसे यह विदित हुआ कि, इन द्विलिङ्गात्मक सूअरोंमें सभी श्रेणीके आभ्यन्तरिक लिङ्गावयव (नरकी साधारण दशासे लेकर मादाकी साधारण दशा तक) पाये जाते हैं।

मनुष्योंमें भी डिम्भ-शुक्र-ग्रन्थियोंकी उत्पत्तिके एक दो नहीं, कितने ही उदाहरण शल्यचिकित्सकों (Medical Surgeons) और लिङ्गरोग-विज्ञों (Sexuo-pathologists) के द्वारा मिले हैं। बेरीढ़के प्राणियोंमें ऐसे द्विलिङ्गात्मक उदाहरण बहुत मिलते हैं। बुखनर (Buchner) लिखता है कि, उसने एक स्टारफिश (Starfish) की मादाके डिम्भमें शुक्र-ग्रन्थि पायी है। आर्चेस्टिया डिशेसाई (Orchestia deshaysii) में प्रायः यह पाया जाता है कि, पुरुषेन्द्रियके अन्तिम छोरमें (End) डिम्भ भी रहता है और वहां शुक्राणु और डिम्भ साथ-साथ बढ़ते हैं। इशिकावा (Ischikawa) ने पाया कि, केकड़े (Gebia Major) के लिङ्गावयव दो भागोंसे बने होते हैं—एक शुक्रग्रन्थि-सम्बन्धी भाग और दूसरा डिम्भ-सम्बन्धी। इसी प्रकार पोटाम्बियम् एस्टेकस (Potambium Astacus) की शुक्रग्रन्थिके मूलमें डिम्भके पाये जानेका एक रोचक उदाहरण लावेलेट सेंट जार्ज (La Valettee St. George) द्वारा दिया गया है। जङ्कर (Junker) ने पेर्ला मार्जिनेटा (Perla Marginata) में भी ऐसा ही पाया है। गोल्डश्मिड्टने भी लिमांट्रिया डिस्पार (Lymantria-dispar) के उत्पादक डिम्भमें शुक्रग्रन्थिका होना बतलाया है।

उपर्युक्त उदाहरण केवल ऐसी दशासे सम्बन्ध रखते हैं, जिसमें हीजड़ापन (Hermaphroditism) केवल आभ्यन्तरिक (Internal) अवयवोंपर प्रभाव डालता है। किन्तु ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जिनमें जीव-विशेष बाह्यतः भी दोनों लिङ्गोंके लक्षणोंसे युक्त होते हैं। कुछ ही समय पहले तोयामाने एक ऐसे रेशमके कीड़ेके बच्चे (Larva) का वर्णन किया था, जिसमें इसके माता-पिताके शारीरिक गुण (Somatic Characters) उसके शरीर-

क्रोपिडुला फोर्निकाटाकी समूह-शृङ्खला, जिसमें आरम्भमें मादा, मध्यमें द्विलिङ्गात्मक और अन्तमें नर है

बाहरी हिस्सेपर प्रत्यक्ष थे। बुलफिन्शों (Bullfinches)का, जिनका अध्ययन बौंड (Bond) ने किया था, उदाहरण इतना प्रसिद्ध है कि, इसके विषयमें कुछ कहना अनावश्यक है। मेहलिंग (Mehling) ने मधुमक्खियोंमें दोनों प्रकारके लिङ्गावयवोंके होनेका वर्णन किया है। गैस्ट्रोपाका क्वेर्सिफोलिया = Gastropacha-Quercifolia, वेंके = Wenke, शुडोमेथोका केनाडेन्सिस = Pseudomethoca Canadensis, मौर्गन = Morgan और मिर्मिका स्केब्रिनोयस = Myrmica Scabrinois के उदाहरणोंको भी प्राणि-शास्त्रके विद्यार्थी भली भाँति जानते हैं।

अब तकके वर्णित उदाहरण प्रकृतिमें साधारण रूपसे वर्त्तमान हैं। यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि, ये आवर्त्तनशील घटनाएं हैं अथवा केवल प्रकृतिके खिलवाड़ मात्र हैं, जिनपर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त उदाहरणोंने प्राणि-शास्त्र-वेत्ताओंको इस प्रश्नपर विचार-मग्न कर दिया और संसारके विभिन्न भागोंमें सुप्रसिद्ध विद्वानों द्वारा प्रकृतिसे लिङ्गके रहस्यको छीन लेनेके जोरदार प्रयत्न होने लगे। इस प्रश्नके अध्ययनमें जिन विद्वानोंने अपना जीवन लगा दिया,
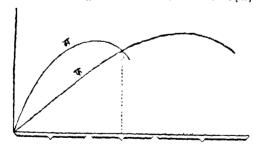
क्रू पिडुलापर हारमोनका प्रभाव और मादाका नरमें परिवर्त्तनका ग्राफ

उनमेंसे डनकास्टर (Doncaster), पुनेट (Punnett), क्रू (Crew), ओर्टन (Orton) मौर्गन (Morgan), गुडेल (Goodale), लिली (Lillie), गोल्डश्मिड्ट (Goldschmidt), स्टर्न (Stern), माइजेन हाइमेर (Meisenheimer), हार्मस Harms), कोरेन्स (Correns), बौंड (Bond), विशी (Witschi), स्टाइनख (Steinach), पेजार्ड (Pezard), बाल्टजेर (Baltzer) आदिके
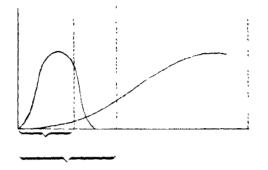
बोनेलियाके ऊपर हारमोनके प्रभावका ग्राफ

नाम उल्लेखनीय हैं। केवल प्राकृतिक दशामें घटनाओंका अध्ययन कर ही वैज्ञानिक सन्तुष्ट नहीं होते, वरन सदा उनपर प्रयोगशालाओंमें प्रयोग करनेके लिये उत्सुक रहते हैं। इस सम्बन्धमें प्रयोग करनेके लिये सबसे योग्य वस्तु चुना गया "कुक्कुट" (Poultry); क्योंकि इसके लिङ्गात्मक विभेद, कुछ जातियोंमें, विशेष रूपसे, स्पष्ट होते हैं; और, फिर दूसरे ये बड़ी शीघ्रतासे अंडे देते हैं, जिससे अन्वेषणके लिये सदैव काफी सामग्री तैयार रहती है। पेजार्ड (Pezard)ने प्रयोगोंसे यह सिद्ध किया कि, बधिया करने (Castration) का नर कुक्कुटपर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है और उसमें स्त्रीत्वके लक्षण आ जाते हैं। उसने यह भी पाया कि, बधिया की हुई मुर्गीमें (Castrated pullet), यानी जिसके डिम्भ निकाल दिये गये हों (Ovariotomised), नरकी कलँगी और पाँवके काँटे उत्पन्न हो जाते हैं। इस क्षेत्रमें गुडेल (Goodale) के महत्त्वपूर्ण प्रयोग प्रशंसनीय हैं। इससे यह पता चलता है कि, जिस कुक्कुटकी बधिया की जाती है, वह अपना लिङ्ग

परिवर्त्तन कर विपरीत लिङ्गके लक्षणोंको धारण कर लेता है। मनुष्योंमें भी भली भाँति यह बात लोगोंको मालूम है कि, नपुंसकों (Eunuchs) के मूँछ, दाढ़ी या शरीरके अन्य भागोंके लोम नहीं होते। यह भी देखा गया है कि, अविवाहिता

बायाँ ओर मादा पटुआ और दाहिनी ओर नर पटुआ

वृद्धा स्त्रियोंके ठुड्ढी और ऊपरके ओठोंपर बाल उग आते हैं और वे अपने दैनिक जीवनमें कठोर और साहसिक हो जाती हैं। ये लक्षण स्पष्टतः पुरुषोचित हैं। इन उदाहरणोंसे पता चलता है कि, प्राणियोंकी बनावटमें द्विलिङ्गात्मता (Duplex Sexuality) की प्रवृत्ति रहती है और किसी विशेष तत्त्व द्वारा किसी प्राणीका नर या मादा होना निर्धारित होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, किसी जीवकी आन्तरिक शारीरिक क्रियाओं (Internal Physiological Machinery) परसे जैसे ही इस तत्त्व-विशेषका समुचित प्रभाव हट जाता है, वैसे ही उसका विपरीत लिङ्गके लक्षणों और व्यवहारोंका धारण कर लेना अवश्यम्भावी है। यह परिवर्त्तन किस सीमातक होगा, यह कई बातोंपर निर्भर करता है। यदि इस विशेष तत्त्वका प्रभाव शारीरिक वृद्धिके आरम्भ-कालमें ही हट जाय, तो उस प्राणीका पूर्ण रूपसे लिङ्ग-परिवर्त्तन हो जायगा। यदि यह प्रभाव कुछ बाद हटा, तो इससे अनिर्धारणीय (Indeterminate) अथवा द्विलिङ्गात्मक (Duplex) जीवोंकी उत्पत्ति होगी, जिनमें दोनों लिङ्गोंके अवयव रहेंगे। यदि किसी प्राणीकी पूर्ण शारीरिक वृद्धिके पश्चात् इसका प्रभाव हटा, तो विपरीत लिङ्गके गुणों वा अवयवोंके केवल आंशिक ग्रहणकी सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ यह पाया गया है कि, किसी जीवकी शारीरिक वृद्धिका सारा क्रम ही (उसकी क्रोमोसोमक वंश-परम्पराके विरुद्ध) विपरीत ओरको फेर दिया जा सकता है। प्राणियोंमें यमज (Twins) अथवा जोड़ी (Doublets) सन्तानोंकी उत्पत्तिके उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। लिली (Lillie) ने (जिसने इस प्रश्नका पूर्ण रूपसे अध्ययन किया है) यह पाया
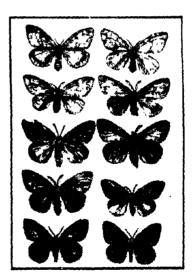
इसमें गोल्डश्मिड्ट्के प्रयोग द्वारा उत्पन्न लिमांट्रिया डिस्पारके नर, मादा और द्विलिङ्गात्मक जीव हैं

है कि, ये यमज यद्यपि पृथक्-पृथक् गर्भित दो डिम्भ (एक नर और दूसरा मादा) से उत्पन्न होते हैं; पर फिर

भी नालों (Placentas) की निकटता, रक्त-वाहिनी शिराओंके पारस्परिक संयोग तथा एकके हारमोन (Hormone) का दूसरेमें प्रवाह होनेसे दोनों एक लिङ्ग धारण कर लेते हैं और इस प्रकार दोनों सन्तानें (Foetuses) एक लिङ्गकी हो जाती हैं। यदि पहले संयोजित होनेवाला डिम्भ नर उत्पन्न करनेवाला जीव हुआ, तो इसके प्रभावसे दूसरे जीवकी भी (उसकी अपनी क्रोमोसोमक वंश-परम्पराके विरुद्ध भी) वृद्धि, नरके रूपमें, होगी ; और, यदि यह पहला जीव मादा हुआ, तो दूसरा भी मादा होगा। यह एक ऐसा उदाहरण है, जिसमें वृद्धिके अत्यन्त प्रारम्भिक कालमें हारमोनका हस्तक्षेप (Interference) हुआ, जिससे प्राणीका जीवनक्रम ही विपरीत दिशामें चला गया।

अब हम एक ऐसा उदाहरण देते हैं, जिसमें युवावस्थामें भी पर्याप्त मात्रामें व्यवहार और लक्षण-सम्बन्धी परिवर्त्तन हुए हैं। स्टाइनखने युवा गिनी पिग (Guinea Pigs) के नरके शरीरमें विभिन्न उपायों द्वारा मादाके हारमोनका प्रयोग कर मादा बनाना चाहा। इससे आश्चर्य-जनक फल प्राप्त हुए। इससे नर गिनी पिग (Guinea Pig) के स्तन बढ़ गये
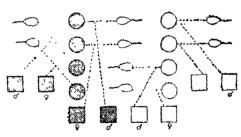
जापानी और ब्रिटिश तितलियोंके सहवाससे जो परिवार पैदा हुआ, उसका ग्राफिक चित्र

और पुरुषेन्द्रिय या तो सूख गयी या परिमाणमें छोटी हो गयी। इतना ही नहीं, वे छोटे-छोटे बच्चोंपर मातृ-प्रेम दिखलाने और प्रायः उन्हें स्तनपान भी कराने लगे।

कुक्कुटों, यमजों और गिनी पिगोंके उदाहरणोंसे यह बात पूर्ण रूपसे सिद्ध हो जाती है कि, किसी प्राणीके लिङ्ग और तत्सम्बन्धी व्यवहार और लक्षण, शरीरान्तर्गत ऐसे मूल ऐन्द्रिक कारणोंके बाह्य-स्वरूप हैं, जिनसे मनुष्य तथा अन्य प्राणियोंका सम्पूर्ण शरीर-यन्त्र सञ्चालित होता है।

Diploid	Triploid	Tetraploid
2a+2X=♀	3a+3X=♀	4a+4X=♀
2a+ X+Y=♂	3a+X+Y=Super♂	4a+2X+Y=♂
	3a+2X=Intersex	
	3a+2X+Y= ”	

ब्रिजेसका सूत्र, जो ड्रोसोफिला नर, मादा और द्विलिङ्गात्मकका होना बताता है

वैज्ञानिकोंने जो कुछ प्रयोगशालाओंमें कर दिखाया, वही प्रक्रियाएं प्रकृतिकी प्रयोगशालामें असीम परिमाणमें हो रही हैं। हम लोग केवल उन्हें जान नहीं पाते; क्योंकि हम उनका निकटसे अध्ययन नहीं करते हैं। वैज्ञानिकोंके प्रयत्नसे हम इस समस्याकी पेचीदगीको समझनेमें समर्थ हुए हैं; और, साथ ही लिङ्गके वास्तविक तत्त्वको भी समझ सके हैं। लिङ्ग-परिवर्त्तन प्रकृतिमें एक साधारण घटना है। कुछ श्रेणीके जीवोंमें तो वंशस्थितिकी रक्षाके लिये यह घटना आवर्त्तरूपसे होती है।

अब हम जिफोफोरस हिलेराई (Xiphophorus hilleri) नामक जीवके उदाहरणको लेंगे, जिसमें लिङ्ग-अनुपात (Sex-ratio)में परिवर्त्तन होना उसके जीवनकी साधारण घटना है। आरम्भमें उनमें लिङ्ग-अनुपात बहुत अधिक मात्रामें न्यूनाधिक रहता है और नरोंकी अपेक्षा मादाओंकी अधिकता रहती है। अपरिपक्व जीवोंमें यह अनुपात ५० नर और १०० मादा रहता है; पर यही जीव जब पूरी तरह बढ़ जाते हैं, तब यह अनुपात २०० नर और १०० मादाके हिसाबसे हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि, ५० प्रतिशत मादा

लिङ्ग-परिवर्त्तन करती है। कुछ समयके बाद (जैसा कि, अभी कहा जा चुका है) कोई-कोई मादा द्विलिङ्गात्मक (Hermaphrodite) हो जाती है और फिर नरोंमें परिणत हो जाती है। इस प्रकार लिङ्ग अनुपातकी असमा-नताकी क्षतिपूर्ति होती है और उत्पादन-क्रियाके लिये पर्याप्त संख्यामें नर उत्पन्न हो जाते हैं। इन परिवर्तनशील मादाओंके प्रथम तो डिम्भ-तन्तु क्रमशः शुद्ध तन्तुओंमें परिणत होते हैं और अन्तमें सम्पूर्ण विपरीत लिङ्ग परि-वर्तित हो जाता है। एक दूसरा रोचक उदाहरण क्रेपिडुला फोर्निकाटा (Crepidula Fornicata) का है, जिसका ओर्टन (Orton) ने वर्णन किया है। इन जीवोंकी समूह-शृङ्खलाओंकी परीक्षा करते हुए ओर्टनने पाया कि, ये शृङ्खलाएँ क्रमानुसार मादाओं, द्विलिङ्गात्मकों और नरोंसे बनी हैं अर्थात् इन शृङ्खलाओंके सबसे पुराने जीव मादा थे और सबसे तरुण नर थे। इन दोनोंके बीचकी कड़ी द्विलिङ्गात्मक जीवोंसे बनी थी। यह एक रोचक बात है कि, उपर्युक्त दोनों उदा-हरणोंमें लिङ्ग-परिवर्तन एक बीचकी अवस्था अर्थात् द्विलिङ्गात्मता द्वारा होता है। यह द्विलिङ्गात्मता बहुत समय तक "प्रकृतिका खिलवाड़" समझी जाती थी; परन्तु अब इन उदाहरणोंके प्रकाशमें इनका एक नवीन अर्थ हो गया है।
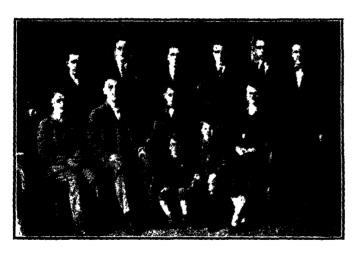
एक माता-पिताके दस पुत्र हो पुत्र

बाल्टज़ेर (Baltzer) ने (जिसने बोनेलिया (Bonellia) नामक जीवका जीवन-इतिहास अध्य-यन किया है) पाया कि, उनमें एक जीव-विशेष नरके समान आचरण करेगा या मादाके समान, यह मुख्यतः उनकी स्थितिके संयोगपर निर्भर है। इनके अंडोंसे स्वतन्त्र रूपसे तैरते हुए पिल्लू उत्पन्न होते हैं। यदि ये पिल्लू समुद्रके तलमें बैठ जाते हैं, तो मादा हो जाते हैं; किन्तु यदि संयोगवश ये किसी पूर्ण विकसित मादापर बैठ जायँ, तो ये नर हो जाते हैं। बाल्टज़ेरने विभिन्न दशाओंके पिल्लु-ओंको (जो मादाओंपर बैठ चुके थे; पर अभी पूर्ण रूपसे नर नहीं हुए थे) लेकर उन्हें स्वतन्त्र जीवन बितानेपर बाध्य किया। इसके फल-स्वरूप द्विलिङ्गात्मक जीवों (Intersexuals) की उत्पत्ति हुई, जिनमें विभिन्न अंशों तक द्विलिङ्गा-त्मता थी। ऐसा प्रतीत होता है कि, इन पिल्लुओंमें दोनों लिङ्गोंके बीजगुण विद्यमान रहते हैं और उनका नर या मादामें विकसित होना मुख्यतः किसी नियामक-कारण-विशेषके निर्णायक प्रभावसे हो सकता है। बोनेलियाके दृष्टान्तसे नर और मादाकी परिभाषामें संशोधन करना आवश्यक हो जाता है; क्योंकि इससे यह स्पष्ट रूपसे मालूम हो जाता है कि, एक जीव (जो जन्म-गुणसे मादा है) व्यावहारिक आचरणमें मादा भी हो सकता है और नर भी। इसी प्रकार एक जन्म-गुणसे नर जीव कार्यगुणमें नर या मादा कोई भी हो सकता है। इस प्रकार लिङ्ग-निर्धारक कारणोंपर इकतरफ़ा

पोल दी जा सकती है ।

यहाँ जितने उदाहरण दिये गये हैं, सभी प्राणि-संसारसे लिये गये हैं; क्योंकि इस प्रश्नके मूल सिद्धान्तोंका विश्लेषण पौधोंकी अपेक्षा प्राणियोंमें अधिक उत्साह और सूक्ष्मतासे हुआ है । फिर भी ऐसे उदाहरण ज्ञात हैं, जिनमें पौधोंमें भी लिङ्ग-परिवर्त्तन होता है । प्रिटचार्ड (Pritchard)ने पटुएके पौधोंमें लिङ्ग-परिवर्तनका दृष्टान्त दिया है, जो चित्रसे स्पष्ट हो जाता है ।

अब हमें केवल लिमांट्रियाके ऊपर किये गये गोल्डश्मिड्टके आश्चर्य-जनक अनुसन्धानोंके ऊपर दृष्टि डालनी है । इन्हीं अनुसन्धानोंके द्वारा लिङ्गके प्रश्नपर प्रकाशका चन्द्रमा उमड़ पड़ा और इन्हींके द्वारा हम लिङ्गके कार्यक्रमको समझनेमें समर्थ हुए । द्विलिङ्गात्मताकी प्रायोगिक उत्पत्तिका सारा श्रेय प्रोफेसर गोल्डश्मिड्टको है । लिमांट्रियाकी जिप्सी मौथ (Gipsy Moth) नामक जातिमें द्विलिङ्गात्मता साधारण तौरसे पायी जाती है; और, इनके दोनों लिङ्गोंके जीवों (नर और मादा) की शारीरिक रचनामें अत्यन्त तीक्ष्ण विभिन्नता रहती है । उन्होंने लिमांट्रियाकी यूरोपीय और जापानी जातियोंमें संयोग कराया, जिससे आश्चर्यजनक फल प्राप्त हुए। जापानी मादाओं और यूरोपीय नरोंके मैथुनसे सामान्य सन्तान उत्पन्न होती थी; किन्तु इसके विपरीत यूरोपीय मादाओं और जापानी नरोंके मैथुनसे अप्रत्याशित और विचित्र सन्तान उत्पन्न होती थी, जिसमें नर तो सामान्य होते थे; पर मादाओंमें नर और मादा, दोनोंके लक्षणोंका सम्मिश्रण रहता था । बादके अनुसन्धानोंसे यह ज्ञात हुआ कि, नरोंका नरत्व भिन्न-भिन्न उदाहरणोंमें, गुणात्मक रूपसे, भिन्न-भिन्न रहता था और कुछ ऐसे नर थे, जो "बलवान् नर" कहे जा सकते थे और कुछ ऐसे थे, जिन्हें "दुर्बल नर" कह सकते थे । इसी प्रकार उनकी सन्ततिमें बलवती और दुर्बल मादाएँ भी थीं । अन्वेषणोंके सिलसिलेमें यह पाया गया कि, जब एक बलवान् नरका एक बलवती मादासे (अथवा दुर्बल नरका दुर्बला मादासे) संयोग होता था, तो सामान्य सन्तानकी उत्पत्ति होती थी; किन्तु जब बलवान् नरका दुर्बला मादासे संयोग होता था, तब सन्ततिमें विभिन्न मात्राओंमें द्विलिङ्गात्मताके लक्षण पाये जाते थे । इन जीवोंमें द्विलिङ्गात्मताकी छाप न केवल उनके बाह्य लक्षणोंपर ही रहती थी, प्रत्युत उत्पादक अवयव भी इस अंश तक प्रभावित हो जाते थे कि, Gonads के परिवर्तनकी सारी अवस्थाएँ (ऐसे जीवोंसे, जिनमें डिम्भ रहता था, लेकर ऐसे जीवोंतक, जिनमें शुक्राणु (Spermatozoa)से भी संयुक्त शुक्रग्रन्थि तक थी) पायी जाती थीं । इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, डिम्भके किसी तत्त्वविशेषसे शुक्राणुके किसी तत्त्वविशेषके अनुपातपर ये फलाफल निर्भर हैं। अतः हम इस निश्चयपर पहुँचते हैं कि, सामान्य जीवोंकी उत्पत्तिके लिये इन दोनों प्रकारके लिङ्ग-निर्धारक तत्त्वोंमें परस्पर एक निश्चित अनुपात रहता है; और, इस अनुपातमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी होनेसे द्विलिङ्गात्मक जीवोंकी उत्पत्ति होती है । इस बातसे कि, मादाओंकी एक ही जातिसे पुरुषोंकी विभिन्न जातियोंके संयोग द्वारा भिन्न-भिन्न फलोंकी प्राप्ति होती है, पता चलता है कि, एक्स-क्रोमोसोम (X-Chromosome) में यह तत्त्व, प्रत्येक जातिमें, विभिन्न परिमाणमें रहता है ।

गोल्डश्मिड्टके प्रयोगोंसे विचारके नवीन मार्ग खुल गये । उनके प्रयोगोंने यह स्पष्ट कर दिया कि, लिङ्गका निर्धारण केवल विषम क्रोमोसोमों (Hetrochromosome) से अथवा एक्स या वाई क्रोमोसोमों (X or Y Chromosomes) की उपस्थितिसे नहीं होता, प्रत्युत इन लिङ्ग क्रोमोसोमों

(Sex-Chromosomes) द्वारा वाहित दोनों प्रकारके लिङ्ग-निर्धारक तत्त्वोंमें एक निश्चित पारिमाणिक सम्बन्ध रहता है, जिसे समुचित रूपसे साम्य स्थापित करनेपर सामान्य जीव उत्पन्न होते हैं; परन्तु जिसके किञ्चिन्मात्र भी साम्यके हट जानेपर उसे अन्तरके अनुपातमें विभिन्न अंशोंतकके द्विलिङ्गात्मक जीवोंकी सृष्टि होती है। जिफोफोरस हेलेरी (Xiphophorus helleri), बोनेलिया (Bonellia), क्रेपिडुला (Crepidula) और मेढ़कों (Frogs)के उदाहरणोंसे यह साफ मालूम होता है कि, प्रत्येक लिङ्गके जीवमें दोनों लिङ्गोंके मूल तत्त्व रहते हैं। मनुष्योंमें भी यह बात जानी हुई है कि, एक पर्याप्त काल तक गर्भकी वृद्धि एकसी होती है और उसके बाद नरों और मादाओंके पथपर उनके लिङ्गात्मक अवयवोंकी, विभिन्न रूपमें, वैयक्तिक वृद्धि होने लगती है। हेर्टविग (Hertwig) ने वृद्धिकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें इन दोनों प्रकारके बाह्य अवयवोंकी समानता तक दिखलायी है। हेर्टविगने युक्तियुक्त कारणोंको देकर सिद्ध कर दिया है कि, मादाओंकी जननेन्द्रिय पुरुषोंकी जननेन्द्रियसे उत्पन्न हो सकती है और दोनों एक ही मौलिक रचनाके परिणाम-स्वरूप हो सकते हैं। मनुष्योंमें द्विलिङ्गात्मकों (हीजड़ों) और असामान्य लिङ्ग आचरणका होना मनुष्योंके द्विलिङ्गात्मक मूलके प्रमाण हैं।

यह स्पष्ट है कि, एक्स और वाई क्रोमोसोमों (X and Y Chromosomes) की उपस्थिति अथवा अनुपस्थितिसे लिङ्गके निर्धारण होनेका सिद्धान्त अत्यन्त अधूरा है; और, जो अब हम लोगोंको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। गोल्डश्मिड्टका लिङ्गनिर्धारण-क्रियापर क्रोमोसोमोंके पारिमाणिक और गुणात्मक प्रभावका सिद्धान्त बहुतसी बातोंके अनुकूल है। ऐसा मालूम होता है कि, कुछ ऐसे तत्त्व-विशेष [सम्भवतः किण्व (ferments)] के समान हैं, जो इन क्रोमोसोमोंसे वाहित होते हैं और जो भ्रूण (Zygote) की शारीरिक प्रक्रियाओंके वेगकी वृद्धि वा ह्रास करते हैं। इस सम्बन्धमें मौंटगोमरी (Montgomery) के इस विचारको व्यक्त कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि, "क्रोमोसोम स्वयम् किण्वोंके समूह हैं।" इस सिद्धान्तके अनुसार लिङ्ग-निर्धारण, ऐसे रासायनिक प्रक्रियाओंकी शृङ्खलाका फलस्वरूप हो सकता है, जो इन किण्वों द्वारा संयोजित गर्भित डिम्भके प्रोटोप्लाज्ममें होनेवाले अनुक्रमिक रासायनिक संयोगोंके आरम्भ, वर्द्धन और ह्रासपर निर्भर करती है। गोल्डश्मिड्टने लिङ्ग निर्धारणके कार्यके अपने सिद्धान्तको दृढ़ नींवपर स्थापित करनेके लिये इसमें दो और तत्त्वोंका समावेश किया। ये दोनों तत्त्व कालतत्त्व और परिमाणतत्त्व हैं। उसके ही शब्दोंमें "जब मादाके किण्वोंका परिमाण "क" (q) नरके किण्वोंके परिमाण "न" (n) से बड़ा होता है, तब मादाकी उत्पत्ति होती है। इसके विपरीत दूसरी ओर नर-किण्वोंका "२न" (2n) परिमाण मादाके "क" परिमाणसे अधिक समाहृत है; और, इनके संयोगसे नरकी उत्पत्ति होती है। इस आधारपर न केवल सामान्य लिङ्गोंका ही विकास, वरन द्विलिङ्गात्मता भी बुद्धिगम्य हो जाती है। दृष्टान्त-स्वरूप क्रेपिडुला (Crepidula) नामक जीवमें मादाके उत्पादक किण्व पहले विमोचित होते हैं और नरोत्पादक किण्वोंकी अपेक्षा प्रबल होते हैं। इस कारण भ्रूण (Embryo) का विकास मादाके रूपमें होता है। कालान्तरसे मादाके किण्व दुर्बल पड़ जाते हैं और शनैः शनैः निश्चयात्मक रूपसे नर-किण्व द्वारा पराक्रान्त हो जाते हैं। जबतक ये दोनों प्रकारके किण्व साम्यमें स्थित रहते हैं, तबतक मादा अनिर्धारणीय अवस्था (अर्थात् द्विलिङ्गात्मक अवस्था) में रहती है। पर यह

अवस्था कुछ ही कालतक रहती है। शीघ्र ही नर-किण्व अपने प्रतिद्वन्द्वी मादाके किण्वोंका पूर्ण रूपसे दमन कर देता है और प्राणीको नर बननेपर बाध्य करता है।

ब्रिजेस (Bridges)के कार्य्योंसे हम इस विचारसे छुटकारा पानेमें समर्थ हुए हैं कि, लिङ्गका निर्धारण केवल लिङ्ग क्रोमोसोमों (Sex Chromosomes) का कार्य्य नहीं है; क्योंकि ब्रिजेसने यह सिद्ध कर दिया है कि, इसमें अवशिष्ट क्रोमोसोम [Autosomes]का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। उसके परिणामोंका निम्नाङ्कित रूपमें सारांश दिया जा सकता है—

अन्यत्र दी गयी सारिणीसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, केवल मात्र लिङ्ग-क्रोमोसोम [Sex Chromosomes] ही लिङ्गका निर्धारण नहीं करते, वरन इनके अवशिष्ट क्रोमोसोमसे पारिमाणिक सम्बन्धका भी इसमें हाथ रहता है। लिङ्गपर अवशिष्ट क्रोमोसोम [Autosomes]का प्रभाव स्टुर्टवांट (Sturtivant)के अनुसन्धानों द्वारा और स्पष्ट हो जाता है। इन अनुसन्धानोंको उसने ड्रोसोफिला (Lrosophila) के जाति-विशेषपर किया था और इनके द्वारा यह दरसाया था कि, ओटोसोम (Autosomes)मेंसे एकमें एक ग्राहक (recessive) मूलक (Gene)की उपस्थितिसे दो एक्स-क्रोमोसोम (X Choromosomes) वाले जीवोंका (जो मादा होनेवाले थे) द्विलिङ्गात्मकोंमें परिवर्त्तन हो गया। अतः इससे प्रतीत होता है कि, यद्यपि एक्स क्रोमोसोम (X Choromosomes) साधारणतः लिङ्ग-निर्धारणमें निर्णायक तत्त्व होते हैं; पर ओटोसोम भी और सम्भवतः सायटोप्लाज़्म (Cytoplasm) भी उनमें सम्मिलित रहते हैं।

इस विषयपर इतना कहे जानेके बाद भी एक साधारण मनुष्य यह जाननेकी इच्छा करेगा कि, क्या गर्भस्थित सन्तानके लिङ्गका स्वेच्छा-पूर्वक निर्धारण करना सम्भव है ? साथ ही इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि, परिवारमें नर सन्तान [पुत्र]की उत्पत्तिको अत्यन्त महत्त्व दिया जाता है, यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि, कभी भी हम गर्भ-स्थित सन्तानका स्वेच्छासे लिङ्ग-निर्धारण करनेमें समर्थ हो सकेंगे या नहीं। यह सभी जानते हैं कि, जहाँ पुरुष दो प्रकारके शुक्राणु उत्पन्न करते हैं, स्त्रियोंके डिम्ब सभी समान होते हैं। इस कारण बालक अथवा बालिकाकी उत्पत्तिका उत्तरदायित्व वास्तवमें पितापर है, न कि मातापर? यद्यपि हिन्दू-समाजमें इसका सारा दोष स्त्रियोंके ही सिर मढ़ा जाता है! यदि हम किसी प्रकारसे नर-उत्पादक और मादाके उत्पादक शुक्राणुको ठीक-ठीक अलग-अलग कर सकें, तो निस्सन्देह भावी सन्तानका लिङ्ग अपने आधीन किया जा सकता है। तब मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति या तो कृत्रिम वीर्य-संस्थान या योनि डूश (Vaginal douches) अथवा पेसरियोंके (Pessaries) द्वारा (जिनसे किसी एक प्रकारके शुक्राणु असमर्थ कर दिये जायँ) हो सकती है।

षष्ठ अन्तारार्ष्ट्रिय जनन-विज्ञान महापरिषद् (6th International Genetics Congress) (जो १९३२के अगस्तमें इथाका (न्यूयार्क)में हुई थी ,के बाद इस बातके प्रकाशनसे बड़ी सनसनी फैली थी कि, कोनिग्सबर्ग (जर्मनी)के डाक्टर एफ० उंटेरबेर्गेर (Dr. F. Unterberger)ने मनुष्योंमें लिङ्गको स्वाधिकारमें करनेके उपाय ढूँढ़ निकाले हैं। अमेरिकाके समाचार-पत्रोंने इसे खूब बड़ा शीर्षक देकर छापा। नीचे दिये गये समाचार-पत्रके Cutting से ज्ञात होगा कि, इस घोषणासे कितनी सनसनी फैली थी—

SAYS ACIDITY FIXES UNBORN CHILD'S SEX

Dr. Sanders Tells Eugenists Alkaline Blood of Mother Generally Brings a Boy.

'MARRIAGE CLINICS' URGE

Social worker Finds Fictional Stress on Home Conflicts Has Affected Public View of Marital Life.

SEX-FIXING WAY CITED

Chemicals Used for Control

Geneticists Told of Method With Only One Failure in Seventy-eight Trials

Lactic Acid Used to Insure Arrival of Girl Baby and Bicarbonate for Boy

Claims Control of Sex Through Acid Balance

German Geneticist Reports Single Failure in tests on 78 Mothers

Says Alkaline Diet Insures Boy Babies

Six Cows Given Lactic Acid Produced 100 Per Cent Female Calves

PRENATAL-ANNOUNCEMENT

Dr. and Mrs. Earl Ellicott Dudding announce that on October 16, 1933, Miss Chemical Dudding will arrive and will be the world's most scientific baby. The object sought is to produce a child free from criminal traits. Dr. Dudding is president of the Prisoners Relief Society. The fetation was made by injecting the sporoblast into the blood stream with a hypodermic needle. We expect a substantial gift. Gifts should be mailed to Miss. Chemical Dudding.

Boy or Girl, Whichever You Like,—Achieved by Two Noted Russian Scientists

MEANS TO CONTROL UNBORN'S SEX SEEN

Use of Lactic Acid and Bicarbonate of Soda Reported Successful.

प्रायः ऐसा होता है कि, किसी-किसी परिवारमें केवल पुत्र अथवा केवल पुत्री होती है और यह सोचकर प्रायः आश्चर्य होता है कि, केवल संयोगसे ऊपर दिये गये चित्रमें दिखाया गया आश्चर्य-जनक फल प्राप्त हुआ है।

डाक्टर उंटरबेर्गर यह दावा करते हैं कि, योनि (Vagina)की क्षारता वाई वाहक अर्थात् नरोत्पादक शुक्राणु [Spermatozoa] की गति-वृद्धि करता है और इस प्रकार उन्हें डिम्भ तक पहुँचनेका विशेष अवसर प्रदान करता है। इसके विपरीत उन अवयवोंकी अम्लता एक्स-वाहक [X-bearing] शुक्राणुका गतिको बढ़ाता है, जिससे लड़कियोंकी उत्पत्ति होती है। इस सिद्धान्तके अनुसार मैथुनके पहले डा० उंटरबेर्गर पुरुष-जननेन्द्रियपर सोडियम-बाइ-कार्बोनेटका पाउडर करने या उसीके तनुविलयनसे स्त्री-योनिको धोनेको कहते हैं। किन्तु किश (Kisch), मिर्बट (Mirbt), ब्लूम (Bluhm), कोल (Cole) और जोहान्सन (Johansson) ने जब खरगोशों, चूहों और सूअरोंपर प्रयोग कर देखा, तब डाक्टर उंटरबेर्गरका यह तरीका मनोवाञ्छित फल देनेमें असमर्थ हुआ। फिर भी उंटरबेर्गरकी कार्यपद्धति सङ्केत करती है कि, दोनों प्रकारके शुक्राणुओंको अलग-अलग करनेके लिये अभी और अनुसन्धानकी आवश्यकता है। यदि यह सम्भव हो गया, तो लिङ्गको अपने आधीन करना भी सम्भव हो जायगा।

गत वर्षोंमें इस ओर कुछ उद्योग भी हुए हैं। कोल्टजोफ (Koltzoff) और श्रोडर (Schroeder)ने एक शुक्राणु आस्रमनमें विद्युद्-धारा प्रवाहित करवायी और एक्स-वाहक क्रोमोसामोंको अलग-अलग करनेकी चेष्टा की। किन्तु इसका कोई निश्चित परिणाम नहीं हुआ। ल्यूश (Lush) ने खरगोशोंके इन दोनों प्रकारके शुक्राणुके अपेक्षित घनत्वमें सम्भावित अन्तरके आधारपर उन्हें केन्द्रा-

पसरण द्वारा अलग-अलग कर उनके भिन्न-भिन्न अंशोंसे, बिना बच्चा जनी मादाओंको कृत्रिम रूपसे, गर्भिणी करनेकी चेष्टा की। पर परिणाम ऋणात्मक हुआ।

लिङ्गके प्रश्नपर वैज्ञानिक दृष्टिसे पर्याप्त ध्यान दिया जा चुका। अब हमें केवल यह बतलाना रह गया कि, लिङ्गका समाजके ऊपर बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। क्षुधाके अनन्तर सभी प्राणियोंमें (मनुष्योंमें भी) लिङ्गकी प्रेरणा (Urge) सबसे बड़ी होती है। सभ्यताकी उन्नतिके साथ-साथ लिङ्गकी समस्याएं भी अधिकाधिक जटिल हुई जा रही हैं। मनुष्योंमें विवाहकी अवस्था कुछ अंशोंतक तो विवशताके कारण और कुछ अंशोंतक स्वार्थपरताके कारण स्थगित कर दी जाती है, जिसके फलस्वरूप लिङ्ग-विषयोंने समाजमें भय-सूचक महत्त्व प्राप्त कर लिया है और यदि इस बढ़ती हुई लहरको रोकनेका समुचित प्रबन्ध न किया गया, तो समस्त समाजको नींवके हिल उठनेकी आशङ्का है। कुछ उन्नत पाश्चात्य राष्ट्रोंने लिङ्गसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंपर राष्ट्रको सलाह देनेके लिये कामविज्ञान-परिषदों (Institutes of Sexuology) की स्थापना करना आवश्यक समझा है; और, उन्होंने अपने-अपने देशोंके स्कूलों तथा अन्य विद्यालयोंमें लिङ्ग-विषयक शिक्षा देनेका भी प्रबन्ध किया है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि, ये उपाय गत बीस वर्ष या उससे भी कमके अन्तर्गत ही किये गये हैं, इसके फल लाभदायक सिद्ध हुए हैं। अबतकके अनुभवसे यह आशङ्का निर्मूल सिद्ध हुई है कि, लिङ्गविषयोंका वैज्ञानिक दृष्टिसे निरूपण करनेसे अनजान लड़कोंको दुराचारका मार्ग मालूम हो जाता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा किये गये अनुसन्धानोंसे पता चलता है कि, हम लोगोंकी ऐन्द्रिक रचनाका प्रत्येक तन्तु लिङ्गकी प्रेरणासे रँगा है और प्रत्येक व्यक्ति लिङ्ग-चेतनताकी कई विभिन्न अवस्थाओंको पार करनेपर पूर्ण पुरुषत्वको प्राप्त करता है। प्रत्येक उन्नत राष्ट्रको मनोविज्ञान और प्राणिशास्त्रके इन अन्वेषणोंको ध्यानमें रखना चाहिये। नववयस्क लोगोंको लिङ्गके सम्बन्धमें शिक्षा देना युक्तिसंगत है या नहीं, इस प्रश्नपर व्यर्थका इतना तर्क हुआ है कि, नफरतसी मालूम होती है। यह एक मानी हुई बात है कि, छोटे बालकोंको लिङ्ग-विषयपर विशेष निकटतासे और अधिक प्राप्तिके साथ शिक्षा दी जा सकती है तथा किशोरवयस्क फल-बालकोंके साथ मर्यादापूर्वक खरी बातचीत, हानिकी अपेक्षा, अधिक लाभ देनेवाली होती है।

प्राणिशास्त्रका, संस्कृतिकी दृष्टिसे, ऊंचा स्थान है, जिसे इस देशकी जनता शायद ही समझती है। जीवविद्याकी प्रारम्भिक शिक्षा यूरोपकी प्रारम्भिक पाठशालाओंकी विशेषता है और हाई स्कूलों तथा कालेजोंमें तो इस विषयका महत्त्व किसी अन्य विषयसे घटकर नहीं है। हमारे देशकी जनता, जो जीवविद्याके अध्ययनके मूल्यको जरा भी नहीं जानती है, अब समय आ गया है कि, उसे इसके आश्चर्यजनक अनुसन्धानों और तत्वविचारके सम्बन्धमें कुछ बताया जाय। इसी बातको ध्यानमें रखकर ये कुछ पृष्ठ एक ऐसे विषयपर लिखे गये हैं, जो हमसे इतना निकट सम्बन्ध रखता है।

(अनुवादक, श्रीयुत अमरेन्द्रनारायण बी० एस-सी०)

शरीररचनामें रसायनका स्थान

श्रीयुत शिवनाथप्रसाद एम० एस-सी०, बी० एल०, एफ० सी० एस०

वैज्ञानिकोंके मतानुसार मनुष्यका शरीर अन्य जीवोंके शरीरसे अधिक विशेषता नहीं रखता। मनुष्य-शरीरसे और कीड़ोंके शरीरोंसे दूरका सम्बन्ध रहते हुए भी गोरिल्ला (Gorrilla) नामक जन्तु (एक प्रकारका बन्दर, जो पुच्छ-हीन होता है और अफ्रीकामें पाया जाता है) से मानव-शरीरका बहुत निकटका सम्बन्ध है।

संसारकी सभी वस्तुओं और सभी द्रव्योंमें शक्तिका विकास है और मनुष्य-शरीर भी उसी शक्तिके विकाससे अपनी स्थितिपर स्थित है। अणु, परमाणु, एलेक्ट्रन और प्रोटोनसे बनी हुई सभी वस्तुओंमें मनुष्य-शरीर भी सम्मिलित है। इस विषयपर वैज्ञानिक एकमत हैं।

रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है। कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और नाइट्रोजनसे प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) नामक अत्यन्त अद्भुत द्रव पदार्थकी उत्पत्ति हुई है। यह पदार्थ कोष (Cell) के अन्दर स्थित रहता है।

सारे प्राणी प्रोटोप्लाज्मसे बने हुए हैं। यह अपरिमित संख्याओंमें विभाजित होकर सृष्टिकी वृद्धि करता है।

फिर भी मनुष्य-जीवनकी सभी आश्चर्य्यमयी घटनाओंकी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा समझानेकी कोशिश करना व्यर्थ है। मनुष्य-जीवनके कुछ विशेष चमत्कारोंको देखकर कहना पड़ता है कि, रसायनके सिवा भौतिक विज्ञानका स्थान भी शरीर-रचनामें कम नहीं है।

शक्तिका विनाश नहीं होता। एक प्रकारकी शक्तिका दूसरे प्रकारकी शक्तिमें प्रकट होना ही प्रकृतिका अटल नियम है। यह सत्य है कि, रसायनवेत्ताओंने अनेक कार्बन यौगिकोंको (जो शरीरमें पाये जाते हैं) संश्लेषण द्वारा, प्रयोग-शालाओंमें, प्राप्त किया है। यूरिया (Urea) नामक यौगिक (जो शरीरके विभिन्न भागोंमें पाया जाता है) १८२८ ई०में वोलर द्वारा प्रयोग-शालामें प्राप्त किया गया था। बर्लिनके नामी रासायनिक एमिल फिशर (Emil Fischer) ने प्रोटीनको (जो शरीरके विभिन्न भागोंमें अधिकतासे पाया जाता है) संश्लेषण द्वारा प्राप्त किया। हालमें ही बेली (Bayly) ने नीललोहितोत्तर किरण (Ultra Violet Ray) द्वारा कार्बन डाइ आक्साइडके विलयन (Solution) में कार्बोहाइड्रेट (जो शरीरके सभी भागोंमें स्थित है) प्राप्त किया। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट ही शरीरके संरक्षक हैं और इन्हींके ऊपर हमारा शरीर स्थित है।

साधारणतः एक स्त्री या पुरुषके शरीरमें ६ गैलन पानी है और इतना आक्सिजन गैस है कि, उससे ८०६ गैलन पीपा भरा जा सकता है! ६ सहस्र पेंसल बनाने योग्य कार्बन है। ८००० दियासलाईके डिब्बे बनाने योग्य फासफोरस है! इतना हाइड्रोजन है कि, एक बेलून एक मनुष्यको लेकर ३५०० फीट ऊँचे पर्वतपर उड़ जाय! पाँच छोटे कीलोंके बनाने योग्य तो लोहा है! इतना नमक है कि, ६

छोटे नमकदान भरे जा सकते हैं। चार या पाँच पाउंड नाइट्रोजन भी मौजूद है।

मानव-शरीरके प्रत्येक भागमें द्रव पदार्थसे परिपूर्ण कोष स्थित है। कोषका चित्र नीचे दिया जाता है। द्रव पदार्थ प्रोटीनका विलयन है और इसे प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं।

कोषोंके बिना शरीर-निर्माण हो ही नहीं सकता। कोष कई भागोंमें विभक्त होकर अपने ही जैसा कोष उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कई कोषोंके मिलनेसे शरीरकी रचना होती है। कोषके अन्दर जो विलयन विद्यमान है, उसमें प्रोटीन कम्पन-गतिको प्राप्त है। ठीक ऐसी ही गति हम प्रयोग-शालामें एक परख नलीमें पैदा कर सकते हैं। तब क्या संश्लेषण द्वारा हम जीवका निर्माण नहीं कर सकते? इस प्रश्नका
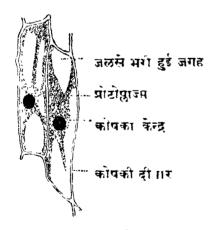
वानस्पतिक कोष

उत्तर कठिन है। अभीतक आधुनिक वैज्ञानिक इसको हल नहीं कर पाये हैं। हम भारतवर्षके प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसा उल्लेख पाते हैं, जिससे पता चलता है कि, उस समय जीव-निर्माण अप्राकृतिक रूपसे एक सरल क्रिया समझा जाता था; किन्तु इसकी सच्चाईपर आधुनिक वैज्ञानिक सन्देह प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त रासायनिक प्रक्रियाओंसे भिन्न शरीरके अन्दर हम अन्य क्रियाओंका अस्तित्व भी पाते हैं। स्वतन्त्र रूपसे शरीरके भागोंकी वृद्धिमें और शरीर-स्थित रासायनिक प्रक्रियाओंमें कुछ अधिक सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता। प्रयोग-शालाओंमें रासायनिक निर्जीव पदार्थमें हम ऐसी वृद्धि नहीं पाते। एंज़ाइम (Enzyme) में और अन्य जीवित कोषोंमें हम ऐसी वृद्धि पाते हैं। इस लिये कहा जा सकता है कि, एंज़ाइम जीवित पदार्थोंमें समाविष्ट है।

प्राणि-शास्त्रके लिये तीन बड़े आविष्कार बड़े महत्त्व-पूर्ण हैं। हार्वे साहबने, १६२८ ई० में, हृदयकी गतिका पूर्ण पता लगा लिया था। लेवायज़ियरने, १७७७ ई० में, आक्सिजन नामक गैसका महत्त्व-पूर्ण अनुसन्धान करके यह पता लगाया कि, यह गैस शरीरका रक्षक है। स्वान और विशवने, १८३६ ई० और १८५६ ई० में, कोषोंसे शरीरके भागोंका निर्माण होना प्रमाणित किया।

इन तीन आविष्कारोंके बिना रसायन द्वारा शरीरके विभिन्न भागोंकी क्रियाओंका समुचित वर्णन कर सकना असम्भव था।

हृदय क्या है और इसके स्पन्दनसे कौनसा कार्य प्रतिपादित होता है, इसका उल्लेख किया जायगा; किन्तु यहाँ यह लिख देना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है कि, शरीरकी क्रिया रक्त-सञ्चालनपर निर्भर है और यह रक्त-सञ्चालन हृदयकी गतिपर निर्भर करता है। हार्वेने यह सिद्धान्त प्रतिपादित कर प्राणि-शास्त्रका अद्भुत उपकार किया और इन आविष्कारोंसे इनको महत्त्व-पूर्ण गौरव भी प्राप्त हुआ है।

मानव-शरीरमें पाचन-क्रियासे बढ़कर और

कोई भी क्रिया अधिक महत्त्वकी नहीं है। शरीरके अन्दर जीवित कोषमें रासायनिक प्रक्रिया द्वारा नया प्रोटोप्लाज्म बराबर बनता है। इस क्रियाको एनाबोलिज्म (Anabolism) कहते हैं। प्रोटोप्लाज्मका ह्रास भी होता है। ह्रासकी क्रियाको केटाबोलिज्म (Katabolism) कहते हैं। दोनों क्रियाओंका मेटाबोलिज्म (Metabolism) कहते हैं। कोषमें स्थित प्रोटोप्लाज्म (Pro toplasm) अपनी शक्तिका नाश नहीं होने देता और निरन्तर शक्तिशाली होते हुए शारीरिक क्रियाओंको जारी रखता है।

खाद्य पदार्थ जब मुँहमें पहुँच जाता है, तभीसे पाचन-क्रिया आरम्भ हो जाती है। एंजाइमकी सहायतासे खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न पाचन-क्रियाओंके परिपक्व रसके रूपमें प्राप्त होकर अँतड़ियोंकी दीवारोंसे शोषित होता है। एंजाइम लारमें विद्यमान है। इसी परिपक्व रससे आगे चलकर रक्तकी उत्पत्ति होती है। खाद्य पदार्थ एंजाइम द्वारा साधारण अवयवोंमें बट जाते है। कुछ एंजाइमों (जो लारमें और शरीरके अन्दर पाये जाते हैं) के नाम ये है—

१—एमाइलेज़ (Amylase)। यह एंजाइम लार (थूक) में पाया जाता है और स्टार्च (Starch) को (जो प्राय: सभी खाद्य वस्तुओंमें पाया जाता है) ग्लूकोज (Glucose) मे परिवर्तित करता है।

२—ट्रिप्सिन (Trypsin)। यह अँतड़ियोंमें पाया जाता है और प्रोटीन (Protien) को (जो खाद्य पदार्थोंमें बहुत ही महत्त्वकी वस्तु है) विच्छिन्न करके शरीरमें शोषित होने योग्य बना देता है।

३—पेप्सिन (Pepsin)। यह अँतड़ियोंमें स्थित होता है और ट्रिप्सिनकी भाँति प्रोटीनको विच्छिन्न करता है।

खाद्य पदार्थों पर रासायनिक क्रिआओंके समाप्त होनेके बाद रस बनता है और यह रस अँतड़ियों
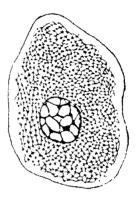
कोष-केन्द्र और प्रोटोप्लाज्मके साथ जान्तव कोष

द्वारा शोषित होकर शरीरकी बनावटमें सहायता पहुँचाता है।

खाद्य पदार्थ पाँच भागोंमें विभक्त हैं—१-प्रोटीन (Protien), २—कार्बोहाइड्रेट (Carbo-hydrate), ३—चर्बी (Fat), ४—जल (Water), ५—खनिज लवण (Salt)। इनके अतिरिक्त विटामिन (Vitamin) अति आवश्यक है और यह अधिकतर फल, दूध इत्यादि खाद्य वस्तुओंमें पाया जाता है। साधारणतः खाद्य वस्तुका जितना तौल आक्सीकरणके पश्चात् २००० कलारीसे ऊँचा ताप प्रकट करे, उतना २४ घंटेके लिये पर्याप्त है।

कलारीके रूपमें खाद्य वस्तुओंकी परिमित मात्रा, खाद्य पदार्थ कलारीके [ताप]के रूपमें, २४ घंटेके लिये—

१ शारीरिक कार्य-रहित मनुष्य (जैसे, एक किरानी, जो लिखने पढ़नेका कार्य्य करता है) — २५००

२ व्यवसायी व्यक्ति [जैसे, डाक्टर, जो दवा करता है] —— २६३१

३ अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाला [जैसे, रंगसाज]——— ३७४६

४ अत्यन्त अधिक परिश्रम करनेवाला [जैसे, लोहार] ——— ५२१३

रासायनिकोंके मतानुसार रक्त कोलायड [Coleoid] है। +वह लाल रंगके पयस्य+[Emulsion] के रूपमें शरीरको नसोंमें दौड़ा करता है।

रक्तमें नीचे लिख पदार्थ पाये जाते हैं—

जल (Water)	८०	प्रतिशत
घन पदार्थ (Solid matter)	६	„
खनिज लवण (Salt)	०.८५५	„
वसा (Fat)	०.५६६	„
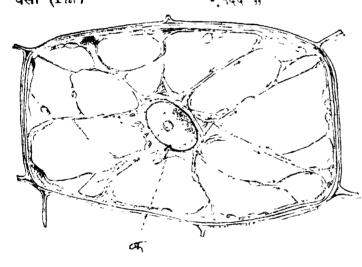
(क) कोषका भीतरी भाग, जहाँ प्रोटोप्लाज्म अपनी निरन्तर गति द्वारा कोषकी रक्षा करता है। अन्य रिक्त स्थानोंमें जल और भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रोटीनके विलयन हैं।

प्रोटीन (Protien)	७.८	„
चीनी या शर्करा (Carbohydrate)	०.१	„

इसके अतिरिक्त युरिया, युरिक, एसिड इत्यादि पदार्थ भी न्यून मात्रामें पाये जाते हैं।

रक्त-बिन्दुको सूक्ष्म-दर्शक द्वारा देखनेसे दो प्रकारके कोष दृष्टिगत होते हैं। एक लाल रंगके लम्बे (गुलाबजामुनके आकारके) और दूसरे सफेद रंगके गोलाकार।

हृदय द्वारा रक्त शरीरकी नलियोंमें संचालित होकर मांसके कोषोंको सुरक्षित रखता है। हृदय अविरल गतिसे शरीरके अन्दर कम्पन्न क्रियाको प्राप्त है। इस क्रियाके बन्द हो जानेसे मृत्युकी अवस्था आ जाती है।

२५ वर्षकी आयुके मनुष्यके शरीरमें हृदयका तौल पाव भरके लगभग होता है। एक रक्त-बिन्दु शरीरमें २४ घंटेमें एक मी कली गतिसे चलता है अथवा साल भरमें ३६४ मीलकी। ७० वर्षकी आयु तक २५००० मीलकी यात्रा (अर्थात् संसारके चारो ओर परिभ्रमण करनेके लिये जितनी दूरीकी आवश्यकता है, उतनी दूरीकी यात्रा) समाप्त करता है। समस्त शरीरमें लग भग ६ सेर रक्त है।

रक्त संचालित करनेवाला यन्त्र हृदय है। पानीके पंपकी तरह (जो सारे नगरमें पानी फैलाता है) हृदयका एक खोल, कम्पन गतिके द्वारा, रक्तको शरीरकी नलियोंमें भेजा करता है और वह लौटकर हृदयके दूसरे खोलमें गिरता है। हृदयके अन्दर चार बड़े-बड़े खोल, दो बाँये और दो दाहिने, होते हैं।

फेफड़ा एक जालीदार मांसका स्पांजके जैसा बना हुआ पदार्थ है। इसके अन्दर साँस

+ कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो देखने में तो विलयनके सदृश मालूम होते हैं; पर वस्तुतः वे वास्तविक विलयन नहीं हैं। ऐसे पदार्थोंको कोलायड कहते हैं। + दूधके सदृश पदार्थोंको पयस्य [Emulsion] कहते हैं।

खींचनेसे हवा भर जाती है और फिर सांस छोड़नेसे यह दब जाता है। इसके अन्दर रक्तका गमन भी जारी रहता है। हवामें आक्सीजन है और हवाके रूपमें आक्सीजन फेफड़ेमें जाकर रक्तसे मिलता और रक्तको शुद्ध करता है। फेफड़ेमें ६००००० छोटे-छोटे छिद्र हैं। इसकी नलियोंमें ४००००० ००० ००० ००० रक्तके लाल कोष गतिको प्राप्त होते हैं। इससे यह पता चलता है कि, किस अद्भुत क्रिया द्वारा प्रकृतिने आक्सीजनको रक्तसे मिलनेका प्रबन्ध कर रखा है!

फेफड़के अन्दर आने और जानेवाली हवामें निम्न लिखित पदार्थ पाये जाते हैं—

जानेवाली वायुमें—

आक्सीजन (Oxygen)	नाइट्रोजन (Nitrogen)	कार्बन डाइ-आक्साइड (Carbon Dioxide)
२१ भाग	७८ भाग	०.०३ भाग

आनेवाली वायुमें—

१६ भाग	७८ भाग	४.३ भाग

फेफड़ेमें यथेष्ट वायु न पहुँचनेसे उसका प्रसार कम हो जाता है।

स्वास्थ्यके लिये यह अति आवश्यक है कि, फेफड़ेका प्रसार यथेष्ट रूपसे हो। वायु फेफड़ेमें प्रविष्ट होकर शरीरका तापक्रम भी कम करती है। फेफड़के अन्दर जानेवाली वायु स्वच्छ होनी चाहिये और कार्बन डाइ-आक्साइडकी मात्रा कम रहनी चाहिये। बाहर आनेवाली वायुमें जलकी मात्रा अधिक है।

जितना कार्बन डाइ-आक्साइड बाहर निकलता है, उसको फेफड़े द्वारा रक्तमें शोषित आक्सीजनसे भाग देनेसे एक स्थिराङ्क (Constant) निकलता है। यह स्थिराङ्क $\frac{१}{१}$=०.९ के बराबर है। किन्तु यह अङ्क खाद्य पदार्थपर निर्भर करता है।

साधारणतः सांस छोड़नेके बाद भी करीब करीब १०० घन इंच वायु फेफड़ेमें रह जाती है, जिसको मनुष्य चाहे तो जोरसे साँस छोड़कर बाहर फेंक सकता है और साधारणतः जितनी साँस मनुष्य लिया करता है, उतनी ले लेनेपर भी फेफड़में सौ घन इंच वायु और भी भर सकनेका स्थान रह जाता है। २४ घंटेमें ४ लाखसे ६ लाख ८० हजारतक घन इंच वायु मनुष्य साँस द्वारा फेफड़में ले जाता है।

मेढ़कके रक्तमें कोष

मांस चिमड़े कोषोंसे बनी हुई वस्तु है, जिसके अन्दर बहुतसे छोटे-छोटे कोष रक्तसे भरे हुए हैं। मांसमें जल और रक्तके सिवा और-और रासायनिक द्रव्य भी हैं - शर्करा (Carbohydrate) ०.६४२ से ०.१८ प्रतिशत; फासफेट (phosphate) ०.०२०से ०.०२४ प्रतिशत। इसके अतिरिक्त लैक्टिक अम्ल भी रहता है। ज्यादा शारीरिक परिश्रम करनेपर यह अम्ल बढ़ जाता है और शर्कराकी मात्रा घट जाती है। हड्डीकी बनावट कालसियम और फास्फेटसे है। खाद्य पदार्थ द्वारा जो कुछ कालसियम हमारे शरीरमें जाता है, उसका अधिकांश अस्थिके मजबूत होनेमें ही लग जाता है।

अति कोमल मांसका लोथड़ा मस्तिष्क है,

जिसके भीतर द्रव पदार्थ भरा हुआ है। वैज्ञानिकों-का मत है कि, इसी द्रव पदार्थके अणुओं और परमाणुओंकी गतिमें अन्तर पड़नेसे विचार-प्रवाहमें भी अन्तर पड़ता है। ये द्रव पदार्थ दो प्रकारके हैं, एक सफेद और दूसरे भूरे। इन द्रव पदार्थोंमें फास्फेटकी ही मात्रा अधिक रहती है।

साधारण रसायनका इतिहास

प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

यह कहना बहुत कठिन है कि, रसायनका अध्ययन कबसे प्रारम्भ हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, प्राचीन पुरुषोंको रसायनका जो कुछ ज्ञान प्राप्त था, वह बहुत कालके निरीक्षणका फल था। प्राचीन ग्रन्थोंमें अनेक ऐसी भी बातें मिलती हैं, जो पढ़नेमें कल्पित कथासी मालूम होती हैं। रासायनिक विधानोंका उन्हें जो कुछ ज्ञान प्राप्त था, वह प्रधानतः औषधोंके निर्माणका फल था। जो कुछ रासायनिक विधान उन्हें मालूम थे, उन्हें व्यवस्थित करनेकी क्षमताका भी उनमें बिलकुल अभाव था। प्रयोगात्मक अन्वेषण करनेकी भावना तो कदाचित् ही कभी उनके मनमें उठी हो। उनमेंसे जिन्हें प्रकृतिके ज्ञानकी वृद्धि करनेकी लालसा भी होती थी, वे बहुधा कल्पनाके मार्गका ही अनुसरण करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि, रसायनका आरम्भ मिस्रवालोंकी "पवित्र कला"के अध्ययनसे सम्बन्ध रखता है। उनके मन्दिरमें रसायन-शालाएँ थीं, जहाँ अनेक प्रकारके रासायनिक विधानों और प्रक्रियाओंका सञ्चालन होता था। रसायनका पर्यायवाची शब्द "केमेस्ट्री"का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है। प्लुटार्कका कथन है कि, मिट्टीके काले रंगके होनेके कारण मिस्रका नाम "किमी" दिया गया था और इसी नामसे प्राचीन कालमें यह पुकारा जाता था। आँखोंकी काली पुतलीके लिये भी यह शब्द प्रयुक्त होता था। यह सम्भव प्रतीत होता है कि, सबसे पहले "मिस्र"का बोध करानेके लिये ही "किमी" शब्दका व्यवहार हुआ हो और इसीसे यह "केमिस्ट्री" शब्द निकला हो। इस केमिस्ट्री शब्दके सबसे प्रथम प्रयुक्त होनेका निश्चित प्रमाण ईसाके जन्मसे ३०० वर्ष पूर्व डायोक्लाशियन् सम्राट्के द्वारा मिलता है; क्योंकि यह सम्राट् अहङ्कारके साथ लिखता है कि, "मैंने मिस्रके उन सब ग्रन्थोंको जला डाला, जिनमें स्वर्ण और चाँदीकी केमिस्ट्रीका वर्णन है।" कुछ लोगोंका मत है कि, केमिस्ट्री ग्रीक शब्द "केमोस" से निकला है, जिसका अर्थ रस या द्रव है। यह नाम उस रस या द्रव पदार्थको दिया गया था, जिसके द्वारा धातुओंका परिवर्तन हो सकता था।

हिन्दी "रसायन" शब्द रस और अयनसे निकला है; अतः रसायनका शब्दार्थ रसका आश्रम, स्थान या घर हुआ। वैद्यकके अनुसार रसायन वह औषधि है, जो जरा और व्याधिका नाश करनेवाली हो। रस एक समय स्वर्ण और स्वर्णके भस्मोंके लिये प्रयुक्त होता था। पीछे यह पारे

और पारेके यौगिकोंके लिये प्रयुक्त होने लगा। आजकल वैद्यकमें धातुओंको फूँककर तैयार किये हुए भस्मके लिये भी (जिसका व्यवहार औषधके रूपमें होता है) रस शब्दका प्रयोग होता है।

चीन और मिस्रकी सभ्यता—चीनकी सभ्यता बहुत पुरानी है और बहुत प्राचीन कालसे ही वहाँके लोगोंको रासायनिक क्रियाओंका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त था। ईसाके जन्मसे कमसे-कम २०००-३००० वर्ष पूर्व वस्त्र तैयार करने, काँसा बनाने, ताम्र और रेशमका निर्माण करने और उनपर चित्रकारी करनेकी कलाओंसे वे पूरे परिचित थे। खनिजों और काँसोंके पिघलानेका ज्ञान ईसाके जन्मके प्राय: १८०० वर्ष पूर्व उन्हें प्राप्त था और ईसाके जन्मके पूर्व ही वे कागज, बारूद, काच, चीनीके पात्र, मिट्टीके पात्र और वार्निश तैयार करना जानते थे।

सभ्यताकी प्राचीनतामें चीनके बाद मिस्रका स्थान आता है। मिस्रवाले भी अनेक धातुओं और मिश्र धातुओंको बनाना जानते थे। उन्हें काच, रंग और साबुन बनाने और शवोंको सुरक्षित रखनेका बहुत अच्छा ज्ञान था। वे पिगमेंट (वर्णक) और विष तैयार करना भी जानते थे। प्राचीन कालमें इस्कदरिया (Alexandria) वैज्ञानिक अध्ययनका केन्द्र था और वहाँ एक बहुत ही अच्छा पुस्तकालय था, जिसमें ७ लाख पुस्तकें संगृहीत थीं; किन्तु यह पुस्तकालय ६४१ ई० में नष्ट कर दिया गया।

भारतकी सभ्यता— भारतकी सभ्यता बहुत पुरानी है। पटनेके खँडहरोंसे प्राप्त पदार्थोंको देखनेसे इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि, ईसाके जन्मके ३००—४०० वर्ष पूर्व, गौतम बुद्धके समयमें, यह देश पूर्ण उन्नत था। लोगोंको ऐसी अनेक वस्तुओंके निर्माणका ज्ञान था, जिनमें रासायनिक क्रियाकी अभिज्ञता आवश्यक थी। विगत चार-पाँच वर्षोंमें सिन्ध और बिलोचिस्तान-के मोहंजोदारो, हरप्पा और नालन्दामें जो पुरा-तत्त्व-विषयक आविष्कार हुए हैं, उनसे पता लगता है कि, ईसाके जन्मसे ३०००—५००० वर्ष पूर्व अर्थात् प्राय: उसी समय, जबसे मिस्रकी

राबर्ट बोआयल

सभ्यताका आरम्भ होता है, उपर्युक्त स्थानोंके निवासी ताँबेको पिघलाना और उससे अनेक प्रकार-के अस्त्रों और घरेलू पात्रोंका तैयार करना जानते थे। उन्हें स्वर्ण और चाँदीका भी ज्ञान था। वे बहुत उच्च कोटिके सुन्दर चीनीके बर्तन तैयार करते थे और उनपर रंग करना भी जानते थे। वङ्गके प्रयोगका भी उन्हें ज्ञान था और उसे ताँबेके साथ मिलाकर वे काँसा तैयार करते थे। काच, काचपर रंग लगाने

और उसपर चित्रकारी करनेकी सामग्रीका भी उन्हें ज्ञान प्राप्त था। उपर्युक्त स्थानोंके खँडहरोंमे रंगीन और सुन्दरतासे चित्रित काचकी बोतलें पायी गयी हैं।

नागार्जुन द्वारा लिखित "रसरत्नाकर" नामक एक ग्रन्थका आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायने पता लगाया है। नागार्जुन किस समयमें हुए थे, इसमें मत-भेद है। पाश्चात्त्य विद्वानोंके मतसे ईस्वी सन्‌की पहली शताब्दीमें, कनिष्कके शासन कालमे, नागार्जुनका जन्म हुआ था। कल्हण मिश्र द्वारा

प्रीस्टले

लिखित काश्मीरके इतिहास "राजतरङ्गिणी" के अनुसार शाक्यसिंहके संन्यास लेनेके १५० वर्ष बाद नागार्जुन हुए थे। राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि, "तब इस देशमें तीन राजा थे, जिनके नाम हिष्क, जिष्क और कनिष्क थे। इन तीनोंने तीन शहर "हिष्कपुर", "जिष्कपुर" और "कनिष्कपुर" बसाये थे। इन प्रभावशाली राज्योंमेंसे काश्मीरका अधिकांश भाग बौद्धधर्मानुयायियोंके अधिकारमें था। उस समय, शाक्य सिंहके परिनिर्वाण प्राप्त करनेके १५० वर्ष बाद देशमें अधिष्ठातृ-स्वरूप एक बोधिसत्त्व रहते थे, जिनका नाम नागार्जुन था।" नागार्जुनका उल्लेख प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग और एक विश्वसनीय अरब लेखक (अलबरूनी) ने भी किया है। अलबरूनीने अपनी पुस्तक ११वीं शताब्दीमें लिखी थी। उसमें वह लिखता है—"सोमनाथके निकट दैहिक किलेके निवासी सोना बनानेकी कलाके प्रसिद्ध प्रवर्तक नागार्जुन थे। उन्होंने इस कलामें बहुत प्रवीणता प्राप्त की थी और इस विषयकी सारी बातोंका संग्रह कर एक अमूल्य पुस्तककी रचना की थी। वह हम लोगोंके समयसे प्रायः १०० वर्ष पहले हुए थे।"

यदि अलबरूनीकी बातें सत्य मान ली जायं, तो नागार्जुनका ६वीं शताब्दीके पहले होना प्रमाणित नहीं होता; किन्तु इस विषयमें अलबरूनीकी बातें कहाँतक मान्य हैं, यह प्रो० सैकों (जिन्होंने अलबरूनीके अरबी ग्रन्थोंको प्रकाशित कराया है) के निम्न कथनसे मालूम होगा—

"यह शिक्षित अरब साधारणतः एक बहुत ही विश्वसनीय व्यक्ति है; पर इसने हिन्दुस्तानके उस भागके ब्राह्मणोंसे समाचार संग्रह किया था, जहाँ ११ वीं शताब्दीमें बौद्ध धर्मका प्रत्येक चिह्न लुप्त हो गया था। इसीसे उसको नागार्जुनके विषयमें झूठी खबरें मालूम हुई। समयके प्रभावसे ही उस समय नागार्जुन-विषयक बातें ठीक-ठीक मालूम न हो सकीं।"

रसरत्नाकर अधिकांश बौद्ध तन्त्रोंसे परिपूर्ण

है; किन्तु बीच बीचमें रासायनिक क्रियाओंका वर्णन है। उस वर्णनसे स्पष्ट विदित होता है कि, उस समय लोगोंको अनेक रासायनिक क्रियाएँ मालूम थीं। इस पुस्तकमें मुख्यतः तीन बातोंका वर्णन है—(१) चाँदीसे सोना बनानेकी अनेक विधियाँ दी हुई हैं। सम्भव है कि, उन विधियोंसे चाँदीका रंग सोनेके समान हो जाता रहा हो अथवा चाँदीकी कोई मिश्र धातु सोनेके रूप-रंगकी बन जाती रहो हो। (२) अनेक धातुओंको साधारणतः; पर पारेकी विस्तारपूर्वक, शोधनविधियाँ दी हुई हैं। इससे विदित होता है कि, उस समय पारेका प्रयोग औषधियोंमें बहुत अधिक होता था। (३) इस पुस्तकमें अनेक उपकरणों या यन्त्रोंका वर्णन है, जिससे ज्ञात होता है कि, उन उपकरणोंका व्यवहार उस समय बहुत अधिकतासे होता था, पर उन उपकरणोंका सविस्तर वर्णन कहीं नहीं मिलता।

नागार्जुन लिखते हैं—

"कोष्ठिका वक्रनालश्च गोमय सारमिन्धनम्।
धमनं लोहपात्राणि औषधं काञ्जिकं विडम् ॥
कन्दराणि विचित्राणि+
सर्वमेलयनं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥"

अर्थात् निम्न पदार्थोंको एकत्र कर रसायनकी क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये—कोष्ठी, वक्रनाल, उपला, लकड़ी, धमनी और लोहेके पात्र।

इस ग्रन्थमें निम्न लिखित यन्त्रोंका भी उल्लेख है—

शिलायन्त्र, पाषाणयन्त्र, भूधरयन्त्र, वंशयन्त्र, नलिकायन्त्र, गजदन्तयन्त्र, दोलायन्त्र, अधःपातनयन्त्र, पातनयन्त्र, नियामकयन्त्र, गमनयन्त्र, तुलायन्त्र, कच्छपयन्त्र, चाकीयन्त्र, वालुकायन्त्र, अग्निसोमयन्त्र गन्धकभाहिकयन्त्र, मूषायन्त्र, तारडिकायन्त्र, घोणायन्त्र, चारणयन्त्र इत्यादि।

यूनानकी सभ्यता मिस्रकी सभ्यताके पश्चात् यूनानकी सभ्यताका प्रारम्भ हुआ। ऐसा मालूम होता है कि, मिस्रवालोंसे यूनानियोंने रासायनिक

कवेंडिश

क्रियाका ज्ञान प्राप्त किया था। यूनानवालोंने बहुत कम क्रियात्मक कार्य किये; पर वे दर्शनिक थे; अतः उन्होंने बहुत कुछ कल्पनाएँ कीं। उनकी कुछ प्राचीन कल्पनाए आधुनिक ज्ञानके अनुसार भी सच्ची ठहरती हैं। यूनानियोंका विशेष ध्यान जड़ पदार्थोंके संगठनकी ओर खिंचा था। ईसाके ६०० वर्ष पूर्व थेल्सने समझा था कि, यह सारी सृष्टि

+हस्तलिखित ग्रन्थमें आगेका पाठ पढ़ा नहीं जाता। —लेखक।

केवल एक पदार्थ जलसे हुई है। ईसाके ५५० वर्ष पूर्व एनावसी मेसियम (Anoximesius)का मत था कि, यह सारी सृष्टि केवल वायुसे हुई है। ईसाके ५०० वर्ष पूर्व हारैक्लीटस (Heraclitus)का मत था कि, यह सृष्टि केवल आगसे हुई है। एम्पीडोक्लीज

लावासिये

(ईसाके ४७०-४३० वर्ष पूर्व)का मत था कि, यह सृष्टि जल, वायु, अग्नि और पृथ्वीसे हुई है। प्राचीन हिन्दू दार्शनिकोंने अपने अधिक सूक्ष्म विवेचनके बलसे पाँचवे तत्त्व आकाशका भी प्रतिपादन किया और पांच तत्त्वोंके योगसे सारी सृष्टिकी उत्पत्ति बतायी, जसा कि, गो० तुलसीदासजीने कहा है—

"क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पञ्च रचित यह अधम शरीरा।"

आरस्तू (अरिस्टाटल)ने उपर्युक्त चार तत्त्वोंमें चार पृथक्-पृथक् गुण होनेकी बात निकाली। उनके मतके अनुसार इन्हीं चार गुणोंके योगसे सारी सृष्टि होती है। ये चारो गुण ताप, शीत, आर्द्रता और शुष्कता थे। उन्होंने इन चार तत्त्वोंके साथ एक पाँचवें तत्त्व (ईथर) को भी जोड़ा। यूनानियोंका यह भी विश्वास था कि, धातुओंका एक दूसरेमें परिवर्त्तन हो सकता है। हीन धातुओंको स्वर्णमें परिणत करनेकी सम्भावना उन्हें बहुत प्रतीत होती थी।

कीमियागरी—यूनानियोंकी रासायनिक क्रियाओंका ज्ञान प्रायः ७ वीं शताब्दीमें अरबवालोंको हो गया। अरबवाले अरस्तूके दार्शनिक विचारसे भी परिचित थे। ऐसा प्रतीत होता है कि, फारसके द्वारा भारतके हिन्दू-विज्ञानका ज्ञान भी अरबवालोंको हो गया था। इस प्रकार अरबमें प्राच्य और पाश्चात्य देशोंके विज्ञानका सम्मेलन हुआ। उन्हीं लोगोंके कारण अरबी प्रत्यय "अल"के जोड़नेसे इस विज्ञानका नाम "अलकिमी" या कीमियागरी पड़ा। उसी समयसे यह स्वर्ण और चाँदी बनानेकी कला समझी जाने लगी।

अरबवालोंके द्वारा इस कीमियागरीकी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। वे लोग अपने सिद्धान्तोंको अस्पष्ट, रहस्यमय और अर्द्ध-धार्मिक भाषाओंमें छिपानेकी चेष्टा करते थे; पर इसमें सन्देह नहीं कि, उन लोगोंके द्वारा ही सर्व-प्रथम रासायनिक सिद्धान्तका

प्रादुर्भाव हुआ। यह सिद्धान्त १२ वीं शताब्दीमें सर्वस्वीकृत समझा जाता था। इस सिद्धान्तके अनुसार सब धातुएँ पारद और गन्धककी बनी समझी जाती थीं और एक या दूसरेके न्यूनत्वाधिक्यसे धातुओंमें भेद होता था। स्वर्ण और चाँदीके सदृश श्रेष्ठ धातुएँ केवल पारेकी बनी समझी जाती थीं; अतः तापसे उनमें कोई विकार नहीं होता था। हीन धातुओंमें न्यूनाधिक मात्रामें गन्धक विद्यमान समझा जाता था; अतः आगमें डालनेसे ऐसी धातुओंमें विकार उत्पन्न होता था।

अरबवाले इस ज्ञानको मिस्र और उत्तरीय अफ्रीकासे होकर स्पेन ले गये। जिस समय स्पेन अरबवालोंके अधीन था, उस समय सारे यूरोपके छात्र स्पेनकी संस्थाओंमें, शिक्षाके लिये, एकत्र होते थे। वहाँसे कीमियागरीका ज्ञान पाश्चात्य यूरोपमें फैला। १३ वीं शताब्दीमें यह ज्ञान सारे यूरोपमें फैला था।

अरबवालोंमें सबसे बड़ा रसायनज्ञ जीबर (Geber) था, जो आठवीं शताब्दीके लगभग हुआ था। जीबरने स्वर्ण बनानेकी चेष्टा की थी और अनेक ग्रन्थ लिखे थे। नाइट्रिक अम्ल (शोरेके तेजाब) का सबसे पहले वर्णन इसीके ग्रन्थमें मिलता है। जीबरको अनेक यौगिक और रासायनिक क्रियाओंका ज्ञान था। जर्मनीके अलबर्टस मैगनस (Albertus Magnus ११९३–१२८२), इंगलैंडके रोजर बेकन (Roger Bacon, १२१४–१२९४) और फ्रांसके आर्नोल्ड विलनोवानस (Arnold Villnovanus) और विंसेंट आफ बोवे (Vincent of beauvault) जीबर-पद्धतिके ही अनुयायी थे। इन लोगोंने धातुओंके परिवर्तनकी चेष्टाएँ की थीं। रोजर बेकन जादूके अभियोगमें पकड़ा गया था और आक्सफोर्डमें इसके लिये उसपर मुकद्दमा चला था। सफाईमें उसने दिखलाया था कि, अनेक अद्भुत घटनाओंके घटित होनेका कारण कोई दैविक शक्ति नहीं थी; वरन सामान और प्राकृतिक साधन थे। इस युगके रसायनज्ञ 'पारसमणि' के आविष्कारको सम्भव समझते थे। इस पारसमणिकी

डाल्टन

विशेषता यह समझी जाती थी कि, यह हीन धातुओंको स्वर्ण और चाँदीमें परिणत कर सकती है। उस समय सभी इस परिवर्तनका सम्भव समझते थे। इस विश्वासका कारण यह था कि, कुछ धातुओंका रंग दूसरे पदार्थोंके योगसे बदला जा सकता था। जीबरको ज्ञात था कि, रक्त ताँबेको अशुद्ध जिंक आक्साइडके साथ पिघलानेसे स्वर्ण-पीत रंगका पीतल प्राप्त होता था और दूसरे खनिजोंके योगसे ताँबा, चाँदीके सदृश श्वेत धातुमें परिणत हो जाता था।

औषध-रसायन—१५ वीं शताब्दीके लगभग हम उस युगमें प्रवेश करते हैं, जिसमें रसायनज्ञोंकी चेष्टा ऐसे पदार्थोंके निर्माणकी ओर झुकी, जिससे मनुष्य अमर हो जाय या कम-से-कम जरा

और व्याधिके कष्टसे बच जाय। यह युग बेसिल वेलेंटाइन (Basil Valentine)के कालसे आरम्भ होता है। बेसिल वेलेंटाइन जर्मनीके एक पादरी महन्त थे। इनके लिखे अनेक ग्रन्थ समझे जाते हैं। उनमें एक पुस्तकमे प्रधानतः अंटीमनीके यौगिकोंके औषधीय गुणोंका वर्णन है। इनकी पुस्तकोंमे गन्धकाम्ल, नाइट्रिक अम्ल, अम्लराज और अन्य भी अनेक रासायनिक द्रव्योंका वर्णन मिलता है।

आवो गाड्रो

स्वीटजलैंडके पारसेलसस (Parcelsus, १४६३—१५४१) के मतानुसार रसायनका उद्देश औषधोंको तैयार करना है। पारसेलससका विश्वास था कि, मनुष्यकी देह रासायनिक संयोगसे बनी है। रासायनिक संयोगके हेर-फेरसे मनुष्योंको व्याधि होती है, अतः रासायनिक विधानोंसे मनुष्य मात्रकी व्याधि दूर की जा सकती है। सबसे पहले पारसेलससने ही हाइड्रोजन तैयार किया था; पर वह इसकी प्रकृतिको ठीक-ठीक न समझ सका था।

पारसेलससके समकालीन ही ऐग्रिकोला (Agricola) नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ। इसने खनिज-विज्ञान और धातु रसायनपर बहुत ही अच्छी पुस्तक लिखी है। इस पुस्तकसे व्यावहारिक रसायनकी बहुत उन्नति हुई। उसमे लिखित अनेक विधियोंका आजतक प्रयोग होता है। जिस समय ऐग्रिकोला धातुरसायनमें निमग्न था, लिबेवियस (Libavius) एक ऐसी पुस्तक लिखनेमे लगा हुआ था, जिसमे रसायनकी, उस समयतक ज्ञात, सभी बातोंका संग्रह है। यह पुस्तक अलकामिया (Alchemia), १५७५ ई॰ मे, प्रकाशित हुई। यह रसायनकी सबसे पहली पुस्तक समझा जाता है। लिबेवियसका मुख्य उद्देश भी औषधोंका तैयार करना था, पर वह धातुओंके परिवर्तनमे भी विश्वास रखता था।

पारसेलससके पश्चात् वानहेल्मा (१५७७—१६४४ ई०) हुआ। इसने अरिस्टाटलके चार तत्वोंके सिद्धान्तको और पारसेलससके मनुष्य-शरीरके रासायनिक संयोगके सिद्धान्तको बिलकुल अस्वीकार कर दिया। वानहेल्मोंके मतानुसार आग जड़ पदार्थ नहीं हो सकती और पृथ्वी कोई तत्व नहीं हो सकती; पर वायु और जलका तत्व होना इसने भी स्वीकार किया। सबसे पहले इसने भिन्न-भिन्न प्रकारकी वायुओंकी स्थितिको पहचाना और उन भिन्न-भिन्न प्रकारकी वायुओंके लिये गैस शब्दका प्रयोग किया। इसने सबसे पहले सिद्ध किया कि, अम्लोंमें धातुओंको घुलानेसे धातुओंका नाश नहीं होता (जैसा इसके पहले समझा जाता था), वरन् ये ऐसे रूपमें बदल जाती हैं,

जिस रूपसे वे फिर उपयुक्त यत्नसे अपना पूर्व रूप प्राप्त कर सकती हैं। वानहेल्मोंका उद्देश एक ऐसा विलायक प्राप्त करना था जिसमें सब वस्तुएँ विलीन हो जायं और जो सब रोगोंका औषध भी हो।

इस युगमें जिन्होंने रसायनके ज्ञानके प्रचारमें सफलतापूर्वक चेष्टाएँ कीं, उनमें ग्लौबर (Glauber, १६०३—१६६८ ई०) का स्थान सर्वोपरि है। ग्लौबर कीमियागर और औषध-रसायनज्ञ, दोनों था। उसने अनेक बहुमूल्य औषधोंका आविष्कार किया। अमोनियम् नाइट्रेट, ग्लौबर लवण (मणिभीय सोडियम सल्फट, $Na^2 SO^4, 10 H^2 O$) इत्यादि लवणोंका भी उसीने आविष्कार किया। वह वस्तुतः एक सच्चा वैज्ञानिक और बहुत उच्च मस्तिष्कका व्यक्ति था।

इसी युगमें एक दूसरा व्यक्ति लेमेरी (Lemery, १६४५—१७१७ ई०) हुआ। इसने अपने विचारों और रसायनके ज्ञानोंका कुर द शिमी (Cours de chymie) नामक ग्रन्थमें, १६७५ ई० में, प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ लटिन और यूरोपकी अन्य भाषाओंमें अनुवादित हुआ। इससे रसायनके प्रचार, अध्ययन और उन्नतिमें बहुत सहायता मिली। इस पुस्तकमें पहला बार खनिज और उद्भिज्ज पदार्थोंमें भेद किया गया था। इस प्रकार रसायनके कार्बनिक और अकार्बनिक, दो विभाग सबसे पहले इसी पुस्तकमें हुए।

वायव्य रसायन—राबर्ट बोआयल (Robert Boyle, १६२७—१६९१ ई०) से रसायनके इतिहासका दूसरा अध्याय आरम्भ होता है। कभी-कभी राबर्ट बोआयल आधुनिक रसायनके "जन्मदाता" कहे जाते हैं। राबर्ट बोआयलके द्वारा ही अरिस्टाटल और पारसेलससके सिद्धान्तोंका अन्त हुआ। अपनी पुस्तक सेप्टिकल केमिस्ट (Sceptical Chemist) में राबर्ट बोआयलने अपने विचार प्रकट किये हैं। इनके मतके अनुसार तत्त्वोंकी वास्तविक संख्याका निर्धारण करना असम्भव है। वे सभी पदार्थ तत्त्व हैं, जिनका किसी प्रकार विभाजन नहीं हो सकता और जो यौगिकोंसे प्राप्त होते हैं

डेवी

और जिनसे यौगिक तैयार हो सकते हैं। सबसे पहले राबर्ट बोआयलने ही तत्त्वों और यौगिकोंके बीचके भेदको ठीक ठीक समझा था। उनका मत था कि, सबसे छोटे-छोटे टुकड़ोंके एक दूसरेके सन्निकट आनेसे रासायनिक संयोग होता

है और उन टुकड़ोंके अलग-अलग होनेसे रासायनिक विच्छेदन होता है। इस प्रकार रावर्ट बोआएलने प्राचीन परमाणु-सिद्धान्तको पुनर्जीवित किया।

अनेक आविष्कारोंके साथ-साथ रावर्ट बोआएलने यह भी खोज निकाला कि, शून्यमें दहन नहीं होता; पर गरम करनेसे शून्यमें भी बारूद जलती है। इससे वे इस सिद्धान्तपर पहुँचे कि, हवाकी जो वस्तु दहनमें सहायक होती है, वह उसी प्रकारकी है, जो

फैरेड

शोरेमें (जो बारूदका एक अवयव है) रहती है। रावर्ट बोआएलने यह भी सिद्ध किया कि, गरम करनेसे धातुओंका तौल कुछ बढ़ जाता है; पर इस तौलके बढ़नेके कारणको वे ठीक-ठीक न समझ सके। उन्होंने रसायनके अध्ययनका एक दूसरा युग भी उपस्थित किया। इस युगको वायव्य रसायन-युग कहते हैं; क्योंकि इसी कालमें भिन्न भिन्न वायव्य पदार्थों वा गैसोंका अध्ययन आरम्भ हुआ। बोआएलने वायु पम्पकी भी पूर्ण उन्नति की और गैसोंके उस नियमको निकाला, जिसे बोआएलका नियम कहते हैं। बोआएलने ही लंडनकी रायल सोसायटीकी स्थापना की थी।

रावर्ट हूक (Robert Hooke) बोआएलका छात्र था। इसने दहनके सम्बन्धके एक सिद्धान्तकी घोषणा, १६६५ ई०में, की थी। इस सिद्धान्तकी ओर लोगोंका ध्यान उस समय अधिक नहीं खिंचा; पर उस समय, और उसके बाद भी, दहनकी सच्ची व्याख्या करनेके लिये जितने सिद्धान्त प्रतिपादित हुए थे, उनमें यह सिद्धान्त वास्तविकताके सबसे निकट था। वायु और शोरेसे जो क्रियाएँ होती हैं, उनका सादृश्य भी इसने दिखलाया और अन्तमें सिद्ध किया कि, वायुके उस अवयवके द्वारा दहन होता है, जो शोरेमें संयुक्त है। हूकने अपने प्रयोगोंका सविस्तर वर्णन नहीं किया। जिस सिद्धान्तपर हूक पहुँचा था, प्रायः उसी सिद्धान्तपर मेयो (Mayow) १६६८ ई०में पहुँचा। मेयोने दहनका कारण स्पिरिटस नाइट्रो ऐरस (spiritus-nitro-aerus), जिसे आजकल आक्सिजन कहते हैं, बतलाया। उसने स्पष्ट रूपसे यह भी वर्णन किया है कि, धातुओंको फूँकनेसे उनके तौलकी वृद्धिका कारण धातुओंका उपर्युक्त स्पिरिटसके साथ संयोग है। मेयो पहला व्यक्ति है, जिसने गैसोंको जलके ऊपर द्रोणीमें इकट्ठा किया था। उसने यह भी दिखलाया कि, दहन और प्राणियोंके साँस लेनेसे वायुकी मात्रा कम हो जाती है। इन

दोनों क्रियाओंमें शोरा वायुका शोषण हो जाता है और वायुमें एक निष्क्रिय गैस रह जाती है। इस प्रकार दहन और साँस लेनेमें एक ही प्रकारकी क्रिया होती है, यह उसने सिद्ध किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, मेयोने वायुका विषमावयव होना पूर्ण रूपसे सिद्ध किया; किन्तु इस परिणामको उसके समकालीन रसायनज्ञोंने स्वीकार नहीं किया।

अबतक जितने प्रयोग होते थे, उनमें संयोजक पदार्थों और क्रियाफलोंके भारका विचार नहीं होता था। वस्तुतः पदार्थोंके भारका हेरफेर उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता था। जोसेफ ब्लेक (Joseph Black, १७२८–१७९९ ई०) ने अपने प्रयोगोंमें भारके परिवर्तनकी ओर विशेष ध्यान दिया। उसने कार्बन डाइ-आक्साइडका आविष्कार किया और इसका नाम बद्ध वायु रखा; क्योंकि चूने-पत्थरमें चूनेके साथ बँधी हुई यह गैस पायी गयी। उसने दाहक और मृदु क्षारके भेदको भी ठीक-ठीक समझाया और पदार्थोंके गुप्त तापका आविष्कार किया।

प्रीस्टले (Priestely, १७३३ - १८०४ ई०)ने हाइड्रोजन, कार्बन मनाक्साइड, नाइट्रिक आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड और आक्सिजनका आविष्कार किया। प्रीस्टलेने आक्सिजनको पारेके रक्त आक्साइडसे प्राप्त किया था। उसीने पहले-पहल पारेपर अमोनिया गैस, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल-गैस, सल्फुरस अम्ल और सिलिकिन टेट्रा-क्लोराइडको एकत्र किया था। पर अनेक यौगिकोंके आविष्कारक होने और स्वयम् आक्सिजन तैयार करनेपर भी वह अन्त समयतक फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका ही अनुयायी रहा।

कवेंडिश (Cavendish, १७३१-१८१० ई०) ने उतने यौगिकोंका आविष्कार नहीं किया था, जितनेका प्रीस्टलेने किया था। जो कुछ अन्वेषण उसने किये, वे अधिकतर और पूर्ण रूपसे तौलके सम्बन्धमें थे। उसने हाइड्रोजनका आविष्कार किया, जलका सगठन निकाला, अनेक गैसोंका आपेक्षिक घनत्व मालूम किया, गैसोंको शुष्क करनेके लिये निरूद्कारकोंका प्रयोग किया

एरीनियस

और ताप तथा दबावसे गैसोंके आयतनमें जो परिवर्तन होते हैं, उन्हें देखा।

शील (Scheele) ने स्वतन्त्र रूपसे आक्सिजन, नाइट्रोजन, क्लोरीन और अनेक कार्बनिक पदार्थोंका आविष्कार किया। बर्गमान (Bergmann, १७३५–१७८४ ई०) वैश्लेषिक रसायनका पथप्रदर्शक समझा जाता है।

फ्लोजिस्टन काल—राबर्ट बोआयलसे लावासियेतकके समयमें रसायनज्ञोंका ध्यान प्रधानतः दहनमें लगा हुआ था। इसी समय दहनकी

व्याख्या करनेके लिये फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका आविष्कार हुआ। फ्लोजिस्टन सिद्धान्तके प्रवर्तक एक जर्मन डाक्टर स्टाल थे। इन्होंने अपने देशके बेकारके कुछ विचारोंको लेकर इस सिद्धान्तको चलाया था। इस सिद्धान्तके अनुसार जलनेवाली सारी वस्तुएँ यौगिक समझी जाती थीं और प्रत्येक जलनेवाली वस्तुमें कोई ऐसा पदार्थ मिला हुआ समझा जाता था, जो जलनेके समय निकल जाता था। स्टालने जलनेके समय इस

मैंडलिएफ

निकलनेवाले पदार्थका नाम फ्लोजिस्टन (Phlogiston) रखा। प्रत्येक जलनेवाले पदार्थमें फ्लोजिस्टन विद्यमान समझा जाता था, जो जलनेके समय निकल जाता था। खुली वायुमें गरम होनेसे लोहा जिस कपिल वर्णके मोर्चेमें बदल जाता है, उसे लोहेका केल्क्स (Calx) कहा करते थे। इस केल्क्सको फिर धातुमें परिणत करनेके लिये किसी दहनशील पदार्थके सम्पर्कमें गरम करनेकी आवश्यकता होती थी। पत्थरका कोयला, लकड़ीका कोयला, चीनी, आटा ऐसे पदार्थ थे, जिनके साथ गरम करनेसे इन पदार्थोंका फ्लोजिस्टन केल्क्सको प्राप्त होता था, जिससे यह केल्क्स फिर लौह धातुमें बदल जाता था। बन्द वायुमें पदार्थ जलते नहीं हैं। इस बातकी व्याख्या फ्लोजिस्टन सिद्धान्तसे यह होती थी कि, बन्द वायुमें फ्लोजिस्टन-के निकलनेके लिये स्थान नहीं रहता। पीछे जब मालूम हुआ कि, जलनेसे पदार्थोंका तौल घटनेके बदले बढ़ जाता है, तब यह बात निकली कि, फ्लोजिस्टनका तौल ऋण होता है अर्थात् पृथ्वीसे आकर्षित होनेके स्थानमें यह पृथ्वीसे दूर हटाया जाता है।

यद्यपि जलनेके सम्बन्धमें उस समय जितने सिद्धान्त प्रचलित थे, उनमें यह सिद्धान्त अवश्य ही उन्नत था; किन्तु इसमें कोई सचाई नहीं थी। आक्सिजनके आविष्कारके बाद शीघ्र ही लावासियेने सिद्ध किया कि, पारेको पर्याप्त समयतक बन्द वायुमें गरम करनेसे पारेके ऊपर लाल तह पड़ जाती है। इस क्रियामें वायुका पाँचवाँ आयतन लुप्त हो जाता है। इस प्रकार जो लाल तह बनती है, उसे पृथक् कर गरम करनेसे आक्सिजन गैस निकलती है, जिसका आयतन वायुके आयतनका प्रायः पाँचवाँ भाग है।

इस और इसी प्रकारके अन्य प्रयोगोंसे लावासियेने सिद्ध किया कि, धातुओंके केल्क्स बनने और जलनेमें फ्लोजिस्टनके जैसा कोई पदार्थ निकलता नहीं, वरन् जलनेवाला पदार्थ वायुके एक अवयवके साथ संयुक्त होता है। १७७४ ई० में लावासियेने निम्न लिखित बातें प्रकाशित कीं—

(१) शुद्ध वायुमें ही वस्तुएं जलती हैं।

(२) जलनेमें वायुका व्यय होता है और दहनशील पदार्थ तौलमें जितना बढ़ता है, उतनी वायु तौलमें कम हो जाती है।

(३) दहनशील पदार्थ जलनेसे साधारणतः अम्लोंमें परिणत हो जाते हैं; किन्तु धातुओंसे केवल कैल्क्स बनते हैं।

इस प्रकार लावासियेके प्रयोगोंसे फ्लोजिस्टन सिद्धान्तका अन्त हुआ और दहनका ठीक-ठीक ज्ञान लोगोंको प्राप्त हुआ।

लावासियेका काल—लावासिये १७४३—१७९४ ई॰में हुआ था। इसीके कालमें वास्तविक रसायनका अध्ययन आरम्भ हुआ। इसने स्वयं आक्सिजनके सिवा किसी नये द्रव्य या किसी नये गुणका आविष्कार नहीं किया; किन्तु अनेक घटनाओंकी, जो उस समयतक ज्ञात थीं, ठीक-ठीक व्याख्या की और रसायनके अध्ययनमे नये रंग-ढंगका सूत्रपात किया। लावासियेने एक पुस्तक भी लिखी है, जिसमें उसने अपने विचारोंका समावेश किया है। लावासियेके कालमें अनेक अच्छे रसायनज्ञ हुए, जिन्होंने अनेक सिद्धान्तों और नियमोंका प्रतिपादन किया। इसी कालमे —

(१) दहन और आक्सीकरणकी ठीक-ठीक व्याख्या, लावासियेके द्वारा, हुई।

(२) रिक्टर और फिशर (Richter, Fischer) ने अम्ल और क्षारोंके निराकरणके सम्बन्धमें परिमाण-सम्बन्धी विश्लेषण किये।

(३) डाल्टनने परमाणु-सम्बन्धी सिद्धान्तको प्रतिपादित किया।

(४) गेलूसकने, १८०५ ई० में, गैसीय पदार्थोंके संयोजनका नियम, जिसे गेलूसकका नियम कहते हैं, निकाला।

(५) आवो गाड्रोने १८११ ई० में अपने अनुमानका प्रतिपादन किया और अणुभार तथा वाष्पके घनत्वके सम्बन्धको स्थापित किया।

(६) मिटशरलेन १८१६ ई० में समरूपताका नियम प्रतिपादित किया।

(७) डुलंग और पेटिटने १८१६ ई० में विशिष्ट-ताप-सम्बन्धी नियम निकाला।

मेडम क्यूरी

(८) स्थायी अनुपातके नियम, जड़ पदार्थोंकी अक्षरताके नियम और रसायनमें तुलाके प्रयोगकी पूर्ण स्वीकृति हुई।

आधुनिक रसायन — १८०० ई० से रसायनकी उन्नति बहुत शीघ्रतासे हुई है। इस समयसे रसायनकी उन्नति इतनी अधिक हुई है कि, यह चुनना बहुत कठिन है कि, कौन अन्वेषण अधिक महत्त्वके हैं, कौन नहीं।

इसी समय डेवी (Davy) ने अलकली धातुओंका आविष्कार किया। फैरेडे (Fara-

day ने विद्युद्-रसायनकी नींव डाली। रासायनिक सूत्रों और संकेतोंका जैसा व्यवहार आजकल होता है, वैसा पहले-पहल बरजीलियस (berzilius)ने किया। ऐरीनियस (Arrhenius), औस्टवल्ड (Ostwald) और नर्न्स्ट (Nernst)ने भौतिक रसायनकी नींव डालकर उसकी उन्नति की। इस कालमें कार्बनिक रसायनकी भी बहुत उन्नति हुई है। वोलर [Wolher]ने कृत्रिम रीतिसे यूरिया तैयार करके उस धारणाका अन्त कर डाला, जिसके अनुसार कार्बनिक यौगिकोंके तैयार करनेमें किसी विशेष प्राणशक्तिकी आवश्यकता समझी जाती थी। फ्रांकलैंड [Frankland]ने बन्धकताके विचारको निकाल कर पुष्ट किया। मेंडेलिएफ (Mendelief) ने तत्त्वोंके आवर्त नियम (Periodic Law) का स्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया। स्टासने अनेक तत्त्वोंके परमाणु भारको अधिक यथार्थतासे निकाला। कार्बनिक रसायनमें अनेक लोगोंने, लीबिग (Liebig), केक्यूले (Kekule), बायर (Baeyer), पास्तर (Pasteur), वांट हौफ (Vant Hoff), फिशर (Fischer), इत्यादिने आशातीत उन्नति की।

आधुनिक समयमें रदरफोर्ड (Rutherford), टौमसन (Thomson), बोर (Bohr) और लिविस (Lewis) के परमाणुके संगठनपर बहुत महत्त्वपूर्ण अन्वेषण हुए हैं। मैडम कुरी (Mme. Curie) का रेडियमके आविष्कारपर, सौडी (Soddy) का रेडियमधर्मितापर, ब्रैग (Bragg) का मणिभकी बनावटपर, आस्टन (Aston) का समस्थानीयपर बहुत उच्च कोटिके अनुसन्धान हुए हैं। इस समयमें अनेक महत्त्वपूर्ण कार्बनिक द्रव्यों (जैसे नील, कपूर, यूकीनीन, यूकेन इत्यादि), कृत्रिम रंगों, सुगन्धित द्रव्यों और औषधोंका, कृत्रिम रीतिसे, निर्माण भी हुआ है। अनेक प्राकृतिक रंगोंके स्थानमें अब कृत्रिम रंगोंका व्यवहार होता है। इन रंगोंमें सुन्दर-से-सुन्दर आभा प्राप्त हो सकती है। पुष्पोंकी गन्धोंकी नकल कर ली गयी है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गन्ध उनसे प्राप्त हो सकती है। कटु और दुर्गन्धवाले औषधोंके स्थानमें स्वादहीन या सुस्वादु तथा गन्धहीन औषधोंका आविष्कार हुआ है।

प्राचीन हिन्दू रसायन

प्रो० महादेवलाल सराफ

रसायनके अग्रगण्य इतिहास-लेखकों (जे० एफ० मेलिन, टौमस, टौम्सन, फरडिनाण्ड होफर तथा हरमान कौप) ने प्राचीन कालमें रसायनके विकाशपर प्रकाश डालनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया है। इनके बादके इतिहासके लेखकोंने आधुनिक प्रगतिशीलतापर ही अधिक जोर दिया है।

उपर्युक्त इतिहास-लेखकोंके समयमें प्राचीन कालके भारतीय रसायनके विषयमें पाश्चात्त्य-देश-वासियोंको कुछ भी ज्ञात नहीं था। बादके लोगोंने इस विषयका ज्ञान प्राप्त करनेका कदाचित् ही प्रयत्न किया। किसी-किसी ग्रन्थमें प्राचीन हिन्दुओंके परमाणु-सिद्धान्तके विषयमें कुछ उल्लेख मिलता है। यह भी कुछ-कुछ

मालूम होता है कि, उस समयके हिन्दू काच बनाना, चीनीका बर्तन बनाना, उनपर लुक फेरना तथा नील इत्यादिके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानते थे। प्लीनीने वर्णन किया है कि, शर्करा और नील भारतसे ही पाश्चात्त्य देशोंमें आये। इस लेखमें प्राचीन भारतीय रसायनकी कुछ बातोंका, प्रायोगिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि कोणसे, संक्षेपमें वर्णन करनेकी चेष्टा की जायगी। प्राचीन भारतीय अपने सिद्धान्तोंका निर्णय प्रधानतः कल्पना तथा निरीक्षणपर ही किया करते थे। पीछे कुछ रसायनज्ञोंका झुकाव प्रयोगकी ओर भी हुआ। उस समय भारतमें गणितका अध्ययन बहुत बढ़ा-चढ़ा था। इससे लाभ उठाकर उस समयके वैज्ञानिक अपनी कल्पनाओंको गणितके अङ्कोंमें पूर्ण रूपसे प्रकाशित कर सके थे।

हिन्दुओंका परमाणु-सिद्धान्त बहुत पेचीला है। पर इस सिद्धान्तकी प्रमुख बातें पाँचवीं शताब्दीमें लिखित एक पुस्तकके आधारपर इस प्रकार हैं—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—ये पाँच तत्त्व हिन्दुओंको ज्ञात थे। आकाश-तत्त्व सर्वव्यापी, अनन्त और भागहीन समझा जाता था। इन्द्रियोंसे इसका ज्ञान न हो सकता था। अभेद्यताके गुणका इसमें अभाव था। शब्दकी उत्पत्तिके लिये यह आवश्यक समझा जाता था। इससे ज्ञात होता है कि, हिन्दुओंका आकाश वर्तमान भौतिक विज्ञान-वेत्ताओंके ईथरसे बहुत कुछ सादृश्य रखता है। यह आश्चर्यकी बात है कि, आधुनिक भौतिक विज्ञान-वेत्ताओंने (जो कल्पनाकी अपेक्षा प्रयोगपर अधिक विश्वास [illegible]ते हैं) भूलें की हैं, जो प्राचीन हिन्दू दार्शनिकोंने [illegible]थीं।

[illegible] अतिरिक्त जो अन्य चार तत्त्व हैं, वे परमाणुओंसे बने समझे जाते थे। ये परमाणु सनातन समझे जाते थे। न इनकी सृष्टि होती थी और न इनका नाश। सारे तत्त्व परमाणुके रूपमें और परमाणुओंकी समष्टिके रूपमें स्थित समझे जाते थे। जिन तत्त्वोंको हम देखते हैं, वे परमाणुओंकी समष्टि हैं; अतः वे विनाशको प्राप्त हो सकते हैं। पर इनमें अदृश्य परमाणुओंमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। हिन्दू गतिको भी स्थायी मानते थे। इसीसे उनके तात्त्विक पदार्थोंकी भावनाका बहुत कुछ पता लगता है। कुछ दार्शनिक जलको तत्त्व मानते थे, पर दूसरोंके विचार विकाशके सम्बन्धमें भिन्न थे। एक उपनिषद्में लिखा है कि, ईथर ही प्राथमिक तत्त्व है, जिससे वायुकी उत्पत्ति होती है। वायुसे अग्निकी, अग्निसे जलकी एवम् जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। ऐसा भी वर्णन है कि, "प्रलय-कालमें इस विकाशके प्रतिकूल क्रममें पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें और आकाश ईश्वरमें लीन हो जायगा।"

इसके बाद परमाणु-सिद्धान्तके प्रतिपादकोंने तत्त्वों तथा यौगिकोंके निर्माणका कारण असमान परमाणुओंके बीच आकर्षण और समान परमाणुओंके बीच प्रतिसारणका होना बतलाया है। यह सिद्धान्त परमाणुके आधुनिक इलेक्ट्रन सिद्धान्तसे बहुत कुछ सादृश्य रखता है। उन लोगोंने परमाणुओंका आकार एक घन इंचका 11 × ३५×१२-६२ गुणा अनुमान किया था, जो आज कलके हाइड्रोजनके परमाणुके आकारके प्रायः समान ही है। यह उनकी कोरी कल्पना ही थी। इसका कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं है।

रासायनिक परिवर्तनमें तापकी जो आवश्यकता होती थी, उसके भण्डारका उद्गम सूर्य समझा जाता था। ताप तथा प्रकाशकी किरणें छोटे-छोटे कणोंसे बनी समझी जाती थीं। ये कण बड़े तीव्र वेगसे गमन करते हुए समझे जाते थे। ये अन्तर-परमाणुक स्थानोंसे होकर निकल सकते थे। इसीसे पात्रमें रखे जलको उबालनेमें समर्थ थे। ये कुछ ठोस पदार्थमें भी प्रविष्ट कर सकते थे, जिससे पदार्थमें पारदर्शकता या पारभासकताका गुण आ जाता था। जिन पदार्थोंके परमाणुओंके बीच होकर वे गमन नहीं कर सकते थे, ऐसे पदार्थ अपार-दर्शक थे और उनसे छाया इत्यादि उत्पन्न होती

थी। इन कणोंमें अन्य अद्भुत रीतियोंसे भी परमाणुओंके आक्रमण करनेकी शक्ति थी, जिनसे उनमें अनेक प्रकारकी रासायनिक क्रियाएँ होती थीं।

हिन्दुओंके सिद्धान्तका इतना वर्णन कर अब मैं उनके प्रयोगात्मक पहलूपर विचार करता हूँ। केमिस्ट्रीके लिये आज कल हिन्दी शब्द 'रसायन' प्रयुक्त होता है। यह शब्द पहले पहल ऐसी औषधियोंके लिये प्रयुक्त होता था, जो जीवनको परिपुष्ट और अमर बना सके। बादमें यह शब्द पारद और पीछे अन्य धातुओंकी बनी औषधियोंके लिये प्रयुक्त होने लगा। इससे स्पष्ट विदित होता है कि, औषधि-निर्माणमें सहायक होनेके रूपमें ही रसायनका विकाश हुआ। यह औषधि-निर्माण बौद्ध कालमें उनके मठोंमें होता था; क्योंकि प्रत्येक बौद्ध भिक्षुका यह कर्त्तव्य होता था कि, शारीरिक रोगों अथवा आध्यात्मिक दुःखोंसे सबको मुक्त करें। ऐसे बौद्ध मठोंमें औषधालय होते थे।

इस प्रकार रसायनपर धर्मकी छाप पड़ी। जो इसका मनन करते थे (चाहे वे शिक्षक हों अथवा विद्यार्थी), उनको बहुत कठोर संयम करना पड़ता था। इसी कारण निम्न लिखित बातें हिन्दूग्रन्थोंमें मिलती हैं—"जो सत्यवादी हैं, जिन्हें किसी प्रकारका प्रलोभन नहीं है, जो देवताओंका पूजन करते हैं, आत्म-संयमी हैं और सात्विक भोजन करते हैं, ऐसे ही व्यक्तियोंको रासायनिक क्रियाओंके सम्पादनमें संलग्न होना चाहिये।" हिन्दुओंने प्रयोगोंपर बहुत जोर दिया था। रसायनके एक ग्रन्थमें लिखा है—"वे ही वास्तविक गुरु हैं, जो प्रयोग करके दिखा सकते हैं—जो कुछ वे पढ़ाते हैं। वे ही योग्य छात्र हैं, जो अपने गुरुओंसे प्रयोगोंको सीखकर स्वयं कर सकते हैं। जो गुरु अथवा छात्र ऐसा नहीं कर सकते, वे नाटकके पात्रोंके सदृश हैं।" इन बातोंसे पता चलता है कि, गुरु और छात्रोंके लिये अति शुद्ध रासायनिक द्रव्यों और औषधियोंको प्रस्तुत करना कितना आवश्यक है। छठी शताब्दीतक हिन्दू भस्मीकरण, स्रवण, वाष्पीकरण, उद्धनन तथा निग्रहण इत्यादि क्रियाओंसे पूर्ण रूपसे परिचित हो गये थे। इन क्रियाओंके द्वारा पारद और लवणके संयोगसे पारदका पर क्लोराइड (Mercury perchloride) पारद और गन्धकके संयोगसे मरकरी सलफाइड (हिंगुल) तैयार होता था और कोपर सलफेटका (तूतिया) का पाइराइटिजसे निष्कर्षण भी होता था।

पारद प्राचीन हिन्दुओंका एक प्रमुख पदार्थ था। उनका कथन था कि, पारद शरीरको रोग-प्रतिरोधक बना देता है और अमरत्व भी प्रदान करता है। पारदका कृष्ण सलफाइड (कृष्ण हिंगुल) प्रायः सब औषधियोंमें मिलाकर सब रोगोंमें दिया जाता था। पारदकी बनी औषधि कुष्ठ तथा अन्य चर्म-रोगोंमें भी दी जाती थी। इससे दाहक क्षारको भी प्रस्तुत करके व्यवहार करते थे। जब क्षार बहुत तीक्ष्ण हो जाता था, तब उसे सिरकेसे निराकरण करते थे।

इस स्थानपर क्षार बनानेकी क्रियाका कुछ विस्तृत वर्णन दिया जा सकता है। हिन्दू दो प्रकारके क्षार मानते थे—एक मृदु क्षार और दूसरा दाहक क्षार। मृदु क्षार कुछ वृक्षोंकी राखोंको लोहेकी कड़ाहीमें पानीमें उबालकर कपड़ेसे छाननेसे तैयार होता था। स्वच्छ विलयनको (जिसमें पोटासियम कार्बोनेटका बहुत कुछ अंश है) मृदु क्षार कहते थे। चूने-पत्थरको अच्छी तरह जलाकर (जलमें बुझा-कर) मृदु क्षारमें डालनेसे दाहक क्षार प्राप्त होता था। उप-र्युक्त मृदु क्षारके स्वच्छ विलयनको बुझे हुए चूनेके साथ मिलाकर लोहेके कलछोंसे वे लोग खूब मिलाते थे। इस दाहक क्षार (Potassium hydroxide) को ढक कर पात्रमें रखते थे। दाहक क्षार बनानेका यह वर्णन इतना वैज्ञानिक है कि, किसी भी आधु-निक पुस्तकमें विना परिवर्तनके यह विधि दी जा सकती है। ईसाके जन्मके पहले, तीसरी और चौथी शता-ब्दियोंमें, यह विधि प्रयुक्त होती थी। यह भी लोगोंको मालूम हो गया था कि, वायुमें खुला रखनेसे इस

क्षारका समाहरण न्यून हो जाता है—यद्यपि उन्हें ज्ञात नहीं था कि, ऐसा क्यों होता है। आज भी हम लोग सोडियम या पोटासियम हाइड्रोक्साइड (दाहक क्षार) को लोहे या चांदीके पात्रोंमें रखते हैं । आचार्य्य पी० सी० रायकी सम्मति है कि, सुश्रुतमें यह भी पता चलता है कि, उन्हें सोडियम कार्बोनेट और पोटासियम कार्बोनेटके भेद मालूम थे। यदि यह कथन सत्य है, तो डेवीके समयसे (जिन्होंने पेटासियमको पृथक किया था) इन हिन्दू वैज्ञानिकोंके बीच २००० वर्षका अवकाश है। उस समय डवीने कहा था कि, प्राचीन पुरुषोंको सोडियम और पोटासियम कार्बोनेटका भेद ज्ञात नहीं था। पाश्चात्य देशोंमें ब्लैक प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने दाहक और मृदु क्षारका भेद बताया था। ये क्षार औषधियों तथा शल्य-चिकित्सामें प्रयुक्त होते थे। *कटे हुए स्थानोंको क्षारोंके विलयनसे धोनेकी बात* उस समय प्रचलित थी। भारतीय रसायनका औषधि-रसायनसे घनिष्ठ सम्बन्ध होनेके कारण पारसेलस (१४९३-१५४१) के ग्रन्थों द्वारा ८०० वर्ष बाद यह यूरोपमें गया। अब प्रश्न यह उठता है कि, क्या पारसेलसने भारतसे ही यह रसायन प्राप्त किया था ? वस्तुतः बात ऐसी ही मालूम होती है। खलीफा हारून (जो ८०९ ई० में मृत्युको प्राप्त हुए थे) और मंसूर (जो १००२ ई० में मरे थे) ने बगदाद और कारडोवाके पुस्तकालयोंके लिये बहुतसी औषधोंकी और शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकोंका अनुवाद कराया था। मांखने (जिन्होंने हारून-अल-रशीदको एक बड़े कठिन रोगसे मुक्त किया था) हिन्दुओंके रसायन-सम्बन्धी एक महत्त्व-पूर्ण पुस्तकका अनुवाद किया था। बहुतसे मुसलमान छात्र विद्योपार्जनके लिये भारत आये थे। बहुतसे भारतीय चिकित्सकोंको भी खलीफाने अपने दरबारमें बुला रखा था। उस समयके विज्ञानका अध्ययन मुसलमान देशोंमें बहुत होता था और वहांसे ही प्रधानतः स्पेनके मुसलमानोंके द्वारा पश्चिमी देशोंमें फैला। इन बातोंका एक प्रमाण यह है कि, अरबी संख्याएं (जो यूरोपमें आज भी प्रचलित हैं) भारतसे ही अरबोंके द्वारा यूरोपको गयीं। इसी प्रकार लाफाउंटेन नामकी कहानियां भी, कुछ अंशमें, भारतसे ही गयी थीं। यह कहानियोंकी पुस्तक संस्कृतसे पहलवीमें, फिर अरबीमें और उसके बाद फ्रेंचमें अनुवादित हुई थी। यद्यपि हिन्दू रसायन वैद्यकका एक प्रमुख अङ्ग था; पर व्यावहारिक रसायनमें भी हिन्दुओंने बहुत उन्नति की थी, जिससे हिन्दू सहस्रों वर्षतक प्राच्य और पाश्चात्य बाजारोंपर प्रभुत्व रख सके थे। इनका प्रधान व्यवसाय था फिटकिरी, हरताल तथा गोबर मिलाकर सूतके लिये मंजिष्ठका पक्का रंग बनाना, नीलके पौधेसे नील निकालना तथा इस्पातपर पानी चढ़ाना। अन्तिम क्रियाके द्वारा ही ऐसा इस्पात बन सकता था, जिसकी बनी तलवार *"डमस्कस तलवार" के नामसे विख्यात थी।*

धातुओंके रसायनके विषयमें यह ज्ञात होता है कि, प्राचीन हिन्दू ६ धातुओं तथा अनेक मिश्र धातुओंसे परिचित थे। सातवीं धातुका नाम यूरोपमें पहले पहल पारासेलसके ग्रन्थमें मिलता है। इस सातवीं धातुका नाम उन्होंने जिंकेन (Zincken) रखा है, जिसकी प्रकृतिके विषयमें वे कुछ नहीं कहते हैं। इस धातुको वे अर्द्ध धातु कहते हैं।

लिंबविअसने (१६१६) पहले पहल जिंकके गुणोंका यथार्थतासे वर्णन किया है, पर वे यह न जानते थे कि, केला-माइन नामक खनिजसे यह धातु प्राप्त होती है। ये लिखते हैं कि, एक अद्भुत प्रकारका वङ्ग (टिन) ईस्ट इंडिजमें मिलता है, जिसे केलम कहते हैं। डच ईस्ट इंडिज कम्पनीके द्वारा थोड़ा जिंक हालैंडमें लाया गया था। केला-माइनसे जिंकका निष्कर्षण बारहवीं शताब्दीके एक ग्रन्थमें मिलता है। यह विधि प्राचीन भारतीय विधिसे बहुत कुछ सादृश्य रखती है। यह इस प्रकार है—

"केलामाइनको हलदी, विरोजा, काजल और सोहागेके साथ रगड़ो। इस मिश्रणसे एक घरियेको भरकर धूपमें सुखाओ। इसके मुखको एक सच्छिद्र ढक्कनसे ढक दो। एक पात्रमें जल रखकर उसे पृथ्वीमें गाड़ दो और घरियेको उसके ऊपर उलट कर रख दो। अब घरियेको कोयलेकी आँचसे गरम करो। जब उसमेंसे निकलती ज्वाला नील वर्णसे श्वेत वर्णकी हो जाय, तब कामको बन्द कर दो। धातुका सार (जो इस क्रियासे नीचेके जलमें गिरता है) वज्रके समान चमकता है।" यद्यपि हिन्दुओंको

हिन्दुओंको यह भी ज्ञात था कि, भिन्न-भिन्न धातुओंको आँचपर रखनेसे भिन्न-भिन्न रंगकी ज्वाला निकलती है-- जैसे, ताम्रसे नील रंगकी, वङ्गसे कबूतरके रंगकी, शीशेसे फीके पीले रंगकी, लौहसे भूरे रंगकी और तूतियासे लाल रंगकी। धातुओंके गुणात्मक विश्लेषणके लिये इस प्रकारकी परीक्षा १४ वीं शताब्दीके पहले कहीं भी हमें नहीं मिलती। कारडन (सन् १५०१ से १५७६ तक) प्रथम पुरुष हैं, जिन्होंने धातुओंसे निकलती हुई ज्वालाओंमें विभिन्नताका निरूपण किया था।
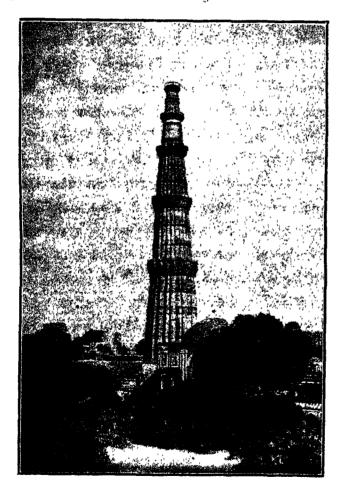
कुतुबमीनार, दिल्ली

लौहस्तम्भ, दिल्ली

यह ज्ञात नहीं था कि, यह नीली ज्वाला कार्बन मोनाक्साइडके जलनेसे बनती है; तथापि उनका तीक्ष्ण निरीक्षण प्रशंसनीय है।

दिल्लीके लौहस्तम्भके विषयमें प्रायः सभी जानते हैं। सर राबर्ट हैड फिल्डने इसकी पूर्ण रूपसे परीक्षा की थी। उनका कथन है कि, इसकी आयु १६०० वर्षसे कम

नहीं है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि, फोटो-माइक्रोग्राफसे ज्ञात होता है कि, इसमें धातुका मेल कुछ भी नहीं है। यद्यपि इसमें ०.१४४ प्रतिशत फास्फरस है, तथापि अन्य बातोंमें यह बिलकुल शुद्ध लोहेसे बना हुआ है। यह लौहस्तम्भ सचमुच उस समयकी एक आश्चर्यजनक रचना है; क्योंकि न तो उस समय वाष्पसे काम करनेवाले हथौड़े थे और न कोई दबानेके यन्त्र, जिनसे इतना भारी लोहेका स्तम्भ बनाया जा सके। इसकी पूर्ण लंबाई ७.२२ मीटर है। पृथ्वीतलसे इसकी ऊँचाई ६.७१ मीटर है। ऊपरी घेरा ३१.८ सेंटीमीटर, नीचेका घेरा ४१.६ सेंटीमीटर तथा संपूर्ण तौल ६००० कीलोग्राम है। इसका सबसे बड़ा भाग घेरेमें ४१.६ सेंटीमीटरसे कम नहीं है। आश्चर्य होता है कि, इतना बड़ा स्तम्भ कैसे बना। शिखरपर प्रायः १.२५ मीटरमें, बहुत सुन्दर, भिन्न-भिन्न प्रकारकी, खोदाई की हुई है। इसकी रचना फेराइटके बड़े-बड़े दानेसे हुई है। इन बड़े दानोंके बीच सिमेंटाइटके छोटे-छोटे दाने पाये जाते हैं। बड़े दानोंके भीतर बहुत छोटी-छोटी असंख्य रेखाएँ भी मिलती हैं, जिनकी बनावटके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है। देखनेसे यह ज्ञात होता है कि, ये रेखाएँ नाइट्राइट-की रेखाओंके समान हैं। परन्तु इसमें नाइट्रोजनका अंश केवल ०.०३ प्रतिशत है। इससे यह सिद्ध होता है कि, ये रेखाएँ नाइट्राइटकी नहीं हो सकतीं। लोहेको ६००° शतक गरम कर ठंढ़ा करनेके बाद ही रेखाएँ और सूक्ष्म-रचना लुप्त हो जाती है। परीक्षासे यह ज्ञात होता है कि, फेराइटके दाने प्राकृतिक आकारके ही हैं; अतएव भीतरी बनावट ठंढेमें काम करनेके कारण नहीं हो सकती। प्रयोगशालामें जो इसका पूर्ण विश्लेषण हुआ था, वह यों है—

कार्बन	०.०८० प्रतिशत
सिलिकन	०.०४६ ”
गन्धक	०.००६ ”
फास्फरस	०.११४ ”
मैंगनिज	कुछ नहीं
लोहेके अतिरिक्त और तत्वोंका अंश	०.२४६ प्रतिशत
लोहा	९९.६६६ ”

विशिष्ट घनत्व ७.८१। गद-कठोरता न ९.८८

इस परीक्षासे यह ज्ञात होता है कि, यह स्तम्भ एक अच्छे प्रकारके पिटवें (!) लोहेसे बना हुआ है। इसमें गंधकका भाग इतना कम है, जिससे यह ज्ञात होता है कि, इसके बनानेमें कोयला इत्यादि कोई शुद्ध इन्धन काममें लाया गया है। एक आश्चर्य-जनक बात इसमें यह है कि, मैंगनिज इसमें बिलकुल नहीं है, जो किसी भी पिटवें लोहेमें कुछ-न-कुछ अवश्य होता है। लोहेकी मात्रा विश्लेषणसे ही निकाली गयी थी। इस स्तम्भका पूर्ण विश्लेषण पहली ही बार हुआ है। इस स्तम्भमें और लंकाके एक स्तम्भमें इतनी समानता है कि, इससे यह अनुमान निकलता है कि, इन दोनों स्थानोंके लोहेके निर्माणमें एक ही विधि प्रयुक्त हुई थी।

भारतीय विश्वविद्यालयोंमें व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा

प्रो० डा० एन० एन० गोडबोले एम० ए०, पी-एच० डी० (बर्लिन)

सभी प्रकारकी औद्योगिक शिक्षाओंका आधारस्तम्भ रसायन है। रसायन-विज्ञानके दो प्रमुख विभाग हैं—(१) सैद्धान्तिक (Theoretical) और (२) व्यावहारिक (Applied)। इन दोनोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। भारतमें, सैद्धान्तिक रसायनमें, अनुसन्धानका कार्य सब प्रकारसे सन्तोषप्रद रहा है। लेकिन यह अत्यन्त खेदकी बात है कि, औद्योगिक और व्यावहारिक रसायनकी ओर भारतके अग्रगण्य विश्वविद्यालय भी ध्यान नहीं दे रहे हैं! विश्वविद्यालयोंमें व्यावहारिक रसायनके अध्यापनका यह तात्पर्य नहीं है कि, सैद्धान्तिक रसायनकी शिक्षा स्थगित कर दी जाय। रसायनके इन दोनों विभागोंकी शिक्षामें पारस्परिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि सैद्धान्तिक रसायनमें अनुसन्धानका कार्य होते रहना, अन्य देशोंसे, समानता बनाये रखनेके लिये, आवश्यक है; पर उससे भी अधिक आवश्यक व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा है। देशसे बेकारी और गरीबीको हटानेके लिये इस ओर पूर्ण उद्योग और उत्साहसे लग जाना आवश्यक है।

व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा देनेवाली सबसे पुरानी संस्था बैंगलोरका "इंडियन इंस्टीट्यूट आफ सायंस" है। इस संस्थाको स्थापित करनेमें स्वनामधन्य जमशेदजी ताताका यह उद्देश्य था कि, अपने देशमें ही भारतीय युवक व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा प्राप्त करनेकी पूरी सुविधा प्राप्त कर सकें; क्योंकि ऐसी शिक्षाके लिये विदेश जाना न केवल कष्ट-साध्य है, वरन इसमें अत्यधिक धनव्ययकी आवश्यकता भी होती है। आवश्यकताकी सारी चीजें इस संस्थाके पास, प्रचुर परिमाणमें, विद्यमान हैं—सुन्दर भवन, उत्तम जलवायु, प्रचुर धन और व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाके लिये आवश्यक मशीनें तथा प्रयोगशाला। इस संस्थाको स्थापित हुए २० वर्ष हो गये। सैद्धान्तिक रसायनकी ओरके इसके कार्यको भी हम भूल नहीं रहे हैं; पर जिस उद्देश्यको लेकर यह संस्था स्थापित हुई थी, अधिकतर उसीको पूरा करना चाहिये। यदि इस संस्थाको इसकी उद्देश्य-पूर्त्तिकी ओर ही लगाया जाय, तो यह आश्चर्यजनक कार्य कर दिखला सकती है।

इसके बाद, जो दूसरी संस्था हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है कानपुरका "हारकोर्ट बटलर टेकनोलाजिकल इंस्टीट्यूट।" इस संस्थाको स्थापित हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं। यू० पी० की प्रान्तीय सरकारको इस बातका गौरव प्राप्त है कि, वह बराबर व्यावहारिक शिक्षाको उत्साहित करती रही है। प्रान्तीय सरकारके उद्योगसे टेकनोलाजिकल इंस्टीट्यूटको आवश्यकताकी सारी चीजें प्राप्त हैं और उम्मीद है कि, वहांके अधिकारी उन आशाओंको पूरी करेंगे, जो इस इंस्टीट्यूटसे रखी जाती हैं। इस संस्थामें साधारण व्यावहारिक शिक्षाके अतिरिक्त तीन प्रधान व्यवसायोंकी शिक्षा दी जाती है। इंजीनियरिंगकी बातोंमें लखनऊ विश्वविद्यालयके इंजीनियरिंग कालेजसे भी सहायता मिलती है।

इस दिशामें तीन विश्वविद्यालयों (पंजाब, कलकत्ता और बनारस) के नाम उल्लेखनीय हैं। बम्बई, नागपुर तथा आंध्रके विश्वविद्यालय भी व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाका प्रबन्ध करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। यदि यह काम सुयोग्य व्यक्तियोंको सौंपा जाय, तो कोई कारण नहीं कि, वे अच्छी सफलता न प्राप्त कर सकें। पटना और ढाकाके विश्वविद्यालय भी इस ओर कुछ चेष्टा करते दीख पड़ रहे हैं; पर वास्तवमें उनका ध्यान इस ओर मालूम नहीं पड़ता।

धनाभावका कारण बतलाकर किसी उद्योगमें सच्चे उत्साह-की कमीको लोग छिपाया करते हैं। पता नहीं, यह बात यहाँ किस हदतक लागू है।

सर्वप्रथम पंजाब-विश्वविद्यालयने अपने यहाँ व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया। इसका सारा श्रेय लाहोरके फोरमैन क्रिश्चियन कालेजको है, जो पंजाबमें व्यावहारिक रसायनको स्थान देनेवाली पहली संस्था है। इसके लिये वहाँ एक सुव्यवस्थित प्रयोगशाला है तथा सैद्धान्तिक रसायनकी पढ़ाईके लिये भी पूरी सुविधा है। व्यावहारिक रसायनमें यहाँ अब आनर्स क्लास भी खुल गया है, जो भारतमें अपने ढंगकी पहली चीज है। पंजाब विश्वविद्यालयके संरक्षण में डी० ए० वी० कालेज आदि भी इस काममें हाथ बँटा रहे हैं। फोरमैन कालेजमें न केवल व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा ही दी जाती है, वरन वहाँ काफी बड़े परिमाणमें साबुनका व्यापार भी चलाया जाता है, जिससे वहाँके विद्यार्थियोंमें विशेष उत्साह और आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है।

कलकत्ता विश्वविद्यालयने भी व्यावहारिक रसायनमें शिक्षाका प्रबन्ध किया है; पर एम० एस-सी० की श्रेणीमें ही। तेल, मीनाकारी (Enamelling) और कण्वीकरण (Fermentation) इत्यादिकी विशेष शिक्षा, सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा, दी जाती है। जहाँ अन्य स्थानोंमें व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा बी० एस-सी० की श्रेणीसे ही आरम्भ हो जाती है, वहाँ कलकत्ता विश्वविद्यालयने इसे एम० एस-सी० की श्रेणीसे आरम्भ किया है। इससे जो शिक्षा ४ वर्षोंमें दी जानी चाहिये, वो वर्षोंमें देनी पड़ती है; और, इस कारण, समयकी कमी पड़ जाती है। सुना जाता है कि, अधिकारी समयकी कमीके प्रश्नपर विचार कर रहे हैं और यह सोचा जा रहा है कि, या तो एम० एस-सी० में ही कुछ समय बढ़ा दिया जाय अथवा इसे बी० एस-सी० से आरम्भ किया जाय। दूसरी कमी यह है कि, वहाँकी शिक्षा व्यावहारिककी अपेक्षा अधिकतर सैद्धान्तिक है। इसके लिये एक नयी यन्त्रशाला बन रही है, जिसमें वास्तविक रूपसे व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा दी जा सके।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें व्यावहारिक रसायनका विभाग इसके वाइस चांसलर महामना मालवीयजी-के उद्योगसे, सन् १९२१ में ही, स्थापित हो गया था। इस विभागका लक्ष्य इस देश तथा अन्य देशोंके ऐसे विभागोंकी अपेक्षा भिन्न है। इस विभागका उद्देश्य न केवल शिक्षा देना है, वरन चीजोंका उत्पादन और बिक्री करना भी है। उत्पादनका कार्य अर्द्ध व्यापारिक परिमाणमें होता है; इसलिये नहीं कि, उससे धन पैदा किया जाय, वरन विद्यार्थियोंमें आवश्यक आत्मविश्वास उत्पन्न करनेके लिये तथा उन्हें अपना कारखाना खोलनेके लिये पूरी सूचना देनेके लिये। इन्हीं कई इने-गिने वर्षोंमें इस विभाग द्वारा शिक्षा-प्राप्त कितने ही विद्यार्थी आज अपने पैरोंपर खड़े हो गये हैं। इस बातको यहाँ ध्यानमें रखना आवश्यक है कि, केवल १०, १२ ही वर्षोंमें इस ढंगकी कोई संस्था बहुत बड़ा काम कर नहीं दिखा सकती। प्रारम्भिक कठिनाइयाँ बहुत अधिक और बड़ी होती हैं। पाठ्य क्रमका समय, उसकी पद्धति, उसका प्रकार, बाजारकी सामयिक विशेष अवस्थाएँ एवम् उसकी पारस्परिक प्रतियोगिता, विशेषज्ञोंकी कमी आदि विषय और कारण ऐसे हैं, जो बहुत अधिक समय ले लेते हैं। लेकिन यह सन्तोषकी बात है कि, भविष्य आशापूर्ण और फलप्रद प्रतीत होता है।

इस सम्बन्धमें एक यह प्रश्न उठता है कि, एक शिक्षा देनेवाली संस्था कहाँतक एक उत्पादक संस्था भी हो सकती है। इस विषयमें कुछ कहना आवश्यक है। इस विभागको देखने आनेवाले कितने ही विचार-

शील पुरुषोंने भी इस प्रश्नको उठाया है और इस सम्बन्धमें बहुत तर्क हो चुका है। तर्कका मुख्य विषय यह है कि, क्या एक शिक्षा देनेवाली संस्था अर्द्ध-व्यापारिक रूपमें ही सफलता-पूर्वक व्यवसाय कर सकती है? क्या व्यापार और शिक्षा दो विभिन्न वस्तुएँ नहीं हैं और इनके वातावरण भी विभिन्न नहीं हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें मुझे यह कहना है कि, भारतकी वर्त्तमान अवस्थामें ऐसा ही किया जाना चाहिये तथा कोरी विद्यालयोंकी शिक्षाके चारों ओर एक औद्योगिक और व्यावहारिक वातावरण उत्पन्न कर देना चाहिये। केवल इतना ही नहीं, बम्बई, कलकत्ता, इलाहाबाद, कानपुर आदि बड़े-बड़े व्यापारिक नगरोंमें तो विश्वविद्यालयोंको एक व्यावहारिक वातावरण उत्पन्न करनेके अतिरिक्त अपनी पुरानी चालको छोड़कर पुतलीघरों और कारखानोंका सहयोग भी प्राप्त करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे स्वयं भी लाभ उठावेंगे और कम्पनियोंको भी फायदा होगा। जर्मनी, जापान, अमेरिका आदि देशोंमें शिक्षाकी संस्थाएँ व्यापारिक केन्द्रोंमें स्थित हैं और ऐसे ही स्थानोंपर स्थापित की जाती हैं। अतः वहांके विश्वविद्यालयोंको यह आवश्यकता ही नहीं होती कि, वे अपने यहां फैक्टरियोंका वातावरण उत्पन्न करें। उन देशोंमें इन फैक्टरियोंमें, विशेषज्ञोंके निरीक्षणमें, जो अनुसन्धान-कार्य होता है, उसे वहांके विश्वविद्यालय डाक्टरकी डिग्रीके लिये स्वीकार करते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयोंने फैक्टरियोंका कुछ भी उपयोग नहीं किया है और इस पारस्परिक लाभसे वञ्चित रहे हैं। और तो और, इंगलैंडके समान उन्नत देशमें भी इस प्रश्नपर पूरा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। "एम्पायर यूनिवर्सिटी कान्फ्रेंस" में (जो हालमें ही एडिनबरामें हुई थी) एक यह भी आवश्यक प्रश्न उपस्थित था कि, विश्वविद्यालयों और व्यापारिक संघोंका सहयोग होना आवश्यक है। कई वक्ताओंने जोर देकर कहा कि, फैक्टरियोंके मालिकोंको विश्वविद्यालयोंका सहयोग प्राप्त करना चाहिये तथा विश्वविद्यालयोंको फैक्टरियोंका; क्योंकि संसारकी वर्त्तमान विकट प्रतियोगितामें ब्रिटिश मालकी खपत उतनी सफलता-पूर्वक नहीं होती, जितनी अन्य देशोंकी। इसका कारण यह है कि, ब्रिटेनकी उत्पादनकी विधियां बहुत पुरानी पड़ गयी हैं और वर्त्तमान समयके उपयुक्त नहीं हैं। उन विधियोंका पूर्णरूपेण परिवर्त्तन होना आवश्यक है। यह विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी ही कर सकते हैं, जो सैद्धान्तिक बातोंकी शिक्षा पाये जानेके कारण उत्पादन-विधियोंको विशेष परिष्कृत कर सकते हैं। जब इंगलैंड जैसे देशकी यह दशा है, तब भारतके लिये तो यह और भी लागू है, जहां उत्पादनकी नयी नयी विधियोंका आरम्भ भी नहीं हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि, भारतीय विश्वविद्यालयोंमें व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाके अतिरिक्त यहां फैक्टरियोंका वातावरण भी उत्पन्न किया जाय। यदि विश्वविद्यालयोंमें व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी फैक्टरियोंमें वास्तविक ज्ञानके लिये उम्मीदवारके तौरपर काम कर सकते हों (जैसा जर्मनी और जापानमें है), तो सबसे उत्तम। अन्यथा, यदि वास्तवमें औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नतिमें हाथ बँटाना है, तो विश्वविद्यालयोंके लिये इसके सिवा और कोई चारा नहीं है कि, वे अपना ही व्यापारिक और औद्योगिक संसार स्थापित करें, चाहे वह छोटे ही परिमाणमें क्यों न हो। व्यावहारिक रसायनका विषय तीन विषयोंके पारस्परिक सम्मेलनसे बना है—(१) सैद्धान्तिक रसायन, (२) औद्योगिक रसायन और (३) इंजीनियरिंग। व्यावहारिक रसायनकी नींव सैद्धान्तिक रसायनपर है। रसायनके प्रारम्भिक कालमें कुछ ऐसे लोग सैद्धान्तिक रसायनका उपहास किया करते थे, जिन्होंने प्रयोग द्वारा किसी प्रकार कुछ चीजोंके बनानेके नुस्खे प्राप्त कर लिये थे। वे इन नुस्खोंको गोपनीय रहस्यकी भांति छिपा कर रखते थे। पर जैसे-जैसे सैद्धान्तिक

रसायनका ज्ञान बढ़ता गया, ये गोपनीय रहस्य प्रतिदिनकी साधारण बातें हो गये और नये नये कामोंके ऐसे मार्ग निकले, जिन्हें केवल नुस्खोंपर काम करनेवाले समझ भी न सकते थे। इस बातके साक्षी वर्त्तमान समयके कितने ही व्यवसाय हैं। इन बातोंसे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रसायनका घनिष्ठ सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

औद्योगिक रसायनके अन्तर्गत बहुतसे व्यवसायोंका साधारण ज्ञान आता है। सभी व्यवसाय परस्पर एक दूसरेपर निर्भर करते हैं और एक व्यवसायका ज्ञान दूसरे व्यवसायकी उन्नति और परिष्कृतिमें, अज्ञात रूपसे, सहायक होता है। नवीन व्यवसायोंकी उत्पत्ति सदैव आन्तरिक प्रेरणासे ही नहीं होती। यह पग-पगपर एक व्यवसायसे दूसरे व्यवसायमें धीरे-धीरे होनेवाले विकाशका फल है, जो मनुष्यकी बुद्धिको उत्तेजित करती है और फिर वही बुद्धि व्यावहारिक ज्ञानके सहारे बड़ी-बड़ी बातोंको हल कर लेती है। इसी कारण जर्मन विश्वविद्यालयोंमें व्यावहारिक रसायनवाले विद्यार्थीको यथासम्भव अधिकसे अधिक फैक्टरियोंको देखनेकी सुविधा दी जाती है, चाहे व्यावहारिक रसायनान्तर्गत उसने कोई भी ऐच्छिक विषय लिया हो। वहाँ इसका प्रतिबन्ध भी कर दिया गया है। अपने खास विषयमें छात्रको विशेष सुविधा मिलती है; पर तो भी फैक्टरियोंको देखनेसे बहुतसा ज्ञान अनायास प्राप्त हो जाता है, जिससे भविष्यमें कठिनाई पड़नेपर उसे दूर करनेके लिये वह अनेक उपायोंपर निर्भर कर सकता है। भारतके वर्त्तमान व्यावसायिक वातावरणमें--जहाँ अभी कुछ भी विकाश अथवा उन्नति नहीं हुई है—और भी आवश्यक है कि, व्यावहारिक रसायनकी शिक्षामें औद्योगिक शिक्षा भी अवश्य दी जाया करे।

इंजीनियरिंग—मेकानिकल और इलेक्ट्रिकल—दोनों व्यावहारिक रसायनकी शिक्षामें आवश्यक हैं। एक व्यावहारिक रसायनज्ञसे इंजीनियर होनेकी अपेक्षा नहीं की जाती है; पर इतना आवश्यक है कि, वह इंजीनियरिंगकी भाषाको समझ सके और अपने विचारोंको इंजीनियरको समझा सके। उसे केवल मशीनोंको बैठाना ही नहीं होता, वरन अपनी खास मशीनका भी आविष्कार करना होता है। इसके लिये मेकानिकल ड्राइंग और स्केचिंगका जानना उसके लिये आवश्यक है। यूरोपीय प्रदेशोंमें (जहाँ प्रत्येक विषयके विशेषज्ञ अलग-अलग रहते हैं) किसी भी विषय पर विशेषज्ञोंकी सम्मति थोड़े खर्चसे मिल जाती है; अतः वहाँ इंजीनियरिंगके थोड़े ही ज्ञानसे काम चल सकता है। परन्तु भारतमें तो विशेषज्ञोंको कच्चे मालकी खरीदसे आरम्भ कर मशीनोंकी खरीद, फिटिंग और मरम्मतके अतिरिक्त उत्पादन और बिक्रीके साथ-साथ हिसाबकी जाँच परख तक भी करनी होती है! यदि वह इतना न कर सके, तो विशेषज्ञ नहीं। भारतके सिवा अन्य किसी भी देशमें ऐसी बात सम्भव नहीं। एक नवयुवकके लिये इन सभी बातोंमें विज्ञ होना अत्यन्त कठिन कार्य है।

काशी हिन्दूविश्वविद्यालय इस विषयमें भाग्यवान् है कि, व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाके तीनों साधन उसे प्राप्त हैं—सैद्धान्तिक रसायनकी शिक्षाके लिये अच्छी प्रयोगशालाएं, व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाके लिये उत्तम प्रयोगशाला (जिसमें आधुनिक सभी व्यावहारिक रासायनिक कार्य्योंके लिये यन्त्रादि प्रस्तुत हैं) तथा एक इंजीनियरिंग कालेज (जिसमें मेकानिकल और इलेक्ट्रिकल, दोनों प्रकारके इंजीनियरिंगकी शिक्षा दी जाती है)। अन्य स्थानोंमें व्यावहारिक रसायनकी शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियोंको ये सुविधाएं, एक ही स्थानपर, नहीं प्राप्त हैं। इससे व्यावहारिक रसायनकी पूरी शिक्षा प्राप्त करनेमें कितनी रुकावटें होती हैं, इसे बहुत कम आदमी समझ सकते हैं। काशी विश्वविद्यालयमें विषयका पाठ्यक्रम और विद्यार्थियोंके प्रवेशका उत्तम प्रबन्ध किया गया है। अपने वाइस चांसलर महामना पण्डित मदनमोहनमालवीयकी देख-रेखमें, आशा है, यह विश्वविद्यालय व्यावहारिक रसायनकी शिक्षाकी समस्याको, सुन्दर रूपसे, सुलझानेमें समर्थ होगा।

(अनुवादक, श्रीयुत अमरेन्द्रनारायण बी० एस-सी०)

जीवाणु और उनके कार्बोहाइड्रेट

डा० दशरथलाल श्रीवास्तव डी० एस-सी०

जीवाणु (बैक्टीरिया) अति सूक्ष्म होते हैं। इनको आँखोंसे, विना किसी यन्त्रकी सहायतासे, देखना सम्भव नहीं। इनकी परीक्षा रंगों (Stains) से रँगकर सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा की जाती है। प्रत्येक रोगके पृथक् जीवाणु होते हैं। कभी इनके आकारमें भेद होता है और कभी इनके रँगनेकी विधिमें अन्तर होता है। इन्हीं कारणोंसे रोगका पता जीवाणुओंकी परीक्षासे लगाया जा सकता है। परन्तु कभी-कभी इसमें सफलता नहीं होती। उस हालतमें जीवाणुओंके एक और प्रधान गुणकी सहायता लेनी पड़ती है। रोगीके रक्तद्रव (Serum) में उसी रोगके जीवाणुओंको प्रतिक्षिप्त करनेकी शक्ति थोड़े दिनों बाद आ जाती है। इस तरहसे टाइफायड आदि रोगोंका पता बड़ी सरलतासे चल जाता है। संक्षेपमें यह जान लेना आवश्यक है कि, रोगीमें यह गुण कैसे आ जाता है।

प्रयोगसे यह देखा गया है कि, यदि किसी जन्तुमें एक प्रोटीन (जो उसके शरीरमें आगेसे ही नहीं है) सूई द्वारा प्रविष्ट किया जाय, तो उस जीवके रक्तद्रवमें एक विशेष प्रकारका पदार्थ पैदा हो जाता है, जो सूई द्वारा प्रविष्ट किये हुए प्रोटीन विलयन प्रतिक्षिप्त कर देता है। ठीक ऐसा ही असर मृत जीवाणुओंको सूई द्वारा प्रविष्ट करानेसे होता है। जन्तुओंके शरीरमें अपने आप ही रोगके विष (Toxin) को मारनेके लिये एक तत्त्व [जिसको प्रतिविष (Antitoxin) कहते हैं] पैदा हो जाता है। प्रकृतिने यह बड़ी भारी शक्ति, रोगसे अपनी रक्षा करनेके लिये, जीवको दी है। जब इस शक्तिका नाश हो जाता है, तभी रोग शरीरपर विजय पाता है। इस शक्तिसे रोगग्रसित होनेपर ही रक्षा नहीं होती; बल्कि इससे रोगसे बचा भी जा सकता है। यदि किसी रोगके जीवाणुको, विशेष रीतिसे मारकर, बड़ी सूक्ष्म मात्रामें, मनुष्यके शरीरमें सूई द्वारा प्रविष्ट कराया (Inject) जाय, तो कुछ दिनों पश्चात् शरीरमें उसी रोगके कीड़ोंके मारनेकी शक्ति आ जाती है। ऐसा होनेके बाद अगर उस रोगका आक्रमण हो, तो मनुष्य उससे बचनेके लिये पूर्वसे ही तैयार रहता है। रोगके कोड़े मर जाते हैं या उनका प्रभाव बहुत कम हो जाता है। जैसे, हैजेसे बचनेके लिये हैजेका वैक्सीन दिया जाता है। यह वैक्सीन हैजेके जीवाणुओंसे विशेष रीतिसे बनाया जाता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे कुछ-कुछ स्पष्ट हो गया होगा कि, जिस रोगका मनुष्यपर आक्रमण होता है, उसी रोगके विषको मारनेकी शक्ति रोगीके रक्तद्रव (Serum)में आती है। न्यूमोनियाके रोगीके रक्तद्रवमें न्यूमोनियाके जीवाणुओंके विषको मारनेकी ही शक्ति होती है। टाइफायडके जीवाणुओंपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी-कभी एक ही रोगके जीवाणु कई प्रकारके होते हैं। जैसे, न्यूमोनियाके तीन हैं, जिनको हम १, २ और ३ कह सकते हैं। न्यूमोनिया १ के रोगीका रक्तद्रव न्यूमोनिया २ या ३ के जीवाणुओंपर कोई असर नहीं करता। २ या ३ के सम्बन्धमें भी ऐसा ही होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, ऊपर कहा हुआ जातित्व अन्तर्जातीयमें ही नहीं है, बल्कि एक जातिकी पृथक् उपजातिमें भी है।

स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि, इसका कारण क्या है? थोड़े दिनोंसे जीवाणुओंके रासायनिक संगठनके अध्ययनसे इस प्रश्नपर कुछ प्रकाश पड़ा है। जीवाणुओंमें

कौन-कौनसे पदार्थ होते हैं ? इनमें अधिक मात्रामें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा और लवण होते हैं। इनमें सबसे अधिक महत्त्व कार्बोहाइड्रेटका* है। इसका अन्वेषण बड़ा ही लाभदायक हुआ है। कुछ दिन पहले बहुतसे न्यूमोनियाके रोगियोंमें देखा गया कि, उनके मूत्रमें कोई ऐसा पदार्थ निकलता है, जो न्यूमोनियाके रोगीके रक्त-द्रवको [जिसको प्रतिरक्तद्रव (Anti-serum) कहते हैं] प्रतिक्षिप्त करता है। इससे यही अनुमान किया गया कि, यह पदार्थ शायद जीवाणुओंसे ही आता हो। इसका पता चलानेके लिये न्यूमोनियाके जीवाणु अधिक-से-अधिक मात्रामें उगाये गये। फिर उन्हें अलग करके रासायनिक क्रियाओं द्वारा उनसे एक वस्तु बनायी गयी। अन्वेषण करनेपर इसका गुण कार्बोहाइड्रेट जैसा पाया गया। न्यूमोनिया १,२ और ३के पृथक्-पृथक् कार्बोहाइड्रेट मिले। इनके गुणोंमें भी भेद है। न्यूमोनिया १ कार्बोहाइड्रेट केवल १के प्रति-रक्त-द्रवको ही प्रतिक्षिप्त करेगा, २ या ३पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। ऐसा ही २ और ३ के सम्बन्धमें होता है। यदि कार्बोहाइड्रेटको किसी जन्तुमें सूई द्वारा प्रविष्ट कराया जाय, तो प्रोटीन जैसा प्रभाव रक्त-द्रवमें नहीं पैदा होगा। १, २ और ३ के प्रोटीन कार्बोहाइड्रेटके जैसे पृथक् नहीं होते। इनमें कोई भेद नहीं होता। इससे प्रत्यक्ष हो जाता है कि, कार्बोहाइड्रेटके ही कारण विशेषत्वका गुण (Specificity) जीवाणुओंमें पाया जाता है। कार्बोहाइड्रेट स्वयं विषघातक तत्त्व पैदा नहीं कर सकते; परन्तु जीवाणुमें किसी प्रकारके रासायनिक सम्मेलन (Combination)के कारण इनमें प्रतिविष उत्पन्न करनेकी शक्ति आ जाती है। यह रासायनिक सम्मेलन किस प्रकारका है, इसका अभीतक निश्चित रूपसे पता नहीं चल सका है। सम्भवतः प्रोटीन-सा ही है। चाहे जैसा हो, सम्मेलन हुए विना प्रतिविष पैदा करनेकी शक्ति आ नहीं सकती। इसके बारेमें एक बड़ा प्रमाण यह है कि, जीवाणुओंका किसी प्रकार विध्वंस करके उनका विलयन बनाकर सूईसे प्रविष्ट करानेपर प्रतिविष प्राप्त नहीं होता। इससे सिद्ध हुआ कि, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन आदि पदार्थ पर्याप्त मात्रामें होते हुए भी विना रासायनिक सम्मेलन हुए प्रतिविष नहीं उत्पन्न कर सकते।

ऊपरके जैसे प्रयोग और कई रोगोंके जीवाणुओंपर भी हुए हैं। इनमें भी विशेष कार्बोहाइड्रेट पाये गये हैं। आज कल हैजेके कार्बोहाइड्रेटपर अन्वेषण हो रहा है। हैजेके भी दो प्रकारके जीवाणु होते हैं। एक गन्दे पानीसे निकाला जाता है और दूसरा हैजेके रोगीके दस्तसे। कुछ लोगोंकी धारणा है कि, जल जीवाणुसे रोग नहीं हो सकता। केवल रोगीमें पाये गये ही जीवाणुसे हैजा फैलता है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं। हैजा सिवा मनुष्यजातिको छोड़कर और किसी जन्तुको नहीं होता। कृत्रिम रीतिसे भी जन्तुओंमें पैदा नहीं किया जा सकता। इसलिये यह पता नहीं चल सकता कि, कौनसा जीवाणु रोग उत्पन्न करेगा और कौन नहीं। ऐसी हालतमें इस बातका पता चलानेके लिये और कोई आविष्कार करना होगा। हो सकता है कि, इन दोनोंके रासायनिक संगठनमें कोई भेद हो। अधिक सम्भावना है कि, इनके कार्बोहाइड्रेटमें ही अन्तर हो। प्रयोग द्वारा भी यही सिद्ध हुआ है। इससे भी पता चला है कि, हैजेके जीवाणु दो प्रकारके हैं। जिनको पूर्वमें रोगकारी समझा जाता था, उन्हींमें दो प्रकारके जीवाणु मिले। उनमेंसे एकका कार्बोहाइड्रेट जलजीवाणुओंके कार्बोहाइड्रेटके जैसा है। इससे यह सिद्ध होता है कि, रासायनिक रीतिसे भी अभीतक कहना सम्भव नहीं कि, कौनसा जीवाणु रोग उत्पादक है और कौन नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि, रोग उत्पन्न करनेमें दोनों भाग लेते हैं। इसकी पुष्टि रोगियोंके दस्तकी परीक्षासे

* कार्बोहाइड्रेट कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजनके यौगिक हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारकी शर्कराएं, स्टार्च (गेहूँ, जौ, चावल इत्यादिके आटे), सेल्यूलेस (जिनसे वस्त्र और कागज बनते हैं) इस वर्गके यौगिक हैं। —स० "गङ्गा"

भी होती है। इससे भी हैजेके कार्बोहाइड्रेट बनाये गये। उनमें भी दोनों प्रकारके कार्बोहाइड्रेट मिले हैं। इससे सिद्ध होता है कि, रोगियोंके अन्दर दोनों प्रकारके जीवाणु उपस्थित रहते हैं। इस सिद्धान्तकी पुष्टिके लिये अभी और प्रयोग किये जा रहे हैं। यदि इसकी पूरे तौरपर पुष्टि हो गयी, तो यह अन्वेषण बड़े महत्त्वका सिद्ध होगा. इससे, हैजेके वैक्सीन बनानेमें किस प्रकारके जीवाणुका प्रयोग करना चाहिये, ठीक-ठीक पता चलेगा। रोगियोंमें दोनों प्रकारके जीवाणु पाये जाते हैं; इसलिये वैक्सीनमें भी दोनों प्रकारके जीवाणुओंका व्यवहार होना चाहिये।

संक्षेपमें जो ऊपर कहा गया है, उससे पता चलेगा कि, जीवाणुओंमें कार्बोहाइड्रेट कितने महत्त्वके हैं। इनके अध्ययनसे जीवाणुओंके प्रधान गुण (विशेषत्व) के कारणका कुछ-कुछ पता चल रहा है। प्रकृतिने कार्बोहाइड्रेटको जीवाणु-जगतमें बड़ा उच्च स्थान दिया है।

विटामिन

डा० रविप्रताप सिंह श्रीनेत एम० डी०, एफ० सी० एस० बी०

करीब पचास साल पहले वैज्ञानिकों तथा मानस-शास्त्र-वेत्ताओंकी यह धारणा थी कि, जीवन धारण करनेके लिये जिन अनिवार्य रसायनोंकी आवश्यकता पड़ती है, उनमें केवल माँड (Carbohydrates), नेत्रजन (Proteids), वसा (Fats) और धातुज नमक (Mineral Salts) ही हैं; परन्तु सन् १८८१ के लगभग रसायनज्ञ प्रोफेसर ल्यूनिनने चूहों तथा अन्य पालतू जानवरोंपर कई प्रयोग किये और वे इस सिद्धान्तपर उपनीत हुए कि, इन ज्ञात रसायनोंके अतिरिक्त जीवधारियोंके आहारमें एक और अत्यन्त आवश्यक जीवन-रसायनका समावेश है, जिसका पता हमें अभीतक नहीं लगा है और जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे हमारे नित्यके आहारमें मौजूद रहता है।

इसके पश्चात् कई मनोयोगी वैज्ञानिकोंने इसके अनुसन्धानके लिये कई प्रयोग किये; परन्तु उन्हें या तो कोई सफलता ही नहीं मिली अथवा उन्होंने उसका उल्लेख ही नहीं किया। जो हो; परन्तु रसायनज्ञ प्रोफेसर एफ० जी० हापकिन्स बहुत दिनोंतक इसपर आविष्कार करते ही रहे और सन् १९१२ के लगभग उन्होंने अपने आविष्कारोंका बृहत् वर्णन प्रकाशित किया, जिससे मालूम होता है कि, उन्हें सफलताके चिह्न दिखाई दिये। उनके सारे प्रयोगोंका सारांश यह है—

"ताजे दूधमें नेत्रजन, शर्करा, वसा तथा धातुज नमकके अतिरिक्त ऐसे कुछ अज्ञात गठनके पदार्थ पाये जाते हैं, जो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अत्यन्त उपयोगी एवम् आवश्यक हैं। ऐसे अज्ञात गठनके पदार्थोंको मैं "सहायक-आहार-अवयव" कहता हूँ।"

कहना न होगा कि, स्वनामधन्य प्रो० हापकिन्सके सिद्धान्तोंने वैज्ञानिक संसारमें उथल-पुथल मचा दी और तभी संसारके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर, विशेष रूपसे, आकर्षित हुआ। अब क्या था? लगे आविष्कारपर आविष्कार होने! साधारण जनताका भी ध्यान इस ओर गया। सभ्य संसारके वैज्ञानिकों तथा मानस-शास्त्र-वेत्ताओंने सन् १९२२के लगभग एक महती सभा कर घोषित किया कि, "सहायक-आहार-अवयवकी, मानव जीवनके लिये, अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बिना स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रह सकता और यह

आवश्यक अवयव खाद्य पदार्थकी प्रत्येक वस्तुमें नहीं पाया जाता।" इसी अवयव-विशेषको अब वैज्ञानिक संसार विटामिन (जीवन-रसायन) कहता है। सर्व-साधारणके लिये विटामिनकी परिभाषा इस प्रकार होगी — आहार द्वारा शक्ति और स्फूर्ति उत्पन्न कर हमारे स्वास्थ्यको अक्षय रखनेवाले शक्ति पुञ्जको ही जीवन-रसायन (विटामिन) कहते हैं। इन दस वर्षोंमें "विटामिन चर्चा" ने सारे सभ्य संसारमें अपना खास स्थान बना लिया है।

अभी हालमें ही, सन् १९३० में, इन पङ्क्तियोंके लेखकके पास अन्ताराष्ट्रिय चिकित्सा-समिति न्यूयार्क (International Medical Society, Newyork U. S. A.) ने अपने प्रस्तावों तथा कार्य-प्रणालीकी जानकारीके लिये एक विवरण-पत्रिका भेजी थी, जिसे देखनेसे मालूम हुआ कि, उक्त समितिके मेंबरोंने एक बहुत बड़ा आयोजन किया है। उनका मत है कि, "विटामिन-चर्चा"में कई ऐसी अनोखी बातें हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि, वैज्ञानिक संसार विटामिनपर जितने आविष्कार करेगा, उतनी ही अधिक मानव-व्याधियोंके निराकरणमें सहायता मिल सकेगी। इससे संसारका अकथनीय कल्याण हो सकता है। इसी एक भावनासे प्रेरित होकर उक्त समितिने न्यूयार्क, शिकागो, इलिनियास, डेनवर, हल, ग्लासगो, म्यूनिच, टोकियो और सिडनीकी प्रयोग शालाओंमें विटामिन्सपर आविष्कार कराना आरम्भ कर दिया है। हमें पूर्ण आशा है कि, उक्त समितिको अच्छी सफलता मिलेगी।

यह तो निश्चित ही है कि, हमारी स्वास्थ्य-रक्षाके लिये विटामिनका प्रयोग अत्यन्त अनिवार्य है; विना उसके हम कदापि जीवन धारण नहीं कर सकते और यदि करे, भी तो अल्प कालमें ही किसी असाध्य रोगके शिकार होकर अपनी जीवन यात्रा अकालमें ही समाप्त करनी होगी; इसलिये हमें चाहिये कि, हम अपना स्वास्थ्य अक्षय रखनेके लिये इन "व्याधि-हरण अवयवों" के विषय-में पूरी जानकारी प्राप्त कर लें। साधारणतः विषय-प्रवेश करनेके पहले यह जान लेना उचित है कि, विटामिन्स अत्यन्त सुकुमार रसायन होते हैं, जो अग्नि तथा सूर्यकी गरमी बर्दाश्त नहीं कर सकते। गरमी मिलते ही कुछ तो नष्ट हो जाते हैं और कुछ रासायनिक विश्लेषण (Chemical Analysis) होनेसे अपना गुण-धर्म तथा रूप भी बदल देते हैं। यही कारण है कि, अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पाक-पकवानोंमें विटामिन नहीं रह जाता; क्योंकि पाक-पकवान बनानेमें उपस्थित सामग्रियोंका गला बुरी तरह घोटा जाता है। उन्हें उबाला जाता है, पीसा जाता है, चूल्हेपर रख कर घटों जलाया जाता है। तब कहीं स्वादिष्ट पकवानोंकी रचना होती है। भला 'विटामिन' जैसे सुकुमार रसायन-अवयव इतनी ज्यादतियाँ कैसे बर्दाश्त कर सकते हैं? इसी लिये ये बेचारे टेंढ-टेंढ ही पकवानोंका मोह छोड़ देते हैं। यही कारण है कि, पाक-पकवानोंके खानेवाले ही रोगोंके सदन (Abode) बने रहते हैं।

यह भली भाँति ध्यानमें रखना चाहिये कि, विटामिनका निर्माण प्रकृतिने अपने आश्रित रहनेवालोंको व्याधियों-से सदैव बचा रखनेके ही लिये किया है। इसलिये सर्वत्र यह जीवन रसायन ताजे, हरे और कच्चे शाकों तथा फलोंमें स्वाभाविक अवस्थामें पाया जाता है। जबतक पदार्थ अपनी प्राकृतिक अवस्था और स्वाभाविक वातावरणमें रहेगा, तभीतक उसमें 'स्वस्थ विटामिन' (Healthy Vitamin) मिल सकते हैं; अन्यथा फिर उसमें विटामिनकी जीवन-प्रदत्त दैवी शक्ति नहीं रह सकती, जिसका मोहताज यह शरीर है। अब हम इन पङ्क्तियोंमें इसपर विचार करेंगे कि, विटामिन किस प्रकार हमारे स्वास्थ्यको प्रभावित करता है और उसके उपयोगसे हमारा क्या कल्याण हो सकता है?

वैसे तो विटामिन्स सात प्रकारके हैं, जिन्हें A, B, C, D, E, F, और G अथवा अ, ब, स, ड, इ, फ और

ग कहते हैं । परन्तु अभीतक विटामिन 'फ' और 'ग' के विषयमें बहुत कम पता चला है; और, जो कुछ मालूम भी हुआ है, वह अभी विवादग्रस्त ही है । इसलिये इनपर अभी कुछ न लिखना ही ठीक होगा । शेष पांचों विटामिन आहारके अत्यावश्यक अङ्ग हैं । वैज्ञानिक दृष्टिसे किसी निश्चित अनुपातमें, आहारमें, इनका रहना अनिवार्य है । परन्तु प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि, यदि अनुपातसे अधिक मात्रामें कोई विटामिन किसी आहारमें उपस्थित रहे, तो कोई हानि न होगी । परन्तु यदि अनुपातसे कम हुआ, तो वह निश्चय जानिये कि, कोई भयानक परिणाम अवश्य दृष्टि गोचर होगा । भयानक परिणामसे हमारा आशय है किसी ऐसे असाध्य और भयङ्कर रोगसे, जो नाना प्रकारकी शारीरिक और मानसिक यातनाओंमेंसे घसीटकर अन्तमें अकाल मृत्युके मुखमें ढकेल देता है । इसलिये यह भी जान लेना हमारे लिये फायदेमन्द होगा कि, किन-किन पदार्थोंमें कौन-कौनसे विटामिन, किस अवस्थामें, मौजूद रहते हैं और उनसे शरीरको क्या लाभ होता है ?

विटामिनका आविष्कार होनेपर सबसे पहले जिसका पता चला, वह था विटामिन 'ब' । मानव तथा प्राणि-मात्रके स्वास्थ्यपर इसका बड़ा ही जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है । यह विटामिन दो तीन पदार्थोंके रासायनिक मिश्रणसे बनता है । यह जलमें घुल जाता है । यह शरीरकी रक्त-प्रणालियोंमें शक्ति तथा प्रवाहकी वृद्धि कर स्नायुओं (Nerves)को मजबूत करता है । वैसे तो यह पेलाग्रा (Pellegra) नामक रोगका प्रतिरोध करता है, जिसमें स्नायु और मस्तिष्क, दोनों आक्रान्त हो जाते हैं । सारे शरीरका चमड़ा लाल हो जाता है । कभी-कभी तो बुरी खुजली भी चलती है । तरह-तरहके मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं । मनुष्य चेतनावस्थासे दूर होने लगता है । प्रमाद हो जाता है और मनुष्य पागलोंकी भाँति आचरण करने लगता है । रोम-छिद्रोंसे कभी-कभी तो रुधिर भी जाने लगता है । अन्तमें मनुष्य मर जाता है । यह भयङ्कर रोग 'ब' विटामिनके अभावसे ही होता है । रोम, बेबीलोनिया, हंगरी, स्पेन तथा इटलीमें यह रोग बहुतायतसे पाया जाता है ।

बेरीबेरी नामक भयङ्कर रोग भी इसीके अभावसे होता है । इस रोगमें पाचन-शक्ति बिलकुल ही बिगड़ जाती है, पेटमें बुरा दर्द होता है । कभी-कभी तो मांसपेशियोंमें लकवा मार जाता है । सारा शरीर बिलकुल ठंडा हो जाता है । धीरे-धीरे तमाम शरीरमें लकवा हो जाता है । बादमें मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है । यह रोग चीन, जापान, बंगाल तथा अक्सर जल-सेनाके सैनिकोंमें होता है । इसका एक प्रमुख कारण यह है कि, सफेद चावलोंका अधिक इस्तेमाल करनेसे 'ब' विटामिन, जो शरीरमें किसी-न-किसी प्रकार रहता है, नष्ट हो जाता है तथा स्वयं इन चावलोंमें भी उस विटामिनकी कमी रहती है । इसलिये जहाँ कहीं भी यह रोग होता है, वहाँ चावलोंका ही अधिक उपयोग होता है । इसके बिना लाल चावल यानी बिना कूटे और धोये बनाकर खाये जायँ, तो बेरीबेरीकी बीमारीमें अकथनीय लाभ होता है । केवल इसी एक चावलका प्रयोग करनेसे कई स्थानोंसे बीमारी सदाके लिये जाती रही है । जल-सेना अथवा स्थल-सेनाके आहार-अंश (Rations) में इस बातका अब पूरा-पूरा खयाल रखा जाता है । प्रत्येक जिम्मेदार मनुष्यको इस बात-पर काफी अमल करना चाहिये । अन्दाज लगाइये कि, भारतमें अभी भी प्रति सैकड़ा ८५ घर ऐसे निकलेंगे, जहाँ केवल सफेद चावलों (Polished Rice) का ही इस्तेमाल कसरतसे होता है । ऐसी दशामें प्रत्येक जनको चाहिये कि, वह खामी जितनी जल्दी हो सके, दूर करे । इससे स्वास्थ्यको जो हानि धीरे धीरे पहुँचती है, उसका अन्दाज अभी हम नहीं

लगा सकते, जबतक कोई खास बीमारी न उठ खड़ी हो जाय । यह विटामिन अंडे, दाल, (मटर, मसूर, सेम, अरहर) तथा अनाजके छिल्कों और अङ्कुरोंमें पाया जाता है ।

विटामिन 'अ'का आविष्कार सन् १९१४ में डा० मेकलम और डा० डेविसने किया था। यह विटामिन शरीरकी रक्षाके लिये अत्यन्त आवश्यक है, यदि बाल्यकालमें यह काफी मिकदारमें संग्रह कर लिया गया हो, तो आजीवन मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। इससे वह कूवत होता है, जिससे रोगोंके जीवाणु शरीरमें प्रवेश ही नहीं कर सकते; यदि किसी कारण पहुँच भी जायें, तो 'अ' विटामिनकी शक्तिसे वे आप-ही-आप नष्ट हो जायेंगे। यह वसामें घुलनेवाला है। सूर्य-प्रकाश तथा आक्सिजन द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इससे शरीरमें सौन्दर्य तथा ओजकी वृद्धि होती है। बच्चोंके लिये यह बहुत उपयोगी है। इसका प्रभाव पेटकी अंतड़ियों (Intestines), फेफड़ों (Lungs), यकृत् (Liver) और नेत्रों (Eyes) पर पड़ता है। इन अवयवोंके किसी भी रोगमें यदि यह स्वतन्त्रता-पूर्वक दिया जाय, तो रोग कैसा भी भयानक क्यों न हो, आप-ही-आप अच्छा हो जायगा। क्षयरोग, संग्रहणी, नेत्र-प्रदाह, प्रसूति आदिमें तो इससे आशातीत लाभ होता है। डा० फ्रेजरने केवल विटामिन 'अ' देकर ही कितने ही क्षय-रोगियोंको चंगा कर दिया है। वे क्षय-रोगियोंको नित्य प्रातःकाल एक पूरा कच्चा लाल प्याज (Red Onion) खानेको दिया करते थे और शामको उन्हें मक्खन और रोटी दिया करते थे। इसी चिकित्सामें उन्होंने सैकड़ों रोगियोंको जीवन दान दिया। गर्भिणी स्त्रीको प्याज देकर उन्होंने गर्भका गिरना (Abortions) रोका है।

यह विटामिन दूध, मक्खन, काड लिवर तेल, अङ्कुरित बीज, अंडा, प्याज, नीबू तथा कोथमीर आदि हरे शाकोंमें पाया जाता है। साधारणतः यह तेलोंमें नहीं पाया जाता। इसीलिये पाश्चात्य देशोंमें जैतूनके तेलका उपयोग बहुत कम होने लगा है।

विटामिन 'सी' भी एक उपयोगी रसायन है। यह पानीमें घुलता है। इतना नाजुक होता है कि, जरा-सी गरमी लगते ही नष्ट हो जाता है। आघात-प्रतिघातसे भी यह नष्ट हो जाता है; इसलिये यह प्रायः ताजे शाकों तथा फलोंमें ही पाया जाता है। इससे स्कर्वी (Scurvy) नामक भयङ्कर रोगकी चिकित्सामें बड़ा ही लाभ होता है; क्योंकि इसके अभावके ही कारण वह रोग होता है। यह हड्डियों तथा शिराओंको शक्ति प्रदान करता है। स्कर्वीमें सारे शरीरके छिद्रोंमेंसे रक्त बहने लगता है; शरीरमें अकथनीय पीड़ा होती है। रक्त नेत्रों, दांतों, मसूड़ों, मूत्राशय और पेटमें निकलता है। कभी-कभी उदरामय और कोष्ठ-बद्धता भी हो जाती है। रक्त अतिसार होकर रोगी प्राण त्याग देता है। इस रोगमें नीबू तथा नारंगीका रस निरन्तर देते रहनेमें बड़ा फायदा होता है। रोगी शीघ्र ही चंगा हो जाता है। यह विटामिन ताजे तथा खट्टे फलोंमें कसरतसे मिलता है। स्कर्वी आदि रोगोंसे बचने तथा बुद्धिका पूरा-पूरा विकास होनेके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। व्यावहारिक ज्ञान (Intelligence) के लिये इस विटामिनकी अत्यन्त जरूरत है। दिमागी काम करनेवालोंको इसका उपयोग अवश्य करना चाहिये, ताकि वे "बादी दिमाग" के न होने पावें।

विटामिन 'ड' हमेशा विटामिन 'स' के साथ पाया जाता है। यह शरीरके गठन तथा अभिवृद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इससे शरीर स्वस्थ, हड्डियां मजबूत और बुद्धिका विकास होता है। मनुष्य होशियार तथा चपल होता है। यह विटामिन हमें भोजन तथा सूर्य-रश्मियोंसे मिलता है। यही कारण है कि, प्राकृतिक-

शास्त्र-वेत्ताओं (Naturopaths) का मत है कि, मनुष्य सूर्यके सम्मुख जितनी देर नग्न-शरीर रहेगा, उतना ही अधिक उसके शरीरका गठन तथा उसकी हड्डियोंमें शक्ति आवेगी। यह है भी सत्य; क्योंकि आजकल भी जंगलमें रहनेवाले "असभ्यों" को देखिये; वे अभी भी प्रायः नग्न ही रहते हैं और उनके शरीरमें सूर्यकी रश्मियाँ स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रवेश कर उनमें 'ड' विटामिनकी शक्ति पहुँचाती हैं। इससे वे कितने स्वस्थ, उनकी हड्डियाँ कितनी चौड़ी और मजबूत तथा उनका रूप कितना विशाल होता है? आधुनिक सभ्यताकी गोदमें पलकर हम कपड़ेके क्रीतदास बन गये हैं। अपना सारा शरीर तरह-तरहके फेशनेबिल वस्त्रोंसे ढाँककर उसे इस बहुमूल्य पदार्थके मिलनेसे कोसों दूर रखते हैं। यही कारण है कि, इस थोथी सभ्यताके साथ ही साथ हमारा शारीरिक अधःपतन होता जा रहा है। नाना प्रकारके वस्ति सम्बन्धी रोग (Osseous Diseases), जिनमें सूखी मेली (Richets), मेरास्मस् (Marasmus), स्पेस्मो फीलिया (Spasmophilia), पायोरिया (Pyorrhoea) और गलगंड (Scrofula) तथा ट्यूबरक्यूलोसिस (Tuberculosis) मुख्य हैं। इन्हींके कारण आज भी अगणित जीव अकाल ही मृत्युको प्राप्त होते हैं। यदि इस विटामिनकी प्रचुरता रहे, तो इन रोगोंसे अवश्य त्राण मिल सकता है। इसकी प्रचुरताके लिये हमें सूर्य-रश्मियोंका स्वतन्त्र उपयोग करना चाहिये। यह बात जरूर है कि ऐसे बहुत कम पदार्थ हैं, जिनमें यह विटामिन मिलता हो।

प्रधानतः यह अंडेकी जर्दी, दूध, मक्खन तथा प्याजमें पाया जाता है। गर्मीके दिनोंमें अन्य मौसिमोंकी अपेक्षा अधिक पाया जाता है। यह विटामिन स्वभावतः गर्म तासीरका होता है। केवल यही एक विटामिन है, जिसका रासायनिक नाम हम जानते हैं और वह है एर्गोस्टेरोल (Ergosterol)। यह निष्क्रिय (Inert) होता है। यदि कुछ देरतक एर्गोस्टेरोलपर तीव्र बैंगनी किरणें (Ultra Violet Rays) डाली जायँ, तो उस समय रासायनिक परिवर्तन (Chemical Change) होकर जो रसायन तैयार होता है, उसे विटामिन 'ड' कहते हैं। प्रायः ऐसा देखनेमें आता है कि, ८० प्रतिशत बालक और नवजात शिशु सूखी मेलीके रोगसे पीड़ित रहते हैं। यह रोग महान् अनिष्टकारी एवम् भयङ्कर होता है। धीरे-धीरे करके शिशु केवल सूखी हड्डियों तथा मांसका निरा लोंदा (Lump) रह जाता है। चञ्चलता तथा बुद्धिका ह्रास होने लगता है और अन्तमें शिशु अकाल-मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस रोगके प्रतिरोधक लिये काडलिवर आइल रेमाल्ट (Ray-malt), हेलीबुट आइल (Halibut Liver Oil) आदि अच्छी-अच्छी वस्तुएं (जिनमें इस विटामिनका बाहुल्य रहता है) मिलती हैं। इनके सेवनसे काफी लाभ पहुँचता है।

विटामिन 'इ' अत्यन्त आवश्यक रसायन है, जिसकी अनुपस्थितिमें "मांस, मज्जा और शक्ति" सबका पूर्ण आविर्भाव होते हुए भी जीवधारियोंमें सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति (Child Producing Power) नहीं आती। परीक्षा तथा प्रयोग द्वारा इस मतकी पुष्टि करते हैं कि, कुछ खाद्य पदार्थोंमें यह विटामिन यथष्ट परिमाणमें पाया जाता है, जिनके अभाव मात्रसे ही यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है। ऐसे पदार्थोंमें गेहूँ, लौकी, प्याज, केले, चना तथा लेट्यूस (Lettuce) मुख्य हैं। इनके अलावा भाजियों तथा फलोंमें भी यही माद्दा होता है। यह विटामिन एक बार पूर्ण रीतिसे सञ्चित हो जानेपर बरसों काम देता है; परन्तु तिसपर भी भाग्यवश वह ऐसे पदार्थोंमें मौजूद रहता है, जिसपर गरीब अमीर सबको बसर करना ही पड़ता है। इस विटामिनके विषयमें डा० बर्नार्ड (Bernard) ने कई अद्भुत प्रयोग किये हैं, जिनपर अभी कोई मत निर्धारित नहीं किया गया है।

सङ्क्षेपमें प्रमुख पाँच विटामिनोंका यह ब्योरा है। यह तो ठीक ही है कि, जीवनका सच्चा आनन्द तभी सम्भव है, जब हमारे शरीरमें शक्ति, स्फूर्ति तथा बुद्धिका पूर्ण विकास हो। यह तभी हो सकता है, जब हम प्रकृति द्वारा निर्माण किये साधनोंसे पूरा लाभ उठावें।

किसी दूसरे लेखमें इस बातकी कोशिश करूँगा कि, 'गङ्गा' के पाठकोंको पूर्ण रीतिसे विदित हो जाय कि, संसार और शरीरके सारे रोग केवल इन विटामिनोंकी सहायतासे किस प्रकार अच्छे हो सकते हैं ?

आहार

प्रो० फलदेवसहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

आहारका प्रयोजन - २५ वर्षकी अवस्था तक मनुष्यके शरीरकी वृद्धि होती है। उसके पश्चात् शरीरकी वृद्धि प्रायः समाप्त हो जाती है। शरीरकी वृद्धिके साथ-साथ, और सारे जीवनमें, शरीरका सतत कार्य करनेकी आवश्यकता रहती है। हृदयकी धड़कन सदा होती रहती है। वायु फफड़ेमें प्रवेश करती और इसके साथ आक्सिजन नामक गैस प्रवेश करती है, जिसके बिना मनुष्यका जीवित रहना सम्भव नहीं। मुख और नाकके द्वारा शरीरकी दूषित वायु सदा निकलती रहती है। आमाशयमें भोजन किये हुए पदार्थ परिपक्व होते हैं और वहाँसे शरीरके प्रत्येक भागमें रक्तका सञ्चालन होता रहता है। इससे शरीरकी वृद्धि, क्षतिकी पूर्ति और कार्य करनेमें शक्ति प्राप्त होती है। इन सारे कार्यों और शरीरके अवयवों तथा इन्द्रियोंके सञ्चालनसे शरीरका बराबर क्षय होता रहता है, जिससे शरीरके असंख्य कोषोंके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता होती है। अतः आहारका सर्वोपरि उद्देश्य शरीरकी वृद्धि और जीर्णोद्धारके लिये सामग्री प्रस्तुत करना है। शरीरके सञ्चालनके लिये शक्ति या बलकी आवश्यकता होती है। आहारका दूसरा उद्देश्य इस शक्ति या बलकी उत्पत्तिके लिये सामान प्रस्तुत करना है। ऐसी शक्तिकी उत्पत्तिमें ताप भी उत्पन्न होता है, जो शरीरको आस-पासकी वायुसे अधिक उष्ण रखता है। आहारके और भी उद्देश्य हो सकते हैं; पर प्रधान उक्त दो ही हैं। इन दोनोंका तात्पर्य प्रायः एक ही, जीवन-शक्तिकी पूर्ण प्राप्ति, है।

शरीरके निर्माण, उसकी वृद्धि, क्षत भागोंके जीर्णोद्धार, शरीरमें कार्य करनेकी शक्ति और स्वास्थ्यके लिये चार पदार्थ आवश्यक हैं—वायु, सूर्य-प्रकाश, जल और आहार। इन चारोंके साथ व्यायाम और निद्राको भी जोड़ा जा सकता है। इस निबन्धमें केवल आहारपर ही विचार किया जायगा।

मनुष्यके आहारमें निम्न पदार्थोंका रहना आवश्यक है—

(१) प्रोटीन (२) खनिज लवण, (३) तैल और घी (वसा), (४) कार्बोहाइड्रेट (५) विटामिन।

प्रोटीन—प्रोटीन एक विशेष प्रकारके कार्बनिक पदार्थ हैं। ये सजीव पदार्थों—उद्भिज्ज और जान्तवमें ही बनते और उनसे प्राप्त होते हैं। जीवन

के लिये ये अत्यावश्यक हैं। इनमें नाइट्रोजन तत्त्व उपस्थित रहता है, जो शरीरके असंख्य कोषोंके निर्माणमें लगता है। शरीरकी वृद्धि और कोषोंके जीर्णोद्धारमें इसकी बड़ी आवश्यकता होती है। शरीरकी कार्यशीलताको उत्तेजित करनेके अतिरिक्त शरीरकी बनावटका यह एक प्रधान साधन है। सारे सजीव पदार्थों, प्राणियों और वनस्पतियोंमें, जिन्हें हम लोग भोजन करते हैं, यह प्रस्तुत रहता है। जो प्रोटीन जीव-जन्तुओंमें उपस्थित रहता है, उसे 'प्राणी प्रोटीन' कहते हैं; और, जो वनस्पतियोंमें रहता है, उसे 'उद्भिज्ज प्रोटीन।' ये दोनों प्रोटीन भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। मनुष्यके शरीरका प्रोटीन इन दोनों प्रोटीनोंसे भिन्न होता है। जब हम लोग इन प्रोटीनोंका भोजन करते हैं, तब ये शरीरमें प्रविष्ट होनेपर आँतोंमें विच्छेदित होते हैं और कुछ ऐसे रूपमें परिवर्तित होते हैं, जो शरीरके कोषोंके निर्माणमें लग जाते; और, जो ऐसे नहीं व्यय होते, वे या तो मलके अथवा मूत्रके रूपमें शरीरसे बाहर निकल जाते अथवा अन्य पदार्थोंके साथ मिलकर शक्ति उत्पन्न करनेमें व्यय हो जाते हैं। हमारे कुछ भोज्य पदार्थोंके प्रोटीन ऐसे रूपमें होते हैं, जो सरलता और शीघ्रतासे शरीरके साथ सम्मिलित हो जाते हैं और कुछ ऐसे नहीं होते। जो प्रोटीन शीघ्रतासे हमारे शरीरसे मिल जाते हैं, वे मनुष्य शरीरके लिये अधिक उपयुक्त होते और अन्य न्यून उपयुक्त या अनुपयुक्त होते हैं। यह आवश्यक है कि, मनुष्यके शरीरके वृद्धिकालमें पर्याप्त मात्रामें उपयुक्त प्रोटीन प्राप्त हो, नहीं तो शरीरकी आवश्यक वृद्धि नहीं होगी।

दूध, दही, मट्ठे, अंडे, मांस, मछली, हरी पत्तीदार भाजियों—पालक, मेथी, लेट्यूस—और खानेवाले पौधोंके नव पल्लवोंमें उपयुक्त प्रोटीन वर्तमान रहता है। गेहूँके आटे, जवके आटे, मड़ुए, बिना छँटे चावल, मटर, सेम, दाल, चने, बादाम, अखरोट, गाजर, चुकन्दर और अन्यान्य तरकारियोंमें कुछ उपयुक्त; पर अधिकांश न्यून उपयुक्त, प्रोटीन रहते हैं। छँटे चावल, सफेद आटे और मकईमें अनुपयुक्त प्रोटीन रहता है। शक्कर, घी, चरबी और तिल, सरसों, अलसी, गड़ी और चीनिया-बादाम इत्यादिके वानस्पतिक तैलोंमें प्रोटीन बिलकुल नहीं होता।

मनुष्यके, विशेषतः बच्चोंके, आहारमें पर्याप्त प्रोटीन रहना चाहिये, नहीं तो शरीरकी आवश्यक वृद्धि नहीं होगी। उनके आहारमें प्रचुर मात्रामें दूध और दूधके, सामान अंडे या मांस और हरी पत्तीदार तरकारियाँ होनी चाहिये।

खनिज लवण—शरीरके निर्माणमें खनिज लवणोंका दूसरा स्थान है। ये चूना, फास्फेट, गन्धक और लवण सदृश पदार्थ हैं। सारे शरीरका २५ वाँ भाग इन खनिज लवणोंसे बना है। अस्थियों और दाँतोंमें इनका विशेष अंश है। मांस और मांसके तन्तुओं, रक्त और शरीरके अन्य द्रव-रसोंमे भी ये प्रस्तुत रहते हैं। ये बड़े आवश्यक पदार्थ हैं। ये रक्तके तन्तुओं और शरीरके रसोंको आम्लिक होनेसे बचाते हैं। यदि रक्त आम्लिक हो जाय, तो अनेक रोग शरीरको आक्रान्त करते हैं। इनकी उपस्थितिसे पेशियोंको अपना कार्य करनेमें सुविधा होती है। यदि इनकी मात्रा समुचित न हो, तो पाचक इन्द्रियोंका कार्य शिथिल हो जाता और मनुष्य अधिक दिनतक स्वस्थ नहीं रह सकता है। शरीरमें प्रायः बीस विभिन्न तत्त्व विद्यमान हैं। इनमें कालसियम, पोटासियम, सोडियम, लोहा, मैगनीसियम, मैंगनीज, यशद, ताम्र, लिथियम, बेरि-

यम, फास्फरस, गन्धक, क्लोरीन, आयोडीन, सिलिकन और फ्लोरीन मुख्य हैं। इनमें पहले १० क्षार-जनक तत्त्व हैं और शेष ६ अम्ल-जनक तत्त्व हैं। क्षारजनक तत्त्वोंमें कालसियम, पोटासियम, सोडियम, लौह और मैगनीसियम अधिक महत्त्वके हैं और शरीरमें उनका अंश अपेक्षाकृत अधिक है। अम्ल-जनक तत्त्वोंमें फास्फरस, गन्धक और क्लोरीन प्रधान हैं। समुचित आहारमें इन सब तत्त्वोंका, उचित मात्रामें, रहना आवश्यक है। दूध ही एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें ये सारे तत्त्व विद्यमान रहते हैं। दूधके अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा एक पदार्थ नहीं है, जिसमें ये सबके सब तत्त्व उपस्थित हों। हरी पत्तीदार तरकारियों, कन्दों और मूलोंमें क्षार-जनक तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक हैं और अम्ल-जनक तत्त्व कम। मांस, दाल, बादाम और अन्य दालवाले अनाजोंमें अम्ल-जनक तत्त्व अधिक होते हैं और क्षार-जनक कम। इन तत्त्वोंकी प्राप्तिके लिये यह आवश्यक है कि, पौधोंकी हरी पत्तियाँ अधिक खायी जायँ। गेहूँ, चावल इत्यादि अनाजोंके दानोंके बाह्य आच्छादनोंमें ही खनिज लवण अधिक रहते हैं। इन आच्छादनोंको हटा देनेसे सफेद आटे और छँटे चावलमें इनकी मात्रा कम हो जाती है। इन लवणोंकी न्यूनतासे दाँतों और हड्डियोंकी बनावट ठीक-ठीक नहीं होती और न फेफड़े, हृदय और वृक्क (Kidney) ही अपना कार्य, सुचारु रूपसे, करते हैं।

आहारके खनिज तत्त्वोंमें कालसिमय सबसे अधिक महत्त्वका है। हड्डियों और दाँतोंकी बनावटमें, हृदयके सुचारु रूपसे कार्य करनेमें, शरीर कहीं कट जाय, तो रक्तको जमाकर, बहानेसे बचानेके लिये, भोजनके कुछ अंशोंको समुचित रीतिसे परिपक्व होनेके लिये कालसियमकी आवश्यकता होती है। कुछ खाद्य पदार्थोंमें कालसियम होता और कुछमें नहीं होता है। इसकी न्यूनतासे शरीरकी दुर्बलता, अस्थियोंकी मृदुलता और दाँतोंका शीघ्र क्षय होता है। गेहूँ, चावल, मडुआ, मक्का, आलू, मूली, गाजर, चुकन्दर, शक्कर, साबूदाना और मांसमें पर्याप्त कालसियम नहीं होता। दूध, मट्ठे, अंडेके पीत भाग, बादाम, दाल और सब प्रकारके फल और हरी पत्तीदार तरकारियोंमें पर्याप्त कालसियम होता है। यदि हमारे भोजनमें ये पदार्थ रहें, तो पर्याप्त कालसियम प्राप्त होगा। कालसियमकी दृष्टिसे दूध सबसे अधिक महत्त्वका भोजन है। बच्चोंके लिये डेढ़ पाव दूधमें प्रतिदिनके लिये पर्याप्त कालसियम रहता है। बच्चों और स्त्रियोंके लिये अन्य मनुष्योंसे अधिक कालसियमकी आवश्यकता होती है।

अस्थियों और दाँतोंमें कालसियम फास्फेटके रूपमें फास्फरस रहता है। शरीरके प्रत्येक कोषमें फास्फरस रहता है। शरीरकी वृद्धि और कोषोंके बहुलीकरणके लिये फास्फरस अत्यावश्यक है। रक्तका भी यह एक आवश्यक अंश है। दूध, मट्ठे, अंडे, दाल, बादाम, गेहूँ, जौ, पालक, मूली, ककड़ी, गाजर, फूलगोभी, मांस और मछलीमें फास्फरस पर्याप्त मात्रामें रहता है। फास्फरस और कालसियमके अभावमें दाँतों और अस्थियोंकी वृद्धि पूर्ण रूपसे नहीं होती। अतः हमारे भोजनमें कालसियम और फास्फरस पर्याप्त मात्रामें रहना चाहिये। रक्तमें लोहा रहता है। रक्तके लाल होनेका कारण लोहा ही है। रक्तके द्वारा ही आक्सीजन फेफड़ेसे शरीरके प्रत्येक भागमें जाता है। रक्तमें लोहेका अंश

न्यून होनेसे आक्सीजन, पर्याप्त मात्रामें, शरीरके प्रत्येक भागमें, नहीं जाता, जिससे निर्बलता, थकावट, पाण्डुता इत्यादिके रोग होते हैं। मांस अंडा, दाल, अनाजके दाने, पालक, प्याज, मूली, मकोई, तरबूज, ककड़ी, टोमाटो इत्यादिमें लौहके अंश विद्यमान हैं। अनेक कार्योंके लिये शरीरमें नमककी आवश्यकता होती है। इससे रक्त उचित संङ्घटनका रहता, तन्तुओंमें जल उचित मात्रामें रहता और शरीरके विभिन्न अङ्ग अपना कार्य समुचित रूपसे करते हैं। निरामिष भोजनमें नमककी मात्रा अल्प होती है। मांसमें नमक पर्याप्त रहता है। अत: मांसाहारियोंको अलगसे नमक खानेकी आवश्यकता नहीं होती; पर जो निरामिषभोजी हैं, उनके आहारमें नमक अवश्य रहना चाहिये। सब खनिज लवण जलमें कुछ न कुछ घुलते हैं। अतः तरकारियोंको उबालकर उनका जल फेंकना बड़ी भूल है। उस जलको तरकारियोंके साथ मिलाकर पकाना और खाना चाहिये। खनिज लवणोंके अभावमें दुर्बलता अस्थियोंकी वृद्धिकी रुकावट, उनकी मृदुलता, मन्दाग्नि (पाचन-शक्तिका ह्रास), पेचिश, रक्तकी अम्लता इत्यादि होते हैं। खनिज लवणोंको शरीरके तन्तुओंके साथ पूर्ण रूपसे सम्मिलित होनेके लिये विटामिनकी आवश्यकता होती है।

वसा—चरबीवाले पदार्थ शरीरमें ताप और शक्ति उत्पन्न करते हैं। प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेटसे जितना ताप उत्पन्न होता है, उससे प्रायः दुगुना ताप चरबीवाले पदार्थोंसे उत्पन्न होता है। भावी भोजनके लिये भी शरीरमें चरबी संग्रहीत रहती है। यह चमड़ेके नीचे एकत्र होती है, जहाँ कम्बलके सदृश आच्छादन बनकर शरीरके तापको नष्ट होनेसे बचाती है। इससे तन्तु सुदृढ़ होते और शरीरके ढाँचे भरते हैं। उद्भिज्ज-तैलों और जन्तुओंकी चरबियों, दोनोंसे ही ताप उत्पन्न होता है; पर चरबियाँ शीघ्रतासे पच जाती हैं। इसका कारण यह है कि इन चरबियोंमें विटामिन होता है, जो उद्भिज्ज-तैलोंमें बिलकुल नहीं होता। दूध मक्खन और बहुधा घीमें विटामिन होता है। अत: इनका अवश्य सेवन करना चाहिये। जो मांस भक्षण करते हों, उन्हें अंडे, मांस, मछली और मछलियोंके तैलोंका व्यवहार करना चाहिये। जो मांस नहीं खाते हों और जिन्हें घी, मक्खन तथा दूध न मिल सकता हो, उन्हें पालक, मेथीके सदृश हरी पत्तीदार तरकारियाँ, टोमाटो, और गाजर के सदृश रंगीन हरी तरकारियाँ खानी चाहिये।

चरबीसे शरीरमें शक्ति आती और विटामिनकी प्राप्ति होती है। तन्तु इससे सुदृढ़ होते और शरीरका ताप सुरक्षित रहता है। इससे शरीरके ढाँचे भरते हैं, जिससे शारीरिक सौन्दर्यकी वृद्धि होती है। यह आँत और आमाशयको चोटसे बचाता है। शरीरको काल्सियमसे सम्मिलित करनेमें सहायता भी करता है। यदि आहारमें पर्य्याप्त वसा न हो, तो हाथों और पैरोंमें जलके इकट्ठे होनेसे सूजन होती है, जिसे "शोथ रोग" कहते हैं। शरीरको रोगोंके कीटाणुओंसे सुरक्षित रखनेमें भी यह सहायता करती है। शैशवावस्था और बचपनमें वसाकी अधिक आवश्यकता होती है। पीछे इसकी उतनी अधिक आवश्यकता नहीं होती। आहार आवश्यकतासे अधिक होनेसे मन्दाग्नि एवम् मलावरोध होता और अस्वस्थ स्थूलता आती है। वसाके समुचित दहनके

लिये विटामिन 'ए' और 'बी' तथा कार्बोहाइड्रेट और आयोडीनकी आवश्यकता होती है ।

कार्बोहाइड्रेट—इससे भी शरीरका ताप उत्पन्न होता है । स्टार्च और शर्करा इसके अन्तर्गत आते हैं । स्टार्च चावल, गेहूँ, जौ, साबूदाना इत्यादिसे प्राप्त होता है । शर्करा चीनी, गुड़ और मधुसे प्राप्त होती है । मांसमें बहुत अल्प कार्बोहाइड्रेट रहता है । दूधमें, दुग्ध शर्कराके रूपमें, प्रायः ५ प्रतिशत तक शर्करा रहती है । अधिकांश स्टार्च और शर्करा उद्भिज्ज उद्गमोंसे प्राप्त होती है । अग्रलिखित पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेट विद्यमान है । ऊपरसे नीचेके वर्गोंमें इसकी मात्रा क्रमशः न्यून होती जाती है—

(१) श्वेत और धुँधला शक्कर, गुड़ और मधु, (२) साबूदाना और अरारोटके आटे, (३) अनाजके दाने, चावल, मक्का, मड़ुआ, जौ, गेहूँ बाजरा इत्यादि, (४) सूखे हुए फल, (५) चना और अन्य दालोंके अनाज, (६) अखरोट, बादाम, फलोंके बीज, मटर और सेम, (७) आलू, लहसुन, मूली, प्याज इत्यादि मूलवाली तरकारियाँ, (८) ताजे फल, (९) हरी पत्तादार तरकारियां ।

कार्बोहाइड्रेटोंके लिये यह आवश्यक है कि, खाद्य पदार्थोंका चुनाव ऐसा हो कि, न तो उसमें शर्करा और गुड़के सदृश कार्बोहाइड्रेटोंका बाहुल्य ही हो और न तो फलों और तरकारियोंके सदृश पदार्थोंमें कार्बोहाइड्रेटोंकी इतनी न्यूनता हो कि, उनको इतनी अत्यधिक मात्रामें खाना पड़े कि, आमाशय और आँतें उन्हें स्वीकृत करनेमें समर्थ ही न हों ! ऐसे पदार्थोंका खाना भी वर्जित है, जिनमें आवश्यकतासे अधिक प्रोटीन विद्यमान हो; अतः हमारे भोजनमें उपर्युक्त कार्बोहाइड्रेटोंमें सबमेंसे थोड़ा-थोड़ा रहना चाहिये, ताकि सब मिलकर पर्याप्त कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण और विटामिन प्रदान कर सकें ।

अनाजोंका अधिकांश स्टार्च होता है । इनमें थोड़े अंशमें प्रोटीन, चरबी और खनिज लवण होते हैं । ताप और शक्ति उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे सभी अनाज प्रायः बराबर हैं । फलोंमें शर्कराका अंश अपेक्षाकृत अधिक रहता है । हमारे भोजनमें कार्बोहाइड्रेट सबसे सस्ते पदार्थ हैं । ताप और शक्ति उत्पन्न करनेके अतिरिक्त इनसे प्रोटीन और वसाके उपयुक्त प्रयोगमें भी शरीरको सहायता प्राप्त होती है । हमारे भोजनमें कार्बोहाइड्रेटोंकी मात्रा अधिक होनेसे इनका बहुत कुछ अंश आँतोंमें रहकर सड़ता और उससे क्षोभजनक अम्ल और गैस बनता है, जिनसे खट्टी डकारें आती तथा मन्दाग्नि, संग्रहणी, दस्त इत्यादि रोग होते हैं ।

विटामिन—यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि, मनुष्यके आहारमें विटामिन नामक पदार्थका रहना अत्यावश्यक है । इसके अभावमें शरीरकी वृद्धि रुक जाती, सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट हो जाती, अनेक रोग होते और अन्तमें वृद्धावस्था और मृत्यु शीघ्र हो जाती है । अब तक प्रायः ६ प्रकारके विटामिनोंका, निश्चित रूपसे, पता लगा है । इसके अतिरिक्त ३ और विटामिनोंकी उपस्थितिके विषयमें घोषणा हो चुकी है; पर निश्चित रूपसे अभी उनके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता । इन विटामिनोंको विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', विटामिन 'सी', विटामिन 'डी', विटामिन 'ई' और विटामिन 'जी' कहते हैं ।

विटामिन 'ए'—यह वसामें विलेय होता है। इसके अतिरिक्त ईथर, अलकोहल और कुछ-कुछ पानीमें घुलता है। साधारणतः पकानेसे यह विशेष नष्ट नहीं होता; पर यदि पकाना देर तक हो और पकानेके समय सामग्री वायुमें खुली रहे, तो विटामिन 'ए' बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। आहारमें यदि इसकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक हो, तो यह भविष्यके लिये सञ्चित रहता है। मनुष्यके शरीरमें यह स्वयम् उत्पन्न नहीं होता। पौधोंकी हरी पत्तियोंपर सूर्य-प्रकाशके द्वारा यह उत्पन्न होता है।

शरीरकी वृद्धि और जीर्णोद्धारके लिये यह विटामिन अत्यावश्यक है। इससे रक्त, उपयुक्त दशामें, रहता तथा रक्त-तन्तुओं और रगोंमें जलका सञ्चय नहीं होता। संक्रामक रोगोंसे सुरक्षित रखनेके लिये इसकी विशेष आवश्यकता होती है। इस विटामिनके अभावमें शरीरकी वृद्धि रुक जाती, आँखोंकी सूजन, अन्धापन, रात्रिको अन्धापन, सरदी, फेफड़ेकी सूजन, क्षयी, आँतोंकी सूजन, संग्रहणी, दस्त, जलोदर, पथरी इत्यादि रोग होते हैं।

काडलिवर तैल, मछलीके तैल, अंडे, मक्खन, घी, दूध, हरी पत्तीदार तरकारियों—पालक, पातगोभी, शलजम पत्तियाँ, चुकन्दर पत्तियाँ, मूली पत्तियाँ इत्यादि - गोभी, गाजर, शकरकन्द, टोमाटो, अँकुरे हुए दानोंमें इसका विशेष अंश रहता है। काडलिवर तैलसे एक कार्बनिक यौगिक निकाला गया है, जिसका सूत्र $C_{१२}H_{४२}(OH)_{२}$ है। ऐसा समझा जाता है कि, यही यौगिक विटामिन 'ए' है।

विटामिन 'बी'—यह जलमें बड़ी शीघ्रतासे घुल जाता है। यह कुछ-कुछ अलकोहलमें भी घुलता है। यह प्रोटीनके साथ संयुक्त पाया जाता है। गरमीसे यह भी शीघ्र नष्ट नहीं होता। आम्लिक विलयनमें यह अधिक स्थायी होता है। पकानेसे यह भी शीघ्र नष्ट नहीं होता; पर टीनमें भर कर रखनेसे बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। यदि भोज्य पदार्थका उबाला हुआ जल फेंक दिया जाय, तो इसका बहुत कुछ अंश नष्ट हो जाता है। पौधोंमें यह मिट्टी और वायुसे आता है। अतः साधारणतः यह पौधोंके फलों और मूलोंमें ही अधिक पाया जाता है। हरी पत्तियोंमें भी यह पाया जाता है।

शरीरके निर्माण और जीर्णोद्धार तथा स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये यह आवश्यक है। इसके अभावसे मन्दाग्नि होती, अल्प-पुष्टिके लक्षण प्रकट होते, आहारके परिपक्व होनेकी क्रिया मन्द पड़ जाती और बेरीबेरी नामक रोगके लक्षण प्रकट होते हैं।

ईस्ट, अंडा, टोमाटो, पालक, शलजम-पत्तियाँ, मूली-पत्तियाँ, अनाजके पूरे दाने - गेहूँ, जौ, मक्का, सेम, मटर, चना, अखरोट और बादाम, गाजर, प्याज, शलजम, दूध इत्यादिमें इसकी मात्रा विशेष रहती है। चावलके छाँटनसे एक कार्बनिक यौगिक प्राप्त हुआ है, जिसका सूत्र $C_6H_{10}ON_2$ है। यही विटामिन 'बी' समझा जाता है।

विटामिन 'सी'—यह रोगसे सुरक्षित रखनेके लिये अत्यावश्यक है। यह जल और अलकोहलमें शीघ्र ही घुल जाता है। पकानेसे इसका प्रायः सारा अंश नष्ट हो जाता है। सुखाने और टीनमें रखनेसे भी यह बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। इस विटामिनकी प्राप्तिके लिये कच्चे, बिना पकाये हुए फलों और तरकारियोंका नित्य सेवन आवश्यक है।

शरीरके रक्तको शुद्ध और समुचित सङ्घटनका रखनेके लिये, अन्य विटामिनोंको शरीरके निर्माणमें विशेषतः दाँतों और अस्थियोंके निर्माणमें, सहायता प्रदानके लिये, शरीरकी आँतोंको स्वस्थ दशामें रखने और शरीरको रोगके कीटाणुओंसे सुरक्षित रखनेमें सहायताके लिये विटामिन 'सी'-की आवश्यकता होती है।

यह ताजी हरी पत्तियों और ताजे फलोंमें विशेष रूपसे विद्यमान रहता है। अँकुरे हुए अनाजों, मटर, चना इत्यादिमें इसकी विशेष मात्रा रहती है। ताजे नीबू, नारंगी, टोमाटो और इनके रसों, कच्चे गाजर, शलजम-पत्तियाँ, कच्चे आलू, तथा नारंगीके छिलकोंमें यह विशेष पाया जाता है।

विटामिन 'डी'—यह वसामें विलेय होता है। यह केवल जान्तव पदार्थों, दूध, मक्खन, घी, अंडे और मछलीके तेलोंमें ही पाया जाता है। काडलिवर तेलमें इसकी मात्रा विशेष रहती है। वानस्पतिक तैलोंमें यह नहीं होता; पर यदि इन तैलोंको छिछले पात्रमें सूर्य्य-प्रकाशमें रखा जाय, तो उनमें यह आ जाता है। मनुष्यके चमड़ेपर सूर्य्य प्रकाशकी क्रियासे भी यह उत्पन्न होता है। यदि शरीरमें तैल मर्दन कर कुछ समयके लिये सूर्य्य-प्रकाशमें खड़े रहें, तो शरीरमें इसकी पर्याप्त मात्रा उत्पन्न हो जाती है। ऐसा समझा जाता है कि, चमड़ेमें एर्गोस्टेरोल (Ergosterol) नामक एक पदार्थ है, जो सूर्य्य-प्रकाशके द्वारा विटामिन 'डी' में परिवर्तित हो जाता है।

इसके अभावमें बच्चोंकी हड्डियाँ कोमल और टेढ़ी हो जाती हैं। वे कुबड़े हो जाते हैं। युवा मनुष्योंमें हड्डियोंके कोमल होनेका रोग (Osteomalachia) हो जाता है। यह रोग पर्दानशीन स्त्रियोंमें बहुत अधिक पाया जाता है। इस विटामिनकी न्यूनतासे बच्चे चञ्चल, क्रोधी और जिद्दी हो जाते हैं। उन्हें निद्रा कम आती और उनके पुट्ठे और गाँठें ढीली पड़ जातीं तथा हड्डियाँ कोमल हो जाती हैं। ऐसे बच्चे जल्दी खड़े नहीं होते और न जल्दी चलते-फिरते ही हैं। उन्हें कब्ज हो जाता और पेट निकल आता है। इसकी न्यूनतासे दाँत अच्छे नहीं होते और शीघ्र नष्ट भी हो जाते हैं।

विटामिन 'ई'—यह भी वसामें विलेय होता है। इसके अभावमें सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट हो जाती है। सन्तानोत्पत्तिके लिये यह अत्यावश्यक है। यह पौधों और जन्तुओंमें बहुत विस्तृत पाया गया है। सन्तानोत्पत्तिके लिये इसकी, अत्यल्प मात्रामें, आवश्यकता होती है।

विटामिन 'जी'—शरीरकी वृद्धि और परिपुष्टिके लिये सभी अवस्थाओंमें इस विटामिनकी आवश्यकता होती है। इसकी न्यूनतासे पाचन-शक्तिका ह्रास होता, स्नायु-शिथिलता और बहुधा चर्मरोग होते, सक्रामक रोगोंसे बचनेकी शक्तिका ह्रास होता, बच्चोंकी वृद्धि रुक जाती, वृद्धावस्था शीघ्र आ जाती और मनुष्य अल्पायु हो जाते हैं। कुछ डाक्टरोंके मतानुसार इसके अभावसे पैलाग्रा नामक रोग भी होता है। यह विटामिन दूधमें विशेष रूपसे विद्यमान रहता है। अन्य खाद्य पदार्थोंके सम्बन्धमें अधिक अन्वेषण नहीं हुए हैं, पर इस विषयमें जो कुछ हुए हैं, उनसे पता लगता है कि, यह अंडे, मांस, हरी और पीली तरकारियोंमें भी पर्याप्त मात्रामें है। दूधके उबालनेसे यह नष्ट नहीं होता।

सारांश—ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे हम निम्न-लिखित सिद्धान्तपर पहुँचते हैं—

हमारे नित्यके आहारमें दूध या दूधके सामान-

का रहना अत्यावश्यक है। यदि दूध पर्याप्त मात्रा में रहे, तो अंडा, मांस और मछली खानेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं। आटा या चावल और दाल तो साधारणतः हमारे आहारमें रहते ही हैं (और रहना आवश्यक तो है ही); पर सफद आटे और छँटे हुए चावलका प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसे आटे और चावलसे बहुत उपयोगी अंश, विटामिन और खनिज लवण, नष्ट हो जाते हैं। चोकर के साथ आटा और बिना छँटा हुआ चावल सबसे उत्तम है। इनके साथ-साथ कुछ ताजे, कच्चे, बिना पकाये हुए पदार्थोंका नित्य सेवन आवश्यक है। नीबू, नारंगी, टोमाटो, मूली, प्याज, गाजर और हरे मिर्चका (इनमें जो प्राप्त हो सकें, उनका) नित्य सेवन करना चाहिये। यदि ये ताजे फल प्राप्त न हों, तो अँकुरे हुए चने या मटरका सेवन करना चाहिये। इनसे आवश्यक विटामिन प्राप्त होता है। जब हरे चने और मटर प्राप्त हों, तब उनका सेवन स्वच्छन्दतासे करना चाहिये। पकाये हुए भोजनोंमें हरी तरकारियाँ अवश्य रहनी चाहिये। पत्तीदार तरकारियाँ मूलवाली तरकारियोंसे अच्छी हैं। इनमें खनिज लवण और विटामिन पर्याप्त रहता है। पालक, मेथी, पातगोभी और पौधोंके नव पल्लवोंकी तरकारियाँ इस दृष्टिसे अच्छी है। श्वेत तरकारियोंकी अपेक्षा पीली अथवा हरी तरकारियाँ अच्छी हैं। पकानेके समय इन तरकारियोंके उबाले हुए जलको फेंकना नहीं चाहिये, वरन तरकारियोंके साथ मिलाकर पकाकर खाना चाहिये। हमारे आहारमें कुछ ताजे सामयिक फल, अंगूर, अनार, नास्पाती, सेव, आम, अमरूद, बेर, मकोई, पपीता, लीची, ककड़ी, तरबूज इत्यादिका रहना, स्वास्थ्यकी दृष्टिसे, बहुत अच्छा है। मिष्टान्नोंका यथासम्भव कम सेवन करना चाहिये। मीठे पदार्थोंमें मधु सबसे उत्तम है। टीनमें सुरक्षित पदार्थों, विशेषतः फलोंके सेवनसे विशेष कोई लाभ नहीं होता। अतः जहाँ तक सम्भव हो, टीनमें सुरक्षित पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये।

रसायन और उद्योग-धंधे

श्रीयुत सद्‌गोपाल एम० एस-सी०

आधुनिक युगको "वैज्ञानिक युग"के नामसे पुकारा जाता है। इस शताब्दीमें वैज्ञानिक उन्नति इस चरम सीमाको पहुँच चुकी है कि, संसारके प्रत्येक देशकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक अवस्थाओंमें काया-परिवर्तन हो गया है। संसारके राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रोंमें जलयान और वायुयान उथल-पुथल मचा रहे हैं। आज संसारके सब देशोंके निवासी ग्रीष्म ऋतुमें, विद्युत्-यन्त्रोंके प्रभावसे, घर बैठे, शिमला-शैलका विहार कर लेते हैं। बड़ी-बड़ी लम्बी यात्राएँ, मोटर, रेलगाड़ी, मोटर-बोट और बिजलीसे चलनेवाली रेलगाड़ीके द्वारा, थोड़े समयमें ही, पूरी की जाती हैं। घर बैठे लोग ग्रामोफोनके द्वारा संसारके सर्वोत्तम संगीतज्ञोंके संगीतका लाभ उठा रहे हैं। आज हजारों मीलोंसे संगीत-समाचार प्रदान करनेके अतिरिक्त रेडियो फोटोग्राफीमें भी सहायता दे रहा है।

नाना प्रकारके उद्योग-धंधे आज वैज्ञानिकोंके नियन्त्रणमें चल रहे हैं। इन उद्योग-धंधोंमें संसारके करोड़ों मनुष्य काम करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

विज्ञानके प्रभावसे चलनेवाले उद्योग-धंधोंको निम्नलिखित श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) वे उद्योग-धंधे, जिनका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान (फिज़िक्स)से कहा जा सकता हैं। जैसे—मोटर, रेलगाड़ी, जलयान, वायुयान, विद्युद्-यन्त्र और नाना प्रकारकी मशीनें इत्यादि।

(२) वे उद्योग-धंधे, जिनका सम्बन्ध वनस्पति-विज्ञान और कृषि-विज्ञानसे है। जैसे—फल-फूल और वनस्पतियोंकी उत्पत्ति तथा तत्-सम्बन्धी पदार्थोंका आवश्यकतानुसार सुधार।

(३) वे उद्योग-धंधे, जिनका सम्बन्ध प्राणि-विज्ञानसे है। जैसे—विशेष प्रकारकी औषधियोंका निर्माण।

(४) वे उद्योग-धंधे, जिनका सम्बन्ध भूगर्भ और खनिज-शास्त्रोंसे है। जैसे—सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा आदि धातु, नाना प्रकारके पत्थर और हीरक, मणि इत्यादि।

(५) वे उद्योग-धंधे, जिनका सम्बन्ध यन्त्र-शास्त्रसे है। विविध प्रकारकी मशीनोंका निर्माण इसी विभागमें आवेगा।

(६) सबसे मुख्य और अन्तिम विभाग है रसायन-विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धंधोंका।

विज्ञानकी विविध शाखाओंने उद्योग-धंधोंको उन्नतिमें क्या सहायता प्रदान की है, इस विषयपर लिखनेके लिये इस लेखमें स्थानका सर्वथा अभाव है। इसीलिये लेखक रसायन-सम्बन्धी उद्योग-धंधोंके बारेमें थोड़ा-सा प्रकाश डालकर ही इस लेखको समाप्त करेगा।

रसायन-विज्ञानने संसारके व्यापार-व्यवसाय और राजनीतिपर बहुत ही महत्त्व-पूर्ण प्रभाव डाला है। इस कथनमें अत्युक्ति नहीं होगी, यदि यह कहा जाय कि, आज रसायनज्ञ संसारपर राज्य कर रहे हैं। इस पक्षकी पुष्टिमें नीचे कुछ ऐसे उद्योग-धंधोंका वर्णन किया जा रहा हैं, जो विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

(१) रंगोंका निर्माण—इस बारेमें विज्ञानने संसारकी जो सेवा की है, उसके परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्थानको बड़ी भारी हानि पहुँची है। आजसे तीस-चालीस वर्ष पूर्व भारतकी नीलकी खेतीपर लाखों मनुष्योंका निर्वाह था। एक रसायनज्ञके प्रयत्नसे कृत्रिम नील बनाया जाने लगा, जिसके परिणाम-स्वरूप जहाँ संसारको साधारण दृष्टिसे लाभ पहुँचा, वहाँ हिन्दुस्थानके लाखों गरीब, मजदूर और किसान, बेकार हो गये! इस ओर रसायनने इतनी उन्नति की है कि, प्रकृतिमें होनेवाले हजारों रंगोंकी ठीक-ठीक नकल रासायनिक प्रयोग-शालाओंमें की जा चुकी है। हमारे देशमें यह व्यवसाय तभी सफल हो सकता है, जब देशमें कोल-टारकी उत्पत्ति बहुतायतसे होने लगेगी।

(२) कृत्रिम चीनीका निर्माण—इसका इतिहास बहुत ही मनोरञ्जक है। बाल्टीमोरमें जांस हापकिन्स यूनिवर्सिटीकी प्रयोग-शालामें दो रसायनज्ञ (जिनके नाम इरा रमसन और सी० फालबर्ग हैं) एक विशेष पदार्थके बनानेमें प्रयत्नशील थे। यह बात सन् १८७९ की है। एक रोज घर लौटनेपर फालबर्ग जब भोजन करने बैठा, तब उसके दोनों हाथ मीठे मालूम हुए। इसका कारण

यह मालूम हुआ कि, प्रयोगशालासे लौटते हुए उसके हाथपर एक नये पदार्थके कुछ कण लगे रह गये थे। इसी कारण उसके हाथोंका स्वाद कई घंटोंतक मीठा रहा ! फालबर्गने लौटकर उस प्रयोगको फिर दुहराया और सकेरीन अथवा कृत्रिम चीनीके बनानेकी विधि निकाली। सन् १८-८४ में उसने और उसके चाचाने मिलकर न्यूयार्क में एक कारखाना खोला। आज इस सकेरीनका उपयोग "एयरेटेड वाटर" और मूत्ररोगके रोगियोंके लिये बहुत बड़ी मात्रामें किया जा रहा है।

(३) कृमि—नाशक पदार्थोंका निर्माण। ऐसे पदार्थोंको आज अत्यन्त आवश्यकता है। इस ओर रसायनज्ञोंके प्रभावसे आयडोफार्म, कृसाल, फिनोल, थाइमाल, सलाल और विविध प्रकारके इतने उपयोगी कृमिनाशक पदार्थोंका निर्माण किया जा चुका है कि, यह व्यवसाय एक बहुत विशाल रूप धारण कर चुका है।

पूर्व कालसे ही चमड़ा इत्यादि पदार्थोंके रँगनेके लिये बबूल इत्यादि वृक्षोंकी छालोंका उपयोग किया जाता रहा है। ऐसे पदार्थोंका उपयोग औषधि-रूपमें भी होता रहा है; किन्तु इसके उपयोगमें नीचे लिखे दोष पाये जाते हैं—

(क) देश, काल और वृक्षके भेदके कारण छालें सदैव एक समान नहीं मिल सकतीं।

(ख) इनमें कई पदार्थोंका सम्मिश्रण होनेके कारण कई प्रकारके अनावश्यक कुप्रभाव पड़ते हैं।

(ग) इनके निर्माणमें परिश्रम और समयका अपव्यय होता है।

(घ) इनकी प्राप्तिके लिये कई मूल्यवान् वृक्षोंका सर्वनाश करना पड़ता है।

(च) जिन देशोंमें वृक्षोंका अभाव होता है, उनको अपने व्यवसायकी उन्नतिके लिये दूसरे देशोंपर निर्भर रहना पड़ता है।

(४) इन सब कठिनाइयोंका सर्वोत्तम और सर्व-सुलभ इलाज रसायनने सिनटन्स अथवा कृत्रिम टनिनके रूपमें किया है। इसके उपयोगसे ओषधि-निर्माण और चमड़ा इत्यादिके रँगनेके काममें बहुत सहायता मिली है।

(५) कृत्रिम रेशम—रसायनशास्त्रने यह पदार्थ ऐसा बनाया है, जिसके लिये भारतके कट्टर अहिंसा-वादियोंको सदैवके लिये रसायनज्ञोंका उपकृत रहना चाहिये। साधारण रूईको अथवा किसी भी सल्युलोज पदार्थको लेकर रासायनिक प्रक्रिया द्वारा कृत्रिम रेशमके रूपमें इतनी खूबीसे परिवर्तित किया गया है कि, यह कहना कठिन है कि, यह नकली है।

(६) विस्फोटक द्रव्योंका निर्माण - इस विषयमें इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि, आज इन विस्फोटक द्रव्योंके द्वारा जहाँ मनोरञ्जन होता और युद्धमें सहायता मिलती है, वहाँ इसका बहुत भारी उपयोग बड़े-बड़े पहाड़ोंको उड़ा कर भूमिको समतल बनाने और पहाड़ोंमेंसे अन्तर्मार्ग (टनेल) बनानेमें किया जा रहा है! इस सम्बन्धमें पिकरिक एसिड और टी-एन-टी अर्थात् ट्राइ-नाइट्रो-टोलुइनका उपयोग सर्व साधारणको मालूम है।

(७) कृत्रिम विलायकोंका निर्माण—रसायनके क्रमिक विकासके कारण संसारके उद्योग-धंधोंपर जो प्रभाव पड़ा है, उसके परिणाम-स्वरूप कई प्रकारके नये विलायकोंकी नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसके अतिरिक्त कई ऐसे उप-पदार्थ (Bye-Products) इतनी अधिक मात्रामें निकलने लगे हैं कि, उनका उपयोग किया जाना आवश्यक है।

इस सम्बन्धमें सबसे बड़ी सहायता सोडियम कारबोनेट और कास्टिक सोडाकी आधुनिक निर्माण-विधिसे प्राप्त हुई है। जबसे वैद्युतिक विधिसे इन दोनों पदार्थोंका बनाया जाना शुरू हुआ है, तबसे क्लोरिन नामक गेस पर्याप्त परिमाणमें मिलने लगी है। इसके और नाना प्रकारके हाइड्रो-कार्बन पदार्थोंके संयोगसे विविध प्रकारके विलायक बनाये गये हैं। इनमेंसे कार्बन टेट्रा-क्लोराइड और क्लोरोफार्म इत्यादि मुख्य हैं। कोयला, चूना और नमक, ये इतने सस्ते प्राकृतिक पदार्थ हैं कि, इनके उपयोगसे आज कार्बन बाइ-सलफाइड, कार्बन टेट्रा-क्लोराइड, क्लोरोफार्म और डाइक्लो एथीलीन इत्यादि कई विलायक, बहुत ही सस्ते रूपमें, प्राप्त हैं। इनके निर्माणसे सैकड़ों उद्योग धंधोंको अत्यधिक लाभ पहुँचा है। टेट्रालिन, डेकालिन और हेक्सालिन नामक तीन विलायक तो इतने उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं कि, शायद एक दिन इनका उपयोग कपड़ा धोनेके लिये साबुन-के स्थानमें किया जा सके।

(८) हाइड्रो कार्बनका भञ्जन—प्रकृतिमें कई प्रकारके हाइड्रो-कार्बन इतनी अधिक मात्रामें मिलते हैं कि, यदि उनको अधिक द्रव-रूपमें लाया जा सके, तो बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस दृष्टि-कोणसे कई प्रकारके मिट्टीके तेल (जिनका सिवा जलाने और प्रकाश करनेके और कोई उपयोग नहीं) प्रयोगमें लाये गये हैं। इसके परिणाम-स्वरूप निम्न ताप-क्रमपर उबलनेवाले हाइड्रो-कार्बनका निर्माण हुआ है। इस युगमें व्यापार और युद्धकी दृष्टिसे मोटर, जलयान और वायु-यानोंका ज्यों-ज्यों अधिक प्रचार होता जायगा, उसके साथही साथ इस रासायनिक उद्योगका भी अधिकाधिक प्रचार होगा।

(९) गैसोंमेंसे वाष्पशील द्रवोंको निकालना—उपरिलिखित उद्योग, एसिड-एल्डिहाइडका बनाना और इस प्रकारके अन्य कई ऐसे रासायनिक उद्योग हैं, जिनकी प्रक्रियाओंमें बहुत बड़ी मात्रामें गैसोंका प्रयोग किया जाता है। इन गैसोंके साथ बहुतसे वाष्पशील विलायक बाहर निकल जाते हैं। यदि इनको अलग न किया जाय, तो बड़ी भारी हानि होती है। सेलुलाइड और रबरके कारखानोंमें यह बात विशेष रूपसे आवश्यक है। रसायनज्ञोंके प्रयोगसे नीचे लिखी विधियों द्वारा करोड़ों रुपयों-की रक्षा हो रही है—

(क) दबाव और ठंढक पहुँचाना। (ख) किसी उच्च ताप-क्रमपर उबलनेवाले विलायक-से सम्मिश्रण करना। (ग) विशेष प्रकारके कार्बन और सिलिकाका प्रयोग।

(१०) कृत्रिम सुगन्धि द्रव्य—आजतक सुगन्धि द्रव्योंके लिये मनुष्य सदैव प्रकृतिका आश्रय लेता रहा है। वास्तवमें प्रकृतिकी निर्माण-कलाका अनु-पम परिचय सुगन्धि द्रव्योंको देखनेपर ही मिलता है। यह एक ऐसी बात है, जिसमें किसी भी प्रकारका विज्ञान पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सका। फिर भी रसायनने इसका पीछा नहीं छोड़ा। आज रासायनिक प्रयोगशालाओंमें बिना किसी प्राकृतिक सहायताके गुलाब, चमेली, केवड़ा, खस, चन्दन, केशर और अन्य सब प्रकारके सुगन्धि द्रव्योंका निर्माण किया जा रहा है। इनमेंसे कुछ द्रव्योंका उपयोग विस्फोटक द्रव्य, कृत्रिम रेशम, बायस्कोपकी फिल्म और अन्य कई पदार्थोंके निर्माणमें भी किया जा रहा है।

(११) युद्ध-सामग्रीका निर्माण—संसारके

विभिन्न राष्ट्रोंके अपने-अपने हित इतने विपरीत हैं कि, अन्ताराष्ट्रिय संघ (League of Nations) के नियम और नियन्त्रणके होते हुए भी लड़ाई-झगड़े रुक नहीं सकते। राष्ट्रोंके बीच युद्ध शुरू हो जानेपर यह कहना कि, किसी पक्षकी ओरसे अमानुषिक विधियोंको प्रयोगमें लाया गया है, बहुत कठिन है। युद्धके समय किसी भी साधन-विशेषको महत्त्व नहीं प्रदान किया जाता। अन्ताराष्ट्रिय शान्तिके लिये जितने ही नियम बनाये गये हैं, उतने ही अधिक हिंसा-पूर्ण युद्ध हुए हैं। युद्धकी पुरातन और अर्वाचीन विधियोंमें एक बड़ा भारी भेद यह हो गया है कि, बीसवीं शताब्दीमें बड़ी-बड़ी जल-स्थल सेनाओंके कारण तथा वायुयान और अन्त-र्जलयानके प्रयोगसे द्वन्द्व-युद्धके भावका सर्वथा लोप हो गया है। अब रसायनज्ञोंके युद्ध भूमि-पर आ जानेसे तोप और बड़ी-बड़ी सेनाएं भी व्यर्थ सिद्ध हो रही हैं। भावी युद्धको जीतनेके लिये शारीरिक शक्ति अथवा अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग काम नहीं कर सकेंगे। वही राष्ट्र अधिक शक्तिशाली रहेगा, जिसके रसायनज्ञ ज्वर-कीटाणु, विद्युत्तरङ्गों और जहरीली गैसोंका अधिक-से-अधिक उपयोग कर सकेंगे। इस प्रकारकी सबसे पहली युद्धसामग्रीका वर्णन सन् १८५५ ई० के अंग्रेजों और रूसियोंके बीचमें किये गये युद्धके समय मिलता है। उसके पश्चात् इसका वास्त-विक उपयोग गत यूरोपीय महायुद्धके समय, २२ एप्रिल १९१५ को, किया गया। इसके पश्चात् दूसरे राष्ट्र भी चौकन्ने हो गये और आज रासा-यनिक युद्ध-सामग्रीकी इतने भयङ्कर रूपसे तैयारी हो रही है कि, भावी युद्धके परिणामका ध्यान करके मनुष्यका हृदय काँप उठता है। एक प्रयोगशालामें बैठा हुआ रसायनज्ञ हजारों मीलों तक शत्रुओंका क्षण भरमें सर्वनाश कर सकता है। मस्टर्ड गैसके प्रयोगसे संसार-के मनुष्योंकी आँखें रो-रोकर सूज जायँगी। ऐसी गैसोंका निर्माण किया गया है, जिनके प्रयोगसे लोगोंके शरीरपर छाले पड़ जायँगे, देशमें नाना प्रकारके भयङ्कर रोग फैल जायँगे, वमन द्वारा शरीरका रक्त बाहर निकल जायगा, सहस्रों मनुष्य क्षण मात्रमें मुर्दे बन जायँगे। सारांश यह कि, यदि रसायन-विज्ञान अपनी पूरी शक्तिका अव-लम्बन करे, तो सारा ब्रह्माण्ड, जहाँका तहाँ, सदैवके लिये निश्चल हो जायगा। जिस विज्ञानके जोरसे आज हम ऐश्वर्यका भोग करते हुए सुखनिद्रामें सोये पड़े हैं, उसी विज्ञानकी शक्तियाँ प्रलयङ्करी आगकी लपटोंकी तरह संसारको भस्मीभूत कर डालेंगी। उन्नतिके उच्चतम शिखरपर पहुँचे हुए पूर्वकालीन हिन्दुस्थानमें, महाभारतके युद्धके समय, इन्हीं वैज्ञानिक शक्ति-योंका प्रयोग किया गया था और हम लोग उस समयसे आज तक अपनी कमर सीधी न कर सके। भावी युद्धका चित्र खींचकर पाठक उसके परिणामके ताण्डव-नृत्यका आनन्द ले सकते हैं।

अभी तक, संक्षेपमें, उद्योग-धंधोंको विज्ञानके प्रयोगोंसे जो अनुपम सहायता प्राप्त हुई है, उसका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। यह विषय इतना विस्तृत है कि, इसपर एक बहुत विशाल साहित्यका निर्माण किया जा सकता है। सदियोंकी गुलामीके पाशमें जकड़ा हुआ हमारा हिन्दुस्थान इस वैज्ञानिक उन्नतिसे कहाँ तक लाभ उठा सकता है, यह एक स्वतन्त्र लेखका विषय है।

कोयलेकी उत्पत्ति और उसके उत्पादक क्षेत्र*

अध्यापक निरञ्जनलाल शर्मा एम० एस-सी०

कोयला अधिकतः कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजन तत्त्वोंके सम्मेलनसे बना है। इसमें प्रायः चार मुख्य पदार्थोंका संमिश्रण रहता है—कार्बन, हाइड्रो-कार्बन, जल और राख। कोयलेके रासायनिक सङ्गठन तथा भौतिक गुणोंके अनुसार उसको चार मुख्य श्रेणियोंमें विभाजित किया जाता है—

(१) "पीट" कोयला—यह बहुत मुलायम, भूरे या काले रंगका तथा रेशेदार होता है। ये रेशे प्रायः उन उद्भिज्ज पदार्थोंके होते हैं, जिनके परिवर्तनसे यह बना है। पीट वनस्पतियोंसे कोयला बननेकी प्रथम सीढ़ीका द्योतक है। यह प्रायः दलदलों (marshes) में वनस्पतियोंके एकत्र होकर जलमें सड़ने और गलनेसे बना करता है। गीले पीटमें जलका अंश ८० प्रतिशत तक होता है; परन्तु सुखानेपर २० प्रतिशत रह जाता है।

(२) "लिग्नाइट" या भूरा कोयला—इसमें वनस्पतियोंका बहुतसा भाग, पूर्ण रूपसे, कोयलेमें परिवर्तित हो गया है और केवल कहीं-कहीं ही उद्भिज्ज रेशे दृष्टिगोचर होते हैं। पीट और शुद्ध कोयलेके बीचमें लिग्नाइटका स्थान है। इसका रंग प्रायः काला या भूरा होता है। जलनेमें यह बहुत धुआं देता है। अन्य कोयलोंसे यह हल्का होता है। इस कोयलेमें एक मुख्य अवगुण यह है कि, यह शीघ्र चूर-चूर हो जाता है। इस कारण इसका बहुतसा अंश इधर-उधर रखनेसे चूर्ण होकर और धुएंमें अधजले कणोंके रूपमें पहुँचकर रद्दी चला जाता है।

(३) "बिटुमेन"दार अथवा धुआँदार कोयला—यह कोयला सामान्य श्रेणीका है। इसमें उद्भिज्ज पदार्थके रेशे बिल्कुल नहीं मिलते। यह कोयला प्रायः काले रंगका होता है और जलनेमें लिग्नाइटसे कम धुआं देता है। नरम होकर कुछ फूलसा जाता है। यह चमकहीन अथवा चमकदार होता है और प्रायः एक ही कोयलेके टुकड़ेमें चमकदार और चमकसे हीन तहें (परतें) दृष्टि-गोचर होती हैं। इस कोयलेको छूनेसे उँगलीमें शीघ्र ही काला दाग लग जाता है।

(४) "एन्थरैसाइट" कोयला—यह काले पत्थरके समान प्रतीत होता है। इसको छूनेसे उँगलीमें दाग नहीं लगता। असली एन्थरसाइट कोयलेकी ज्वाला नीली अथवा कम प्रकाशवाली होती है और इसमें धुआं नहीं होता। आरम्भमें यह कोयला अधिक देरमें आग पकड़ता है। साधारणतः लकड़ीके इन्धनकी सहायताके तो यह सुलगता ही नहीं। इस कोयलेमें कार्बनका अंश ९५ प्रतिशत तक होता है और आक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन गैसें बहुत कम परिमाणमें होती हैं। इस कारण यह कोयला अन्य कोयलोंसे शीघ्र जल जाता है; परन्तु जलनेमें यह उनसे कहीं अधिक गर्मी देता है।

जिस कोयलेमें कार्बनका अंश अधिक होता है और जलानेपर जलवाष्प और राख कम निकलती है, वही उत्तम श्रेणीका माना जाता है। कारखानोंकी भट्ठियोंमें अकसर अधफुँका कोयला प्रयुक्त किया जाता है, जिसको "कोक" (Coke) कहते हैं। जलनेपर कोक कोयला अधिक गर्मी देता है, परन्तु उत्तम कोक विशेष-विशेष कोयलोंको फूँक कर ही प्राप्त हो सकता है, सब कोयलोंसे नहीं।

कोयलेकी भौगर्भिक उत्पत्ति—कोयलेकी उत्पत्ति प्राचीन समयके जंगलों तथा दलदलोंके वनस्पतियों-के धीरे-धीरे रासायनिक परिवर्तनसे हुई है। इस परि-वर्तनमें गर्मी तथा दाबसे पुराने उद्भिज्जोंके अवयवोंमेंसे आक्सीजन और हाइड्रोजनका अंश कम हो गया। इस प्रकार कार्बन अधिक परिमाणमें रह गया और वे उद्भिज्ज पदार्थ अधिक ठोस, भारी और भञ्जनशील (Brittle) होकर कोयलेमें परिणत हो गये। निम्नलिखित रासा-यनिक विश्लेषणों (Analyses) से लकड़ी और भिन्न-भिन्न कोयलोंका परस्पर अन्तर तथा सम्बन्ध भली भाँति विदित हो जायगा—

नाम	कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सीजन (और कुछ नाइट्रोजन)
लकड़ी	१००	१२.३	८६.८
पीट	१००	६.७	५४.७
लिग्नाइट	१००	८.३	४०.०
साधारण कोयला	१००	६.४	१३.४
एन्थ्रेसाइट	१००	२.६	२.३

एक घन फूट लकड़ीका वज़न ३० पाउण्ड (प्रायः १४ सेर) होता है; परन्तु एक फूट एन्थ्रेसाइटका वजन ६० पाउण्ड होता है। भूगर्भवेत्ताओंका विचार है कि, लिग्नाइटसे लेकर एन्थ्रेसाइट तक सब कोयले प्रारम्भमें पीटके रूपमें अवश्य रहे होंगे। तत्पश्चात् पीटके, बालू और मिट्टीके नीचे, दब जानेसे उससे असली कोयला बन सका होगा। यह सिद्धान्त अब सर्वमान्य हो गया है कि, कोयलेकी भिन्न-भिन्न किस्में वनस्पति-पदार्थोंके ही परिवर्तनसे बनी हैं। आजकल भी अनेक देशोंके वर्तमान दलदलोंमें वनस्पतियोंका विशाल जमाव देखा जाता है, जिसकी नीचेकी तहों-का पीटमें परिवर्तित होना प्रारम्भ हो गया है। वनस्पति किस प्रकार दलदलों अथवा जलाशयोंमें एकत्र हुए और किन-किन क्रियाओंसे उनका कोयलेमें परिवर्तन हुआ, इन बातोंमें अभी तक भूगर्भ-वेत्ताओंमें मतभेद है। संसारमें कोयलेका कुछ जमाव तो ऐसा है, जहाँ यह प्रतीत होता है कि, किसी कालमें वन-स्पति उसी स्थानपर उगे होंगे और वहींपर गिर-कर बालू और मिट्टीसे दब गये होंगे एवम् कोयलेमें परिवर्तित हो गये होंगे। अन्य जमावोंकी उत्पत्ति कुछ भिन्न प्रकारसे हुई मालूम पड़ती है। वहाँ किसी पासके स्थानसे वनस्पति नदियों द्वारा लाये गये और वे नदियोंकी घाटियों अथवा किसी बड़ी झीलमें (जो इन जमावोंके स्थानपर वर्तमान थी) एकत्र हुए; फिर जलज शिलाओंकी तहोंके नीचे दबकर कोयला बन गये। प्रथम सिद्धान्त कोयलेकी "स्थानीय उत्पत्ति" (Growth in situorigin)के नामसे प्रसिद्ध है तथा दूसरा "बहावसे उत्पत्ति" (Drift-origin) कह-लाता है।

प्रथम प्रकारसे कोयलेकी उत्पत्ति माननेवाले यह कदापि नहीं कहते कि, कोयलेको जन्म देनेवाले वनस्पति गहरे पानीमें उग रहे थे और न दूसरे सिद्धान्तको माननेवाले ही यह कहते हैं कि, वे वनस्पति जलके बाहर सूखी भूमिपर उग रहे थे। दोनों सिद्धान्तोंके अनुसार एक उथले जलका दलदल था, जिसमें वनस्पतियोंका बाहुल्य था; परन्तु एक विचारसे कोयलेके जमावोंके वर्तमान स्थानपर ही वह दल-दल था और कोयलेके नीचेकी भूमि ही वह भूमि है, जिसपर उस समय वनस्पति उगे थे। दूसरी कल्पनाके अनुसार उन दलदलोंमेंसे वनस्पति बहा ले जाये गये और पासके ही जलाशयोंमें एकत्र हो गये। प्रथम सिद्धान्तके पक्षमें दो सबल प्रमाण रखे जाते हैं। एक तो कोयलेकी तहों (Seams)का क्षेत्र-फल बहुत बड़ा होता है और कोयलेमें अन्य पदार्थका (बालू, मिट्टी इत्यादिका) नितान्त अभाव रहता है; दूसरे, कई स्थानोंपर यह देखा गया है कि, कोयले-

की तहके नीचेकी मिट्टीमें वे अवयव कम होते हैं, जिनकी वनस्पतियोंको आवश्यकता होती है। वह मिट्टी अग्निप्रतिरोधक होती है, और उसमें कहीं-कहीं "फासिल वृक्षों" (Fossil trees—वृक्ष, जिनका पत्थरमें रूपान्तर हो गया है)के सीधे खड़े तने तथा जड़े मिलती हैं। इससे विदित होता है कि, कोयलेके जन्मदाता वृक्ष, लताएँ इत्यादि इसी स्थानपर उगे थे और उन्होंने ही मिट्टीमेंसे अपने लिये आवश्यक अवयव (खार इत्यादि) खींच लिये थे। यही कारण है कि, कोयलेकी तहके नीचे अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टीकी तह होती है; क्योंकि इस प्रकारकी मिट्टीमें खार इत्यादि पदार्थ न रहनेके कारण वह अधिक टेम्परेचर तक विना पिघले रह सकती है। इस सिद्धान्तके विपक्षमें कहा जाता है कि, कई स्थानोंपर (भारतके कोयलेके क्षेत्रोंमें ही) न तो कोयलेकी तहोंके नीचे सदा अग्नि-प्रतिरोधक मिट्टी मिलती है और न उस मिट्टीमें वृक्षोंकी सीधी खड़ी जड़ें ही पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त कोयलेके क्षेत्रोंमें प्रायः अनेक कोयलोंकी तहें होती हैं और इन तहोंके बीचमें बालूके पत्थर, मिट्टीके पत्थर तथा कभी-कभी चूनेके पत्थरकी तहें भी होती हैं। उक्त पत्थर जलज शिलाएँ हैं और जलके भीतर जमा होनेसे बनी हैं। इस कारण "स्थानीय उत्पत्ति" के अनुसार यह आवश्यक है कि, कोयलेकी प्रत्येक तहके लिये पहले एक दलदल था, फिर उस दलदलका पेंदा नीचे धँस गया और उसके ऊपर जलज शिलाओंकी, तहें एकत्र हुई। पुनः वह पेंदा जलकी सतह तक ऊपर उठकर दलदल हो गया और फिर नीचे धँस गया। इस प्रकार इस सिद्धान्तसे, अकेले एक ही भौगर्भिक कालमें भारतके प्रसिद्ध "झरिया"के क्षेत्रमें २० बारसे भी अधिक बार भूमि जलसे बाहर हुई होगी और जलमें डूबी होगी। यह बात कुछ कल्पनातीत प्रतीत होती है।

"बहावसे उत्पत्ति"वाले सिद्धान्तके समर्थक अपने पक्षमें कहते हैं कि, कोयलेकी तहें साथकी अन्य वास्तविक जलज शिलाओंके समानान्तर और उनके बीचमें होती हैं; इसलिये वे भी अन्य जलज शिलाओंके समान ही एकत्र होकर बनी होंगी। बीचकी इन जलज शिलाओंमें तरह-तरहकी पत्तियोंके चिह्न (विशेषकर चिकनी मिट्टीके पत्थरमें) तथा बड़े-बड़े विशाल फासिल वृक्ष, बालूके पत्थरमें पड़े हुए, मिलते हैं। भारतमें आसनसोलके पास, एक ऐसा ही पत्थर बना हुआ ७५ फीट लम्बा वृक्ष मिला है। इससे विदित होता है कि, जिस समय कोयलेके क्षेत्रकी जलज शिलाएँ बन रही थीं, उस समय नदियाँ उन जलाशयोंमें बड़े-बड़े वृक्ष और उनकी पत्तियाँ इत्यादि भी लाती थी। कोयलेकी एक ही तहके बीचमें भी कभी-कभी बालू या मिट्टीकी पतली तह आ जाती है और यह अकसर देखा जाता है कि, कोयलेकी एक तह आगे चलकर मिट्टीदार कोयला या कार्बनदार मिट्टीकी तह हो जाती है। इस सिद्धान्तके अनुसार शुद्ध कोयलेकी बड़ी तहें जलाशयके उन स्थानोंपर बनी होंगी, जहाँ (पत्थरोंमें सबसे हलके) वनस्पतियोंके टुकड़े तैरते-तैरते जाकर एकत्र हुए होंगे। संक्षेपमें कोयलेकी उत्पत्तिके विषयमें यह कहा जा सकता है कि, कई स्थानोंके कोयलेकी "स्थानीय उत्पत्ति" हुई है और कइयोंके कोयलेकी "बहावसे उत्पत्ति"। भारतीय कोयला कदाचित् दूसरे प्रकारसे ही उत्पन्न हुआ है, ऐसा भूगर्भवेत्ताओंका अनुमान है।

भौगर्भिक आयुके अनुसार कोयला अनेक कालकी जलज शिलाओंमें मिलता है। ये शिलाएँ प्रायः बालू और चिकनी मिट्टीकी बनी हुई होती हैं; परन्तु यदि कोयलेकी उत्पत्ति समुद्रीय जलमें हुई हो, तो चूनेके पत्थरकी भी हो सकती हैं। इन्हीं शिलाओंके बीचमें कोयलेकी भिन्न भिन्न तहें हुआ करती हैं। जलज शिलाओंकी तहें पहले जलमें (विशेषकर समुद्रीय जलमें) क्षितिज क्षेत्रमें, एकत्र होती हैं; परन्तु जब वह भाग जलसे बाहर निकल कर भूतल बन

चित्र-संख्या १

उत्तर
GRAND TRUNK ROAD
E.I.R. GRAND CHORD LINE
धनबाद
सांकेतिक चिन्ह।
झरिया क्षेत्र का चित्र
(G.S.I. के नक्शे के आधार पर)
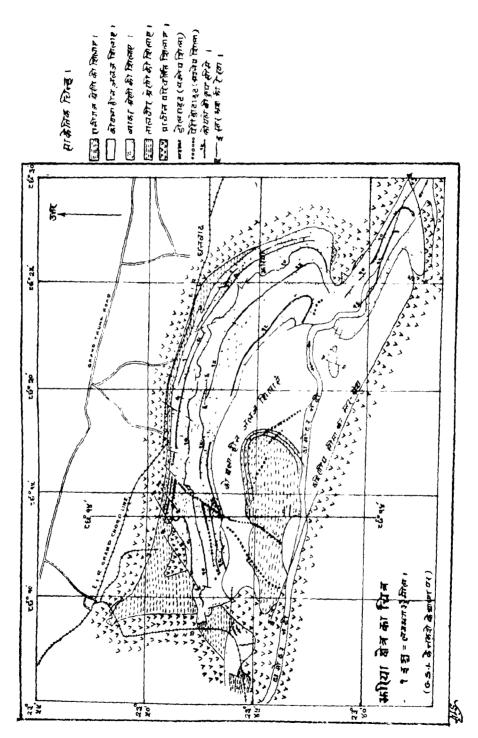
जाता है, तब वे तहें प्रायः एक ओरको झुक जाती हैं, इस झुकावको शिलाओंका "डिप" या ढाल कहते हैं। यही कारण है कि, हम पृथ्वीतलपर नीचेकी ऐसी अनेक तहों-को देख सकते हैं, जिनको (यदि वे क्षितिज होतीं तो) बिना 'बोरिंग' किये हम कदापि मालूम न कर सकते।

अनेक स्थानोंके कोयलेकी उत्पत्ति किसी झील या जलाशयमें जलज शिलाओंके साथ वनस्पतियोंके एकत्र होनेसे हुई है। ऐसे स्थानोंकी शिलाएँ जिस समय जलसे बाहर निकली होंगी, उनकी तहें पुरानी झीलके केन्द्रकी ओर चारों दिशाओंसे झुकी हुई होंगी अथवा हो गयी होंगी, जिसके फलस्वरूप उन स्थानोंके मध्यमें हमको सबसे नये कालके पत्थर मिलते हैं और किसी भी ओरके किनारेकी तरफ चलनेपर पुराने पत्थर आते जाते हैं। इस प्रकार कोयलेके क्षेत्रोंमें अक्सर कोयलेकी प्रत्येक तह पृथ्वी-तलपर किसी केन्द्रके चारों ओर पायी जाती है। भौगर्भिक नक्शोंमें कोयलेकी तहें (Seams) भिन्न-भिन्न मोटी काली रेखाओंसे अङ्कित की जाती हैं। (देखिये चित्र-संख्या—१) इस प्रकारके कोयलेके क्षेत्रके केन्द्रके पास यदि हम एक गहरा "बोरिंग"करें, तो सम्भव है, वहां एकके बाद दूसरी सब कोयलेकी तहें मिलती जायँ; परन्तु यथार्थमें भौग-र्भिक हलचलोंके कारण कुछ तहें अपने उचित स्थानोंसे हट जाती हैं और विनष्ट अथवा अदृष्ट भी हो सकती हैं। जैसे झरिया क्षेत्रमें दक्षिणीय भागका बहुतसा कोयला एक बड़े स्तर-भ्रंश (Fault)के कारण कालान्तरमें धुल गया और इस समय उत्तरीय भागका कोयला ही प्राप्त हो सकता है। (देखिये चित्र-संख्या—२)

भारतवर्षके कोयलेके जमावोंका वृत्तान्त—भारतवर्षमें कोयला कई भौगर्भिक कालकी शिलाओंमें मिलता है, जिनमें दो ही कालका कोयला अधिक महत्त्व-का है। एक प्रथम कल्प❀ के "गोंडवाना" नामक कालका और दूसरा तृतीय कल्पका।

चित्र-संख्या २
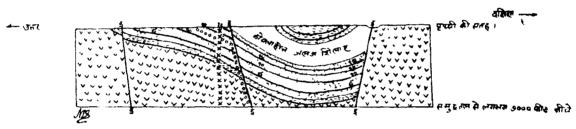
झरिया क्षेत्रमें देशान्तर रेखा ८६°१४'के नीचेका काल्पनिक चित्र (बड़े मापपर)

भारतका प्रायः ९८ प्रतिशत कोयला गोंडवाना काल-की शिलाओंसे निकाला जाता है और शेष तृतीय कल्प-की शिलाओंसे। गोंडवाना समयका कोयला बङ्गाल, बिहार-उड़ीसा, मध्य प्रान्त, मध्य भारत तथा हैदराबाद राज्यमें पाया जाता है; और, तृतीय कल्पका कोयला बिलो-चिस्तान, पंजाब, काश्मीर, राजपुताना, कच्छ, सिन्ध, आसाम और ब्रह्मदेशमें मिलता है।

गोंडवाना कालके कोयलेके क्षेत्र—इन क्षेत्रोंमें सबसे प्रसिद्ध और उत्तम कोयलेके क्षेत्र बङ्गाल और बिहार

❀ पृथ्वी-तलपर जीवन-चिह्न दृष्टिगोचर होनेके समयसे पृथ्वीकी आयु चार भौगर्भिक कल्पोंमें विभाजित की जाती है। अनुमानसे प्रथम कल्पको व्यतीत हुए २० करोड़ वर्ष, द्वितीयको ५½ करोड़ वर्ष और तृतीयको १० लाख वर्षके करीब हुए हैं। चतुर्थ कल्प आजकल चल रहा है। गोंडवाना काल प्रथम कल्पके अन्तका और द्वितीय कल्पके आरम्भका समय था। इस कालमें भारतका दक्षिणीय भाग अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिणीय अमेरिकासे मिला हुआ था। इन सभी देशोंमें इस समयका कोयला एकसे ही पत्थरोंमें मिलता है। हिमालय पर्वत जलसे निकल कर तृतीय कल्पमें उत्पन्न हुआ है। —लेखक।

प्रान्तोंकी दामोदर नामक नदीकी घाटीमें पाये जाते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि, यहाँके सब कोयलेकी तहें तथा उनके साथकी बालू और मिट्टीकी तहें किसी समय इसी दामोदर और इसकी शाखा-नदियों द्वारा घाटीमें एकत्र की गयी होंगी। उस समय कदाचित् इन प्रान्तोंके कोयलेके सब क्षेत्र आपसमें एक प्रकारसे मिले हुए होंगे और वे इस बड़ी घाटीके बीच झीलें अथवा जलाशयोंके रूपमें रहे होंगे। यहाँ किसी-किसी जलाशय-में (अर्थात् वर्तमान कोयलेके क्षेत्रमें) गोंडवाना कालकी जलज शिलाओं तथा कोयलेकी तहोंकी मोटाई कुल मिलाकर ७००० फीट तक पायी गयी है। इससे प्रतीत होता है कि, इन जलाशयोंके तल, उस समय धीरे-धीरे नीचे धँसते भी जाते थे, तभी इतने तलछटका एकत्र होना सम्भव हो सका। यह अनुमान किया जाता है कि, ७००० फीट मोटी तलछटकी तहोंके एकत्र होनेमें लगभग एक करोड़ वर्ष लगे होंगे। अकेले झरिया क्षेत्रमें उक्त जलज तलछटोंमेंसे कोयलेकी सब तहोंको मिलाकर ४०० फीटके करीब कोयला होता है। एक फीट कोयलेकी तह बननेके लिये कमसे कम ६ फीट लकड़ीका एकत्र होना आवश्यक है। इस प्रकार झरिया क्षेत्रमें सब तहोंको मिलाकर कमसे कम २४०० फीट लकड़ी एकत्र हुई होगी। तत्पश्चात् इन जलाशयोंके तल जलसे बाहर उठने लगे और कालान्तरमें वहाँ जलके स्थानपर भूतल हो गया। गोंडवाना कालकी जलज शिलाओंको, आयुके अनुसार, मुख्य चार श्रेणियोंमें विभाजित किया जाता है, जिनमेंसे केवल दूसरी और तीसरी—"बराकर" और "रानीगंज" नामक—श्रेणियोंकी शिलाओंमें ही कोयला पाया जाता है। इन शिलाओंके बननेके बहुत समय बाद इन क्षेत्रोंमें भूकम्पीय तथा आग्नेय हलचलें भी बहुत हुई हैं, जिनके कारण इन क्षेत्रोंकी शिलाओंको काटकर अथवा उनकी तहोंके समानान्तर मुख्यतः दो प्रकारकी आग्नेय शिलाएँ ("डालेराइट" और काले अबरकदार "पेरीडोटाइट") मिलती हैं (चित्र-संख्या १ और २)। इनके अतिरिक्त पृथ्वीकी आन्तरिक हलचलोंके कारण कोयलेके क्षेत्रोंमें अनेक स्तर-भ्रंश हो गये हैं, जिससे कोयले तथा अन्य शिलाओंकी तहें इधर-उधर हो गयी हैं। इन स्तर-भ्रंशोंमें क्षेत्रोंके दक्षिणका स्तर-भ्रंश सबसे महान् है, जिसके कारण कहीं-कहींपर उत्तरीय भाग ५००० फीटसे भी अधिक नीचे धँस गया था। उस समयसे अबतक दक्षिणीय भागकी कोयलेदार शिलाएँ धुल गयी हैं और वह भाग बराबर हो गया है। उनके स्थानपर इस समय गोंडवाना कालसे बहुत प्राचीन समयकी परिवर्तित शिलाएँ निकल आयी हैं। इन क्षेत्रोंके चारों ओर इसी कालकी शिलाएँ मिलती हैं। कारण यह कि, गोंडवाना कालके जलाशय इन्हीं प्राचीन शिलाओंके देशमें वर्तमान थे।

बंगाल और बिहार-उड़ीसाके कोयलेके क्षेत्र—उत्तम कोयलेके बड़े-बड़े क्षेत्र इन्हीं प्रान्तोंमें वर्तमान हैं, जिनमेंसे मुख्य-मुख्य नीचे दिये जाते हैं—

(१) **झरिया क्षेत्र**—यह क्षेत्र ई० आई० आर० की ग्रांड कार्ड लाइनपर धानबाद जंकशनसे आरम्भ होता है। (चित्र-संख्या १ और २) यह क्षेत्र २३ मील लम्बा (पूर्व-पश्चिममें) और १० मील चौड़ा (उत्तर-दक्षिणमें) है। झरियाका क्षेत्रफल १५० वर्ग मील है। यहाँका कोयला "बराकर" और "रानीगंज", दोनों श्रेणियोंकी जलज शिलाओंके साथ मिलता है। यहाँकी "बराकर" श्रेणीमें कोयलेकी २० सीमें (तहें) हैं, जिनको नीचेसे क्रमानुसार नम्बर दिया गया है अर्थात् सबसे नीचेकी और पुरानी सीम नं० १ सीम कहलाती है। इन तहोंकी मोटाई कुछ फीटसे लेकर २७ फोट तक है। प्रत्येक सीम अपने ऊपर या नीचेवाली सीमसे जलज शिलाओंको तहों द्वारा पृथक् होती है; परन्तु कहीं-कहीं दो या दोसे अधिक सीमें आपसमें मिलकर एक भी हो गयी हैं। "रानीगंज" श्रेणीकी शिलाओंके साथकी सीमोंको अभी विशेष नम्बर नहीं दिये गये हैं और झरिया क्षेत्रमें वे अधिक महत्त्वकी हैं भी नहीं। झरिया क्षेत्रकी प्रायः

सब सीमों (तहों)के कोयलेसे "कोक" बन सकता है; परन्तु उत्तम कोक केवल १२ नम्बरसे १८ नम्बर तककी सीमोंसे ही बनता है।

इस क्षेत्रमें कुल दो हजार करोड़ टन कोयला होगा, जिसमेंसे लगभग दो सौ करोड़ टन कोयला उत्तम श्रेणीका है, जो धातु शोधनेके कारखानोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। सन् १९३० में भारतवर्षके कुल कोयलेका लगभग ४५ प्रतिशत भाग इसी क्षेत्रसे निकाला गया था। इस प्रकार झरियाका स्थान कोयलेके क्षेत्रोंमें प्रधान गिना जाता है।

(२) रानीगंज क्षेत्र—क्षेत्र-फलमें यह सबसे बड़ा है। इसका क्षेत्र-फल लगभग ५०० वर्ग मील है। यह क्षेत्र झरिया क्षेत्रसे १६ मील पूर्वसे आरम्भ होता है। ई० आई० आर० पर बराकर, सीतारामपुर तथा रानीगंज इस क्षेत्रके मुख्य रेलवे स्टेशन हैं। यद्यपि यहाँपर भी "बराकर" और "रानीगंज" नामक दोनों श्रेणियोंकी शिलाओंसे कोयला निकलता है, तथापि "रानीगंज" श्रेणीका कोयला ही अधिक मात्रामें और उत्तम गुणवाला है। रानीगंजके उत्तम कोयलेकी सीमोंमें तिशरगढ़ सीम (१८ फीट मोटी) और सेक्टोरिया सीम (१० फीट मोटी) अधिक प्रसिद्ध हैं। केवल इन दो सीमोंमें ही ५० करोड़ टनसे अधिक उत्तम कोयला कूता जाता है। इस क्षेत्रकी अन्य सीमोंके कोयलेसे अच्छा कोक नहीं बनता। भारतवर्षके कुल कोयलेका ३० प्रतिशतसे अधिक भाग इसी क्षेत्रसे निकाला जाता है।

(३) गिरिडीह क्षेत्र—हजारीबाग जिलेके इस क्षेत्रका क्षेत्र फल केवल ११ वर्ग मील है, जिसमें कोयलेवाली 'बराकर' श्रेणीकी जलज शिलाएँ केवल ७ वर्ग मीलमें ही मिलती हैं। यहाँके कोयलेकी विशेषता यह है कि, उससे अति उत्तम प्रकारका स्टीम-कोक तैयार होता है। कदाचित् यही कारण है कि, इस क्षेत्रको ई० आई० रेलवेने अपने अधिकारमें रखा है। यहाँकी प्रसिद्ध सीमें "कड़हरबारी" (ऊपर और नीचेकी) कहलाती हैं; जिनकी मोटाई क्रमशः १५ फीट ४ इंच और ६ फीट है। इस क्षेत्रमें सीमोंका ढाल बहुत कम है, जिससे पृथ्वीतलसे केवल ६०० फीट तक जानेसे यहाँका सब कोयला निकाला जा सकता है। इस क्षेत्रमें लगभग ६ करोड़ टन कोयला होगा। सन् १९३० ई० में भारतके कुल कोयलेका ४० वाँ अंश इस क्षेत्रसे प्राप्त हुआ था।

(४) बुकारो क्षेत्र—बुकारो झरिया क्षेत्रसे पश्चिममें है और दो भागोंमें विभाजित है—पूर्वीय और पश्चिमीय। दोनोंका क्षेत्रफल २२० वर्ग मील होगा। इन दोनों भागोंके बीचमें लूगू नामक पहाड़ी है। यहाँकी मुख्य खानोंकी मालिक ई० आई० आर०, बी० एन० आर० तथा जी० आई० पी० रेलवे हैं। सन् १९३० में इस क्षेत्रसे भारतकी उपजका ९ प्रतिशत भाग निकाला गया था।

(५) करणपुरा क्षेत्र—इस क्षेत्रके भी दो भाग हैं—उत्तरीय और दक्षिणीय, जिनके क्षेत्रफल क्रमसे ४७२ और ७२ वर्ग मील हैं। करणपुरा क्षेत्र बुकारोसे २ मील पश्चिममें हजारीबाग जिलेकी उच्चतम सम-भूमि (Plateaux) के दक्षिणीय ढालके तलेमें वर्तमान है। यहाँकी सीमें अन्य क्षेत्रोंकी सीमोंसे कहीं अधिक मोटी हैं। ६० फीट मोटी सीमें तो बहुतसी हैं; परन्तु एक सीम १३६ फीट मोटी है।

(६) उक्त पाँच क्षेत्रोंके अतिरिक्त बिहार उड़ीसा प्रान्तमें रामगढ़, रामपुर, (सम्बलपुर) जयन्ती, हुटार, डाल्टनगंज, तालचीर इत्यादि अन्य प्रसिद्ध क्षेत्र भी हैं। हजारीबाग जिलेमें चोप, इटखुरी, औरङ्गा नामक छोटे-छोटे क्षेत्रोंमें तथा राजमहल पहाड़में भी कोयला मिलता है।

मध्य प्रान्तके कोयलेके क्षेत्र—यद्यपि मध्य प्रान्तमें लगभग तीस क्षेत्रोंमें कोयला पाया जाता है; परन्तु कार्य थोड़े ही क्षेत्रोंमें हो रहा है। कारण, कुछ क्षेत्र तो रेल इत्यादिसे बहुत दूर हैं और बहुतोंका

कोयला बिहारके कोयलेसे निम्न श्रेणीका है । मध्य प्रान्तका कोयला भी गोंडवाना कालका ही है और यहाँ भी कोयलेके साथ बिहार-उड़ीसा प्रान्तके क्षेत्रोंके ही प्रकारके पत्थर मिलते हैं । इस प्रान्तके कोयलेमें नमी अधिक होती है । यहाँ निम्नलिखित क्षेत्र प्रसिद्ध हैं—

(१) पेंचघाटीके क्षेत्र—ये क्षेत्र छिन्दवाड़ा जिलेमें सतपुरा पहाड़के दक्षिणमें तवा, कन्हान और पेंच नदियोंकी घाटियोंमें वर्तमान हैं । इन सबका क्षेत्र-फल १०० वर्ग मील है । यहाँके मुख्य क्षेत्र सिरगोरा, बरकोई, हिङ्गलदेवी, कन्हान और तवा नामसे प्रसिद्ध हैं ।

(२) वारधाघाटीके क्षेत्र—इन क्षेत्रोंमें बलारपुर, बरोरा, सस्ती और घुघस उल्लेखनीय हैं; परन्तु इनमेंसे प्रथम दो क्षेत्र ही अधिक महत्त्वके हैं । चाँदा जिलेके बलारपुर नामक क्षेत्रमें ५२ फीट ६ इञ्च मोटी कोयलेदार तहोंका समूह मिलता है; परन्तु उसमें केवल आठ-आठ फीट मोटी दो ही तहें अच्छे कोयलेकी हैं और उन्हींमेंसे अधिकतः कोयला निकाला जाता है । बरोरा क्षेत्र चाँदा जिलेमें ही नागपुरसे ६२ मील दक्षिणको है । यहाँका कोयला हवामें रहनेपर चूर-चूर होने लगता है और इस कोयलेकी सीमके स्वयम् जल उठनेका भी डर रहता है ।

(३) मोहपानी क्षेत्र—नरसिंहपुर जिलेमें मोहपानी मध्य प्रान्तका सबसे पुराना क्षेत्र है । यह क्षेत्र नर्मदा घाटीके दक्षिणमे सतपुरा पर्वतके उत्तरीय ढालके तलेमें वर्तमान है । 'बराकर' श्रेणीकी शिलाओंमें यहाँ कोयलेकी चार सीमें हैं । बंगाल और बिहारके साधारण कोयलेसे यहाँका कोयला कुछ निकृष्ट है । इस कोयलेमें भी खानके भीतर स्वयम् जल उठनेकी सम्भावना रहती है । मोहपानीके अतिरिक्त यवतमाल और बेतूल जिलोंमें शाहपुर इत्यादि क्षेत्र भी प्रसिद्ध हैं ।

(४) सरगूजा रियासतके क्षेत्र—इन क्षेत्रोंमें रामकोला-ताता पानी तथा विश्रामपुर, बन्सर, लखनपुर, पंचभाइनी और रामपुर इत्यादि छोटे-छोटे क्षेत्र सम्मिलित हैं । क्षेत्रफलमें रामकोला-ताता पानी क्षेत्र ८०० वर्ग मील है; परन्तु गोंडवाना कालकी कोयलेदार शिलाएँ केवल १०० वर्ग मीलमें ही मिलती हैं । इस क्षेत्रके दक्षिण-पश्चिममें झिलमिली नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय है । इस क्षेत्रके कोयलेसे अच्छा कोक बनता है । यहाँकी सीमें क्षितिज हैं, जिससे कोयला खोदनेमें बहुत सुभीता रहता है ।

(५) छत्तीसगढ़ तथा कोरिया राज्यके क्षेत्र—छत्तीसगढ़में कोरबा, मांड नदीकी घाटी तथा रामपुर नामक स्थानोंमें कोयला मिलता है । रामपुरका पुराना नाम रायगढ़-हिङ्गिर क्षेत्र था । यह क्षेत्र सम्बलपुरसे २४ मील उत्तरमें है । कोरिया राज्यमें अनेक स्थानोंपर कोयला मिला है । यहाँपर कुरासिया, कोरिया गढ़ तथा अन्य कई नये क्षेत्र हैं, जिनमें अभी सुचारु रूपसे कार्य आरम्भ नहीं हुआ है । कुरासिया क्षेत्रमें कोयलेकी छः सीमें हैं, जिनका ढाल बहुत कम है । इस क्षेत्रमें लगभग ४५ लाख टन कोयला कूता जाता है ।

मध्य भारतके कोयलेके क्षेत्र—मध्य भारतका कोयला भी गोंडवाना कालका है । यहाँके क्षेत्रोंमें उमरिया और सुहागपुर नामक क्षेत्र ही अधिक महत्त्वके हैं । कोगर, जोहिला, सिङ्गरौली नामक नये क्षेत्र अभी कुछ वर्ष पूर्व ही मिले हैं ।

(१) उमरिया क्षेत्र—रीवाँ राज्यमें यह केवल ६ वर्ग मीलका क्षेत्र है । यहाँ तीन मुख्य सीमें हैं, जिनकी मोटाई ३ फीटसे १३ फीट तक है । इन सीमोंका ढाल केवल ४° या ५° (डिग्री) है । उमरिया क्षेत्रमें कुल कोयला अनुमानसे दो करोड़ टनसे अधिक होगा । गोंडवाना कालके अन्य क्षेत्रोंसे इस क्षेत्रमें एक विशेषता यह है कि, यहाँ कोयलेके साथकी शिलाओंमें

समुद्रीय जीवोंकी प्रस्तरीभूत अस्थियाँ (fossils) मिली हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि, यहाँके कोयलेकी उत्पत्ति झीलमें न होकर समुद्रमें हुई थी।

(२) **सुहागपुर क्षेत्र**—इस क्षेत्रका कुछ भाग मध्य प्रान्तकी कोरिया रियासतमें और शेष मध्य भारतमें है। इसीमें झगरा खण्ड नामक २२ वर्ग मीलका रीवाँ राज्यका एक छोटासा क्षेत्र भी सम्मिलित है। यद्यपि सोहागपुर क्षेत्रमें कोयलेकी सीमोंकी संख्या अधिक नहीं है, तथापि इसका क्षेत्रफल १५०० वर्ग मील है और कदाचित् सारा कोयला थोड़ी ही गहराईपर मिल सकता है।

हैदराबाद (दक्खिन)के क्षेत्र—निजामके हैदराबादमें सिंगरेनी नामक क्षेत्र अति प्रसिद्ध है। इस क्षेत्रमें "बराकर" श्रेणीकी शिलाएँ ६ वर्ग मीलमें पायी जाती हैं। यहाँ मुख्य चार सीमें हैं, जिनमेंसे बड़ी सीम ३०-४० फीट मोटी है। दक्षिण भारतके नगरोंसे यही क्षेत्र पास पड़ता है। इस कारण यहाँके कुल कोयलेकी खपत दक्षिणीय भारतकी रेलों तथा कारखानोंमें ही हो जाती है।

तृतीय कल्पके कोयलेके क्षेत्र—जैसा कि, पहले लिखा जा चुका है, इस कालका कोयला बिलोचिस्तान, पंजाब, राजपुताना, आसाम तथा ब्रह्मदेशमें ही अधिक पाया जाता है। इस कल्पका कोयला गोंडवाना कालके कोयलेसे निकृष्ट श्रेणीका होता है। इस कोयलेमें नमी अधिक होती है और हाइड्रो-कार्बन गैसोंका अंश अधिक होता है। इस कारण इन क्षेत्रोंके अधिकतः कोयलोंको जलानेपर उतनी गर्मी नहीं प्राप्त होती, जितनी गोंडवाना कालके कोयलोंसे। तृतीय कल्पके कोयले अक्सर गोंडवाना कालके कोयलोंसे अधिक चमकदार और विना परतोंके होते हैं। जिन जलज (समुद्रीय) शिलाओंमें इस कल्पका कोयला मिलता है, उनकी तहें प्रायः (विशेषतः उत्तर-पश्चिमके पर्वतीय भागोंके क्षेत्रोंमें) पृथ्वीकी आन्तरिक हलचलोंसे टेढ़ी या स्तर-भ्रष्ट हो गयी हैं। इसके अतिरिक्त इन कोयलोंमें रूपामक्खी (पाइराइट लोह और गंधकके सम्मेलनसे बना खनिज) के छोटे-छोटे रवा मिलते हैं। रूपामक्खी खनिजके कण वायुमण्डलमें पड़े रहनेसे शीघ्र ही परिवर्तित हो जाते हैं और कई दशाओंमें उनमेंसे गन्धकका कुछ अंश पृथक् हो जाता है। इसके फल-स्वरूप रूपामक्खीदार कोयले खुली हवामें पड़े रहनेसे शीघ्र ही चूर-चूर हो जाते हैं और ऐसे कोयलेकी खानोंमें कोयलेकी धूलके कणोंके सङ्घर्षण इत्यादिसे सीममें स्वयं आग लग जानेका सदा डर रहता है। तृतीय कल्पका कोयला अधिकतः एक विशेष प्रकारके फासिलदार चूनेके पत्थर (Nummuletic Limestone) की तहोंके साथ मिलता है। कोयलेके साथके पत्थरोंमें उस कालके अन्य समुद्रीय जीवोंके मृतक चिह्न (Fossils) भी बहुत मिलते हैं।

(१) **बिलोचिस्तानके क्षेत्र**—यहाँ खोस्ट नामक क्षेत्र सबसे बड़ा है। इस क्षेत्रमें कोयलेकी दो सीमें हैं, जो २६-२७ फीट मोटी हैं। इस कोयलेमें रूपामक्खीके कणोंके कारण उसके स्वयं जल उठनेका या खानमें धड़ाका (Explosion) हो जानेका डर रहता है।

(२) **पंजाबके क्षेत्र**—इस प्रान्तमें कोयला साल्ट-रेञ्ज नामक पहाड़में मिलता है। कोयलेके मुख्य क्षेत्र झेलम शाहपुर और मियाँवाली जिलोंमें हैं। झेलम जिलेमें डंडोत और पिडकी खानें प्रसिद्ध हैं। यहाँकी सीम चूनेके पत्थरकी मोटी-मोटी तहोंके नीचे है; परन्तु सीमकी छत और तलेमें चिकनी मिट्टीके पत्थरकी तहें हैं, जिससे कोयला निकालनेपर छतके गिर जानेका बड़ा खतरा रहता है। इस स्थानका भी कोयला रूपामक्खीदार है, जिससे उसके स्वयं जल उठनेका भी डर रहता है। उक्त दोनों खानें खेउड़ा नामक स्थानकी लाहौरी नमककी खानोंके समीप हैं।

शाहपुर जिलेमें तेजूवाला और झाकरकोट नामक स्थानोंपर कोयला मिलता है। मियाँवाला जिलेमें ईसाखेल-के पास कई स्थानोंपर कोयला मिलता है, जिनमें मकरवाल नामक खान विशेष उल्लेखनीय है।

इन स्थानोंके अतिरिक्त काश्मीर राज्यके जम्मू जिलेमें भी अच्छा कोयला पाया जाता है।

(३) **राजपुतानाका क्षेत्र**—बीकानेर-राज्यमें पलाना नामक क्षेत्र कोयलेके लिये प्रसिद्ध है। यहांकी मुख्य सीमकी मोटाई पृथ्वीतलपर केवल ६ फीट है; परन्तु नीचे कहीं-कहीं वह ३० फीट तक मोटी है। पलाना क्षेत्रका कोयला "लिग्नाइट" वर्गका है। इसका रंग काला-भूरा होता है और इसके नमूनेमें उद्भिज्ज रेशे दिखाई देते हैं। यद्यपि यह कोयला निकृष्ट श्रेणीका है; परन्तु विशेष प्रयोगों द्वारा इस कोयलेको सुधार कर उत्तम कोयला प्राप्त किया जा सकता है। यहांके कोयलेकी तहें भी चूनेके पत्थरके नीचे चिकनी मिट्टीके पत्थरकी तहोंके साथ मिलती हैं।

(४) **आसाम प्रान्तके क्षेत्र**—इस प्रान्तमें कोयला पूर्वीय नागा पर्वतके उत्तर-पश्चिमीय ढालपर लखीमपुर तथा शिवसागर जिलोंमें पाया जाता है। यहांका सबसे बड़ा क्षेत्र मकूम है, जो लगभग ४० मील लम्बा है। इस क्षेत्रकी सीमें प्रायः ५० फीट मोटी हैं। इस क्षेत्रके अतिरिक्त जयपुर, नजीरा, झाञ्जी और देस्रोय नामक क्षेत्र भी उल्लेखनीय हैं। यद्यपि यहांके कोयलेमें भी गन्धकका अंश अधिक है, तथापि अन्य प्रकारसे यह कोयला बड़ा उत्तम है। यह कोयला बड़ा चमकदार होता है, जलनेपर इसमेंसे बहुत कम राख निकलती है और इससे कोक भी अच्छा बन सकता है। मकूम क्षेत्रका प्रायः सब कोयला आसाम प्रान्तकी रेलोंमें, ब्रह्मपुत्र नदीमें चलनेवाले स्टीमरोंमें तथा आसामके चायके कारखानोंमें काम आता है। बहुत-सा कोयला पूर्वीय बंगालको भी इन्हीं क्षेत्रोंसे जाता है।

(५) **ब्रह्मदेश क्षेत्रके**—ब्रह्मदेशके उत्तरीय शान राज्य और छिन्दविन, मरगुई, हेनजाड़ा इत्यादि जिलोंमें कोयला पाया जाता है; परन्तु यह कोयला उत्तम श्रेणीका नहीं है।

उक्त स्थानोंके अतिरिक्त बम्बईकी कुछ रियासतोंमें, सिन्ध प्रान्तमें तथा हिमालय पर्वतके दक्षिणीय ढालपरकी अनेक पहाड़ियों और नेपाल राज्यमें कोयला मिलता है।

भारतवर्षके कोयलेका परिमाण—सन् १९२८ ई० में भारतके कुल कोयलेके परिमाणका अनुमान ५४ अरब (५४०० करोड़) टन लगाया गया था; परन्तु इस कोयलेका एक तिहाई भाग कोयलेके निकालनेमें नष्ट हो जायगा। इस प्रकार कुल ३६ अरब टन कोयला भारतमें बचा है, जिसमेंसे उत्तम कोक बनानेवाला कोयला केवल २॥ अरब टन है, जो फौलाद इत्यादिके कारखानोंके लिये उपयुक्त होगा। यह अनुमान किया जाता है कि, इस देशमें जितने लोहेके खनिज हैं, उन सबको शोधनेके लिये जितने कोककी आवश्यकता होगी, उतने कोकके लिये भी यह कोयला पर्याप्त नहीं है। भारतका कोयला केवल दो शताब्दियोंमें ही समाप्त हो जायगा, कई भूगर्भवेत्ताओंका ऐसा विचार है। इस कारण यह आवश्यक प्रतीत होता है कि, भारतके उत्तम कोयलेके व्ययमें तथा उसको खानोंसे निकालनेमें बहुत सावधानी रखी जाय, वरना उपर्युक्त कालके पश्चात् भारतको अपने मुख्य उद्योग-धंधोंके लिये कोयलेके लिये बाहरी देशोंपर निर्भर रहना पड़ेगा।

अब तक हम लोग इस विषयमें बड़े असावधान रहे हैं। कोयलेकी उपजमें भारतवर्षका ब्रिटिश राज्य भरमें द्वितीय स्थान है; परन्तु गत चार-पांच वर्षोंसे तो यहांके कोयलेके व्यवसायकी अत्यन्त शोचनीय और हीन दशा है। प्रतिवर्ष दक्षिणीय अफ्रीका, जापान इत्यादि देशोंसे यहां (विशेषतः बम्बई इत्यादि दक्षिणीय प्रान्तोंमें) बहुतसा कोयला आ रहा है। इसका एक कारण भारतीय रेलोंका अधिक किराया भी कहा जाता है, जिससे कोयलेकी खानोंसे दूर बम्बई, कांची जैसे स्थानोंमें विदेशीय कोयलेसे देशी कोयला अधिक मँहगा पड़ता है।

कोयले जैसे आवश्यक खनिजकी रक्षा तथा उचित उपयोगके विषयमें प्रत्येक भारतवासीको ध्यान रखना आवश्यक है।*

* इस लेखमें जिन पुस्तकोंसे सहायता ली गयी है, इन पङ्क्तियोंका लेखक उन पुस्तकोंके प्रणेताओंका कृतज्ञ है। पुस्तकों तथा प्रणेताओंके नाम अगले पृष्ठकी पाद-टिप्पनीमें दिये जाते हैं। —लेखक

आयुर्वेदीय खनिज

अध्यापक दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी आयुर्वेदाचार्य, एम० एस-सी०

आयुर्वेदीय औषधि-निर्माणमें कुछ खनिज काममें आते हैं; परन्तु इन खनिजोंके सम्बन्धमें, आज कल, वैद्योंमें एक बहुत बड़ा अज्ञान दिखाई पड़ता है। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि, ये खनिज कहाँसे आते हैं, कैसे पाये जाते हैं, कहाँ मिल सकते हैं तथा ग्रन्थोक्त लक्षणोंके अनुसार इनकी क्या पहचान है; कौन ग्राह्य हैं तथा कौन अग्राह्य और इनका मूल्य क्या होना चाहिये? इस अज्ञानसे आयुर्वेदकी बड़ी हानि हो रही है। कुछ व्यापारी अपने पासके खनिजोंको असली बताकर दस बीसगुना ही नहीं, इससे भी अधिक मूल्य वसूल करते हैं; और, इस प्रकार जब मूल खनिज ही इतने महँगे पड़ जाते हैं, तब तैयार रस-औषधियोंमें यदि कल्पनातीत मूल्य पड़ जाय, तो आश्चर्य ही क्या है? परिणाम यह हो रहा है कि, रसायन-औषधियोंका उपयोग केवल धनी लोग ही कर रहे हैं और भारतवर्षकी दरिद्र जनताके ९९ फी सदी लोगोंके लिये ये औषधियां दुर्लभ हो गयी हैं। उन्हें केवल जड़ी-बूटियोंसे अथवा लता-गुल्मोंसे ही अपना काम चलाना पड़ता है। काममें आनेवाली बहुतसी एलोपेथिक दवाएँ भी इन रसायनोंसे सस्ती मिलती हैं; अतः लोग उन्हे ही खरीदते हैं और इस प्रकार उनके द्वारा एलोपैथिक-के प्रचारमें अप्रत्यक्ष रूपसे सहायता पहुँचायी हो है।

आयुर्वेदीय रस-शास्त्र हजार-बारह सौ वर्षोंसे भी पुराना है। उस समय विदेशोंसे भारतवर्षका व्यापार-सम्बन्ध बहुत कम था। इसलिये उस समयके रस-सिद्धोंने जिन प्रयोगोंको प्रकृतिमें देखा होगा अथवा जिन द्रव्योंसे उन्होंने प्रयोग किये होंगे, वे सब द्रव्य—खनिज हों अथवा वानस्पतिक—उन लोगोंको आस-पासके स्थलोंसे ही मिले होंगे, दूर देशोंसे नहीं। जहाँ-जहाँ ये द्रव्य सरलतासे मिल गये होंगे, वहाँ-वहाँ रस-शास्त्रकी समधिक वृद्धिका होना भी अधिक सम्भव हुआ होगा। बङ्गाल, बिहार, मद्रास, मध्य भारत और पंजाबमें बहुतसे खनिज पदार्थोंका खानोंसे मिलना सम्भव था; और इसीलिये इन प्रान्तोंमें इस शास्त्रकी उन्नति भी बहुत अधिक हो सकी थी। परम्परासे सिद्ध नागार्जुन आदि अच्छे-अच्छे रससिद्ध इन्हीं प्रान्तोंमें उत्पन्न हुए हैं। उनके ग्रन्थोंमें जिन खनिज द्रव्योंके वर्णन और उपयोग पाये जाते हैं, वे उनको भारतवर्ष या उसके आस-पासके देशोंकी खानोंसे ही प्राप्त हुए होंगे, इसमें सन्देह नहीं। यदि हम चाहते हैं कि, उनकी पद्धतिके अनुसार दवाएँ बनाकर संसारको लाभ पहुँचाया जाय, तो हमारे लिये आवश्यक है कि,

(1) C. S. Fox.—The Natural History of Indian Coal—Memoir G. S. I. Vol. LVII. 1931. (2) C. S. Fox.—The Jharia Coalfield—Memoir. G. S. I. Vol. LVI 1930. (3) Ball & Simpson—Coalfields of India—Memoir G. S. I. Vol. XLI Pt. I. 1922. (4) Gibson—Coal in Great Britain 1920.

हम भी उन्हीं खनिज द्रव्योंको लें, जिन्हें लेकर वे चिकित्सामें सिद्ध-हस्त हुए थे और उसी प्रकारसे दवाएँ बनावें, जिस प्रकार वे बनाते थे। हाँ, जो पदार्थ खोज करनेपर भी यहाँ नहीं मिलेंगे, उन्हें बाहरसे मँगवाना ही होगा; किन्तु वैसे पदार्थ बहुत ही कम होंगे ।

बड़े खेदकी बात है कि, प्राय: सब प्रकारके खनिज हमारे देशमें यूरोप, अमेरिका आदि देशोंसे आते हैं, इसीलिये उनको उत्तम और उपयुक्त समझकर कल्पनातीत मूल्यमें भी खरीदकर उनका प्रचार करनेमें कुछ लोग आयुर्वेदकी सेवा और बड़ा पुरुषार्थ समझने लगे हैं । औषधियोंकी एक सूचीमें स्वर्णगैरिक (एक विशेष प्रकारकी गेरू)का भाव १२) रु० सेर, कान्तलौह (लोहेका चुम्बकत्वयुक्त खनिज)का १५) सेर, स्वर्णमाक्षिकका ४) सेर तथा खर्पर (जस्तेका एक खनिज)का २०) सेर इत्यादि भाव दिये गये हैं। गैरिकसे प्राप्त किये हुए शुद्ध लोहेका भाव =) सेर, स्वर्णमाक्षिकसे प्राप्त ताँबेका भाव ॥।) सेर और खर्परसे प्राप्त जस्तेका भाव भी ॥।) सेरसे अधिक नहीं होता है । इन खनिजोंसे प्राप्त करनेमें बहुतसा खर्च पड़नेपर भी ये धातुएँ जब इतनी सस्ती मिलती हैं, तब विना कुछ संस्कारके, खानोंसे प्राप्त होनेवाले, खनिज कितने सस्ते हो सकते हैं, इसमें अधिक टीका-टिप्पनी करनेकी आवश्यकता नहीं है । कहा जाता है कि, ये बाहरके खनिज असली हैं और बड़े ही परिश्रमसे प्राप्त होते हैं; इसीलिये ये इतने महँगे पड़ते हैं । ये लोग ऐसा न कहें, तो इनके खनिजोंकी बिक्री कैसे हो ? इन खनिजोंसे बनी हुई औषधियाँ प्रयोगों द्वारा अधिक लाभकारी सिद्ध भी हो गयी हों—यद्यपि ऐसे प्रयोग अबतक बहुत कम हुए हैं—तो भी, बाहरके इन खनिजोंके इतने महँगे बिकनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता ।

सच तो यह है कि, जिन खनिज पदार्थोंका अनुभव और उपयोग प्राचीनोंने किया था, उनमेंसे प्राय: सभी भारतवर्षमें मिल जाते हैं । नीचे दी हुई तालिकामें पाठक देखेंगे कि, कौन-कौनसे खनिज पदार्थ भारतके किन-किन प्रान्तोंमें मिलते हैं।

आयुर्वेदमें खनिज और उनसे प्राप्त पदार्थ ६ विभागोंमें विभक्त किये गये हैं। महारस, रस, उपरस, साधारण रस, धातु और रत्न आदि इतर पदार्थ। उपलब्ध रस-ग्रन्थोंमें 'रस-रत्न-समुच्चय' प्रधान माना जाता है। अत: उसीकी व्याख्याके अनुसार इस लेखमें इन पदार्थोंका वर्णन किया जाता है । प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार महारस एक है, जिसके रसेन्द्र, पारद आदि नाम हैं । रस, उपरस और साधारण रस—ये प्रत्येक आठ-आठ हैं। धातु सात हैं । मिश्र धातु दो हैं—पीतल और काँसा; और, रत्न आदि पदार्थ नौ हैं।

महारस—पारद ।

आठ रस

अभ्र वैक्रान्त माक्षीक विमल अद्रिज सस्यकम् ।
चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वाऽष्टौ संग्रहेद्रसान् ॥

आठ उपरस

गन्धाश्म गैरिकासीस कांक्षी ताल शिलाञ्जनम् ।
कङ्कुष्टं चेत्युपरसाः अष्टौ पारदकर्मणि ॥

आठ साधारण रस

कम्पिल्लश्चापरो गौरीपाषाणो नवसादरः ।
कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूर हिङ्गुलौ ।
मृद्दारश्शृङ्गमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ॥

सात धातु

शुद्धं लोहं कनकरजतं भानु लोहाश्मसारम् ।
पूतो लौहम् द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम् ।

नव रत्न

माणिक्य मुक्ताफल विद्रुमाणि ।
तार्क्ष्यञ्च पुष्पं भिदुरञ्च नीलम् ।

गोमेदकञ्चाथ विडूरकञ्च ।
क्रमेण रत्नानि नवग्रहाणाम् ॥

इनके प्राप्तिस्थान, संक्षेपमें, नीचे लिखे जाते हैं—

पारद—(हिंगुलके रूपमें) मद्रास प्रान्त, अंदमान, अफगानिस्तान, ईरान ।

अभ्रक—बिहार, मध्य प्रान्त, मद्रास ।

वैक्रान्त—मध्य भारत, विन्ध्याद्रिका उत्तर भाग ।

स्वर्णमाक्षिक—मद्रास, बिहार, मध्य प्रान्त, नेपाल ।

विमल (लोहेका गन्धक-युक्त एक खनिज)—आसाम बिहार, उड़ीसा ।

अद्रिज (शिलाजतु)—हिमालय, नेपाल, आसाम, कुमायूँ ।

सस्यक (ताम्रका एक विशेष खनिज)—बिहार, उड़ीसा, बङ्गाल ।

चपल—ब्रह्मदेश ।

रसक (जस्तेका एक खनिज)—मद्रास, राजपुताना, पंजाब, ब्रह्मदेश ।

गन्धक—मद्रास, सिन्ध, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान, पंजाब ।

गैरिक (गेरू)—प्रायः सर्वत्र भारतवर्ष भरमें ।

कासीस (हीराकस)—पंजाब, बिहार ।

कांक्षी (फिटकिरी)—बिहार, कच्छ, पंजाब, नेपाल ।

ताल (हरताल)—पंजाब, कुमायूँ, मध्य प्रान्त, सीमान्त प्रदेश ।

शिला (मनशिल)—पंजाब, कुमायूँ, ब्रह्मदेश ।

अञ्जन (काला सुरमा)—पंजाब, सीमान्त प्रदेश, काश्मीर, ब्रह्मदेश, राजपुताना, मद्रास ।

कङ्कुष्ठ—हिमालय ।

कम्पिल्ल (कपीलु)—यह पदार्थ खनिज नहीं है, वानस्पतिक है ।

गौरीपाषाण (संखियाका एक खनिज)—पंजाब, कुमायूँ, ब्रह्मदेश ।

नौसादर—पंजाब ।

कपर्द (कौड़ी)समुद्रके किनारोंपर ।

वह्निजार (अम्बर)—ब्रह्मदेश ।

गिरिसिन्दूर (पारेका एक खनिज)—तिब्बत ।

हिङ्गुल (पारेका गन्धक-युक्त खनिज)—मद्रास प्रान्त, अंदमान, अफगानिस्तान, ईरान ।

मृद्दारश्रृङ्ग (मुरदासंख)—ब्रह्मदेश, पंजाब, बंगाल, बिहार, मद्रास, आबू पहाड़ ।

कनक (सुवर्ण)—मैसूर, पंजाब, धारवाड़, ब्रह्मदेश ।

रजत (चाँदी)—ब्रह्मदेश, मालाबार, मैसूर ।

भानु (ताम्र)—नेपाल, राजपुताना, मध्य प्रान्त ।

लोह (लोहा)—बिहार, बङ्गाल, मद्रास, मध्य प्रान्त ।

अश्मसार (मगड्र-खनिज लोहा)—बिहार, मद्रास, मध्य प्रान्त ।

नाग (सीस)—ब्रह्मदेश, बिहार, बङ्गाल, बिलोचिस्तान ।

वङ्ग (राँगा)—ब्रह्मदेश, बङ्गाल कर्नाटक ।

पीतल, काँसा और वर्तलोह—ये तीन मिश्र धातु हैं, जो ताँबा, जस्ता आदि धातुओंके मेलसे बनायी जाती हैं ।

माणिक्य (माणिक)—मध्य प्रान्त, मद्रास मैसूर ।

मुक्ताफल (मोती)—अरब समुद्र, ब्रह्मदेश ।

विद्रुम (प्रवाल)—ब्रह्मदेश, बङ्गालकी खाड़ी ।

तार्क्ष्य (पन्ना)—राजपुताना, बिहार, मद्रास, मध्य प्रदेश ।

पुष्प (पोखराज)—ब्रह्मदेश ।

भिदुर (वज्र-हीरा)—मैसूर, गोलकुंडा, बिहार, मध्य भारत ।

नील—हैदराबाद, पंजाब, ब्रह्मदेश, मैसूर, उड़ीसा, लङ्का ।

गोमेदक—काश्मीर, बिहार, बम्बई, मध्य प्रान्त ।

विडूरक (वैडूर्य-लहसनिया)—ब्रह्मदेश ।

सोहागा—काश्मीर, तिब्बत, मैसूर, काठियावाड़।

पाठकोंकी सुविधाके लिये खनिजोंके प्राप्तिस्थानका निर्देश केवल प्रान्तोंके नामसे ही किया गया है। खास खास जगहों या जिलोंके नामसे निर्देश किया जाता, तो उनका ठीक-ठीक पता लगानेमें अधिक कठिनाइयाँ पड़ जातीं। पाठकोंसे सानुरोध प्रार्थना है कि वे अपने वैद्य-बन्धुओं तथा वैज्ञानिक मित्रोंका ध्यान इस लेखकी ओर आकर्षित करें और उनकी सहायतासे अपने प्रान्तमें मिलनेवाले खनिजोंकी खोज करें। आगामी प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलनोंमें उनके नमूने भेजकर, उनके सम्बन्धमें बड़े-बड़े वैद्योंकी राय तथा प्रशंसा पत्र लेकर उनके बारेमें निश्चय कराके उन्हीं खनिजोंका प्रचार करनेमें सहायता करें। हमने आयुर्वेदीय ग्रन्थोंकी खोज करके ग्रन्थोक्त पाठोंके अनुसार भिन्न-भिन्न खनिजोंके लक्षण निश्चित किये हैं। अतः जिन खनिजोंके निर्णयमें सन्देह हो, उनके नमूने हमारे पास भेज सकते हैं। हम वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा उनका निर्णय यथासम्भव शीघ्र ही करनेकी चेष्टा करेंगे। अपने प्रान्तमें मिलनेवाले खनिजोंके भिन्न-भिन्न नमूने दस-पाँच तोलेकी मात्रामें भेजनेपर उत्तम, मध्यम और कनिष्ठके अनुसार श्रेणीबद्ध निर्णय भी दिया जा सकता है।

इस प्रकारके प्रयत्नसे आयुर्वेदीय खनिज बहुत ही सस्ते मूल्यपर मिलने लगेंगे और आयुर्वेदीय उत्तमोत्तम रस-औषधियाँ सस्ते दामोंपर तैयार हो सकेंगी। जब ऐसी चेष्टाएँ होने लगेंगी, तभी इन औषधियोंसे भारतवर्षका अधिकांश दरिद्र जन-समुदाय लाभ उठा सकेगा। इतना ही नहीं, उत्तम आयुर्वेदीय औषधियोंके सुलभ होनेपर संसारके सभी देशों और श्रेणियोंके मनुष्य इनसे लाभ उठा सकेंगे।

पौधोंमें बच्चोंका संरक्षण

प्रोफेसर बलवन्त सिंह, एम० एस-सी०

मनुष्यके लिये पुत्रका होना क्यों आवश्यक है? इस प्रश्नका उत्तर संन्यासी पिता इस प्रकार देता है कि, "संसारीको त्याग या विरागका भाव लानेके लिये यह पहला साधन है। पुत्रको समस्त अधिकार देनेके बाद असन्तोष नहीं रह जाता और इसलिये मनुष्यका वीतराग होना सहज हो जाता है।" परन्तु स्नेहमयी जननीके हृदयसे आवाज आती है, "नहीं, वात्सल्य नामका जो पवित्र स्नेह है, उसीके पोषणके लिये।" निस्सन्देह माताका हृदय-प्रकृतिका ही हृदय है। सृष्टिमें मातृ-जातिका हृदय इसी भावका साकार रूप कहा जा सकता है। प्रकृति माताओंके हृदयमें इसी भावको भर कर उनको सन्तान-प्राप्ति और सन्तान-संरक्षणके लिये प्रयत्नशील बनाती है तथा सृष्टिका क्रम चलाती है। मनुष्य भले ही अपने जीवनकी सारी क्रियाओंका अन्त केवल अनन्त विश्राममें समझे; क्योंकि वह सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी है; पर क्षुद्र श्रेणीके जीवोंको अपने जीवनकी बाह्य हलचलको ही अनन्त बनानेमें शान्ति मिलती है। पुत्रका होना अथवा सुखी सन्तान छोड़ जाना मनुष्यके लिये, भले ही जीवनके किसी एक महान् उद्देश्यकी पूर्तिका साधन मात्र हो; परन्तु अन्य जीवोंके लिये वही जीवनकी साध्य वस्तु है—वही उनका एक मात्र उद्देश्य है। उसीके लिये उनमें पिपासा जाग्रत हो उठती है, जिसकी तृप्तिके लिये वात्सल्य वरुण बनकर स्नेह-सुधाकी वृष्टि करता है; और, अन्तमें

पांव कभी-कभी उखड़ ही जाते हैं। अतः जनक पौधोंको लाचार होकर उसकी भी व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रसार-विरोधी पौधोंका ऐसा ही मनोरञ्जक उदाहरण हमें मूँगफली (Pea-nut) के पौधोंमें मिलता है। इन पौधोंमें, गर्भाधानके बाद, गर्भाशय जमीनके अन्दर चला जाता है और वहीं फल बनता है। पौधेका अति पौष्टिक वायवीय भाग जन्तुओंको बहुत प्रिय होता है। अतः उसे भय रहता है कि, कहीं उसके फल भी जन्तुओं द्वारा नष्ट न कर दिये जायँ। इसीलिये वह गर्भाशयोंको जमीनके अन्दर पहुँचा देता है। वायवीय भागोंके नष्ट हो जानेपर भौमिक शाखाओंके होनेके कारण फलके परिपक्व होनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती। सन्तान-संरक्षणका यह कैसा अनोखा ढंग है!

अब पाठकगण समझ सकते हैं कि, जन्तुओंको ही सन्तानकी चिन्ता नहीं होती, पौधे भी अपने आत्मजोंकी चिन्तामें व्यग्र रहते हैं। एक कोष्ठके रूपमें जैसे ही उन्हें सन्तान-दर्शन मिलता है, वैसे ही अथवा उसके पहलेसे ही, उनमें एक महान् उत्तरदायित्वके भावका उदय हो जाता है। जिस तरह मनुष्योंमें गर्भस्थित सन्तानके पोषण और शारीरिक विकासके लिये माता अनेक प्रकारके पौष्टिक पदार्थोंका सेवन करती है; और, कुछ समयके बाद जब बच्चा बाह्य परिस्थितिमें रहनेके योग्य हो जाता है, तब उसे मुक्त कर देती है, ठीक उसी प्रकार उच्च श्रेणीके पौधोंमें बच्चा गर्भाशयमें ही बढ़ता है और जनक पौधे द्वारा अपना पोषण और रक्षण कराता रहता है। जब वह बाह्य परिस्थितिमें रहनेके योग्य हो जाता है, तब पौधेसे अलग हो जाता है। मनुष्योंमें जन्मके बाद बच्चा माता-पिताकी ही देख-भालमें रहता है; परन्तु पौधोंके बच्चे जनकसे अलग होनेपर निराधार हो जाते हैं, इसलिये जनक पौधे उस समय तक उन्हें नहीं छोड़ते, जब तक उनको कुछ खाद्य पदार्थोंकी पैत्रिक पूँजी नहीं दे देते या भाइयोंके झगड़ोंसे उन्हें बचानेके लिये उनके दूर देशीय प्रसारका प्रबन्ध नहीं कर देते अथवा अनुकूल अवस्थाओंके न मिलने तक उनको सुप्तावस्थामें जीवन व्यतीत करनेकी योग्यता नहीं करा देते।

इन्हीं साधनोंको लेकर बच्चा संसार-क्षेत्रमें अवतीर्ण होता है। इन साधनोंका उपयोग कर और अन्तमें अङ्कुरित होकर वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करता है; और, फिर उसे अपने बलपर जीवन-संग्रामके लिये अग्रसर होना पड़ता है। परिस्थिति ही उसके लिये संग्राम-भूमि होती है और भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ उसके लिये शत्रु अथवा मित्रका काम करती हैं। पैत्रिक संस्कार ही (Hereditary qualities) उसके अस्त्र होते हैं, जिन्हें क्रमशः धारण करता हुआ वह शत्रुओंका सामना करता रहता है। अन्तमें उसे अपनी सन्तानको उसी युद्धमें प्रवृत्त देखकर अथवा उसे उसके योग्य बना कर संसारसे विदा होना पड़ता है। इस प्रकार यद्यपि अन्तमें शत्रु उसे पराजित कर लेता है, तथापि उस पराजयमें भी उसे विजयका आनन्द मिलता है; क्योंकि उसका एक अंश अपराजित ही रह जाता है। पराजयका दुःख तो उन्हें [illegible] है, जो निस्सन्तान मरते हैं और जिनका नाम-निशान [illegible] नहीं रह जाता!

भूकम्प

प्रोफेसर फूलदेव सहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

तरंग—पानीके कुंडमें एक छोटा कंकड़ [illegible] देनेसे पानीमें वृत्ताकार तरङ्गें उत्पन्न होती हैं, यह प्रायः सभी जानते हैं। इस प्रकार जलमें जो तरङ्गें उत्पन्न होती है, उनसे जलके कण सीधी रेखामें स्थित नहीं रहते। जल-कणोंकी श्रेणी मुड़ी हुई दिखलाई देती है; क्योंकि इनके कण तरङ्गके गमनकी दिशामें नहीं हटते, बल्कि लम्ब-दिशामें कम्पन करते हैं। ऐसी तरङ्गोंको अनुप्रस्थ तरङ्ग (Transverse) कहते है। ऐसी तरङ्गें ठोस या [illegible] पदार्थोंके पृष्ठतलपर ही चल सकती हैं।

किसी स्टेशनपर खड़ी रेलगाड़ीका इञ्जन यदि एक फूट हट जाय, तो पहले इञ्जनके पासका डब्बा हटेगा, तब दूसरे डब्बेको धक्का देगा और फिर तीसरेको। इस प्रकार यह धक्का उत्तरोत्तर अन्यान्य डब्बोंको लगेगा। यहाँ डब्बे उसी दिशामें इधर-उधर हटते हैं, जिसमें तरङ्ग चल रही हैं। इससे डब्बोंके बीचका अन्तर घट या बढ़ जाता है; किन्तु उसकी श्रेणी टेढ़ी नहीं होतो। ऐसी तरङ्गोंको अनुदैर्घ्य तरङ्ग (Longitudinal Waves) कहते हैं। भूकम्पमें पहले प्रकारकी ही तरङ्गें उत्पन्न होती हैं।

भूकम्प क्या है?—भूकम्प कभी-कभी होता है। साधारणतया भूकम्पके होनेके पूर्व कोई सूचना नहीं प्राप्त होती। यह अकस्मात् हो जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भूकम्प पृथ्वी-स्तरके आकस्मिक स्थानान्तरसे होता है। इस स्थानान्तरसे पृथ्वी-तलपर ऊपर और नीचेकी तथा दाहिनी और बाँयीं गति उत्पन्न होती है और उसके साथ-साथ पृथ्वीमें मरोड़ भी होते हैं। भूकम्पसे पृथ्वीमें जो गति उत्पन्न होती है, वह बहुत पेचीली होती है। इस गतिसे पृथ्वीके पृष्ठभागपर पानीके तलके सदृश तरङ्गें उत्पन्न होती हैं। इन तरङ्गोंको किसी समतल भूमिमें खड़े रहनेसे मनुष्य सरलतासे देख सकता है। १८९७ ई०में जो भयङ्कर भूकम्प आसाममें हुआ था, उसकी लहरें धानके खेतोंमें स्पष्टतया देखी गयी थीं। ऐसी तरङ्गोंके चढ़ाव-उतार प्रायः एक फूट तक होते हैं। तीव्र कम्पनसे धरती फट जाती है, दरार बन जाती हैं; और, उनसे बालू, मिट्टी, जल और गन्धकवाली गैसें कभी-कभी बड़े तीव्र वेगसे निकल आती हैं। इन पदार्थोंका निकलना उस स्थानके नीचेकी मिट्टीकी प्रकृतिपर निर्भर करता है। जिस स्थानपर ऐसा उपद्रव होता है, वहाँ पृथ्वी-तलपर मरोड़ अधिक प्रबल होते हैं। ऐसा देखा गया है कि, भूकम्पमें कभी-कभी धरतीमें इतने अधिक मरोड़ हो जाते हैं कि, जो वृक्ष पहले पूर्व-पश्चिम दिशामें, एक दूसरेके सम्मुख स्थित थे, वे उत्तर-दक्षिण दिशामें घूम गये हैं।

बड़े-बड़े भूकम्पोंके साथ-साथ भूगर्भसे ध्वनि भी उपस्थित होती है। यह ध्वनि तोपोंके छूटनेकी-सी, चलती हुई रेलगाड़ीकी-सी, तीव्र पवन-वेगकी-सी या जल-प्रपातकी-सी होती है। भूकम्पकी विकट ध्वनि मटीली जगहोंकी अपेक्षा

है। हाँ, कभी-कभी बीज-प्रसार फलकी स्फोटन-विधिपर भी निर्भर करता है।

यदि हम भिन्न-भिन्न प्रकारके फलों और बीजोंके रंग, आकार, रचना तथा बहिरुद्भेद (Out-growth) आदिपर विचार करते समय, फल तथा बीज-प्रसारकी आवश्यकताको ध्यानमें रखें, तो विदित होगा कि, उनकी उपस्थिति आकस्मिक अथवा अनावश्यक नहीं है; बल्कि नैमित्तिक है अर्थात् उनको वे विशेषताएँ बीज-प्रसारके लिये ही होती हैं। यहाँ हमें इस बातका स्मरण रखना होगा कि, थोड़ेसे पौधोंको छोड़कर सभी पौधे अपना बीज तथा फल-प्रसार करानेके लिये बाह्य साधनों (External Agencies) की सहायता लेते हैं। जो उनकी सहायता नहीं लेते, उन्हें यह कार्य स्वयं करना पड़ता है।

बहुतसे पौधोंमें, सूख जानेपर, फल इस जोरसे फटता है कि, उसके बीज दूर जा गिरते हैं। एरण्ड-में एकबीजी फलके टुकड़े, सूखनेपर, चटख-चटख कर फटते हैं और बीज दूर-दूर तक छिटक जाते हैं। इसमें तथा दोपाती आदि शिम्बीवर्ग (Leguminosae) के कुछ फलोंमें स्फोटन अजीवित तन्तुओंमें सङ्कोचन होनेके कारण होता है; परन्तु अन्य बहुत-से फलोंमें यही परिणाम, जीवित तन्तुओंके आर्द्रता-जन्य दबावके कारण, देखनेमें आता है। टच-मी-नाट (Touch-me-not) के फलमें, परिपक्वण कालमें दीवार अन्दरके व्यवधानसे अलग हो जाती है और दीवारके भाग केवल जोड़ोंपर लगे भर रहते हैं। हलके स्पर्श मात्रसे ये अलग हो जाते हैं। वे भाग, उस समय इतनी तेजीसे स्प्रिंगकी तरह मरोड़ खाते हैं कि, बीज दूर-दूर तक छिटक जाते हैं। इन उदाहरणोंमें फलका स्फोटन या बीजका प्रसार दीवारकी आर्द्रता-जन्य गतियोंपर निर्भर करता है; परन्तु अन्य बहुतसे फलोंमें स्फोटनके बाद बीज-प्रसार करानेमें और-और भाग भी सहायक हो सकते हैं। जिरेनियम (Geranium) में योनिसूत्र द्वारा बना हुआ फलका शूक पहले पाँच भागोंमें बँट जाता है। प्रत्येक खण्डके आधारपर फलके एकबीजी अंश लगे रहते हैं। शूक-खण्ड, सूखनेपर, मरोड़ खाता है और भीगनेपर फिर सीधा हो जाता है। बार-बार इस प्रकारसे गति पाकर फलके एकबीजी टुकड़े जमीनपर रंगते-रंगते दूर तक निकल जाते हैं। कहीं संयोगवश यदि वे जमीनकी दरारमें प्रवेश कर जाते हैं, तो वहीं सुरक्षित अवस्थामें रह जाते हैं और अनुकूल समय पाकर बीजोद्भेद करते हैं।

जिन बाह्य साधनोंकी सहायतासे पौधे अपने बीज तथा फलका प्रसारण करते हैं, उनमें वायु, जल तथा जन्तु प्रधान हैं। वायु द्वारा प्रसार पानेवाले फल तथा बीज ऐसी रचनाओंसे सम्पन्न होते हैं कि, वे वायुमें उड़ सकते हैं। इनमें कुछ तो अपने छोटे कदके कारण हलके होते हैं और वायु-प्रवाहमें अपना स्थान बदल लेते हैं। अन्य बहुतसे पौधोंके फल और बीज रोम-गुच्छ अथवा पक्षवत्-रचनाओंसे युक्त होनेके कारण उड़कर एक स्थानसे दूसरे स्थान तक जा सकते हैं। मुचकुन्द, तून, सहजन आदिमें ऐसे ही पक्षयुक्त बीज होते हैं। चिलबिल, वाराहीकन्द तथा माधवीलतामें फल ही पखसे युक्त होता है। ऐसी रचनाके कारण बीज और फल बहुत देर तक वायुमें नहीं ठहर सकते; इसलिये ऐसे फल और बीज ऊँचे-ऊँचे वृक्षों तथा उनके ऊपर फैलनेवाली लताओंमें ही लगते हैं। अधिक ऊँचाईपर हवाके तेज होनेके कारण, नीचे आते-आते वे कुछ-न-कुछ दूर अवश्य ही उड़कर चले जाते हैं। वायु-प्रसारके लिये रोम अथवा रोम-गुच्छ अधिक उपयोगी होते हैं। सेमर और कपासके बीज रूईसे तथा कनेर, कुटज और मदारके बीज एक सिरेपर रोम-गुच्छसे युक्त होते हैं। फलसे मुक्त होनेके बाद ये वायुमें उड़ते रहते हैं। बहुतसे पौधोंमें फल-स्फोटन

इस तरहका होता है कि, बीज फलसे स्फोटनके बाद भी, तभी निकलते हैं, जब वे पौधे वायुके झकोरोंमें खूब हिलने लगते हैं।

जल द्वारा पौधे अपने बीज तथा फलका प्रसार बहुत कम करते हैं। बहुतसे जलमें होनेवाले पौधोंका प्रसार भी प्रायः अन्य साधनों द्वारा ही होता है। जल द्वारा वितरित होनेवाले फलों और बीजोंका हलका होना आवश्यक है, जिससे वे पानीपर तैर सकें। इसके लिये उनकी आन्तरिक रचनामें प्रायः विरल-तन्तुओं (Spongy Tissues)का अंश अधिक होता है और उनमें हवा भरी रहती है। कमलके फल और बीज इसी प्रकारके होते हैं। इसके अतिरिक्त उनके आवरणका जलाभेद्य (Impermeable to Water) होना आवश्यक है, जिससे जलमें रहनेपर भी उनके अन्दर जल प्रवेश न कर सके और उनकी उद्भेद-शक्ति नष्ट न होने पावे। इन आवरणोंमें वायु-पूरित विरल-तन्तु भी होते हैं। ऐसे फल प्रायः समुद्र-तटपर होनेवाले पौधोंके होते हैं, जिनका प्रसार समुद्र-धाराओं द्वारा होता है। नारियल सुपारी, बादाम आदिमें ऐसे ही फल होते हैं।

अन्तमें, हमें पाठकोंका ध्यान उन पौधोंकी ओर आकर्षित करना है, जिनमें जनक पौधे, अपने फलों और बीजोंका प्रसार करानेके लिये, अनेक प्रकारके प्रलोभनों द्वारा जन्तुओंको आकर्षित करके उनकी सहायता प्राप्त करते हैं। स्वादिष्ट तथा पौष्टिक मांसल फलोंमें बीजके अतिरिक्त जो भाग होता है, उससे पौधे कोई लाभ नहीं उठाते। वह जन्तुओंके खानेके काममें आता है; परन्तु पौधोंको जन्तुओंके लिये प्रलोभन-स्वरूप इन भागोंकी सृष्टि करनी ही पड़ती है। फलोंमें सुगन्ध, सुन्दर रंग आदि भी तो प्रायः जन्तुओंके आकर्षणके ही निमित्त होते हैं। फलोंके साथ जन्तु कभी-कभी बीजोंको खा भी लेते हैं। खाये हुए बीज प्रायः विष्ठाके साथ बाहर चले आते हैं; और, उनकी उद्भेद-शक्तिका इस तरह ह्रास नहीं होने पाता, बल्कि कहीं-कहीं उसमें (वट और पीपल) वृद्धि ही हो जाती है। ऐसे बीजोंका आवरण प्रायः ऐसा होता है कि, उसे जन्तु पचा नहीं सकते। बहुतसे फलोंका प्रसार केवल उनके आकर्षक रंगके कारण ही होता है, जिसे देख कर पशु-पक्षीसे लेकर मनुष्य तक मुग्ध हो जाते और उन्हें ले ही लेते हैं। वे खाने योग्य तो होते ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं हानिकारक भी होते हैं; इसलिये वे अन्तमें त्याज्य होते हैं; परन्तु उस समय, जब उनके प्रसारका उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। ऐसे फलका उदाहरण इन्द्रायणका फल है।

बहुतसे पौधे जन्तुओंसे यही काम दूसरी तरह लेते हैं। इनके बीज और फल इस प्रकारके होते हैं कि, जन्तुओंके स्पर्श करनेपर वे उनके बदनमें चिपक जाते हैं। इसके लिये उनके फल अथवा बीज अङ्कुशवाले काँटोंसे सम्पन्न रहते हैं। बिछुएका फल ऐसे ही काँटोंसे युक्त होता है। धान्यवर्ग (Gramineae) के बहुतसे पौधोंमें फल-शूक तीक्ष्णाग्र होनेके कारण कपड़ेको शीघ्र पकड़ लेता है। पुनर्नवाके छोटे-छोटे फल लसदार होनेके कारण छूनेसे हाथमें लग जाते हैं। कितने ही फलों और बीजोंके आवरण ही इतने खुरदरे होते हैं कि, कपड़ेमें लग जाया करते हैं।

कुछ पौधे ऐसे होते हैं, जिनको सन्तान-सरक्षणके निमित्त बीज-प्रसार रोकना भी पड़ता है। मान्ग्रोवका मनोरञ्जक उदाहरण पहले ही दे दिया गया है। उसके तीरके समान गिरे हुए शिशु-वनस्पति दलदलमें इस तरह धँस जाते हैं और जड़ों द्वारा अपनेको इतना दृढ़ बना लेते हैं कि, आसानीसे वे अपना स्थान नहीं छोड़ते। परिस्थितिकी विचित्रताके कारण ही उन्हें यह प्रसार-विरोधी व्यापार करना पड़ता है; परन्तु इसनेपर भी उनके

for Germination) अवस्थाएं न हों, तो वे अपना उद्भेद ही नहीं कर सकतीं। दूर-दूर तक फैली हुई सन्तानोंके लिये कमसे कम इतना भरोसा रहता है कि, उनमें कुछ-न-कुछ अवश्य अनुकूल परिस्थितिमें पड़ेंगी और जाति नष्ट होनेसे बचेगी। अतः इन बातोंसे यह अच्छी तरह समझमें आ जाता है कि, लैङ्गिक और अलैङ्गिक रीतियोंसे सन्तानोत्पत्ति करनेवाले जनक पौधोंको अपने बच्चोंका संरक्षण तीन तरहसे करना पड़ता है। उन्हें उनके अन्दर कुछ खाद्य-द्रव्य रख छोड़ना पड़ता है, उनको सुषुप्ति धारण करनेकी क्षमता प्रदान करनी पड़ती है और उनके प्रसारका भी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना पड़ता है। अब यह देखना है कि, ये तीनों काम वे किस प्रकार पूरा करते हैं ?

क्षुद्र श्रेणीके पौधोंमें 'स्पोर' नामक सन्तानोत्पादक भागोंमें प्रतिकूल परिस्थितिमें सुप्तावस्था धारण करनेकी क्षमता होती है; और, न्यूनाधिक खाद्य पदार्थ भी उनके अन्दर सञ्चित रहता है। सूक्ष्म होनेके कारण, अधिक संख्यामें उत्पन्न होकर, वायु आदि बाह्य साधनों द्वारा भी वे अपना प्रसार करनेकी क्षमता रखते हैं। उच्च श्रेणीके पौधोंमेंसे स्पोर जनित वानस्पतिक शरीर क्रमशः इतना छोटा हो जाता है कि, स्पोरसे भिन्न उसे कोई आकार-विशेष नहीं ग्रहण करना पड़ता। इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि, विकासकी अन्तिम सीढ़ीपर पहुँचे हुए पौधोंमें स्पोरको अपने कार्यों तथा लक्षणोंमें बहुतसे परिवर्तन कर देने पड़ते हैं। क्षुद्र श्रेणीके स्थल-वनस्पतियोंमें भी यह स्पोर सन्तानोत्पादक ही रहता है और उसमें शुष्कताके प्रति सहनशीलता, सुषुप्ति तथा प्रसारकी क्षमता मौजूद रहती है। पर उच्च श्रेणीके स्थल-वनस्पतियोंमें स्पोर इन गुणोंसे वञ्चित हो जाता है और वह सन्तानोत्पत्ति-कार्यके अयोग्य हो जाता है। अतः इन पौधोंमें स्पोरका स्थान एक नयी रचनाको लेना पड़ता है, जिसे बीज (Seed) कहते हैं। प्रसार करने तथा सुषुप्ति धारण करनेकी क्षमता अब बीजमें स्थानान्तरित हो जाती है। बीजवाले पौधोंमें सन्तान-संरक्षण निम्न रीतिसे होता है—

लैङ्गिक रीतिसे सन्तानोत्पत्ति करनेवाले पौधोंमें नवजात सन्तान पहले एक कोष्ठके रूपमें प्रकट होती है; और, अपनी वृद्धि करके, कुछ समयके बाद गर्भ (Embryo)का रूप धारण कर लेती है। फिर इसकी वृद्धि बन्द हो जाती है। गर्भसे जलका बहुत कुछ अंश निकल जाता है तथा डिम्बावरणोंमें भी कुछ ऐसा ही परिवर्तन हो जाता है, जिससे वे कठोर और दृढ़ होकर गर्भकी रक्षा करने लगते हैं। इन्हीं आवरणोंके कारण नवजात सन्तान, बीजके रूपमें कहीं-कहीं सैकड़ों वर्षों तक सुप्तावस्थामें पड़ी रहती है; और, जनक पौधेसे अलग रहकर भी अपना अस्तित्व कायम रखती है। बीजके परिपक्व होनेके समय तक जनक पौधा उसके अन्दर चर्बी, कार्बो-हाइड्रेट, प्रोटीन आदि कुछ खाद्य पदार्थ सञ्चित कर देता है। जब तक यह काम नहीं होता, तब तक सन्तान जनक पौधेसे अपना सम्बन्ध कायम रखती है। बीज जब परिपक्व हो जाता है, तब जनक पौधेको उसे ऐसी परिस्थितिमें पहुँचा देना पड़ता है कि, वह अङ्कुरित होकर अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित कर सके। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये पौधोंको फल (Fruit)की रचना करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त बीजको भी कहीं-कहीं उन्हें ऐसी रचनाओं तथा विशेषताओंसे सम्पन्न करना पड़ता है, जो प्रसार-कार्यमें सहायक होती हैं। पौधे अपने महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वको जानते हैं; इसीलिये गर्भाधानके समयसे ही बीजों तथा फलोंमें वे प्रसार-सहायक रचनाएँ प्रारम्भ कर देते हैं।

अब हमें इस बातपर ध्यान देना है कि, सन्तानोंका

प्रसार स्वयं बीज द्वारा अथवा फल आदि अन्य भागों द्वारा किस प्रकार होता है ? यहाँ हमें इस बातका स्मरण रखना होगा कि, यद्यपि जनक पौधोंका अभीष्ट सन्तानका प्रसार होता है, तथापि प्रसारित भाग फल, पुष्पगुच्छ, सम्पूर्ण पौधा अथवा अङ्कुरित बीज भी हो सकता है । विच घास (Witch grass) तथा रूसी थिसिल (Russian Thistle) आदिके सम्पूर्ण पौधे ही तेज हवामें मीलों तक लुढ़कते-लुढ़कते चले जाते हैं और अपने बीजोंको बिखेरते जाते हैं। समुद्र-तटकी घासमें बालोंका समूह गोलाकार होता है और हवामें दूर तक उड़ कर चला जाता है । इस सम्बन्धमें मानग्रोव जातिके पौधोंकी प्रसार-विधि बहुत ही रोचक है; क्योंकि इनमें प्रसार शिशु-वनस्पति (Seedling) अथवा अङ्कुरित बीज द्वारा होता है। अन्यान्य पौधोंमें बीजोद्भेदके पहले ही प्रसार हो जाता है; परन्तु यहाँ बीजोद्भेद पहले होता है । जब बीज जनक पौधेसे लगा रहता है, तभी उसकी प्रारम्भिक जड़ (Radicle) बढ़कर फलको छेदती हुई बाहर आ जाती है। वह भालेका आकार धारण कर लेती है । कुछ महीनोंके बाद यह शिशु-वनस्पति जनक पौधेसे अलग होकर नीचे, मुलायम दलदलकी जमीनमें, गिर जाता है। वह तीरकी तरह ऊपरसे आकर जमीनमें धँस जाता है, और सीधा खड़ा रहता है। शीघ्र ही उसके पार्श्व-भागसे जड़ें निकल कर उसे जमीनमें सुदृढ़ कर देती हैं। शिशु-वनस्पतियोंका यह विचित्र व्यवहार इन वृक्षोंकी विशेष परिस्थितिके अनुकूल ही होता है। ये वृक्ष समुद्रके किनारे दलदलोंमें होते हैं, जहांकी भूमि, समय-समयपर ज्वार-भाटोंसे आक्रान्त होनेके कारण, अस्थिर होती है; और, इन पौधोंको जल-प्रवाहके घात-प्रतिघातोंका निरन्तर सामना करना पड़ता है। इसलिये यदि इन शिशु-वनस्पतियोंका जमीनसे दृढ़ सम्बन्ध न हो, तो वे आसानीसे बह जायँ । जनक पौधा इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं होता । उसे इस बातका भी भय रहता है कि, यदि अस्थिर जमीनसे किसी प्रकार शिशु-वनस्पतिका सम्बन्ध छूट जायगा, तो उसका विनाश हो जायगा। इसके अति-रिक्त कभी-कभी, जब अङ्कुरित बीज ऊपरसे गिरते हैं, तब पानीकी गहराईके कारण, वे जमीन तक पहुँच ही नहीं पाते । इन दोनों अवस्थाओंका सामना करनेके लिये भी जनक पौधा अपने बच्चेको तैयार रखता है—वह उसे इस योग्य बना देता है कि, वह महीनों पानीके ऊपर तैरता रहे और जब जमीन पाये, तभी अपनेको स्थापित कर ले। इस जातिके वितरण (Distribution)पर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि, इसका प्रसार इन्हीं शिशु-वनस्पतियों द्वारा हुआ होगा। पूर्वीय मान-ग्रोव उप-जातियोंकी अधिकता और समानता, पाश्चात्य उपजातियोंकी कमी तथा अमेरिकाके पूर्वी किनारों और अफ्रीकाके पश्चिमी किनारोंपर उनकी समानता उपर्युक्त बातका ही समर्थन करती है । मानग्रोव जातिके वृक्ष इस तरह अपने आत्मजोंके प्रति जिस दूरदर्शिताका परिचय देते हैं और जिस सावधानीके साथ विशेष प्रकार-की परिस्थितियोंमें उन्हें स्थायी बनानेका उद्योग करते हैं, उसे देखकर कौतूहल हुए बिना नहीं रहता।

अब उन पौधोंपर विचार करना है, जिनमें प्रसा-रित भाग स्वयं फल या बीज ही होता है । फलोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि, अपरिपक्व अवस्थामें वे बीजोंका रक्षण तथा पोषण करते हैं; और, परिपक्व होनेपर उनका एकमात्र कार्य बीज-प्रसार कराना होता है । जहाँ फल-प्रसारसे ही बीज प्रसार होता है, वहाँ फल अनेक प्रकारके प्रसार-सहायक लक्षणों तथा रचनाओंसे युक्त होते हैं । ऐसे फल प्रायः अनस्फोटी होते हैं; और, जहाँ फल-प्रसार नहीं होता, वहाँ फल जनक पौधेसे अलग नहीं होता। पर वह बीजोंको, अपना स्फोटन करके, प्रसारके लिये मुक्त कर देता है। ऐसी दशामें स्वयं बीज ही भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रसार-सहायक रचनाओंसे सम्पन्न होता

वे अपनी सन्तानको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करके सन्तोषके साथ संसारसे विदा होते हैं ।

इस तरह सन्तान-लालसा, सन्तानोत्पत्ति और सन्तान-संरक्षणकी प्रवृत्तियोंका प्रत्येक जीव अधिकारी बन जाता है । इन्हींके द्वारा वह अपने जीवनको अनन्त बनानेकी चेष्टा पूर्ण करना चाहता है; परन्तु संसारकी विषम परिस्थितिमें पड़े हुए प्रत्येक जीवके लिये यह दुराशा मात्र है । प्रत्येक जीवकी कौन कहे, कभी-कभी तो परिस्थितिके चक्रमें पड़कर जातिकी जाति नष्ट होनेको आ जाती है । वैसी दशामें उस जातिके व्यक्तियोंका आत्म-प्रेम स्वजाति-प्रेममें और आत्मज रक्षाके भाव जाति-रक्षाके उच्चतर भावोंमें बदल जाते हैं । जीवोंको अपनी जातिके लिये वैयक्तिक स्वार्थोंका बलिदान करना पड़ता है । यद्यपि इस उत्कृष्ट भावका चरम विकास मनुष्य-जातिमें ही पाया जाता है; परन्तु उसका उदय क्षुद्र जन्तुओं तथा वनस्पतियोंमें भी देखनेमें आता है । बहुतसी ऐसी चींटियाँ होती हैं, जो जनन-शक्तिसे वञ्चित रहती हैं, और उनका जीवन जाति-सेवामें ही बीतता है । वे अपनी रानियोंके लिये, (Queen-ants) जिनपर केवल सन्तानोत्पत्तिका भार होता है, खाद्य पदार्थ लाया करती हैं; और, यही करते-करते, निस्सन्तान रहकर ही, वे अपने जीवनका अन्त कर देती हैं । उनकी रानी आत्मरक्षाकी चिन्ताओंसे मुक्त होनेके कारण अपनी सन्तानोत्पादन-शक्ति द्वारा जातिको जीवित रखती है । जाति-प्रेमका कैसा अनोखा उदाहरण है ! वनस्पतियोंमें भी इस श्रेणीका स्वार्थ-त्याग देखा जाता है । कुछ पुष्पोंमें भी यह बात देखनेमें आती है । पुष्प यद्यपि पौधेका एक अङ्ग मात्र है, तथापि सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे वह अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है । प्रत्येक पुष्प जननेन्द्रियोंसे युक्त होनेके कारण स्वयं अथवा दूसरे पुष्पोंके सहयोगसे सन्तान उत्पन्न कर लेता है; परन्तु कुछ पौधोंमें, इन पुष्पोंके अन्दर भी, जाति-रक्षाके लिये वैसा ही सङ्गठन पाया जाता है, जैसा चींटियोंमें । गेंदे तथा इस वर्गके कुछ पौधोंमें पुष्प-गुच्छके किनारेके पुष्प प्रायः जननेन्द्रियोंसे वञ्चित होते हैं; परन्तु उनके दलचक्र (Corolla) अधिक आकर्षक होते हैं, जिनसे वे अन्य पुष्पोंको गर्भाधान करानेमें सहायता पहुँचाते हैं । इन उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, जीवधारियोंको आत्म-रक्षा तथा सन्तान-रक्षा तभीतक अभीष्ट है, जबतक जाति सुरक्षित है । ऐसी अवस्थामें उनकी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता भी जातिके विकासका कारण बन जाती है; परन्तु जब कोई प्रबल शत्रु उनका जाति-शत्रु बनकर जातिका अस्तित्व मिटाना चाहता है, तब पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता जातिके नाशका हेतु बन जाती है । उस समय उनको, वैयक्तिक कल्याण-कामनाको पीछे छोड़कर, जाति-रक्षाके लिये सहकारिता और सङ्गठनका आश्रय लेना पड़ता है । पौधोंके संरक्षणपर विचार करते समय हमें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि, पौधों द्वारा इस आदर्शका कहाँ तक पालन होता है ? पौधे प्रायः गति-शक्तिसे वञ्चित होते हैं; इसलिये उनका सम्मेलन नहीं हो पाता । हाँ, पौधे अपना सेचन (Pollination) करानेके लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके बीच सहयोगिता तथा एक ही पौधेके सन्तानोत्पादक भागों और सन्तानोंके बीच सङ्गठनका अच्छा परिचय देते हैं, जिसका उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है ।

पौधोंमें सन्तान-संरक्षणपर विचार करनेके पूर्व उनकी भिन्न-भिन्न सन्तानोत्पादन-विधियोंपर दृष्टिपात करना भी आवश्यक प्रतीत होता है; क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकारसे उत्पन्न होनेवाली सन्तानोंका संरक्षण भी भिन्न-भिन्न तरहसे होता है । कुछ पौधोंमें सन्तानोत्पत्ति वानस्पतिक रीति (Vegetative Method) से होती है । उनमें कोई-न-कोई वानस्पतिक भाग अलग हो जाता है; और बढ़कर जनक पौधेके समान एक नया पौधा तैयार कर देता है । यह सन्तानोत्पादक भाग एक विशिष्ट कलिका अथवा एक या एकसे अधिक साधारण कलिकाओंसे

युक्त होता है। केला, बाँस, हल्दी, सूरण, आलू आदि पौधोंमें इसी तरह सन्तानोत्पत्ति होती है। पौधोंकी सन्तानोत्पत्ति अलैङ्गिक (Asexual) विधिसे भी होती है। इसमें और पहली विधिमें अन्तर केवल इतना ही है कि, दूसरीमें सन्तानोत्पादक भाग एक कोष्ठका होता है, जिसे स्पोर (Spore) कहते हैं। इस विधिसे केवल क्षुद्र श्रेणीके पौधे सन्तानोत्पत्ति करते हैं। लैङ्गिक विधि (Sexual Method) सन्तानोत्पत्तिकी तीसरी विधि है। इसमें दो (नर और नारी) कोष्ठोंका मिलना आवश्यक होता है। उनके मिलनेसे जो एक नया कोष्ठ बनता है, वही नवजात सन्तानका सर्वप्रथम रूप है।

जो पौधे प्रति वर्ष पुष्पोंके आनेके पहले ही, प्रतिकूल अवस्थाओंमें पड़ जानेके कारण सूख जाते हैं, वे अपनी सन्तानोत्पत्ति वानस्पतिक रीतिसे करते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियोंके उपस्थित हो जानेपर उनका वायवीय भाग सूख जाता है; परन्तु भौमिक भाग सुप्तावस्थामें जमीनके नीचे पड़ा रहता है। दूसरे वर्ष, अनुकूल अवस्था पाकर, वे भौमिक भाग पुनः अपनी वृद्धि प्रारम्भ कर देते हैं। उनकी कलिकाओंसे शाखाएँ बनकर ऊपर आ जाती हैं और पूर्ववत् स्वतन्त्र पौधे तैयार हो जाते हैं। यहाँ हमें उन्हीं भौमिक भागोंको पौधेकी सन्तान मानना पड़ेगा। अब हमें यह देखना है कि, इन सन्तानोंका संरक्षण पौधे किस प्रकार करते हैं? इन भौमिक भागोंको बहुत समय तक जमीनके अन्दर रहना पड़ता है; इसलिये उनको सुप्तावस्थामें जीवन-यापन करनेकी क्षमता प्रदान करना जनक पौधेका कर्त्तव्य होता है। इसके अतिरिक्त, दूसरे वर्ष तकके लिये, जब तक कि, उनके विकासका समय नहीं आता, उनको कुछ खाद्य पदार्थोंकी आवश्यकता पड़ती है। अतः उनके अन्दर भोज्य पदार्थ भी न्यूनाधिक मात्रामें जनक पौधे द्वारा सञ्चित कर दिया जाता है। इसीसे नवजात पौधे अपना काम उस समय तक चलाते हैं, जब तक उनमें साधारण हरी पत्तियाँ स्वयं खाद्य द्रव्य बनानेके योग्य तैयार नहीं हो जातीं। अतः वानस्पतिक रीतिसे उत्पन्न होनेवाली सन्तानोंके प्रति जनक पौधेका यह कर्तव्य होता है कि, वह उनकी सुषुप्ति (Dormancy) के कारण उपस्थित करनेके साथ ही साथ उन्हें कुछ खाद्य पदार्थोंसे भी सम्पन्न कर दे, जिससे वे अनुकूल समयपर अपनी वृद्धि करके अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित कर सकें।

लैङ्गिक तथा अलैङ्गिक विधियोंसे सन्तानोत्पत्ति करनेवाले पौधोंको भी अपनी सन्तानके प्रति ये काम करने पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त उन्हें अपनी सन्तानोंके दूरदेशीय प्रसार (Dispersal)का भी आयोजन पहलेसे ही कर देना पड़ता है। वानस्पतिक विधिसे उत्पन्न होनेवाली सन्तानोंके प्रसारकी आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वे पहलेसे ही जमीनके अन्दर रहती हैं; और, अल्पसंख्यक होनेके कारण उनको कोई कमी नहीं होती। पर वे भौमिक भाग प्रायः खाद्योपयोगी होते हैं; इसलिये जन्तुओं द्वारा उनका भी प्रसार हो जाता है, यद्यपि जनक पौधेकी ओरसे इसके लिये कोई प्रयत्न नहीं होता। लैङ्गिक और अलैङ्गिक रीतियोंसे उत्पन्न होनेवाली सन्तानोंके प्रसारका महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व जनक पौधेपर ही होता है। ये पौधे अत्युत्पादन (Over-production) द्वारा इतनी अधिक संख्यामें सन्तान उत्पन्न करते हैं कि, यदि उनका भली भाँति प्रसार न हो, तो वे सबकी सब एक ही स्थानमें रहकर अपनी समुचित शारीरिक वृद्धि भी नहीं कर सकतीं। अतः उनकी समुचित वृद्धि और पूर्ण विकासके लिये, उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें वितरित कर देनेकी आवश्यकता अनिवार्यसी होती है; क्योंकि उनके लिये यह भी भय रहता है कि, यदि जनक पौधेके समीप उद्भवानुकूल (Conditions

पथरीली जगहोंमें अधिक शीघ्रतासे सुनी जाती है। भूकम्पसे आभ्यन्तर भागकी अपेक्षा पृथ्वीके तलपर कम्पन अधिक तीव्र होता है। आसामके १८६७के भूकम्पकी ध्वनि रानीगंजकी कोयलेकी खानोंमें सुनी गयी थी; पर उस भूकम्पका अनुभव वहाँ नहीं हुआ था।

अबतक जितने भूकम्प इस भूमण्डलपर हुए हैं, उन सबका उल्लेख यदि हमें प्राप्त होता, तो उससे स्पष्ट हो जाता कि, पृथ्वी-तलपर कोई ऐसा स्थान न होगा, जहाँ कभी-न-कभी प्रलयकारी भूकम्प न हुआ हो। जो स्थान आज भूकम्प-शून्य समझे जाते हैं, वे पहले भूकम्पके क्रीड़ाक्षेत्र रह चुके हों, तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। वस्तुतः जो स्थान एक समय भूकम्प-ग्रसित समझे जाते थे, वे आज भूकम्प-शून्य हो गये हैं। साधारणतया किसी एक कालमें कुछ स्थान भूकम्प-ग्रसित होते और कुछ भूकम्प-शून्य। इधर भूकम्पके सम्बन्धमें जो वैज्ञानिक अध्ययन हुआ है, उससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि, इस युगमें जितने भूकम्प हुए हैं, वे प्रधानतया दो ही प्रदेशोंमें हुए हैं। इनमें एक भूकम्प-प्रदेश न्यूजीलैण्डके निकट, दक्षिण प्रशान्त महासागरसे आरम्भ होकर, उत्तर-पश्चिमकी ओर बढ़ता हुआ चीनके पूर्व भागमें आता है। यहाँसे यह उत्तर-पूर्वकी ओर मुड़कर जापान होता हुआ बेरिंग मुहानेको पार करता है; और, फिर दक्षिण अमेरिकाके दक्षिण-पश्चिमकी ओर होता हुआ अमेरिकाकी पश्चिमीय पर्वत-श्रेणी तक पहुँचता है। दूसरा भूकम्प-प्रदेश, जो वस्तुतः पहलेकी शाखा ही है, ईस्ट इंडीजसे प्रारम्भ होकर बङ्गालकी खाड़ी पार कर बर्मा, आसाम, हिमालय, तिब्बत, तुर्किस्तान, फारस, टर्की, बालकान, इटली, स्पेन और पोर्तुगाल होता हुआ दक्षिण-पश्चिम घूमकर अटलांटिक महासागर पार करता हुआ वेस्ट इंडीज होकर मैक्सिकोमें पहले भूकम्प-प्रदेशसे मिल जाता है। इन दोनों भूकम्प-प्रदेशोंके सिवा चीन, मंचूरिया और मध्य अफ्रीकामें भी भूकम्पके प्रमुख केन्द्र हैं। समुद्रोंमें भी हिन्द, अटलांटिक और आर्कटिक महासागरोंमें भूकम्पके केन्द्र हैं।

भूकम्प क्यों होता है ? प्राचीन ग्रन्थोंमें, भिन्न-भिन्न देशोंमें, भूकम्पके भिन्न-भिन्न कारण दिये गये हैं। कोई जाति इस पृथ्वीको सर्पपर, कोई बिल्लीपर, कोई शूकरपर, कोई कच्छपपर और कोई एक वृहत्काय राक्षसपर स्थित समझती है। इन्हीं जन्तुओंके हिलने-डोलनेसे भूकम्प होता है, ऐसा प्राचीन व्यक्तियोंका विश्वास था; और, अधिकांश व्यक्ति इस कारणको सन्तोषप्रद समझते थे। पर आज बीसवीं सदीमें इन कारणोंपर कोई विश्वास न करेगा। सोलहवीं और सतरहवीं सदियोंमें लोगोंका अनुमान था कि, पृथ्वीके अन्दर, रासायनिक कारणोंसे, गैसोंके विस्फोटनसे भूकम्प होता है। अठारहवीं सदीमें कुछ लोगोंने विद्युत्के कारण भूकम्पका होना निश्चित किया था। फिर यह समझा जाने लगा कि, ज्वालामुखीके कारण भूकम्प होता है; पर शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि, अनेक प्रलयकारी भूकम्पोंका ज्वालामुखीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। हिमालय-पर्वतमें कोई ज्वालामुखी नहीं है; पर इसमें गत सौ वर्षोंमें अनेक भूकम्प हुए हैं। भूकम्पोंका, अति सूक्ष्मतासे, अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि, जो भूकम्प ज्वालामुखीके कारण होते हैं, वे बहुत विस्तृत नहीं होते। उनका परिणाम अल्पक्षेत्र-फलमें ही सीमित होता है। अधिकांश भूकम्पोंके कारण ज्वालामुखी

नहीं है। भूकम्पके कारणोंको खोज निकालनेमें भूतत्त्व-वेत्ताओंका ध्यान पृथ्वीके आभ्यन्तरिक स्तरोंके स्थानान्तरकी ओर गया। उन लोगोंने देखा कि, वर्तमान युगमें अधिकांश भूकम्प उन्हीं पर्वत-प्रदेशोंमें होते हैं, जो पर्वत भूगर्भ-विज्ञानकी दृष्टिसे अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। जिन कारणोंसे इन पर्वतोंकी सृष्टि हुई है, वे कारण अब भी विद्यमान हैं। जहाँ ये पर्वत स्थित हैं, वहाँ पृथ्वीकी सतह कुछ ढालवाँ है, जिससे पृथ्वीके स्तर कभी-कभी अकस्मात् बैठ जाते हैं। स्तरोंका यह बैठना पृथ्वीके अन्दर खोखलोंमें चट्टानोंके गिरनेसे, अधिक दबावके कारण ठोस स्तरोंके फटनेसे या एक चट्टानका दूसरी चट्टानपर फिसलनेसे होता है। अतः चट्टानोंके एक दूसरोपर स्थित होनेके कोणका स्तरके विचलन या स्खलनसे बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। जो भूकम्प पृथ्वी-स्तरकी इस अस्थिरताके कारण होते हैं, उन्हें टेक्टानिक (Tectonic) भूकम्प कहते हैं। भारतके सब भूकम्पोंके कारण टेक्टानिक ही हैं।

जिन कारणोंसे हिमालयकी उत्पत्ति हुई है, वे कारण अब भी विद्यमान हैं। अतः यह असम्भव नहीं कि, पृथ्वी-स्तरपर जो दबाव पड़ता है, उसका कारण निम्न कारणोंमेंसे कोई एक हो अथवा कई हों—

(क) ऋतु-सम्बन्धी दबाव। (ख) वायुमण्डलका दबाव। (ग) ताप-सम्बन्धी दबाव, जो शीत और तापकी लहरोंसे सम्बन्ध रखता है। (घ) पृथ्वी-तलपरके भारकी विभिन्नतासे उत्पन्न दबाव। पर्वतोंपर वर्षा होनेसे घुल-घुलकर रेत और मिट्टियाँ समतल भूमिमें आती हैं; इससे पर्वतों और मैदानोंके आपेक्षिक भारमें परिवर्तन होता है। पर्वतोंपर शीतके कारण अत्यधिक बर्फके जमनेसे भी पर्वतों और मैदानोंके भारमें परिवर्तन होता है।

उपर्युक्त कारणोंके एकत्र होने और जलवायुमें विभिन्नता होनेसे विभिन्न स्थानों—विशेषतः पर्वत-प्रदेशों और समतल प्रदेशोंके स्तरोंपर दबावकी विभिन्नता हो जाती है, जिससे विभिन्न सतहें अकस्मात् विचलित हो जाती हैं और इसी लिये भूकम्प होता है।

जिस यन्त्रसे भूकम्पका पता लगता है, उसे भूकम्प-परिचायक (Seismograph) कहते हैं। यह यन्त्र पृथ्वीमें प्रायः १० फूट नीचे गड़ा रहता है। इस यन्त्रसे पता लगता है कि, अनेक भूकम्प ऐसे होते हैं, जिनका साधारणतः मनुष्यको अनुभव नहीं होता। पृथ्वी-तलपर जब कभी शीत-तरङ्ग आती हैं, आँधी-पानी आता है, तो इससे उनका पता लग जाता है। हजारों मील दूर उत्पन्न होनेवाला भूकम्प इस यन्त्रमें बड़ी सरलतासे अङ्कित हो जाता है। ये यन्त्र अनेक प्रकारके होते हैं; पर जो भारतमें प्रयुक्त होते हैं, वे बड़ी सूक्ष्मतासे साम्यमें स्थित क्षैतिज होते हैं।

भूकम्पके धक्के मनुष्यको ६ मिनटों तक अनुभूत हो सकते हैं; पर भूकम्प-परिचायकमें वे घंटों तक अङ्कित होते रहते हैं। पृथ्वी मिश्रित वस्तुओंसे बनी हुई है और बहुत बड़ी है; अतः जो दोलन उसमें होता है, वह बड़ा ही पेचीला होता है। पृथ्वीका ऊर्द्ध्वाधार दोलन शीघ्र ही लुप्त हो जाता है; पर क्षैतिज दोलन अधिक काल तक और अधिक दूरी तक होता रहता है। जो तरङ्गें पृथ्वी-तलपर उत्पन्न होती हैं, उनके साथ-साथ या उनके पूर्व ध्वनि उत्पन्न होती है। इससे पता लगता है कि, बड़ी-बड़ी

तरङ्गोंके उत्पन्न होनेके पूर्व छोटी-छोटी तरङ्गें भूकम्पके समय अवश्य उत्पन्न होती हैं। इन तरङ्गोंका समय मिट्टीकी प्रकृति, उत्पन्न होनेके स्थानकी दूरी और अन्यान्य कारणोंपर निर्भर करता है। अतः इन तरङ्गोंके तरङ्ग-दैर्घ्यका यथार्थ ज्ञान कुछ कठिन होता है और उनमें पर्याप्त विभिन्नता भी होती है। अब तक इस सम्बन्धमें जो अन्वेषण हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि, भूकम्पकी तरङ्ग तीन प्रकारकी होती हैं। पहले प्रकारकी तरङ्गोंको प्राथमिक, दूसरे प्रकारकी तरङ्गोंको गौण और तीसरे प्रकारकी तरङ्गोंको दीर्घ तरङ्ग कहते हैं। पहले और दूसरे प्रकारकी तरङ्गोंके गमन-वेगमें जो तरङ्ग पृथ्वीके अन्दर भ्रमण करती है, उनमें बहुत विभिन्नता होती है। तीसरे प्रकारकी तरङ्गका वेग, जो पृथ्वी-तलपर भ्रमण करता है, प्रायः स्थायी होता है। प्राथमिक तरङ्गें साधारणतः ६ मील प्रति सेकिंडके हिसाबसे, गौण तरङ्गें ३ मील प्रति सेकिंडके हिसाबसे और दीर्घ तरङ्ग २ मील प्रति सेकिंडके हिसाबसे गमन करती हैं। जिस धक्केसे भूकम्प होता है, वह पृथ्वीके अन्दर होता है। पृथ्वीके अन्दरके उस स्थानको "केन्द्र" (Focus) कहते हैं। इस केन्द्रके ऊर्द्ध्वाधार पृथ्वी-तलपर जो स्थान होता है, उसे भूकम्पका "उपकेन्द्र" (Epicentre) कहते हैं। संक्षेपमें, किसी दो प्रकारकी तरङ्गोंके भूकम्प-परिचायक तक पहुँचनेमें जितना समय लगता है, उससे भूकम्प होनेके स्थानकी दूरीको इस यन्त्रसे मालूम करते हैं। इस प्रकार तीन स्थानोंमें स्थित तीन भूकम्प परिचायकोंसे भूकम्प उत्पन्न होनेके स्थानकी दूरीको जाननेसे रेखा-गणितकी सहायतासे भूकम्पके उपकेन्द्रका पता शीघ्र ही लग जाता है।

कोई भूकम्प केवल एक बार होकर बन्द नहीं हो जाता। प्रधान भूकम्पके पश्चात् छोटे-छोटे धक्के अनेक बार आते रहते हैं। १९२३ में जो प्रलयकारी भूकम्प जापानमें आया था, उसके बाद वहाँ एक वर्षके अन्दर छोटे छोटे प्रायः १२०० धक्के आये थे। पर ये सब धक्के बहुत अल्पस्थायी थे और उनसे कोई विशेष क्षति भी नहीं हुई थी। पृथ्वी-स्तरमें विचलन होनेके बाद उससे साम्यावस्था आनेके लिये ऐसे छोटे-छोटे धक्के अनिवार्य हैं। उनसे भयभीत होनेकी कोई बात नहीं है। हाँ, जो मकान फट गये हैं, उनके गिरनेका भय हो सकता है; पर जो मकान फटे नहीं हैं, उनके लिये कोई भय नहीं है।

१५ जनवरी १९३४ को जो भूकम्प आया, उसके बाद से २० जनवरी तक भूकम्प-परिचायक यन्त्रसे २८ छोटे-छोटे धक्कोंका पता लगा है। २२ जनवरीको फिर चानमें एक भयङ्कर भूकम्प आया और २९ जनवरीको मैक्सिकोमें भी एक ऐसा ही भयङ्कर भूकम्प आया। अभी यह कहना कठिन है कि, इन तीनों भूकम्पोंका एक-दूसरेसे कोई सम्बन्ध है या नहीं। उत्तर बिहारके भूकम्पका बाह्य केन्द्र कहाँ है, इसका भी अभी ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है। वैज्ञानिक अन्वेषण हो रहे हैं, और, आशा है, शीघ्र ही इसका पूरा-पूरा पता चल जायगा।

अबतक इस देशमें जितने महत्त्वपूर्ण भूकम्प हुए हैं और जिनका उल्लेख ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है, उनके स्थान और समयकी सूची नीचे दी जाती है—

तारीख	समय	स्थान
६ जुलाई १५०५	...	काबुल
४ जून १६६९	...	उत्तर भारत
१५ जुलाई १७२०	मध्याह्न	दिल्ली

तारीख	समय	स्थान
११ अक्टूबर १७३७	रात्रि	कलकत्ता
२ अप्रेल १७६२	सन्ध्या ५ बजे	बङ्गाल, आराकान और बर्मा
१ सेप्टेम्बर १८०३	मध्यरात्रि	मथुरा, गंगाकी ऊपरी घाटी, गढ़वाल
१६ जून १८१९		कच्छ
२६ अगस्त १८३३	११ बजे दिन	नेपाल, बिहार, मध्य और उत्तर भारत
१९ फरवरी १८४२	मध्याह्न	काबुल, जलालाबाद, पेशावर
२४ अगस्त १८५८	...	बर्मा, इरावदी और बंगालकी खाड़ीके पहाड़ी प्रदेश
१० जनवरी १८६९	...	आसाम, बङ्गाल और दार्जीलिंग
१४ जुलाई १८८५	...	बङ्गाल
३० मई ,,	...	काश्मीर
१२ जून १८९७		आसाम
५ अप्रेल १९०५	...	कांगरा, देहरादून और मसूरी
२१ मई १९१२	३ बजे दिन	बर्मा
२३ मई ,,	प्रातः काल	बर्मा
८ जुलाई १९१८		आसाम
३-४ दिसम्बर १९३०		बर्मा
१५ जनवरी १९३४	२। बजे दिन	उत्तर बिहार

अब तक संसारमें जितने प्रलयकारी भूकम्प हुए हैं, उनकी सूची इस प्रकार है—

लिसबन, पोर्तुगाल	१७५५
न्यूमैड्रिड, मोन	१८११
चोर्टसन	१८८६
रिवियेरा	१८८७
सोनोरा, मैक्सिको	१८८७
हेरफोर्ड	१८९६
आसाम	१८९७
याकुलात बे, अलास्का	१८९९
काँगरा	१९०५
सान फ्रांसिस्को (कैलिफोर्निया)	१९०६
बर्मा	१९१२
जापान	१९१२
टोकियो और याकोहामा (जापान)	१९२३
उत्तर बिहार (भारत)	१९३४

इधर ५० वर्षोंमें भारतमें जो भूकम्प हुए हैं, उनमें १८९७ में आसाममें और १९०५ में काँगरामें होनेवाले भूकम्प इस बारके उत्तर बिहारके भूकम्पके सदृश ही भयङ्कर थे। उन भूकम्पोंमें भी पर्याप्त धन-जनकी हानि हुई थी; परन्तु वे प्रदेश उत्तर बिहारके सदृश घने बसे हुए नहीं हैं; अतः उन भूकम्पोंमें धन-जनकी इतनी भयङ्कर हानि नहीं हुई थी, जितनी इस उत्तर-बिहारके भूकम्पसे हुई है।

गङ्गा

विज्ञानांकका परिशिष्टांक

सचित्र हिन्दी-मासिक पत्रिका

प्रधान संरक्षक—बनैलीराज्याधिपति साहित्यविभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर
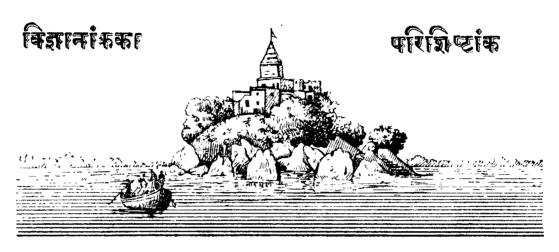
अध्यक्ष--पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

वर्ष ४, प्रवाह ४	फाल्गुन, १९९०। फरवरी, १९३४	तरंग २ पूर्ण तरंग ३८

नाप-तौलकी प्रणालियाँ

श्रीयुत लक्ष्मणप्रसाद वर्म्मा

विभिन्न देशोंमें नाप-तौलकी विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं। हमारे भारतवर्षमें भी नाप तौलकी एक अलग ही प्रणाली है। हमारे देशमें लम्बाई नापनेके लिये गजका और तौल नापनेके लिये सेरका प्रयोग होता है; परन्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें गज और तौलका एकाङ्क एकसा नहीं है। गज कई प्रकारके होते हैं। किसीसे कपड़ा, किसीसे दीवार और किसीसे लकड़ी नापी जाती है।

पुराने समयसे भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें, भिन्न भिन्न व्यवसायके लिये, भिन्न-भिन्न गज व्यवहारमें

लाये जाते हैं। कपड़ा नापनेके लिये गज लोहे या लकड़ीका होता है, जिसका सोलहवाँ हिस्सा गिरह कहलाता है। चार-चार गिरहपर चौपाटेका चिह्न होता है। राजगीरोंका गज लकड़ीका होता है, जिसमें २४ तसू होते हैं और १ तसू एक इंचके बराबर होता है। दर्जियोंका गज कपड़ेका होता है।

किसी-किसी स्थानमें सेर ६० तोलेका, कहीं ८६का और कहीं ८० तोलेका है; परन्तु बम्बईका सेर २८ तोलेका होता है।

कोई नियमित नाप-तौल न होनेसे, क्रय-विक्रयमें असुविधा होनेके कारण, ब्रिटिश सरकारने नाप-तौलका एकाङ्क नियत कर दिया है।

भारतवर्षमें लम्बाईका एकाङ्क गज है। एक काँसेकी छड़ विलायतके गजके बराबर है। यह सरकारके पास सुरक्षित है। इस गजका व्यवहार केवल व्यापारी करते हैं। अन्य सब कार्योंके लिये इंच, फूट इत्यादिका व्यवहार होता है।

भारतवर्षमें तौलका कानूनी एकाङ्क सेर है। यह ८० तोलेका प्रमाणित सेर है। यह लोहेका होता है।

४ छटाँक=१ पाव, १६ छटाँक=१ सेर, ५ सेर=१ पसेरी और ४० सेर=१ मन होता है।

इससे अन्न, तरकारी आदि भारी और अधिक मानमें होनेवाली चीजें तौली जाती हैं।

हलकी चीजें तौलनेके लिये इससे छोटा तौल है, जिससे सोना, चाँदी तथा बहुमूल्य पदार्थ तौले जाते हैं।

८ चावल=१ रत्ती, ८ रत्ती=१ माशा, १२ माशा=१ तोला, ५ तोला=१ छटाँक और १६ छटाँक=१ सेर होता है।

संसारके सब देशोंकी वैज्ञानिक पुस्तकोंमें मीटर प्रणालीका प्रयोग होता है। पहले पहल इस प्रणालीका आविर्भाव फ्रांसमें हुआ। यह प्रणाली अधिक सरल होनेके कारण अन्य देशोंमें भी व्यवहारमें आने लगी। सब देशोंमें वैज्ञानिक इसी मीटर प्रणालीका आजकल व्यवहार करते हैं।

नापका एकाङ्क मीटर है। यह इरिडियम-प्लाटिनम धातुका बना हुआ एक छड़ है। इसपर दो रेखाएँ खींची गयी हैं। इन्हीं दो रेखाओंके बीचका स्थान मीटर है। यह छड़ पेरिसमें सुरक्षित है।

इस मीटरकी लम्बाई ३९.३७ इंच होती है।

१० मीलीमीटर=१संटीमीटर (समं०), १० सेंटीमीटर=१ डेसीमीटर (डम०), १० डेसीमीटर =१ मीटर (म०) तथा १००० मीटर= १ कीलोमीटर (कम०) होता है।

तौलका वैज्ञानिक एकाङ्क ग्राम है। यह इरिडियम-प्लाटिनमसे युक्त धातुका बना हुआ है। यह भी मीटरके साथ पेरिसमें रखा हुआ है। तौलके एकाङ्कके छोटे होनेके कारण १००० ग्रामका एक प्रमाण किलोग्राम रखा गया है।

१ ग्राम=१० डेसी ग्राम (डग्र०), १ डेसी ग्राम =१० सेंटी ग्राम (सग्र०) तथा १ सेंटी ग्राम=१० मीली ग्राम (मग्र०) तथा १००० ग्राम=१ कीलो ग्राम (क० ग्र०) होता है। एक रुपयेका तौल ११.५ ग्राम होता है।

मीटर प्रणालीमें आयतनका एकाङ्क घन सेंटी मीटर है। यह आयतन एक ऐसे पदार्थका है, जिसकी लम्बाई एक सेंटीमीटर, चौड़ाई एक

सेंटीमीटर तथा ऊँचाई एक सेंटीमीटर हो। एक घन सेंटीमीटर जलका तौल एक ग्राम है और ४५३.६ ग्रामका तौल एक पाउंड है। ऐसे १००० घन सेंटीमीटरका एक लिटर होता है।

नापका अँग्रेजी एकाङ्क इंच है। यह छड़ बेलीज़ धातु (ताम्र, वङ्ग और यशद) का बना हुआ है। यह लंडनकी कामंस और लार्ड सभाओंमें रखा हुआ है। इस छड़में, कुछ नियत दूरीपर, एक-एक चिह्न (Scratch) बना हुआ है, जो सुवर्णसे भरा हुआ है। दो चिह्नोंके बीचका स्थान गज है। इस एकाङ्ककी चार प्रतियाँ लंडनमें सुरक्षित हैं।

१२ इंच = १ फुट, ३ फीट १ गज, २२० गज = १ फर्लांग तथा ८ फर्लांग = १ मील होता है।

तौलका अँग्रेजी एकाङ्क पाउंड है। यह प्रायः आध सेरके बराबर है। विलायतमें तौलनेका प्रयोग इसीसे होता है।

१ पाउंड = १६ आउंस, १ आउंस = १६ ड्राम १ ड्राम = २७.३४ ग्रेन, १ ग्रेन = .०५५७ तोला तथा ७००० ग्रेन = ३९ तोला होता है।

क्षेत्रफलका एकाङ्क - क्षेत्र नापनेके लिये केवल लम्बाई अथवा चौड़ाई नाप लेनेसे ही काम नहीं चल सकता। क्षेत्रफलके लिये दोनोंका नापना आवश्यक है। एक सेंटीमीटर लम्बे और एक सेंटीमीटर चौड़े वर्गका क्षेत्र ही क्षेत्रका एकाङ्क है। इस प्रकार क्षेत्रका अँग्रेजी एकाङ्क वर्ग इंच है।

१४४ वर्ग इंच = १ वर्ग फुट, ९ वर्ग फीट = १ वर्ग गज तथा १ वर्ग इंच = ६.४५ वर्ग सेंटीमीटर होता है।

औषध-विक्रेताओंका भी अपना भिन्न तौल है। घन और द्रवके लिये अलग-अलग तौल प्रयुक्त होते हैं। संसारमें ये ही तौल प्रचलित हैं; परन्तु अमेरिकामें कुछ भिन्न है। वहाँ घनके लिये यह तौल है—

२० ग्रेन १ स्क्रुपुल (स्क०), ३ स्क्रुपुल = १ ड्राम (ड्रा०) तथा ८ ड्राम = १ आउंस (आ०) होता है। द्रवके लिये यह है—

६० मीनीम = १ फ्लुईड ड्राम, ८ फ्लुईड-ड्राम = १ फ्लुईड आंउस, २० फ्लुईड-आउंस = १ पाइंट तथा ८ पाइंट १ गैलन होता है।

जिस प्रकार नाप और तौलके लिये भिन्न-भिन्न एकाङ्क हैं, उसी प्रकार समयका भी एकाङ्क है। नाप और तौलके एकाङ्क भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न हैं; परन्तु समयका एकाङ्क सब देशोंमें एक ही है। इससे काममें सुविधा होती है। समयका एकाङ्क सेकिंड है।

६० सेकिंड = १ मिनट, ६० मिनट = १ घंटा तथा २४ घंटा = १ दिन होता है।

जिस प्रकार नाप-तौल और समयके एकाङ्क नियत हैं, उसी प्रकार ताप और विद्युत्-प्रवाहका भी एकाङ्क नियत है।

ताप नापनेके लिये वैज्ञानिकोंका एक एकाङ्क निश्चित है। वह कलारीके नामसे प्रसिद्ध है। कलारीकी परिभाषा इस प्रकार है—

वैज्ञानिक कार्योंके लिये एक ग्राम जलका १° डि० तापक्रम बढ़ानेके लिये जितने तापकी आवश्यकता होती है, वही तापका एकाङ्क (कलारी) है।

शरीरके तापकी अवस्थाको मापनेके लिये थर्मामीटर या ताप-मापकका प्रयोग होता है। यह ताप-मापक काचकी एक नली होती है, जिसमें बारीक छेद होता है। इसके एक सिरेपर एक छोटी कीप [बल्ब] होती है। इस कीपमें पारा भरा रहता है। गरमीसे यह पारा बढ़कर, कुंडीसे बाहर निकलकर, नलीमें स्तम्भ बनता है; अतः गरमी

अथवा सर्दीसे पारेका यह स्तम्भ बढ़ता-घटता रहता है। इस स्तम्भके घटने-बढ़नेसे तापक्रमका ज्ञान होता है। शरीरके तापको नापनेके लिये जो ताप-मापक प्रयुक्त होता है, उसे फाहरन हाइट (F) कहते हैं। इसमें दो स्थिराङ्क होते हैं। एकको अधोबिन्दु अथवा गलनाङ्क कहते हैं और दूसरेको ऊद्ध्र्व बिन्दु वा क्वथनाङ्क कहते हैं। जिस तापक्रमपर बर्फ जलमें परिवर्तित होती है, उसी तापक्रमको अधोबिन्दु कहते हैं। फाहरन हाइट ताप-मापकमें यह बिन्दु ३२° डिगरीपर होता है। जिस तापक्रमपर जल उबलता है अर्थात् शीघ्रतासे वाष्पमें परिवर्तित होता है, उसको ऊद्ध्र्व बिन्दु कहते हैं। फाहरन हाइट ताप-मापकमें यह २१२ डिगरीपर होता है। इस प्रकार अधोबिन्दु और ऊद्ध्र्व बिन्दुके स्थान १८० भागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक भागको डिगरी कहते हैं और किसी अङ्कके ऊपर एक छोटा शून्य लिखकर डिगरीको सूचित करते हैं। फाहरन हाइट ताप-मापकमें चालीस डिगरी ताप-क्रमको सूचित करनेके लिये ऐसा—४०° फ— लिखते हैं। इस ४०° फ का अर्थ यह है कि, यह तापक्रम बर्फके पिघलनेके ताप-क्रमसे ८ डिगरी ऊपर है। शरीरका ताप-क्रम नापनेके लिये जिस ताप-मापकका प्रयोग होता है, उसमें केवल ९५° से ११२° तक ही रहता है; क्योंकि साधारणतया शरीरका तापक्रम इससे न्यूनाधिक नहीं होता। मनुष्यके रक्तका ताप-क्रम साधारणतया ९८° और ९९° के बीच होता है। ९८.६° तापक्रमको मनुष्य-शरीरका नार्मल तापक्रम कहते हैं। इस डिगरीपर एक चिह्न अङ्कित होता है, जिससे मनुष्य-शरीरके नार्मल तापक्रमका ज्ञान सूचित होता है। जाड़ेके दिनोंमें वायु-मण्डलका तापक्रम बिहार प्रान्तमें ३५° से नीचे नहीं जाता। यदि वायुमण्डलका तापक्रम ३२° से नीचे हो जाय, तो जल बर्फमें परिवर्तित हो जाय। बिहारमें ऐसी अवस्था कभी नहीं पहुँचती। ठंडे देशोंमें और भारतके पहाड़ी स्थानोंमें तापक्रम ३२° से नीचे चला आता है; और, तब ऐसे स्थानोंमें बर्फ गिरती है और नदी और तालाबोंका पानी बर्फमें परिवर्तित हो जाता है। बिहारमें कभी-कभी वायुका तापक्रम ३२° से ऊपर रहते हुए भी कुछ विशेष स्थानोंमें अथवा विशेष पदार्थोंका तापक्रम ३२° या इससे कुछ नीचे हो जाता है। ऐसे स्थानोंपर तब पाला पड़ता है और वहाँकी कुछ फसल इससे नष्ट हो जाती है। वैज्ञानिक पुस्तकोंमें जो तापमापक प्रयुक्त होता है। उसे सेंटीग्रेड वा शतांश ताप-मापक कहते हैं। इसका अधोबिन्दु शून्य होता है और ऊद्ध्र्व बिन्दु १००° होता है। इस प्रकार इस ताप-मापकमें इन दोनों स्थिराङ्कोंके स्थान १००° में विभक्त होते हैं। इस शतांश ताप-मापकमें मनुष्यके रक्तका तापक्रम प्रायः ३६°—३७° होता है। वैज्ञानिक पुस्तकोंमें साधारणतया शतांश ताप-मापकका ही प्रयोग होता है।

जिस प्रकार मनुष्योंकी आवश्यकताओंके अन्य पदार्थ नाप-तौलकर बिकते हैं, उसी प्रकार विद्युत्-प्रवाह भी नापसे बिकता है। इसी नापकी अनुसार हम लोगोंको मूल्य देना पड़ता है। व्यवहारके लिये जो बिजली बेची जाती है, उसके नापके लिये जो एकाङ्क निश्चित है, वह युनिट अथवा कीलोवाट कहलाता है अर्थात् एक सहस्र वाटका प्रवाह अगर एक घंटे तक चलता रहे, तो एक युनिट बिजली खर्च होती है।

भारतवर्षके अधिकांश छोटे-छोटे शहरोंमें एक

युनिटका मूल्य पाँच आनेसे सात आने तक होता है; परन्तु कलकत्ता तथा बम्बई जैसे नगरोंमें एक युनिटका मूल्य चार आने है। जितनी ही अधिक बिजलीकी खपत होगी, उतने ही अधिक सस्ते मूल्यपर बिजली मिलेगी।

जिन देशोंमें डायनेमो जल-प्रपातोंसे चलते हैं, वहाँ विद्युत् बहुत सस्ते दामोंमें मिलती है।

नियागराके जल-प्रपातसे उत्पन्न की हुई विद्युत् बहुत सस्ते दाममें, अमेरिकामें, बिकती है।

सिमेंट

श्रीयुत राजकृष्ण गुप्त, इंजिनियर

भारतवर्षमें पूर्व कालसे ही सिमेंटका प्रचार किसी-न-किसी रूपमें पाया जाता है। आधुनिक पोर्टलैंड सिमेंट, सम्भव है, पिछले कुछ ही वर्षोंसे अधिक व्यवहृत होता हो; किन्तु प्राकृतिक सिमेंट, कंकड़ आदिके रूपमें, पूर्व कालसे ही प्रयुक्त होता आया है। भारतवर्षमें मध्य प्रान्तके कटनी तथा जुकेही स्थानोंमें, बिहारके जपला स्थानमें, बम्बईके द्वारका, शाहाबाद और पोरबन्दर स्थानोंमें, पंजाबके वाह स्थानमें, बूँदी तथा ग्वालियरके राज्योंमें और अन्य कई स्थानोंमें सिमेंट बनता है। फिर भी यथेष्ट परिमाणमें सिमेंट इंगलैंड, अमेरिकाके संयुक्त राज्य तथा अन्य यूरोपीय प्रान्तोंसे, भारतवर्षमें आता है।

सिमेंटका उपयोग किसी प्रभाव-शून्य वस्तु (जैसे, बालू, छोटे-छोटे पत्थर अथवा ईंटके टुकड़े आदि)के साथ सम्मिश्रण करनेके अतिरिक्त एकाकी कम होता है। पुल तथा पुलके खम्भे, जलपोतोंके प्रकाशस्तम्भ, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, मीनार, बाँध, बंदरगाह, नल, तालाब आदि अनेक यन्त्रविद्याके कठिन कार्योंमें तो सिमेंटका प्रयोग होता ही है; किन्तु अब कलाकी उन्नत शाखाओंमें भी इसका यथेष्ट उपयोग हो रहा है। अमेरिकावाले सिमेंटसे नक्काशीदार यूनानी ढंगकी मूर्तियाँ, बड़ी दक्षतासे, तैयार करते हैं। इसके अतिरिक्त अब कहीं-कहीं बृहत्काय तथा मजबूत तिजोरियाँ भी इससे तैयार होने लगी हैं। गृह-निर्माणकी सामग्रियोंमें सिमेंट एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है; और, इसका प्रयोग हर स्थानपर, किसी-न-किसी कार्यके लिये, अवश्य होता है।

सिमेंट प्राकृतिक अथवा कृत्रिम दो प्रकारका होता है। सिमेंट तथा चूनेमें दो बातोंके कारण विभिन्नता है; प्रथमतः सिमेंट चूनेकी तरह जलसे बुझाया नहीं जाता तथा द्वितीयतः लेई बनाकर प्रयोग करनेसे तुरत सूखकर दृढ़ हो जाता है। प्राकृतिक सिमेंट तथा विशेष जल-शोषक चूनेमें (Eminently Hydraulic Lime) अल्प विभिन्नता होती है; क्योंकि इस चूनेमें मिट्टीकी मिलावट होती है। चूनेमें जितनी ही अधिक मिट्टी होगी, उतना ही अधिक उसके बुझनेकी शक्तिका ह्रास होगा तथा पानीके साथ मिल कर सूखनेकी शक्ति दृढ़ होगी। भारतवर्षमें इस समय प्राकृतिक सिमेंटका व्यवहार कम है। इसकी सबसे अच्छी किस्म इंगलैंडमें रोमन सिमेंटके नामसे प्रख्यात है इसका रंग बादामी होता है; और, पानीके साथ मिलानेसे शीघ्र ही यह सिमेंट सूखकर दृढ़ हो जाता है; किन्तु कृत्रिम सिमेंटकी बराबरी यह नहीं कर सकता। इसके प्रस्तर २० से ४० प्रतिशत मिट्टी तथा शेष चूनेका

कार्बोनेट और मैगनीशियम कार्बोनेट मिश्रित मिलते हैं। इन्हींको अग्निमें जलाकर तथा पीसकर सिमेंट बनता है।

सबसे अच्छा कृत्रिम सिमेंट पोर्टलैंड सिमेंटके नामसे विख्यात है। ७० प्रतिशत चूनेका पत्थर तथा ३० प्रतिशत मिट्टी, जिसमें थोड़ा बालू होता है, और लौह आक्साइड तथा मैगनीशियाके किञ्चित् कण होते हैं, जलाकर तथा पीसकर यह सिमेंट तैयार किया जाता है। जलानेमें लगभग ३० प्रतिशत कोयले-का खर्च होता है। पहले चूनेके प्रस्तर-स्थित जलको वाष्प बनाने एवम् प्रस्तरको चूना बनानेमें तापशोषण होता है; किन्तु बादमें तापक्षेपक क्रिया होती है, जिसके कारण इन्धनमें लगभग दो प्रतिशतकी बचत हो जाती है। चूनेका पत्थर तथा मिट्टीका अंश जल कर चूनेका सिलिकेट (Calcium Silicate) और एल्युमिनेट (Calcium Aluminate) बन जाता है। सिमेंटको पानीमें मिलकर दृढ़ हो जानेका गुण एल्युमिनियम सिलिकेट द्वारा प्राप्त होता है। चूनेके पत्थरमें 'जिपसम' की मिलावट होनेसे जलानेके पश्चात् वह पेरिसके प्लास्टरके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। यदि इसका मेल दो प्रतिशत तक हो, तो कोई हानि नहीं; किन्तु अधिक होनेसे हानि होती है। इसके मेलसे सिमेंट जल मिलानेपर शनैः शनैः दृढ़ होता है। चूना अधिक होनेपर सिमेंट टूट कर गिरने लगता है।

पोर्टलैंड सिमेंट अधिक बारीक, भूरे रंगका, हरित-आभा-युक्त होता है और बाजारमें बोरियों अथवा पीपोंमें इसका क्रय-विक्रय होता है। अमेरिकासे श्वेत रंगका एक पोर्टलैंड सिमेंट भी आता है। प्रति घन फूट इसका वजन ४५ से ४७ सेर तक होता है। वजनी सिमेंट देरमें सूखता है; किन्तु अधिक मजबूत होता है और समयके साथ अधि-काधिक दृढ़ होता जाता है। सिमेंट १५ मिनटसे लेकर ५ घंटे तक सूखनेवाला हर प्रकारका होता है। अच्छे सिमेंट की व्याख्या केवल उसके गुणों द्वारा ही की जा सकती है। सिमेंटको जल मिलानेके पश्चात् लगभग एक घंटे तक प्रभाव-शून्य रहना चाहिये; किन्तु दूसरे घंटेके बीतनेके प्रथम ही बिल्लौरके पत्थरके सदृश दृढ़ और इस्पातके सदृश तनावदार हो जाना चाहिये। तापक्रमके परिवर्तनका प्रभाव कम होना तथा अधिक समय तक रखनेपर भी किसी खराबी-का न आना सिमेंटका प्रधान गुण होना चाहिये। पत्थर तथा ईंटके टुकड़े (Aggregate), बालू आदिके साथ मिले गन्धक, कोयले, चिकनी मिट्टी, कीचड़ आदिका भी सिमेंटपर कोई प्रभाव न होना अत्यावश्यक है। सिमेंट बहुधा, जलकी अधिकतासे, जल सूख जानेपर, सिमट जाता है और दरारें पड़ जाती हैं। इसलिये सिमेंट फैलने और सिकुड़नेके दोषसे रहित हो, तो अच्छा है। इंगलैंडके वैज्ञानिकोंकी समितिने सिमेंटके विशेष लक्षणोंके विषयमें कुछ नियम निर्धारित कर दिये हैं, जिनसे सिमेंटकी भली भाँति परख की जा सकती है। इस स्थानपर उन नियमोंका कुछ विवरण दे देना समयानुकूल तथा आवश्यक प्रतीत होता है।

(१) बारीकी (Fineness)– सिमेंटमें बड़े-बड़े कणोंका होना बालूकी मिलावटके सदृश होता है और सिमेंटको कमजोर कर देता है। १०० ग्राम सिमेंट लेकर दो चलनियोंमें बारी बारीसे पन्द्रह मिनटतक चालना चाहिये। पहली चलनीमें प्रति वर्ग इंच ३२,४०० तथा दूसरीमें ५७७६ छिद्र होने चाहिये। चालनेके पश्चात् प्रथम चलनीपर १८ प्रतिशत और द्वितीयपर ३ प्रतिशतसे अधिक सिमेंट नहीं बचना चाहिये।

(२) विशिष्ट घनत्व—सिमेंट भली भाँति न जलनेसे हलका होता है। थोड़ी हवा लगना इसके लिये उत्तम है; क्योंकि इससे हानिकारक स्वतन्त्र चूनेके कण बुझ जाते हैं, किन्तु अधिक समय तक खुला रखनेसे सिमेंट वायुसे जल तथा कार्बोनिक गैस शोषण कर लेता है और उसका विशिष्ट घनत्व कम होकर वह खराब हो जाता है। सिमेंटका विशिष्ट घनत्व ज्ञात करनेके लिये एक लम्बी गर्दनवाली

घनत्व बोतल (Specific Gravity Bottle)प्रयुक्त होती है। इसमें मिट्टीका तेल, तारपीनका तेल अथवा बेंजीन (इसका सिमेंटपर कोई प्रभाव नहीं होता) भर दिया जाता है। इसके पश्चात् तौला हुआ थोड़ा सिमेंट डालकर उस द्रव पदार्थका स्थानान्तर देख लिया जाता है। ग्राममें सिमेंटके वजनको द्रव पदार्थके घन संटीमीटरमें लिये गये स्थानान्तर-आयतनसे विभाजित करनेपर सिमेंटका विशिष्ट घनत्व निकल आवेगा। विशिष्ट घनत्व तुरतके जले तथा पिसे हुए सिमेंटके लिये ३·१५ तथा कम-से-कम ४ सप्ताह पहलेके तैयार किये हुए सिमेंटके लिये ३·१० से कम नहीं होना चाहिये।

(३) दृढ़ता—इसकी परीक्षा ला 'चैटलियर' (Le Chatelier) द्वारा निर्मित यन्त्रमें होती है। यह अर्ध मिली मीटरका पीतलका एक नल धुरी रेखाके बीच कटा हुआ, ३० मिली मीटर लम्बा तथा ३० मिली मीटर आन्तरिक व्यासका होता है। कटे स्थानके दोनों ओर दो सूइयाँ १६५ मिलीमीटर लंबी (केन्द्रसे नोक तक) लगी होती हैं। प्रथम जल और सिमेंट भरकर यह लगभग ६०° फारनहाइट गर्म जलमें २४ घंटेके लिये छोड़ दिया जाता है। सिमेंटके दृढ़ हो जानेपर दोनों सूइयोंकी दूरी नाप ली जाती है। फिर यह ६ घंटे तक पानीमें रखकर उबाला जाता है। ठंडा होनेपर सूइयोंकी दूरी पुनः नाप ली जाती है। इन दोनों नापोंका अन्तर ७ दिनोंतक हवामें रखे हुए सिमेंटके लिये ५ मिली मीटर और २४ घंटे तक खुले स्थानमें रखे सिमेंटके लिये १० मिली मीटरसे अधिक नहीं होना चाहिये। इस परीक्षासे स्वतन्त्र चूनेकी अधिकता तुरत मालूम हो जाती है; क्योंकि चूना अधिक होनेसे सिमेंट फूटकर फैल जायगा और दोनों नापोंका अन्तर अधिक होगा।

(४) दृढ़ होनेका समय—यह विकाटके यन्त्र (Vicat Needle Appratus) द्वारा जाना जा सकता है। इसमें एक चौकोर सूई होती है, जिसका प्रत्येक किनारा १ मिली मीटरका होता है। समस्त यन्त्र (सूई, उसकी नली तथा टोपी) का वजन ३०० ग्राम होता है। सिमेंटका मोटा लेप बनाकर सूई बार-बार इस पर छोड़ी जाती है। जब वह सिमेंटमें धँसनेमें पूर्णतया असमर्थ हो जाती है, तब समय देख लिया जाता है। शीघ्र दृढ़ होनेवाले सिमेंटके लिये यह समय १० से ३० मिनट, मध्यम श्रेणीके लिये आध घंटेसे दो घंटे तथा शनैः-शनैः दृढ़ होनेवालेके लिये २ से ५ घंटे तक होना चाहिये।

(५) वितान-क्षमता (Tensile Strength)—यद्यपि कार्य-रूपमें अधिकतः सिमेंटका प्रयोग दबावके लिये होता है, तथापि इसके तनावकी ताकतकी ही परीक्षा अधिक होती है; क्योंकि इसका यन्त्र छोटा और सरल होता है। पहले सिमेंट लसदार बनाकर एक खास साँचेमें ढाल दिया जाता है, इसको ब्रिकेट (Briquette) कहते हैं। सिमेंटमें जल १८ से २५ प्रतिशतसे अधिक कदापि न मिलाना चाहिये। ब्रिकेटके बीचका हिस्सा कम-से-कम एक इंच लम्बा-चौड़ा होना चाहिये। कड़े होनेके पश्चात् साँचेसे निकालकर उसे २४ घंटेके लिये गीले कपड़ेमें ढक कर छोड़ दिया जाता है। बादको लगभग ६०° फारनहाइट गर्म स्वच्छ जलमें (हर सप्ताहके अन्तमें यह पानी बदला जाता है) ७ दिनोंके अथवा २८ दिनोंके लिये ब्रिकेट छोड़ दिया जाता है। इसके अनन्तर यह डा० मिचिलेस (Dr. Michealis) द्वारा अन्वेषित यन्त्रमें दोनों ओर जबड़ोंमें बाँध दिया जाता है और शीशे (Lead)की गोलियों अथवा जल-प्रवाह द्वारा एक गतिसे इसपर तब तक तनाव देना जारी रखा जाता है, जब तक वह टूट नहीं जाता। ५०० पौंड प्रति मिनटसे अधिक गतिसे तनाव नहीं देना चाहिये। ६ परीक्षाओंका औसत तनाव ७ दिनों तक जलमें रखनेके पश्चात् ४०० पौंड प्रति वर्ग इंचसे कम नहीं होना चाहिये और २८ दिनोंके बाद निम्नलिखित प्रकारसे प्रतिशत बढ़ना चाहिये—

यदि सात दिन जलमें रखनेके पश्चात् तनाव प्रति-वर्ग इंच—

४०० से ४५० पौ० है, तो २५ प्रतिशत
४५० ,, ५०० ,, ,, ,, २० ,,
५०० ,, ५५० ,, ,, ,, १५ ,,
५५० ,, ६०० ,, ,, ,, १० ,,
६०० ,, ऊपर ,, ,, ,, ५ ,,

तीन हिस्सा शुष्क तथा स्वच्छ बालू और एक हिस्सा सिमेंट लेकर भी ब्रिकेट बनाया जा सकता और उक्त विधिसे परीक्षा की जा सकती है। ७ दिनों तक जलमें रखनेके पश्चात् इस ब्रिकेटके तनावकी ताकत १५० पौ० प्रतिवर्ग इंच तथा २८ दिनोंके पश्चात् २५० पौ० प्रतिवर्ग इंचसे कम नहीं होनी चाहिये।

(६) सम्पीड्य बल (Compressive Strength)—यह परीक्षा कम की जाती है। सिमेंटके तनावकी ताकतसे दबावकी ताकत ८ से ११ गुना तक अधिक होती है। इसकी परीक्षा ३ या ४ इंचके सिमेंटके वर्गाकार टुकड़े पर की जाती है। इसके लिये किसी भी साधारण दबाव-मापक यन्त्रका व्यवहार किया जा सकता है। यह टूटनेपर दो गुम्बदाकार स्तम्भों (Pyramids) के सदृश, जिनका सिरा आपसमें मिला दिया गया हो, प्रतीत होता है।

इसके अतिरिक्त 'जिपसम' तथा जल सिमेंटमें पानी अधिक नहीं होना चाहिये और चूना भी सिलिका तथा अल्यूमिनासे, पौने तीन गुनेसे अधिक, नहीं होना चाहिये।

व्यापारिक दृष्टिसे अभी भारतवर्षको ऐसी आवश्यक वस्तु अधिकाधिक परिमाणमें उत्पन्न करनेकी बड़ी भारी जरूरत है; क्योंकि अब भी लाखों रुपयेका सिमेंट यहाँ पाश्चात्य देशोंसे आता है। यहाँ चूनेके पत्थर, मिट्टी, कोयले (अन्य इन्धनका प्रयोग करनेसे अधिक राख निकलनेके कारण सिमेंट खराब हो जाता है) आदि आवश्यक खनिज पदार्थोंकी कमी नहीं है। यदि भारतके व्यवसायी सत्यता तथा तत्परताको ध्येय बनाकर इस व्यवसायकी उन्नतिमें सलग्न हों, तो निश्चय ही बाहरसे आये हुए सिमेंटकी अपेक्षा यहांका सिमेंट अधिक श्रेष्ठ और साथ ही मूल्यमें सस्ता प्रमाणित होगा।

हीरा

श्रीयुत वृन्दावनदास बी० ए०, एल-एल० बी०

वैज्ञानिक नियमोंकी महिमा अपार है। पत्थरका जला कोयला (Gas Carbon) अथवा न्यूटनके शब्दोंमें "थका बँधा हुआ स्निग्ध पदार्थ" (Unctuous Substance Coagulated) प्रबल एवम् अमिट वैज्ञानिक नियमोंके कारण संसारका सर्वश्रेष्ठ, उज्ज्वलतम एवम् परम मूल्यवान् पदार्थ है। जेमसनके मतानुसार हीरा (A secretion from some ancient tree like amber) अर्थात् अम्बर सदृश किसी प्राचीन वृक्षकी उत्पत्ति है। ब्रूस्टरका भी यही मत है। 'लावोइसर' (Lavoisier) हीरेको अमणिभीय कार्बन (Uncrystallized Carbon) बतलाता है। सन् १८४२ में पेट्जहोल्डने कहा था कि, जले हुए हीरेमें उद्भिज कोष (Cells) मौजूद हैं। बहुतसे वैज्ञानिकोंका खयाल है कि, कार्बन और हाइड्रोजन-मिश्रित तरल पदार्थका परिणाम ही हीरा

है। कुछ विज्ञान-वेत्ताओंका यह भी मत है कि, हीरा किसी विचित्र वनस्पतिसे परिवर्तित होकर मणिभीकृत हो जानेका परिणाम है। यहाँ यह कह देना भी असङ्गत न होगा कि, हीरेको कृत्रिम उपायों द्वारा बनानेके प्रयत्न आज पर्यन्त नितान्त निष्फल ※ सिद्ध हुए हैं।

यूनानियोंमें सबसे पहले हीरेको 'अदम' (Unsubduable) कहते थे। प्लिनीके कथनानुसार "अदम सांसारिक सब वस्तुओंमें अधिक मूल्यवान् है; और, यह राजा-महाराजाओं—उनमेंसे भी बहुत कम—के उपयोगकी वस्तु है।" प्लिनी हीरेके ६ प्रकार बतलाता है। इन छ प्रकारके हीरोंमें सर्वोत्कृष्ट वह है, जो निहाईपर रखा जाकर हथौड़ेकी चोटोंसे भी टूट न सके। प्लिनीका कथन है कि, सर्वोत्कृष्ट हीरेको आग भी नहीं जला सकती तथा वह तभी नष्ट हो सकता है, जब कि उसे बकरीके गर्म खूनमें डुबाया जाय।

सन् १४७६ में लुडविग् वान बरकेन' (Ludwig Van Berquen) ने इसको काटने-छाँटने और पालिश करनेका तरीका ढूंढ़ निकाला। उसी शताब्दीमें हीरे द्वारा काच काटने और विविध रत्नोंपर रेखाङ्कित (नक्शा) करनेकी विधियाँ ज्ञात हुई थीं।

जितने भी ज्ञात पाषाण हैं, उनमें हीरा सबसे अधिक कठोर † होता है। अन्य बहुमूल्य प्रस्तरोंमें हीरेको पहचाननेका सबसे सुगम साधन उसकी कठिनता ही है। विशिष्ट गुरुत्वमें हीरा ३.५२ है, जो कि स्फटिकसे कहीं अधिक है। उष्णतासे इसका प्रसार बहुत कम होता है। अत्यन्त शीतल जलमेंसे निकाल कर अत्यन्त उष्ण जलमें रखनेपर भी इसका परिमाण १.० से केवल १.०००००५४ होता है। इसका सबसे अधिक घनत्व ४२.३ पर होता है और इसके नीचे यह फैलने लगता है। यह एक ऐसी दशा है, जो ठोस पदार्थोंमें बहुत कम पायी जाती है।

बहुधा हीरे कई रंगके हुआ करते हैं। अधिकांश हीरे श्वेत और भूरे रंगके होते हैं। नीले, लाल, पीले और हरे बहुत कम होते हैं। उज्ज्वल रंगीन हीरे अत्यन्त बहुमूल्य होते हैं। न्यूटनने इसकी किरणोंके 'वर्तन' करनेकी शक्तिका उल्लेख किया है। वर्त्तनाङ्क लाल किरणोंके लिये २.४०३५, पीत किरणोंका २.४१६५ और हरीका २.४२७८ है।

हीरेकी दहन-शीलता (Combustibility) का प्रयोग अनेक बार किया जा चुका है। लावासियेने सिद्ध कर दिखाया है कि, हीरेके गलनेसे कार्बोनिक अम्ल गैस बनती है। सर जार्ज मेकंजीने लोहेको हीरेके पाउडर द्वारा फौलादमें परिवर्तित कर दिया था। इसलिये इसमें कोई सन्देह नहीं कि, हीरा मणिभीकृत दशामें कार्बन है। कार्बन अनेक रूपोंमें प्रकृतिमें पाया जाता है। लकड़ीका कोयला पत्थरका कोयला (यह भी लकड़ीसे ही बना है) ग्रफाइट और हीरा—सब इसीके रूपान्तर हैं। प्रकृतिमें कार्बनके जितने प्रकार पाये जाते हैं, उनमें हीरा सबसे शुद्ध रूपमें रहता है

※ लेखक महाशयको सम्भवतः विदित नहीं है कि, फ्रांसके सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ मोयासनने पहले-पहल कृत्रिम हीरा तैयार किया था। आजकल पर्याप्त मात्रामें कृत्रिम हीरा तैयार होता है। पर इसका आकार बहुत छोटा होता है; अतः आभूषणके लिये ही यह कृत्रिम हीरा प्रयुक्त नहीं हो सकता; पर और अनेक कामोंके लिये यह प्रयुक्त होता है। स० ग०

† इसकी कठोरताके कारण ही हीरेको वज्र भी कहते हैं। इसके जलानेसे बहुत थोड़ी राख रह जाती है; और, जितने कार्बनके रूपान्तर प्रकृतिमें पाये जाते हैं, उनके जलानेसे पर्याप्त मात्रामें राख रह जाती है। शुद्ध कोयला शक्करके जलानेसे रसायनशालामें तैयार होता है। स० ग०

हीरेपर उष्णताका प्रभाव डालनेके लिये उष्णताका भीषण रूप होना चाहिये। साधारण उष्णता हीरेको प्रभावान्वित नहीं करती। उस उष्णतासे, जिससे लोहेकी शलाकाएँ पिघल जाती हैं, हीरा अपने आकारको स्थिर रखता हुआ बदल जाता है और ग्रेफाइट * हो जाता है।

हीरा सब खनिज पदार्थोंमें कठोर होता है। इसके द्वारा जवाहिर, नीलम, लाल, स्फटिक आदि सब रत्न खुरचे जा सकते हैं; परन्तु कड़ाईके कारण हीरेको उपर्युक्त रत्नोंमेंसे कोई नहीं खुरच सकता। हीरे, लोहेकी एक सीधी प्लेट (Horizontal Iron Plate) द्वारा, जिसका नाम अंग्रेजीमें Schyf है; और, जिसका व्यास १० इंच होता है, काटे जाते हैं। यह प्लेट एक मिनटमें दो हजारसे लेकर तीन हजार बारतक घूम जाती है। हीरेसे काच बड़ी सफाईके साथ काटा जाता है। हीरेसे एक बाहरी निशान काचको एक ओरसे लेकर दूसरी ओरतक बना दिया जाता है। इसके बाद अङ्कित रेखाके किसी एक कोनेपर तनिक इशारा करनेसे काचके, बड़ी सफाईके साथ, दो टुकड़े हो जाते हैं। डाक्टर वालेस्टन्नने लिखा है और यह सत्य है कि, हीरा इस अभिप्रायके लिये १ इंचका दोसौवाँ हिस्सा भी काचके भीतर प्रविष्ट नहीं किया जाता है।

बहुत कालतक भारतवर्षको हीरेका एक मात्र उद्गमस्थान रहनेका श्रेय प्राप्त रहा है। १४° उत्तर अक्षांश पेन्नार नदीसे लेकर २५° उत्तर अक्षांश (बुन्देल खण्डमें, सोनके पास)तक हीरा पाया जाता था। मद्रास प्रान्तमें कृष्णाके पास कडप्पा, कारनूल और ऐलोरमें इसकी प्रधान खानें थीं। इसी प्रान्तमें भारतवर्षके कुछ बड़े-से-बड़े हीरे प्राप्त हुए थे। गोलकुण्डामें यद्यपि हीरे पैदा नहीं होते थे; परन्तु वहाँ उनका संग्रह रखा जाता था। नागपुरके निकट, महानदीपर, सम्भलपुरमें और बुन्देलखण्डान्तर्गत पन्नामें हीरेकी अनेक खानें थीं।

भारतवर्षमें हीरेकी खोजका कार्य एक जाति-विशेषके लोगोंके हाथमें था। ये अशिक्षित थे तथा इनका कार्य किसी सुव्यवस्थित प्रणालीपर स्थिर न था। यह कार्य बड़ा दुस्तर था। पन्ना और कारनूलमें अब भी खानें हैं; परन्तु पहलेकी अपेक्षा उनमें हीरे बहुत कम संख्यामें पाये जाते हैं। आजकल इन खानोंसे हीरोंके निकालनेमें जितना व्यय होता है, उतने भी मूल्यके हीरे प्राप्त नहीं होते।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त और बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें हीरोंकी आमद ब्राजिलसे भी आरम्भ हुई। मीनाज जीरीज नामक प्रान्तमें इनका अस्तित्व प्रथम ज्ञात हुआ था। वहाँ बहुत काल तक नीग्रो लोग इनसे खेला करते थे। डाइमनटीना और बेहियामें अब भी हीरेकी खास-खास खानें हैं। जब पहली दफा ब्राजिलके हीरे यूरोपमें लाये गये, तब वे भारतीय हीरोंकी अपेक्षा कम मूल्यके समझे गये।

सन् १८४४ में ब्राजिलसे २५४३ रत्तीका एक हीरा लंडन भेजा गया। यह द्वादशमुखी था; इसकी कान्ति उज्ज्वल थी। जबसे यह काटकर ठीक किया गया है, तबसे इसका वजन १२४ रत्ती हो गया है और यह "स्टार आफ दी साउथ"के नामसे विख्यात है।

हीरा सिरोमाद्री, जार्जिया और नार्थ कैरोलीना आदि अमेरिकाके प्रान्तोंमें भी पाया जाता है। कैलीफोर्नियामें दो-दो रत्तीके छोटे-छोटे हीरे पाये जाते हैं। ऐरीजोनामें भी तीन-तीन रत्तीके छोटे-छोटे हीरे पाये गये हैं।

आस्ट्रेलियामें भी १८५२ से १८५९ तक मैककारी नदीपर हीरोंका पता लगा। १८६९ में मुडगी नदीके किनारे भी हीरे मिले; परन्तु ६ रत्तीसे ऊपर वजनका हीरा आस्ट्रेलियामें नहीं निकला।

---

* संगमर्मरकी किस्मका एक पत्थर।

यूराल पर्वतको यूरोपीय दिशामें भी कुछ हीरे मिले थे; परन्तु उनमें ८ रत्तीसे अधिक वजनका कोई भी न था।

दक्षिण अफ्रीकाके हीरेके क्षेत्र बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सन् १८६७ में एक किसानने एक बोअर से एक हीरा लिया, जिससे बोअर बालक अज्ञानवश खेला करते थे। यह हीरा केप टाउन भेजा गया, जहांसे यह पेरिसकी प्रदर्शिनीमें पहुँचा। वहांसे इसका मूल्य ५०० पौंड मिला। इस घटनाके पश्चात् औरेंज और वाल नदियोंके समीप विविध स्थानोंमें हीरेकी बड़ी भारी खोज हुई। उसी समयमें उन स्थानोंमें हीरेकी खोज निकालनेका एक नियमित व्यवसाय चल पड़ा है और उपर्युक्त घटनासे आजतक १½ करोड़ पौंडके हीरे वहांसे मिले हैं। सन् १८७२ में वाल नदीमें २८८ ३/८ रत्तीका एक हीरा मिला था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि, हीरा अनेक रत्नोंपर नक्शा करने और काचको काटनेके उपयोगमें आता है। इसक अतिरिक्त इसका प्रयोग आभूषणोंमें ही अधिक होता है और इसी कारण इसका महत्त्व और भी आधक है। आभूषणोंके लिये इसे उपयोगी बनानेके निमित्त इसकी काट-छांट और पालिश की जाती है। हीरोंको साफ अथवा पालिश करनेके कई तरीके हैं। दो हीरोंको परस्पर रगड़नेसे उनपर पालिश हो जाती है और वे स्वच्छ हो जाते हैं। हीरेका पाउडर (पिसा हुआ हीरा) भी हीरोंको साफ करनेके निमित्त काममें लाया जाता है। पहले ३० या ४० रत्तीके हीरेको काटनेमें आठ-आठ सात-सात महीने लग जाते थे तथा पिट डायमण्डको साफ करनेमें तो दो वर्षका समय लगा था; परन्तु आज कल वाष्प द्वारा सञ्चालित मशीनरीसे यह कार्य बहुत सुगम हो गया है।

हीरेका मूल्य उसके आकार, शुद्धता, वर्ण, निर्दोषिता और उसके तैयार करनेकी होशियारीपर निर्भर होता है। साधारणतया हीरा अपने वजनके एक हजार गुने सोनेसे भी अधिक मूल्यवान् होता है। हीरेका मूल्य प्रति रत्तीके हिसाबसे होता है। इसके मूल्यमें ही रत्तियोंके वर्गफलके अनुसार वृद्धि होती है। जैसे एक रत्ती वजनके हीरेका मूल्य यदि ८ पौंड है, तो २ रत्ती वजनके हीरेका मूल्य ३२ पौंड और ३ रत्ती वजनके हीरेका मूल्य ७२ पौंड होगा।

यहां संसारके कुछ विख्यात हीरोंका वर्णन करना असङ्गत न होगा। प्रथम ओरलोफ डायमण्ड १६४ ३/८ रत्तीका है। कुछ लोगोंका मत है कि, यह पहले किसी भारतीय प्रतिमामें नेत्रके स्थानपर लगा हुआ था, जहांसे यह किसी फ्रेंच द्वारा चुराया गया। यह नादिरशाहकी हत्याके बाद एक आरमीनियन सौदागरके हाथ आया। अन्तमें यह ९०००० पौंडमें रूसके ज़ारके पास आया। दूसरा रीजेंट अथवा पिट डायमंड मद्रासके गवर्नर मिस्टर पिट द्वारा २०००० पौंडमें खरीदा गया था। उन्होंने उसे लंडन ले जाकर ३००० पौंड व्यय करके उसकी काट-छांट करायी और सन् १७१७ में १३०००० पौंडमें लर्ड पन्द्रहवेंके लिये ड्यूक आफ ओरलीन्सको बेच दिया; परन्तु उस समय भी इसका मूल्य इससे दुगुना कूता जाता था। पीछे यह नेपोलियनकी तलवारकी मूँठमें लगा। तीसरेका नाम फ्लोरेंटाइन अथवा ग्राण्ड ड्यूक है। इसका वजन १३९ १/४ रत्ती है। आजकल यह आस्ट्रियाके राज-घरानेमें है। कोहिनूर ब्रिटिश साम्राज्यका सबसे बड़ा हीरा है। यह गोलकुंडाकी खानोंमें प्राप्त हुआ था और कहते हैं कि, ५००० वर्ष पूर्व यह महाभारतके कर्ण द्वारा पहना जाता था। टैवर्नियरके मतानुसार इसका वजन शुरूमें ७९३ ५/८ रत्ती था, जो किसी बुद्धिशून्य कारीगरके हाथसे काटा जाकर २८० रत्ती ही रह गया। आज कल यह सम्राट् पञ्चम जार्जके पास है और अब इसका वजन केवल १०६ रत्ती है।

अबरकके उपयोग और उत्पत्ति*

अध्यापक निरञ्जनलाल शर्मा एम० एस-सी०

अबरक एल्यूमीनम तथा खारों (Alkalies)के सिलीकेट होते हैं और कई अबरकोंमें इनके साथ मेगनीशियम और लोहेके आक्साइड (Oxide) भी सम्मलित होते हैं। अबरकोंमें मुख्यत; बायोटाइट (काला अबरक) तथा मस्कोवाइट (सफेद अबरक) हो अधिक मिलते हैं। सफेद अबरकमें कालेसे सिलीका (बालू) अधिक और एल्यूमीना बहुत अधिक परिमाणमें होता है; परन्तु लोहेके आक्साइड और मेगनीशिया बहुत कम होते हैं। दोनों प्रकारके अबरकोंमें जलका भी कुछ अश रहता है। इसका परिमाण सफेद अबरकोंमें ७ प्रतिशत तक और कालेमें १५ प्रतिशततक होता है। जलका यह अंश अबरकोंमेंसे अधिक तप्त करनेपर ही निकल सकता है।

अबरकोंको प्रायः अत्यन्त पतली-पतली परतोंमें पृथक् किया जा सकता है। ये परतें अधिकतः पारदर्शक (Transparent) होती हैं। सफद अबरककी परते काचके समान रंगसे हीन होती हैं।

अबरकके उपयोग—प्राचीन हिन्दू ग्रन्थोंमें अबरककी कई किस्मोंका उल्लेख है। इन ग्रन्थोंमें रंगहीन या सफेद अबरकको ब्राह्मण-वर्ण, लालको क्षत्रिय-वर्ण, पीलेको वैश्यवर्ण तथा कालेको शूद्र-वर्गका अबरक लिखा है। औषधीय गुणोंके अनुसार अबरकोंको 'पिनका', 'दादुर', 'नाग' तथा 'वज्र' नामक श्रेणियोंमें विभाजित किया गया है। पिनका-अबरकको अग्निमें डालनेसे उसकी परतें अलग-अलग हो जाती हैं और इसके सेवनसे मनुष्यको कुष्ट रोग हो जाता है। दादुर-अबरक अग्निमें पड़नेपर मेढकके बोलनेके समान आवाज करता है। इसके सेवनसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। नाग अबरकको तप्त करनेपर सर्पकी फुफुकारके समान शब्द होता है। इसको खानेसे मनुष्यके शरीरमें घाव हो जाते हैं। वज्र-अबरकपर अग्निका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसके सेवनसे मनुष्यकी निर्बलता दूर होती है और वह अकाल मृत्युसे बच जाता है।

पश्चिमीय देशोंमें भी, प्राचीन कालमें, अबरकका प्रयोग औषधोंमें होता था। संग्रहणी रोगमें शराबके साथ अबरकके बुरादेका सेवन तथा फोड़ोंमें जले हुए बुरादेका प्रयोग किये जानेके वृत्तान्त पश्चिमीय ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

आधुनिक कालमें काले अबरकका उपयोग नहीं होता। हाँ, सफेद अबरक तथा पीतवर्ण अबरक (Phlogopite) बहुत उपयोगी हैं। ये अबरक अपनी स्वच्छता, लचक (Elasticity), तड़क (Cleavage) तथा बिजली और गर्मीके लिये अचालकता (Non-Conductivity) इत्यादि गुणोंके कारण बड़े उपयोगी प्रमाणित हुए हैं। इन गुणोंके अतिरिक्त इन अबरकोंपर—विशेषतः सफेदपर—रासायनिक पदार्थोंका भी बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

चमकदार होनेके कारण अबरकका भारतवर्षमें पुराने समयसे ही हिन्दू-देवताओंकी प्रतिमाओंको सजाने, मुसलमानोंके ताजियोंको बनाने तथा विवाह इत्यादि उत्सवोंपर वरके मुकुट और फुलवाड़ी इत्यादिके लिये उपयोग होता रहा है। भारतीय स्त्रियोंके मस्तककी बिन्दीके लिये तथा कपड़ोंके रँगनेमें भी इसका प्रयोग होता रहा है।

अपनी स्वच्छता तथा पतली-पतली परतोंमें पृथक् हो जानेकी रुचिके कारण अबरक लालटेनकी चिमनियां और मकानोंकी खिड़कियोंमे बहुत समयसे काम आ रहा है। इन चीजोंके लिये काचका आविष्कार होनेसे पहले कदाचित् अबरकका ही प्रयोग किया जाता रहा होगा। आजकल भी चिमनियां बनानेके लिये काचसे अबरक अधिक उपयोगी होता है; क्योंकि शीशेकी तरह ठंडी वायुके झोकोंसे अथवा मेंहकी बूंदोंसे अबरकको चिमनियोंके चटक जानेका डर नहीं रहता।

अबरकमें होकर गर्मी शीघ्र आर-पार नहीं जाती; ४००° — ६००° (सेंटीग्रेड) तक अबरककी स्वच्छतामें भी कोई अन्तर नहीं पड़ता; इस कारण कारखानोंमें भट्टियोंके मुँहपर स्वच्छ अबरक लगा रहता है। अबरकमेंसे भट्टीके अन्दरकी क्रियाएँ सरलतासे देखी जा सकती हैं; और, ऐसा करते समय अग्निकी गर्मीसे मुँह झुलस जानेका डर भी नहीं रहता। इसके अतिरिक्त अबरक अन्य अग्नि-प्रतिरोधक पदार्थोंके समान बायलर (Boiler) के ऊपर भी लगाया जाता है, जिससे वे अधिक ठंडे नहीं पड़ते; और, इस कारण, उनसे अधिक कार्य लिया जा सकता है।

तापके ही समान अबरक बिजलीको भी अपने आर-पार नहीं निकलने देता। इस गुणके ही कारण अबरक आधुनिक कालमें बिजलीकी मशीनोंके लिये एक अत्यन्त उपयोगी पदार्थ सिद्ध हुआ है। इन मशीनोंमें अबरककी परतोंका रोधक-पदार्थ (Insulator)के रूपमें प्रयुक्त होता है। छोटे-छोटे डाइनामो (Dynamo) और मोटरोंके कम्यूटेटर (Commutator) में स्वच्छ अबरककी ०·६ से १·० मिलीमीटरतक पतली परतोंकी आवश्यकता होती है। इनके लिये अबरक ताँबेके बराबर मुलायम होना चाहिये; क्योंकि ताँबेके साथ ही अबरककी परतोंको भी मोड़कर लगाया जाता है। इस दृष्टिसे पीला अबरक (Phlogopite) अधिक उपयुक्त है; परन्तु संसारमें सफेद अबरकसे पीला बहुत कम मिलता है। इस कारण हरे रंगका भारतीय अबरक इस प्रयोगमें अधिक लाया जाता है।

बिजलीकी बड़ी-बड़ी मशीनोंमें रोधनके लिये स्वच्छ अबरककी बहुत बड़ी परतोंकी आवश्यकता होती है; क्योंकि अबरकका मूल्य उसकी स्वच्छता और आकारपर निर्भर होता है। इस कारण ऐसी मशीनोंको रोधित करनेमें बहुत व्यय होता है। परन्तु आजकल यह कार्य अबरकके छोटे-छोटे टुकड़ोंको चपड़े इत्यादिसे चिपकाकर माइकेनाइट (Micanite) नामक पदार्थसे कर लिया जाता है। इस प्रकार माइकेनाइटकी बड़ी-बड़ी परतें अबरककी परतोंके समान ही तैयार कर ली जाती हैं और वे अबरकसे कहीं सस्ती पड़ती हैं। सस्तेपनके अतिरिक्त उक्त प्रकारसे तैयार किये हुए माइकेनाइट अबरकके मुकाबिले अन्य प्रकारसे भी अच्छा प्रतीत हुआ है। अबरककी परत प्रायः एक समान पतली कठिनतासे की जा सकती है और अबरकमें कभी-कभी अनेक लोहेके आक्साइड इत्यादिके धब्बे होते हैं, जिनसे उसकी रोधक-शक्ति कम हो जाती है। परन्तु माइकेनाइटकी किसी भी आकारकी और कितनी ही पतली परत बनायी जा सकती है और वह अधिक स्वच्छ होती है। ये परतें साधारण अबरककी प्राकृतिक परतोंसे अधिक चिपकी हुई भी रहती हैं। भारतमें अभी तक अबरकके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे माइकेनाइट बनानेका कोई कारखाना नहीं है; इसी कारण प्रत्येक अबरककी खानके बाहर सेकड़ों मन रद्दी अबरकके ढेर पड़े हुए दृष्टिगोचर होते हैं। अबरकके इन छोटे टुकड़ोंकी माँग बिल्कुल ही नहीं है।

अबरककी स्वच्छ पतली परतें काचसे कहीं अधिक हल्की होनेके कारण उसके स्थानपर हवाई जहाजोंमें प्रयुक्त की जाती हैं। क्योंकि अबरकमें बहुत लचक होती है और उसकी पतली पतर ध्वनिकी तरङ्गों (Sound waves)के लिये बड़ी सुग्राहक (sensitive) है;

इस कारण अबरककी पतली परतोंका ग्रामोफोनका डायाफ्राम (Diaphrogm) बनानेमें प्रयोग होता है। लचकके ही कारण अबरककी परतोंके चश्मे बनाये जाते हैं, जिनको पहनकर खदानों इत्यादिमें काम किया जा सकता है। ऐसे स्थानोंपर पत्थरके कणोंके उछल कर आँखोंके अन्दर चले जानेका डर रहता है और काचके चश्मे काम नहीं दे सकते।

अबरकका बुरादा रंगोंमें मिलाने तथा मशीनोंमें चिकनाई देनेके काममें आता है। परन्तु अबरकका बुरादा बनानेके लिये विशेष प्रकारकी मशीनकी आवश्यकता है; क्योंकि साधारण रूपसे अबरकको पीसा नहीं जा सकता। १००० डिग्री (सेंटीग्रेड)तक गर्म करनेके पश्चात् अबरकका बुरादा सरलता-पूर्वक बन सकता है।

भारत जैसे गर्म देशमें अबरकका एक और उपयोग हो सकता है। यदि इसके खपड़ैल बनाये जा सकें, तो खपड़ैलके मकान गर्मीमें अधिक गर्म न रहा करेंगे। यह देखा गया है कि, यदि किसी छतके नीचे अबरककी ६ इंच मोटी तह दे दी जाय, तो गर्मीमें छतके नीचेका टेम्प्रेचर १५ डिग्री (सेंटीग्रेड) कम हो जाता है।

अबरककी भौगर्भिक उत्पत्ति—ग्रेनाइट (Granite) नामक आग्नेय (igneous) शिलामें अथवा शिष्ट (schist) और नाइस (gneiss) नामक परिवर्तित (metamorphic) शिलाओंमें सफेद या काले अबरकके छोटे छोटे टुकड़े प्रायः होते हैं। सफेद अबरक उक्त शिलाओंके कणोंसे बने हुए जलज बालूके पत्थरमें भी अकसर छोटे कणोंके रूपमें पाया जाता है; परन्तु सफेद अबरकके बड़े-बड़े टुकड़े धारियों (veins) के रूपमें बनी हुई पेग्मेटाइट [pegmatite] नामक आग्नेय शिलाओंमें ही मिलते हैं। पेग्मेटाइट मुख्यतः स्फटिक [quarts] तथा फेलस्पार [felspar] नामक खनिजोंसे बनी हुई शिला होती है और सफेद अबरक भी उसमें थोड़ा बहुत रहता है। इन खनिजोंके साथ टूर्मेलीन [tourmaline], गार्नेट [garnet], बेरिल [beryl] और एपेटाइट [apatite] नामक खनिज भी पेग्मेटाइटमें बड़े-बड़े क्रिस्टलके आकारमें मिलते हैं। इन खनिजोंके निर्माणमें बोरन [boron], फ्लोरीन [fluorine], जल तथा सिलीका इत्यादिके वाष्पोंका अधिक कार्य रहता है; इस कारण भूगर्भवेत्ताओंका विचार है कि, जिस द्रव पदार्थसे पेग्मेटाइट बनी है, उसमें इन वाष्पोंका बाहुल्य रहा होगा और इन्हींके कारण वह पदार्थ पृथ्वीतलके नीचे बहुत धीरे-धीरे ठंडा हुआ होगा, जिससे अबरक तथा अन्य खनिजोंके इतने विशाल आकारके क्रिस्टल पेग्मेटाइटमें बन सकें; क्योंकि पेग्मेटाइटका साधारण रासायनिक तथा खनिजात्मक संघटन ग्रेनाइट नामक शिलाके समान ही है और वह प्रायः ग्रेनाइटके पिण्डोंके आस-पास ही अधिकतः मिलती भी है; इस कारण खनिजशास्त्रके विद्यार्थियोंका विचार है कि, पृथ्वीतलके नीचे जब किसी [ग्रेनाइट बनानेवाले] द्रव पदार्थका भीतरसे प्रवेश होता है और उस पदार्थके ऊपरसे धीरे-धीरे ठंडा पड़कर ग्रेनाइट नामक शिलाका निर्माण होने लगता है, तब अन्तमें जमे हुए भागके नीचे कुछ द्रव पदार्थ शेष रह जाता है और स्वभावतः उसमें वाष्पोंका बाहुल्य होता है। वह पदार्थ कम तापक्रम [temperature] पर भी द्रव दशामें रह सकता है। बादको ऊपरके दबावके कारण वह पदार्थ ग्रेनाइटको ठोस परतकी, अथवा उसके ऊपरकी पूर्वस्थित शिलाओंकी, दरारों [fessures]में घुस जाता है और वहाँ बहुत धीरे-धीरे ठंडा होने लगता है; क्योंकि उसमें वाष्पोंका बाहुल्य रहता है। इस प्रकार विशाल क्रिस्टलदार पेग्मेटाइट नामक शिला उत्पन्न होती है, जो कालान्तरमें पृथ्वीकी ऊपरी सतहके जल इत्यादिकी क्रियाओंसे घुलकर नष्ट हो जानेपर पृथ्वीतलपर दृष्टिगोचर होने लगती है।

पेग्मेटाइटमेंसे अबरककी प्राप्ति—उक्त वृत्तान्तसे यह स्वयंसिद्ध है कि, पेग्मेटाइट पृथ्वीतलसे दीवारके समान खड़ी अन्दर चली जाती होगी। इस दीवारमें-से दोनों ओर अनेक शाखाएँ भी होती हैं। ये शाखाएँ पूर्व स्थित शिलाओंकी तड़क तथा तह इत्यादि-के तलोंसे पर्याप्त लाभ उठाकर उन्हींके रास्ते अधिक प्रवेश करती हैं। लम्बाईमें पेग्मेटाइट थोड़े गजोंसे मीलोंतक और मोटाईमें कुछ इंचसे कई सौ फीट-

अबरकदार-पेग्मेटाइट का चित्र
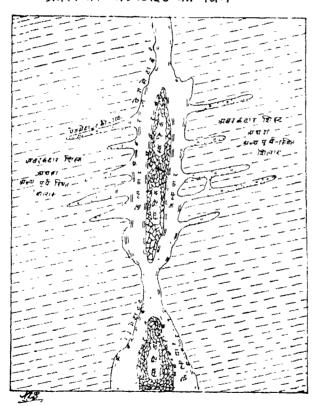
तक हो सकती है। तीन-चार फीटोंसे पतली पेग्मे-टाइटमें अच्छा अबरक नहीं मिलता। किसी पेग्मेटाइट-की मोटाई प्रत्येक स्थानपर एक नहीं होती। अधिकतः वह बीच-बीचमें पतली हो जाती है। इस प्रकार किसी विशेष पेग्मेटाइटमें बहुत दूर तक कार्य नहीं कर सकते। यह आवश्यक नहीं है कि, किसी पेग्मेटाइटमें प्रत्येक स्थानपर एक ही प्रकार और आकारके खनिज प्राप्त हों; इस कारण प्रत्येक पेग्मेटाइटका, अबरकके लिये, कई स्थानों पर निरीक्षण करनेकी आवश्यकता होती है और आरम्भमें पेग्मेटाइटका उचित मूल्य नहीं कूता जा सकता।

भारतीय पेग्मेटाइटमें अबरकका औसत परिमाण ६ प्रतिशत होता है अर्थात् १०० मन पत्थर खोदनेपर ६ मन अबरक प्राप्त होता है। इस अबरक को काट-छाँटकर केवल १ मन ही उपयोगी अबरक रह जाता है। यह देखा गया है कि, पेग्मेटाइटके बीचमें स्फटिकका बाहुल्य होता है, जिसमें काले टूर्मेलीन तथा हरे बेरिलके बड़े-बड़े क्रिस्टल (कई फीट लम्बे) मिलते हैं। स्फटिकको दोनों तरफ अर्थात् पेग्मेटाइटकी दोनों ओरके किनारोंमें फेलस्पार नामक खनिज होता है। अबरककी बड़ी-बड़ी परतोंके उपयोगी समूह (books) या तो फेलस्पार और स्फटिकके बीचमें दोनों ओर या फेलस्पार और पूर्व-स्थित शिलाओंके बीचमें दोनों तरफ मिलते हैं। यही कारण है कि, अबरकदार पेग्मेटाइटके दोनों किनारोंके पास प्रायः दो खदानें बनाकर अबरक निकाला जाता है। पेग्मेटाइटमें अबरककी स्थिति इत्यादि इस चित्रसे भली प्रकार प्रकट हो सकती है। पेग्मेटाइट पत्थरकी खदान बनाकर निकाला जाता है और जब गहराई अधिक हो जाती है, तब लकड़ी या लोहेकी सीढ़ियों द्वारा नीचे जाकर और खोदकर पत्थर ऊपर लाया जाता है। पेग्मेटाइट पत्थर बहुत कड़ा होता है और प्रतिदिन उसको पहले बारूदसे तोड़ा जाता है। पत्थरके तोड़ने या खोदने

में बड़ी सावधानी रखी जाती है; क्योंकि अबरककी परतों-के समूहपर हथौड़े या छेनीकी चोटसे अबरककी स्वच्छता-से हाथ धो बैठनेका डर रहता है।

अबरकके ये समूह खानके पत्थरसे निकालकर कार-खानोंमें लाये जाते हैं, जहांपर उनकी चारों ओरके टूटे हुए तथा धब्बेदार भागोंको हसिये (Sickle) से काट-छाँटकर निकाल दिया जाता है। जहां तक सम्भव हो, अबरककी अच्छी परतोंको बड़े-से-बड़ा गोल कोनेदार चतु-र्भुजीय आकार देनेका प्रयत्न किया जाता है। भारतीय अबरकके क्षेत्रोंके मजदूर अबरककी काट-छाँटकी निपुणतामें संसारमें प्रसिद्ध हैं। मशीनों द्वारा भी इतनी अच्छी तरहसे अबरकको उचित परिमाणमें नहीं काटा जा सकता। इस क्रियाके पश्चात् कई कारखानोंमें अबरकके इन समूहोंमेंसे अबरककी भिन्न-भिन्न परतें पृथक् की जाती हैं। अबरकका मूल्य उसकी स्वच्छता तथा उसके आकारपर ही निर्भर है। अबरकका टुकड़ा जितना ही अधिक स्वच्छ और बड़े आकारका होगा, उतना ही वह अधिक मूल्यवान् होगा। धब्बेदार या छोंटेदार अथवा तड़के हुए अबरकके टुकड़े किसी कामके नहीं होते, चाहे वे कितने ही बड़े हों। प्रत्येक अबरकके व्यापारीका उद्देश्य अबरकके स्वच्छ और बड़े-बड़े टुकड़े प्राप्त करनेका होता है।

बिहार प्रान्तमें छाँटे हुए चतुर्भुजीय अबरकके आकार-के अनुसार अबरककी निम्नलिखित श्रेणियाँ नियत की गयी हैं। ये श्रेणियाँ अब संसार भरके अबरकके व्यापारमें प्रसिद्ध हैं—

श्रेणीका नम्बर—आकार (चतुर्भुजका क्षेत्रफल)

श्रेणी-विशेष	४८-६४ वर्ग इंच
" नं० अ १	३६-४८ "
" नं० १	२४-३६ "
" नं० २	१५-२४ "
" नं० ३	१०-१५ "
" नं० ४	६-१० "
श्रेणी-विशेष	वर्ग इंच
,, नं० ५	३-६ "
,, नं० ५½	२½-३ "
,, नं० ६	१-२½ "
,, नं० ७	१ वर्ग इंचसे छोटा

इन श्रेणियोंमें अधिकतः न०४ और उससे बड़े आका-रके अबरककी ही माँग होती है; परन्तु अब पश्चिमीय देशोंमें माइकेनाइट बनानेके लिये उक्त श्रेणीसे छोटे टुकड़ोंका भी प्रयोग हो रहा है। अबरकका औसत मूल्य सब आकार मिलाकर १) प्रति पौंड पड़ता है; पर एक समय न० १ का स्वच्छ अबरक १३००) प्रति मन बिक चुका है।

भारतवर्षमे अबरकके क्षेत्र—गत ३५ वर्षोंसे भारत अबरककी उपजमें संसारमें अग्रदेश रहा है। संसारमें संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा भारत ही अबरकके लिये प्रसिद्ध हैं; परन्तु इन तीनों देशोंकी उपजमे भारतका भाग लगभग ८५ प्रतिशत रहता है। इस देशमें अबरकदार पेग्मेटाइट अनेक स्थानोंपर मिलती है। बिहार-उड़ीसा, मद्रास, ट्रावंकोर, मैसूर तथा अजमेर-मारवाड़में अबरक बहुत मिलता है। इन सब स्थानोंमेंसे मुख्य क्षेत्र केवल प्रथम दो प्रान्तोंमें ही है।

बिहार-उड़ीसामे अबरकका क्षेत्र गया, हजारीबाग और मुंगेर जिलोंमें वर्तमान है। यह क्षेत्र १२ मील चौड़ा और ६० मील लम्बा है। अधिकतर अबरककी खानें कुडर्मा, दोम-चाँच, धाब, गवन तथा तिसरी इत्यादि स्थानोंपर हैं। इन स्थानोंके नाम विदेशोंमें भी विख्यात हैं। इस क्षेत्रकी खानोंमें "क्रेश्चयन कम्पनी"की खानें सबसे प्रसिद्ध और बड़ी हैं। इस क्षेत्रके अबरकको अबरकके व्यापारमें "बङ्गालका अबरक" अथवा "बङ्गालका लाल अबरक" कहते हैं, क्योंकि इस अबरकका रंग [विशेषतः परतोंके समूहका] फीके लाल रंगका होता है और यह अबरक बङ्गालकी राजधानी कलकत्तासे ही विदेशोंको भेजा जाता है।

अबरकका दूसरा मुख्य क्षेत्र मद्रासके नैलोर जिलेमें है। क्षेत्रफलमें यह भी बिहारके क्षेत्रके बराबर ही है। कालीचेडू तथा तेलाबोडूमें प्रसिद्ध खानें हैं। नैलोरका अबरक हरे रंगका होता है। बिहारका अबरक अनियमित आकारमें इसियेसे काटकर ही विदेशोंको भेज दिया जाता है; परन्तु नैलोरका अबरक समचतुर्भुजीय आकारकी परतोंमें कैंचीसे काटकर भेजा जाता है। इस कारण यहाँके अबरक की श्रेणियाँ बिहारके अबरकसे भिन्न-भिन्न आकारकी होती हैं।

भारतवर्षके कुल अबरककी उपजका ९९ प्रतिशतसे अधिक भाग केवल बिहार और मद्रासके इन्हीं दो क्षेत्रोंसे निकलता है। हर्षका विषय है कि, अबरकके लिये भारत संसारमें प्रथम देश है और बिहार तथा मद्रास उसके मुख्य दो प्रान्त हैं। इन प्रान्तोंके निवासियोंका कर्त्तव्य है कि, वे भारतके इस उच्च स्थानको स्थिर रखें।*

वनस्पतिरोगनिवारणके सिद्धान्त

प्रोफेसर अक्षयवटलालजी एम० एस-सी०

यह सभी जानते हैं कि, वनस्पति मनुष्यके कितने कामके हैं। इन्हींपर प्रायः हमारा भोजन तथा वस्त्र निर्भर है। ये ही हमको गृहनिर्माणके लिये सामान देते हैं और इन्हीसे बनी हुई सवारियोंपर हम यात्रा करते हैं। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे ये हमारी अनेक आवश्यकताओंको पूर्ण करते हैं। मनुष्योंकी भाँति वनस्पति भी रोगसे पीड़ित होते हैं और असामयिक मृत्युको प्राप्त होते हैं। कभी-कभी तो बीमारियोंसे फसलको इतना नुकसान पहुँचता है कि, दुर्भिक्षका सामना करना पड़ता है। अतः इनके रोग दूर करनेकी विधि प्रत्येक मनुष्यको, विशेषतः कृषकोंको, जानना आवश्यक है।

वनस्पतियोंकी व्याधि दूर करनेके लिये उनका उत्पत्ति-ज्ञान, उन जीवाणुओंके जीवनका ज्ञान, जिनसे बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं, रोगक्षीणता और वृद्धिके प्रत्येक कारण, बाहरी अवस्था (जैसे हवा, पानी गर्मीसे, बीमारीके सम्बन्धका ज्ञान) तथा रोगके यथार्थ कारणका निर्णय आवश्यक है। इन सब बातोंका ज्ञान होनेसे बीमारियोंका दमन सुगमतासे हो सकता है।

रोग-निवारणकी प्रायः चार मुख्य विधियाँ—

१ प्रवेश-निषेध (Quarantive)

२ उन्मूलन (Eradication)

३ परित्राण (Protection)

४ प्रतिरोध-क्षमता-उत्पादन (Resistance)

इनमें प्रवेश-निषेध, उन्मूलन तथा प्रतिरोध-क्षमता-उत्पादन, इन तीन विधियोंसे स्थायी रक्षा होती है; पर

---

* इस लेखमें निम्नलिखित पुस्तकोंसे सहायता ली गयी है, जिसके लिये लेखक उन पुस्तकोंके लेखकोंका कृतज्ञ है—

(1) S. K. Roy—"Report on the mica and the mica Industry of Bihar & Orrissa. Bulletin 41 Rs. (Department of Industries B & O) 1932.

[2] L. L. Fermor—Quinquennial Review of mineral Production of India for 19-2428 Mem. G. S. I. Vol. LXIV 1930

[3] Hans Zeitler—"Mica, its histoy production and Utilization. London. 1913.

[4] T. H. Holland—"Mica deposits of India" Mem G. S. I. Vol 34 Pt. 2. 1902

परित्राण-विधि थोड़े ही दिनोंके लिये काम देती है। इस विधिके अनुसार दवा बार-बार कुछ समयके बाद दुहरानी पड़ती है।

प्रवेश-निषेध—साधारणतः बीमारियोंके रोकनेका सबसे आसान तरीका यह है कि, उनको एक देशसे दूसरे देशमें प्रवेश करने और स्थायी होनेसे रोका जाय; पर वनस्पतिके अनेक अङ्गोंपर, जिनमें कि, मिट्टी लगी रह जाती है, रोगाणुके अस्तित्वका निर्णय करना प्रायः असम्भव है। अतः ऐसी वस्तुओंका, किसी अन्य देशमें, प्रवेश कानून द्वारा रोका जाता है। बीमारियाँ यदि किसी नये देशमें पहुँच जाती हैं, तो उनको संहार-क्रियाका परिमाण बढ़ जाता है—जैसे नीबूपर "साइट्रस केंकर" की बीमारी। यह बीमारी जापान तथा लगभग समस्त एशियामें होती है; पर यहाँ यह इतनी हानिकारक नहीं है, जितनी कि फ्लोरिडामें, जहाँ उसके विध्वंसका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। इसी भाँति और बहुतसी बीमारियाँ हैं, जो दूसरे मुल्कोंमें पहुँचकर बड़ा नुकसान पहुँचाती हैं। बीमारियाँ नये प्रदेश में पहुँचकर अधिक नुकसान करती हैं। वजह यह है कि, नये प्रदेशमें बीमारी न होनेके कारण पौधोंमें उनका सामना करनेकी क्षमता नहीं रहती। इसी कारण जापानके "चेस्ट-नट" में रोग-प्रतीकारकी क्षमता होती है; पर अमेरिकाके "चेस्टनट" ब्लाइट बीमारीसे अधिक आक्रान्त होते हैं। ऐसे देशोंमें, जहाँ कि, बीमारियाँ चिर कालसे हैं, यह क्षमता उत्पन्न हो जाती है। अतः बीमारियोंसे बचनेके लिये कानून द्वारा उनका प्रवेश-निषेध अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे कानून आज कल हर एक मुल्कमें हैं। किसी-किसी बीमारीके विषयमें तो प्रवेशका बिलकुल निषेध होता है (जैसे कि, आलूके "वार्ट" रोगके विषयमें है)। यह बीमारी आयरलैंडमें अधिकतासे होती है। इसका प्रवेश प्रायः सभी देशोंमें कानून द्वारा रोका गया है। इसी भाँति धानके "निमटोड" बीमारीका प्रवेश (जो छोटे छोटे कीटाणुओंसे होता है और हिन्दुस्थानमें अधिकतासे है) फिलीपाइनमें (जहाँ कि, यह बीमारी नहीं पायी जाती है) कानून द्वारा वर्जित है। इस कानूनके अनुसार कोई वस्तु जब एक देशसे दूसरे देशमें आती है, तब वह कृषि-विभागके निरीक्षक द्वारा जाँची जाती है। यदि जाँच करनेपर कोई व्याधि न हुई, तो मुल्कमें प्रवेश की आज्ञा मिलती है। नहीं तो "फ्युमी-गेशन" या अन्य किसी विधिसे उसके जीवाणुओंको मारने का प्रयत्न किया जाता है। यदि फिर निरीक्षण करनेपर जीवाणु न मिले, तो वस्तु देशमें व्यवहारके लिये भेजी जा सकती है; और, यदि जीवाणु हैं, तो वे वस्तुएँ या तो लौटा दी जाती हैं या जला दी जाती हैं।

उन्मूलन-विधि—व्याधि उत्पन्न करनेवाले जीवाणुका नाश करना ही इस विधिका लक्ष्य है। प्रवेश निषेध-विधि सफल न होने पर यह विधि काममें लायी जाती है। इसके अनुसार किसी निश्चित स्थानमें बीमारी उत्पन्न करनेवाले जीवाणुओंका पूर्णतया नाश किया जाता है। इस विधिसे पूर्ण रक्षा होनी बहुत कठिन है; क्योंकि उपर्युक्त जीवाणु अन्य वनस्पतियों या कूड़ोंके ढेरपर जीवित रहते हैं। इस विधिके अनुसार कुछ वनस्पतियोंका नाश करके दूसरोंकी रक्षा की जाती है। यह प्रथा नारियलकी बीमारी "बडराट" दूर करनेके लिये भारतवर्ष तथा फिलीपाइनमें प्रचलित है। रोगग्रस्त वनस्पतिको पूर्णतया नष्ट करनेकी कई रीतियाँ हैं—

१—रोगग्रस्त वनस्पतिको उखाड़कर समूल नष्ट करना (इस क्रियाको "रोगिंग" कहते हैं)। इस क्रियासे "मोजेक"-ग्रस्त वनस्पति नष्ट किये जाते हैं—जैसे गन्ना और गोभी।

२—पौधोंके रोगग्रस्त अङ्गको काट देना, जिससे बीमारी न फैलने पावे।

३—कुछ जीवाणु ऐसे हैं, जो मुख्य आधार वनस्पतिके न रहनेपर अन्य जंगली पौधोंपर जीवित रहते हैं। ऐसे जंगली पौधोंका जड़से उखाड़ कर जला देना या और किसी भाँति नष्ट कर देना। जैसे कि, गेहूँकी बीमारी

"रस्ट"के जीवाणु गेहूँके न रहनेसे "बारबेरी" झाड़पर जीवन व्यतीत करते हैं; अतः "बारबेरी"को नष्ट करनेसे गेहूँकी इस बीमारीका अन्त हो जाता है। चूँकि इस बीमारीसे गेहूँकी खेतीका बड़ा नुकसान पहुँचता है; इसलिये अमेरिका और यूरोपमें इसका नाश करनेके लिये कानून भी बन गये हैं। नीबूकी "साइट्रस कैंकर"की बीमारी फ्लोरिडा प्रान्तमें, इसी उन्मूलनविधिसे, नष्ट की गयी है। सन् १६१४ ई० में इस प्रान्तमें १५१५६ नीबूके पेड़ इसी रोगसे आक्रान्त थे; पर उनका जला देनेका यह फल हुआ कि, १६२६ ई० में कोई भी पेड़ रोग-ग्रस्त न रहा।

परित्राण--इस विधिक द्वारा बीमारीसे पूरा बचाव नहीं होता। पूरा फायदा उठानेके लिये उसका प्रयोग बार-बार करना पड़ता है। वनस्पतियोंको, इस विधिके द्वारा, बीमारीसे बचानेके लिये कई भिन्न भिन्न क्रियाएँ हैं। जैसे —

(१) कृषिकी विधिमें परिवर्त्तन (Cultural improvement)

(२) फसलकी सफाई

(३) फसलका परिवर्तन

(४) मिट्टीमें रहनेवाले जीवाणुओंका नाश

(५) बीजकी जाँच और उनकी चिकित्सा

(६) अभिसिञ्चन (Spraying)

(१) कृषिकी विधिमें परिवर्तन—बहुतसी बीमारियाँ वनस्पतिकी दुर्बलताके कारण होती हैं। पौधोंके कमजोर जमीनपर होने या जोताई ठीक न होनेके कारण भी बीमारियाँ हो जाती हैं। बहुतसे स्वाभाविक रोग ऐसे हैं, जो जोताई और फसलके हेर-फेरसे ही जा सकते हैं। इसी भाँति बहुत बीमारियोंके जीवाणु घास इत्यादिपर भी रहते हैं, जिनसे फसलका बहुत नुकसान होता है। पौधोंको सुखानेवाली बीमारी "फ्युजेरियम" तथा "हेल्मेन्थोस्पोरियम" जीवाणुओंसे ही उत्पन्न होती है। ऐसी बीमारियोंको नष्ट करनेके लिये घास इत्यादिको खेतसे निकाल देना चाहिये; क्योंकि घासके जीवाणु फसलतक पहुँचकर बीमारी पैदा करते हैं।

(२) फसलकी सफाई—यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, बीमारियाँ जीवाणुके फैलनेसे ही होती हैं; अतः रोग-ग्रस्त वनस्पतिको या उनके उन हिस्सोंको, जो व्याधिसे आक्रान्त हों, काटकर निकाल देना या नष्ट कर देना ही बीमारीको रोकनेका सहज उपाय है। इसीको फ़सलकी सफाई कहते हैं। सफाई निम्नाङ्कित रूपसे की जाती है—

(१) शल्य-चिकित्सा—पौधेके रुग्ण भागको काटना और उसको जला देना। इसके बाद पौधेके कटे हुए स्थानको जीवाणुनाशक द्रवसे धोना और उसपर गरम "एस्फेल्टम" या अलकतरा पोत देना। कहीं-कहीं तो पेड़ोंके खोखलेको "कोरोसिव सब्लिमेट"से धोकर सिमेंट भर देते हैं।

(२) बीमारी उत्पन्न करनेवाले बहुतसे जीवाणु ऐसे होते हैं कि, वे दो वनस्पतियोंपर अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे जीवाणुओंसे मुख्य वनस्पतिको बचानेके लिये अन्य वनस्पतिको नष्ट करना चाहिये, ताकि फिर पौधोंपर आक्रमण करनेके लिये जीवाणु न प्राप्त हों।

(३) उन वस्तुओंका नाश करना, जिनपर जीवाणु निष्क्रिय अवस्थामें रहते हैं। जैसे खेतमें छूटी हुई जड़, पत्ती इत्यादि। इनको या तो जमा करके जला देना चाहिये या जोतकर जमीनके बहुत नीचे दबा देना चाहिये, जिसमें दूसरी फसलको नुकसान न पहुँचे।

(४) फसलका परिवर्तन—रोग उत्पन्न करनेवाले बहुतसे जीवाणु मिट्टीमें तथा फसलके कट जानेपर खेतोंमें छूटे हुए अंशपर ही जीवन व्यतीत करते हैं। यदि जमीनमें एक ही किस्मकी फसल बोई जाय, तो जीवाणु तथा बीमारीका क्षेत्र साल-साल बढ़ता ही जाता है। जैसे "फ्युजिटियम", "विल्ट", "बैक्टीरियल ब्लाइट", "रूट राट" इत्यादि। ऐसी दशामें फसलको बदल देना ही लाभदायक होता है। अनुकूल फसलके न होनेसे जीवाणुकी वृद्धि रुक जाती है। यही नहीं, बल्कि जीवाणु अपने खाद्य वनस्पतिको न पानेसे

नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार फसल बीमारीसे बचायी जा सकती है। फसलके हेर-फेरसे फ़सलकी रक्षा करनेके लिये कृषकको यह जानना आवश्यक है कि, कौनसी बीमारी फसलमें लग रही है और कौन-कौनसे दूसरे पौधोंको वह बीमारी सताती है। प्रायः एक फसल तीन सालके बाद उसी खेतमें फिर बोयी जाती है। ऐसा करनेसे बीमारियाँ (जो "पिथियम" और "फाईटाफथोरा" जीवाणुओंसे उत्पन्न होती हैं) नष्ट की जा सकती हैं; पर बहुतसे जीवाणु ऐसे भी हैं, जो मिट्टीमें बहुत दिनों तक जीवित रहते हैं, जैसे कि, "फिगरऍंडटो" बीमारी। इससे गोभी, शलजम इत्यादि बहुधा आक्रान्त होते हैं। इस बीमारीसे आक्रान्त खेतमें एक फसल ५ सालके बाद बोनी चाहिये; क्योंकि इस अवकाशमें बीमारीके जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और फसल नीरोग हो जाती है। इसी भाँति "फ्लैक्स विल्ट" बीमारीके लिये ८ वर्षके अन्तर की आवश्यकता होती है।

(५) बीजकी जाँच और उनका शोधन-बहुतसी बीमारियोंके जीवाणु 'स्पोर' या निष्क्रिय 'माइसीलियम'के रूपमें बीजके ऊपर या अन्दर रहते हैं और बीज बोनेपर उनके साथ ही साथ बढ़ते हैं। ऐसी दशामें बीजको शुद्ध करनेसे बीमारी रोकी जा सकती है। जब 'स्पोर' बीजसे चिपके रहते हैं, तब उनका परिशोधन जीवाणु नाश करनेवाली दवा (जैसे "कापरसल्फेट, 'मर्क्युरिक क्लोराइड', 'फारमेलीन', 'कापर कारबोनेट' इत्यादि)से किया जाता है। दवा अनाजके ढेरपर चूर्णके रूपमें या घोलके रूपमें छिड़की जाती है; या नाज दवाके घोलमें डुबा दिया जाता है। और कुछ समयके बाद निकाल कर सुखा लिया जाता है तब वह बोने के काममें लाया जाता है। "माइसीलियम" रूपमें बीजके अन्दर उपस्थित रहनेवाले जीवाणुको नष्ट करनेके लिये निम्नाङ्कित उपचारका प्रयोग होता है—

बीमारी पैदा करनेवाले जीवाणु (जो बीजके अन्दर "माइसीलियम" रूपमें रहते हैं) गरमीसे मर जाते हैं; क्योंकि वे अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकते। प्रिवोस्ट ही ऐसा पहला वैज्ञानिक था, जिसने तापसे रोगोत्पादक जीवाणुको नष्ट करनेकी प्रथाका आविष्कार किया और जेंसन (१८८७) तथा केलरमनने इसका उपयोग किया। इसका सिद्धान्त यह है कि, जिस तापक्रमपर जीवाणु मर जाते हैं, बीजका तापक्रम उससे कुछ अधिक कर दिया जाता है। जीवाणु नष्ट हो जाते हैं; पर बीजको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। यह विधि गेहूँ, जौ, जई इत्यादिकी बीमारियोंमें (जो 'स्मट 'के नामसे प्रसिद्ध हैं) काममें लायी जाती है।

गेहूँके बीज "लूजस्मट" बीमारीसे शुद्ध करनेकी प्रथा यह है कि, बीजको ४-६ घंटे तक गुनगुने पानीमें भिँगोना, फिर लगभग १२६° फा० (१२४°-१३१°) तापक्रमके पानीमें दस मिनट तक रखना, इसके बाद गेहूँको निकाल कर सुखा लेना। ऐसे बीजको बोनेसे बीमारी नहीं होती।

(६) मिट्टीका शोधन या उपचार---बहुतसी बीमारियाँ ऐसी हैं, जिनके जीवाणु मिट्टीमें रहते हैं। जैसे, 'फ्युजेरियम विल्ट', 'पिथियम', 'राइजाकटोनियाँ' 'निमेटोड' इत्यादि। इन बीमारियोंको दूर करनेके लिये मिट्टीको शुद्ध करना चाहिये। हमारे देशमें मिट्टीको सूर्यके तापसे जलानेकी प्रथा इसी सिद्धान्तपर निर्भर है। रोगके जीवाणुओंसे जमीनकी मुक्ति दो तरीकेसे हो सकती है। एक तो गरमीसे, दूसरे रसायनके प्रयोगसे। पर यह अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि, मिट्टीसे हर किस्मके जीवाणुओंका निकल जाना असम्भव है और ऐसा करना हितकर भी नहीं है।

तापसे जीवाणुओंको मारनेकी कई विधियाँ हैं—

(१) जमीनके ऊपर निश्चित समय [प्रायः १ घंटे] तक आग जलाते हैं। इसके लिये लकड़ी, फूस इत्यादि काममें लाया जा सकता है।

(२) मिट्टीको कड़ाहीमें रखकर भूनते हैं। ६ इंच नीचे तककी मिट्टी आधे घंटे तक जलायी जाती है।

(३) उलटी कड़ाहियाँ ६'×१०'×६" आयतकी जमीनके अन्दर रखते हैं और उसे भापके पाइपसे जोड़ देते हैं। पाइपमें भाप ८० या १६० दाबपर ३० या ६० मिनट तक चलता रहता है।

(४) आठ इंच मोटा पाइप जमीनके अन्दर दौड़ा देते हैं। पाइपमें ¼"के बहुतेरे छेद नीचेकी तरफ होते हैं। गैसका दाब ८०—१०० पाउंड तक होता है।

(५) स्टीम रेकसे भी मिट्टीको शुद्ध करते हैं। इस उपकरणमें एक मोटी नली होती है, जिसके पार्श्वमें अनेक नोकीली पतली नलियाँ जड़ी रहती हैं। इन नलियोंसे भाप निकलता रहता है। इसको जमीनमें हलकी तरह हलके-हलके चलाते हैं।

कई तरहके रसायन मिट्टीको शुद्ध करनेके काममें आते हैं। जैसे "कार्बन डाइसल्फाइड," "कोलतार," "फारमेलिन," "सल्फ्युरिक एसिड" इत्यादि। खेतका जोत करके उक्त रसायन छिड़क देते हैं; फिर केलेके पत्ते या और किसी वस्तुसे ढक देते हैं। निश्चित समयके बाद पत्तेको हटा देते और खेतको जोत देते हैं, ताकि मिट्टी नीचे ऊपर हो जाय। अगर जरूरत हुई, तो फिर रसायन छिड़कते हैं, नहीं तो खेतकी मिट्टी फिर उलट-पलट देते हैं। कुछ दिनोंके बाद खेतमें बोआ जा सकता है। बीमारी रुक जाती है।

अभिसिञ्चन और चूर्ण-परिक्षेपण—इस विधिके अनुसार जहरीला रसायन रोग-ग्रस्त वनस्पतिके ऊपर चूर्ण या घोलके रूपमें भाथी या पिचकारीसे छिड़कते हैं। ऐसा करनेसे दो प्रकारके पराश्रयी (Parasite) जीव सफलतासे नष्ट किये जा सकते हैं। एक तो वे, जो आधार-वनस्पतिके ऊपरी तलपर वास करते हैं; पर खाद्य खींचनेके निमित्त छोटी-छोटी जड़ें अन्दर फैलाते हैं। इनको 'एक्टोफाइटिक' 'फंगस' कहते हैं। जैसे 'पाउडरी मिल्ड्ज" । दूसरे वे, जो साधारणतः वनस्पतिके आन्तरिक भागोंमें रहते हैं; पर सन्तानोत्पादक अङ्कके विकासके लिये ऊपरी तलपर आ जाते हैं और बीज उत्पन्न करते हैं। ये बीज हवा या किसी अन्य कारणसे वनस्पतिके स्वस्थ अङ्गोंपर फैलकर अङ्कुरित होते हैं और बीमारी पैदा करते हैं। यदि कोई जहरीला रसायन इनके ऊपर छिड़का जाय, तो ये मर जाते हैं और बीमारीकी वृद्धि रुक जाती है। रसायनके प्रयोगके सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिये कि, रसायन ऐसा हो, जिससे कि, रोगोत्पादक जीव नष्ट हो जायँ, बीमारी आगे न बढ़े; पर वनस्पतिको कुछ हानि न हो। रसायन सस्ता हो और इसका उपयुक्त समयपर प्रयोग किया जाय तथा रसायन बीमारी पैदा करनेवाले जीवतक पहुँच जाय। चूर्ण छिड़कनेके लिये भाथीका प्रयोग करते हैं और प्रायः गंधक या 'कापर कार्बोनेट' काममें लाते हैं। घोल छिड़कनेके लिये 'नेपसेकस्प्रेइंग' मशीनका इस्तेमाल करते हैं, जिसमें हवा दबावसे भरी जाती है। "बोर्डोमिक्सचर," "लाइम सल्फर" इत्यादि अधिकतर व्यवहारमें लाते हैं।

प्रतिरोध क्षमता-उत्पादन—जब ऊपर दी हुई विधियोंसे काम नहीं चलता या उनका प्रयोग असम्भव हो जाता है, तब इस उपचारका प्रयोग करते हैं। इस उपचारके दो भेद हैं। एक सग्रह-विधि और दूसरा सङ्करीकरण। सग्रह-विधिके अनुसार साधारणतः उस खेतसे (जिसमें बीमारी फैली होती है) स्वस्थ पौधे चुन लिये जाते हैं और फिर दूसरी फसलमें इन्हीं पौधोंके बीज बोये जाते हैं। दूसरी बार इस फसलमेंसे फिर स्वस्थ पौधे चुने जाते हैं और इन्हींके बीज फिर बोये जाते हैं। ऐसा कई बार करनेसे नीरोग फसल उत्पन्न होती है। इसी भाँति डाक्टर आर्टनने अमेरिकामें एक कपास पैदा की है; जो उखड़ी (Wilt) बीमारीसे रहित है। जोंस और उनके सहयोगियोंने भी गाँठ, गोभीकी कई

जातियाँ तैयार की हैं, जो 'फ्यूजेरियम'—जनित 'कॅबेज येलो' बीमारीसे सुरक्षित हैं। हिन्दुस्तानमें हावर्डने गेहूँकी ऐसी जातियाँ तैयार की हैं, जिनमें साधारणतः 'रस्ट"को बीमारी नहीं होती। मैकंने सुखड़ी-ग्रस्त अरहरको इसी विधिसे सुरक्षित किया है।

सङ्करीकरण विधिमें कृत्रिम उपायसे वनस्पतिको व्याधिमुक्त करते हैं। परीक्षासे यह मालूम हुआ है कि, रोग-प्रतिरोध-शक्ति मेंडलके नियमका अनुगमन करती है। रोगी वनस्पतिका यदि किसी नीरोग वनस्पतिसे सम्मिश्रण किया जाय और फिर उसे उत्पन्न वनस्पतिका सम-सङ्करीकरण हो, तो कई भेदके वनस्पति उत्पन्न होते हैं। इनमेंसे कुछ ऐसे होंगे, जो रोगसे मुक्त हैं। इन रोगमुक्त पौधोंकी जातिसे नीरोग फसल पैदा की जाती है। इसी विधिके अनुसार एक वनस्पतिकी रोग-प्रतिरोध-शक्ति और दूसरीके वाञ्छनीय गुणोंका (जैसे फल अच्छे और अधिक लगना इत्यादि) संयोग करके नीरोग और अच्छी जातिकी सृष्टि की जाती है। इस उपचारका अनुसरण करके डा० आर्टनने 'फ्यूजेरियम विल्ट'से रहित तरबूज उत्पन्न किये हैं, जिनमें रोग-प्रतिरोध शक्तिके अतिरिक्त अधिक फल-उत्पादन-शक्ति भी है। डा० स्टैकमन और उनके सहयोगियोंने अमेरिकामें गेहूँकी "रस्ट" बीमारीसे मुक्त जातियाँ तैयार की हैं।

विश्वविद्यालयोंमें विज्ञानका अध्ययन

श्रीयुत पञ्चम सिंह एम० एस-सी०

भारतमें कुल १७ विश्वविद्यालय हैं। इनमें कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयोंकी स्थापना सबसे प्रथम, १८५७ ई० में, हुई थी। इन विश्वविद्यालयोंकी स्थापनाके बाद १८८२ ई० में पंजाब विश्वविद्यालयकी और १८८७ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई। ये विश्वविद्यालय केवल परीक्षाएँ लेते थे। इनमें पढ़ानेका कोई प्रबन्ध नहीं था। लार्ड कर्जनने, १९०२ ई० में, एक यूनिवर्सिटी कमीशनकी नियुक्ति की, जिसकी सिफारिशसे, १९०४ ई० में, एक "यूनिवर्सिटी ऐक्ट" पास हुआ, जिससे विश्वविद्यालयोंको परीक्षाएँ लेनेके अतिरिक्त अध्यापकोंको नियुक्तकर पढ़ानेके प्रबन्ध करनेका भी अधिकार मिला। अब तक जितने विश्वविद्यालय थे, वे सब सरकारी थे। १९१६ ई० में पहले-पहल एक गैर-सरकारी विश्वविद्यालय (काशीके हिन्दू-विश्वविद्यालय)की स्थापना हुई। इस विश्वविद्यालयका उद्देश्य हिन्दू-शास्त्रों और संस्कृत-साहित्यके अध्ययनके साथ-साथ कला और विज्ञानकी विभिन्न शाखाओंके अध्ययन और अन्वेषणकी वृद्धि करना था, ताकि इसके छात्रोंको हिन्दू संस्कृतिकी रक्षाके साथ ऐसे उद्योग-धंधोंकी भी शिक्षा दी जाय, जिससे वे देशके व्यवसायों और उद्योग-धंधोंमें सहयोग देनेके भी योग्य हो सकें। इसी वर्ष मैसोर-राज्यमें मैसोर-विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई। बंगालसे बिहार और उड़ीसा प्रान्तके अलग होनेके कारण पटनेमें पटना विश्वविद्यालयकी स्थापना, १९१७ ई० में, हुई। १९१८ ई० में निजाम राज्यमें उसमानियाँ विश्वविद्यालयकी नींव डाली गयी। इस विश्वविद्यालयमें उर्दूमें सब प्रकारकी शिक्षाएँ दी जाती हैं। उर्दूके द्वारा ही इसमें मेडीसन (पाश्चात्य औषधि-विज्ञान) और इंजिनियरिंगकी भी शिक्षा

दी जाती है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना १९२० ई० में हुई। इसी वर्ष लखनऊ और रंगून विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए। १९२१ ई० में ढाका विश्वविद्यालय, १९२२ ई० में दिल्ली विश्वविद्यालय, १९२३ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय, १९२६ ई० में आन्ध्र विश्वविद्यालय, १९२७ ई० में आगरा विश्वविद्यालय और १९२९ ई० में दक्षिण भारतके चिदम्बरम्‌में अन्नामलाई विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

कलकत्ता विश्वविद्यालय—विज्ञानके अध्ययन और अनुसन्धानका सबसे उत्तम प्रबन्ध और साधन कलकत्ता विश्वविद्यालयमें है। इसका श्रेय प्रधानतः इसके भूतपूर्व वाइस-चांसलर स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जीको है। इस विश्वविद्यालयके अनेक कालेजोंमें इंटरमीडियेट और बी० एस-सी० तक वैज्ञानिक विषयोंकी पढ़ाई होती है। पहले कुछ कालेजोंमें एम० एस-सी० तक पढ़ाई होती थी और अन्वेषण भी होता था, पर अब एम० एस-सी० की पढ़ाई इस विश्वविद्यालयमें ही, सायंस कालेजमें, होती है। इस सायंस कालेजके अध्यक्ष सर प्रफुल्लचन्द्र राय हैं। इस कालेजमें भौतिक विज्ञान, व्यावहारिक भौतिक विज्ञान, तात्त्विक और व्यावहारिक रसायन, वानस्पतिक विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान और जन्तु-विज्ञानकी शिक्षा, एम० एस-सी० तक, दी जाती है। इन विषयोंमें उच्च कोटिके अन्वेषणके साधन विद्यमान हैं और उनमें अन्वेषण भी होता है। इन सभी विषयोंके बड़े-बड़े धुरंधर विद्वान् इस विश्वविद्यालयमें हैं, जो अन्वेषण करनेमें योग देते हैं। इस विश्वविद्यालयमें वैज्ञानिक पुस्तकोंका बहुत अच्छा संग्रह भी है। इस विश्वविद्यालयमें दो मेडिकल कालेज और एक सिविल इंजिनियरिंग कालेज हैं, जिनमें बहुत उच्च कोटिकी शिक्षा दी जाती है।

बम्बई विश्वविद्यालय—विज्ञानकी पढ़ाईमें कलकत्ता विश्वविद्यालयसे यह विश्वविद्यालय बहुत पिछड़ा हुआ है। इस विश्वविद्यालयकी ओरसे विज्ञानके अध्ययनका कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। अन्वेषणका भी कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। कुछ वर्ष तक इसके कालेजोंमें केवल बी० एस-सी० तककी ही शिक्षा दी जाती थी। अब एम० एस-सी० तककी पढ़ाईका प्रबन्ध किया गया है। एम० एस-सी०में केवल भौतिक विज्ञान, रसायन, वानस्पतिक विज्ञान, जन्तु-विज्ञान और भूगर्भ-विज्ञानमें ही शिक्षा दी जाती है। इस विश्वविद्यालयमें एक मेडिकल कालेज, एक कृषि कालेज और इंजिनियरिंग कालेज हैं।

मद्रास विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमें केवल एक-दो कालेजोंमें ही बी० एस-सी० [आनर्स] तककी शिक्षा दी जाती है। एम० एस-सी० की डिग्री केवल अन्वेषणसे प्राप्त होती है। इसके कालेजोंमें अन्वेषणका पूरा प्रबन्ध और सुविधा नहीं है। स्वयं विश्वविद्यालयकी ओरसे विज्ञानके अध्ययनका कोई प्रबन्ध नहीं है। मद्रासके केवल प्रेसिडेंसी कालेजमें ही अन्वेषणकी सुविधा है। इस कालेजके रसायनके प्रधानाध्यापक डा० विमानविहारी दे बड़े ही सुदक्ष रसायनज्ञ हैं। इनके अधीन अनेक छात्र अन्वेषणका कार्य करते हैं।

पंजाब विश्वविद्यालय—विज्ञानके अध्ययनमें बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयोंसे पंजाब-विश्वविद्यालय बहुत आगे बढ़ा हुआ है। इसमें विज्ञानका अध्ययन एम० एस-सी० तक होता है और अनेक विषयोंमें उच्च कोटिके अन्वेषणका भी पूरा प्रबन्ध है। इस विश्वविद्यालयके रसायनके अध्यापक डा० एस० एस० भटनागर एक सुप्रसिद्ध

भौतिक रसायनके आचार्य हैं। वानस्पतिक विज्ञानके अध्यापक राय बहादुर शिवराम काश्यप एक सुविख्यात वैज्ञानिक हैं। जन्तु-विज्ञानके अध्यापक भी एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक (डा० जी० मथाई) हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक वैज्ञानिक इस विश्वविद्यालयमें अन्वेषण कर रहे हैं। इस विश्वविद्यालयमें एक कृषि और एक मेडिकल कालेज भी हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय—१९१४ ई० तक यह विश्वविद्यालय केवल परीक्षाएँ लेता था। इसके पश्चात् कुछ विषयोंकी पढ़ाई शुरू हुई। १९२२ ई०में एक ऐक्ट पास हुआ, जिससे म्योर सेंट्रल कालेज विश्वविद्यालयका केन्द्र बना और १० मीलके अन्दरके सब कालेज इसके अन्तर्गत आ गये। इस विश्वविद्यालयमें बी० एस-सी० और एम० एस-सी० तककी शिक्षा, अनेक वैज्ञानिक विषयोंमें, दी जाती है। इसके कुछ वैज्ञानिक विभागोंमें सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अध्यापक हैं। भौतिक विज्ञानके प्रधानाध्यापक डा० मेघनाद साहा भारतके उन चार व्यक्तियोंमें हैं, जिन्हें इंगलैंडकी रायल सोसाइटीका सदस्य होनेका गौरव प्राप्त है। अन्य तीन व्यक्ति, जिन्हें यह गौरव प्राप्त है, हैं सर सी० वी० रमण, सर जे० सी० बोस और स्वर्गीय श्रीरामानुजम्। इसी विभागमें अध्यापक श्रीसालिग्राम भार्गवजी भी हैं, जो प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌के मन्त्री हैं। इन्होंने हिन्दीके द्वारा विज्ञानके प्रचारमें बहुत कुछ सहायता दी है। इस विश्वविद्यालयके रसायनके प्रधानाध्यापक डा० नीलरत्न धर हैं। ये सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र रायके छात्र हैं। आपने बहुत बड़ी संख्यामें मौलिक वैज्ञानिक प्रबन्ध लिखे हैं। आप बड़े ही सीधे-सादे स्वभावके और परिश्रमी हैं। आपका सारा समय विज्ञानके अध्ययन और अन्वेषणमें ही लगता है। इसी विभागमें कार्बन रसायनके अध्यापक डा० शिखिभूषण दत्त हैं, जिन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर अन्वेषण किये हैं। इस विश्वविद्यालयके गणित-विभागमें प्रो० ए० सी० बनर्जी, डा० गोरखप्रसाद और डा० बदरीनाथप्रसाद हैं। इस विश्वविद्यालयके वानस्पतिक विभागमें डा० मित्र और डा० श्रीरञ्जन और जन्तु-विज्ञान-विभागमें डा० भट्टाचार्य और डा० हास-राम मेहरा जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। उपर्युक्त वैज्ञानिक विषयोंकी उच्चसे उच्च शिक्षा प्रदान करने और अन्वेषणमें प्रोत्साहन देनेमें नये विश्व-विद्यालयोंमें प्रयाग विश्वविद्यालय बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ है। इन विषयोंके अधिकांश अध्यापक बड़े ही योग्य और सुप्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, जो अन्वेषण-कार्यमें सदा निरत रहते हैं।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालय-में विज्ञानके अध्ययन और अन्वेषणका बहुत अच्छा प्रबन्ध है—समुचित साधन भी विद्यमान हैं। इसमें सबसे अधिक उपयोगी विभाग व्यावहारिक रसायन विभाग है, जिसमें अनेक प्रकारके प्रतिदिन काममें आनेवाली साधारण वस्तुओंके निर्माणकी शिक्षा दी जाती है। इन वस्तुओंका निर्माण भी इस विभागमें होता है। तेलके बने पदार्थों और चीनी मिट्टीके खिलौनों तथा अन्य सामानोंके निर्माणका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। कपड़ा धोनेके साबुन, शरीर-में लगानेके साबुन, हजामत बनानेके साबुन, रँगनेके साबुन, दवाईके साबुन, सुगन्धित तिल और नारियलका तेल, बादामका तेल, स्याही, गोंद, चीनी मिट्टीके खिलौने, चायके प्याले

इत्यादि अनेक वस्तुओंका यहाँ निर्माण होता है। व्यावहारिक रसायनके तेल-विभागके अध्यापक डा० एन० एन० गोडबोले हैं।

इस विभागमें शिक्षा पाकर अनेक छात्र बड़ी सफलतासे कारखानोंमें कार्य कर रहे हैं। कुछ तो स्वयं अपना कारखाना खोलकर अपनी जीविकाका उपार्जन करते हैं।

इस विश्वविद्यालयमें एक दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाग इंजिनियरिंग कालेज है, जहाँ बहुत उच्च कोटिकी इंजिनियरिंगकी शिक्षा दी जाती है। इस कालेजके प्रिंसिपल मि० सी० ए० किंग नामक एक अंग्रेज हैं, जो भारतीय बालकोंकी शिक्षामें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इस कालेजमें मेकानिकल (यान्त्रिक) इंजिनियरिंगकी शिक्षा दी जाती है, जो इस देशके अन्य किसी कालेजमें नहीं दी जाती। भारतके सभी प्रान्तोंसे भरती होनेके लिये यहाँ छात्र आते हैं। यहाँके अनेक उत्तीर्ण छात्र ऊँचे वेतनपर सरकारी और गैर-सरकारी नौकरियाँ करते हुए इस कालेजके यशको फैला रहे हैं। इस कालेजमें भर्ती होनेके लिये कम-से-कम सायंसमें इंटरमीडियेट पास होना चाहिये; पर बी० एस-सी० पास उम्मीदवारोंकी संख्या इतनी अधिक रहती है कि, इंटरमीडियेटमें उत्तीर्ण छात्रोंका प्रविष्ट होना कठिन हो जाता है।

एक दूसरा उपयोगी विभाग माइनिंग और मेटालाजी विभाग है। इसमें छात्रोंको खानों और खनिजोंसे धातुओंके प्राप्त करनेकी ऊँची-से ऊँची शिक्षा दी जाती है। इसमें भी सायंसमें इंटरमीडियेटमें उत्तीर्ण छात्र भर्ती किये जाते हैं। इस विभागके अध्यक्ष प्रो० एन० पी० गांधी हैं, जो अपने विषयके अच्छे ज्ञाता हैं। एक दूसरा उपयोगी विभाग फर्मास्युटिकल विभाग है, जो केवल दो वर्षोंसे ही खुला है। इस विभागमें पाश्चात्य औषधियोंके निर्माणके सम्बन्धमें शिक्षा दी जाती है। इस प्रकारकी शिक्षा देनेवाली भारतमें यह पहली ही संस्था है। इस विभागके प्रधानाध्यापक प्रो० महादेवलाल सराफ हैं।

उपर्युक्त व्यावहारिक विषयोंकी शिक्षाके अतिरिक्त इस विश्वविद्यालयमें भौतिक विज्ञान, रसायन, जन्तुविज्ञान; भूगर्भविज्ञान, वानस्पतिक विज्ञान और कृषि-वानस्पतिक विज्ञानकी भी उच्च-से-उच्च शिक्षा दी जाती है और योग्य अध्यापकोंके निरीक्षणमें इन विषयोंकी उच्च कोटिके अनुसन्धानके कार्य, बड़ी तत्परतासे, होते हैं।

भौतिक विज्ञानमें प्रो० पी० दत्त बड़े ही अनुभवी शिक्षक हैं। डा० सी० एम० सोगानी, डा० वी० दसानाचार्य, प्रो० यू० ए० आस्रानी इस विभागके सुयोग्य अध्यापक हैं। रसायन-विभागमें प्रो० एम० बी० राने प्रधानाध्यापक हैं। ये अकार्बनिक रसायनके सुयोग्य अध्यापक हैं। कार्बनिक रसायनके अध्यापक प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा और भौतिक रसायनके अध्यापक डा० एस० एस० जोशी तथा डा० एस० के बसु हैं, जो अपने-अपने विषयोंके अच्छे विद्वान् हैं।

जन्तु-विज्ञानके प्रधानाध्यापक डा० ए० बी० मिश्र एक सुयोग्य अध्यापक हैं। वानस्पतिक विज्ञानके अध्यापक डा० एन० के० तिवारी, कृषि-वनस्पतिके अध्यापक डा० भोलानाथ सिंह और भूगर्भविज्ञानके अध्यापक प्रो० के० के० माथुर हैं। ये सब अपने-अपने विषयोंके सुयोग्य अध्यापक हैं।

उपर्युक्त विषयोंके अतिरिक्त हिन्दू विश्वविद्यालयमें एक आयुर्वेदिक कालेज भी है, जिसमें आयुर्वेदका अध्ययन बड़ी योग्यतासे कराया जाता है। इस

आयुर्वेद विभागमें हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखक—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा पढ़ाते हैं।

हिन्दू विश्वविद्यालयमें एक हिन्दी प्रकाशन-समिति है, जिसके द्वारा उच्च कोटिके विज्ञानके ग्रन्थोंके प्रकाशनकी चेष्टा हो रही हैं। यहाँके ही अध्यापकोंने वैज्ञानिक कोषको संकलित किया है, जिसे काशीकी नागरी प्रचारिणी सभाने हालमें प्रकाशित किया है। अब तक केवल ४ चार वैज्ञानिक ग्रन्थ, इस प्रकाशन समिति द्वारा, प्रकाशित हुए हैं। इनमें डा० मुकुन्दस्वरूप वर्माका "स्वास्थ्य-विज्ञान" भी है, जिसपर मङ्गला प्रसाद पारितोषिक मिला है। प्रो० फूलदेवसहाय वर्माकी "साधारण रसायन" (दो भाग) और डा० निहालकरण सेठीकी 'प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान" नामक पुस्तकें भी यहींसे प्रकाशित हुई हैं।

मैसोर विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमें एक ही कालेज, बंगलोरमें, है, जिसमें विज्ञानकी पढ़ाई एम० एस-सी० तक होती है। यहाँ भौतिक विज्ञान और रसायनके सुयोग्य अध्यापक हैं। इनके आधीन इन विषयोंपर अन्वेषण भी होता है। इसके अतिरिक्त जन्तु-विज्ञान, वानस्पतिक विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, इंजिनियरिंग और मेडीसनकी भी पढ़ाई होती है।

पटना विश्वविद्यालय—विज्ञानके अध्ययनमें पटना विश्वविद्यालय बहुत पिछड़ा हुआ है। इसके अन्तर्गत कालेजोंमें केवल एक ही कालेज, पटना सायंस कालेज में, एम० एस-सी० तककी शिक्षा दी जाती है। वह भी केवल गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनमें ही। अन्य वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययनका यहाँ कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। यहाँ कुछ अध्यापक बड़े योग्य हैं; पर अनुसन्धानका वातावरण न होनेसे वे भी अपने समयको क्लब घरों या गप-शपमें नष्ट करते हैं! यही कारण है कि, बिहारके छात्र विज्ञानके अध्ययन और अन्वेषणमें बहुत पीछे पड़े हुए हैं। उपर्युक्त विषयोंके अतिरिक्त मेडीसन और सिविल इंजिनियरिंगकी भी यहाँ शिक्षा दी जाती है।

उसमानियाँ विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमें एम० एस-सी० तककी पढ़ाई गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनमें होती है। अन्वेषणका भी कुछ प्रबन्ध है; पर कोई विशेष कार्य नहीं होता। मेडीसन और इंजिनियरिंगकी भी पढ़ाई होती है। इस विश्वविद्यालयमे सब विषयोंकी शिक्षा उर्दू में ही होती है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमे एम० एस-सी० तककी पढ़ाई गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, वानस्पतिक विज्ञान और जन्तु-विज्ञानमें होती है। इन विषयोंमें अनुसन्धानका भी प्रबन्ध है। रसायनके अध्यापक डा० हंटर बड़े ही योग्य रसायनज्ञ हैं। उनके निरीक्षणमे अन्वेषण-कार्य भी हो रहा है। भौतिक विज्ञानके अध्यापक डा० सेम्युएल अपने विषयमे बड़े ही दक्ष हैं। यद्यपि यह मुस्लिम विश्वविद्यालय केवल मुस्लिम छात्रोंकी शिक्षाके लिये ही बना है; पर सभी धर्मों और जातियोंके छात्र इसमें प्रविष्ट होते हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमें गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, जन्तु-विज्ञान और वानस्पतिक विज्ञानकी उच्च-से-उच्च शिक्षा, बड़ी सफलतासे, दी जाती है। इसमें कुछ विषयोंके अध्यापक बड़े-ही योग्य और सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। इस विश्वविद्यालयमें अनेक छात्र अन्वेषण-कार्य भी करते हैं और कई एकको डी० एस-सी० की उपाधि भी, उनके अनुसन्धानके कारण, प्राप्त हुई है। वानस्पतिक विज्ञानके अध्यापक डा०

बीरबल साहनी बड़े ही विख्यात वैज्ञानिक हैं। वानस्पतिक विज्ञानमें सम्भवतः इनके समान कोई दूसरा अन्वेषक भारतमें नहीं है। जन्तु-विज्ञानके प्रधानाध्यापक डा० के० एन० बाल भी एक सुविख्यात वैज्ञानिक हैं। गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनके भी अनेक सुयोग्य अध्यापक हैं, जो अन्वेषण-कार्यमें पूरा योग देते हैं। इस विश्वविद्यालयके कुछ वैज्ञानिक विभाग अन्वेषण-कार्यके लिये बहुत अच्छी तरह सुसज्जित हैं। जो मौलिक अनुसन्धान करना चाहें, उन्हें पूरा सुअवसर प्राप्त होता है।

ढाका विश्वविद्यालय—इस विश्वविद्यालयमें गणित, भौतिक विज्ञान और रसायनकी पढ़ाई बहुत उच्च कोटिकी होती है। इन सभी विषयोंमें धुरंधर विद्वान् अध्यापक हैं। रसायनके प्रधानाध्यापक सर प्रफुल्लचन्द्ररायके सुप्रसिद्ध छात्र डा० जी० सी० घोष हैं। भौतिक रसायनमें इनसे बढ़कर सम्भवतः कोई दूसरा रसायनज्ञ इस देशमें नहीं है। भौतिक विज्ञान और रसायन, दोनोंमें ही बहुत महत्त्वपूर्ण अन्वेषणकार्य इस विश्वविद्यालयमें होते हैं और इसके लिये यहाँ बहुत अच्छा प्रबन्ध और प्रचुर साधन हैं।

अन्य विश्वविद्यालय—रंगून, दिल्ली, नागपुर, आगरा, अन्नामलाई विश्वविद्यालय अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। इन सबमें वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययनका प्रबन्ध है; पर इनमें अभी तक अन्वेषण-कार्य नहीं हुए, जिनसे इनके महत्त्वका ठीक ठीक पता लग सके। कुछ समय बीत जाने पर ही निश्चित रूपसे वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययन और अन्वेषणके कार्योंपर सम्मति दी जा सकेगी।

ताप

अध्यापक शारदाप्रसाद सिंह बी० एस-सी०

अत्यन्त प्राचीन समयमें भी लोग ताप तथा उसे उत्पन्न करनेकी विधिसे पूर्णतया परिचित थे। पत्थर तथा काष्ठके पारस्परिक संघर्षसे वे भली भाँति आग तथा ताप पैदा कर सकते थे; पर यह ताप क्या वस्तु है, इसकी वे व्याख्या नहीं कर सकते थे। गत शताब्दीके अन्त तक दार्शनिकोंका यही सिद्धान्त था कि, ताप छोटे-छोटे परमाणुओंका एक समूह है, जिससे ताप-परमाणु निरन्तर निकल कर निकटवर्त्ती पदार्थोंमें प्रवेश करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, यदि आप जाड़ेके दिनोंमें आगका सेवन करते हैं, तो आगकी चिनगारियोंसे तापके परमाणु आपके शरीरमें प्रवेश कर रहे हैं। फलतः आप क्रमशः गर्मी अनुभव करने लगते हैं। प्राचीन दार्शनिकोंका यही मत था कि, तापपुञ्जका प्रत्येक परमाणु एक दूसरेको विकर्षित करता है और इस तरह ये परमाणु एक पदार्थको छोड़कर दूसरेमें प्रवेश करते हैं; इससे यह नहीं समझना चाहिये कि, किसी उत्तप्त पदार्थके संसर्गमें जितने पदार्थ हैं, सबमें समान रूपसे परमाणु प्रवेश करेंगे। इसका कारण, उन्होंने बतलाया कि, सब पदार्थोंकी रासायनिक बनावट एकसी नहीं है; अतएव भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें ताप-ग्रहण करनेकी भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं और इनके आपेक्षिक ताप (Specific heat) भी भिन्न-भिन्न हैं। उन्होंने यह भी बतलाया कि, ये परमाणु विनष्ट नहीं हो सकते। एक

पदार्थ जितनी गर्मी छोड़ता है, ठीक उतनी ही गर्मी दूसरा पदार्थ (जो उसके संसर्गमें अथवा सन्निकट है) ग्रहण करता है। अब यह प्रश्न उठने लगा कि, यदि ये परमाणु एक पदार्थको त्यागकर दूसरेमें प्रवेश करते हैं, तो अवश्य ही ये भौतिक पदार्थ (Material substance) हैं। यदि ऐसी बात हो, तो निश्चय ही ताप-परमाणुओंका वजन (weight) है। प्राचीन दार्शनिकोंने इस प्रश्नका कोई समुचित उत्तर नहीं दिया। अन्तमें, सन् १७९९ ई० में, जर्मनीके काउंट रमफोर्डने इसपर प्रयोग प्रारम्भ किया और कितने ही सूक्ष्म प्रयोगोंके बाद उसने घोषणा की कि, ताप-क्रममें वृद्धि होनेसे किसी भी पदार्थके वजनमें वृद्धि नहीं होती।

तापके इस सिद्धान्तसे विज्ञान-जगत्‌को सन्तोष नहीं हुआ।

इसकी व्याख्या करनेके लिये वैज्ञानिकोंने प्रयोग प्रारम्भ किये। उनके मस्तिष्कमें यह बात आयी कि, यदि किसी तप्त पदार्थसे ही ताप-परमाणुओंके निकलकर ठंडे पदार्थमें प्रवेश करनेसे इसका ताप-क्रम बढ़ता है, तो फिर काठके दो टुकड़ों का (जो एक ही ताप-क्रममें हैं) सवर्ष करनेसे उनका ताप-क्रम क्यों बढ़ता है ? फुट-बालमें अथवा साइकिलमें हवा भरते समय लोग अनुभव करते हैं कि, इन्फ्लाटरके पीस्टनके दो-चार बार ऊपर-नीचे जानेके बाद इन्फ्लाटरका नीचेका भाग गर्म होने लगता है और यदि क्रिया जारी रखी जाय, तो उसे विना कपड़ेके पकड़ना भी कठिन हो जाता है। जान डाल्टनने यह पहले-पहल प्रमाणित किया कि, यदि कुछ हवाके पूर्व आयतन (Volume)को दबावके द्वारा आधा कर दिया जाय, तो उसका ताप-क्रम पहलेकी अपेक्षा ५०°फ० अथवा लगभग २८°से० अधिक हो जायगा। इसी तरह यह भी प्रयोग द्वारा सिद्ध किया गया कि, किसी गैसके पूर्वायतनको फैलाव द्वारा बढ़ा दिया जाय, तो उसका ताप-क्रम पहलेकी अपेक्षा कम हो जाता है।

काउंट रमफोर्डने एक समय बन्दूकों और तोपों-के नलोंमें छेद कराते समय देखा कि, नलोंका ताप-क्रम पहलेसे बहुत ही बढ़ गया है। उन्होंने इसी धातुका एक गोल लम्बा टुकड़ा लिया और एक भोथे छेद करनेवाले यन्त्रसे उसमें छेद करना शुरू किया। ९६० बार छेदक यन्त्र [borer]को घुमानेसे ताप-क्रममें ७०° फ०की वृद्धि हुई और लगभग ११३ पौंड धातुकी धूलि निकली। ११३ पौंड धूलिका ताप-क्रम ७०° बढ़ानेके लिये जितने तापकी आवश्य-कता होती है, उतने तापके पड़नेसे ६½ पौंड बर्फ पिघल जाती और उस पानीमेंसे [जो अभी ३२° फ० में है] ५ पौंड उबलने लगता और उसका ताप-क्रम ११२° फ० हो जाता। यदि छेदक यन्त्र अधिक समय तक चलाया जाता, तो तापकी वृद्धि बढ़ती ही चली जाती। इससे यह सिद्ध होता है कि, किसी भी पदार्थमें ताप-मात्रा ससीम नहीं है। यही तर्क रमफोर्डने प्राचीन सिद्धान्तके विरुद्ध रखा। अन्तमें रमफोर्डने निश्चय किया कि, वह पदार्थ, जो किसी अन्य पदार्थसे असीम मात्रामें पैदा हो, कभी भी भौतिक पदार्थ [material substance] नहीं हो सकता। उन्होंने यह भी निश्चित किया कि, जिस रीतिसे इन प्रयोगोंमें ताप उत्पन्न होकर एक पदार्थसे दूसरेमें गमन करता है, वह गति [motion]के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

सन् १७९९ ई० में हम्फ्री डेवीकी एक पुस्तक निकली, जिसका नाम था "Essay on Heat and Light and Combinations of Light"। इसके प्रका-शित होते-होते तापका प्राचीन सिद्धान्त सदाके लिये रद्द हो गया। इस पुस्तकमें डेवीने लिखा कि, उसने बर्फके दो टुकड़े लिये और उन्हें तारके द्वारा किसी धातुकी दो छड़ोंमें अलग-अलग बाँध दिया। बर्फके टुकड़ोंको परस्पर मिलाकर खूब वेगसे घर्षण किया गया। थोड़ी ही देरमें करीब-करीब

बर्फके दोनों टुकड़े पिघलकर पानी हो गये और इस पानी का ताप-क्रम ३५° फ० था। बर्फका गुप्त ताप (Latent heat) ८० कैलोरी (Calorie) है अर्थात् एक ग्राम (gram) बर्फको पिघलानेके लिये ८० कैलोरी तापकी आवश्यकता होती है, जब पिघला हुआ बर्फीला पानी बर्फके ही ताप-क्रम या ३२°फ० पर रहे। इस हिसाबसे बर्फके बहुत बड़े-बड़े टुकड़ोंको रगड़नेसे बहुत अधिक ताप पैदा किया जा सकता है। डेवी इसी निर्णयपर पहुँचा कि, कितना ही बड़ा बर्फका टुकड़ा घर्षणसे पिघल सकता है। इस प्रकार इसने भी रमफोर्डके निर्णयका समर्थन किया कि, किसी भी पदार्थसे असीम मात्रामें ताप उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार प्राचीन सिद्धान्तकी (ताप भौतिक परमाणुओंका समूह है) इतिश्री हो गयी।

इतनेपर भी अभी यह निश्चित करना रह गया है कि, ताप आखिर है क्या चीज़ ? "कार्य"की एक वैज्ञानिक परिभाषा है, जो हम लोगोंके जीवनके प्रत्येक कार्यकी परिभाषासे भिन्न मालूम पड़ती है। रुकावटके होते हुए जब कोई पदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानको हटाया जाय, तो "कार्य" होता है। किसी पिण्ड अथवा समुदायमें काम करनेकी जितनी शक्ति (Capacity) होती है, उसे सामर्थ्य (Energy) कहते हैं। तापमें भी "कार्य" करनेकी शक्ति है। इसमें पदार्थोंको फैलानेका गुण है। अतएव जिस समुदायमें ताप है, उसमें कार्य करनेकी क्षमता है और इसलिये सामर्थ्य (Energy) भी है। इन तर्कोंसे यह सिद्ध होता है कि, ताप भी सामर्थ्यका एक रूप है।

किसी पदार्थको तप्त करनेसे उसका आयतन बढ़ने लगता है। आयतनके इस फैलावकी एक सीमा है। यदि ठोस पदार्थको तप्त किया जाय, तो फैलाव होते-होते अन्तमें एक अवस्था आवेगी, जब वह ठोस पदार्थ द्रव होने लगेगा। जिस ताप-क्रमपर यह रूपान्तर होना प्रारम्भ होता है, उसे "द्रवाङ्क" (Melting Point) कहते हैं। इसी प्रकार द्रव-पदार्थोंको ताप दिखानेसे भाप बनने लगता है और भापकी अवस्थामें यदि अधिक ताप पहुँचाया जाय, तो उसके आयतनमें भी प्रसार शुरू होता है। सारांश, ताप काम करता है, काम सामर्थ्यसे होता है; इसलिये ताप सामर्थ्यका एक रूप है।

रमफोर्डके सिद्धान्तको (ताप गतिका एक रूप है तथा ताप सामर्थ्यका एक रूप है) बहुत वैज्ञानिकोंने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है। सन् १८४० ई० में जूलने (Joule) केवल इतना ही प्रमाणित नहीं कर दिखाया, बल्कि उसने यह भी पता लगा लिया कि, एक कैलोरी गर्मी कितने कार्यके बराबर है। यदि कोई क अर्ग कार्य करे, जो कि, सब गर्मी पैदा करनेमें लग जाय और इस प्रकार अ कैलोरी गर्मी पैदा हो, तो क (काम) = अ (कुल गर्मी) × ज, जहाँ ज एक स्थिराङ्क है और "तापका यान्त्रिक तुल्याङ्क" (Mechanical equivalent of Heat) कहलाता है। जूलके प्रयोगसे ज का मोल निकला ४१.६×१०^{6} अर्ग प्रति कैलोरी।

इसके बाद सन् १८७९ ई० में अमेरिकाके प्रो० रौलैंडने देखा कि, जूलके प्रयोगमें बहुत-सी त्रुटियाँ रह गयी हैं। फलतः उसने उन सबका संशोधन करके प्रयोग किया और इस प्रकार ज का मोल ४२.७× १०^{6} निकला। रालैंडसे भी अधिक सफलता मिली हर्नको, जिसने दो भिन्न प्रकारोंसे प्रयोग किया। इसके प्रयोगका सिद्धान्त यही था कि, जब किसी शीशे (Lead) के टुकड़ेको हथौड़ोंसे पीटते हैं, तब शीशेका टुकड़ा फैलकर क्रमशः गर्म होने लगता है। यह ताप-सामर्थ्य (Heat Energy) हथौड़ीके गत्यर्थक सामर्थ्य (Kinetic Energy) का रूपान्तर है; कारण, वह चलती हुई हथौड़ी अचानक रुक गयी। उसके सारे सामर्थ्यका रूपान्तर हो गया। इसी आधारपर उसने अपना प्रयोग शुरू किया; और, उसने ज का जो मान पाया, वह ४४.७×१०^{6} अर्ग प्रति कैलोरी है।

हिन्दुस्थानकी वैज्ञानिक संस्थाएँ

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०

हिन्दुस्थानकी प्रमुख वैज्ञानिक संस्थाएँ निम्नलिखित हैं—१ विज्ञान-परिषत्, प्रयाग, २ इंडियन सायंस कांग्रेस, ३ इंडियन केमिकल सोसायटी, ४ इंडियन बोटानिकल सोसायटी, ५ इंडियन मैथमेटिकल सोसायटी, ६ कलकत्ता मैथमेटिकल सोसायटी, ७ बनारस मैथमेटिकल सोसायटी, ८ प्रयाग मैथमेटिकल सोसायटी, ९ एग्रिकलचरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूसा, १० इंडियन इंस्टीट्यूट आफ सायंस, बैंगलोर, ११ इंडियन एसोशियेशन फार दि कल्टिवेशन आफ सायंस, कलकत्ता, १२ बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता, १३ हारकोर्ट बटलर टेकनालाजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर, १४ साउथ इंडियन सायंस एसोशियेशन, बैंगलोर, १५ फारेस्ट कालेज, देहरादून और १६ टामसन सिविल इंजिनियरिंग कालेज, रुड़की ।

विज्ञान परिषत् प्रयाग—भारतकी वैज्ञानिक संस्थाओंमें विज्ञान-परिषत्‌का स्थान बहुत ऊँचा है । विज्ञानकी यह सबसे प्राचीन संस्था है, जो विज्ञानके ज्ञानको भारतकी प्रमुख भाषाओं (हिन्दी और उर्दू) के द्वारा जनताके बीचमें प्रसार करनेका कार्य कर रही है । इस संस्थाका सविस्तर वर्णन अन्यत्र छपा है ।

इंडियन सायंस कांग्रेस—इंडियन सायंस कांग्रेसके संस्थापक उस समयके मद्रासके प्रेसिडेंसी कालेजके प्रोफेसर डा० सायमोन सेन और लखनऊ कैनिंग कालेजके प्रोफेसर मैकमोहन हैं । इस देशमें विज्ञानके मौलिक अनुसन्धानमें प्रोत्साहन देनेके विचारसे इन दोनों रसायनज्ञोंकी राय हुई कि, कोई गैर-सरकारी संस्था इंगलैंडके ब्रिटिश एसोसियेशनके सदृश इस देशमें भी खोली जाय । इससे इस देशके भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक विषयोंके अन्वेषकोंको एक दूसरेके संसर्गमें आनेसे अनुसन्धानमें उत्तेजना मिलनेकी सम्भावना थी । इस उद्देश्यसे इन लोगोंने १९११ ई० में वैज्ञानिकोंकी सम्मतिके लिये एक पत्र प्रकाशित किया । अनेक वैज्ञानिकोंकी सम्मति इसके पक्षमें थी; पर कुछ लोगोंको इसमें सन्देह था कि, देशकी परिस्थिति इस संस्थाके लिये अनुकूल है । इन दोनों वैज्ञानिकोंने उस समयके देशके प्रमुख १७ वैज्ञानिकोंको चुनकर इसका प्रथम वार्षिक अधिवेशन १९१२ ई० की २ री जनवरीको किया । यह बैठक बंगालकी एशियाटिक सोसायटीके कमरेमें हुई । इसके सभापति सर हेनरी हेडन थे । इसमें यह प्रस्ताव पास हुआ कि, बंगालकी एशियाटिक सोसायटीसे सायंस कांग्रेसका प्रबन्ध करनेकी प्रार्थना की जाय । इसके बाद सतत चेष्टा करनेपर भी १९१४ ई० से पूर्व इस सायंस कांग्रेसकी कोई बैठक नहीं हो सकी । इस वर्ष इसकी जो बैठक हुई, उसके सभापति स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी थे । तीन दिनों तक इसकी बैठक होती रही । इनमें ३१ मौलिक प्रबन्ध पढ़े गये, जिनमें २५ केवल कलकत्तेके वैज्ञानिकोंके थे । इसके बादसे इस सायंस कांग्रेसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गयी और आज यह भारतकी एक प्रमुख संस्था बन गयी है । इन दिनों इस देशके अधिकांश वैज्ञानिक प्रति वर्षके अधिवेशनमें इकट्ठे होकर वैज्ञानिक विषयोंपर मौलिक प्रबन्ध पढ़ते और वैज्ञानिक वाद-विवादमें सम्मिलित होते हैं । अब तक इसकी वार्षिक बैठक कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, लखनऊ, बैंगलोर, लाहौर, नागपुर, बनारस, पटना इत्यादि स्थानोंमें हो चुकी है । देशके प्रत्येक भागसे इसमें सम्मिलित होनेके लिये वैज्ञानिक आते हैं । इसकी

स्थायी सदस्य होनेके लिये १०) रुपया प्रतिवर्ष देना पड़ता है। एसोशियेट सदस्योंको ५) रुपया और छात्र सदस्योंको ३) रुपया प्रतिवर्ष देना पड़ता है। इस कांग्रेसमें अनेक विभाग हैं और विभिन्न विभागोंके अध्यक्ष भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रतिवर्ष हुआ करते हैं। इसकी बैठक प्रायः ६ दिनों तक, जनवरीके प्रथम सप्ताहमें, होती है। इसमें कृषि, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, जन्तु-विज्ञान, वानस्पतिक-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, मेडिकल और वेटेरिनरी अनुसन्धान, मानव-विज्ञान और मनोविज्ञान विभाग हैं। अब तक इसके सभापति देशके प्रायः सभी अग्रगण्य वैज्ञानिक (सर आशुतोष मुकर्जी, सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी, सर पी० सी० राय, सर जे० सी० बोस, सर सी० वी० रमण डा० मेघनाद साहा इत्यादि) हो चुके हैं।

इंडियन केमिकल सोसायटी—इस देशमें रसायनमें कार्य करनेवाले वैज्ञानिकोंकी संख्या बहुत अधिक है। अतः इंडियन केमिकल सोसायटीके सबसे अधिक सदस्य भी हैं। इसकी पत्रिका भी बहुत अधिक पृष्ठोंमें, प्रतिवर्ष, निकलती है। इस संस्थाके सम्बन्धमें एक लेख अन्यत्र छपा है।

इंडियन बोटानिकल सोसायटी—इस सोसायटीकी स्थापना १९२० ई० में हुई थी। इसका उद्देश्य भारतके पौधोंके अध्ययन और अन्वेषणको प्रोत्साहन देना था। १९२० ई० में नागपुरमें इंडियन सायंस कॉंग्रेसकी जो बैठक हुई थी, उसमें उपस्थित वानस्पतिक-विज्ञान-विशारदोंने वानस्पतिक विज्ञानके अध्ययनके लिये, एक संस्था खोलनेका विचार किया, जिसके फलस्वरूप कलकत्तेके डा० ब्रूल, कोयम्बटूरके राव बहादुर रङ्गाचारी, लाहौरके प्रो० शिवराम कश्यप, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके डा० बीरबल साहनी, पूनाके कृषि कालेजके डा० बर्न और प्रयाग इविंग क्रिश्चियन कालेजके डा० डजनकी एक समिति बनी, जिसके प्रयत्नसे उसी वर्षके नवम्बर मासमें इसके कार्यकर्ताओंका चुनाव हुआ और संस्थाकी ओरसे एक पत्रिका निकालनेका भी निश्चय हुआ। जो भी वानस्पतिक विज्ञानमें दिलचस्पी लेते हों, वे इसके सदस्य हो सकते हैं। साधारण सदस्योंको साढ़े बारह रुपया और एसोशियेट सदस्योंको पाँच रुपया प्रति वर्ष देना पड़ता है। इस सोसायटी द्वारा प्रकाशित पत्रिका उन्हें बिना मूल्य प्राप्त होती है। इसके सम्मानित सदस्य भी [अन्वेषण-कार्यमें प्रसिद्धिके कारण] १० तक हो सकते हैं। आजीवन सदस्योंको १५०) रु० एक बार देना पड़ता है। इस समय इसके सदस्योंकी कुल संख्या १४४ है, जिनमें ६ आजीवन सदस्य, ८४ साधारण सदस्य और ४८ एसोशियेट सदस्य हैं।

इस सोसायटीका प्रबन्ध एक कार्य-कारिणी समिति करती है, जिसमें एक सभापति, दो उपसभापति, एक मन्त्री, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रबन्ध-मन्त्री तथा दस सदस्य होते हैं। इसकी पत्रिकाका सम्पादन-भार एक सम्पादक बोर्डके हाथमें है, जिसमें एक प्रधान सम्पादक, एक मन्त्री और एक प्रबन्ध-मन्त्री हैं; और, जो विश्वविद्यालय १५०) रु० प्रतिवर्ष देता है, उसके प्रतिनिधि भी रहते हैं। इस संस्थासे वानस्पतिक विज्ञानके अध्ययन और अन्वेषणमें बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

एग्रिकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूसा—अमेरिकाके एक दानी (हेनरी फिप्स (Henry Pipps) महोदय) ने, १९०३ ई० में, लार्ड कर्जनको (जो उस समय भारतके बड़े लाट थे) तीस हजार पाउंड इस उद्देश्यसे दिया कि, इन रुपयोंको भारतकी जनताके हितमें, प्रधानतः वैज्ञानिक अन्वेषणमें, लगाया जाय। इस रकममें-से कुछ दक्षिण भारतके कुनूर स्थानके पास्तर इंस्टीट्यूटके बनानेमें खर्च हुआ और बाकी धन कृषिके अनुसन्धानमें लगानेका निश्चय किया गया। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये बिहारके पूसा नामक स्थानमें ८६० एकड़ भूमि लेकर

कृषिका एक कालेज और अन्वेषणकी एक संस्था स्थापित हुई। इस उपर्युक्त इंस्टीट्यूटमें पूर्ण रूपसे सुसज्जित प्रयोगशालाएँ और घास-पातकी प्रदर्शनी है। इसमें वैज्ञानिक पुस्तकों और पत्रोंका बहुत अच्छा संग्रह भी है। यह संस्था प्रधानतः कृषिमें अनुसन्धान और प्रयोग करती तथा शिक्षा प्रदान करती है। इसमें सारे भारतसे सम्बन्ध रखनेवाले कृषिके प्रश्नोंको हल करनेकी चेष्टा की जाती है। हर प्रान्तसे कुछ ग्रेजुयट और कृषि कालेजोंमें पास छात्र इसमें प्रविष्ट किये जाते और उनको कृषिके विभिन्न विषयोंकी, उच्च कोटिकी, शिक्षा दी जाती है। १६२३ ई० में भारतके छात्रोंको विदेश जाकर कृषिकी शिक्षा प्राप्त करनेसे रोकनेके लिये इसमें अनेक सुधार हुए—विशेषज्ञों-की नियुक्ति हुई और अन्वेषणका प्रोत्साहन दिया गया। अब तक ४००के लगभग छात्र यहाँसे शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। इसमें विना मूल्य जनताको कृषि-विषयोंपर परामर्श भी दिया जाता है। कृषिके सम्बन्धमें (खाद वा बीजके सम्बन्धमें) जिस व्यक्तिको जो कुछ सूचना प्राप्त करनी हो, वह यहांके डाइरेक्टरके पास लिखनेसे प्राप्त हो जाती है। इस संस्थाके अधीन चार और कृषि-सम्बन्धिनी संस्थाएँ (बैंगलोर, करनाल, आनन्द और कोयम्बटूरकी) हैं। इस संस्थामें प्रविष्ट होनेके लिये भिन्न-भिन्न प्रान्तों और देशी रियासतोंसे छात्र भेजे जाते हैं। साधारणतया छात्रोंको बी० एस-सी० आनर्स वा एम० एस-सी० पास वा किसी कृषि कालेजमें पास होना चाहिये। इस संस्थाका वार्षिक खर्च प्रायः साढ़े पन्द्रह लाख रुपया है।

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ सायंस, बंगलोर—इस संस्थाकी स्थापना १६११ ई० में हुई। बम्बईके सुप्रसिद्ध करोड़पति पारसी श्रीयुत जमशेदजी नसरवानजी ताताने वैज्ञानिक विषयोंपर उच्च कोटिके अन्वेषणके लिये एक संस्था स्थापित करनेके विचारसे पर्याप्त धन देनेकी इच्छा प्रकट की। इसके पश्चात् शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गयी। उनके दो सुयोग्य पुत्र [सर दोराब-जी ताता और सर रतनजी ताता] ने अपने पिता-की इच्छाकी पूर्तिके लिये भारत सरकारको पर्याप्त धन प्रदान किया। चूँकि, मैसोर सरकारने इसके लिये विना मूल्य स्थान और ५० हजार प्रति वर्ष धनसे सहायता करनेका वचन दिया; इसलिये यह संस्था बैंगलोरमें ही खोली गयी। इसमें विज्ञानकी चार शाखाओं (साधारण रसायन, कार्बनिक रसायन, सजीव रसायन और विद्युत् टेकनालाजी) के अध्ययन और इनमें उच्च कोटिके अन्वेषणका प्रबन्ध हुआ। यूनिवर्सिटीकी डिगरी प्राप्त कर लेनेपर ही इसमें छात्र प्रविष्ट किये जाते हैं। अनेक छात्रोंको इसमें ५०) से ७०) रु० तक प्रति मास वृत्ति मिलती है। इसकी सभी शाखाएँ अन्वेषण-कार्यके लिये पूर्ण रूपसे सम्पन्न हैं। इसके पुस्तकालयमें उपर्युक्त विषयोंकी प्रायः १६००० पुस्तकें हैं और इन विषयोंकी संसारकी सभी भाषाओंकी पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। इसके सभी छात्रोंको फ्रेंच और जर्मन भाषाएँ सीखनी पड़ती हैं। छात्रोंको कमरे, रोशनी, नौकर इत्यादिके लिये १०) रु० प्रति मास देना पड़ता है। इंस्टीट्यूटमें कोई फीस नहीं देनी पड़ती। साधारणतया खानेमें ३०) रु० प्रति मास खर्च होता है। इसमें तीन टर्म होते हैं। साधारणतया छात्र इसमें तीन वर्ष रहते हैं और अन्वेषण करनेपर एसोशियेटशिप (A.I.I.Sc) की उपाधि मिलती है। यहाँ जो अन्वेषण होते हैं, वे यहाँकी पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। इस पत्रिकाके सालमें प्रायः १५ अङ्क निकलते हैं। अनेक प्रान्तोंकी सरकारसे वृत्ति पाकर इसमें छात्र अन्वेषण करने आते हैं। प्रस्तुत लेखकने बिहार सरकारकी ओरसे छात्र-वृत्ति पाकर इस संस्थामें दो वर्षों तक अन्वेषण-कार्य किया था, जिससे उसे ए० आई० आई० एस-सी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस संस्थामें प्रायः ५ लाख ४० हजार रुपया प्रति वर्ष खर्च होता है। अब तक इस संस्थाके अध्यक्ष अंग्रेज वैज्ञानिक ही होते थे; पर गत वर्ष, पहली

बार, दस वर्षके लिये, एक भारतीय (सर सी० वी० रमण) की नियुक्ति हुई है।

इंडियन एसोशियेशन फार कल्टिवेशन आफ सायंस, कलकत्ता—इस संस्थाकी स्थापना १८७६ ई० में, विज्ञानकी उन्नति करनेके लिये, हुई थी। इसके संस्थापक डा० महेन्द्रलाल सरकार थे। इन्होंने भारतमें वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये सुअवसर प्रदान करनेके उद्देश्यसे ही इसकी स्थापना की थी। इसमें जो प्रयोग-शाला बनी है, उसका खर्च विजयानगरम्‌के महाराजने दिया है। इसमें एक पुस्तकालय, ग्रहोंके निरीक्षणके लिये एक वेधशाला और एक सुन्दर वक्तृता-भवन भी है। इसमें भौतिक विज्ञान, रसायन और खनिज-विज्ञानकी विभिन्न शाखाओंमें अनुसन्धान करनेका बहुत अच्छा प्रबन्ध है। इस संस्थाके अवैतनिक अन्वेषक सर सी० वी० रमण थे। जब रमण महोदय कलकत्तेमें थे, तब इसी संस्थामें अपना अनुसन्धान-कार्य किया करते थे। ये इसी संस्थाकी ओरसे इंडियन जर्नल आफ् फिजिक्सका सम्पादन भी किया करते थे। इस पत्रके प्रायः ७०० पृष्ठ प्रतिवर्ष प्रकाशित होते हैं।

यह संस्था भारतके सब प्रान्तोंके अन्वेषकोंके लिये खुली है। एक्स-किरण, चुम्बकत्व, वर्णपट, भौतिक विज्ञान, रसायन और खनिज-विज्ञानकी विभिन्न व्यावहारिक शाखाओंमें अनुसन्धानके लिये इसमें विशेष प्रबन्ध और साधन हैं।

इसके संस्थापक डा० महेन्द्रलाल सरकारने जो थोड़ा धन दिया है, उससे, जनताके चन्देसे और सरकारकी वार्षिक सहायतासे इसका सारा खर्च चलता है। कुछ छात्रोंको, उनकी विशेष दक्षतापर, छात्रवृत्ति भी दी जाती है। सब कार्यकर्त्ताओंको प्रयोग करनेके यन्त्रों और सामग्रियोंके लिये कुछ देना नहीं पड़ता। दसहरेकी छुट्टीमें केवल तीन सप्ताहके अतिरिक्त यह संस्था कभी बन्द नहीं होती। जो अध्यापक गर्मीकी छुट्टियोंमें अनुसन्धान करना चाहें, उनके लिये इसमें कार्य करनेकी बड़ी सुविधा है। इसमें छात्रोंके रहनेका कोई प्रबन्ध नहीं है। इस संस्थाका वार्षिक व्यय प्रायः ४५ हजार रुपया है। इसकी प्रबन्ध-कारिणी समितिके अध्यक्ष कलकत्तेके सुप्रसिद्ध इंजिनियर सर राजेन्द्रनाथ मुकर्जी हैं।

बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता—सर जगदीशचन्द्र बोस (वसु)ने जब सरकारी नौकरीसे पेन-शन ली, तब अपने और अपने अनुचरोंके अनुसन्धानके लिये उन्होंने, ३० नवम्बर, १९१७ ई० में, उपर्युक्त संस्थाकी स्थापना की। इसमें एक बृहत् वक्तृता-शाला है, जिसमें १५०० मनुष्य बैठ सकते हैं। इसकी विशेषता यह है कि, बहुत धीरेसे बोलनेपर भी इसके कोने-कोनेमें शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता है। बहुत ऊँचे शिक्षा प्राप्त करनेपर ही, मौलिक अनुसन्धानके लिये, वैज्ञानिक इसमें प्रविष्ट किये जाते हैं। साधारणतया ये एम० एस-सी० पास होते हैं। इसमें प्रविष्ट होनेके पूर्व छात्रोंको वचन देना पड़ता है कि, वे आजीवन अनुसन्धानमें ही लगे रहेंगे। इसके संस्थापक की यह इच्छा है कि, सभी देशोंके वैज्ञानिक इसमें प्रविष्ट हों। इस संस्थामें राष्ट्रियताका कोई बन्धन नहीं है। अब तक जो अनुसन्धान, इस संस्थामें, हुए हैं, उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि, प्राणियों और पौधोंमें कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनोंमें एक प्रकारकी ही धमनियाँ होती हैं—दोनोंमें एक प्रकारके ही परिवर्त्तन होते हैं। औषधियोंके प्रयोगसे मनुष्यपर जो प्रभाव पड़ते हैं, वे ही पौधोंपर भी पड़ते हैं। इससे पौधोंपर किये प्रयोगोंसे मनुष्यपरके प्रभावका भी ज्ञान हो सकता है। सर जगदीशने एक बड़े ही सूक्ष्म और यथार्थ स्वयं-लेखक यन्त्रका आविष्कार किया है, जिससे पौधोंपर उत्पन्न प्रभावोंका ज्ञान तत्क्षण, कुछ सेकिंडोंमें ही, हो जाता है। सर जगदीशने अब तक अपने १५ लाख रुपये इसमें लगाये हैं।

हारकोर्ट बटलर टेकनालाजिकल इंस्टीट्यूट,

कानपुर—औद्योगिक विषयोंकी उच्च शिक्षा और अन्वेषणके लिये युक्त प्रान्तमें एक संस्था स्थापित करनेका प्रस्ताव, १९०७ ई० में, नैनीतलकी औद्योगिक कान्फरेन्समें, हुआ। १९११ ई० से इसके लिये अधिक उद्योग प्रारम्भ हुआ। इसी वर्ष उस समयके युक्त प्रान्तके गवर्नरने इसके मकानातकी नींव डाली। इसमें चार प्रमुख विभाग (साधारण औद्योगिक रसायन, तेल और चमड़े-का व्यवसायका और शक्करका व्यवसाय) थे; पर पीछे चमड़ेके व्यवसायका विभाग आगरा दयालबाग चला गया। शेष तीन विभाग अब भी इसमें हैं। इसमें एक उद्योग-शाला और एक इंजिनियरिंग प्रयोगशाला भी है। इसका पुस्तकालय बहुत बड़ा और आधुनिक ग्रन्थोंसे परिपूर्ण है। जिन व्यक्तियोंको यहाँ शिक्षा दी जाती है, वे अपने विषयके अच्छे ज्ञाता होते हैं और कारखाना खोलकर उसको सञ्चालित करनेमें समर्थ होते हैं।

इसमें प्रविष्ट होनेके लिये जुलाई मासमें, लिखित और मौखिक, एक परीक्षा होती है। साथ ही छात्रको गणित, रसायन और भौतिक विज्ञानमें इंटरमिडियेटमें उत्तीर्ण होना चाहिये; पर साधारणतया बी० एस-सी० उत्तीर्ण छात्र ही इसमें प्रविष्ट होते हैं। जो विद्यार्थी युक्त प्रान्तके निवासी हों, उन्हें प्रत्येक विभागमें (५ छात्रोंको) वृत्ति दी जाती है। ऐसे छात्रोंकी फीस माफ हो जाती है और उन्हें २५) रु० मासिक वृत्ति, ३ वर्ष तक, प्राप्त होती है। युक्त प्रान्तके बाहरके छात्रोंके लिये भी कुछ स्थान रहते हैं; पर उन्हें प्रति वर्ष १५००) रुपया फीस देनी पड़ती है। यह पढ़ाई ३ वर्षतक होती है। इसके पश्चात् उन्हें डिप्लोमा प्राप्त होता है। डिप्लोमा प्राप्त कर लेनेपर भी ६ ऐसे छात्रोंको २५) रुपया मासिक वृत्ति मिलती है। अन्वेषणके लिये दो फेलोशिप एक सौ रुपया प्रति मासके, ३ वर्ष तक, मिलते हैं। छात्रोंको छात्रावासमें रहना पड़ता है। वहाँ प्रायः ४०) प्रति मास खर्च पड़ता है। इसमें प्रविष्ट होनेके लिये १ ली मईके पूर्व प्रिंसिपल हारकोर्ट बटलर इंस्टीट्यूट, कानपुरके पास प्रार्थनापत्र पहुँच जाना चाहिये।

साउथ इंडियन सायंस एसोशियेशन, बैंगलोर— इस संस्थाकी स्थापना १९११ ई० में हुई। इसका उद्देश्य भारतके विभिन्न भागोंके वैज्ञानिकोंको परस्पर संसर्गमें लाकर विज्ञानकी नियमबद्ध और सम्यक् उन्नति करना और जनताका ध्यान विज्ञानकी ओर आकर्षित करना है। इस संस्थाके १०० से ऊपर सभ्य हैं। कोई भी व्यक्ति (जिसकी उम्र २१ वर्षसे ऊपर हो और इस संस्थाके नियमों और उद्देश्योंसे सहमत हो) इसका सदस्य हो सकता है। १ रुपया प्रवेश फी और ३ रुपया वार्षिक शुल्क देना पड़ता है। १५०) रुपये देनेसे लोग आजीवन सदस्य हो सकते हैं। इसमें सदस्योंके मौलिक प्रबन्ध पढ़े जाते और उनपर विचार होता है।

फारेस्ट कालेज, देहरादून—जंगलात विषयोंकी शिक्षाके लिये १८७८ ई० में, देहरादूनमें, एक स्कूलकी स्थापना हुई। १८८४ ई० में यह स्कूल भारत सरकारके अधीन आया और इसमें सब प्रान्तोंके रेंजरोंकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। १९१२ ई० में प्रान्तीय फारेस्ट सर्विसकी स्थापना हुई और १९२६ ई० में उसका अन्त हो गया। पहली नवम्बर १९२६ ई० से इंडियन फारेस्ट सर्विसकी शिक्षाके लिये आक्सफार्ड विश्वविद्यालयके ढंगपर यहाँ एक कालेजकी स्थापना हुई। यहाँ जंगल विभागके अफसरोंको शिक्षा दी जाती है और इसके लिये पूरा प्रबन्ध है। इसकी सब इमारतें १९१२ ई० से १९२६ ई० के बीच बनीं। यह कालेज प्रायः ४८ एकड़ भूमिपर स्थित है। यहाँके छात्रोंको फीसके रूपमें २४००) रुपया प्रतिवर्ष देना पड़ता है। इस सम्बन्धमें सूचनाके लिये प्रिंसिपल, फारेस्ट कालेज, चाँदबाग, देहरादूनसे पत्रव्यवहार किया जाना चाहिये।

टामसन सिविल इंजीनियरिंग कालेज, रुड़की— इसकी स्थापना इंजीनियरिंगकी शिक्षा देनेके लिये युक्त प्रान्तके छोटे लाट मि० टामसन द्वारा, १८४७ ई० में, हुई। इसमें बहुत अच्छी प्रयोग-शालाएँ, वक्तृता-भवन और आदर्श कमरे

हैं। इसके पुस्तकालयमें प्रायः ३० हजार पुस्तकें हैं। यहांके भारतीय छात्रोंका १२२॥) प्रतिमास और अँग्रेज छात्रोंका १८०) प्रति मास खर्च पड़ता है। प्रत्येक छात्रको २४) ह० प्रतिमास फीस देनी पड़ती है। सरकार ४०) रुपयेकी १६ वृत्तियाँ देती है। इस कालेजमें भारतके सभी प्रान्तोंके विद्यार्थी प्रविष्ट होते हैं। यहाँ ३ वर्षकी शिक्षा दी जाती है। यहांके उत्तीर्ण छात्रोंको असिस्टेंट इंजिनियरका सर्टिफिकेट दिया जाता है। इसका वार्षिक व्यय सवा पाँच लाख रुपया है।

शब्द

श्रीयुत वटकृष्ण

जिन विषयोंसे जनताका प्रतिदिनका संपर्क है, उन्हें भी पूर्णतया समझनेका वह अत्यल्प प्रयत्न करती है। भारत वर्षमें, दुर्भाग्यसे, अधिक संख्यामें ऐसे ही व्यक्ति हैं, जो अज्ञात विषयोंमें अधिकार प्राप्त करनेका पूर्ण प्रयत्न नहीं करते! इसका मुख्य कारण शिक्षाका अभाव तथा प्रारम्भसे ही किसी वस्तु अथवा विषयमें हस्तक्षेप न करनेकी प्रकृति है। हम प्रतिदिन इष्ट-मित्रोंमें बैठकर घंटों वार्त्तालाप करते हैं; किन्तु यह कम सोचते हैं कि, जो शब्द हम हृदयगत भावोंको व्यक्त करनेके लिये मुखसे निकालते हैं, उनकी उत्पत्ति कहांसे होती है तथा वे कर्णकुहरमें प्रवेश कर किस प्रकार श्रवण-सुख उत्पन्न करते हैं। संसारमें वाद्य-यन्त्र द्वारा समस्त श्रोताओंको मुग्ध करनेवाले अधिक लोग हैं; किन्तु नादकी उत्पत्तिका ज्ञान रखनेवाले इने-गिने ही हैं।

'शब्द क्या है?'' यदि हम तालाबमें एक कंकड़ फेंकें, तो तरङ्गमाला चारों ओर फैलकर विलीन होने लगती है; किन्तु वस्तुतः जल अपने स्थानसे नहीं टलता। जलमें एक कागजकी नौका द्वारा इसकी परीक्षा की जा सकती है। नौका जलमें केवल तरङ्गोंके कारण ऊपर-नीचे जायगी; किन्तु अपने स्थानसे थोड़ी भी विचलित नहीं होगी। प्रत्येक जलकाकण केवल ऊपर-नीचे करके अपने ही स्थानपर रह जाता है। इस प्रकार तरङ्ग तथा जलकणकी गतिमें एक सम कोण बनता है। ऐसी तरङ्गें खड़ी (Transverse) तरङ्ग कहलाती हैं। किन्तु यदि जलकणकी गति आगे-पीछे और तरङ्गोंकी ही दिशामें हो, तो तरङ्गें लम्बी (Longitudenial) तरङ्ग कहलायँगी। जब हम वायुमण्डलमें किसी प्रकारकी अस्थिरता उत्पन्न कर देते हैं तब वहाँ तरङ्गोंकी उत्पत्ति होती है और तरङ्गित शक्ति हमारे कर्ण-कुहरमें प्रवेश कर एक क्षीण पर्देसे टकराकर शब्दके रूपमें सुनाई देती है। प्रति सेकिंड ३० से १५००० तक कम्पनके शब्दोंको एक साधारण व्यक्ति भी सुन सकता है; किन्तु इससे अधिक कम्पनके शब्द साफ नहीं सुनाई देते। यदि शब्द अत्यन्त धीमे हों, तो सहकम्पन (Sympathetic Vibration) द्वारा वे सरलतासे सुने जा सकते हैं।

शब्द, चूँकि, तरङ्गों द्वारा गमन करते हैं; इसलिये उन्हें कुछ समय भी लगता है। यदि कुछ दूरपर बन्दूक छोड़ी जाय, तो सदा प्रकाशके पश्चात् शब्द सुनाई पड़ता है। प्रकाशकी गति १८६००० मील प्रति सेकिंड तथा वायुमें शब्दकी गति ११२० फीट प्रति सेकिंड है। वस्तुका जितना ही अधिक घनत्व होगा, उतनी ही शब्दकी गति कम होगी। कुहरेमें १०८० फीट प्रति सेकिंडके लगभग शब्दकी गति हो जाती है। लोचकी भिन्नताके कारण वायु-सदृश पदार्थोंमें शब्दकी गति धीमी, द्रव पदार्थोंमें उससे तेज तथा ठोस पदार्थोंमें सबसे तेज होती है। तीव्र तथा धीमा

शब्द एक ही गतिसे वायुमें गमन करता है; किन्तु भिन्नता केवल तरङ्गके कम्पन-विस्तारके कारण होती है। जिस प्रकार जलकी तरङ्गें फैलनेपर कम ऊँची होती जाती हैं; किन्तु गतिमें भिन्नता नहीं आती, उसी प्रकार शब्दकी तरङ्गें दूर-दूर फैलती हैं; और, ऊँचाई कम हो जानेके कारण दूरस्थ व्यक्तिको शब्द धीमे सुनाई पड़ते हैं। यदि हम चाहें, तो तरङ्गोंका फैलना रोककर शक्तिको अधिक प्रसारित न होने दें। ऐसी अवस्थामें शब्दोंकी कड़ाई वैसी ही रह जायगी। इसी सिद्धान्तपर ध्वनि-विस्तारक (Loud-speaker) तथा मेगाफोन (Megaphone) आदि यन्त्र निर्मित किये जाते हैं।

प्रकाश, विद्युत् तथा ताप, ये तीनों तरङ्गोंके ही सहारे गमन करते हैं। इनमें विशेषता यह होती है कि, ये शून्य में भी संचालित हो सकते हैं; किन्तु शब्दके गमन करनेके लिये किसी भौतिक मध्यस्थकी अतीव आवश्यकता होती है। मध्यस्थमें शब्दके कम्पनोंको प्रेषित करनेके लिये लोच तथा शक्ति एकत्र करनेका गुण अवश्य होना चाहिये। प्रकाश आदिकी तरङ्गें शब्द-तरङ्गोंसे लम्बाईमें भिन्न होती हैं। इसी भिन्नताके कारण ताप आदिकी तरङ्गें सम्मिश्रित होनेपर भी यन्त्रों द्वारा सरलतासे जानी जा सकती हैं। वैज्ञानिकोंके आविष्कारने एक शक्ति-तरङ्गको अन्यमें परिवर्त्तित कर देना भी अब सम्भव कर दिया है। अब सरलतासे यन्त्रोंके द्वारा विद्युत् तापमें तथा ताप ध्वनिमें परिवर्तित किया जा सकता है।

शब्दकी तरङ्गें प्रतिबिम्बित और आवर्त्तित (Re-fracted) भी होती हैं। किसी विशालकाय हर्म्य अथवा पहाड़की चोटीसे किञ्चित् दूर खड़े होकर ताली बजाने अथवा बोलनेसे जो प्रतिध्वनि होती है, वह केवल शब्द-तरङ्गोंसे टकराकर लौट आनेके कारण ही होती है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार जलस्थित तरङ्गें किसी रोड़ेके मध्यमें आ जानेके कारण, मुड़कर उसके पीछे पुनः मिल जाती हैं, उसी प्रकार शब्दकी तरङ्गें भी करती हैं।

सहकम्पन (Sympathetic Vibration) के ऊपर भी किञ्चित् प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। दो ध्वनि-तरङ्गोंके मिलनेसे सदा धड़कन तथा कम्पन उत्पन्न होते हैं। इनके कारण ध्वनि कभी तीव्र तथा कभी धीमी सुनाई देती है। यदि दो नाद-दुशूलों (Tuning Forks)को, जिनकी कम्पन-आवृत्तियाँ (Frequency) भिन्न-भिन्न हैं, बजाया जाय, तो धड़कनें (Beats) सुनाई देंगी। ये धड़कनें ध्वनि तरङ्गोंके व्यक्तीकरणके कारण उत्पन्न होती हैं। यदि दो तरङ्गें एक ही कम्पन-विस्तार तथा दशा (Phase) की होंगी, तो एक तीव्र ध्वनि सुनाई देगी और यदि उनकी दशामें १८०° का अन्तर होगा, तो कोई ध्वनि कर्णगोचर न होगी। यदि एक अनुनादकारिणी नली (Resonance Tube) लेकर उसके मुखपर एक दुशूल बजाया जाय, तो उसमें धीमी धड़कन सुनाई पड़ेगी; किन्तु जब नलीमें हवाका हिस्सा घटा-बढ़ाकर दुशूलसे निकली तरङ्गोंकी लम्बाईका चौथाई कर दिया जायगा, तब एक तीव्र स्वर सुनाई देगा। यह सहकम्पनके कारण होता है। एक वस्तुकी एक विशेष कम्पन-गति होती है। नलीकी वायु तथा दुशूलकी गति मिल जानेके कारण ही ऐसा होता है। इसी सिद्धान्तके ऊपर बाँसुरी बनायी जाती है। छिद्रोंको खुला अथवा बन्द रखकर तथा जोर अथवा धीमेसे फूँककर कम्पन-गति ठीक कर ली जाती है।

शब्दके सिद्धान्तपर अनेक यन्त्र निर्मित हुए हैं। हाइड्रोफान (Hydrophone) नामक यन्त्र प्रतिध्वनिके सिद्धान्तपर निर्मित है और सामुद्रिक गहराइयों तथा चट्टानोंका पता लगानेके लिये प्रयुक्त होता है। इसके द्वारा, कोई ध्वनि जलकी सतहके नीचे करके, उसकी प्रतिध्वनि आसानीसे जानी जा सकती है; और, चूँकि हम जलमें ध्वनिकी गति जानते हैं; इसलिये समय मालूम होनेसे उस स्थानकी गहराई सरलतासे निकल सकती है। युद्धके समयमें माइक्रोफोन (Microphone) यन्त्रोंके

द्वारा दुश्मनोंकी तोपोंका पता लगानेमें बड़ी सफलता हुई थी। यह भी केवल शब्दकी गति तथा गणित द्वारा सरलतासे किया जाता था। ग्रामोफोन भी इसीके सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। "ध्वनिकी तरङ्गोंकी फोटोग्राफी द्वारा उतारा जा सकता है; और, यदि कोई लोचदार पर्दा किसी ध्वनिकी तरङ्गोंके कम्पनके सदृश कम्पन करे, तो वैसी ही ध्वनि पैदा की जा सकती है।" इन्हीं दो सिद्धान्तोंपर इसका निर्माण हुआ है। ग्रामोफोनके ध्वनि उत्पादक यन्त्र (Sound Box)में एक गोल अबरकका टुकड़ा होता है, जिसके कम्पनसे ध्वनि होती है। मोटरके भोंपो (Horn) भी इसी सिद्धान्तपर निर्मित हैं। इनमें लोहेका पर्दा लगा होता है, जिसके केन्द्र-स्थानपर गोल पेच होता है। इसीके द्वारा पर्दा दबाया जाकर कम्पन उत्पन्न किया जाता है। पियानो आदि तारके विभिन्न यन्त्र भी शब्दके ही हेतुसे निर्मित किये गये हैं। हारमोनियममें धौंकनीसे हवा भरी जाती है। हवा निकलनेके स्थानोंपर इस्पात अथवा पीतलकी पतली-पतली पत्तियाँ लगा दी जाती हैं। इन्हीं पत्तियोंमें कम्पन होनेके कारण ध्वनि उत्पन्न होती है। पत्तियोंकी कम्पन-गति भिन्न-भिन्न होनेसे इनसे भिन्न-भिन्न ध्वनियोंका आविर्भाव होता है। और भी अन्य अनेक यन्त्र, इसके साधारण सिद्धान्तोंपर, निर्मित होते हैं। विद्युत् तथा शब्दके सिद्धान्तोंको मिलाकर नित्य प्रतिके अनेक कार्योंमें आनेवाले (जैसे, टेलीफोन, रेडियो, माइक्रोफोन आदि) यन्त्र निर्मित किये गये हैं।

जैसा कि, प्रथम कहा गया है, ध्वनि तरङ्गोंकी कम्पन-गतिसे प्रभावित होती है। व्यक्ति-विशेषके शब्दोंमें जो अन्य लोगोंसे भिन्नता होती है, वह केवल इसी कम्पन-गतिके कारण। मनुष्यके कण्ठमें भी दो पर्दे होते हैं, जिनके मध्यमें हवाके दबाव अथवा आवर्तनके कारण कम्पन उत्पन्न किया जाता है। शब्द बोलते समय, उसपर हवाका दबाव, गला, मुख तथा नासिकाके छिद्रका भी प्रभाव पड़ता है। मनुष्य तथा पशुके शब्द-के पर्दोंमें कुछ विशेष अन्तर नहीं होता। केवल मनुष्य हवाको अपने स्वरके अनुसार, इच्छानुसार, न्यूनाधिक करके शब्द करता है; किन्तु पशुमें यह क्षमता नहीं होती।

मच्छड़ और मलेरिया

पं० वासुदेव उपाध्याय एम० ए०, बी० एस-सी०

प्रायः सभी मनुष्य मलेरियाके नामसे परिचित हैं। यह एक ऐसी आफत है, जिससे शायद ही कोई घर बचा हो। इसको साधारणतः मनुष्य "जूड़ी बुखार"के नामसे पुकारते हैं। संसारमें प्रायः आधी मृत्यु इसीके कारण होती है। इस बीमारीसे जो मनुष्य नहीं मरते, उनका शरीर इतना कृश हो जाता है कि, वे किसी कामके योग्य नहीं रह जाते—उनका शरीर सदाके लिये जर्जर बन जाता है। संसारका कोई देश स्वास्थ्यके इस शत्रुसे नहीं बचा है और इस शत्रुकी सेना छिपे तौरसे सर्वत्र युद्ध करती रहती है।

उन्नीसवीं शताब्दीतक इस बातको कोई भी नहीं जानता था कि, यह रोग कैसे उत्पन्न होता है। वैद्यकशास्त्रमें इस रोगकी उत्पत्तिकी कोई विशेषता नहीं समझी जाती थी; पर यह ज्वर "मलेरिया" है—इसका कोई प्रमाण नहीं था। पहले इसके विषयमें विचित्र-विचित्र विचार

प्रचलित थे। "मलेरिया" ※ शब्द इटालियन भाषाका है। इसका अर्थ है "दूषित वायु"। सबसे प्रथम फ्रांसके एक वैज्ञानिक (लैवेर) ने, १८८० में, इसका पता लगाया तथा एक अमेरिकनने १८८३ में यह खोज की कि, 'मलेरिया' रोग मच्छड़के द्वारा फैलता है। सन् १८९८ में
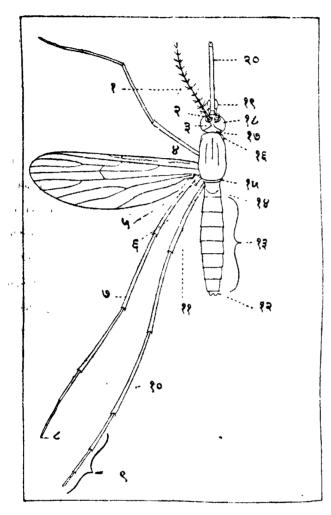
एक मच्छड़ (चित्र नं० १)

१ ज्ञापक। २ पूर्व भाग। ३ कपाल। ४ मध्य वक्ष। ५ पक्षावशिष्ट। ६ उदरका प्रथम भाग। ७ गन्धिका। ८ टाँगका अन्तिम खण्ड। ९ प्रपादिकाके खण्ड। १० ऊर्विकाका खण्ड। ११ उर्विका। १२ अण्ड विधायक। १३ उदर। १४ पश्चात् वक्ष। १५ शराविका। १६ पूर्ववक्षिक भाग। १७ पश्चादिका। १८ नेत्र। १९ सपक्षक। २० शुण्डिका।

कर्नल रासने (जो भारतमें एक सैनिक डाक्टर थे) इसकी पूरी खोज की और पता लगाया कि, इस रोगके उत्पन्न करने तथा फैलानेमें मच्छड़का कितना हाथ है। इससे पहले वैज्ञानिकोंमें कई सिद्धान्त थे; परन्तु रासका सिद्धान्त सत्य तथा प्रमाण-युक्त निकला। अब भी इन्हींका सिद्धान्त माना जाता है। (चित्र न० १ देखिये)

अब रोग फैलानेवाले मच्छड़का हाल सुनिये। यह रोग घरेलू मच्छड़से होता है। ये दो जातिके होते हैं—क्यूलेक्स (Culex) (देखिये चित्र न० २) और अनाफलीज (देखिये चित्र न० ३) (Anopheles)। यों तो सभी मच्छड़ बुरे होते हैं; परन्तु मनुष्यमें "मलेरिया" फैलानेका श्रेय अनाफलीजको ही है। इसकी सौ किस्में होती हैं; परन्तु उनमेंसे तीस किस्में ऐसी हैं, जिनके द्वारा इस शत्रुकी सेना फैलायी जाती है। भारतमें केवल तीन ही किस्में हैं—

(अ) Anopheles Culicifacies. (ब) Anopheles Stephense. (स) Anopheles Listoni.

अनाफलीज तथा क्यूलेक्समें बहुत-सी भिन्नताएँ हैं, जिनके द्वारा ये एक दूसरेसे अलग किये जा सकते हैं। इनका कुछ स्थूल भेद नीचे दिया जाता है—

(१) अंडे। मच्छड़ोंके अंडे मोरियों तथा गन्दे पानीमें तैरते पाये जाते हैं। ये सब अंडे एक बेड़ा

※ Malaria = Mal+aria यानी Mal = बुरा, aria = वायु।

बन जाते हैं और देखनेमें नावके जैसे मालूम पड़ते हैं। अनाफलीजके अंडे अलग-अलग रहते हैं; वे कभी बेड़ा बनाकर नहीं रहते। (देखिये चित्र नं० ४ और ५)

(२) बच्चे (Lerva) लार्वा। ये बच्चे पानीकी सतहके पास ही तैरते रहते हैं। सतहके पाससे ये साँस ले सकते हैं। क्यूलेक्समें साँस लेनेके लिये लम्बी नली होती है और उसका बच्चा सतहसे तिरछा अड़ा रहता है। परन्तु अनाफलीजका बच्चा पानीकी सतहके बराबर (Parallel) अड़ा रहता है तथा उसमें साँस लेनेके लिये छोटी-सी नली रहती है। (चित्र नं० ६।७)

(३) प्यूपा। गर्म देशोंमें ८ से १० दिनके पश्चात् लार्वाकी दशामें परिवर्तन होता है। इन दिनोंमें उसका आवरण दो या तीन बार फटकर गिर पड़ता है। तब उसका आवरण पीछेकी ओर फटता है और भीतरसे एक जन्तु निकल आता है। यह प्यूपा कहलाता है। दोनों जातियोंके मच्छड़ोंके प्यूपा भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं।

(४) पंख। अगर मच्छड़ोंके पंख सूक्ष्मदर्शकसे देखे जायँ, तो सहजमें ही पहचाने जा सकते हैं। क्यूलेक्सके पंखमें किसी प्रकारका दाग वगैरह नहीं रहता; पर अनाफलीजके पंखमें काले-काले धब्बे रहते हैं। इन्हीं धब्बोंसे दोनोंके पंख अलग किये जाते हैं।

(५) बैठनेका ढंग। अनाफलीज कुछ टेढ़ी तरहसे दीवारके सहारे बैठता है; परन्तु क्यूलेक्सका शरीर बैठनेके समय दीवारके बराबर रहता है। (देखिये चित्र नं० ८।९)

क्यूलेक्स मच्छड़ (चित्र नं०२)

(६) मुँह। मच्छड़ोंके मुँहके दो हिस्से होते हैं। उनकी बनावट ऐसी होती है, जिससे मच्छड़ोंका सब काम आसानीसे निकल सके। मच्छड़ोंके मुँहके आगे पाँच लम्बे-लम्बे पतले अङ्ग हैं, जो स्वतः दिखलायी पड़ते हैं। बाहरी दो हिस्सोंका नाम एक ही है, जिसको अंग्रेजीमें 'अनटानी' (Antonae) या ज्ञापक कहते हैं।

इनके द्वारा मच्छड़ सब चीजोंको छूकर ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसमें बहुत बाल रहते हैं। नरमें ये बाल भाड़ी-के जैसे घने रहते हैं। इसके नजदीक ही दो ऐसे और भी भाग हैं, जो अन्नदानीके काममें सहायता करते हैं। इनका नाम मैक्सीलरी पल्प (Moxillary Palp) है। बीचके अकेले भागको प्रोबोसिस (Probosis) कहते हैं। यह एक नलीकी सूरतका होता है, जिसके द्वारा मच्छड़ काटनेपर अपना राल मनुष्यके शरीरमें डालते तथा

अनाफलीज मच्छड़ (चित्र नं० ३)

खूनको खींचते हैं। क्यूलेक्स तथा अनाफलीजमें ये सब भाग मौजूद रहते हैं। अनाफलीजमें (Moxillary Palp) नर तथा मादा, दोनोंमें बराबर होता है। क्यूलेक्स के नरमें Moxillary palp बड़ा तथा मादामें छोटा होता है। ऊपर लिखे कुछ भेदोंसे पाठक क्यूलेक्स तथा अनाफलीज मच्छड़ोंको पहचान सकते हैं। ऊपर बतलाया जा चुका है कि, "मलेरिया" की बीमारी अनाफलीजके ही द्वारा फैलायी जाती है। इस बीमारीको फैलानेमें मादा बहुत सहायक होती है। (देखिये चित्र न० १०, ११,१२)

प्रायः सभी बीमारियाँ छोटे-छोटे जीवाणुओं (Germs) से पैदा होती हैं। 'मलेरिया'के कीड़े Plasmodium (प्लासमोडियम) जातिके हैं। तीन प्रकारके ज्वर होते हैं, जो भिन्न किस्मोंसे पैदा होते हैं—

१ Plasmodium Vivox, २ Plasmodium Falciparum, ३ Plasmodium Malarial.

इन कीड़ोंके जीवनकी अवधि कुछ मनुष्योंके शरीरों तथा कुछ मच्छड़ोंमें व्यतीत होती है। मुख्य अवधि (जिसको अँग्रेजीमें अमैथुनिक जीवन कहते हैं) मनुष्योंके शरीरोंके अन्दर बीतती तथा गौण समय (Sexual Cycle or Sexual life) या मैथुनिक

जीवन अनाफलीजके अन्दर व्यतीत होता है। जब मलेरिया-वाही अनाफलीज मच्छड़ किसी मनुष्यको काटता है, तब उसके रालके द्वारा कीटाणु रक्तमें प्रवेश कर जाते हैं। ऊपर पाठकोंको बतलाया गया है कि, प्रोबोसीस (Probosis) मच्छड़के एक मुखकी नली है। उसी नलीके

क्यूलेक्सके अंड (चित्र नं० ४)

द्वारा राल मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करता है। मनुष्यके रक्तमें लाल रक्ताणु होते हैं, [जो Hoemoglobin (हिमोग्लोबिन) एक प्रकारका लाल पदार्थ है] जिसकी वजहसे लाल दिखलायी पड़ते हैं। रक्ताणुमें कीटाणु प्रवेश करते हैं। ये कीटाणु रक्ताणुमें घुसनेपर गोलीकी शकलके होते चले जाते हैं। पहले इनकी शकल दूसरी तरहकी होती है। ये कीड़े मनुष्यके रक्ताणुका भोजन कर बलिष्ठ होते जाते तथा इनका आकार भी बढ़ जाता है। यहाँतक कि, ये रक्ताणुके सारे शरीरको ढक लेते हैं। पूरे तौरसे
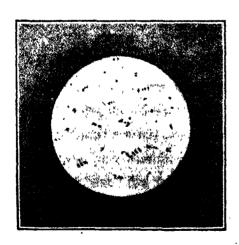
अनाफलीजके अंडे (चित्र नं० ५)

बढ़नेके बाद ये कीटाणु धीरे-धीरे छोटे-छोटे खण्डोंमें कटने लग जाते हैं। इस प्रकार एक कीटाणुके बहुतसे कीटाणु बन जाते हैं। जब भीतर बहुतसे टुकड़े हो जाते हैं, तब दबावके कारण रक्ताणु फट जाता है। बहुतसे कीटाणु-खण्ड उसमेंसे निकलकर रक्तमें इधर-उधर तैरने लग जाते हैं। कुछ समयके बाद इन खण्डोंमें दो रूप दिखलायी पड़ने लगते हैं। एक गोल रह जाता है, जो

अनाफलीजके परिवर्द्धित अंडे (चित्र नं० ६)

मादा कीटाणुके नामसे पुकारा जाता है और दूसरा मनुष्यके वीर्याणुकी शकलका होता है। इसका सिर गोल रहता है तथा एक लम्बी दुम भी होती है। (देखिये चित्र न० १३)
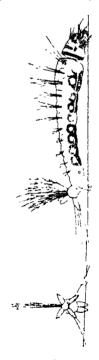
क्यूलेक्सका लार्वा (चित्र नं० ७)

थोड़े समयके बाद नर मादा खण्डसे मिल जाता है। इस संयोगमें वीर्याणु मादा खण्डमें मिल जाता तथा दुम बाहर रह जाती है। इतना परिवर्त्तन मनुष्यके शरीरमें ही होता है। यहाँतक कीटाणुके मुख्य जीवनकी पहली अवधि समाप्त

होती है। वैज्ञानिकोंका मत है कि, इस परिवर्तनमें कीटाणुके खण्डोंके साथ-साथ कुछ काले-काले कण पैदा होते हैं, जो रक्तके द्वारा शरीरके विभिन्न भागों (जैसे यकृत, दिमाग आदि स्थानों) में एकत्र हो जाते हैं। ये काले कण नलियों
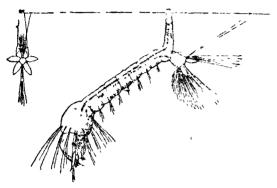
अनाफलीजका लार्वा (चित्र नं० ८)

(Arteries) में इतने बढ़ जाते हैं कि, खूनका बहाव रोक देते हैं, जिससे रोगीकी मृत्युकी सम्भावना हो जाती है। अगर ये खण्ड इसी प्रकार मनुष्यके रक्तमें रहें, तो आप ही आप नष्ट हो जाते हैं; परन्तु यदि अनाफलीज जातिकी मादा मच्छड़ने काटा, तो ये उसके पेटमें पहुँच कर भयानक स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं कि, Probosis के द्वारा राल मनुष्यके रक्तमें पहुँचता है और उसीके द्वारा मच्छड़ भी मनुष्यके खूनको पीता है। उसी
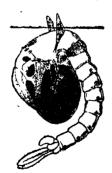
क्यूलेक्सका प्यूपा (चित्र नं०९)

खूनमें स्थित कीटाणु-खण्ड भी अनाफलीजके पेटमें चले जाते हैं। इन सब खण्डोंमें नर, मादा आदि सब मर जाते हैं, केवल Zygote रह जाते हैं, जिन्हें Ookerite कहते हैं।

ये गोल-गोल दाने भीतर-ही-भीतर छोटे छोटे भागोंमें बढ़ने लग जाते हैं। ये सब मच्छड़के शरीरके भोजनपर निर्भर रहते हैं। साथ-ही-साथ ये मच्छड़के पेटकी दीवारको फाड़कर ऊपरकी झिल्ली तथा पेटकी दीवारके बीचमें आ जाते हैं। दाने स्वयम् बढ़ते-बढ़ते इतने बढ़ जाते हैं कि, झिल्लीको भी फाड़ देते तथा खुद भी फट जाते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि, दाने असंख्य टुकड़ोंमें बटने लग जाते हैं और हर एक टुकड़ा मलेरियाका कीटाणु बन जाता है। ये सब असंख्य टुकड़े मच्छड़के शरीरमें इधर-उधर घूमने लग जाते हैं और रालवाली ग्रन्थियोंमें जमा हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि अनाफलीज किसीको काटे, तो सब मलेरियाके कीटाणु रालके द्वारा मनुष्यके रक्तमें प्रवेश कर जाते हैं। फिर

अनाफलीजका प्यूपा (चित्र नं० १०)
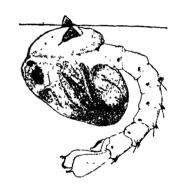
यही क्रम दुहराया जाता है। कीटाणु फिर रक्ताणुमें घुसकर बढ़ते हैं। फिर नर मादाके संयोगसे दाने (Zygote) बनते हैं। ये ही दाने रक्तके साथ मच्छड़के शरीरमें प्रवेश करते हैं। वहाँ फिर असंख्य मलेरियाके कीटाणु निकल कर रालके साथ रक्तमें प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार मलेरियाके कीटाणुका सारा जीवन मनुष्य तथा मच्छड़के शरीरमें व्यतीत होता है।

ये सब घटनाएँ इतनी अद्भुत हैं कि, प्राणि-शास्त्रसे अनभिज्ञ मनुष्य इनपर कदापि विश्वास नहीं कर सकता। मच्छड़ोंके द्वारा इतनी बड़ी प्रबल शत्रुकी सेना फैलायी जाय, यह कब विश्वासके लायक है? परन्तु होता है ऐसा

हो। अगर कीटाणु रक्तमें पड़े ही रह जायँ, तो मनुष्यके रक्तमें स्थित सफेद रक्ताणु उनको मार कर खा जायँ। परमात्माने उनको इसीलिये बनाया है कि, वे शरीरके शत्रुभूत नन्हे नन्हे कीटाणुओंको खाया करें। मनुष्यके रक्तमें बाहरसे जितने कीटाणु आते हैं, वह सबको खा लेता

अनाफलीज जातिका बैठा हुआ मच्छड़ (चित्र नं० ११)

है। बाहरके कीटाणु तथा सफेद रक्ताणुमें युद्ध होता है। अगर सफेद रक्ताणु प्रबल हुआ, तो कीटाणुको हरा देता है; परन्तु अगर वह बलवान् नहीं हुआ, तो कीटाणु रक्ताणु-का हरा देता है। शरीरमें रोगका प्रवेश करना कीटाणु तथा रक्ताणुके युद्धके ऊपर निर्भर है। मलेरियामें सर्वदा ऐसा नहीं होता; क्योंकि मलेरियाके जीवाणु इतनी तेजीसे बढ़ते हैं कि, अपनी अधिक संख्यामे ही रक्ताणुको हटा देते हैं। परन्तु किसीमें तो ऐसे सफेद रक्ताणु प्रबल

क्यूलेक्स जातिका बैठा हुआ मच्छड़ (चित्र नं० १२)

होते हैं कि, मच्छड़के हजार काटनेपर भी मलेरिया नहीं होता।

मलेरियाको साधारण रोग नहीं समझना चाहिये। इससे संसारके बड़से बड़े कार्योंमें भी बाधा पड़ी है। उत्तरी अमेरिकाके दक्षिणमें स्थित पनामा नहर पहले न बन सकी थी। जब वहांसे मलेरिया दूर किया गया, तब वह नहर तैयार हो सकी।

यह रोग गर्मी तथा पतझड़के महीनोंमें अधिक होता है। जहाँ पानीसे अधिक सर्दी तथा दलदल हो, वहाँ तो अधिकतर फैलता है। पाठक यह अच्छी तरह समझ गये होंगे कि, मलेरियाको फैलानेमें मच्छड़का कितना भारी हाथ है; इसलिये अगर हर स्थानमें मच्छड़के रहने लायक कोई जगह न हो, तो बहुत अच्छा हो। बन्द तथा गन्दे कमरोंमें मच्छड़ बहुधा पाये जाते हैं। अतः ऐसे स्थानोंमें गन्धक या किसी विषैली वस्तुका धुआँ देकर मच्छड़ोंको भगाना चाहिये। दूसरी बात यह है कि, उनके बच्चे
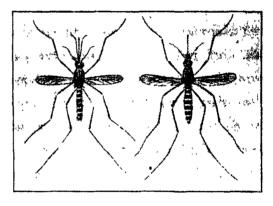
अनाफलीज जातिके मच्छड़ (चित्र नं० १३)

पैदा होनेका स्थान ही न रहने पावे। अगर घरके नजदीक तालाब या गंदी नाली हो, तो मिट्टीका तेल डालनेसे सब बच्चे मर जायँगे; क्योंकि तेल पानीके ऊपर तैरता है, जिससे उनको साँस लेनेके लिये स्थान ही न मिलेगा। तीसरा उपाय दवा है। मलेरियामें कुनैनको डाक्टरोंने राम-वाण माना है। सिनकोना नामक वृक्षकी छालसे कुनैन बनायी जाती है। सबसे बड़ा एक उपाय यह भी है कि, रोगी मलेरिया वाले स्थानको छोड़ दे। डाक्टरोंने प्रतिदिवसके जीवनमें मसहरीके प्रयोगको भी एक अचूक उपाय बतलाया है। जो ऐसा न कर सकें, वे शरीरमें किसी गन्धवाली चीजकी मालिश करके सोया करें, जिससे शरीरपर मच्छड़ बिलकुल बैठ ही न सकें।

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्

श्रीयुत व्रजविहारीलाल गौड़

विज्ञान एक बहुत गूढ़ विषय है। कोई भी परिश्रमी, घर बैठे, इसका अध्ययन, साहित्य, इतिहास और राजनीतिकी तरह, नहीं कर सकता। ऐसे गूढ़ विषयकी शिक्षा भारतमें विदेशी भाषा द्वारा दी जाती है! इस प्रकारकी शिक्षा कितनी अस्वाभाविक है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। पर हमने इसे भी स्वीकार कर लिया। इस अस्वाभाविक शिक्षाकी ओर सर्व-प्रथम हिन्दी और विज्ञान-के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् प्रोफेसर रामदासजी गौड़का ध्यान, सन् १९१२ में, आकर्षित हुआ। उस समय आप म्योर सेंट्रल कालेजमें डिमांसट्रेटर थे। "विज्ञानकी शिक्षा देशी भाषामें ही हो और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वैज्ञानिक संस्थाकी स्थापना की जाय"—आपके इस विचारका बहुतोंने समर्थन किया।

प्रोफेसर शालग्राम (सालिग्राम) भार्गव, पण्डित गङ्गानाथ झा तथा फारसी और अरबीके प्रोफेसर हमीद उद्दीनकी सहायतासे, सन् १९१३ में, गौड़जीने हिन्दी-साहित्यके अत्यन्त बलहीन वैज्ञानिक अङ्गकी पूर्तिके उद्देश्यसे विज्ञान-परिषत्‌की स्थापना की। स्वर्गीय माननीय राय बहादुर सर सुन्दरलालने इस कार्यमें आपका हाथ बँटाया और तन-मन-धनसे सहायता की। इस परिषत्‌के पहले सभापति स्वर्गीय सर सुन्दरलालजी और उपसभापति डाक्टर गङ्गानाथ झा मनोनीत हुए। मुख्य प्रयत्न-कर्त्ताओंके अनुरोधसे राय बहादुर लाला सीताराम तथा स्वर्गीय प्रोफेसर सतीशचन्द्र देवने जनरल सेक्रेटरी होना स्वीकार किया। प्रो० रामदासजी गौड़ तथा प्रो० शालग्राम भार्गव मन्त्री हुए। पीछेसे अन्य प्रोफेसर भी (विशेषतः विज्ञानके) इस परिषत्‌में शामिल हो गये। इस प्रकार आपका प्रथम उद्देश्य (विज्ञान-प्रचारके निमित्त एक संघटित संस्थाकी स्थापनाका) पूर्ण हुआ।

परिषत्‌का उद्देश्य यह हुआ कि, देशी भाषाओं और विशेषतः इस प्रान्तकी भाषामें साहित्यके वैज्ञानिक अङ्ग-की पूर्ति (ग्रन्थानुवाद, निबन्ध-लेखन और वैज्ञानिक पत्रोंके प्रचार आदि द्वारा) की जाय। देशी भाषाओंकी पाठशालाओंमें विज्ञान-शिक्षाके समाविष्ट किये जानेके लिये देशी भाषाओंमें पाठ्य पुस्तकोंका भी निर्माण हो। विषयकी दुर्गमताको सुबोध, सरल एवम् रोचक बनानेके लिये समय-समयपर अधिकारी विद्वानोंको सहायतासे सुबोध विषयोंपर प्रत्यक्ष प्रयोगके साथ व्याख्यान दिलाये जायँ। आर्थिक दशाकी उन्नतिके विचारसे सभ्य (फेलो) बनानेके लिये १२) वार्षिक और परिसभ्य (एसोशियेट) होनेके लिये ३) वार्षिक लेना निश्चय किया गया। सभ्योंकी संख्या १५० रखी गयी।

उक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिये अप्रैल सन् १९१५ में परिषत्‌का मुखपत्र "विज्ञान" के नामसे निकाला गया। इस पत्रके सर्व-प्रथम सम्पादक माननीय राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए०, एफ० ए० यू० और स्वर्गीय पण्डित श्रीधर पाठक हुए। यहाँ यह भी कह देना असङ्गत न होगा कि, यद्यपि कार्यकर्त्ताओंकी नामावलीमें बहुतोंके नाम थे; पर जब हम 'विज्ञान' की आदिसे अबतककी फाइलोंको देखते हैं, तब यह निश्चय होता है कि, सम्पादनसे लेकर डिसपैचतकका अधिकांश काम गौड़जीको ही करना पड़ता था। वह समय आजका-सा न था कि, विज्ञानपर हिन्दीमें लिखनेवाले लेखक आसानीसे मिल जाते हैं। इस कठिनाईका कटु अनुभव विज्ञानके सभी सम्पादकोंको करना पड़ा है। इस कठिनाईके होते हुए भी 'विज्ञान'में ठोससे ठोस

भेंटर देनेका प्रयत्न किया गया। किसी-किसी अङ्कमें तो सम्पादकोंको अनेक नामोंसे स्वयं ही कई लेख लिखने पड़ जाते थे। पीछे, विज्ञानमें बढ़ते हुए लेखकोंकी संख्या देख कर, एक बार श्रद्धेय पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीने कहा था कि, "विज्ञानवालोंने परिषत्में लेखकोंके ढालनेकी मशीन तो नहीं मँगा ली है!"

परिषत्के उद्देशानुसार यथासमय बाहर जाकर व्याख्यान भी दिलवाया जाने लगा। परिषत्में भी अधिकारी विद्वानोंका सप्रयोग व्याख्यान होनेका क्रम रहा; और, वह क्रम अबतक जारी है। व्याख्यान-सम्बन्धी प्रयोगोंको देखनेमें सुविधा हो; इसलिये व्याख्यान कालेजके सायंस थियेटर हालमें ही होता था। किन्तु यह क्रम उस समयके माननीय डाइरेक्टर (Dela fosse)को अच्छा न लगा। सौभाग्यवश स्वर्गीय सर सुन्दरलालजीके प्रयत्नसे माननीय लाट सर जेम्स मेस्टन उसी साल परिषत्के वार्षिकोत्सवके सभापति हुए। उसी अवसरपर गणिताचार्य्य माननीय डाक्टर गणेशप्रसादजीका, "गणित-विषयक खोजोंकी साम्प्रतिक अवस्था"पर व्याख्यान हुआ। परिषत्को जगद्विख्यात विज्ञानाचार्य्य सर जगदीशचन्द्र वसु तथा सर प्रफुल्लचन्द्र रायके मान्य सभ्य बननेका भी गौरव प्राप्त हुआ। पीछेसे डाइरेक्टर साहबकी आज्ञासे परिषत्को अपना आफिस अलग बनवाना पड़ा। इस समय इसका आफिस प्रयागमें क्रास्थवेट रोडपर मौजूद है।

इस समय तो सभी पत्र-पत्रिकाओंमें कुछ-न-कुछ वैज्ञानिक सामग्री रहती है। बँगलाकी "प्रकृति", गुजराती का "वैद्यकल्पतरु", मराठीका "सृष्टिज्ञान", हिन्दीका "कल्पवृक्ष" और "वैदिक विज्ञान" विज्ञान-विषयके मुख्य पत्र हैं; किन्तु जब "विज्ञान"का जन्म हुआ, उस समय लाहोरसे "Society for Promoting Scientific knowledge"की ओरसे उर्दूके 'रोशनी' नामक पत्रको छोड़कर इस विषयका कोई दूसरा पत्र न था। इस समय हिन्दी-साहित्यमें विज्ञान-सम्बन्धी जो साहित्य उपलब्ध है, उसका सारा श्रेय प्रयागकी विज्ञान-परिषत्को है। अठारह सालके भीतर विज्ञान-सम्बन्धी कोई भी विषय ऐसा नहीं है, जिसपर "विज्ञान"में लेख न निकले हों। विषयोंका चयन इस सुन्दरतासे हुआ है कि, यदि एक विषयके सभी लेख इकट्ठे कर लिये जायँ, तो वह संग्रह इस विषयका सर्वोत्तम ग्रन्थ बन सकता है। इधर दो वर्षोंसे यक्ष्माके सम्बन्धमें डा० कमलाप्रसादजीका अत्यन्त ही उपयोगी लेख, प्रवाह रूपसे, "विज्ञान"में प्रकाशित हुआ है। यदि कोई धनी-मानी प्रकाशक इन लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करा दे, तो यक्ष्मा जैसे आवश्यक विषयका बहुत अच्छा ग्रन्थ तैयार हो सकता है।

परिषत्ने व्याख्यानों द्वारा यह दिखा दिया है कि, विज्ञानकी बारीक-से-बारीक समस्याएँ, कठिन-से-कठिन विचार हिन्दीमें व्यक्त किये जा सकते हैं, उनपर धाराप्रवाह वक्तृता की जा सकती है और किसी अध्यापकको (चाहे वह कितनी ही ऊँची श्रेणियोंको क्यों न पढ़ाता हो), यह उज्र करनेका मौका नहीं है कि, हम विज्ञानके ऊँचे विषयोंकी शिक्षा हिन्दीमें नहीं दे सकते। यदि विज्ञान सत्यका प्रतिपादन करता है, तो वह किसी विशेष भाषाका दास नहीं हो सकता। साढ़े तेरह करोड़ भारतीयों द्वारा समादृत हिन्दी उसके लिये संसारकी किसी भाषासे कम उपयुक्त नहीं है।

नीचे हम संक्षिप्त रूपसे उन विषयोंका उल्लेख करते हैं, जिनपर "विज्ञान"में प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा लिखे हुए सुन्दर-से-सुन्दर लेख निकल चुके हैं।

विषयोंके नाम — उद्योग और अर्थशास्त्र, कीटाणुशास्त्र, कृषि, खगोल (Astrophysics), गणित, गतिविद्या (Dynamics), चुम्बकत्व, छायाचित्रण, जीवनी, जीव-विज्ञान, ज्योतिष, त्रिकोणमिति, दर्शन, प्रकाश, बीज-परम्परा या सञ्चार (Herodity), भौतिक भूगोल, भौतिक शास्त्र (Physics), मनोविज्ञान, भूगर्भ, औद्योगिक रासायन, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, वायु-

यात्रा, विकासवाद, विद्युत्, बीजज्यामिति (Co-ordinate Geometary), वैद्यक, होमियोपैथी, समाज-शास्त्र, स्वास्थ्य-रक्षा, शब्द, शिक्षा, वैज्ञानिक कहानियाँ, मनोरञ्जन और साधारण।

विज्ञानके विभिन्न विषयोंपर कितनी ही स्वतन्त्र पुस्तकें भी परिषत् द्वारा प्रकाशित हुई हैं। स्थान-संकोचसे हम उनकी सूची देना नहीं चाहते। प्रेमी पाठक उनके नाम, "विज्ञान"में प्रकाशित सूची द्वारा, जान सकते हैं। "विज्ञान"में प्रवाह रूपसे निकले हुए लेखोंको इकठ्ठा करके भी कुछ पुस्तकें छपी हैं। श्रीयुत महावीरप्रसादजी श्रीवास्तवका "सूर्यसिद्धान्त", स्वर्गीय प० सुधाकर द्विवेदीका समीकरणमीमांसा, प्रो० गोपालस्वरूप भार्गवका मनोरञ्जक रसायन, डा० सत्यप्रकाशका साधारण रसायन, कार्बनिक रसायन, डा० सेठीका "वैज्ञानिक परिमाण" तथा वैज्ञानिक परिभाषा ऐसी ही पुस्तकें हैं।

"विज्ञान"के सम्पादक सदासे उसकी अवैतनिक सेवा करते आये। प्रयोग-शालाओंने अपने खर्चसे प्रयोग दिखलाये। कहना न होगा कि, शुद्ध प्रेमभावने ही विद्वान् वैज्ञानिकोंसे यह अवैतनिक सेवा करवायी। ऐसा न होता, तो "विज्ञान" जैसा सचित्र पत्र इतने सस्ते दामोंपर न निकल सकता। परिषत्के सम्पूर्ण परिवारने मातृभाषाके लिये यह त्याग अपना कर्तव्य समझा। उसे अबतक निबाहता आया। श्रीयुत गोपालस्वरूप भार्गव और श्रीयुत सत्यप्रकाशजीने जो इस पत्रकी सेवा की, वह चिरस्मरणीय रहेगी। इन्हीं तथा अन्य त्यागी लेखकों की कृपासे अबतक प्रायः सभी तरहके वैज्ञानिक विषयोंपर परिषत् दस हजार डबल क्राउन अठपेजे पृष्ठोंकी सामग्री हिन्दी-साहित्यको भेंट कर सकी। विज्ञानकी इतनी सामग्री अन्य किसी भी प्रान्तीय भाषामें उपलब्ध नहीं है। अर्थ-संकोचके कारण लेखोंके लिये यद्यपि परिषत्ने कभी एक कौड़ी भी पारिश्रमिक नहीं दिया, तो भी विज्ञान-प्रेमी लेखकोंने शुद्ध मातृभाषाकी सेवा-भावनासे प्रेरित होकर इस दरिद्र पत्रको सदा लेख दिया। उनकी यह मनोवृत्ति यथेष्ट आदरणीय है। विज्ञान-प्रेमी लेखकोंसे मेरी प्रार्थना है कि, विज्ञान-विषयक लेखोंसे वह भारतके प्रत्येक पत्रको भूषित करके यह दिखा दें कि, हिन्दीमें विज्ञानकी चर्चा अन्य भाषाओंसे कहीं अधिक स्पष्टताके साथ की जा सकती है।

इंडियन केमिकल सोसाइटी

डा० बाबा करतार सिंह एम० ए०, एस-सी० डी०, एफ० आई० सी०

मद्रास, लखनऊ और बैंगलोरके १९२२, १९२३ और १९२४ ई० के, इंडियन सायंस कांग्रेसके, अधिवेशनोंके समय रासायनिकोंके द्वारा, बहुत वाद-विवादके बाद, १९२४ में, भारतीय रासायनिक संघ (Indian chemical Society) स्थापित हुआ था। प्रारम्भमें ही यह संघ अखिल भारतीय स्थितिको प्राप्त कर गया और उक्त सायंस कांग्रेसके साथ इसका वार्षिकोत्सव होनेके कारण इसको, सर्व-भारतीय स्थितिकी प्राप्तिमें, अधिक सहायता पहुँची।

एक संस्थाके रूपमें भारतीय रासायनिक संघकी रजिस्टरी १९२४ ई०में हुई। इसकी कार्यकारिणी समितिकी पहली बैठक ३० सितम्बर १९२४ ई० में और साधारण सभाकी पहली बैठक २४ नवम्बर १९२४ ई० में हुई। इस प्रकार सोसाइटी अब दसवें वर्षमें पदार्पण कर रही है। इन वर्षोंमें इसने सभ्योंमें, पत्रिकाके ग्राहकोंकी संख्यामें,

पत्रिकाके पृष्ठोंकी संख्यामें और साधारण आर्थिक अवस्थामें अच्छी उन्नति की है। सभ्योंकी संख्या, जो १९२४ में १०१ थी, १९२६ में बढ़कर ३६३ हो गयी; किन्तु १९३२ में यह घटकर ३६० हो रही। पत्रिकाके ग्राहकोंकी संख्या बराबर बढ़ती गयी, जिससे पता चलता है कि, यह पत्रिका कितनी लोकप्रिय हो गयी है। सोसाइटीकी ओरसे १०८ संस्थाओंमें यह पत्रिका, बिना मूल्य, भेजी जाती है। गत वर्षसे यह संख्या बढ़कर १५८ हो गयी है।

डा० सर प्रफुल्लचन्द्र राय डी० एस-सी० (इंडियन केमिकल सोसाइटीके भूतपूर्व सभापति)

पत्रिकाके परिवर्तनमें अब ११६ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। पत्रिकाकी पृष्ठ-संख्यामें पर्याप्त वृद्धि हुई है। १९२४ ई० में पृष्ठ-संख्या २२४ थी; और, १९२९ ई० में बढ़कर १०१४ हो गयी; पर धनके अभावसे इतनी अधिक पृष्ठ-संख्याको कायम रखना सम्भव नहीं था। सोसायटीको बाध्य होकर ७५० पृष्ठोंमें ही उसे छापना पड़ता है। कलकत्ता विश्वविद्यालयने इतने ही पृष्ठ बिना मूल्य छापनेकी स्वीकृति दी है। धनके अभावसे पत्रिकाकी वृद्धिमें बाधा उपस्थित हो रही है, जिससे इस देशमें रसायनकी उन्नतिमें अड़चनें पड़ रही हैं। यह आशा की जाती है कि, सोसाइटी इन बाधाओंको दूर करनेका अवश्य ही कोई उपाय सोच निकालेगी। प्रथम चार वर्षों (१९२४-१९२७) तक यह पत्रिका त्रैमासिक थी। दो वर्ष (१९२८-१९२९) तक द्विमासिक रही और १९३० ई० से यह मासिक हो गयी है। मासिक होनेसे एक लाभ यह हुआ है कि, लेखोंको छापनेमें कम समय लगता है।

सोसाइटीका व्यय, जो १९२४ ई० में १३०१) रु० था, वह बढ़कर १९२९ ई० में ८४१५) रु० हो गया। आयमें भी तदनुरूप ही वृद्धि हुई है। १९३० ई० में सोसाइटीकी बचत, यद्यपि २५७४) रु० की थी; लेकिन अगले वर्ष सोसाइटीको घाटा हुआ; क्योंकि सभ्यों (Fellows) ने चन्देका बहुत रुपया नहीं दिया। नये सभ्य कम संख्यामें प्रविष्ट हुए और दान कम प्राप्त हुआ। इसका कारण सारे संसारकी आर्थिक अवस्थाका बिगड़ जाना ही हो सकता है। अन्य देशोंकी वैज्ञानिक संस्थाओंकी दशा भी इसी प्रकारकी है। १९३० ई० में बचत कम होनेका कारण एक यह भी है कि, १९२९ ई० में पत्रिकाकी पृष्ठ संख्याकी वृद्धिसे नियत संख्यासे २६४ पृष्ठोंकी अधिक छपाईके लिये कलकत्ता विश्व-विद्यालयको रुपये देने पड़े। इसीलिये १९३१ ई० से पत्रिकाकी पृष्ठ-संख्या घटा दी गयी है। आर्थिक अवस्थाके बिगड़ जानेसे एक और हानि यह हुई कि, १९३० ई० से अन्वेषणके लिये, जो रुपया दिया जाता था, वह बन्द कर दिया गया। सोसाइटीकी आर्थिक अवस्था अब बहुत कुछ सुधर गयी। स्थायी

फंडमें अब २१२४३) रुपया है और गृह-निर्माणके लिये विशेष फंडमें १०००) रुपया विद्यमान है।

जबसे इसका जन्म हुआ है, तबसे यह सङ्घ कलकत्ता यूनिवर्सिटीके सायंस कालेजके भवनमें अवैतनिक मन्त्रीके (जो सदा ही इस कालेजके प्रोफेसर होते हैं) अपने कमरेमें स्थित रहा है। मन्त्रीके परिवर्तनसे इसका कमरा भी बदलता रहा है। इस समय सोसाइटीका आफिस सायंस कालेजके रसायन-विभागके पुस्तकालयके एक संकीर्ण कोनेमें (जो १२ फीट लम्बा और १० फीट चौड़ा है) स्थित है। इस समय परिवर्तनमें आयी पत्र-पत्रिकाएँ ढेरमें रखी जाती हैं; इसलिये सभासदोंको पढ़नेकी बिलकुल सुविधा नहीं है। यह असन्तोषजनक प्रबन्ध भी केवल अस्थायी है।

डा० बाबा करतार सिंह एम० ए०, एस-सी० डी०, एफ० आई० सी०

सायंस कालेज चाहे, तो यह स्थान भी सोसाइटीसे छीन ले सकता है! सोसाइटीकी कार्यकारणी समिति इस आवश्यक प्रश्नको हल करनेका प्रयत्न कर रही है। इस संस्थाके प्रथम सभापति सर प्रफुल्लचन्द्र रायने सोसाइटीको, भवन-

निर्माण करनेके लिये, १०३५०) रुपयेका दान दिया है। सोसाइटीकी कार्यकारणी समिति मकान बनानेका प्रयत्न कर रही है। बंगाल सरकारसे भी भवन-निर्माणमें धनकी सहायताके लिये प्रार्थना की गयी थी। सरकारने जो मकान का नक्शा और धनका अन्दाजा मांगा था, उसे भी दे दिया गया है। आर्थिक कठिनताओंके कारण बंगाल सरकार भी अबतक सहायता करनेमें असमर्थ हो रही है।

कलकत्ता कारपोरेशनसे भी प्रार्थना की गयी थी कि,

डा० जी० टी० फाउलर डी० एस-सी० (इंडियन केमिकल सोसाइटीके भूतपूर्व सभापति)

वह सायंस कालेज अथवा प्रेसिडेंसी कालेजके निकट सोसाइटीके लिये थोड़ासा उपयुक्त स्थान दे; लेकिन हम लोगोंसे ऐसा कहा गया है कि, कोई स्थान प्राप्य नहीं। कौंसिलके इन प्रयत्नोंके सम्बन्धमें हमें डा० ज्ञानेन्द्रनाथ मुकर्जीके अथक परिश्रमका उल्लेख भी कर देना चाहिये। सोसाइटीकी कौंसिल पुनः एक और प्रयत्न, १९३२ ई० से, भवन-निर्माणके सम्बन्धमें, कलकत्ता यूनिवर्सिटीसे कर रही है। यदि यह प्रयत्न सफल हुआ, तो सायंस कालेजकी तीसरी मंजिलपर, दक्षिणकी ओर, लगभग १० हजार रुपये लगाकर कलकत्ता विश्वविद्यालय मकान बना देगा और ये रुपये सोसाइटी विश्वविद्यालयको दे देगी। शर्त यह रहेगी कि, जब कभी विश्वविद्यालयको अपने लिये इस मकानकी आवश्यकता होगी, तब वह सोसाइटीको रुपये लौटाकर मकान ले लेगा। मैं इस प्रस्तावसे सहमत हूँ।

पिछले साल कौंसिलके सभ्योंकी संख्या २० तक बढ़ा दी गयी थी। कौंसिलके सभ्योंके चुनावकी प्रथा और कौंसिलमें निर्धारित स्थानोंका भिन्न-भिन्न रासायनिक अन्वेषणके केन्द्रोंमें वितरण एक समिति (Sub-committee) को सौंपा गया था, जिसकी रिपोर्टपर इस अधिवेशनमें विचार होगा।

किसी भी विद्याके केन्द्रमें, जहाँ ४० सभ्य हों, सोसाइटीकी शाखा स्थापित हो सकती है। सोसाइटी शाखाओंके खर्चके लिये उनके चन्देका १० प्रतिशत उन्हें देती है। शाखाओंको प्रतिवर्ष अपने आय-व्ययका ब्योरा और पूरी-पूरी रिपोर्ट सोसाइटीमें दाखिल करनी पड़ती है। ऐसी तीन शाखाएँ लाहोर (७दिसम्बर १९२३ ई०), बम्बई (२९अप्रेल, १९२६ ई०) और मद्रास [२७ मार्च १९२९ ई०] में इस समय विद्यमान हैं। लाहोरकी शाखामें छात्रोंको रासायनिक अन्वेषणके लिये वृत्ति देनेके लिये धन प्राप्त करनेमें बहुत सफलता मिली है। लाहोरकी शाखाकी एक और विशेषता है कि, वह प्रतिवर्ष एक भोज देती है। इसका श्रेय हमारे पुराने सहकारी डाक्टर शान्तिस्वरूप भटनागरको है।

पिछले वर्ष रसायनके महान् आचार्य और इस सोसाइटीके संरक्षक सर प्रफुल्लचन्द्र रायने ७० वें वर्षमें पदार्पण किया था। सोसाइटीकी कौंसिलने इस शुभ अवसरपर एक स्मारक-ग्रन्थ (जिसमें Original पत्र और Original कार्योंके सारांश हों) छापनेका निश्चय किया है। मान-पत्रके साथ यह स्मारक-ग्रन्थ, सोसाइटीकी ओरसे, आचार्यके प्रति आदर और प्रेमके स्वरूप, उन्हें अर्पित किया जायगा।

१९२८–२९ ई० में प्रोफेसर समरफिल्ड जब म्युनिखसे कलकत्ते आये थे, तब सोसाइटीने सम्मानित सदस्यका पद प्रदान कर उन्हें समादृत किया था। इस वर्ष यह सम्मान सर सी० वेंकट रमणको प्रदान करना कौंसिलने निश्चित किया है। सर रमणको परिक्षेपण-प्रकाशपर अन्वेषणके लिये, भौतिक विज्ञानमें, १९३० ई० में, नोबेल पुरस्कार मिला था, यह सबको विदित ही है।

इस समय सोसाइटीको धनकी अत्यधिक आवश्यकता है। सोसाइटीके लिये स्थायी भवनकी बड़ी आवश्यकता है, इसका उल्लेख पूर्वमें ही हो चुका है। इसकी दूसरी आवश्यकता इसकी पत्रिकाके लिये एक वैतनिक सम्पादककी है। सम्पादकको इतना वेतन मिलना चाहिये, जितना कम-से-कम यूनिवर्सिटीके किसी प्रोफेसरको मिलता है। तभी इसके लिये उपयुक्त व्यक्तिका मिलना सम्भव होगा। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा और पत्रिकाका कलेवर बढ़ता जायगा, पत्रिकाके सुयोग्य सम्पादन और प्रबन्धके लिये एक वैतनिक सम्पादककी आवश्यकता उतनी ही बढ़ती जायगी; अतः इन कार्योंके लिये मैं उदारता-पूर्वक धनसे सहायता करनेके लिये सदस्यों और धनी व्यक्तियोंसे अपील करता हूँ।

हिन्दीमें वैज्ञानिक पुस्तकें

ठाकुर अच्युतानन्द सिंह "अनरसनी"

विज्ञानपर जो पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हुई हैं, वे अँगुलियोंपर गिन लेने लायक हैं। आधुनिक विज्ञानपर बापूदेव शास्त्रीने "त्रिकोण-मिति" नामक पहली पुस्तक संस्कृतमें लिखी, जिसका हिन्दी-अनुवाद पण्डित वेणीशङ्करजीने किया था। इन्हीं दिनों "लघुत्रिकोणमिति" नामक पुस्तक पण्डित कुञ्जविहारीलालजीने प्रकाशित करायी। सरकारकी ओरसे भी "बाह्य प्रपञ्च" नामक पुस्तक छपायी गयी, जिसका अँगरेजीसे हिन्दी अनुवाद पण्डित मथुराप्रसादजी मिश्रने किया था। १८६० में "सिद्धपदार्थ-विज्ञान" नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी, जिसके अनुवाद-कर्ता हैं पण्डित वंशीधर, श्रीयुत मोहनलाल तथा श्रीयुत कृष्णदत्त। इस ग्रन्थमें प्राथमिक यन्त्र-शास्त्रपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसी साल ज्योतिःशास्त्रपर भी एक अच्छा ग्रन्थ "खगोल-विद्या"के नामसे, प्रकाशित किया गया। इसके दो साल बाद जयपुर-राज्यने "वायु-सागर" तथा रसायन-विद्यापर "संक्षेप-पाठ" नामकी पुस्तकें प्रकाशित करायीं। बहुत दिन हुए पाश्चात्य विज्ञ न-की पहली पुस्तक "रसायन-प्रकाश" नामसे प्रका-शित हुई थी। इसका दूसरा संस्करण नवल किशोर प्रेसमें छपा था। इसके लेखक थे प० बद्रीलालजी। १८७३ ई० में पण्डित वंशीधरजीने "चित्र-कारी सारी" नामक पुस्तक छपायी। १८७५ ई० में "पदार्थ-विज्ञान-विटप" नामक पुस्तक प्रो० पण्डित लक्ष्मीशङ्कर मिश्रने प्रकाशित की। आपके कुछ मौलिक ग्रन्थ ये हैं—"त्रिकोण-मिति", "प्रकृति-विज्ञान", "गति-विद्या" तथा "स्थिति-विद्या"। १८८२ ई० में "सृष्टिका वर्णन" नवलकिशोर प्रेसमें तथा 'खेतीकी विद्याके मुख्य सिद्धान्त" आर्यदर्पण प्रेसने छापा। इसके दो-तीन साल बाद ज्योतिःशास्त्र-पर प० सुधाकर जी द्विवेदीकी लिखी दो महत्त्व-

पूर्ण पुस्तकें ("चलन-कलन" तथा "चलराशि") प्रकाशित हुईं। इन दो पुस्तकोंको देखकर तो यूरोपवालोंको भी दंग रह जाना पड़ा—उन्होंने मुक्त कण्ठसे इनकी प्रशंसा कीं। गुरुकुल काँगड़ी ने भी दो किताबोंका प्रकाशन किया है—"गुणात्मक विश्लेषण" तथा "विकाशवाद"। ये पुस्तकें भी बड़े कामकी हैं। श्रीयुत त्रिलोकीनाथ वर्माकी "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक भी बड़ी अच्छी है। इसे लोगोंने इतना पसन्द किया कि, इसके कितने ही संस्करण निकालने पड़े।

अभी कुछ ही दिन हुए बनारसके नन्दकिशोर एण्ड ब्रादर्सने प्रो० फूलदेव सहाय वर्माकी लिखी "प्रारम्भिक रसायन" (दो भाग) नामक पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक मध्यमा परीक्षा तथा आयुर्वेद-विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके लिये बड़ी लाभदायक है। इससे विद्यार्थियोंको विशेष सहायता मिल सकती है।

"आचार्य धन्वन्तरि-मण्डल" (फगवाड़ा) तथा कपूरथला स्टेटने भी हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी अच्छी सेवा की है। कविराज शिवशरणजीकी कितनी ही किताबोंका प्रकाशन इस मण्डल द्वारा हुआ है। मण्डल द्वारा प्रकाशित कविराजजीकी पुस्तकें ये है—"फेफड़ोंकी परीक्षा वा उनके रोग", "मूत्र-परीक्षा", "अस्थियों वा सन्धियोंके रोग" तथा "व्रण-बन्धन।"

अभी कुछ दिन हुए डा० गोरखप्रसादजीकी लिखी "फोटोग्राफी" नामक पुस्तक इंडियन प्रेसने प्रकाशित की है। इस पुस्तकमें डाक्टर साहबको काफी सफलता मिली है। शायद ही इस विषयकी ऐसी कोई पुस्तक अँगरेजी साहित्यमें भी हो। आपकी दूसरी पुस्तक "सौर-परिवार" हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित हुई है। यह भी बड़े कामकी चीज है।

१९१३ ई० में प्रो० रामदास गौड़के प्रस्तावपर महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, डा० गणेशप्रसाद, प्रो० शालग्राम भार्गव, प्रो० ब्रजराज, प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना, श्रीयुत महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, प्रो० एस० सी० देव, पण्डित श्रीधर पाठक तथा लाला सीतारामजीने प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का जन्म दिया। इस संस्थाने हिन्दी-साहित्यके वैज्ञानिक अङ्गको जितना उन्नत किया तथा हिन्दी-भाषा-भाषियोंपर जितना विज्ञानका प्रकाश डाला, वह स्तुत्य है। इसी परिषद्ने हिन्दीमें वैज्ञानिक पत्र "विज्ञान"का जन्म दिया तथा थोड़े ही दिनोंमें अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कीं। इस तरह वह संस्था कुछ ही दिनोंमें अपनी ठोस साहित्य-सेवाके बलपर चमक उठी।

आप सुनकर आश्चर्यसे स्तब्ध होंगे कि, जिस भाषाके बोलनेवाले आज करोड़ों हैं, उसके एक मात्र वैज्ञानिक पत्र "विज्ञान"के ग्राहक सिर्फ डेढ़ सौ हैं! क्या हमारे लिये इससे भी बढ़कर शर्मकी कोई बात होगी?

विज्ञानके जटिल विषयोंको सरल, सुबोध तथा सर्वप्रिय बनानेमें इस संस्थाने कम काम नहीं किया है। इस संस्थाने कुछ ऐसी किताबोंका प्रकाशन कर यह दिखला दिया है कि, विदेशी भाषाओंकी तरह हिन्दीमें भी विज्ञानके कठिन से-कठिन विषयोंपर पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। गणितशास्त्रपर समीकरण-मीमांसा, "ताप" तथा "चुम्बक" इसके काफी प्रमाण हैं।

श्रीयुत महावीरप्रसादजी श्रीवास्तवकी "विज्ञान-प्रवेशिका" (दो भाग) प्रकाशित कर इस परि-

बहुत-आरम्भिक विद्यार्थियोंकी बड़ी कमीकी पूर्त्ति की है। श्रीवास्तवजीके "सूर्य-सिद्धान्त"के विज्ञान-भाष्य (भाग चार) को भी परिषद्‌ने ही प्रकाशित किया है। श्रीवास्तवजीकी तरह सच्चे साहित्य-सेवा करनेवाले आज कम लोग हैं। साहित्य-सेवाकी आपमें सच्ची लगन है। आशा है, आपसे हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी पुष्टि आगे भी होती रहेगी। इसके अलावा परिषद्‌की कुछ किताबें और भी हैं। जैसे—वर्षा और वनस्पति, आलू, मनुष्यका आहार, शिक्षितोंका स्वास्थ्य-व्यतिक्रम, सुवर्णकारी, दियासलाई और फास्फोरस आदि।

रसायन-शास्त्रपर भी कुछ जरूरी किताबोंका प्रकाशन इस परिषद्‌ने किया है। प्रो० गोपालस्वरूप जीकी "मनोरञ्जक रसायन" तथा डा० सत्यप्रकाशजी को "साधारण रसायन", "कार्बनिक रसायन" तथा "वैज्ञानिक परिमाण" नामक पुस्तकोंका प्रकाशन इसीने किया है। सुना है, डा० सत्यप्रकाश जी इधर "बीज-ज्यामिति" पर एक बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ तैयार कर रहे हैं, जो कुछ दिनोंमें ही पाठकोंके सामने आ जायगा। इसका प्रकाशन हो जाने पर एक बड़ी कमीकी पूर्त्ति हो जायगी। इसके अलावा और भी कितने ही उपयोगी विषयोंपर महत्त्वपूर्ण लेख, अपने मुखपत्रके जरिये, इस परिषद्‌ने हिन्दीको भेंट किये हैं। अगर परिषद् उन प्रकाशित लेखोंको पुस्तकाकार छपा डाले, तो बड़ी ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें तैयार हो सकती हैं। इसके लिये देशके लक्ष्मीपतियोंको परिषद्‌की मदद करनी चाहिये।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सारे भारतके हिन्दी-वालोंकी एक महत् संस्था है। इस संस्थाका मुख्य काम अपनी परीक्षाओं द्वारा हिन्दीका प्रचार रहा है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है; इसलिये हिन्दी पढ़ाना तथा उसकी उन्नति करना हर एक भारतीयका कर्त्तव्य होना चाहिये। हर एक भारतीयके अन्दर ऐसे भावके भरे जानेका श्रेय इसी संस्थाको प्राप्त है। अगर इस संस्थाका जन्म न हुआ होता, तो शायद आज हिन्दीका नामोनिशान ही मिट गया होता। यद्यपि इसने हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, तो भी इसने हिन्दी-साहित्यकी जो अमूल्य सेवाएँ की हैं, वह क्या कम गौरवकी बात है? कहाँ तो लोग हिन्दीके अखबारोंको पंसारियोंके साधन समझते थे; और, कहाँ आज अखबारोंके पन्ने-पन्नेपर हर एक भारतीय श्रद्धाकी पुष्पाञ्जलियाँ चढ़ाता है।

कुछ दिन हुए सम्मेलनकी ओरसे "रसायन-प्रवेशिका" नामक पुस्तक छपायी गयी थी; और, अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें भी छपनेवाली थीं; पर न जाने उनका प्रकाशन क्यों बन्द कर रखा गया है।

काशी नागरी-प्रचारिणी सभाने भी हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। हाँ, कुछ दिन हुए "वैज्ञानिक कोष" नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित कर अपनी सेवाका परिचय अवश्य, दिया है। शायद इस कोषका दूसरा संस्करण भी, कई भागोंमें, प्रकाशित होनेवाला है। जो कुछ हो, और संस्थाओंकी तरह अगर इसने भी वैज्ञानिक साहित्यसे विशेष दिलचस्पी नहीं दिखायी, तो क्या बुरा किया? और पहलुओंसे विचार करनेपर इस संस्थाने, शीशेकी तरह, जो वजनदार वस्तुएँ हिन्दी साहित्यको अर्पित की हैं, वह सदा स्तुत्य रहेंगी। इसके मुखपत्र "नागरी-प्रचारिणी पत्रिका"में गम्भीर तथा उपयोगी विषयोंपर ही लेख प्रकाशित होते हैं। सभाकी ओरसे साहित्यिक वायुमण्डलका निर्माण कर हिन्दी-साहित्यको जो प्रोत्साहन दिया गया है, वह सम्मेलनसे किसी दर्जे कम नहीं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी सुसम्पन्न संस्था है। इसकी एक अपनी पत्रिका भी है, जिसमें अधिकांशतः ऐतिहासिक लेख ही प्रकाशित होते हैं। इसने तो हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यके नामपर एक पर्चेतकको प्रकाशित नहीं किया है। इसका ध्यान इतिहास, नाटक तथा कथा-कहानियोंकी ओर ही अधिक रहता है। क्या ही अच्छा होता, यदि विज्ञानकी ओर भी इस संस्थाका ध्यान खिंचता; और, विज्ञानके जो विषय अछूते बच रहे हैं, उनपर किताबें प्रकाशित की जातीं; क्योंकि यह मालदार संस्था है; इसलिये औरोंकी अपेक्षा इसे काफी साधन उपलब्ध है। क्या एकेडेमीवाले इधर ध्यान देंगे?

हम यह कह देना चाहते हैं कि, वैसी संस्थाओंका नामोल्लेख यहाँ नहीं किया जायगा, जो व्यवसायके खयालसे कविताओं तथा कथा-कहानियोंका प्रकाशन करती हैं। गङ्गा-पुस्तकमालाका ध्यान भी यद्यपि इसी ओर रहता है, तो भी उसने दो-चार वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसने 'भूकम्प' तथा 'स्वास्थ्य-रक्षा'का प्रकाशन कर वैज्ञानिक साहित्यके निर्माणमें हाथ बटाया है। उसके अलावा स्वास्थ्य-सम्बन्धिनी कुछ और पुस्तकोंका भी इसने प्रकाशन किया है। श्रीयुत तेजशङ्कर कोचक, श्रीयुत शंकरराव जोशी तथा श्रीयुत दुर्गाप्रसादकी किताबें भी अच्छी हैं।

खुशीकी बात है कि, अब वैज्ञानिक साहित्यकी ओर भी साहित्य-सेवियोंका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है। काशी विश्वविद्यालयने भी हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यसे दिलचस्पी लेनी शुरू की है। विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें भी प्रकाशित की हैं। इधर लोगोंमें हिन्दीके प्रति जितनी श्रद्धा बढ़ रही है, जितनी नयी संस्थाएँ स्थापित हो रही हैं तथा हिन्दीमें जितने लेखक तैयार हो रहे हैं, उससे मालूम पड़ता है कि, हिन्दीका भविष्य उज्ज्वल है। कुछ बरसोंमें हिन्दी-साहित्यका कोई भी अङ्ग अधकचरा नहीं रह जायगा। हाँ, यह अवश्य होना चाहिये कि, खासकर वैज्ञानिक अङ्गकी ओर हिन्दीकी सेवा करनेवाली प्रकाशन-संस्थाओंका ध्यान अधिक रहे। अन्य अङ्गोंकी पुष्टि करनेके लिये तो व्यवसायके भी खयालसे प्रकाशनका काम करनेवाली संस्थाएँ काफी हैं। यद्यपि इन व्यावसायिक प्रकाशन-संस्थाओंका ध्यान व्यवसायकी दृष्टिसे ही प्रकाशन करना है; लेकिन और अङ्गोंकी पुष्टिका भाव उनमें छिपा रहता है, जिससे वैज्ञानिक साहित्यको छोड़कर अन्य अङ्गोंकी पुष्टि हो ही जाती है। आशा है, हिन्दीकी संस्थाएँ इधर अवश्य ध्यान देंगी।

कावेरी नदीके जलबलसे विद्युत्

श्रीयुत राजकृष्ण गुप्त

जलबलसे उत्पन्न विद्युत् अधिक सस्ती पड़ती है; और, इससे ऊसर भूमिको भी, जल देकर, लहलहे खेतोंके रूपमें परिणत किया जा सकता है—जैसा कि, केलिफोर्निया प्रान्तमें किया गया है। जलबल-से विद्युत् उत्पन्न करनेसे कोयले, पेट्रोल, तेल आदि देशके खनिज पदार्थोंकी भी यथेष्ट बचत होती हैं। महासमरके पश्चात् इटलीके व्यवसायमें मुख्यतया उन्नति होनेका कारण केवल उस देशके जलबलको बाँधकर उपयोगमें लाना था। सच बात यह है कि, जलबलकी विद्युत्के कारखाने किसी भी राष्ट्रकी महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति हैं और उसके गौरव तथा उन्नतिका साधन बनते हैं।

हमारे देशमें भी बम्बईमें ताताका जलबलसे विद्युत्का कारखाना, मैसोरमें शिवसमुद्रम्का कार-खाना, पंजाबमें मांडोका विद्युत्का कारखाना, काश्मीर [महोड़ा] में झेलम नदीके जलबलसे उत्पन्न विद्युत्का कारखाना, मद्रासमें पाइकारा (Pykara) नदीसे विद्युत्का कारखाना, संयुक्त प्रान्तमें सुमेर, रुड़की भोला तथा रामगंगाकी परिकल्पनाएँ आदि हैं; किन्तु अब भी इस देशके जलबलको पूर्णतया हम उपयोगमें नहीं ला रहे हैं। देशके उद्योग-धंधे तथा व्यवसायकी उन्नतिमें हम अब भी इनसे लाभ नहीं उठा रहे है।

दक्षिण भारतवर्षमें शिवसमुद्रम्, अल्प मूल्यमें, विद्युच्छक्ति प्रदान करनेके लिये, एक उपयोगी, विश्वस्त तथा विख्यात कारखाना हैं। इसके जल-बलसे विद्युत् उत्पन्न करनेका मुख्य हेतु कावेरी नदी है। कारखानेसे दक्षिणकी ओर गगाना चक्की नामक एक स्वाभाविक जलप्रपात है, किन्तु विद्युच्छक्तिको उत्पन्न करनेके लिये एक कृत्रिम नाली द्वारा जल ले जाया जाता है। प्रथम ग्रीष्म ऋतुमें जलकी कमी के कारण अथवा पावस ऋतुमें अधिकताके कारण अत्यन्त कष्ट होता था; किन्तु अब 'कृष्णराज-सागर' जलाशयका निर्माण हो जानेसे अधिक सुभीता हो गया है। नदीका समस्त जल उपयोगमें नहीं लाया जाता; किन्तु मद्रास सरकारके समझौतेके अनुसार कम-से-कम ६०० घनफुट प्रति सेकिंड जल कृषि-कर्म्मके लिये अवश्य बहने दिया जाता है। कावेरी नदीकी विशाल जलराशिको बाँधकर विद्युच्छक्ति उत्पन्न करनेकी क्रिया अतीव मनोरञ्जक तथा ज्ञातव्य है; इसलिये उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

नदी कारखानेसे अढ़ाई मील दूर दक्षिण-पूर्व दिशासे बहती है और यहीं एक विस्तृत बाँध द्वारा बाँधी गयी है। बाँधमें ५ जलद्वार तथा तीन स्वच्छ करनेके द्वार (Scour Gates) है। ये द्वार यन्त्र द्वारा सरलतासे कम-बेश खोले जा सकते हैं। जल-द्वारका जल तो खुली हुई कृत्रिम नाली (Channel) द्वारा एक सरोवर (Forebay) में जाता है; किन्तु स्वच्छ करनेवाले द्वारसे जल सीधे नदीमें जाता है। नालीसे १८०० घन फुट प्रति सेकिंडतक पानी बह सकता है। यह संख्या आवश्यकतासे १० प्रति-शत अधिक रखी गयी है। नालीमें जलकी गति अढ़ाई फीट प्रति सेकिंड होनेके कारण मिट्टी, कंकड़, बालू आदि द्वारा नाली तथा सरोवरको भर

आनेसे बचानेके लिये मुहानेपर जालियाँ लगी हुई हैं। जलाशय जलकी माँगको सुचारु रूपसे अनुशासित करता है। जलाशयसे नलों द्वारा जल विद्युत्-उत्पादक यन्त्रोंके चालक यन्त्रोंमें भेजा जाता है। यन्त्रोंसे जलाशयकी सभी ऊँचाई ४१५ फुट है। नल १७ फुट लम्बे छोटे नलोंको कीलोंसे जोड़कर बनाये गये हैं। प्रत्येक नलकी समस्त लम्बाई तीन भागोंमें विभाजित हैं। प्रथम भागका व्यास ५७ इंच, मध्य का ६११ इंच तथा अन्तका ६५१ इंच है। नलोंके जलाशयवाले मुहानेपर एक बचावका मार्ग है, जिससे नलके फट जानेपर नलोंमें पानी जाना स्वयं स्थगित हो जाता है। प्रत्येक नलके प्रथम तथा द्वितीय भागके जोड़पर एक खुला जल मीनार (Sureg Tank) स्थित है, जिसके कारण प्रत्येक क्षण बदलनेवाली माँगके अनुसार नलमें जलकी गति बदलती रहती है।

विद्युत्-उत्पादक यन्त्रके चालक यन्त्र दो प्रकार के हैं—एक "फ्रांसीस री-ऐक्शन टरबाइन" (Francis Reaction Turbine) तथा दूसरे "पेल्टन ह्वील" (Pelton wheel)। प्रथम प्रकारके ७ यन्त्र ५६०० घोड़ोंकी ताकतके तथा २ यन्त्र ६००० घोड़ों की ताकतके हैं। द्वितीय श्रेणीके तीन यन्त्र प्रत्येक २७०० घोड़ोंकी ताकतवाले कारखानेमें हैं। पेल्टन पहियेपर जल चार टोंटियों (Nozzles) द्वारा डाला जाता है। इन टोंटियोंका सूराख आवश्यकतानुसार सूइयों द्वारा कम-बेश करके पहियेकी गति बदली जा सकती है। पहियोंसे निकलकर जल फिर नदीमें चला जाता है। दो ६००० किलोवाट (Kilowatts)के तथा सात ३००० कि० के विद्युत्-उत्पादक यन्त्र तो फ्रांसीस टरबाइन द्वारा क्रमसे ३७५ तथा ५०० चक्कर, प्रति मिनटके हिसाबसे, चलाये जाते हैं एवम् तीन १५०० कि०के यन्त्र पेल्टन पहियों द्वारा ३०० चक्कर, प्रति मिनटके हिसाबसे, चलते हैं। प्रत्येक यन्त्र २२०० वोल्ट (Volts) का ए० सी० (Alternating Current) प्रवाह उत्पन्न करता है।

कारखाना कावेरी नदीके तटपर स्थित है। कारीगरों तथा मालको ले जानेके लिये पहाड़से कारखाने तक विद्युत्की ट्रोली लाइनें (Trolley Lines) बनी हुई हैं। कारखानेसे समकोण बनाता हुआ एक ट्रान्सफारमरका घर (Transformer Station) है। यहाँ पाँच यन्त्रोंमें तीन यन्त्र तो प्रत्येक १०००० किलोवाट शक्तिके (Kilowatts) तथा दो प्रत्येक ५२५० कि० शक्तिके हैं। इनमेंसे चार २२०० वोल्ट (Volts) की विद्युत्को ७६००० वोल्टकी कर देते हैं तथा एक ५२५० कि० शक्तिका यन्त्र २२०० वोल्टके प्रवाहको ३६००० वोल्टके प्रवाहमें बदल देता है। कारखानेसे इतने अधिक वोल्टकी विद्युत् ८ तारों द्वारा अन्य स्थानोंको भेजी जाती है। प्रत्येक तार १३००० घोड़ोंकी ताकतकी विद्युच्छक्ति वहन कर सकता है। इसके अतिरिक्त, अल्प कालके लिये, इस संख्याकी तिगुनी शक्ति भी वहन करना तारोंके लिये पूर्णतः सम्भव है। शिवसमुद्रम्से २४ मील दूर कनकनहाली तारोंके ठहरावका एक स्थान (Station) है। यहाँ कारखानेसे चार तार आये हुए हैं। शेष चार तारोंमेंसे २ तार ५७ मील दूर मैसोर शहरको गये हैं तथा दो तार ६३ मील दूर मैटूर (Mettur) स्थानको जाते हैं। कनकनहाली (Kankanhally) स्थानसे ४०००० घोड़ोंकी ताकतकी विद्युच्छक्ति कोलारकी सुवर्ण खदानोंको, बेंगलोरको, चन्नापटनको तथा आस-पासके अन्य स्थानोंको भेजी जाती है। मेकदातु [Mekadatu] स्थान

पर विद्युत् उत्पन्न होना प्रारम्भ होनेपर वहाँसे भी विद्युत्-प्रवाह यहाँ भेजना आरम्भ किया जायगा। कनकनहाली एक बड़े आवश्यक मौकेकी जगह है।

कम्पनी २५ कम्पन (Frequency) की विद्युत उत्पन्न करके, उन खास यन्त्रों द्वारा (Frequency Changer, जो कम्पन बदल देते हैं) ६० कम्पनमें बदलकर, जनताको देती है। अल्प कम्पनकी विद्युत् प्रकाशके लिये उपयुक्त नहीं होती। प्रकाश तथा पखेके लिये ४ आना यूनिट (Kilowatt hour), खाना पकाने तथा गरमी देनेवाले यन्त्रोंके लिये दो पैसा यूनिट, व्यवसायके लिये १ से ३०१ घोड़ोंकी ताकतके यन्त्रोंके लिये १ आनेसे ६ आने यूनिटतक, कृषिके लिये १½ आने यूनिट तथा आँटेकी कलके लिये १ आने यूनिट अथवा ७) रु० मासिक प्रति घोड़ेकी शक्तिके हिसाबसे विद्युच्छक्ति दी जाती हैं। दरमें ५ से २५ प्रतिशततक विद्युत्-प्रवाहके खर्चके अनुसार कमी कर दी जाती है। १९०० से १९२७ ई० पर्यन्त कम्पनी २ करोड़ १४ लाखके ऊपर रुपया लगा चुकी है। इस समय कुल आमदनी ६ करोड़ १२ लाखके लगभग हुई तथा २ करोड़ १५ लाखके करीब खर्च हुआ। कम्पनीका विद्युच्छक्तिके उत्पादनमें ०·९४८ से १·१३७ पाईतक खर्च पड़ता हैं।

कुछ विद्युत्के कारखानोंकी आमदनी तथा खर्चका परिमाण निम्नलिखित प्रकारसे है—

नाम	प्रतिशत आमदनीमें खर्च
१ टारनोटो जल शक्तिका कारखाना (कनाडा)	७५·३८
२ एडीलेड विद्युत् कम्पनी (आस्ट्रेलिया)	६१·५७
३ मद्रास विद्युच्छक्ति दायिनी कम्पनी	५४·७८
४ ताताका जलबल द्वारा विद्युत्का कारखाना	४७
५ कानपुर विद्युत् कम्पनी	४०·२२
६ शार्विगन जलबलकी कम्पनी	३७·९५
७ मैसोर गवर्नमेंटकी विद्युत् कम्पनी	२१·४५

अल्प मूल्यकी विद्युच्छक्ति देशकी आर्थिक दशा सुधारनेमें कहाँतक सहायक हो सकती है, यह सर्वविदित है। भारत कृषि-प्रधान देश है। यहाँके कृषिकर्मकी प्रणालीको आधुनिक संसारके साथ-साथ चलनेकी कहाँतक आवश्यकता है, यह किसीसे छिपा नहीं है, किन्तु उन्नतिके साधनोंमें यन्त्रोंके लिये शक्तिकी आवश्यकता केवल सस्ती विद्युत द्वारा ही पूर्ण की जा सकती है, यह निश्चय है। विद्युच्छक्तिने केवल आरामके साधनोंका ही उत्तरदायित्व न लेकर व्यवसायको भी अपनाया है। अल्यूमीनियम, चूना, इस्पात, प्लैटिनम् आदि बड़े-बड़े व्यवसायोंके लिये सस्ती विद्युच्छक्तिकी अत्यावश्यकता है। "संसारमें सबसे अल्प मूल्यकी, अनेक कारणोंसे विशेष लाभप्रद तथा अधिक संख्यामें व्यवसायके उपयोगमें आनेके उपयुक्त यदि अबतक किसी शक्तिका अनुसन्धान हुआ है, तो वह जल-बलसे उत्पन्न विद्युच्छक्ति ही है"—ऐसा मेरा मन्तव्य है।

शरीरका स्वाभाविक संरक्षण

श्रीयुत ब्रह्मानन्द सिंह

शरीर अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणुओंका एक समूह है। इसमें प्रतिक्षण कहीं-न-कहीं युद्ध चलता रहता है। यह युद्ध शरीरके रक्षक जीवाणुओं और अनेक प्रकारके रोगोंके कीटाणुओंके बीच होता है। ये कीटाणु किसी प्रकार शरीरमें प्रवेश कर इसे हानि पहुँचानेकी चेष्टा करते हैं और शरीर अपने रक्षक जीवाणुओं तथा अन्य उपायों द्वारा इन्हें नष्ट करनेकी चेष्टा करता है। शरीर-रक्षाके हेतु इसकी बनावटमें अनेक उपायोंका अवलम्बन किया गया है, तथापि कभी-कभी रोगके कीटाणुओंकी ही विजय होती है और शरीर चेचक, धनुष्टङ्कार, मलेरिया तथा गरमी जैसे रोगों द्वारा पीड़ित पाया जाता है।

सबसे पहले शरीरका बाहरी चर्म कीटाणुओंसे इसकी रक्षा करता है। यदि ये कीटाणु किसी प्रकार भोजनके साथ पेटमें पहुँच जाते हैं, तो वहाँ भी पेटके भीतरकी सतहका चमड़ा इसे शरीरमें प्रवेश करनेसे रोककर मलके साथ बाहर निकाल फेंकनेकी चेष्टा करता है। इसके सिवा चमड़ेके ऊपर कुछ गाँठों द्वारा रस-प्रवाह होता है, जो कई प्रकारसे इसकी रक्षा करता है। इनमेंसे एक म्युसिन (Mucin) नामक पदार्थ निकलता है, जो कीटाणुओंकी गतिका प्रतिरोधक है। दूसरा सीबम (Sebum) नामक पदार्थ निकलता है, जो कीटाणुओंके विष-तुल्य होता है। वे इसमें अधिक देरतक नहीं रह सकते। यह चर्बीके सदृश होता है। इन गाँठोंकी संख्या बालवाले स्थानोंमें अधिक होती है। सीबमका कार्य बालों और चमड़ेको मुलायम रखना भी है।

परन्तु इन रुकावटोंके विरुद्ध भी यदि कीटाणुओंका किसी प्रकार प्रवेश हो जाय, तो शरीरके लिये अन्य उपायों-का अवलम्बन आवश्यक हो जाता है। तब शरीर-रक्षाका कार्य दो प्रकारसे सम्पन्न होता है—

(१) **रक्तकी शक्ति द्वारा**—रक्त कीटाणुओंको दो प्रकारसे नष्ट करता है। एक तो रक्तमें कुछ उजले जीवाणु होते हैं, जो "फैगोसाइट" (Phagocyte) कहलाते हैं और उन कीटाणुओंको अपने शरीरके अन्दर लेकर उन्हें पाचन-क्रिया द्वारा नष्ट कर डालते हैं। दूसरा, रक्तमें कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो "ओप्सोनिन" (Opsonin) कहलाते और कीटाणुओंके लिये विषका कार्य करते हैं।

(क) **फैगोसाइट**—मनुष्यके रक्तमें दो प्रकारके जीवाणु होते हैं, एक लाल और दूसरा उजले धब्बेके सदृश। उजले जीवाणुओंकी भी कई श्रेणियाँ हैं। भिन्न-भिन्न श्रेणियोंके जीवाणुओंके कार्य एवम् गुण भी भिन्न-भिन्न हैं। इन्हींमेंसे एक श्रेणीके जीवाणुको "फैगोसाइट" कहते हैं। अन्य श्रेणीके उजले जीवाणुका कार्य भी शरीर-रक्षा ही है। फैगोसाइटका मुख्य कार्य विजातीय कीटाणुओंका नाश करना है। एक प्रकारके आकर्षण द्वारा वह उन कीटाणुओंकी ओर ढुलकता हुआ बढ़ता और उन्हें अपने शरीरमें ले लेता है। इसके बाद उसके अन्दर कुछ रसोंका प्रवाह होता है, जिससे ये कीटाणु पाचन-क्रिया द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

सूजन—शरीरके किसी भी स्थानपर हानि पहुँचनेसे—चोट वा बाहरी कीटाणुओंके आक्रमण द्वारा —उस स्थानपर सूजन हो जाता है। वहाँ शरीरके अन्य भागोंसे फैगो-साइटोंका संग्रह होता है। रक्तकी गति तेज हो जाती और उष्णता बढ़ जाती है। रक्त-केशिकाएँ फूल जाती हैं, और, भीतरसे फैगोसाइट तथा अन्य उजले जीवाणु

निकलकर अपना कार्य आरम्भ कर देते हैं। फैगोसाइट इन कीटाणुओंका नाश करते हैं और अन्य उजले जीवाणु उस स्थानके मृत जीवाणुओं एवम् अन्य विजातीय द्रव्योंको हटाकर लिम्फ नलियों द्वारा रक्त-शिराओंमें पहुँचा देते हैं। इसके उपरान्त वे मूत्र, पसीने और प्रश्वासके साथ बाहर कर दिये जाते हैं। सब काम समाप्त हो जानेपर फैगोसाइट हट जाते हैं और सूजन कम हो जाता है। फोड़ोंसे शरीरका वह भाग पूर्णतया नष्ट हो जाता है और वहाँ केवल पीब (pus = शरीरका गला हुआ भाग तथा कुछ जीवित और मृत कीटाणु) भर जाती है। फैगोसाइट अपनी विजयके पश्चात् अच्छे भागको चारों ओरसे घेर लेते हैं, जिससे कोई कीटाणु फिरसे किसी प्रकारकी हानि न कर सके। संगृहीत पीब ऊपरके चमड़ेमें छेद बनाकर उससे बाहर निकल पड़ती है।

पदार्थ-आकर्षण (Chemiotaxis)—कुछ पदार्थ अन्य विशेष पदार्थोंकी ओर आकर्षित होते पाये जाते हैं। इसका कारण एक प्रकारका रासायनिक आकर्षण है। फोड़ेमें फैगोसाइट यथेष्ट संख्यामें पाये जाते हैं। ये अपने दो गुणोंके कारण शरीरके अन्य भागोंसे वहाँ एकत्र होते हैं। पहला, रासायनिक आकर्षण और दूसरा, उनमें छोटे-छोटे छिद्रोंसे भी निकलनेकी क्षमता। अतएव वे रक्त-केशिकाओंसे बाहर निकल पड़ते हैं। यह आकर्षण फैगोसाइटोंके लिये जीवित ही नहीं; परन्तु मृत कीटाणुओंके प्रति भी होता है। कभी-कभी विशेष कीटाणुओंसे इन फैगोसाइटोंका प्रतिसारण भी होता है। इन कीटाणुओंका आक्रमण शरीरके लिये अधिक भयावह होता है; क्योंकि ऐसे कीटाणुओंको, शरीरके उपयोगी भागोंको नष्ट करनेमें, अधिक बाधा नहीं पड़ती। बहुतसे रोगोंकी भीषणताका यह भी एक कारण है। "कालाजार"के कीटाणुओंके लिये यह आकर्षण कम हो जाता है। कभी-कभी "न्यूमोनिया" के कीटाणुओंमें भी फैगोसाइटका प्रतिसारण पाया जाता है। अतएव आक्रान्त हिस्सोंमें इनका अस्तित्व नहीं पाया जाता। उस समय न्यूमोनिया भीषण रूप धारण कर लेता है।

(ख) **ओप्सोनिन**—यह पदार्थ साधारणतया रक्तमें वर्त्तमान रहता है और कीटाणुओंके नाशमें सहायता पहुँचाता है। कीटाणुओंके नाशके लिये फैगोसाइटको रक्तके तरल भाग अथवा 'सीरम' (Serum) की आवश्यकता होती है। 'सीरम'के बिना फैगोसाइट अपना कार्य नहीं कर सकते। ओप्सोनिन इसी 'सीरम'में रहता है और फैगोसाइटोंमें एक प्रकारकी उत्तेजना उत्पन्न करता है। परन्तु राइटका विचार है कि, ओप्सोनिनका असर फैगोसाइटोंपर नहीं होता; परन्तु यह उन हानिकारक बैक्टीरियोंपर ही अपना असर डालता है; और, उनमें एक प्रकारका परिवर्तन ले आता है, जिससे वे फैगोसाइटों द्वारा सुगमतासे नष्ट हो जायँ। कई प्रयोगोंके परिमाणसे राइटका ही विचार अधिक उपयुक्त मालूम पड़ता है। ओप्सोनिन ६० डिग्री सेंटीग्रेडके तापक्रमपर नष्ट हो जाता है और इसका असर सभी हानिकारक कीटाणुओंपर पड़ता है।

(२) कीटाणुओंका नाश कुछ ऐसे पदार्थों द्वारा भी होता है, जिनकी उत्पत्ति शरीरके अन्दर इन कीटाणुओंके प्रवेश द्वारा ही होती है। ये पदार्थ साधारणतः रक्तमें वर्त्तमान नहीं हैं। इनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं, जो सभी प्रकारके कीटाणुओंपर अपना असर डालते हैं और कुछ अन्य प्रकारके हैं, जिनका असर विशेष कीटाणुओंपर ही होता है। इन पदार्थोंमेंसे कुछ निम्न लिखित हैं—

(क) **बैक्टीरियोलाइसिन**(Bacteriolysin)—यह विशेषतः हैजे, संग्रहणी तथा अन्त्र ज्वर (Typhoid)के कीटाणुओं द्वारा पैदा होता है। यह कीटाणुओंके लिये विलायक (Solvent) होता है।

(ख) **एंटीटाक्सिन**(Antitoxin)—कुछ रोगोंके कीटाणु शरीरके अन्दर विषैले पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं, जो शरीरके लिये हानिकारक हैं। इन कीटाणुओंके प्रवेशके

बाद शरीरमें एंटीटाक्सिन पैदा होता है, जिसकी उपस्थितिमें उन विषैले पदार्थोंका असर नहीं होता। वस्तुतः यह कीटाणुओंका नाश नहीं करता।

(ग) एग्लुटिनीन (Agglutinin)—यह पदार्थ रोगके कीटाणुओंको एक स्थानपर संगृहीत कर देता है, जिससे फैगोसाइटको उनका नाश करनेमें सुविधा होती है। प्रत्येक रोगके कीटाणु द्वारा उत्पादित एग्लुटिनीन केवल उन्हीं कीटाणुओंपर अपना असर डाल सकता है।

(घ) एंटीफर्मेंट (Antiferment)—इस पदार्थका कार्य शरीरके भीतर उत्पादित रसोंका समाहरण है। शरीरके अनेक भागों विशेषतः पाकस्थली और पेटकी छोटी अँतड़ियोंसे तेज पाचक रस निकलते हैं। इन रसोंका प्रभाव स्वयं शारीरिक अणुओंपर भी हो सकता है और अन्य पदार्थोंकी तरह उनपर भी पाचन-क्रिया हो सकती है; परन्तु रक्तमें एंटीफर्मेंटकी उत्पत्ति उन रसोंके प्रभावको शारीरिक हिस्सोंपर नहीं होने देती।

(च) प्रेसिपिटीन (Precipitin)—यह पदार्थ उत्पन्न होकर हानिकारक पदार्थोंको रक्तके लिये अविलेय बना डालता है और इस प्रकार वे रक्तसे अलग हो जाते हैं।

छूत और छूतसे मुक्ति (Infection and Immunity)—छूतके द्वारा रोगके कीटाणु एक जीवसे दूसरे जीवमें प्रवेश करते हैं। छूतके बाद ये कीटाणु रक्त एवम् शरीरके अन्य भागोंमें पाये जाते हैं। रोगके लक्षण बहुधा ज्वर और स्थानीय हानियाँ (जैसे टायफायडमें अँतड़ियोंका घाव और प्लेगमें गिल्टियाँ) हैं। छूतका अन्तिम परिणाम दोमेंसे एक हो सकता है—कीटाणुओंकी संख्यावृद्धि और मृत्यु अथवा उनके अस्तित्वका रक्त और शरीरके अन्य भागोंसे पूर्णतया लोप और रोगसे मुक्ति।

कुछ विशेष अवस्थाओंमें जीव छूतसे मुक्त होते हैं अर्थात् विशेष-विशेष रोगोंके छूतका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके भी कई भेद हैं। जैसे—

(१) स्वाभाविक पैतृक मुक्तत्व (Natural Congenital Immunity)—कुछ विशेष जन्तु या व्यक्ति कभी-कभी किसी रोगके कीटाणुके लिये अछूत पाये जाते हैं। यह गुण उनमें जन्म-जात होता है। जैसे, कुत्तोंपर टायफायडके कीटाणुओंका कोई असर नहीं होता।

(२) स्वाभाविकतया प्राप्त मुक्तत्व (Natural Acquired Immunity)—कभी-कभी किसी रोगसे छुटकारा पानेके बाद उस रोगके कीटाणुओंका दूसरी बार असर नहीं होता। जैसे, एक बार चेचक जोरसे हो जानेपर दुबारा चेचक होनेका भय कम हो जाता है।

शरीरके इस स्वाभाविक गुणका उपयोग करके कृत्रिम उपायोंसे भी रोग-मुक्तत्वकी अवस्था पैदा की जा सकती है। साधारणतया इस कृत्रिम उपायकी भी दो विधियाँ हैं। जैसे—

(१) सक्रिय कृत्रिम विधि (Active Artificial) बहुतसे रोगोंके कीटाणु शरीरमें एक प्रकारका विष उत्पन्न करते हैं। इस विषका समाहरण करनेके लिये शरीर भी एंटीटाक्सिन उत्पन्न करता है। यदि स्वस्थ अवस्थामें उपर्युक्त विष सांहारिक मात्रासे कुछ कम, शरीरमें इंजेकशन या किसी अन्य उपाय द्वारा प्रवेश करा दिया जाय, तो पहले उस विशेष रोगके कुछ लक्षण प्रकट होते हैं; फिर रोग दूर हो जाता है। दूसरी बार शरीर उस रोगके विषको अधिक मात्रामें सहन कर सकता है। इस प्रकार इंजेक्शनकी मात्रा क्रमशः बढ़ाते जानेसे अन्तमें शरीर उस विषको यथेष्ट मात्रामें सहन करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है और एक प्रकारसे उस रोगके आक्रमणसे मुक्त हो जाता है।

(२) निष्क्रिय कृत्रिम विधि (Passive Artificial)—यदि किसी ऐसे जीवका रक्त, जिसमें किसी विशेष कीटाणुसे उत्पन्न विषका समाहरण करनेवाला यथेष्ट मात्रामें मौजूद हो, किसी दूसरे जीवके शरीरमें प्रवेश कर दिया जाय, तो वह दूसरा भी उस

रोगके छूतसे मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार कृत्रिम उपायोंसे छूतसे मुक्ति पैदा करनेका आधार शरीरमें रोगके विषका समाहरण करनेवाले पदार्थोंका उत्पादन ही है। इन पदार्थोंका उत्पादन केवल जीवित कोटाणुओंके प्रवेश द्वारा ही नहीं, वरन् विजातीय बैक्टीरिया, अन्य जीवाणु, विष एवम् प्रोटीनके प्रवेश द्वारा भी होता है। जिस प्रकार, टीकाका वैक्सिन (Vaccin) मृत बैक्टीरियोंका समूह होता है, जो शरीरमें प्रवेश कर उन पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं, जिनसे शरीर रोगके छूतसे मुक्त हो जाता है।

हमारे शरीरकी रचनामें विधाताके अपूर्व कौशलका परिचय मिलता है। साधारणतया उसने हमें सभी प्रकारसे सुरक्षित रखनेकी चेष्टा की है। उसके बनाये हुए स्वाभाविक नियमोंका उल्लङ्घन करके ही हम अपनेआपको रोग-ग्रस्त पाते हैं। वस्तुतः इन स्वाभाविक नियमोंका उल्लङ्घन ही पाप है।

फलोंकी रक्षा और व्यवसाय

श्रीयुत बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

आर्थिक दृष्टिसे फल-व्यवसायका महत्त्व बहुत बड़ा है; पर खेदकी बात है कि, हमारा ध्यान इस ओर नहीं है। पहलेके लगाये हुए बागीचे द्वारा जो फल सालमें प्राप्त हो जाता है, उसीको बेचकर हम सन्तुष्ट हो जाते हैं; न तो उससे अधिक पैदावार बढ़ानेका ही प्रबन्ध करते हैं और न उनकी रक्षाका ही। शायद कोई भी ऐसा फल नहीं, जो हमारे देशमें कहीं-न-कहीं पैदा न होता हो। माना कि, हम सब प्रकारके फलोंकी खेती नहीं कर सकते; पर जिसकी कर सकते हैं, उसकी ओर भी तो ध्यान नहीं देते। यदि अंगूर, अंजीर, सेब और अखरोटकी खेती करना कष्टकर और असाध्य हो, तो आम, कटहल, अनार, अमरूद, नीबू, नारंगी और जामुनकी खेती तो आसानीसे कर सकते हैं? पर करे कौन? दस रुपयेकी नौकरीके लिये चार वर्ष तक उम्मेदवारी करना हमारे लिये आसान है; किन्तु दस वृक्ष लगा कर चार पैसे पैदा करना अत्यन्त कठिन है! हमारे देशमें आम एक ऐसा फल है, जो संसारके अनेक देशोंमें नहीं पाया जाता। तो भी हमने आज तक इस अपूर्वतासे कोई लाभ नहीं उठाया और न निकट भविष्यमें उठानेकी उम्मीद ही है। यह इसलिये कि, हम लोग फलोंकी रक्षा करना नहीं जानते। इस कलामें विदेशी बड़े निपुण हैं। फल ही क्या, मछली, मांस, दूध, शाक, भाजी और कितने ही अन्यान्य पदार्थ ऐसे हैं, जिनका रोजगार विदेशी बड़े कौशलसे करते हैं। वैज्ञानिक तरीकोंसे उन्हें वायु-शून्य बर्तनोंमें भर-भर कर गैर-मुल्कोंको भेजा जाता है। चीजें सालों तक नहीं बिगड़तीं। हम स्वयं नित्य ही ऐसी चीजोंका उपयोग किया करते हैं। यदि हम इस कलामें सिद्धहस्त होते, तो आमके ही व्यवसाय द्वारा कितना धन कमा लेते? पर हो कैसे? हम लोग तो रुपयोंसे कौड़ियाँ बनाना जानते हैं; कौड़ियोंसे रुपया बनाना तो विदेशियोंका ही काम है।

अमेरिकावालोंने इस विषयमें कमाल कर दिखाया है। एक ही फलकी कई किस्में पैदा करना और उन्हें वैज्ञानिक रीतिसे वर्षों तक सुरक्षित रखना उनके बायें हाथका खेल है। इस कामके लिये एक दो नहीं, हजारों

कारखाने चलते हैं, जिनमें लाखों मनुष्य प्रतिदिन काम करते हैं ।

व्यवसायकी दृष्टिसे भारतवासियोंके लिये यह एक सुन्दर कार्य है । आम एक ऐसा फल है, जिसकी चाह भारतमें ही नहीं; बल्कि अब विदेशोंमें भी होने लगी है । यदि इस ओर ध्यान न दिया गया, तो वह दिन दूर नहीं, जब कि, विदेशसे आमोंका चालान भारतमें आने लगेगा और इसके लिये करोड़ों रुपये यहाँसे बाहर जाने लगेंगे !

फल पकनेके बाद स्वाभाविक रीतिसे वह दो-चार दिनोंसे अधिक नहीं टिक सकता; क्योंकि किराब या खमीर (Ferment) पैदा करनेवाले कीड़े फलोंके भीतर प्रवेश कर उन्हें पचा डालते हैं । इसलिये फल शीघ्र ही सड़कर खराब हो जाता है । यदि इन कीटाणुओंको नष्ट करके फलोंको वायु-शून्य बर्तनमें रख दें, तो वे नष्ट न होंगे; और, उनका स्वाद, गन्ध, रंग, आकृति प्रायः ताजे फलके मुताबिक ही रहेंगे । रक्षाके उपयुक्त वे ही फल होते हैं, जो ज्यादा कच्चे, ज्यादा पके, दाग लगे या पचके हुए न हों । फलोंमें जब रंगत आने लगे, तभी उन्हें तोड़कर काममें लाया जाना चाहिये । फल-रक्षाकी विधिपर ये बातें ध्यानमें रखनी चाहिये— पहले फलका छिलका अलग-अलग करना चाहिये, फिर उसको साफ और ठंडे पानीमें अच्छी तरहसे धोना चाहिये । फल यदि बड़ा हो, तो उसके दो भाग करके भीतरकी गुठली निकाल डालनी चाहिये; क्योंकि फलको सिझाते वक्त गुठलीमेंसे एक प्रकारका तिक्त रस निकल कर फलके स्वादको नष्ट कर देता है । इसलिये साधारण तौरपर गुठलीको निकाल देना ही अच्छा है। इससे बड़े फल डिब्बोंमें आसानीसे भरे जा सकते हैं। इसके बाद कच्चे-पक्के सब फलोंको टीनके डिब्बोंमें भरकर प्रायः मुँहतक उनमें शर्बत भर देना चाहिये । शर्बतके बदले जल भरनेसे भी काम चल सकता है; किन्तु फलका स्वाद कुछ बिगड़ जाता है । अतएव शर्बतका उपयोग करना ही उचित है । जलके साथ चीनी मिलाकर शर्बत तैयार कर लेना चाहिये । शर्बतका परिमाण अपने-अपने स्वादपर निर्भर है । किस फलमें कितनी शक्कर देनी चाहिये, यह परीक्षा करके स्थिर कर लेना चाहिये ।

फल और शर्बत भर देनेके बाद टीनके डिब्बोंके मुँहपर ढक्कन लगाकर उन्हें झाल देना चाहिये । फिर डिब्बोंको गरम जलकी कड़ाहीमें, छेदको ऊपर रख कर, डुबो देना चाहिये । छेद अत्यन्त छोटा होनेके कारण बाहरका जल भीतर और भीतरका शर्बत बाहर नहीं आ-जा सकेगा । इसी प्रकार छोटे डिब्बोंको ४-५ मिनट और बड़ोंको ७-८ मिनट तक डुबाये रखनेसे उनके भीतरकी वायु उत्ताप पाकर छेदके द्वारा बाहर निकल जायगी । इसके बाद गरम जलसे निकाल कर तुरत ही इनके छेदोंको टाँकेसे बन्द कर देना चाहिये । देर करनेसे काम बिगड़ जायगा; क्योंकि अत्यन्त गरम दशामें डिब्बोंके भीतरकी खाली जगह जलीय भापसे भरी रहती है और उसमें वायु बिलकुल नहीं रहती । देर करनेसे भाप ठंढा हो जाता है और उसके स्थानमें वायु प्रवेश कर जाती है । यह वायु बादमें फलोंको खराब कर देती है । वास्तवमें इस वायुको निकाल देनेके लिये ही यह क्रिया की गयी थी ।

छेद बन्द कर देनेके बाद डिब्बोंको फिर खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबोकर उनके फलोंको सिझाना चाहिये । यह क्रिया फलोंके भीतरवाले कीटाणुओंको मार डालनेके लिये की जाती है । कितनी बार कितना उत्ताप देनेसे फलके कीटाणु मर जाते हैं, यह बात ठीक-ठीक नहीं कही जा सकती; क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रकारके फलोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके कीटाणु होते हैं । परन्तु अंदाजसे यह कहा जा सकता है कि, २०-३० मिनट तक खौलते हुए जल (१००°)के उत्तापमें सिझानेसे प्रायः सब फलोंके कीटाणु मर जाते हैं ।

पर यह सिझाना फलोंकी अवस्थापर भी निर्भर है। जैसे कच्चे फल पक्के फलकी अपेक्षा ज्यादा देर तक और खूब पके फल भी थोड़ी देर तक और सिझाना चाहिये। डिब्बोंमें भरते समय फलोंका श्रेणी-विभाग कर लेना चाहिये; क्योंकि अलग-अलग प्रकारके फलोंको अलग-अलग समयकी आवश्यकता होती है। सिझानेका समय, उत्तापकी मात्रा, मीठेका परिमाण इत्यादि बातें फलोंकी अवस्थापर निभर हैं। इन बातोंके लिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता।

निर्दिष्ट समयमें फलोंके सीझ जानेपर डिब्बोंको गरम जलमेंसे निकाल कर ठंडे जलके कड़ाहमें डुबो देना चाहिये; क्योंकि अगर तुरत ही डिब्बे ठंडे न किये जायँ, तो उनके भीतर जो उत्तापके द्वारा सिझानेका काम चलता रहता है, वह बहुत देर तक चलता रहेगा और इससे फल ज्यादा सीझकर बिलकुल खराब हो जायँगे। ५–७ मिनट तक ठंडे जलमें डुबाये रखनेके बाद डिब्बे ठंडे हो जायँगे; फिर उनको ठंडे जलसे निकालकर जिधरकी तरफ मुँह झाला गया हो, उधर नीचा करके खड़ा कर देना चाहिये। उस समय विशेष दृष्टिसे देख लेना चाहिये कि, डिब्बोंमेंसे किसी ओरसे भीतरका शर्बत चू तो नहीं रहा है? यदि किसी डिब्बेमें कुछ सन्देह हो, तो उसी समय उसे ठीक कर देनेके लिये अलग कर देना चाहिये। हर तरहसे सन्तुष्ट हो जानेके बाद डिब्बोंपर लेबिल लगाकर सन्दूकोंमें भर देना चाहिये। डिब्बोंकी संख्या सन्दूकके आकारपर निर्भर है।

फलोंकी रक्षाके निमित्त मुख्य काम ये हैं—

(१) फलका छिलका अलग करना और गुठली निकालना (Peeling)

(२) श्रेणी-विभाग करना (Sorting)

(३) डिब्बोंमें भरना (Canning)

(४) डिब्बोंमें शक्करका शर्बत भरना (Syruping)

(५) हवा बाहर करनेके लिये खौलते हुए जलके कड़ाहमें डुबाना (Airtighting)

(६) ढक्कन लगाना (Capping)

(७) छोटा छेद बन्द करना (Soldering)

(८) सिझाना (Cooking)

(९) ठंडे जलके कड़ाहमें डुबाना (Cooling)

(१०) झले हुए मुँहको नीचा रखकर खड़ा करना

(११) लेबिल लगाना (Labelling)

(१२) लकड़ीको सन्दूकोंमें बन्द करना (Casing)

विदेशी इन कामोंके लिये अनेक प्रकारकी बोतलें और डिब्बे काममें लाते हैं। परीक्षार्थियोंको मँगाकर उनका उपयोग करना चाहिये और देशमें उसी प्रकारके बर्त्तनोंको तैयार कराकर काममें लाना चाहिये। फलोंकी रक्षाविधिपर ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह इस विषयका दिग्दर्शन-मात्र है। इस व्यवसायको करनेके लिये यदि हम तैयार होकर इस विषयकी ओर भली भाँति ध्यान दें, तो इससे भी अच्छी तरकीबें निकाल सकते हैं। विदेशियोंका खयाल है कि, भारतवर्षमें इतना आम पैदा होता है कि, फल-रक्षाके हजारों कारखाने भली भाँति चल सकते हैं।

पर भारतवर्षमें आज तक इस विषयपर ध्यान ही नहीं दिया गया। जैसा कि, समाचार पत्रोंसे मालूम हो रहा है कि, थोड़े ही समयमें विलायत आमके फलको नाना प्रकारसे तैयार करके भारतवर्षमें भेजने लग जायगा। इसी साल इतना आम फला था कि, इस प्रकारके कारखानों द्वारा लाखों रुपया पैदा किया जा सकता था; पर इस विज्ञानका अभाव होनेके कारण सारा फल एक ही महीनेमें पच-खप गया! हमारे देशमें नवयुवक यूनिवर्सिटियोंमें

केवल डिग्री ही प्राप्त करनेके लिये विज्ञान पढ़ते हैं। यदि पढ़े-लिखे नवयुवकोंका ध्यान इस ओर जाता, तो यह काम इतने दिनोंतक अछूता न रहता। इस कामके लिये विशेष धनकी भी आवश्यकता नहीं है, कलाका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी कहीं जाना नहीं है। मामूली परिश्रम और लगनसे इस विषयका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आशा है, देशके शिक्षित नवयुवक इस विषयकी ओर शीघ्र ध्यान देंगे।

धूलि

श्रीयुत परमेश्वरदयाल बी० एस-सी०

धूलि एक ऐसी वस्तु है, जिससे साधारण मनुष्योंको कोई लाभ नहीं दीख पड़ता, वरन् हानि-ही-हानि दीख पड़ती है। जब धूलिकी आंधी चलती है, तब एक उपद्रवसा आ जाता है और सब इससे बचनेका प्रयत्न करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि, यह हर प्रकारकी वस्तु (कपड़े इत्यादि) को गन्दा कर देती है। इससे बहुतसे रोग फैलते हैं, जिनमें सबसे भयङ्कर क्षयरोग (Tuberclosis) है। यह रोग एक प्रकारके छोटे कीड़ोंसे फैलता है, जो आंखोंसे नहीं दीख पड़ते। ये कीड़ धूलिमें रहते हैं और सांस लेते समय हवाके साथ अन्दर पहुँच जाते हैं। इस प्रकार यह रोग फैलता है। इन रोगोंसे बचनेके लिये मनुष्य धूलिसे भागता है।

परन्तु धूलिको तुच्छ और केवल हानिकारक ही जानना ठीक नहीं। इसपर हमारा जीवन भी बहुत कुछ, निर्भर है। सन् १८८० ई० में सबसे पहले एटकिन (Aitken) ने इसपर प्रयोग किये, जिसका परिणाम यह हुआ कि, बहुतसी विशेष बातें इसके बारेमें मालूम हुईं। जब धूलि धरतीके निकट होती है, तब यह मनुष्यके स्वास्थ्यके लिये बहुत ही हानिकारक है; परन्तु बहुत ऊपर जाकर बहुतसे कामोंमें आती है। वर्षा, कोहरा इत्यादि हवामें धूलि होनेके कारण ही होते हैं; इसलिये धूलिका होना बहुत आवश्यक है। इससे हम आकाशमें बड़े सुन्दर दृश्य देखते हैं। आकाशका नीला रङ्ग धूलिके ही आधारपर है और वायुमण्डलमें धूलिके कण होनेसे ही रंग-बिरंगे दृश्य (सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय) दिखलाई देते हैं।

जब साफ हवामें धातु, मिट्टी, जड़ पदार्थ और पत्थर इत्यादिके छोटे-छोटे कण और बहुतसी हल्की वस्तुएँ मिल जाती हैं, तब हम इनको धूलि कहते हैं। धूलिके हवामें मिल जानेके कई कारण हैं। हजारों छोटे तारे आकाशसे धरतीपर प्रतिदिन गिरते हैं। उनमेंसे जो बहुत बड़े होते हैं, वे दिखलाई भी पड़ते हैं। हवाके घर्षणसे ये तारे टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और आपसकी टक्करसे भी छोटे छोटे कण होकर हवामें मिल जाते हैं। जहां ज्वालामुखी पहाड़ होते हैं, वहां हवामें धूलि बहुत अधिक होती है; क्योंकि ज्वालामुखी पहाड़ोंमेंसे बहुतसे जड़ पदार्थ और पत्थर इत्यादि निकलते हैं। अनेक कारणोंसे ये कणके रूपमें हो जाते हैं और हवा इनको उड़ा ले जाती है। बहुतसी छोटी और हल्की वस्तुएँ और अधिकतर बालू और मिट्टी हवाके साथ उड़ जाती है। बड़े-बड़े शहरोंमें आबादी अधिक होनेसे कोयला इत्यादि बहुत जलाये जाते हैं, इस कारण वहां धूलि बहुत होती है। धूलिकी महिमा जानकर एटकिन साहबने एक ऐसा यन्त्र बनाया, जिससे वायु मण्डलमें धूलिके कण गिने जा सकें। लंदन

और पेरिस जैसे बड़े-बड़े शहरोंमें (जहाँ अधिकतर कारखाने हैं) प्रतिदिन बहुत कोयला जलाया जाता है। धूलिके कण १००००० से १५०००० प्रति घन सेंटीमीटर तक पाये जाते हैं। इस यन्त्रके आधारपर पूटकिन साहब कहते हैं कि, एक सिगरेट पीनेवाला सिगरेटका एक दम लगानेमें ४० करोड़ कण हवामें छोड़ता है और प्रति मनुष्य एक साँसमें कई करोड़ धूलिके कण अपने अन्दर पहुँचा देता है। क्वेल साहबने इस यन्त्रसे आस्ट्रेलियाके एक शहर (मेलबोर्न)में कोहरेके दिन धूलिके कण गिनकर बतलाया कि, प्रति घन इंचमें १०२६०० कण पाये जाते हैं। मेलबोर्न एक ऐसा शहर है, जहाँ धूलि कभी नहीं दिखाई देती। ऐसी जगह वायुमण्डलमें इतनी धूलिका होना सिद्ध करता है कि, धूलि हर समय हवामें मौजूद रहती है या ऐसा कहना चाहिये कि, हम हर समय धूलिके समुद्रमें गोते लगाते रहते हैं।

समुद्र, नदी, झील इत्यादिसे पानी हर समय भाप बनकर हवामें मिलता रहता है। जब हम कपड़े सुखाते हैं या खाना बनाते हैं, तब पानी भाप बनकर उड़ जाता है। एक घन सेंटीमीटर हवा एक विशेष तापक्रमपर भापकी एक विशेष मात्रा ग्रहण कर सकती है। तापक्रम बढ़ जानेपर हवा भापकी ज्यादा मात्रा ग्रहण कर सकती है। ताप-क्रम कम हो जानेपर कम ग्रहण करती है। जब हवाका तापक्रम एक विशेष तापक्रमसे कम हो जाता है, और, भापकी मात्रा बहुत हो जाती है, तब भाप पानी हो जाता है और इसकी छोटी-छोटी बूँदें धूलिके कणोंपर जम जाती हैं। जब ये बूँदें धरतीके बहुत निकट होती हैं, तब इनको कोहरा कहते हैं। बहुत ऊपर इन्हींको बादल कहते हैं। बादल भिन्न-भिन्न रंगके होते हैं। कभी श्वेत, कभी काले और कभी नीले दिखलाई पड़ते हैं। जब वायुमण्डलमें धूलिके कण काले होते हैं, तब बादल और कोहरा काले होते हैं और धूलिके कण लाल होनेपर बादल लाल रंगका भी हो सकता है। सूर्यका प्रकाश बादलोंपर पड़नेपर बादल श्वेत दिखलाई देते हैं। पहाड़की चोटियोंसे मेघोंका दृश्य बड़ा ही मनोहर और सुन्दर लगता है। जब हवामें बादल बहुत हो जाते हैं, तब इनकी कई छोटी-छोटी बूँदें मिलकर बड़ी हो जाती हैं और बोझ अधिक हो जानेसे ये बूँदें नीचे गिरने लगती हैं। इसीको हम वर्षा कहते हैं। वैज्ञानिकोंका कहना है कि, यदि धूलि हवामें न हो, तो भापके जमनेके लिये जब तापक्रम बहुत ही कम होगा, तब वर्षा होगी और तापक्रम बहुत कम हो जानेपर भाप हमारी देह और वस्तुओंपर जम जायगा। कभी-कभी यह बादल बहुत ठंडे होनेपर या किसी ठंडे पहाड़से टकर खाकर वर्षा कर देते हैं। १९-१४ ई० की जर्मनीकी लड़ाईके दिनोंमें बहुतसे वैज्ञानिकोंका यह मत हुआ कि, हवामें बहुतसा बारूद छोड़नेसे वायुमण्डलमें धूलिके छोटे-छोटे कण बहुत हो जायँगे और इस कारण वर्षा भी बहुत होगी। लड़ाईके दिनोंमें जिन जगहोंपर अधिक बारूद छूटा, वहाँ वर्षा पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक हुई। इसपर इस मतके बहुतेरे पोषक हो गये और बहुतसे प्रयोग किये गये। बालूके थैले तोपोंसे छोड़े गये; पर ये सब प्रयोग निष्फल हुए और ऊपरका सिद्धान्त बहुत काल तक न टिक सका।

जिस प्रकार बादलोंका रंग धूलिपर होता है, वैसे ही वर्षाका भी हाल है। एक बार जेनसेनविले [Jansen Ville—Cape Town Province] में, अक्टूबर सन् १९११ ई० में, काली वर्षा हुई थी। उस साल वहाँपर घासकी आग बहुत जलायी गयी थी, जिससे बहुतसा धुआँ निकला था। हवा बहुत चलनेसे कोयलेके कण भी धुएँसे मिलकर सारे वायु-मण्डलमें फैल गये थे। भापके इन्हीं काले कणोंपर जम जानेके कारण काली वर्षा हुई थी। ऐसी ही काली वर्षा १९०८ ई० में किंबरले (Kimberlay)में भी हुई थी और उसका कारण भी यही था। उस समय लोगोंने

इसको स्याहीकी वर्षा कहा था; क्योंकि उनको धूलिके कार्यका कुछ भी ज्ञान न था। होमरने (जो यूनानका सबसे बड़ा लेखक हुआ है) लिखा है कि, एक बार खून-की वर्षा हुई थी। यूनानवालोंकी उस समय एक दूसरी जातिसे लड़ाई हो रही थी। उस समय ऐसी वर्षाका होना बहुत ही बुरा माना गया था। ऐसी ही वर्षा सन् ५७० और ५७२ में इटलीमें हुई और १११७ ई० में लोम-बार्डीमें भी हुई। इससे सारे देशमें कोलाहल मच गया था। पादड़ियोंने एक बड़ा सम्मेलन, मिलान शहरमें, किया। इसमें रक्तकी वर्षा होनेका कारण सोचा गया। इस वर्षाका कारण यह था कि, वहाँ ज्वालामुखी पहाड़ था। उस साल उसमेंसे लाल रंगकी बहुतसी धूलि निकली थी और हवामें मिल जानेसे इसपर भाप जम गया था। जब पानीकी बूँदें धरतीपर गिरीं, तब वर्षा लाल और रक्तके समान प्रतीत हुई। एक बार दूध जैसी श्वेत वर्णकी वर्षा भी हुई थी, जिसका मुख्य कारण यही था कि, वर्षाकी बूँदोंमें चूनेके कण थे।

स्वर्गीय लार्ड रेलेके मतानुसार आकाशका नीला रंग भी धूलिके कणोंके ही कारण है। साधारणतः देखा जाता है कि, अगर बन्द कमरेमें किसी सूराख द्वारा सूर्यका प्रकाश आ रहा हो, तो सूर्यकी किरणोंमें धूलिके छोटे-छोटे कण नजर आते हैं। ये कण प्रकाशको परिक्षिप्त (Scatter) करते हैं, जिसके कारण प्रकाश स्पष्ट दिखलाई देता है। पृथिवीके पास कण बड़े होते हैं; इसलिये सब रंगके प्रकाशको वे परिक्षिप्त करते हैं। सूर्यका प्रकाश वास्तवमें सात रंगोंका है, जिसके मिलनेके कारण वह श्वेत प्रतीत होता है। अगर कण बहुत छोटे हों, तो वे केवल नीले प्रकाशको परिक्षिप्त कर सकते हैं; और, रंगोंको परिक्षिप्त नहीं कर सकते।

वैज्ञानिकोंका मत है कि, सर्वव्यापी ईथर (Ether) की तरङ्गोंको प्रकाश कहते हैं। इनकी लम्बाई अथवा तरङ्ग-दैर्घ्यके कारण भिन्न-भिन्न रंग दिखाई देते हैं। नीले रंगका तरङ्ग-दैर्घ्य बहुत कम होता है और लाल रंगका बहुत अधिक। अगर कण तरङ्ग-दैर्घ्यकी तुलनामें छोटे हों, तो वे उस रंगके प्रकाशका परिक्षेपण नहीं कर सकते। बहुत-से कण ऐसे होते हैं, जो लाल रंगका परिक्षेपण नहीं कर सकते; पर छोटे तरङ्ग-दैर्घ्यके रंगका परिक्षेपण कर सकते हैं। पृथिवीसे बहुत ऊपर ऐसे छोटे कण बहुत होते हैं। जब सूर्यका प्रकाश इनपर पड़ता है, तब ये नीले रंगका परिक्षेपण करते हैं। अगर हम सूर्यसे दूरीपर आकाशको देखें, तो हमको यह परिक्षिप्त प्रकाश ही दीख पड़ता है, जिसके कारण आकाश बहुत नीला प्रतीत होता है। अगर हम अपने आपको बहुत उठाकर सूर्यकी उन किरणोंको देख पाते (जो धूलिके कणमें होकर सीधी चली जाती हैं), तो हमको उनमें नीला रंग कम और लाल रंग अधिक दिखलाई पड़ता। यह अवस्था सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय होती है। उस समय किरणें धूलिमें होकर हम तक सीधी पहुँचती हैं। नीला रंग परिक्षिप्त होकर हम तक नहीं पहुँच सकता और हमें केवल सुन्दर लाल रंग ही दिखलाई देता है।

इस सिद्धान्तसे सिद्ध होता है कि, सारा आकाश एक समय एकसा नीला नहीं हो सकता। सूर्यके निकटका आकाश सूर्यके उदय और अस्त होनेके समय लाल होता है; पर और समय, विशेषकर मध्याह्नके समय, जब प्रकाशको धूलिकी मात्रा कम पार करनी होती है, यह अंश श्वेत रंगका प्रतीत होता है। इस समय नीला रंग परिक्षिप्त होकर बिल्कुल नष्ट नहीं हो जाता। आकाश-का रंग सूर्यसे जितनी दूरीपर देखेंगे, उतना ही अधिक नीला प्रतीत होगा। वर्षाके बाद जब बड़े-बड़े कण बैठ जाते हैं, और छोटे कण अधिक आस्वस्त रहते हैं, तब आकाश गहरा नीला दीख पड़ता है।

इस सिद्धान्तको स्वर्गीय प्रोफेसर टिंडलने, एक बड़े सुन्दर प्रयोग द्वारा, दिखाया था। एक मजबूत शीशेकी नलीमेंसे हवा बिलकुल निकाल ली गयी। फिर बहुत थोड़ी-सी हवा ब्युटिल नाइट्रिटमेंसे लाकर उसमें प्रविष्ट

की गयी। इसी प्रकार फिर थोड़ी-सी हवा हाइड्रोक्लोरिक एसिड (Hydrochloric Acid)मेंसे लाकर उसी नलीमें प्रविष्ट की गयी। इस नलीमें हवाका दबाव बहुत ही कम रखा गया था। इसपर फिर आर्कलेम्प (Arc Lamp)से प्रकाश डाला गया। इस प्रकाशके पड़नेसे हाइड्रोक्लोरिक एसिड और ब्युटिल नाइट्रिट मिलकर छोटे-छोटे कण बनते हैं। ये कण पहले छोटे होते हैं और फिर बड़े होने लगते हैं। अगर हम नलीको प्रकाशकी सीधसे हटकर देखें, तो हमको परिक्षिप्त प्रकाश दीख पड़ेगा। जब कण छोटे होते हैं, उस समय हमको बहुत सुन्दर नीला रंग दीख पड़ता है, जो आकाशके रंगसे मिलता हुआ होता है। जब कण बड़े होने शुरू होते हैं, तब और रंगोंका परिक्षिप्त प्रकाश भी दीख पड़ता है और अन्तमें जब सब रंग परिक्षिप्त होते हैं, तब श्वेत हो जाता है।

इसी कारण कभी-कभी नदीका रंग भी गहरा नीला दिखाई देता है और कोहरा भी कभी-कभी हलका नीला प्रतीत होता है। ऊपर लिखा गया है कि, सूर्य उदय और अस्त होनेके समय हमको सूर्यके निकट, आकाशमें, बड़े सुन्दर दृश्य दिखलाई देते हैं। सन् १८८३-८४ ई० में बड़े ही सुन्दर और भिन्न-भिन्न वर्णोंके दृश्य दिखलाई दिये थे। वैसे सुन्दर दृश्य अब नहीं दिखलाई देते। उसका कारण यह था कि, उन दिनों क्राकातोआ (Krakatoa) के ज्वालामुखी पहाड़ोंमेंसे भिन्न-भिन्न वर्णकी बड़ी सुन्दर और अधिक धूलि निकली। इस धूलिके छोटे-छोटे कण हवाके साथ सारे वायु-मण्डलमें फैल गये। इसी कारण यह सुन्दर दृश्य दीख पड़ा। धीरे-धीरे वर्षासे ये सब कण धरतीपर आ गये; इसलिये अब वैसे सुन्दर दृश्य नहीं दिखाई देते। ईश्वरकी महिमा है कि, धूलि जैसी घृणित वस्तुके द्वारा अनेक सुन्दर दृश्य हमें दीख पड़ते हैं। कितने ही कवियोंने ऐसे सुन्दर दृश्योंके गीत गाये हैं। पर उन्होंने कभी यह नहीं सोचा होगा कि ये सुन्दर दृश्य उन्हीं धूलि-कणोंके कारण होते हैं, जिनसे बचनेकी उन्होंने अनेक चेष्टाएं की होंगी।

प्रकाश

अध्यापक शारदाप्रसाद सिंह बी० एस-सी०

प्रकाश-विज्ञानमें, यथार्थमें, सतरहवीं शताब्दीसे विकास होना प्रारम्भ हुआ है। आजकल हम लोगोंका प्रकाश-विषयक जो ज्ञान है, उसका श्रीगणेश सन् १६६६ ई०में हुआ था। इसी साल न्यूटनने प्रयोग द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया कि, श्वेत-प्रकाश (White Light) सचमुच सात रंगोंका सम्मिश्रण है। जब श्वेत-प्रकाशकी किरण त्रिपार्श्व (Prism) पर आ गिरती है और उसके दूसरे पृष्ठसे होकर बहिर्गत होती है, तब त्रिपार्श्व श्वेत-किरणके विभिन्न रंगोंवाली किरणोंको एक दूसरेसे अलग कर देता है, और, वह बहिर्गत किरण एकके बदले सात हो जाती है, जिसके एक किनारेमें लाल रंग और दूसरेमें बेंगनी रंग रहते है। वर्णपट-विज्ञानका यही आधार है। त्रिपार्श्वसे बहिर्गत होनेपर न्यूटनने उन्हें फिर दूसरे त्रिपार्श्व द्वारा सम्मिश्रित कर श्वेत किरणका पुनर्निर्माण किया। इस प्रकार उसने यह प्रमाणित कर दिया कि, श्वेत किरणमें सात रंग पहलेसे ही वर्त्तमान थे और त्रिपार्श्व केवल उन्हें अलग कर देने मात्रका

कार्य सम्पादन करता है।

न्यूटनके पूर्वके वैज्ञानिकोंका यह सिद्धान्त था कि, श्वेत प्रकाशमें केवल एक ही रंग है और त्रिपार्श्वमें एक ऐसी विचित्रता है कि, उसमें प्रवेश करते ही प्रकाशकी विभिन्न तरङ्ग-दैर्घ्यवाली किरणें विभिन्न रंग धारण कर लेती है। वर्त्तमान विज्ञान-युगमें भी यद्यपि अध्ययनमें सरलता लानेके लिये न्यूटनका ही सिद्धान्त माना जाता है; किन्तु पूर्व वाला ही सिद्धान्त सत्य प्रतीत होता है।

न्यूटनका कहना था कि, कोई भी प्रकाश पुञ्ज (Source of Light) भौतिक परमाणुओंका एक समूह है, जिससे एक-एक परमाणु निकलकर हमारी आँखोंकी पुतलियोंसे आकर टकराते हैं और इस प्रकार हमें प्रकाशका ज्ञान कराते हैं। जब न्यूटनने यह मान लिया, तब प्रकाशके गति मार्गका निश्चय करना उसके लिये सरल था। उसके गति-नियमोंमेंसे (Laws of Motion) यह भी एक है कि, प्रत्येक भौतिक पदार्थ, किसी दूसरे बाहरी पदार्थसे बाधित नहीं किये जानेपर सर्वदा एक सीधमें चलता रहता है। इस नियमके अनुसार उसने तुरत यह निश्चय कर लिया कि, प्रकाशकी किरणें सीधी रेखाओंमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाती हैं। इस सिद्धान्तके पक्षमें उसने छाया-निर्माण (Formation of Shadows) की तर्कणा पेश की। यह प्रमाण ऐसा निर्विवाद था कि, प्रकाशके तरङ्ग-सिद्धान्त (Wave-Theory) का आविष्कार हो जानेपर भी वैज्ञानिक इसका उत्तर नहीं दे सकते थे—यदि प्रकाश तरङ्गोंमें भ्रमण करता है, तो किसी पदार्थकी छाया ठीक उसीकी शकलकी क्योंकर होती है?

यद्यपि न्यूटनके पास, प्रकाशके सीधी रेखाओंमें गमन करनेके सिद्धान्तकी रक्षाके लिये, छाया-निर्माणका एक अभेद्य कवच था, तथापि उसके समकालीन कई वैज्ञानिकोंने ऐसे-ऐसे आविष्कार किये, जिनकी व्याख्या न्यूटनका सिद्धान्त नहीं कर सकता था। सन् १६७६ ई०में रोमर (Romer) नामक एक डेनिश ज्योतिःशास्त्र-वेत्ताने परीक्षा द्वारा पता लगाया कि, प्रकाशकी गति १८२००० मील प्रति सेकिंड है। अब मान लीजिये कि, आप किसी नदीके किनारे खड़े हैं और हवा जरा तेज चल रही है, जिसके कारण बालूके कण उड़-उड़कर आपके शरीरपर आते हैं। आप अनुभव करते हैं कि, आपके शरीरसे बालूके कण टकरा रहे हैं और आपके शरीरपर एक प्रकारकी चोट या दबाव दे रहे हैं। दस-पाँच गजसे आते हुए और घंटेमें अधिकसे अधिक १० मीलकी गतिसे चलते हुए बालूके कण यदि आपके शरीरपर इतनी चोट लगा सकते है, जिसे आप तुरत अनुभव कर लेते हैं, तो १८२००० मील प्रति सेकिंडकी गतिसे चलते हुए और सूर्यसे आते हुए प्रकाशके परमाणु [वे कितने ही सूक्ष्म क्यों न हों] हमारे शरीरपर कोई चोट या दबाव क्यों नहीं देते ? वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने प्रयोग प्रारम्भ किया; पर किसी भी प्रयोगमें वे सफल न हो सके और अन्तमें यही उनका निश्चय रहा कि, प्रकाशसे किसी वस्तुपर दबाव पैदा नहीं होता। आज कलके वैज्ञानिकोंने तो यह सिद्ध किया है कि, प्रकाश भी दबाव देता है। पर यह तरङ्ग-सिद्धान्तको ही अधिकतर परिपुष्ट करता है; क्योंकि यह दबाव तरङ्गोंके पारस्परिक टकरावसे होता है।

सन् १६७० ई० में प्रकाशके तरङ्ग-सिद्धान्तका

सूत्रपात हायजें स (Haygens) द्वारा किया गया । तरङ्ग-सिद्धान्तके बलपर उसने प्रकाशके प्रतिक्षेप (Reflection), किरण-वक्रति (Reffraction) तथा एकधुरीय मणिभोंमें द्वित्व किरणवक्रति (Double Reffraction) की सन्तोषजनक व्याख्या की । उसी समय उसने प्रकाशके ध्रुवीभवन [Polarisation] का भी आविष्कार किया । यदि हायजें स इसको ठीक-ठीक समझ सकता, तो न्यूटनके सिद्धान्तकी इतिश्री करनेके लिये उसका यह एक बड़ा विकट शस्त्र होता । पर प्रकाशके ध्रुवीभवनका कारण हायजें सकी समझमें ही नहीं आया ।

हायजेंससे पूर्व ही, सन् १६६५ ई० में, ग्रिमाल्डीने एक प्रयोग किया था। यह प्रयोग अत्यन्त सरल तथा सुगम था। एक मोटे कागजके टुकड़ेमें उसने दो अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र किये और एक अंधेरे कमरेमें इन छिद्रों द्वारा प्रकाश प्रविष्ट कराया। इन छिद्रोंके अतिरिक्त और किसी मार्गसे प्रकाश कमरेमें प्रवेश नहीं कर सकता था। उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि, इन छिद्रोंसे होकर जो किरण-समूह जाता था, वह कमरेमें रखे एक काले पट (Screen) पर उपलब्ध होता था। पटपरके दोनों किरण-समूहोंके बीचका स्थान अंधेरा होनेके बदले कुछ प्रकाशितसा दीख पड़ा। इस प्रयोगके फल पर यदि न्यूटन ध्यान देता, तो सम्भवतः वह अपने सिद्धान्तको आगे नहीं रख सकता। ग्रिमाल्डीने भी इसपर ध्यान नहीं दिया; क्योंकि वह प्रकाशके गति-मार्गपर प्रयोग नहीं कर रहा था; बल्कि वह प्रकाशकी भौतिकतापर प्रयोग कर रहा था। यदि प्रकाश सरल रेखामें गमन करता, तो पटपर वे ही दो स्थान पूर्णतया प्रकाशित होते, जहाँ किरण-समूह जा गिरता था। इन दोनों स्थानोंके अतिरिक्त पटके अन्यान्य भाग पूर्णतया अन्धकारमें होते। पर जब ग्रिमाल्डीने निरीक्षण किया कि, प्रकाशित स्थानोंके सन्निकटके स्थान भी कुछ-कुछ प्रकाशित हैं, तब इससे स्पष्ट मालूम होता है कि, कागजके छिद्रोंसे पार होते-होते किरण-समूह कुछ मात्रामें झुक गया। अतएव यह प्रयोग प्रमाणित करता है कि, न्यूटनका सिद्धान्त भ्रममूलक है।

जिस क्रिया द्वारा ऊपरके दोनों प्रकाशित स्थानोंके बीचका भाग भी कुछ प्रकाश पा लेता है, उसे प्रकाशका अन्तर्गमन (Interference) कहते हैं। प्रकाशके अन्तर्गमनका अध्ययन डा० यंगने किया और इसी अध्ययनसे उसने तरङ्ग-सिद्धान्तको परिपुष्टि की। परन्तु अब तकके तरङ्ग-सिद्धान्तका समर्थन करनेवाले जितने वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक हुए, सब इसी मतपर डटे रहे कि, प्रकाशका गमन-मार्ग उसी दिशाके समानान्तर है, जिस दिशामें माध्यम (Medium)का स्थानान्तर (Displacement) होता है। यही कारण था कि, इस सिद्धान्तके सत्य होते हुए भी प्रकाश-सम्बन्धी कितने ही आविष्कारोंकी व्याख्या नहीं की जा सकी। अन्तमें, १८१४ ई०में, फ्रेजनेल (Fresnel)ने विज्ञान-जगत्को प्रमाणित कर दिखाया कि, प्रकाशका गमन-मार्ग उस दिशापर लम्ब-रूप है, जिस दिशामें माध्यमका स्थानान्तर होता है। इसके आधारपर उसने सब सम्भव प्रश्नोंका यथेष्ट उत्तर दिया और तरङ्ग-सिद्धान्तको सर्वदाके लिये स्थायी कर दिया। फ्रेजनेलके इस सिद्धान्तके अनुसार प्रकाशको गमन करनेके लिये एक लचीले (Elastic) ठोस पदार्थकी आवश्यकता हुई

और बड़ी छानबीनके पश्चात् ईथर '(Ether) जैसा माध्यम निर्द्धारित हुआ। प्रकाश-तरङ्गोंका गमन साधारण-तरङ्गीय गतियोंके नियमोंके अधीन है।

इसके पश्चात् कुछ वैज्ञानिकोंका ध्यान प्रकाशके गति-निर्द्धारणकी ओर गया: अतएव प्रयोग द्वारा उन्होंने निम्नाङ्कित फल पाये—

(१) रोमर—सन् १६७६ ई०—१९२००० मील प्रति सेकिंड
(२) ब्रैडली-सन् १७२८-१९२००० मील प्र० से०
(३) गैलीलियो—असफल रहा
(४) फीज़ो (Fizeau)—१८४९ ३००३३० किलोमीटर (हवामें) प्र० से०—३००४०० किलोमीटर (शून्यमें) प्रति सेकिंड
(५) फूको—२९८००० किलोमीटर ,, ,,
(६) मिचेल्सन—२९९९१० ,, ,,
(७) न्यूकाम्ब—२९९८६० ,, ,,

गंगा

विज्ञानांकका परिशिष्टांक (२)

सचित्र हिन्दी-मासिक पत्रिका

प्रधान संरक्षक—बनैलीराज्याधिपति साहित्यविभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुर

अध्यक्ष—पण्डित गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

वर्ष ४, प्रवाह ४ | चैत्र, १९९१; मार्च, १९३४ | तरंग ३ पूर्ण तरंग ३९

काचका निर्माण

पं० सहदेवप्रसाद पाठक एम० एस-सी०

इतिहास—काच (कांच) बनानेकी कला रोमके सम्राटोंके समयमें ही चरम सीमाको पहुँच चुकी थी। भारतके सम्बन्धमें यद्यपि पहले समझा जाता था कि, यह कला यहाँ या तो थी ही नहीं या इतनी कम थी कि, नहीं के बराबर थी। परन्तु अब यह निश्चित रूपसे ज्ञात हो गया है कि, ईसाके जन्मके तीन-चार सहस्र वर्ष पूर्व ही भारतमें काच बनता था। महेंजोदारोमें जो प्राचीन वस्तुएँ मिली हैं, उनमें काच भी है। इन काचोंपर बड़ी विचित्रतासे नक्काशी की हुई है, जिससे यह ज्ञात होता है कि, उस प्राचीन कालके निवासी काचकी वस्तुओंको बनाना ही नहीं जानते थे, वरन् उनपर चित्रकारी करनेकी कलासे भी पूर्ण अभिज्ञ थे।

भारतवर्षमें काच और काचकी वस्तुएँ बनानेके कारखाने खुले चालीस वर्ष हुए। १८९२—१९०० के बीच

पाँच कारखाने स्थापित हुए, जिनमें दो स्वदेशी थे, जो बहुत दिन नहीं चल सके; बाकी तीन कारखाने यूरोप-वालोंके थे। वे भी थोड़े ही दिनोंमें टूट गये—यद्यपि उनमें बाहरके सीखे हुए आदमी काम करते थे। १९०६--१९१३ के बीच भारतीयोंने सोलह कारखाने खोले—यद्यपि उन्होंने कारखानोंका दिवाला होते देखा था। उनमेंसे कुछमें जापानके सीखे हुए, कुछमें जर्मनीसे आये हुए और कुछमें इंगलिस्तानमें शिक्षा पाये हुए आदमी काम करते थे। महायुद्ध छिड़ते-छिड़ते केवल दो या तीन कारखाने रह गये; परन्तु किसीको एक पैसा भी लाभ न होता था। तलेगाँव [Talegam] का कारखाना केवल इस बूतेपर काम करता था कि, इसका व्यय पैसा फंड [Paisa Fund] देगा। लाभ करना इसका ध्येय न था।

आज कल २५ से अधिक कारखाने काम कर रहे हैं, जिनमें ७ या ८ फीरोजाबादमें हैं। इनका काम केवल चूड़ियाँ बनाना है। ये बाहरसे काच मँगाकर अपने यहाँ गलाकर चूड़ी बनाते हैं। राजपुरमें देशका कच्चा माल मँगाकर लोग चूड़ी इत्यादि बनाने लगे थे; परन्तु अब वह तरीका छोड़ दिया गया है; और, विदेशसे सोडा, कटनीसे चूना, इलाहाबादके दक्षिणसे बालू और बंगालसे कोयला मँगवा-कर लोग स्वयं काच बनाते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि, काचके कारखानेके लिये फीरोजाबादकीसी हालत उपयुक्त नहीं है। परन्तु ये कारखाने केवल इसलिये चल रहे हैं और कदाचित् लाभके साथ ऐसा कर रहे हैं कि, ये यहाँ बहुत दिनोंसे हैं और इनके अतिरिक्त देशमें और कहीं चूड़ी बनानेका व्यवसाय नहीं होता।

परिभाषा—काच एक अमणिभीय पारदर्शक अथवा अर्द्ध-पारदर्शक सिलिकेटोंका मिश्रण है, जिसका एक भाग सदैव अलकली (Alkali) होता है। सिलिकेट साधा-रणतया सोडियम और पोटासियम तथा सीस धातुके होते हैं। काचपर पानी और अम्लोंका कोई असर नहीं पड़ता। काचका कोई निश्चित गलनाङ्क नहीं होता; पर यह धीरे-धीरे द्रवित होता है और यदि इसी तरह छोड़ दिया जाय, तो मणिभीकरण (Crystallisation) आरम्भ हो जाता है, जिससे वह सफेद पोर्सलनकी नाईं दीखता है। चूने और सीसके सिलिकेट बहुत कठोर होते हैं। काच बहुत बड़े तापक्रमके अन्दर द्रवित रहता है। इन सब गुणोंके कारण काच अत्यन्त उपयोगी माना गया है। काचमें जितना ही अधिक सिलिका होगा, उतना ही वह कठोर, भङ्गुर और अधिक कठिनतासे गलनेवाला होगा। अलकली-की अधिकतासे काच कोमल हो जाता है तथा सरलतासे द्रवित होनेवाला और जल-वायु अथवा रासायनिक प्रतिका-रकोंसे शीघ्र ही खराब हो जाता है। लोहा, मैंगनीज, कोबाल्ट, ताँबा, संखिया, टिन [वङ्ग] इत्यादि रंगीन काच-के बनानेमें प्रयुक्त होते हैं। उपर्युक्त धातुओंके अतिरिक्त कुछ बोरेटस और फासफेट भी सिलिकाके स्थानमें प्रयुक्त होते हैं। ऐसा काच रासायनिक या प्रकाश यन्त्रोंमें काम आता है।

कच्चा माल और उसका निर्माण—सिलिका स्फटिक वा फ़्लिटसे पहले प्राप्त होता था; पर अब यह केवल बहुमूल्य काचके लिये ही प्रयुक्त होता है। आजकल सिलिका (शुद्ध बालू) खानोंसे प्राप्त होता है। इसमें लोहेका अंश नहीं रहना चाहिये, अन्यथा काचमें रंग आ जाता है।

अलकली सोडा या पोटास कार्बोनेट तथा सलफेटके रूपमें व्यवहृत होता है। साधारणतया सलफेट ही प्रयुक्त होता है; क्योंकि यह सस्ता होता है। काचके लिये लेड (सीस) लेड-सलफेटके रूपमें नहीं प्रयुक्त होता। पोटासके लिये पर्ल ऐश (पोटास कार्बोनेट) प्रयुक्त होता है; क्योंकि पोटासियम सलफेट सरलतासे लघ्वीकृत नहीं किया जा सकता।

चूना चाक या चूना-पत्थरसे बनाया जाता है। बहुत अच्छे काचके लिये संगमरमर प्रयुक्त होता है; क्योंकि यह

लोहा इत्यादिसे रहित होता है। साधारण काचके लिये साधारण चूना पत्थर (जिसमें थोड़ा सिलिका और अल्यूमिना भी हों; परन्तु अधिक मैगनीशिया या लोहा न हो) काममें आ सकता है।

सीस, लिथाज या सिन्दूर (Red Lead) के रूपमें प्रयुक्त होता है। इनमें सिन्दूर अधिक पसन्द किया जाता है; क्योंकि इससे निकला आक्सिजन काचको साफ कर देता है; परन्तु इसमें प्रयुक्त होनेके लिये सिन्दूर चाँदी और ताँबेसे रहित होना चाहिये। काचको साफ करनेमें पाइरोलुसाइट, शोरा और जिंक आक्साइड इत्यादि वस्तुएँ भी प्रयुक्त होती हैं।

इन्धन—काच बनानेके लिये इन्धन एक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। जल्दी जलनेवाला, लम्बी ज्वाला पैदा करनेवाला और धूम्र-रहित इन्धन आवश्यक है। प्रायः उत्तम वर्गका कोयला इसमें प्रयुक्त होता है। विदेशोंमें उत्पादक गैस अथवा तेल काममें आता है। इस कामके लिये गैस बहुत उत्तम इन्धन है।

कई प्रकारकी भट्टियाँ काममें लायी जाती हैं। साधारणतया Pot Furnace, Boetins Furnace, Siemen Gas Furnace इत्यादि भट्टियाँ काममें आती हैं। सीमेंस गैस भट्टी बहुत अधिक प्रयुक्त होती है; क्योंकि इसमें सबसे कम खर्च होता है। टंकी भट्टी (जहाँ एक प्रकारका बहुत अधिक सामान बनाना होता है) भी प्रयुक्त होती है। इसमें बहुमूल्य और टूटनेवाले बर्तनोंके स्थानपर एक बड़ा लम्बा चूल्हा और ढालू टंकी (जिसके एक सिरेपर कच्चा माल लगातार छोड़ा जाता है और दूसरे सिरेपर काच निकला करता है) होती है। इस प्रकारकी एक बहुत बड़ी भट्टी काचकी चादर बनानेके लिये बिजोईमें है। काच बनानेके पात्र बहुत ही सावधानीसे और बहुत ही शुद्ध द्रव्योंसे तैयार किये जाते हैं। भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे इस बातका कष्ट था; क्योंकि ये पात्र बाहरसे मँगाये जाते थे। प्रथम तो ये पात्र इस देशमें बनते ही न थे और यदि बनते भी थे, तो बहुत निम्न कोटिके होते थे। हर्षकी बात है कि, इस देशमें भी अब अच्छे-अच्छे पात्र बनने लगे हैं।

निर्माण—काच बनानेकी विधि संक्षेपमें यह है—महीन पिसे हुए कच्चे मालको सुमिश्रित कर पात्रोंमें डालते हैं। इसके साथ थोड़ा पिसा हुआ काच भी (जिसे कुलेट कहते हैं) मिला देते हैं। यह मिश्रण पहले स्वयं द्रवित हो जाता है; फिर शेष कच्चे मालको गलानेमें विशेष सहायता देता है। इस प्रकार अल्प मात्रामें बार-बार तबतक डाला जाता है, जब तक पात्र भर न जाय। इसके पश्चात् आरसेनियस आक्साइडके सदृश वाष्पशील पदार्थ डाले जाते हैं, जो काचको साफ करनेमें प्रयुक्त होते है। गलते समय अधिकांश गैस, गन्धक और कार्बनके आक्साइड और अक्सिजन निकलते हैं, जिससे सारे पदार्थ मिश्रित हो जाते हैं। जब काच शान्त भावसे द्रवित होने लगता है, तब ताप बढ़ा दिया जाता है और द्रव काच थोड़े समयके लिये स्थिर होनेको छोड़ दिया जाता है। इससे वायुके बुलबुले नहीं रहने पाते और न पिघलनेवाले कण नीचे बैठ जाते हैं। इस विधिको "संशोधन" कहते हैं।

फिर काच कुछ ठंढा कर लिया जाता है, ताकि उसकी तरलता कुछ कम हो जाय और वह फूँकनेके काममें आ सके।

काच भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं; जैसे—प्लेट काच, क्राउन काच, फ्लिंट काच, गवाक्ष काच इत्यादि।

प्लेट और गवाक्ष काच पहले विभिन्न विधियोंसे बनाये जाते थे; पर अब वे एक ही विधिसे बनाये जाते हैं। प्लेट काचके बनानेमें बेलनसे उसे दबाया जाता था। इच्छानुसार मोटाई रखनेके लिये समयका अन्तर रखना पड़ता था। यदि बहुत पतला काच बनाना हुआ, तो द्रव काचको मेजपर छोड़नेके बाद शीघ्र ही बेलनसे दबाया

जाता था। यदि मोटा काच बनाना हुआ, तो थोड़ा ठंडा होनेके बाद काचपर बेलन चलाया जाता है। गवाक्ष काच फूँककर एक बड़ा गोला बनाकर खड़ा बीचसे काट दिया जाता है और नर्म-ही-नर्म दबा दिया जाता है, ताकि सीधा हो जाय; परन्तु आज कल ये दोनों रीतियाँ प्रयोगमें नहीं आतीं। एक नवीन रीति टंकी भट्टी (जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं) के दूसरे भागमें एक बड़ा लोहेका टुकड़ा (जिसमें कीलें लगी होती हैं) मशीन द्वारा चलाया जाता है (ऊपरसे नीचेको लाया जाता है)। यह कीलदार हिस्सा द्रव काचमें डुबोया जाता है। ऐसा करनेसे काच उन कीलोंमें लग जाता है और जब वह ऊपर उठा रहता है, तब वह बराबर उतनी चौड़ाईमें एक चादरके रूपमें उठता है। यह चादर ऐसबेस्टस बेलनोंके बीच-में होकर भेजी जाती है, ताकि वह एकसी मोटी या पतली होती जाय। कुछ ऊपर ले जाकर उसपर एक लोहेके टुकड़ेसे चौड़ाईमें एक रेखा कर देते हैं। तीसरी मंजिलपर जाकर ये टुकड़े तोड़ दिये जाते हैं; और, गाड़ीमें भर-भरकर नीचे भेज दिये जाते हैं, जहाँ वे हीरेकी कलमसे (जिस नापके काचके टुकड़ेकी आवश्यकता होती है) काट लिये जाते हैं।

दूसरी विधि है फूँकना—इस विधिसे पानी पीनेके गिलास, बोतल, चिमनी, दवात, बाल्ब इत्यादि वस्तुएँ बनायी जाती हैं। काचकी इन वस्तुओंको अकस्मात् ठंडा न करके धीरे-धीरे ठंडा किया जाता है, ताकि वे शीघ्र नहीं टूटें।

ठंडा करनेकी इस क्रियाको उपचार करना (अनीलिंग—Annealing) कहते हैं। यदि यह उपचार न किया जाय, तो काच गर्म करनेसे शीघ्र टूट जाता है। तश्तरी, कटोर, बटन, पेपर वेट, इत्यादि वस्तुएँ दबाकर बनायी जाती हैं।

रासायनिक काचमें आनेवाली वस्तुएँ बहुत स्वच्छ और अच्छे काचसे बनायी जाती हैं। इनमें कुछ विशेष वस्तुएँ (जो केवल गर्म करनेके काममें आती हैं) विशेष प्रकारके काचसे बनायी जाती हैं।

धातुओंके आक्साइड मिलनेसे रंगीन काच बनता है। फेरस आक्साइड, क्रोमिक आक्साइड इत्यादिसे हरा काच, गंधक या कार्बोनिक पदार्थोंसे पीला या अम्बर रंग, सिरीनियमके साथ प्रयोग करनेसे नारंगी रंग, कोबाल्ट आक्साइडसे नीला रंग और सोना या ताँबा धातुसे लाल रंगका काच प्राप्त होता है। भारतमें काचके जो सामान बाहरसे आये हैं, उनकी सारिणी नीचे दी जाती है—

काच और काचके सामान

देशका नाम	१९२५-२६	१९२७-२८	१९२९-३०	वस्तुका नाम
ब्रिटेन	९५४९	२६९००	६६९५६	चूड़ियाँ
अन्य देश	१००९४४७७	८९२५०८५	८४५६२१३	
ब्रिटेन	१६८१७	७९५४	५२०२	मूँग और
अन्य देश	३६३२,१७१	२५५०९६	३०५५९०४	नकली हीरे
ब्रिटेन	६४७१४४	४२६८०८	७१५४९२	सोडावाटर
अन्य देश	७०२६२५	७८२४०६	८२९५९५	बोतल
ब्रिटेन	११७६८१२	८०३९५८	११०२७८५	शीशी और
अन्य देश	२५९२३००	२४९७२१०	२८४६७३५	बोतल इत्यादि
ब्रिटेन	३३१४२	५९०५२	४०६२४	फनेल (टीप), ग्लोब और और लैम्प
अन्य देश	१५०२०५०	२१६०९२५	२०६५७४९	या लैम्पके काचके हिस्से

देशका नाम	१९२५-२६	१९२७-२८	१९२९-३०	वस्तुका नाम
ब्रिटेन	६६००८	३७९४१	३४५३५	साइंटिफिक
अन्य देश	२०२९०९	१३४५९४	९९०५४	काचका माल
ब्रिटेन	९८०३८२	८५१२१८	५०३१०८	चादर और
अन्य देश	१९३७२४१	२१३४९२२	२५९४२८७	पट्ट काच
ब्रिटेन	८९३७८	६६७७३	९२८२६	टेबुल वेट
अन्य देश	८६९०८०	८३५३२५	१२३५७४०	
ब्रिटेन	४६०५९६	६०५५०१	५४२७०९	काचके अन्य सामान
अन्य देश	३८८२७०७	३०००९००	२४४८९२१	

यह, ऊपर दी हुई, सारिणी स्पष्टतया बताती है कि, भारतवर्षमें अब भी दो करोड़से अधिकका, काचका, सामान बाहरसे आता है। अतएव अभी भी नैनीके काचके कारखानेकी तरह अनेक कारखाने, लाभके साथ, खोले जा सकते हैं।

भारतवर्षमें काचके अनेक कारखाने हैं। काच बनानेके लिये कच्चा माल सरलतासे हर एक स्थानपर मिलता है। बालू यद्यपि अनेक स्थानोंपर प्राप्त होता है; तथापि दोके सिवा भारतके सब कारखाने इलाहाबादके दक्खिनके पहाड़ी लोघरा और बारगढ़से लेते हैं। चूना अनेक स्थानोंपर मिलता है। पर सोडा ऐश बाहरसे ही मँगाया जाता है। अब रहा कोयला, जो काचके कारखानेकी एक बड़ी और आवश्यक वस्तु है। यह बंगाल और बिहारसे आता है और इसका व्यय दूरीके हिसाबसे बढ़ता जाता है। इन सब बातोंको ध्यानमें रखते हुए काचके कारखानेके लिये सबसे अच्छा स्थान प्रयागके समीप हो सकता है, जहाँ सौभाग्यसे "नैनी ग्लास वर्क्स" स्थित है।

गन्ना और शक्कर

बा० रामरत्नपाल संघी एफ० आई० सी० एस०, एफ० एस० टी० ए०

ऐतिहासिक—गन्ना या ईख घासकी जातिका एक पौधा है। गेहूँ, धान, सेंठा, बांस, नरकुल आदि इसी जातिके पौधे हैं। वनस्पति-शास्त्रज्ञ ईखको Andropogoene गोत्र और Sacharum वंशका पौधा बतलाते हैं। इसका लैटिन नाम Sacharum Officinarum है। भारतवर्ष गन्नेकी पैदाइशका आदि स्थान माना जाता है। आर्य्योंकी सबसे आदिम पुस्तक (वेद) की निम्न-लिखित ऋचासे भी यह बात सिद्ध होती है —

"परित्वा परि तन्तु ने क्षुणा गाम विद्विषे
यथा मां कामिन्य सो यथा मन्ना पगा असः।"

पौराणिक मतसे भगवान विश्वामित्रने इसको, महाराज त्रिशङ्कुके भूतल-स्थित स्वर्गके लिये, बनाया था। हमारे प्राचीन चिकित्सा-ग्रन्थों (चरक और सुश्रुत-संहिताओं) में भी ईखके गुणोंका वर्णन है। कुछ भी हो, भारतवासी शक्करका व्यवसाय और व्यवहार उस समयमें करते हैं, जब कि, संसारकी अधिकांश जातियाँ अर्द्ध सभ्य और बर्बर अवस्थामें थीं। सबसे पहले अरब व्यापारी ईखको इस देशसे ले गये और उन्होंने इसे रोम सागरके किनारे आबाद

किया। यूरोपमें पहले पहल ईखका आविर्भाव स्पेनमें हुआ और महात्मा ईसाके जन्मसे कई शताब्दियोंके पश्चात् यूरोपियन जातियाँ ईखसे परिचित हुईं।

ईखकी किस्में--ईख अनेक प्रकारकी होती है। आधे इंचसे लेकर तीन इंच तकके व्यासका मोटा और एक फुटसे बीस फीट तकका लम्बा गन्ना पाया जाता है। इसकी पोर चार इंचसे दस इंच तक लम्बी होती है। कभी अस्सी अस्सी पोरों तकके गन्ने भी पाये जाते हैं। मुख्यतया इसके दो भेद किये जा सकते हैं--ईख या ऊख और पौंडा ईख पतली होती है और पौंडा मोटा। भारतमें ईखकी किस्मोंमें रेवड़ा, हेमजा मंगा, सरौती, कुसवार, खेठा, मेरठी और मोमचा आदि हैं। पौंडोंमें लाल गन्ना, सफेद गन्ना, धारीदार, काला आदि हैं।

ये गन्ने ज्यादातर पैदाइशकी जगहोंके नामसे मशहूर होते हैं; जैसे--लाल मुरादाबाद, सफेद मुरादाबाद, लाल बरेली, काला सहारनपुर, सफेद शाहजहाँपुर, पीला लूसियाना, धारीदार लूसियाना, सफेद आसाम, नैनीताल थून, विलाई पौंडा, गोरखपुरी लाल गेंडा, बम्बई पौंडा, कजलो आदि आदि।

अभी हालमें पिछले ३० या ४० वर्षोंमें हमारे यहाँ मोरिशस, जावा आदिसे अनेक प्रकारके गन्ने आये और बोये गये तथा उनमेंसे कुछ अब भी पाये जाते हैं; लेकिन कोयम्बटूरके कृषि-अन्वेषक विभाग द्वारा गन्नेकी जो नयी किस्में आविष्कृत हुई हैं, वे अधिक लाभदायक सिद्ध हुई हैं। आजकल हेमजा और रेवड़ाकी जगह हम कोयम्बटूर २०५ और २१३ का प्रचार अति शीघ्रतासे बढ़ते देख रहे हैं।

ईखकी खेती—भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। इसमें अनेक प्रकारकी भूमियाँ मिलती हैं; इसलिये इस देशमें ईखकी खेती अनेक प्रकारसे की जाती है, जिसका वर्णन करना इस छोटेसे लेखके लिये बहुत कठिन है। मामूली तौरपर इस देशमें ईख माघसे चैततक बोयी जाती है। इसकी खेतीकी साधारण रीति यह है—खेतको पचीससे तीस बारतक जुताई करनी चाहिये; क्योंकि अधिक जुताई न करनेसे ईखकी पैदावार खराब होती है। इसके लिये फी एकड़ दो सौ मन गोबर या घूरेकी खाद भी देनी चाहिये या पन्द्रह-बीस मन अंडीकी खली या तीस-चालीस मन महुएकी खली दी जा सकती है। आजकल अमोनियम सल्फेट और सुपर-फास्फेट आदि रासायनिक खादें भी दी जाती हैं। लेकिन इनका व्यवहार किसी विशेषज्ञकी रायसे ही करना चाहिये। खाद पड़ जानेके बाद खेतकी एक बार सिंचाई कर देनी चाहिये और फिर दो-तीन बार, आवश्यकतानुसार, जोत देना चाहिये।

खाद डालनेके एक मास बाद ईख बोयी जाती है। बोने की साधारण रीति यह है – बोनेवाला हलके पीछे-पीछे चलता है और एक-एक डेढ़-डेढ़ बालिश्तकी दूरीपर कूँड़ या पाँहये-में बीज डालता जाता है। ये बीज गन्नेकी दो या तीन पोरोंका होता है, जिसमें कमसे कम तीन अँखुए होने चाहिये। एक एकड़की बुवाईमें करीब पन्द्रह हजार बीजकी आवश्य-कता होती है, जिसका वजन ईखके पतली-मोटी होनेके अनुसार २५ से ३५ मन तक होता है।

खेत बोनेके बाद यदि उसमें काफी तरी न हो, तो एक बार सिंचाई कर देनी चाहिये। आवश्यकतानुसार तीनसे पाँच बार तक, फसल तैयार होने तक, सिंचाई करनी होती है। इसके अलावा गुड़ाई या निकाई समय समयपर भली-भाँति करते रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त पौधोंपर मिट्टी भी चढ़ायी जानी चाहिये, ताकि पौधे बड़े होनेपर वे गिर न जायँ।

ईखकी सिंचाईके लिये खारे जलका व्यवहार न करना चाहिये; क्योंकि यह पौधोंको हानि पहुँचाता है। कूएँ, तालाब या नहरका मीठा पानी ही इसके लिये उपयुक्त है। आजकल नवीन प्रणाली (ट्यूब-वेल)से भी सिंचाई की जाती है। लेकिन ट्यूब वेल बनानेके लिये भी एक विशेषज्ञ-की आवश्यकता है। साधारणतया ईखको खेतमें दससे बारह महीने तक लगते हैं। ईख काटनेके बाद उस खेतको गहरा जोतकर गरमी भर परती छोड़ देनी चाहिये, फिर आश्विनमें इसमें गेहूँ बो सकते हैं। यदि जमीनमें काफी तरी

होती है, तो कहीं-कहीं धान भी बो देते हैं। गेहूँ काटकर ज्वार, बाजरा, कड़बी आदि भी उस खेतमें बोयी जा सकती है, जो भादो तक कट जायगी। फिर इस खेतमें चना बोया जा सकता है और चना काटनेके बाद इस खेतमें यदि सनई आदि कोई हरी खाद दी जाय, तो अत्युत्तम है। इसके बाद फिर खेत ईखकी खेतीके लिये तैयार हो जाता है। अगर खेत मजबूत हुआ, तो कहीं-कहीं ईख काटकर उसकी खुटार भी छोड़ दी जाती है और अगले साल फिर एक फसल तैयार हो जाती है। उक्त प्रकारसे ईखकी पैदावार चार सौ मनसे एक हजार मन फी एकड़ तक आसानीसे हो जाती है। खुटारकी पैदावार इससे प्रायः आधी समझनी चाहिये।

ईखके लिये गरम आबोहवाकी जरूरत है। गरम मुल्कोंमें (जहाँ पानी अच्छा बरसाता है) इसकी खेती भली भाँति हो सकती है। इसकी खेतीके लिये भारी दूमट जमीन अच्छी होती है। मटियार दूमट और बलुही दूमटमें ईख अच्छी होती है; लेकिन मटियार दूमट इसके लिये अधिक उपयोगी होती है।

गन्नेकी अच्छी खेतीके लिये यह भी आवश्यक है कि, उसको दीमक, पशु, कीड़े और बीमारीसे बचाया जाय। दीमकसे बचानेके लिये बीजको नीमकी खलीके घोलमें डुबो देते हैं और दो-तीन घंटे बाद निकाल कर फौरन ही बो देते हैं या तारकोलमें बीजके दोनों सिरोंको एक-एक या दो-दो इंच डुबो कर बो देते हैं या रालको पिघलाकर बीजके सिरोंको एक-एक या दो-दो इंच डुबोकर बो देते हैं।

जंगली पशुओंसे बचानेके लिये खेतके चारो ओर खाईं खोदनी चाहिये या काँटे लगाने चाहिये। चूहे अगर सताते हों, तो रोटी आदिमें संखिया मिलाकर खेतमें डालनेसे मर जाते हैं। कीड़ोंसे बचानेके लिये लोग एक भाग साबुनको दस हिस्से पानीमें उबालते हैं और उसमें बीस हिस्से मिट्टीका तेल मिला देते हैं। इसे चलाते-चलाते बिल्कुल एकरस कर लेते हैं और ठंढा करके रख लेते हैं। व्यवहारके समय इसका एक भाग पन्द्रह भाग पानीमें मिलाकर पिचकारियों द्वारा पौधोंपर छिड़कते हैं।

बेल और उसकी भट्ठी (चित्र न० १)

बीमारियाँ—ईखको अनेक प्रकारकी बीमारियाँ होती हैं, जिनमेंसे मुख्य-मुख्यका वर्णन किया जाता है।

Mosaic—इस बीमारीका अभी तक पूरा पता नहीं चला है। इससे पत्तोंमें सफेद या हरे-पीले चिकत्ते पड़

जाते हैं। पौधोंकी बाढ़ रुक जाती है। इस बीमारीकी कोई दवा अभी तक ज्ञात नहीं हुई है। इस बीमारीसे रस तो सूख जाता है; किन्तु शर्करामें कोई मुख्य रासायनिक परिवर्तन नहीं होता। जब यह बीमारी शुरू होती है, तब खेतको तबाह कर देती है। जिस खेतमें ८०० मन फी एकड़ गन्ना पैदा होता है, इस बीमारीसे उसमें १५० या २०० मनसे अधिक नहीं पैदा होता। अगर शुरू होते ही इसका पता चल जाय, तो जिन ऊखोंको यह बीमारी शुरू हो गयी हो, उन्हें जड़से उखाड़ कर जला डालना चाहिये और फिर बाकी खेतको साबुनके घोलसे तर कर देना चाहिये।

Black Smert-यह भी बड़ी भयानक बीमारी है। इससे ऊखकी पत्ती सूखकर काली हो जाती है और ऐंठकर चाबुकके समान हो जाती है। पत्तोंके ऊपर एक सफेद प्रकारको भभूतसी दिखाई देती है और उसमेंसे कभी-कभी बदबू आती है। ऐसे गन्नोंको भी शीघ्र जला देना चाहिये, नहीं तो इससे गन्नेका खेत खराब हो जाता है।

तूतियाको १ मन पानीमें घोलो और तब उसमें चूनेका पानी मिलाते जाओ; और, इतना पानी मिलाओ कि, यदि घोलमें लोहेका एक साफ टुकड़ा डाला जाय, तो उसपर ताँबा न चढ़े।

शक्कर—जो शक्कर हम खाते हैं, वह कई भिन्न-भिन्न पौधोंसे प्राप्त होती है। यों तो प्रकृति-देवीने अनेक फलों, मेवों, तरकारियों आदिमें शक्करका समावेश किया है; किन्तु मात्रामें न्यून होनेके कारण हम उन सबोंमेंसे शक्कर नहीं प्राप्त कर सकते। मुख्य-मुख्य वस्तुएँ (जिनसे शक्कर प्राप्त होती है) ये हैं—चुकन्दर (Beet) गन्ना, खजूर, ताड़, सौरगम (Sorghum) इत्यादि। रसायन-शास्त्रमें शक्कर कई प्रकारकी होती है—किन्तु मुख्य तीन प्रकार की है (१) Sucrose या इक्षु शर्करा। इसका संकेत क १२ अ २२ ओ ११* ($C_{12}\ H_{22}\ O_{11}$) है। (२) Dextrose या Glucose द्राक्ष-शर्करा, जिसका संकेत क ६ अ १२ ओ ६ ($C_6\ H_{12}\ O_6$) है और तीसरी Leonlose
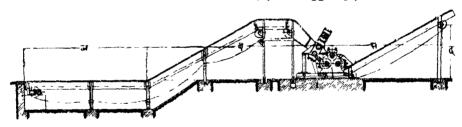
डोंगा (चित्र न० २)

Red Rot— (सारू या सोका)--इस रोगके आक्रमणसे गन्नेका भीतरी भाग लाल हो जाता है। जबतक यह रोग बढ़ता नहीं, तबतक बाहरसे कुछ ज्ञात नहीं होता। रोगके बढ़नेपर गन्ना सूख जाता है। पत्ते भी पीले पड़कर सूखने लगते हैं। यदि बीज बोते समय तूतिया और चूनेके घोलमें बीजको डूबो कर बोया जाय, तो इस बीमारीसे बचनेकी सम्भावना होती है। तूतिया और और चूनेके घोलको इस प्रकार बनाना चाहिये—१ सेर

या Fructose या फल-शर्करा, जिसका संकेत भी क ६ अ १२ ओ ६ ($C_6\ H_{12}\ O_6$) है। जो शक्कर हम खाते हैं, उसमें ९९ प्रतिशत इक्षु-शर्करा रहती है। इक्षु-शर्कराको द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करामें, रासायनिक रीतियोंसे, बहुत आसानीसे परिवर्तित कर सकते हैं; किन्तु द्राक्षा-शर्करा और फल-शर्कराको इक्षु-शर्करामें परिवर्त्तित करना विज्ञानके लिये भी अभीतक असम्भवसा ही रहा है। प्रकृतिमें ही यह शक्ति

*क = कार्बन, अ = अम्लजन, ओ = ओषजन

है कि, वह इन शर्कराओंको ईखके अन्दर इक्षु-शर्करामें परिवर्तित कर देती है। द्राक्ष-शर्करा (जो अधिकतर अंगूर, मुनक्का, अंजीर, शहद इत्यादिमें होती है और जो गन्नेमें भी थोड़ी बहुत पायी जाती है) और फल-शर्करा (जो सेव, सरधा, केला आदिमें होती है) इक्षु-शर्करासे भिन्न होती हैं। प्रकृतिमें द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा प्रायः साथ साथ ही प्राप्त होती हैं। जिन चीजोंमें द्राक्ष-शर्करा होती है, उनमें थोड़ी बहुत फल-शर्करा भी होती है।

घूमते हुए चाकू (चित्र नं० ३)

शक्करके कारखानोंमें इन दोनों शर्कराओंको इक्षु-शर्करासे अलग करना पड़ता है; क्योंकि ये राबमें दाना पड़नेमें बाधक होती हैं। इक्षु-शर्करा किसी भी खनिज अम्लके साथ मिलकर बराबर-बराबर भागमें द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करा उत्पन्न कर देती है; और, फिर वह परिवर्तित शक्कर शीरेके साथ बह जाती है। इक्षु-शर्कराके घोलको देरतक उबालनेसे भी यही फल प्राप्त होता है। इस परिवर्तनको अंग्रेजीमें Inversion कहते हैं। शक्करके कारखानेमें इससे बहुत होशियार रहना पड़ता है। उपर्युक्त स्थूल रासायनिक विवेचन पाठकोंके लिये आगे इस लेखको समझनेमें सहायक होगा।

ईखसे शक्कर बनानेके लिये पहली क्रिया उसका रस निकालना है। प्राचीन समयमें ईखोंको लकड़ीके बेलनोंमें दबाकर रस निकालते और फिर उस रसको गाढ़ा कर लेते थे। यही गाढ़ा किया हुआ रस उस समयकी शक्कर या गुड़ था। समयके परिवर्तनके साथ-साथ रस निकालनेके साधनोंमें भी तरक्की होती गयी। पहले दो लोहेके बेलन और फिर तीन लोहेके बेलन बने; और, अब तो नवीन प्रणालीके अनुसार तीन-तीन बेलनोंके चार-चार पाँच-पाँच जोड़ेतक ऊखकी पेराईमें व्यवहृत होते हैं। लेकिन भारतमें आज भी भारतवर्षकी ईखकी पैदावारका ३से अधिक भाग तीन बेलनोंके एक कोल्हूमें ही पेरकर गुड़के रूपमें व्यवहृत होता है।

गुड़ और राब बनानेकी रीति--ईखको ३ बेलनके एक कोल्हूमें पेरकर रस निकाल लेते हैं; और, फिर उस रसको कड़ाहमें डालकर भिंडी या दुद्धीके पानीसे उसे साफ कर लेते हैं और फिर उसको गाढ़ा कर देते हैं। यह गाढ़ा रस यदि मिट्टीके घड़ों या टीनोंमें भरकर रख दिया जाता है, तो दानेको सूरतम हो जाता है। यही राब कहलाता है। यदि ज्यादा गाढ़ा होकर जम जाता है और छोट कर भेली या लड्डूकी शकलमें बना लिया जाता है, तो गुड़ कहलाता है। इस राब द्वारा शक्कर तैयार हो जाती है। यह संक्षिप्त वर्णन, हमारी प्राचीन रीतिका, हुआ। अब थोड़ासा वर्णन उन नये साधनोंका भी किया जाता है, जिनसे आजकल गुड़ या राब और शक्कर बनती है। प्राचीन तरहके कोल्हूसे और एक कड़ाहमें पकाकर ईखमें जो शर्करा होती है, उसका प्रायः अर्द्धांश ही हमें प्राप्त होता है। शेष अर्द्ध भाग ईखके छिलके और Inversion द्वारा खो जाता है। Inversion

आदि द्वारा जो हानियाँ होती हैं, उनको दूर करनेके लिये समय-समयपर रसको साफ और गाढ़ा करनेमें अनेक प्रकारकी उन्नति की गयी है; और, वर्तमान समयमें दो मुख्य तरीके, देशी तौरपर, खाँड़ बनानेमें व्यवहृत किये जाते हैं। एक पुराना रुहेलखण्ड बेलका तरीका और दूसरा नया भूपाल बेलका तरीका। रुहेलखण्ड बेलमें साधारणतया ५ कड़ाहियाँ होती हैं और भूपाल बेलमें ६ कड़ाहियाँ। ये कड़ाहियाँ एक भट्टीके ऊपर लगी रहती हैं। पहली कड़ाहीको हौज कहते हैं, दूसरीको निखार, तीसरीको
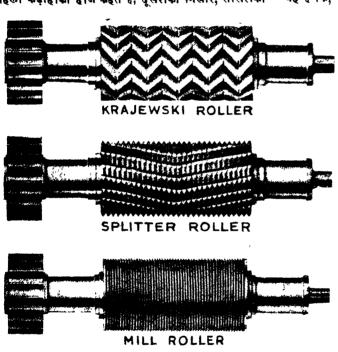
रोलर्स (चित्र न० ४)

खौला, चौथीको माँझा और पाँचवींको पछ्छा। भूपाल बेलमें दो हौज, तीन निखार, एक खौला, एक माँझा और दो पछ्छे होते हैं। हौज और निखार गहरी कड़ाहियाँ हैं। खौला इनसे जरा छोटी और कम गहरी है। माँझा जरा और छोटी और कम गहरी तथा पछ्छे छोटी-छोटी और छिछली कड़ाहियाँ हैं। इन सबका भी असल मतलब यही है कि, रस जलने न पावे और जहाँ तक सम्भव हो, इक्षु-शर्करा द्राक्ष-फल-शर्कराओंमें परिवर्तित न होने पावे।

बेल चलानेका तरीका यह है—पछ्छेमें पौन टीन रस और माँझेमें प्रायः डेढ़ टीन रस डाल दिया जाता है और खौला, निखार तथा हौज, यदि रस पूरा हो, तो भर दिये जाते हैं, नहीं तो खौलेको भर देते हैं और बाकियोंमें चार-चार या पाँच-पाँच टीन रस डाल देते हैं। एक-दो टीन शुद्ध पानी, एक-दो टीन भिंडी या दुल्ला का रस और एक नाद सज्जी और चूनेका पानी रख लेते हैं। देखनेकी असल बात यह है कि, रस शीघ्रातिशीघ्र गर्म हो, ताकि उसमें किसी भाँतिका परिवर्त्तन न होने पावे। दस पन्द्रह मिनटके अन्दर पछ्छेका रस उबालमें आ जाता है और फौरन भिंडी आदि पदार्थोंसे साफ कर दिया जाता है। इतनेमें ही माँझेका रस भी उबालपर आ जाता है और उसकी सफाई की बारी आती है। यदि खौलेमें कुछ देर लगे, तो पछ्छे और माँझेके रसमें थोड़ा ठंढा पानी मिलाकर उसके उबालको कम कर देते हैं। खौले और निखारका रस तैयार हो जानेपर वह रस माँझे और पछ्छेमें पहुँचता जाता है तथा राब तैयार हो-हो कर कलसियों या टीनोंमें भर-भर कर रखी जाती है। प्रायः आठ टीन रसके लिये एक टीन दुल्ला या भिंडीके रसकी आवश्यकता होती है। इससे कम होनेपर भली भाँति सफाई नहीं होती। भिंडी या दुल्ला तब मिलाना चाहिये, जब रसके ऊपरका मोटा मैला प्रायः फटनेपर आ जाय और फिर निखारे हुए साफ रसमें सज्जी या चूनेके पानीका यथेष्ट व्यवहार करना चाहिये। प्रायः रुहेलखण्ड तरीकेमें भिंडी, सज्जी और चूना—सभी कम व्यवहारमें आते हैं। नतीजा यह होता है कि, कम व्यवहारसे

सफाई पूर्ण रूपसे नहीं होती और चूने या सज्जीके पानीके कम व्यवहारसे राबका दाना कमजोर हो जाता है—यानी इक्षु-शर्करा आंशिक रूपसे द्राक्ष-शर्करा और फल शर्करामें परिवर्त्तित हो जाती है। भोपाल बेलवाले इस ओरसे अधिक सतर्क रहते हैं; क्योंकि खाँ बहादुर सैय्यद मुहम्मद हादीने (जो भोपालके कृषि-विभागके डाइरेक्टर थे) इस तरफ विशेष ध्यान दिया था। हालमें सरकारी शूगर टेकनालाजिस्ट मिस्टर आर० सी० श्रीवास्तवने बिलारी आदिमें देशी तरीकेसे खाँड़ बनानेपर अनेक प्रयोग किये हैं; और, उन्होंने भी इस बातपर पूर्णतया जोर दिया है कि, चूने और सज्जीके पानीका पूरा प्रयोग होना चाहिये। फिर यह राब या तो खाँची तरीकेसे, सेवारके जरियेसे, सफ़ेद चीनीके रूपमें तैयार कर ली जाती है या सेन्ट्रिफ्यूगल मशीनोंके जरियेसे चीनी बना ली जाती है। उक्त दोनों प्रकारोंमेंसे किसी भी प्रकारसे बनी हुई शक्कर पाटे द्वारा धूपमें सुखा ली जाती है। खाँची तरीकेमें जब राबमें पूरी तरहसे दाना पड़ जाता है, तब उसको बोरोंमें भर देते हैं; और फिर, उन बोरोंको एकके ऊपर एक, दस-बारहकी तादाद तक, लाद देते हैं और कभी-कभी उनके ऊपर और भी बोझ रख दिया जाता है। इस तरीकेसे राबका शीरा बोरेके छिद्रोंसे बाहर निकल जाता है और दाना उसके भीतर रह जाता है। दो आदमी द्वारा भी राबके इन बोरोंको पैरोंसे कुचलवा कर शीरा निकाल दिया जाता है। सबसे नीचेवाला बोरा (जिसका शीरा भली भाँति निकल गया है) निकालकर एक हौजमें खाली कर लिया जाता है, जो पक्के चूने आदिका बना होता है। इसी प्रकार एकके बाद दूसरे बोरोंसे जब यह हौज भर जाता है, तब उसके ऊपर सेवार घासकी एक तह रख दी जाती है, जिसके असरसे ऊपरकी चीनीकी तह साफ हो जाती है। यह साफ तह खुरच कर निकाल ली जाती है और फिर दूसरी तहपर सेवार रख दी जाती है। इसी प्रकार सारी चीनी साफ हो जाती है।

पाटा—एक चौरस जमीनका टुकड़ा या तो लीप-पोतकर ठीक कर लिया जाता है या पक्का फर्श बनवा लिया जाता है। उसीपर एक मोटे कपड़ेकी चादर बिछा दी जाती है। कभी-कभी इस चादरके नीचे एक टाट भी होता है। इसीको पाटा कहते हैं। इसपर साफ शक्कर फैला दी जाती है; और, शक्करपर पाँवमें सफेद कपड़ेके पाताबे पहने हुए तथा बैसाखी लिये हुए कुली लोग एक विचित्र प्रकारसे घूमते और चीनीको पैरोंसे मलते जाते हैं। इस प्रकार चीनी सूख जाती है।
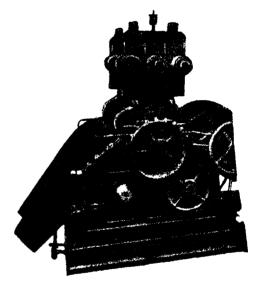
कमानी (चित्र न० ५)

बेलकी भट्ठी भी खास तौरसे बनायी जाती है। यह भट्ठी लम्बी होती है। यह सामनेसे झोंकी जाती है और पीछेसे धुँआ निकालती है। सबसे आगे पड़छा कड़ाही और सबसे पीछे हौज नामकी कड़ाही रहती है; और, सब कड़ाहियाँ जमा दी जाती हैं; लेकिन पड़छा यों ही छोड़ दिया जाता है, ताकि समयानुसार उसको हटाया और फिर रखा जा सके। (देखिये चित्र नं १)

राब बनानेके लिये कलसियोंमें अधिक अच्छे टीन हैं; क्योंकि कलसियोंके फोड़ने आदिसे बहुत राब नुकसान हो जाती है। लेखकके मतानुसार तो टीनोंसे अच्छी चीज, इस कामके लिये, छोटे-छोटे क्रिस्टलाइजर (देखिये

चित्र न० १४) है। इनमें राबका दाना एकसा पड़ता है और किसी प्रकारका नुकसान भी नहीं होता। लेखकने इसका व्यवहार सरकारकी नवाबगंज फैक्टरीमें किया था और वहाँ इनसे अच्छी सफलता भी मिली थी। बेलोंमें ऊख पेरनेके लिये अक्सर वाइन कोल्हू या चाटानुगा कोल्हू व्यवहृत होता है। इसमें मजबूत बैलोंके व्यवहारसे काफी रस निकल आता है। हालमें कहीं-कहीं मैसी कम्पनी (मद्रास) के या विलायतके बने हुए तीन-तीन कोल्हुओंके दो-दो तीन-तीन जोड़े भी बेलोंमें ऊख पेरनेके लिये व्यवहृत होने

तालशक्ति-विधायक यन्त्र (चित्र न० ५ अ)

लगे हैं, जिनको तेल इंजिन द्वारा चलाते हैं। बेलोंसे ईखकी कुल शक्करका ६० से ७० प्रतिशत तक शक्कर निकल आती है और नवीन वैज्ञानिक मिलोंसे ७५ से ९० प्रतिशत तक।

शक्कर बनानेकी आधुनिक प्रणाली यह है कि, ऊखको रेलगाड़ियों या बैलगाड़ियों द्वारा फैक्टरीमें लाया जाता है और उसको आदमियों द्वारा या Crane की सहायतासे Cane Carrier पर डाल दिया जाता है। यह केन कैरियर (डोंगा—देखिये चित्र न० २) लोहे या लकड़ीके तख्तोंका बना रहता है, जो एक लोहेकी जंजीर द्वारा (जो तख्तेकी दोनों तरफ गरारियोंपर लगी रहती है) घूमा करता है; और, इसपर पड़ी हुई ईख इंजिनकी ताकतसे ऊपरकी ओर चढ़ती जाती है तथा खाली पटरे ऊख गिरानेके लिये सामने आते जाते हैं। यह ऊख यहाँसे चलकर अक्सर घूमते हुए चाकुओं (देखिये चित्र न० ३) (Revolving Knives) द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दी जाती है और फिर आगे चलकर स्प्लिटर (Splitter) द्वारा फाड़ दी जाती है (देखिये चित्र न० ४)। जिन फैक्टरियोंमें घूमते हुए चाकू नहीं लगे रहते, वहाँ एक ऐसे कोल्हूका व्यवहार होता है, जो ऊखके टुकड़े भी करता है और फाड़ता भी है। इसको Krajewshi Crusher कहते हैं (देखिये
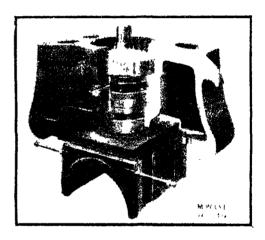
तालशक्ति-विधायक यन्त्र (चित्र न० ५ ब)

चित्र नं० ४। यह क्रशर या स्प्लिटर दो ही बेलनोंके होते हैं, लेकिन इन दोनोंके दातुओंमें फरक होता है, जैसा कि, चित्र देखनेसे ज्ञात होगा। इन बेलनोंसे निकल कर कटी और फटी हुई ऊख तीन-तीन बेलनोंके अनेक जोड़ोंमेंसे गुजरती है। मामूली तौरसे अच्छी मिलमें चार पाँच जोड़े इन कोल्हुओंके होते हैं; किन्तु कहीं-कहीं छः, सात या इससे भी अधिक हैं। इन कोल्हुओं (mills) के दातुओंमें प्रभेद होता है। पहली मिलमें अक्सर मोटे दांत होते हैं और अन्तिममें छोटे।

वे मिलें बड़े-बड़े इंजिनों द्वारा चलायी जाती हैं और

इनपर कमानियों (Toggles) द्वारा या Hydraulic (तरल) शक्ति द्वारा परिमित बोझ दिया जाता है, ताकि कोल्हुओंपर कोई जरब न आवे और ऊख भी भली भांति पिस जाय। (देखिये चित्र नं० ५ अ और ५ ब) पहली और दूसरी मिलसे निकलनेके बाद ऊखमें बहुत कम तरी रह जाती है। इसलिये ऊपरसे पानी देकर उसे भिँगोया जाता है और फिर इस भिगोँयी हुई ऊखको अगले कोल्हूमें पेर कर रस निकालते हैं। चूँकि हर कोल्हूमें सादा पानी देनेसे पानीकी मात्रा बहुत बढ़ जायगी; इसलिये पानी दिया हुआ पतला रस ईखको भिँगोनेके काममें लाते हैं और केवल अन्तिम कोल्हूमें ही पानीका व्यवहार करते हैं। इस प्रकार ६० से ९६ प्रतिशत तक ऊखकी शर्करा रसमें आ जाती है। रस निकालनेके बाद ऊखका जो छिलका या सिट्ठा बच जाता है, उसे भट्ठियोंमें जलाकर वाष्प उठाते हैं, जिसकी शक्तिसे इंजिन आदि चलते हैं। सब कोल्हूओंका सम्मिलित रस बारीक जाली द्वारा छनकर साफ करनेके लिये भेज दिया जाता है। साफ करनेकी अनेक रीतियाँ हैं; किन्तु मुख्य तीन हैं—1. Defecation या केवल चूनेका प्रयोग। 2. Sulphitation या चूने और गंधकका प्रयोग। 3. Carbonatation या चूने और चूनेके पत्थरके धुएँका प्रयोग।

(1) Defecation—इसमें रसको चूनेके पतले घोल द्वारा साफ किया जाता है। ऊखका रस जब ऊखसे निकलता है, तब प्राकृतिक रूपसे अम्ल (Acid) होता है। चूनेके क्षार द्वारा इस अम्लको मार देते हैं। केवल उतना ही चूना दिया जाता है, जिसमें रस न अम्ल-युक्त ही रहे, न क्षार-युक्त ही। लेकिन बहुत थोड़े क्षारकी ही अधिकता रहती है। इसको पहले जमानेमें तो लिटमस आदि कागजसे (जो अम्लमें लाल और क्षारमें नीले हो जाते हैं) जाँच लेते थे; किन्तु आजकल विज्ञानकी वृद्धिके कारण नये-नये वैज्ञानिक तरीकोंसे जाँचते हैं।

इसकी क्षारता प्रायः ७.५ पी० एच० (7.5 ph) तक रखते

डेफीकेटर (चित्र नं० ६)

है। यह चूनेसे मिलाया हुआ रस बड़े-बड़े कड़ाहोंमें (जिन्हें डेफीकेटर कहते हैं-देखिये चित्र नं० ६) उबाला जाता है और फिर बड़ी-बड़ी टकियोंमें थिरानेके लिये छोड़ दिया जाता है। जब रस थिरा जाता है, तब तैरते हुए पाइप (Float Pipe) द्वारा ऊपरका साफ रस अलग कर लिया जाता है और नीचेका मैला रस छाननेके लिये फिल्टर प्रेसमें भेज दिया जाता है (देखिये चित्र नं० ७)। हुई टोटियों द्वारा गिर जाता तथा मैलेका थक्का फ्रेममें रह जाता है। इस मैलेको बाहर फेंक दिया जाता है और यह अक्सर खादके रूपमें व्यवहृत होता है।

(२) Sulphitation—इस तरीकेमें रसमें इतना चूना मिलाते हैं कि, उसमें क्षारकी काफी मात्रा हो जाती है और फिर इस क्षारको गन्धकके धुएँ (Sulphurous acid gas) SO_2 (ग ओ$_2$)* से मारते हैं तथा
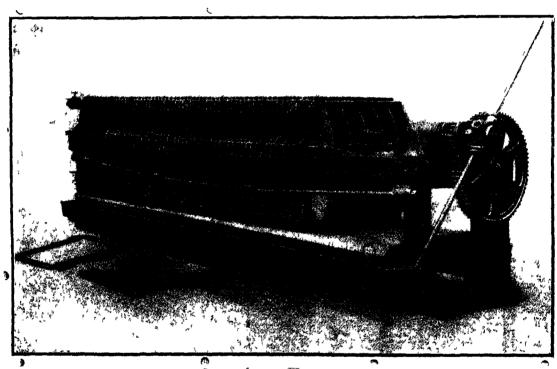
फिल्टर प्रेस (चित्र नं० ७)

यह धारीदार प्लेट (Plate) और फ्रेमके एक समूहका नाम है। इसमें २५ से लेकर ५० तक—कभी-कभी अधिक प्लेटें भी—होती हैं ! प्लेटोंके ऊपर मोटे और मजबूत कपड़े छाननेके लिये चढ़ा दिये जाते हैं और फिर ये सब प्लेट और फ्रेम एक साथ कस दिये जाते हैं। पुनः इनको गरम करके इनमें मैला रस पहुँचाया जाता है। मैला रस कपड़ेसे गुजर कर साफ हो जाता है और यह साफ रस प्लेटमें लगी इसको रासायनिक क्रियाओं द्वारा जाँच कर भिन्न-भिन्न मुल्कोंमें भिन्न-भिन्न रसायनज्ञोंके मतानुसार ६'२ से ७'४ पी० एच० (६.२-७'४ ph) तक रखते हैं और इसको एलिमिनेटरोंमें (देखिये चित्र नं० ८) उबाल लेते हैं। तापकी मात्रा रसायनज्ञोंके मतानुसार ६० से ११० Centigrade (शतांश) तक रखते हैं और फिर इसको भी थिरानेके लिये बड़ी बड़ी टंकियोंमें छोड़ देते हैं। इस

* ग = गन्धक, ओ = ओषजन

तरीकेके अनुसार कहीं-कहीं गन्धकका धुआँ पहले लगा देते हैं और एक चूनेका घोल पीछे मिला देते हैं। लेकिन बात प्रायः एक ही है।

(३) Carbonitation—इस प्रणालीमें कच्चे रसमें चूनेका घोल अधिक मात्रामें मिला देते हैं और फिर उस चूनेके क्षारको चूनेके पत्थरके धुएँ (Carbonic Acid Gas) CO_2 (क० ओ$_2$)* द्वारा मारते हैं। एकदम चूना डालनेके बाद धुआँ देनेसे रसमें फेन बहुत पैदा होता है; इसलिये अब नयी खोजके अनुसार चूना और धुआँ साथ-साथ लगाया जाता है। पहली बार धुआँ लगानेपर रस पर्याप्त मात्रामें ठीक नहीं होता; इसलिये
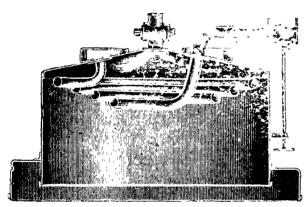
एलीमिनेटर (चित्र न० ८)

एक बार रसको फिल्टर प्रेस (देखिये चित्र नं० ७) द्वारा छान कर फिर छने हुए रसमें थोड़ासा चूनेके पत्थरका धुआँ दिया जाता है। पहली बारमें ६ से १० पी० एच० (9—10 ph) तक और दूसरी बारमें ७ से ८ पी० एच० (7-8 ph) तक, रसायनज्ञोंके मतानुसार, धुआँ आदिका व्यवहार होता है। ऊखके रसमें इतनी लसदार वस्तुएँ होती हैं, जिनके कारण रसको छान नहीं सकते। केवल यही एक प्रणाली है, जिसमें रस छन सकता है। बाकी और दो प्रणालियोंमें केवल रसको थिराकर ही सन्तोष करना पड़ता है। गन्धकका धुआँ या चूनेके पत्थरका धुआँ बन्द ढकनदार टंकियोंमे लगाया जाता है और इन टंकियोंको केवल आधा ही भरा जाता है, ताकि रसमें उफान आनेपर बाहर न निकल जाय।

गन्धकका धुआँ बनानेके लिये गन्धकको एक बन्द भट्ठीमें जलाया जाता है (देखिये चित्र नं० ९) इन भट्ठियोंमें इंजिन द्वारा हवा पहुँचायी जाती है और उसीके जोरसे गन्धक जलता है। चूनेके पत्थरका धुआँ चूनेके पत्थरको कोकके साथ बड़े-बड़े भट्टोंमें जलाकर प्राप्त करते हैं (देखिये चित्र नं० १०)। इन भट्टोंका धुआँ खींचनेके लिये एक इंजिन लगा रहता है, जो ऊपरसे हवा खींचकर भट्टेके अन्दर देता
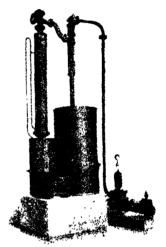
गंधक भट्टी (चित्र न० ९)

हुआ धुआँ खींचता रहता है।

Defecation तरीकेसे रस साफ करनेमें ०.१ से ०.२ तक प्रतिशत चूना लगता है। Sulphitation में ०.३५ से ०.५ तक प्रतिशत चूना और ०० ४ से ०.१ प्रतिशत तक गन्धक लगता है। कार्बोनेटेशनमें ३ से ४ प्रतिशत तक चूनेका पत्थर लगता है; क्योंकि इस पत्थरसे गैस या धुआँ और चूना, दोनों प्राप्त हो जाते हैं।

उक्त किसी भी प्रकारसे साफ किया हुआ रस बन्द कड़ाहोंमें उबाला जाता है। इन कड़ाहोंकी हवा पम्प द्वारा खींच ली जाती है, ताकि कम गरमीमें रस उबले। गरमी

* क = कार्बन

और अम्लसे इक्षु-शर्करा द्राक्ष-शर्करा और फल-शर्करामें परिवर्तित हो जाती है। इसलिये शक्कर मिलका रसायनज्ञ हर वक्त सचेत रहता है कि, ये परिवर्त्तन (Inversion) न होने पावें। इन कड़ाहोंका आविष्कार भी इसी कारण हुआ है। वाष्प (Steam) के खर्चकी कमी करनेके कारण यह कड़ाह दो, तीन या चार तक एक साथ जोड़ दिये जाते हैं; किन्तु अधिकांशतः तीन कड़ाहोंका ही व्यवहार होता है (देखिये चित्र न० ११)। आखिरी कड़ाह ऊपरसे

बड़ा भट्टा और इंजिन (चित्र न० १०)

हवा खींचनेवाले इंजिनके साथ जुड़ा रहता है और इसीके जोरसे सब कड़ाहोंमें रसकी पकाई होती रहती है। पहले कड़ाहके नीचेके भागमें (जिसमें चोवें लगी रहती हैं) वाष्पका प्रवेश होता है। इन चोवोंकी बाहरी तरफ वाष्प और भीतरी तरफ रस होता है। रस जब गर्म होता है, तब इसमेंसे वाष्प निकलता है और यह वाष्प दूसरे कड़ाहके निचले भागमें (जिसमें पहले कड़ाहकी भाँति चोवें लगी रहती हैं) पहुँचाया जाता है और इसी प्रकार दूसरे कड़ाहका वाष्प तीसरे कड़ाहमें जाता है। तीसरे या अन्तिम कड़ाहका वाष्प हवाके साथ पम्प द्वारा आकर्षित होता है और एक बड़े शीतक (वाष्प-तरली-करण यन्त्र—जिसमें पानी हर वक्त पहुँचता रहता है—देखिये चित्र न० १२) में पहुँच कर पानीके रूपमें नीचे गिर जाता है। उक्त क्रियासे रस शीघ्र गाढ़ा हो जाता है और यह गाढ़ा रस इन कड़ाहोंसे निकल कर टंकियोंमें भेज दिया जाता है।
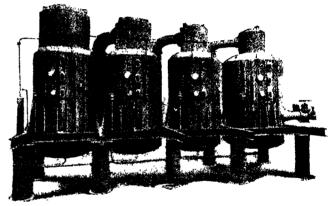
रस मोटा करनेके कड़ाह (चित्र न० ११)

Defecation और Sulphitation से साफ किया हुआ रस तो साधारणतया केवल थिराकर ही व्यवहृत हो जाता है; किन्तु Carbonitation का रस अक्सर फिर छाना जाता है और इस मोटे रसमें गन्धकके धुएँका भी व्यवहार होता है। गन्धकके धुएँमें रंगदार पदार्थोंको हलका और श्वेत करनेकी एक विचित्र शक्ति है; इसी-लिये मोटे रसमें इसका पुनः व्यवहार होता है। अब यह मोटा किया हुआ और साफ रस फिर एक ऐसे बन्द कड़ाहमें पकाया जाता है, जिसकी हवा इंजिन द्वारा निक-लती रहती है। इसकी बनावट भी उसी प्रकार होती है, जैसी पहले लिखी गयी है। फर्क केवल इतना होता है कि, इसमें एक ही कड़ाह होता है और गर्म करनेके

लिये बीचके बदले कहीं-कहीं तांबेके मोटे-मोटे नल होते हैं, जिनमें वाष्प पहुँचाया जाता है। इन कड़ाहोंमें मोटा रस गरम करनेसे एक समय ऐसा आता है कि, उसमें दाना पड़ जाता है और उन दानेको विज्ञ कार्यकर्ता
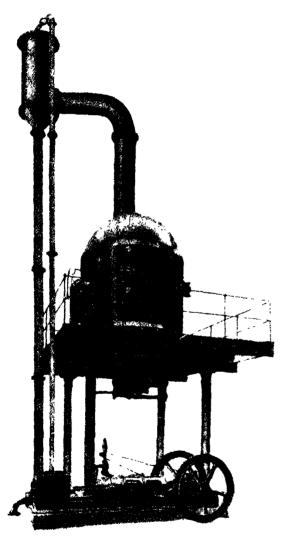
वाष्प-तरलीकरण यन्त्र (चित्र न० १२)

(Pan-man) बढ़ाता जाता है। जब यह शून्य कड़ाह (Vacuum pan) (देखिये चित्र न० १३) पूरा भर जाता है, तब दाने और शीरेका यह सम्मिलित पुञ्ज (राब) नीचे क्रिस्टलाइजरोंमें (देखिये चित्र नं० १४) गिरा दिया जाता है। ये क्रिस्टलाइजर धीरे-धीरे राबको घुमाया करते हैं और उसे शीघ्र ठंढा होनेमें मदद देते हैं। प्रायः ठंढा होनेपर यह राब सेन्ट्रीफ्यूगल्स मशीन (देखिये चित्र न० १५) द्वारा दाने और शीरेमें अलग-अलग कर ली जाती है। यही दाना ड्रायरमें (देखिये चित्र नं० १६) सूखकर शक्करके रूपमें बिकता है। कहीं-कहीं इसे चक्की से पीस लिया जाता है और इसको बाजारमें पिसी हुई शक्कर मिल जाती है। एक ही बारमें शीरेकी सब शक्कर नहीं निकलती; इसलिये उसको पुनः वेकम पैनमें उबाला जाता है और फिर उसका दाना बनाकर चीनी निकाल ली जाती है। यह कार्य्यवाही उस समय तक की जाती है, जब तक मिलका रसायनज्ञ यह नहीं समझ लेता कि, शीरेमें अब निकलने योग्य शक्कर नहीं रह गयी। इसके बाद वह शीरा बड़ी-बड़ी ईंटों या लोहेकी टंकियोंमें भर दिया जाता है और शराब, तम्बाकू आदि बनानेमें काम आता है।

पिछले एक डेढ़ वर्षसे शीरेकी मांगमें बहुत कमी हो गयी है और आजकल शक्कर मिलके मालिक लोग अत्यन्त चिन्तित हैं कि, शीरेका क्या किया जाय। रसायनज्ञ लोग भी इसपर पूर्णतया विचार कर रहे हैं; किन्तु अभी कोई उत्तम मार्ग नहीं सूझ पड़ा। वाष्पके लिये जलाने या अलग जलाकर खाद बनाने या शराब बनाकर पेट्रोलमें मिलाने या मवेशियोंके लिये चारा बनाने आदि बातोंपर विचार हो रहा है; लेकिन समस्या बड़ी कठिन है। शक्करके व्यापारका भविष्य इस समस्याके सुलझनेपर बहुत कुछ निर्भर करता है। देखिये क्या होता है!

Defecation तरीकेसे रस साफ करके जो शक्कर बनती है, वह मैली और पीली होती है और उसमें ९० से ९६ प्रतिशततक इक्षु-शर्करा रहती है। Sulphitation द्वारा और Carbonatation द्वारा जो शक्कर

बनती है, वह स्वच्छ और सफेद होती है और उसमें ९९ से ९९.४ तक इक्षु शर्करा होती है। शीरेको दूसरी और तीसरी बार पकाकर जो शक्कर निकाली जाती है, वह भी हलकी और मैली होती है। द्वितीय बारकी शक्करमें ९७
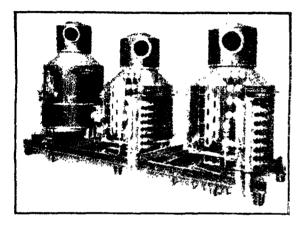
दाना बनानेवाला कड़ाह (चित्र नं० १३)

से ९८.५ प्रतिशत तक इक्षु शर्करा और तीसरी बारकी शक्करमें ९० से ९७ तक इक्षु-शर्करा होती है। Carbonatation द्वारा जो शक्कर बनती है, वह Sulphitation द्वारा बनी हुई शक्करसे भी उत्तम होती है।

उक्त विविध प्रणालियोंसे भारतमें शक्कर तैयार होती है। देशी रीतिसे तीन बेलनके एक कोल्हूमें रस निकालकर जो शक्कर बनायी जाती है, वह सौ मन ऊखमें प्रायः साढ़े पाँच मन तक बैठती है और यही शक्कर आधुनिक वैज्ञानिक कारखानोंमें सौ मन ऊखमें ९से १० मन तक बैठती है। इससे प्रत्यक्ष है कि, देशी तरीकेके कारखानोंमें शक्करकी हानि होती है; किन्तु भारतवर्षकी स्थिति और यहाँके दीन कृषकोंकी दशा कुछ ऐसी है कि, देशी तरीकोंका निकट भविष्यमें बन्द हो जाना असम्भवसा है। अधिकांश किसान इस तरीकेको गृह-कार्य्यकी भाँति व्यवहारमें लाते हैं। उनके बाल बच्चे आदि सब मिलकर ऊखको पेर लेते हैं और ऊखका छिलका सिट्ठा जलाकर पेरा हुआ रस पका लेते हैं। जो गुड़ या राब बनती है, वह वर्ष भर तक उनके खानेके काममें भी आती है और कुछ बेच भी ली जाती है। प्रकृति भी उनकी मदद करती है। ऊखकी फसल प्रायः ऐसे समय तैयार होती है, जब किसानको और कोई कार्य्य नहीं रहता और वह "बैठेसे बेगार" समझ-

क्रिस्टलाइजर (चित्र नं० १४)

कर इस काममें भिड़ जाता है। इसलिये जिस समय तक कोई लाभदायक कार्य्य उनको न मिले, उस समय तक हानिकर होते हुए भी उनकी यह क्रिया जारी रहेगी।

भारतवर्षमें प्रायः ३० लाख एकड़ भूमिपर ईखकी खेती होती है। फिर भी प्रायः ढाई करोड़ मन चीनी प्रति वर्ष विदेशोंसे आती रही है। भारतवर्षमें प्रायः साढ़े पाँच करोड़ मन गुड़ और प्रायः एक करोड़ मन चीनी प्रति वर्ष पैदा होती है।

भारतवर्षकी औसत ऊखकी पैदावार फी एकड़ प्राय पाँच सौ मन और गुड़की पैदावार प्रायः साठ मन फी एकड़ है। विदेशोंसे जब हम उक्त दशाका मुकाबला करते हैं, तब हमें बड़ी निराशा होती है।

जावामें फी एकड़ प्रायः चौदह सौ मन ऊख और मोरिशस तथा क्यूबामें प्रायः सात सौ मन ऊख फी एकड़ पैदा होती है। जावामें प्रायः १६० मन शर्करा फी एकड़ तथा मोरिशस और क्यूबामें प्रायः ६५ मन शर्करा फी एकड़ निकलती है। हमारे यहाँ केवल ६० मन गुड (जिसका अर्थ प्रायः ३५ मन शक्कर है) ही पैदा होता है। फिर हम कैसे व्यापार-संघर्षमें विदेशोंके सामने टिक सकते हैं? नीचे गत पाँच वर्षोंकी ऊखकी पैदावार आदिकी एक तालिका दी जाती है। आशा है, पाठकवर्गके लिये वह यथेष्ट शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक होगी—

सेंट्रीफ्यूगल मशीन (चित्र नं० १४)

	१९२८—'२९	१९२९—'३०	१९३०—'३१	१९३१—'३२	१९३२—'३३
१ भारतमें चीनीका विदेशोंसे आयात (मन)	२५५८४६६०	२८२२६४४८	२७३३०८६६	१५५४२४६६	१०८०२७८६
२ ऊखकी खेतीका क्षेत्रफल (एकड़)	२६७७०००	२६२३०००	२६०२०००	३०७६०००	३४०१०००
३ ऊखकी पैदावार (मन)	८२८०६३०००	८३५८४७०००	९९१०६००००	११६६४३२०००	१३४३०२४०००
४ गुड़की पैदावार (मन)	४८०७६०००	४६५९९०००	६०११५०००	७४८४४०००	८३६१४०००
५ शक्करकी पैदावार (मन)	८०७५३७१	८३६४७८६	६४९४५५०	१२६०६२४०	१७२८००००
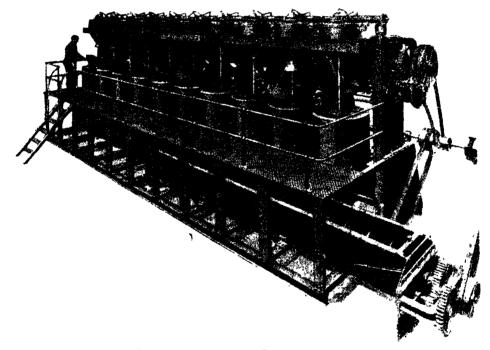
भारतकी वर्तमान ऊखकी पैदावारसे भी यदि नवीन वैज्ञानिक प्रणालीसे चीनी बनायी जाय, तो प्रायः ४० मन फी एकड़ चीनी पैदा हो सकती है और विदेशोंसे जो बेशुमार चीनी इस देशमें आती है, उसका ह्रास हो सकता है।

सन् १९३१से भारत सरकारके टेरिफ बोर्डने विदेशोंसे आनेवाली चीनीपर प्रतिबंधक आयात-कर लगा दिया है और इसलिये गत दो वर्षोंमें भारतमें प्रायः अस्सी नयी शक्कर मिलें खुल गयी हैं और गत वर्ष ३० लाखकी जगह ३४ लाख एकड़में ईख बोयी गयी थी तथा गुड़ और चीनीकी पैदावार बढ़नेके साथ-साथ विदेशोंसे आनेवाली चीनीमें भी कमी हो गयी है; परन्तु यह तरक्की उस समय तक स्थायी न होगी, जब तक हम लोग आयात करके भरोसे ही रहेंगे। किसी देशकी भी सरकार सदाके लिये किसी वस्तुपर प्रतिबंधक आयात कर नहीं लगाये रख सकती है; और, यदि हमने यह सुअवसर खो दिया, तो फिर हम लोगोंको सदा पछताना पड़ेगा।

जहाँतक दृष्टि जाती है, हमारे पूँजीपति इस समय केवल क्षणिक लाभसे मोहित होकर मस्त हैं। उन लोगोंको आगेका कुछ ध्यान नहीं है। इस समय हमारे सामने समस्या यह है कि, हम किस प्रकार, विज्ञानकी सहायतासे, अपने खेतोंकी पैदावार बढ़ावें और अपनी मिलोंसे अधिकसे अधिक चीनी बनाकर लाभ उठावें।

जावा, हवाई आदि देशोंमें बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ स्थापित हैं, जिनमें योग्यतम वैज्ञानिक दिन-रात परिश्रम करके नवीन आविष्कार किया करते हैं, जिससे किसान और फैक्टरीवाले, दोनों लाभ उठाकर अपने देशकी सुख-समृद्धिकी वृद्धि करनेमें सहायक होते हैं। निस्सन्देह वहाँकी भूमि-विभाग-प्रणाली और यहाँकी भूमि विभाग-प्रणालीमें बड़ा भेद है। यहाँ छोटे-छोटे खेत छोटे छोटे किसानों द्वारा जोते-बोये जाते हैं और वहाँ बहुत बड़े-बड़े भू-भाग एक संस्था द्वारा जोते-बोये जाते हैं। इसलिये वहाँ उन्नतिके साधन बहुत आसान हैं और यहाँ कठिन; किन्तु संसारमें विजयी वही होते हैं, जो कठिनाइयोंकी अवहेलना करके अपने गन्तव्य पथपर निर्द्वन्द्व चले जाते हैं। यही समय

ड्रायर—शक्कर सुखानेका यन्त्र (चित्र नं० १६)

है कि, हम लोग कर्तव्यको समझें और पूँजीपति, श्रम-जीवी तथा कृषक मिलकर मनोयोग पूर्वक उद्योग करें, ताकि भारतमें चीनीके व्यापारको यथेष्ट उन्नति हो और हमलोग दूसरे देशोंसे चीनी खरीदनेके इच्छुक न रहें, बल्कि विदेशोंमें यहाँसे चीनी भेजकर अपने 'इक्षु-दण्ड'के आदि जन्म-स्थान होनेके नामको सार्थक करें।

श्रीनिवास रामानुजम्

डा० बदरीनाथप्रसाद एम०एस-सी०, पी-एच० डी० (लिवरपूल), डी०एस-सी० (पेरिस)

श्रीनिवास रामानुजम्का स्थान संसारके उन थोड़े मनुष्योंमें है, जिनकी अलौकिक प्रतिभाकी प्रशंसा और वैज्ञानिक गवेषणाओंकी महत्ता समय-प्रवाहके साथ, उत्तरोत्तर, बढ़ती ही जाती है। एक दरिद्र कुटुम्बमें उत्पन्न हुए बालकने (जो ए० फे० परीक्षामें भी उत्तीर्ण न हो सका और जिसको जीवन निर्वाहके लिये ३०) मासिक वेतनकी क्लार्की करनी पड़ी) अपनी दिव्य शक्ति द्वारा गणितके उन कठिनतम मौलिक प्रश्नोंको, जिनका साधन संसारके सर्वोच्च कोटिके लब्धप्रतिष्ठ गणितज्ञोंको भी कठिन और दुःसाध्य प्रतीत होता था, बातकी बातमें हल करके रख दिया! यह बात सभीको आश्चर्य-चकित किये देती है। हिन्दुस्थानमें कितने ही धुरन्धर और वयोवृद्ध वैज्ञानिकोंके रहते भी जो पहला भारतवासी, ब्रिटिश साम्राज्यकी सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक संस्था, लंडनकी रायल सोसाइटी (Royal Society, London) का फेलो या सदस्य निर्वाचित होनेका स्पृहणीय गौरव प्राप्त कर सका और जो अपने ३२ वर्षके अल्प जीवनमें आधुनिक भारतका सबसे बड़ा गणितज्ञ कहा जानेका यशोभागी हुआ, उस स्वनामधन्य श्रीरामानुजम्के चित्ताकर्षक एवम् उपदेशप्रद जीवन-वृत्तान्तका दिग्दर्शन करानेका प्रयास इस लेखमें किया जायगा।

रामानुजम्का जन्म मद्रास प्रान्तके तंजोर जिलेके रहनेवाले एक साधारण, किंचित् दरिद्र, ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। उनके पिता और दादा कुम्भकोणममें (जो तंजोर जिलेमें एक सुविख्यात नगर है) बजाजोंके यहाँ गुमाश्तेका काम करते थे। उनकी माता पार्श्ववर्त्ती कोयम्बटूर जिलेके इरोड नामक कस्बेकी मुन्सिफीमें काम करनेवाले एक अमीनकी लड़की थीं। २२ दिसम्बर, सन् १८८७ ई० को अपने नानिहाल इरोड नगरमें (जहाँ उनकी माता वहाँके प्रथानुसार प्रथम प्रसवके लिये गयी थी) हमारे चरितनायक श्रीनिवास रामानुजम् आयंगरका जन्म हुआ।

पाँच वर्षकी आयु होनेपर बालक रामानुजम् ब्राह्मण-कुल धर्मानुसार गाँवके पायाल [पाठशाला] में भेजा गया। दो वर्षके अनन्तर पायालसे हटा कर वह कुम्भकोणम् टाउन हाई स्कूलमें दाखिल किया गया। १८९७ मे तंजोर जिले भरकी प्राइमरी परीक्षामे उत्तीर्ण छात्रोमें रामानुजम्का स्थान प्रथम रहा। इस सफलतासे उसकी स्कूलकी फीस माफ हो गयी।

इस अल्पावस्थामें भी बालक रामानुजम् बहुत मौन और विचार-मग्न रहा करता था। इस समय भी कल्पित संख्याओं (Imaginary numbers) तथा तारोंकी दूरीके अनेक प्रश्न पूछकर अपने माता-पिता और शिक्षकों-

श्रीयुत श्रीनिवास रामानुजम् (भारतके सर्व-श्रेष्ठगणितज्ञ और लंदनकी रायल सोसाइटीके प्रथम भारतीय सदस्य या फेलो)

को वह प्रायः चक्करमें डाल दिया करता था। खेल-कूदके लिये अपने स्कूली साथियोंकी मण्डलीमें वह कभी सम्मिलित नहीं होता था। कक्षामें रामानुजम्का स्थान बहुत ऊंचा होनेके कारण उसके साथी प्रायः उसके घरपर आया करते थे; किन्तु न तो उसको, न उसके माता-पिताको ही कोई विशेष इच्छा थी कि, वह बाहर जाय; अतः वह खिड़कीमेंसे ही उनसे थोड़ी बहुत बात कर लेता था।

जब वह द्वितीय फार्म (इधरकी छठी श्रेणी) में आया, तभीसे उसमें यह जाननेका कि, गणितमें कौनसी चीज सबसे महत्त्वका है, एक प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। इस बातकी चर्चा वह प्रायः अपने ऊपरके विद्यार्थियोंसे किया करता था। एक दिनकी बात है कि, शिक्षक महाशय क्लासको यह समझा रहे थे कि, किसी राशिका उसी राशिसे भाग देनेसे भजन-फल एक मिलता है—रामानुजम्ने उठकर तुरत पूछा कि, यदि शून्यको शून्यसे भाग दें, तो क्या, तो भी, भजन-फल एक होगा ? उस समय वह तीसरे फार्ममें पहुंच चुका था और तीनों श्रेणियों (समानान्तर, गुणोत्तर और व्युत्क्रम समानान्तर [Arithmetical, Geometrical, Harmonical Progressions) में पारङ्गत था। चौथे फार्ममें पहुँचनेपर उसने त्रिकोणमिति (trigonometry) का अध्ययन किया। अपने एक पड़ोसी बी० ए०के विद्यार्थीसे वह लोनी (Loney) की त्रिकोणमिति, भाग २ [जो बी० ए० के गणितके कोर्समें है] उधार माँग लाया और थोड़े ही समयमें उसने समूची पुस्तकको समाप्त करके उसके सारे उदाहरण तक हल कर डाले ! फिर तो वही

बी०ए०का विद्यार्थी रामानुजम्के पास, कठिन प्रश्नों को हल करानेके लिये, आने लगा। जब वह पाँचवें फार्ममें था, तब उसने आयलर (Euler)के सुविख्यात ज्या, कोटिज्या (sine, cosine) सम्बन्धी नियमोंको स्वयं, बिना किसीकी सहायताके, स्थापित किया। किन्तु पीछे, जब उसे यह ज्ञात हुआ कि, ये नियम बहुत पहले ही निकाले जा चुके हैं, तब उसने उस कागजको [जिसमें उसका दिया हुआ निर्धारण था] घरके छप्परमें खोंस दिया!

१६०३ में, जब वह छठे फार्म (मैट्रिक क्लास) में था, तब एक दिन उसके एक मित्रने स्थानीय गवर्नमेंट कालेजके पुस्तकालयसे गणितकी एक पुस्तक (Carr's Synopsis of Pure Mathematics) उसके लिये लाकर दी। इस पुस्तकके अध्ययनसे रामानुजम्को बड़ा ही आनन्द मिला। उसमें दिये हुए सूत्रों (Formulae) को वह स्वयं स्थापित करनेकी चेष्टा करने लगा। रामानुजम्के पास उचित सहायक ग्रन्थ न थे; अतः उसके लिये किसी सूत्रको निर्धारित करना मौलिक अन्वेषणके ही तुल्य था। यहींसे रामानुजम्की वास्तविक अनुसन्धान-शक्तिका विकास आरम्भ हुआ।

दिसम्बर १६०३ में इसी कुम्भकोणम् स्कूलसे उसने मद्रास विश्वविद्यालयकी मैट्रिक परीक्षा पास की और आगामी जनवरीमें स्थानीय गवर्नमेंट कालेजमें ए० फे० जूनियरमें दाखिल हो गया। यहाँ उसको एक छात्रवृत्ति भी मिली। इस समय रात-दिन वह गणितकी गवेषणामें तन्मय रहा करता था। चाहे अँग्रेजोंका क्लास हो, चाहे किसी अन्य विषयका, उसे उससे कोई प्रयोजन नहीं, वह तो अपने गणितमें ही लीन रहा करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि, अन्य विषयों (विशेषतः अँग्रेजी) के कमजोर पड़ जानेसे रामानुजम्को ए० फे० सीनियरमें तरक्की न मिल सकी, जिसके फलस्वरूप छात्रवृत्ति भी बन्द हो गयी। निराश होकर रामानुजम् उत्तरकी ओर (विजगापट्टम्) भाग गया; किन्तु कुछ समय पश्चात् फिर कुम्भकोणम् लौटकर कालेजमें प्रविष्ट हो गया। अधिक अनुपस्थितिके कारण लेक्चरोंकी निर्धारित अल्पतम संख्याको वह पूरी न कर सका। कुछ दिनोंके लिये वह पैचयप्पा कालेज, मद्रासमें गया। अन्तः १६०७ में वह प्राइवेट तौरसे ए० फे० की परीक्षामें बैठा; किन्तु उत्तीर्ण न हो सका।

दो वर्षतक रामानुजम् केवल गणितीय अनुसन्धान करता रहा। उसके स्थापित किये हुए नूतन परिणामोंसे दो मोटा-मोटी कापियाँ भर गयीं। १६०६ की गर्मीमें रामानुजमने विवाह किया और तब गृहस्थी चलानेके लिये रोजी तलाश हुई। किन्तु ऐसे व्यक्तिके लिये, जिसने न तो कोई उच्च परीक्षा पास की हो और न जो किसी प्रभावशाली वंशमें जन्मा हो, कौनसी नौकरी रखी था? लाचार इधर-उधरसे टक्कर खाता १६१० में वह त्रिकोयलर पहुँचा। त्रिकोयलरमें (जो दक्षिणी अर्काट जिलेमें एक छोटासा नगर है) श्री वी० रामस्वामी अय्यर (जो इंडियन मैथमेटिकल सोसाइटीके संस्थापक हैं) उस समय डिप्टी कलक्टर थे। उनसे रामानुजमने म्युनिसिपलिटी या किसी छोटे-मोटे तालुकेमें एक क्लार्कीको नौकरीके लिये प्रार्थना की। श्री रामस्वामी अय्यरने जब रामानुजम्के गणितके अनुसन्धानोंको देखा, तब यह विचार कर कि, एक तालुकेमें क्लार्की करनेसे उसकी सारी विलक्षण मानसिक शक्ति नष्ट हो जायगी, उन्होंने रामानुजम्को श्री पी० वी० शेष अय्यरके पास मद्रास भेजा। श्री अय्यर कुम्भकोणम् कालेजमें गणित-शिक्षक रह चुके थे और रामानुजम्से पूर्वसे ही परिचित

थे। कुछ दिनोंतक रामानुजम्‌ने एक अस्थायी पद पर काम किया, कुछ दिनोंतक वह प्राइवेट ट्यूशन करता रहा; किन्तु जब इन सबसे काम नहीं चला, तब श्री अय्यरने दीवान बहादुर आर० रामचन्द्र रावके पास (जो इस समय नेल्लोरमें कलक्टर थे) रामानुजम्‌को भेज दिया।

श्री रामचन्द्र रावने जब रामानुजम्‌के असाधारण मौलिक अनुसन्धानोंको देखा, तब वे चकित हो गये। उन्होंने उसके वहाँ आनेका अभिप्राय पूछा। रामानुजम्‌ने कहा कि, मैं इस आशासे आया हूँ कि, आप इस बातका कुछ प्रबन्ध कर दें कि, मुझे जीविकोपार्जनकी चिन्ता न करनी पड़े और मैं अपना सारा समय गणितके अनुसन्धानमें ही लगा सकूँ। श्रीराव महाशयने इस बातका आश्वासन देकर कि, जबतक कोई अन्य अधिक सन्तोषजनक आर्थिक प्रबन्ध न हो जाय, वे रामानुजम्‌के खर्चेको स्वयं बर्दाश्त करेंगे, उसको फिर मद्रास वापस भेज दिया, जो पुस्तकालय इत्यादिके विचारसे अधिक उपयुक्त स्थान है। यहाँ रामानुजम्‌को छात्रवृत्ति दिलानेके सब प्रयत्न विफल हुए और रामानुजम् किसीपर भारस्वरूप अधिक समय तक रहना नहीं चाहता था। अतः ६ फरवरी १९१२ को मद्रास पोर्टट्रस्ट आफिसमें उसने ३०) मासिक वेतनकी नौकरी कर ली।

यह नौकरी कर लेनेपर भी रामानुजम्‌के गणितीय अनुसन्धानका कार्य अविराम रूपसे चलता रहा। इस बीच उसने कई लेख "जर्नल आफ दि इंडियन मैथमेटिकल सोसाइटी"में छपवाये। श्री रामचन्द्र राव द्वारा उसका परिचय मद्रास पोर्ट ट्रस्टके चेयरमैन सर फ्रान्सिस स्प्रिंगसे भी हो गया, जो पीछे बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ। कतिपय मित्रोंके परामर्शसे (जिनमें कुछ ऐसे भी थे, जो उसके अनुसन्धानोंकी उत्कृष्टताको कुछ संशयात्मक दृष्टिसे देखते थे) रामानुजम् अपने परिणामोंको लगभग १०० की संख्यामें प्रोफेसर जी० एच० हार्डी के पास (जो इंगलैंडके एक सुप्रसिद्ध गणितज्ञ हैं और जो उस समय ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिजमें लेक्चरर थे) एक पत्रके साथ १६ जनवरी सन् १९१३ को भेजा। उस पत्रमें रामानुजम्‌ने लिखा कि, मैंने कभी यूनिवर्सिटीकी उच्च शिक्षा नहीं पायी है, मेरी पढ़ाई स्कूलतक ही है। इन परिणामोंको मैंने निजी उद्योगसे स्थापित किया है। यदि आप उनको किसी वैज्ञानिक पत्रिकामें प्रकाशित होने योग्य समझें, तो छपनेके लिये भेज दें। इस पत्र और रामानुजम्‌के भेजे गणितीय परिणामोंको देखकर मिस्टर हार्डी और अन्य इंगलिश गणितज्ञोंमें एक विचित्र भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने देखा कि, एक तो जिस गणितीय विधिका प्रयोग रामानुजम्‌ने किया था, वह अत्यन्त संक्षिप्त और इतनी मौलिक थी कि, निर्धारण भली भाँति समझमें नहीं आता था और दूसरे उसका विश्लेषण आधुनिक दृष्टिकोणसे अशैथिल्य न था; किन्तु यह होते हुए भी रामानुजम्‌के स्थापित सूत्र प्रायः निर्दोष और अत्यन्त उच्च कोटिके थे। उन लोगोंने तुरत निश्चय किया कि, ऐसे विलक्षण गणितज्ञको अवश्य इंगलैंड बुलाना चाहिये। मिस्टर हार्डीने इस विषयमें पत्र-व्यवहार करना आरम्भ किया। किन्तु रामानुजम्‌के जातिविचारने समुद्रयात्रा करनेमें अड़चन डाली और उसने इंगलैंड जाना अस्वीकार कर दिया!

इसी बीच एक और घटना हुई। भारतीय मेट्रोलाजी (Meteorology) विभागके अध्यक्ष डाक्टर जी० टी० वाकर (जो ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिजमें फेलो और गणित-शिक्षक रह चुके थे) मद्रास पधारे

सर फ्रांसिस स्प्रिगने उनको रामानुजम्के किये अनुसन्धानोंको दिखलाया। फिर क्या था? उन्होंने मद्रास यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रारके पास तुरत एक जोरदार पत्र भेजा। इस पत्रमें रामानुजम्के गवेषणा-कार्यकी प्रशंसा करके डाक्टर वाकरने इस बातका प्रस्ताव किया कि, यूनिवर्सिटी उसके लिये एक समुचित छात्रवृत्तिका प्रबन्ध कर दे, जिसमें रामानुजम् जीविकोपार्जनकी चिन्तासे मुक्त होकर अपना सारा समय केवल अनुसन्धानमें ही लगा सके। यह पत्र काम कर गया। मद्रास यूनिवर्सिटीने उसको ७५) मासिककी एक छात्रवृत्ति, दो वर्षतक, दिये जानेका आदेश कर दिया। जीवनमें प्रथम बार रामानुजम्को आर्थिक चिन्तासे मुक्ति मिली। पहली मई १९१३ को पोर्ट ट्रस्ट की नौकरीसे वह पृथक् हुआ और तदनन्तर जीवनपर्यन्त वह गणितके अनुसन्धानमें ही व्यस्त रहा।

रामानुजम्के इंगलैंड-यात्रा अस्वीकार कर देनेसे वहाँ मिस्टर हार्डीको बड़ी निराशा हुई। पाश्चात्य गणितज्ञोंके मध्यमें कुछ कालतक रहनेकी आवश्यकता और लाभको समझाते हुए वे रामानुजम्के पास बार-बार पत्र लिखते रहे। इसी अवसरमें मद्रास यूनिवर्सिटीने ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिजके गणित-शिक्षक मिस्टर ई० एच० नेविलको, १९१४के आरम्भमें, मद्रास आकर लेक्चर देनेके लिये निमन्त्रित किया। रामानुजमको किसी तरह समझा-बुझाकर अपने साथ लानेके लिये मिस्टर हार्डीने मिस्टर नेविलसे आग्रह किया। जब मिस्टर नेविल मद्रास पहुँचे, उस समय रामानुजम् विलायत जानेके लिये स्वयं करीब-करीब राजी हो चुका था। अब विशेष अड़चन उसकी माताके कारण थी; उसका भी निवारण दैविक रूपसे हुआ। रामानुजमकी माताने एक रातको स्वप्न देखा कि, उसका पुत्र एक बड़े मण्डपमें अनेक यूरोपियन लोगोंके बीचमें बैठा है और उसकी कुल-देवी "नामागिरी" उसको आदेश दे रही है कि, तुम अपने पुत्रकी जीवन-इष्टिकी सिद्धि करनेमें बाधा न दो। झंझट तै हुआ; रामानुजमकी माताने उसको विलायत-यात्रा करनेकी अनुमति दे दी।

अब रुपयेका प्रश्न उठा। वह भी बातकी बातमें हल हो गया। २८ जनवरी १९१४को मिस्टर नेविलने मद्रास यूनिवर्सिटीके पास रामानुजमको विलायत जानेके लिये एक छात्रवृत्ति प्रदान करनेके लिये पत्र लिखा। उस पत्रके कुछ वाक्य उद्धृत करने योग्य हैं। उन्होंने लिखा— "ऐसा प्रतीत होता है कि, मद्रासके एस० रामानुजम् की प्रतिभाका उद्घाटन, गणित-संसारमें, हम लोगोंके समयकी सर्वोत्कृष्ट घटना होगी।... मुझे इस बातमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता है कि, जो उत्तेजना रामानुजमको सर्वोच्च कोटिके पाश्चात्य गणितज्ञोंके सम्पर्कमें आनेसे प्राप्त होगी, उससे वह स्वयं पूर्णतया प्रोत्साहित हो जायगा। ऐसी दशामें गणितके इतिहासमें जो सर्व-श्रेष्ठ लोग हो गये हैं, उनमें उसका भी नाम रहेगा और मद्रासके नगर और यूनिवर्सिटीको रामानुजमको गूढ़ अंधकारसे जगत्व्यापी ख्यातिमें आनेमें, सहायता करनेका अभिमान रहेगा।"

इसका फल यह हुआ कि, मद्रास यूनिवर्सिटीने गवर्नमेंटकी अनुमतिसे एक सप्ताहके भीतर ही यह निश्चय कर दिया कि, आरम्भिक व्यय और सफर खर्च इत्यादिके अतिरिक्त, रामानुजमको २५०

पाउंड (लगभग ३५०० रुपये) वार्षिककी छात्र-वृत्ति, दो वर्षके लिये, मिलेगी। पीछे इस छात्रवृत्ति की अवधि बढ़ाकर पहली अप्रेल १६१६ तक कर दी गयी। इसमेंसे ६०) मासिक अपनी माताको दिये जानेका प्रबन्ध करके, १७ मार्च १६१४ को, मिस्टर नेविलके साथ, रामानुजम् इंगलैंडके लिये रवाना हो गया। अप्रेलमें केम्ब्रिजके ट्रिनिटी कालेजमें वह प्रविष्ट हो गया और वहाँ ६० पाउंड (लगभग ८४० रुपये) की एक और छात्रवृत्ति मिल गयी।

वहाँ एक समस्या आ खड़ी हुई। वह यह कि, रामानुजमको नूतन-कालीन गणितकी शिक्षा देनेके विषयमें क्या किया जाय ? कतिपय विषयोंके ज्ञानमें तो वह संसारमें अद्वितीय था और कतिपय आवश्यक विषयोंका उसे बड़ा अपूर्ण बोध था। मिस्टर हार्डी और मिस्टर लिट्टलउड (Mr Littlewood) के सम्पर्कसे वह शीघ्र हो इन विषयोंमें भी पारंगत हो गया। उसके लेखपर लेख (जो महान् उच्चकोटिके मौलिक परिणामोंसे भरे थे) यूरोपकी सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिकाओंमे प्रकाशित होने लगे। यद्यपि उस समय महायुद्ध होनेके कारण समाचार-संचालनमें अनेक कठिनाइयाँ थीं, तथापि रामानुजमके क्रान्तिकारी अनुसन्धानोंकी ख्याति, सूर्य-रश्मिके समान, सब विघ्न-बाधाओंको दूर करके सारे संसारमें शीघ्रातिशीघ्र फैल गयी। मद्रास यूनिवर्सिटीकी प्रार्थनापर मिस्टर हार्डीने रामानुजमके तत्कालीन गवेषणा-कार्यका एक लम्बा वृत्तान्त, जिसको वे तब भी अधूरा ही समझते थे, मद्रास भेजा। इसमें उन्होंने उसके कार्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। ११ नवम्बर १६१५ को जो पत्र मिस्टर हार्डीने मद्रास यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रारके पास भेजा था, उसमें उन्होंने लिखा था—"निस्सन्देह वह (रामानुजम्) वर्तमान कालका सबसे बड़ा भारतीय गणितज्ञ है।...... जहाँतक मेरी जानकारी है, कुछ अंशोंमें वह (संसारमें) सबसे अद्भुत और उत्कृष्ट गणितज्ञ हैं।"

२८ फरवरी १६१८ को रामानुजमके लिये—और वस्तुतः सारे भारतवर्षके लिये—एक बड़े गौरवकी बात हुई। लंडनकी रायल सोसाइटीका फेलो चुन लिया जाना वैज्ञानिक मण्डलीमें बड़े ही महत्त्वकी बात समझी जाती है। (३० वर्षकी आयुमें (जो इस संस्थाका सदस्य चुने जानेके लिये बहुत छोटी है) रामानुजम् इसके फेलो निर्वाचित हो गये। इसके पहले किसी भारतवासीको यह महान् गौरव प्राप्त नहीं हुआ था। उसी वर्ष १३ अक्टूबरको रामानुजम् ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिजके प्रथम भारत-वासी फेलो निर्वाचित हुए। इस निर्वाचनसे ६ वर्षतक बिना किसी बन्धन या शिक्षा-कार्यके पारितोषिक रूपमें २५० पाउंड वार्षिक पानेके वे अधिकारी हुए। मद्रास यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रार-को इस बातकी सूचना देते हुए मिस्टर हार्डीने लिखा कि "वह (रामानुजम्) ऐसी वैज्ञानिक स्थिति और ख्यातिके साथ भारतवर्ष लौटेगा, जैसी कि, किसी भारतवासीको इसके पूर्व पानेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ; और, मुझे दृढ़ विश्वास है कि, भारत ऐसे रत्नका समुचित सम्मान करेगा।" मिस्टर हार्डीके प्रस्तावपर मद्रास यूनि-वर्सिटीने फिर रामानुजमके लिये मार्ग-व्यय इत्यादि-के अतिरिक्त ५ वर्षके लिये २५० पाउंड वार्षिककी छात्रवृत्ति प्रदान की। मद्रासमें उनके लिये प्रोफेसर लिट्टलहेल्स (Prof. Littlehailes)के प्रस्ताव-पर एक विशेष प्रोफेसरीकी जगह कायम करनेकी भी बात-चीत होने लगी।

किन्तु भावी कुछ दूसरी ही थी। इधर

रामानुजम्की ख्याति दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही थी, उधर क्रूर काल मुँह खोले उनकी ओर, धीरे-धीरे अदृश्य रूपसे. अग्रसर हो रहा था। १९१७ में यह पता चला कि, रामानुजम्को एक असाध्य रोगने पकड़ लिया। लोगोंने उनको हिन्दुस्थान भेजना चाहा; किन्तु उस समयकी समुद्र-यात्रा, सबमेरीन इत्यादिके कारण, खतरेसे खाली नहीं थी और फिर महायुद्धमें चले जानेसे भारतमें अच्छे डाक्टरोंकी अत्यन्त कमी हो गयी थी। अतः लोगोंने उनको इंगलैंड रखकर बड़ी तत्परतासे दवा करानी आरम्भ की। इस प्राण-घातक रोगके चाहे जो कुछ भी अन्य कारण रहे हों; पर इतना निश्चय है कि, रामानुजम्की कुछ आदतोंने—जैसे, अविरत परिश्रम करना, किसी प्रकारका व्यायाम न करना और इंगलैंड जैसे शीतप्रधान देशमें भी अपने प्रान्तीय भोजन-वस्त्रका व्यवहार करते रहना आदि—इस रोगके आक्रमण-को आसान कर दिया। १९१८ के शरत्कालमें उनका स्वास्थ्य कुछ सुधरता हुआ दिखलाई पड़ने लगा। इंगलैंड देश ऐसे रोगसे शीघ्र आरोग्य-लाभ करनेके अनुकूल नहीं है; अतः उनको हिन्दु-स्थान वापस भेजना निश्चय हुआ। रामानुजम्ने इंगलैंड २७ फरवरी १९१९ को छोड़ा और २ अप्रेलको वे मद्रास पहुँचे।

रामानुजम्की दशा उस समय बड़ी शोचनीय थी। उनके शरीरमें अस्थि-पञ्जरके अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया था। उनके शुभचिन्तकोंने सर्वोत्तम चिकित्साका पूरा प्रबन्ध किया। जलवायुके विचारसे कई बार स्थान-परिवर्तन भी कराया गया। १९१९के अन्तमें स्वास्थ्य-वृद्धिके कुछ लक्षण भी दिखलाई देने लगे और लोगोंको आशा होने लगी कि, शायद अब उनका स्वास्थ्य सम्हल जाय। किन्तु विधाताको तो कुछ दूसरा ही मंजूर था। जनवरी १९२०में रोगका अन्तिम प्राण-घातक पुनराक्रमण हुआ। रामानुजम् कुम्भकोणम्से मद्रास लाये गये। कतिपय सहृदय सज्जनोंकी उदारतासे (जिनमें श्री एस० श्रीनिवास आयंगर और राव बहादुर टी० नम्बूमाल चेट्टीके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं) धनकी कोई कमी नहीं थी। बड़ेसे बड़े भारतीय और यूरोपियन डाक्टर बुलाये गये। चिकित्सासे जो कुछ किया जा सकता है, किया गया; किन्तु सब प्रयत्न विफल गये। २६ अप्रेल १९२०को मद्रासके उपकंठी चेटपटमें सूर्यो-दयके समय हमारा भारतका यह गणितज्ञ-सूर्य सदाके लिये अस्त हो गया!

* * *

रामानुजम् चले गये; किन्तु उनकी कीर्त्ति रह गयी। उनकी प्रभाने सारे भारतवर्षको उज्ज्वल कर दिया। अब भी ट्रिनिटी कालेजका रामानुजम्-वाला कमरा छात्रोंके लिये तीर्थ-स्थानके समान हो रहा है।

रामानुजम्का कद मध्यम श्रेणी (लगभग ५ फुट ५ इंच) का था। बीमारीके पहले उनका शरीर किंचित् स्थूल था। मस्तक बड़ा और ललाट ऊँचा था; किन्तु जो सबसे खास बात थी, वह यह थी कि, उनकी आँखें बड़ी तेजस्विनी थीं। विवाहसे उनको कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई।

रामानुजम्के स्वभावमें सादगी हद दर्जेकी थी। वह "विद्या ददाति विनयम्" वाली लोकोक्ति से भी एक पग आगे बढ़े थे; क्योंकि उनमें विनय 'विद्या' आनेके पूर्वसे ही विद्यमान थी और अन्त तक एक समान रही। धन-सञ्चय और आमोद-प्रमोदकी ओर उनकी अभिरुचि कभी हुई ही नहीं।

मद्रास यूनिवर्सिटीके रजिस्ट्रारके पास उन्होंने एक बार लिखा कि, उनकी छात्रवृत्तिमेंसे ५० पाउंड वार्षिक उनके पिता-माताको देकर और उनके निजके खर्चके पश्चात् जो धन बचे, वह दरिद्र विद्यार्थियोंके सहायतार्थ व्यय कर दिया जाय। वह स्वयपाकी थे—इंगलैंडमें भी अपना भोजन स्वयं तैयार करते थे।

रामानुजम् अपने धार्मिक सिद्धान्तोंमें बड़े दृढ़ थे। पुराणोंसे उन्हें बड़ा प्रेम था। रामायण महाभारत-की कथाओंको वे प्रायः सुनने जाते थे और पण्डितोंसे बहुधा तर्क-वितर्क किया करते थे। नामक्कलकी देवी नामागिरीके लिये उन्हें विशेष श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि, स्वप्नमें उन्हें इन्हीं नामागिरी देवी द्वारा प्रेरित गणित-ज्ञान हुआ करता था। एक विचित्र बात यह थी कि, बिस्तरेसे बीच-बीचमें उठकर वे गणित-परिमाणोंको विना प्रमाण, जल्दी-जल्दी, लेख-बद्ध कर लिया करते थे। ऐसे परिणामोंका प्रमाण देनेके लिये पीछे प्रयत्न करते थे। पाठकोंको यह बात जान-कर आश्चर्य होगा कि, इन परिणामोंमें कितने ऐसे हैं, जिनका प्रमाण न तो रामानुजम् दे सके, न अब तक कोई अन्य गणितज्ञ दे सका। उनके चित्तमें बहुत धैर्य्य और शान्ति थी। मरणासन्न होने-पर भी वे अपने अनुसन्धानका कार्य्य करते थे। रामानुजम्के सर्वोत्कृष्ट परिणामोंमें बहुतसे वे हैं, जिनको उन्होंने शय्यापर पड़े रहनेकी दशामें निकाला था।

रामानुजम्ने गणितके किन विभागोंमें गवे-षणा की और उनके अनुसन्धानके कार्य क्या हैं, इस विषयमें हमने कुछ नहीं लिखा है और न उनके यहाँ लिखनेकी आवश्यकता ही है। रामानुजम्के सब छपे लेखोंका संग्रह एक बड़े आकारके ३५५ पृष्ठोंकी पुस्तकमें श्री हार्डी, शेष अय्यर और डा० बी० एम० विलसन (Dr. B. M. Wilson)के सम्पादकत्वमें, १९२७ में, प्रकाशित हुआ है। उनके अध्ययनके लिये बड़े उच्च और विस्तृत नूतन गणितके ज्ञानकी आवश्य-कता होगी। यों तो रामानुजम्ने गणितके बहुतसे विभागोंमें (जैसे, समीकरण-सिद्धान्त (Theory of Equations), सीमित अनुकूल (Definite Integrals), अनन्त श्रेणी (Infinite series) इत्यादि-इत्यादि में) काम किया और उनके सभी कार्य निराले हैं; किन्तु यदि कोई उनके सर्वोत्कृष्ट कार्य देखना चाहे, तो उसको उनके संख्या-सिद्धान्त (Theory of Numbers), विशेषतः विभजन-सिद्धान्त (Theory of partitions), दीर्घवृत्तीय फल (Elliptic-functions) और वितत भिन्न (continued fractions) के सम्बन्धके गवेषणा-कार्यका अध्ययन करना चाहिये।

रामानुजम्की स्मरण-शक्ति बड़ी तीव्र थी। पूर्णाङ्कोंके गणितीय गुणोंके ज्ञानमें उनकी विचित्र पैठ थी। मिस्टर लिट्टलउडने ठीक ही कहा था कि, "प्रत्येक धन पूर्णाङ्क उनके (रामा-नुजम्के) निजी मित्रोंमें था"। उनकी रुग्णा-वस्थामें एक बार मिस्टर हार्डी टैक्सी न० १७२९में चढ़कर उनको देखने गये। मिस्टर हार्डीने परिहासमें कहा कि, १७२९=७×१३×१९ कोई अशुभ संख्या तो नहीं है? रामानुजम्ने तुरत प्रत्युत्तर दिया, "जी नहीं, यह एक बड़ी चित्तरञ्जक संख्या है, यह उन संख्याओंमें सबसे छोटी संख्या है, जो दो भिन्न रूपोंमें दो पूर्णघनके योगमें प्रकट की जा सकती है"। मिस्टर हार्डीने पूछा कि, क्या वे चतुर्थ घातके

लिये अनुरूप प्रश्नके उत्तरसे परिचित हैं? रामानुजम्ने क्षणभर सोचनेके पश्चात् गम्भीरतासे उत्तर दिया—"मुझे इसका कोई स्पष्ट उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। मैं समझता हूं कि, ऐसी संख्या बहुत बड़ी होगी।"*

अन्य गणितज्ञोंकी समझमें यह बात आती ही नहीं कि, कैसे रामानुजम् बड़े-बड़े मौलिक प्रमाणोंको, बिना प्रमाणके, अन्तर्ज्ञानसे, कह दिया करते थे। बात असल यह है कि, रामानुजम् आधुनिक गणितज्ञोंकी तरह किसी टकसालके ढले-ढलाये तो थे नहीं, उनकी गणित शक्ति ईश्वरदत्त थी। इसकी व्याख्या पूर्व संस्कार और पुनर्जन्मके सिद्धान्त ही द्वारा (जिनमें रामानुजम्का अटल विश्वास था) कदाचित् दी जा सके।

रामानुजम्के बहुतसे गवेषणा-कार्य ऐसे हैं, जो अभीतक प्रकाशित नहीं हो सके हैं। उनके ये परिणाम कहीं अति सूत्रवत्, कहीं अस्पष्ट और कहीं बिना प्रमाण इत्यादिके लिखे हैं। उनके संपादनका कार्य मद्रास यूनिवर्सिटीकी प्रार्थनापर लिवरपूल यूनिवर्सिटीके डाक्टर विलसन और बर्मिंघमके प्रोफेसर जी० एन० वाट्सनको सौंपा गया है। प्रो० वाट्सनने अभी हालमें ही रामानुजम्के अप्रकाशित कार्यपर, उपोद्घात-रूपमें, लंडनकी मैथमेटिकल् सोसाइटीके सामने सम्प्रति एक लेक्चर दिया है। इस लेक्चरका विषय रामानुजम्के वे गवेषणा-कार्य हैं, जो वे अपने स्कूली समयसे करते आते थे। उन्होंने इन सबको अपनी हस्तलिखित प्रतिमें लिख डाला था, जो सब मिलाकर ८०० पृष्ठोंसे अधिक है और जो भाग्यवश इस समय मद्रास यूनिवर्सिटीके अधिकारमें है। इसमें लगभग चार हजार ऐसे नियम (Theorems) हैं, जिनको उन्होंने, बिना प्रमाण दिये, लेखबद्ध कर दिया है। लेखकको डाक्टर विलसनसे मालूम हुआ कि, रामानुजम्के ये प्रकाशित कार्य इतने अधिक और महत्त्वके हैं कि, दो गणितज्ञोंके सम्पादन-कार्यमें परिश्रम करनेपर भी इनके प्रकाशनमें पूर्वानुमानित ५ वर्षसे अधिक ही समय लगेगा। वैज्ञानिक पत्रिकाओंमें रामानुजम्के गवेषणा-कार्य, उनके विज्ञापित परिणाम इत्यादिके सम्बन्धमें, अब तक बराबर लेख छपते जा रहे हैं। यूरोपके बहुतसे सुप्रसिद्ध गणितज्ञोंसे इन पङ्क्तियोंके लेखकसे बातचीत हुई थी और उन सबका यही दृढ़ विश्वास है कि, समय-प्रवाहके साथ रामानुजम्के कार्यको अभी और भी महत्त्व और सम्मान मिलेगा।

नेचर [Nature] पत्रिकामें प्रोफेसर हार्डीने रामानुजम्के बारेमें जो मृत्यु विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसका अन्तिम वाक्य यह है—"इस समयसे २० वर्ष पश्चात्, जब कि, रामानुजम्के कृत्यसे उत्पन्न हुए सब गवेषणा-कार्य्य पूरे हो जायँगे, तब सम्भवतः यह (रामानुजम्का कृत्य) आजकी अपेक्षा कहीं अधिक आश्चर्यमय प्रतीत होगा।"

कोटिशः धन्यवाद उन यूरोपियन विद्वानोंको है, जिन्होंने रामानुजम् जैसे अमूल्य रत्नको पहचान कर उसको समुचित रूपसे प्रतिष्ठापात्र बनाया। नहीं तो ऐसे अभागे देशमें (जहाँ अन्य प्रकारकी गुलामीकी अपेक्षा मानसिक गुलामी अधिक है और जहाँ साधारण

* जगद्विख्यात गणितज्ञ आयलर (Euler)—(१७०७-१७८३)—ने प्रथम बार इस प्रश्नका उत्तर दिया था। इस तरहकी सबसे छोटी संख्या ६३५३१८६४७ = १५८४ + ५९४ = १३४४ + १३३४ है।

परीक्षाकी डिगरियोंको छोड़कर वास्तविक उच्च बेचारा रामानुजम् ३०) मासिकको क्लार्की हो मौलिकताकी क़द्र करनेवाले बहुत कम हैं) करता रह जाता ! *

---

* यह लेख निम्नाङ्कित लेखोंके आधारपर लिखा गया है—

१ P. V. Sesha Aiyar and Ramchandra Rao, "Srinivasa Ramanujan", collected papers of Srinivas Ramanujan, edited by G. H. Hardy, P. V. Seshu Aiyar and B. M. Wilson, Cambrid e Univ. Press. (1927), pp. xi-xiv.

२ G. H. Hardy, "Srinivasa Ramanujan", Proceedings of the London Mathematical Society (2), 19 (1921), pp. xl-lviii, also reprinted in the above.

३ G. H. Hardy, " S Ramanujan, F. R. S." **Nature**, June (1920)

४ G. H. Hardy, "Mr. S. Ramanujan's Mathematical work in England", Journal of the Indian Math. Soc., 9 (1917), pp. 30—45.

५ P. V. Seshu Aiyar: "The late Mr. S. Ramanujan, B. A., F. R. S.", **ibid** 12 (1920), pp. 81—86.

६ R. Ramchandra Rao, " In Memoriam S. Ramanujan", Everyman's Review, Vol. 5., Nos. 7, 8 (1920); also reprinted in the above.

७ "Life sketch of Mr. S. Ramanujan, F. R. S.", Journal of the Indian Math. Soc. II (19.9), p. 122.

८ G. N. Watson, "Ramanujan's Note Books," Journal of the London Math. Soc., 6 (1931), pp. 137-153.

आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्र राय

श्रीयुत विश्वनाथ सहाय एम० एस-सी०

आचार्य रायका जन्म सन् १८६१ ई० में खुलना जिलेके रूली कतिपरा नामक ग्राममें हुआ था। यह गाँव अभी भी कपोवाक्षा नदीके तटपर विद्यमान है। इनके पिताका नाम श्रीयुत हरिश्चन्द्र राय था। श्रीयुत हरिश्चन्द्र राय अपने समयके फ़ारसीके अच्छे विद्वानोंमेंसे थे। इन्होंने अपने जिलेमें अंग्रेजीके प्रचारके लिये भी बहुत कुछ किया था। इनका स्थापित किया हुआ मोडल वर्नाकुलर स्कूल (जो अब उन्नति कर हाई स्कूल हो गया है) अभी भी उस ग्राममें विद्यमान है। अबतक आचार्य राय अपनी आय का एक बड़ा भाग इस स्कूलके लिये देते हैं।

आचार्य रायकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिताके ही स्कूलमें हुई थी। इनके पिता इन्हे एक बहुत बड़े विद्वान्के रूपमें देखना चाहते थे; अतएव सन् १८७० ई० में कलकत्तेमें आकर रहने लगे। यहाँ इनका नाम पहले-पहल हेयर स्कूलमें लिखाया गया और वहाँ इन्होंने चार वर्षतक अध्ययन किया। दुर्भाग्यवश ये अपने विद्यार्थि-जीवनके चतुर्थ वर्षके अन्तमें अस्वस्थ हो गये, जिससे इन्हें दो वर्षतक पठन-पाठन स्थगित रखना पड़ा। परन्तु ये चुपचाप बैठनेवाले नहीं थे। इन्हीं दिनों ये अपने पिताके पुस्तकालयकी सभी पुस्तकोंका अध्ययन कर गये। इन्हें गोल्ड-स्मिथ, एडिसन इत्यादि पाश्चात्य लेखकोंसे बड़ा प्रेम था। इतना होते हुए भी ये अपने स्कूलके अन्य पाठोंमें कोई बाधा नहीं आने देते थे। इसके पश्चात् अलबर्ट स्कूलमें पढ़ने लगे। यहाँ आरम्भमें ही इन्होंने अपनी योग्यताका पूर्ण परिचय दिया। इस समय ये ब्रह्म-समाजके केशवचन्द्र सेनके व्याख्यानोंको प्रायः सुना करते थे। इसी कारण ये ब्रह्मसमाजकी ओर कुछ आकर्षितसे हो गये थे। सन् १८८१ ई०तक ये ब्रह्मसमाजके सदस्य थे। प्रायः इसी समय आनन्दमोहन बोस तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके व्याख्यानोंके श्रवण-मननसे इनमें देश-भक्तिका भाव भी भर गया।

सन् १८७९ से १८८२ ई० तक ये मेट्रोपोलीटन इन्स्टीट्यूटके विद्यार्थी रहे। ये कहा करते थे कि, विद्यासागर कालेजमें प्रवेश करनेका मेरा मुख्य उद्देश्य सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके पैरोंके पास बैठनेका था। इसके पश्चात् ये कुछ दिनोंतक प्रेसिडेंसी कालेजके विद्यार्थी थे। आर्थिक संकटोंके कारण इनके पिता (जो इन्हें एक बड़ा विद्वान् बनाना चाहते थे) अपने उद्देश्यको पूरा न कर सके। उच्च शिक्षाकी प्राप्तिके लिये उन्हें इंगलैंड न भेज सके। परन्तु आचार्य राय कब माननेवाले थे? ये चुपचाप गिलक्रिस्ट छात्रवृत्तिके लिये प्रयत्न करने लगे। इस प्रयत्नके फल-स्वरूप सन् १८८२ ई० में आचार्य राय गिलक्रिस्ट स्कालर होकर एडिंबराके लिये रवाना हुए। वहाँ इन्होंने ६ वर्षतक अध्ययन किया। यद्यपि ये अँग्रेजी भाषा तथा इतिहाससे अधिक प्रेम रखते थे, तथापि इनका विचार यह था कि, भारतकी उन्नतिके लिये विज्ञानका अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है। एडिनबरामें ये भौतिक विज्ञान तथा रसायनके दो धुरंधर विद्वानोंके विद्यार्थी बने, जिनके नाम क्रमशः पीटर गाथरी टेट और एलेक्जेंडर क्रम ब्राउन थे।

यद्यपि ये प्रधानतः रसायनके विद्वान् हुए, तो भी इनकी प्रवृत्ति अर्थ-शास्त्र तथा नीतिकी ओर कम न थी। इन्होंने बी० एस-सी० परीक्षा देनेके कुछ दिन पहले "सिपाही-विद्रोहके पहले तथा पीछेका भारत" शीर्षक एक लेख लिखा। इस लेखकी उस समय बड़ी प्रशंसा हुई। प्रिंसिपल सर विलियम मुयरने कहा था कि, "इस लेखमें असाधारण योग्यताके लक्षण दिखलाई देते हैं।" जान ब्राइट

ने लिखा कि, "मुझे खेद है; और, मैं लार्ड डफरिनके वर्मामें किये गये कार्योंको अत्यन्त निन्दित समझता हूँ। यहाँकी जनता इन बातोंसे निरी अनभिज्ञ है; अन्तमें इस प्रकारके कार्य दुःख-जनक होंगे।"

भारत लौटनेपर ये प्रेसिडेंसी कालेज (कलकत्ता)में प्रोफेसर नियुक्त किये गये। इसी समयसे ये अपना सम्पूर्ण समय रासायनिक अनुसन्धानोंमें ही लगाने लगे। इनके अनुसन्धानोंका पूर्ण विवरण प्रधानतः (जो सन् १८९६से १८९८तक किये गये थे) "प्रेसिडेंसी कालेजमें रासायनिक अनुसन्धान"के नामसे प्रकाशित हुए थे।

सन् १९०४में ये बंगाल सरकार द्वारा यूरोपकी प्रधान रासायनिक प्रयोगशालाओंकी देख-भाल करनेके लिये भेजे गये थे। इस यात्रामें ये जहाँ-जहाँ गये, बड़े प्रेमसे इनका स्वागत किया गया।

व्यवसायमें भी इन्होंने कम काम नहीं किया है। बंगाल केमिकल और फर्मास्युटिकल वर्क्स (जिसके कारण भारतीयोंको अनेक औषधियोंके लिये विदेशियोंका मुख देखना नहीं पड़ता) इन्हींके उद्योगका फल है। इनका कथन है कि, किसी भी व्यवसायके लिये बड़े भवन तथा बड़ी रकमकी आवश्यकता नहीं है।

इस बातको इन्होंने प्रत्यक्ष भी कर दिखाया। यह कम्पनी अपर सरकुलर रोड (कलकत्ता)में, एक छोटेसे मकानमें, केवल ८००) रुपयेसे स्थापित की गयी थी। उस समय ये प्रेसिडेंसी कालेजमें प्रोफेसर थे। इनकी मासिक आय उस समय २५०) थी। इन्हें कुछ पैत्रिक ऋण भी चुकाना था। यह सब होते हुए भी अपने कर्त्तव्य-बलके प्रभावसे इन्होंने कम्पनीको चला दिया और आज वह "बंगाल केमिकल और फर्मास्युटिकल वर्क्स" के नामसे विख्यात है। इस काममें इनके प्रधान सहायक डा० अमूल्यचन्द्र बोस, श्री सतीशचन्द्र सिनहा तथा प्रोफेसर चन्द्रभूषण भादुड़ी थे।

इन्हें अपनी मातृभाषासे विशेष प्रेम है। एक बार ये प्राविंशियल लिटररी कान्फ्रेंसके प्रेसिडेंट चुने गये थे, जिसमें इन्होंने "भाषामें विज्ञानका स्थान" नामक एक बड़ा लम्बा तथा प्रभावशाली व्याख्यान दिया था। अंग्रेजी भाषासे भी ये विशेष प्रेम रखते हैं और प्रधान लेखकोंकी पुस्तकोंको अपने अवकाशके समय पढ़ा करते हैं।

सन् १८९५में डा० राय पारदके नाइट्राइटके अनुसन्धानके लिये प्रसिद्ध हुए। सन् १८९६में मि० पेडलरने (जो एशियाटिक सोसाइटीके प्रेसिडेंट थे) कहा था कि, "डा० रायने इस यौगिक को बना कर पारदके यौगिकोंका शून्य स्थान भर दिया। यूरोपके प्रसिद्ध रासायनिकोंमेंसे सर हेनरी रास्को और एम० बरथेलोने पहले पहल इन्हें इस सफलताके लिये बधाइयाँ भेजी थीं। इनके प्रयोगोंका विस्तृत वर्णन लिखना इस स्थानपर असम्भव है।

आचार्य रायने रासायनिक विषयोंपर अबतक सेकड़ों निबन्ध, देश-विदेशके पत्रोंमें, प्रकाशित कर यह सिद्ध कर दिया है कि, भारतवासी आधुनिक विज्ञानके अध्ययनमें किसी पाश्चात्य विद्वान्से कम नहीं हैं। इन्होंने अपने अनेक छात्रोंको तैयार किया है, जो रसायनके गूढ़से गूढ़ विषयोंपर आजकल अन्वेषण कर रहे हैं। इनके छात्रोंमें डा० नीलरत्न धर, डा० रसिकलाल दत्त, डा० घोष, डा० मुकर्जी इत्यादि अनेक प्रमुख रासायनिक हैं। इस "विज्ञानाङ्क"के सम्पादक प्रोफेसर फूलदेवसहाय वर्मा भी डा० रायके ही छात्र हैं; और, उन्हींके निरीक्षणमें पहले-पहल अन्वेषण-कार्य प्रारम्भ किया था।

डा० रायकी जीवनी बिना "हिन्दू रसायनके इतिहास" (Hindu Chemistry) के उल्लेखके पूर्ण नहीं हो सकती। इन्होंने इस कार्यमें बड़ा परिश्रम किया है।

संस्कृतके बड़े-बड़े ग्रन्थोंका अध्ययन किया है। इनके इस कृत्यसे संसारको विदित हो गया है कि, भारत रसायनका कितना ज्ञान रखता था। इस पुस्तकका प्रथम भाग सन् १९०२ ई० में और दूसरा भाग पाँच वर्ष बाद प्रकाशित हुआ था। जर्मनीके एक प्रसिद्ध लेखक (हरमान सेलेंड) ने उस समय कहा था कि, "इस रत्न-समुच्चयमें जो प्रयोग दिये हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि, १३वीं और १४वीं शताब्दियोंके हिन्दू रासायनिक यूरोपियन विद्वानोंसे कहीं बढ़े-चढ़े थे।" डा० राय एक अत्यन्त सरल स्वभावके पुरुष हैं। इन्होंने अपने जीवनका अमूल्य समय प्रधानतः अपने विद्यार्थियोंका आचरण सुधारने और उन्हें ज्ञान-वृद्धिकी ओर झुकानेमें लगाया है। इस कार्यमें इन्हे कहां-तक सफलता मिली है, यह कहना कठिन है; परन्तु ज्ञान-वृद्धिके लिये इन्होंने बहुत कुछ किया है। इनके जीवनका सामान कुछ पुस्तकें, एक विस्तरे, एक पुराने टेबुल और कुछ कुर्सियोंके अतिरिक्त कुछ नहीं है। यद्यपि ये इंगलैंड तीन बार गये हैं; परन्तु फिर भी इनके स्वभावमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है। ये साधारण कपड़े पहनते और बहुत साधारण तरहसे रहते हैं।

आजन्म अविवाहित रहनेके कारण रुपये-पैसेकी इन्हें कोई चिन्ता नहीं रहती। जो कुछ भी कालेजसे या बंगाल केमिकलसे इन्हें मिलता है, उसे ये धनहीन विद्यार्थियों या अन्य शिक्षा और देशके कार्योंमें व्यय कर देते हैं।

इतने सरल आचार-विचारके होते हुए भी इन्होंने पाश्चात्य विद्यासे जितना लाभ उठाया, उतना किसीने भी नहीं उठाया। यद्यपि ये मिल तथा स्पेंसरके बड़े प्रेमी हैं, तथापि ये हृदयसे पूर्ण स्वाधीन-चेता हैं। इन्होंने कभी भी अपनी चित्त-वृत्तिको अपने ऊपर विजय प्राप्त करने नहीं दिया। ये जाति-पाँतिके बड़े कट्टर विरोधी हैं। यद्यपि ये ब्रह्मसमाजी हैं; परन्तु इनका विचार यह नहीं है कि, केवल उसी मन्दिरमें आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। हिन्दू कुरीतियों तथा ब्राह्मोंके मिथ्याचारोंको ये समान रूपसे दूषित समझते हैं।

डा० राय भारतके बड़े सपूतोंमेंसे हैं। इन्होंने भारतका मुख उज्ज्वल करनेके लिये बहुत काम किया है। इनका नाम देशान्तरोंमें फैला हुआ है। भारतमें भी इन्हें लोग बड़े आदर और पूज्य दृष्टिसे देखते हैं। ये अपने विद्यार्थियोंके लिये पूज्य और देशके लिये एक बड़े रत्न हैं। ईश्वर करे कि, भारतका यह नर-रत्न बहुत दिनोंतक जीवित रहकर भारतका यश देश-विदेशोंमें फैलावे और भारतकी आर्थिक, सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धिनी उन्नति-में अधिकाधिक सहायक हो। ❋

सर जगदीशचन्द्र बोस

बा० श्यामनारायण कपूर बी० एस-सी०

सर जगदीशका जन्म ढाका जिलेके विक्रमपुर नामक ग्राममें ३० नवम्बर १८५८ ई० को, एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवारमें, हुआ था। आपके पिताका नाम बाबू भगवानचन्द्र बोस था। उन दिनों भगवानचन्द्रजी फरीदपुर जिलेमें सब-डिविजनल आफिसर थे। बोस महोदयका लालन पालन बड़ी सावधानीसे किया गया था। आपके संस्कारोंको उन्नत बनानेके लिये सदासे ही प्रयत्न होता रहा। आपके पिता अँग्रेजी स्कूलमें आपको शिक्षा देना नहीं चाहते थे; इस लिये देहाती पाठशालामें ही आप भेजे गये।

❋ आचार्य रायका चित्र "इंडियन केमिकल सोसाइटी" लेखमें छपा है। ग० स०।

आपकी माता भी बड़ी सहृदया तथा सरलस्वभावा थीं। आपने मनुष्य मात्र और समस्त जीव-धारियोंसे प्रेम-भाव रखनेका पाठ अपनी मातासे ही पढ़ा है।

आपको देहातकी पाठशालामें भेजनेका मुख्य उद्देश्य था आपको मातृ-भाषाकी शिक्षा देना तथा उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करना। पाठशालाकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेनेके बाद आप कलकत्ते-के सेंट जेवियर कालेजमें भर्ती किये गये। वहांसे आपने बी० ए० की परीक्षा पास की। ग्रेजुएट हो जानेपर आपकी प्रबल इच्छा हुई कि, इंगलैंड जाकर सिविल सर्विसकी परीक्षा पास करूँ। आपने अपने पिताजीके सामने यह प्रस्ताव रखा। आपके पिताजीने भी यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया; पर सिविल सर्विसकी परीक्षाके लिये नहीं; बल्कि विज्ञानकी शिक्षाके लिये। अन्तमें आप विज्ञानका अध्ययन करनेके लिये इंगलैंड भेज दिये गये।

डा० सर जगदीशचन्द्र वसु डी० एस-सी०

यद्यपि आप भारतके एक ग्रेजुएट थे; पर लंडनमें आपका नाम प्रथम वर्षमें ही लिखा गया। मेडिकल कालेजमें आपने नाम लिखाया। भौतिक विज्ञान और रासायनका अध्ययन तो आप कर ही चुके थे—हां, प्राणि विद्या-शास्त्र [Zoology] में आपको अधिक परिश्रम करना पड़ा। चीर फाड़के कमरेकी दुर्गन्धसे आप बहुधा बीमार हो जाया करते थे। इलाज करनेपर भी आप स्वस्थ न रह सके और अन्तमें मजबूर होकर आपको डाक्टरी पढ़नेसे हाथ धोना पड़ा। आप लंडन छोड़कर केम्ब्रिज विश्वविद्यालयमें भर्ती हो गये; और, वहींसे आपने पुनः बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इस परीक्षामें अच्छा स्थान प्राप्त करनेके उपलक्षमें आपको प्रकृति विज्ञान (Natural Science) पढ़नेके लिये एक छात्रवृत्ति भी दी गयी। अगले वर्ष आपने लंडनके विश्वविद्यालयसे बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। लंडनमें रहकर आपने केवल उपाधियाँ प्राप्त करना ही अपना ध्येय नहीं बनाया; बल्कि उस समयके प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके साथ रहकर उनकी कार्य-प्रणालीका भी अध्ययन किया। इससे आपके वैज्ञानिक अनुशीलनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति और भी बलवती हो गयी। लार्ड रेलेकी अध्यक्षतामें भी आपने बहुत कुछ सीखा। उस समय किसीने भी यह नहीं सोचा था कि, यही जगदीश, आगे चल कर, जीव-रहस्यका उद्घाटन करके नवीन ज्ञानके प्रकाशसे समस्त संसारको दंग कर देगा!

जब आप शिक्षा समाप्त कर स्वदेश लौटे, तब आपकी उम्र २५ सालकी थी। विलायतसे बिदा होते समय वहांके

अर्थशास्त्रके प्रसिद्ध प्रोफेसर मिस्टर फोसेटने लार्ड रिपनके नाम एक परिचय-पत्र भी, आपको, दिया था। अतः आप कलकत्तेके प्रेसीडेंसी कालेजमें शीघ्र ही भौतिक विज्ञानके प्रोफेसर नियुक्त कर लिये गये। उस समय इस कालेजमें वैज्ञानिक खोजका उचित प्रबन्ध नहीं था।

जिस समय आप प्रोफेसर नियुक्त किये गये, उस समय बड़े-से-बड़े भारतीय प्रोफेसरोंका वेतन विदेशी प्रोफेसरोंसे दो तिहाई ही मिलता था; पर यह दो तिहाई भी आपको न मिल सका; क्योंकि, आपका पद अभी स्थायी नहीं था। इससे आपके आत्म-सम्मान तथा स्वदेशाभिमानपर बड़ी गहरी चोट आयी। इस नीच बर्तावका विरोध करनेके लिये आपने यह निश्चय कर लिया कि, अपना वेतन मैं उस समयतक नहीं लूंगा, जबतक कि, पूरा-पूरा नहीं मिलेगा। तीन वर्षतक आप वेतनका धन वापस करते रहे। पर तीन वर्षोंके बाद दिन लौटा, प्रिंसिपल तथा शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर महोदयोंने आपको पहचाना। शीघ्र ही आपको स्थायी पदपर नियुक्त किया गया और पिछले तीन वर्षोंका पूरा-पूरा वेतन भी आपको दिया गया।

कालेजमें प्रयोगशालाके अभावके कारण आप निजकी प्रयोगशालामें काम करते थे। लगातार दस वर्षोंके प्रयत्नसे कालेजमें एक छोटी-सी प्रयोगशाला भी आपने खुलवायी।

१८६५ में आपने प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें लेख लिखना आरम्भ किया। बंगालकी एशियाटिक सोसाइटीकी मुख पत्रिका, एलेक्ट्रीशियन तथा एशियाटिक जर्नल नामक पत्रोंमें आपके कितने ही महत्त्वपूर्ण तथा गम्भीर लेख प्रकाशित हुए। आपके कुछ ही लेखोंके प्रकाशनने दुनियामें तहलका-सा मचा दिया। लंडनकी रायल सोसाइटीने उन अन्वेषण पूर्ण लेखोंको खूब ही पसन्द किया; और, अपने मुख-पत्रमें छापा भी। रायल सोसाइटीके पत्रमें जिस लेखकका लेख प्रकाशित होता है, वह अत्यन्त सम्मान की दृष्टिसे देखा जाता है। आपको केवल उक्त सम्माननीय पत्रमें लेख प्रकाशित करानेका ही गौरव नहीं प्राप्त हुआ; बल्कि उस सोसाइटीने पार्लियामेंटकी "विज्ञान-बर्द्धक समिति" वाली सहायतामेंसे आपको उन लेखोंके लिये पुरस्कार भी दिया। इसके दो साल बाद बंगाल सरकारने वैज्ञानिक अन्वेषणकी सुविधाएँ भी दीं। एकाग्र चित्त होकर अब आप वैज्ञानिक अन्वेषण करने लगे। आपने अपने अनुसन्धानोंके बारेमें रायल सोसाइटीको लिखा। आपके आविष्कारोंका पता लंडन विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने भी पाया; और, शीघ्र ही डाक्टर आफ साइंस (D. Sc.) को उपाधिसे आपको विभूषित किया।

इन दिनों बिना तारके जरिये, केवल विद्युच्छक्तिके सहारे, खबरें पहुँचानेका अन्वेषण कितने ही वैज्ञानिक कर रहे थे, जिनमें प्रो० मारकोनी, सर आलिवर लाज तथा डा० बोस महोदयका नाम विशेष उल्लेखनीय है। डा० बोसने ही सर्वप्रथम इस आविष्कारमें सफलता प्राप्त की। १८६५ ई० में आपने कलकत्ता टाउन हालमें तत्कालीन गवर्नरके सामने इस आविष्कारका सफल प्रयोग भी कर दिखलाया।

आरम्भमें तो आप निर्जीव पदार्थोंमें ही काम करते रहे। "बेतारके तार"के आविष्कारका अन्वेषण करते रहने पर आपको यह अनुभव हुआ कि, धातुओंके परमाणुओं पर भी अधिक दबाव पड़नेपर उनमें थकावट आ जाती है और उत्तेजना देनेसे फिर उनकी थकावट दूर हो जाती है। इस अनुभवने आपको पदार्थोंका गूढ़ निरीक्षण करने की ओर प्रेरित किया। बहुत खोज और परिश्रमके बाद आप इस निष्कर्षपर पहुँचे कि, सभी पदार्थ द्रव्य (matter) वाले हैं। इस विषयमें आपने सैकड़ों प्रयोग किये और अन्तमें यह सिद्ध किया कि, संसारके सभी पदार्थ सजीव हैं। आपने एक ऐसे यन्त्रका ईजाद किया, जिसके द्वारा पौधोंकी धड़कन एक काचके टुकड़ेपर आप ही आप अङ्कित हो जाती है। इस यन्त्रके द्वारा यह बात भली भाँति मालूम हो जाती है कि, वनस्पतियोंको भी अन्य जीवोंकी तरह त्वचा और स्नायु होते हैं। आपका कहना

है कि, सारे जीव-धारियोंमें (चाहे वे अण्डज हों या पिण्डज, चाहे स्वेदज हों या उद्भिज्ज) एक ही तरहकी क्रियाएँ होती हैं। और तो और, आपने वनस्पतियोंसे उनकी मृत्यु वेदनाका हाल, अपने आविष्कृत यन्त्र द्वारा, लिखवाया है। इस यन्त्रका नाम है—Resonant Recorder.

डा० जगदीश बोसने इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कार, अभी हालमें ही, किया है। वह है संजीवनी बूटी। इस बूटीके रस द्वारा आपने यह सिद्ध कर दिया है कि, जब मनुष्यकी छातीकी धड़कन एकदम बन्द हो जाय, मनुष्य एकदम मर जाय, तब भी इस बूटीके रस द्वारा उसको पुनर्जीवित किया जा सकता है। सर बोसने वनस्पतियोंसे लेकर मनुष्योंतकपर इसका प्रयोग किया है; और, इसका नतीजा भला ही निकला है। इसके अलावा और भी कितने ही नवीन यन्त्रोंका आपने आविष्कार किया है, जिनसे पौधोंकी सूक्ष्मसे सूक्ष्म बातोंका भी पता सहज में ही चल जाता है।

आपकी वैज्ञानिक खोजोंने आधुनिक संसारमें खलबली-सी मचा दी है। यूरोप और अमेरिका आदिके कितने ही प्रसिद्ध पत्रोंमें आविष्कारके विषयमें आपके कितने ही लेख प्रकाशित हुए हैं। कितने ही विदेशी विद्वानोंने मुक्त कण्ठसे आपकी प्रशंसा की है। इन यन्त्रोंकी सहायतासे वृक्षोंके पानी पीने और भोजन ग्रहण करने के सम्बन्धमें भी महत्त्वपूर्ण खोजें की गयी हैं!

वृक्ष अपना भोजन दो स्थानोंसे प्राप्त करते हैं—हवा और मिट्टीसे। मिट्टीका घुलनेवाला भाग पानीमें घुलकर जड़ों द्वारा वृक्षकी चोटीतक पहुँचता है। घुला भाग वृक्षमें ही रह जाता है; परन्तु पानी पत्तियोंकी राह हवामें उड़ जाता है, जिससे वायुमण्डल नम रहता है। एक बड़े वृक्षसे दिन भरमें लगभग सवा मन पानी उड़कर हवामें पहुँचता है। कितने पेड़ ४५० फीट ऊँचे होते हैं। पेड़ोंको जड़से लेकर चोटीतक सवा मन पानी पहुँचानेमें निश्चय ही बहुत शक्ति लगानी पड़ती है। पेड़ोंमें यह शक्ति कहाँसे आती है, इस प्रश्नको हल करनेके लिये बड़े-बड़े विज्ञान-वेत्ता लगातार कई सौ वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे थे। उनमेंसे कोई भी इसका सन्तोष-जनक उत्तर न ज्ञात कर सका था। डा० बोसने भी अपनी प्रयोगशालामें परीक्षाएँ करना आरम्भ किया और इसको हल करनेमें समर्थ हुए।

हवाके दबावसे पानी केवल ३४ फीटतक ऊपर चढ़ सकता है। अभिसारक (Osmotic) दबावसे पानी घंटे भरमें मुश्किलसे एक इंच ऊपर चढ़ता है। पर पेड़ोंपर जो पानी चढ़ता है, उसका वेग और ऊँचाई कई गुनी अधिक होती है। इसको ठीक-ठीक मालूम करनेके लिये आचार्य बोस महोदयने एक विशेष प्रकारका विद्युद्यन्त्र बनाया और ज्ञात किया कि, अनुकूल परिस्थितिमें पानी घंटे भरमें १०० फीटसे भी अधिक ऊँचा चढ़ सकता है।

बहुतसे वैज्ञानिकोंका विश्वास था कि, जब पत्तियों द्वारा पानी उड़ता है, तब काष्ठ-रन्ध्रोंमें शून्य हो जाता है, जिससे पानी ऊपर खींचने लगता है। साथ ही जड़ोंमे भी एक प्रकारका दबाव होता है, जो पानीको ऊपर ढकेलता है। लोगोंने इस कल्पनाको प्रायः स्वीकार कर लिया। आचार्य महोदयके गवेषणालयमें इस कल्पनाकी परीक्षा की गयी। एक गेंदेके पौधेकी सब पत्तियाँ तोड़ डाली गयीं और तने तथा डालीमें एक ऐसा लेप लगा दिया गया कि, पानीके उड़नेके सब रास्ते बन्द हो गये। "जड़का दबाव" रोकनेके लिये सब जड़ें काट डाली गयीं। तनेका कटा हुआ सिर पानीमें डाल दिया गया और देखा गया कि, ६० फीट प्रति घंटेके वेगसे पानी ऊपर चढ़ने लगा। इससे आपने यह परिणाम

निकाला कि, पौधेके भीतर ही, सेलोंकी किसी स्वतन्त्र क्रियासे, पानी ऊपर चढ़ता है। कोई बाहरी कारण नहीं है।

अब आपने जीवनके छोटेसे छोटेसे परमाणुओंके (जिनके एकत्र होनेसे जीवनका आरम्भ होता है) जीवनके विविध भेदोंका रहस्य क्या है और इसका सम्बन्ध प्रत्येक जीवित सेलसे क्या है आदि विषयोंकी परीक्षा आरम्भ की। यह जाननेके लिये कि, किस प्रकारके सेलोंसे पेड़ोंपर पानी ऊपर चढ़ता है और वे कहाँ रहते हैं, पेड़की बाहरी छालसे लेकर काठके भीतर तकके सेलोंकी जांच करना आवश्यक था। अब यह जानना कि, पेड़की छालके भीतर क्या हो रहा है, एक प्रकारसे असम्भव ही था। पेड़के भीतर होनेवाले परिवर्तनको देखनेके लिये अत्यन्त शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्र भी असमर्थ थे। परन्तु अध्यापक बोस इससे किंचित् मात्र भी निराश न हुए। उन्होंने Magnetic crescograph नामक यन्त्रका निर्माण किया, जिससे इंचका दस लाखवां भाग ही नहीं, करोड़वां भाग भी सहज हीमें नापा जा सकता है। इससे सेल सम्बन्धी ही नहीं, वरन् जीव-परमाणु-सम्बन्धी गतिकी भी परीक्षा की जा सकती है।

सूक्ष्मसे सूक्ष्म परिवर्त्तनकी गतिको नाप लेना तो सम्भव हो गया। अकेले सेलका सम्बन्ध इस यन्त्रसे कैसे किया जाय, यह एक नवीन कठिनाई उपस्थित हुई। इसके लिये भी आपने एक नवीन सूक्ष्म यन्त्रका निर्माण किया। इसमें प्लैटिनम् धातुका एक अत्यन्त बारीक तार एक अत्यन्त सूक्ष्मग्राही विद्युच्छक्ति मापकसे जुड़ा रहता है। प्लैटिनमका तार ऊपरी छालसे लेकर भीतरके ठोस काठतक क्रमसे धीरे-धीरे चुभाया जाता है। शलाका ज्यों ही क्रियाशील सेलको छूती है, त्यों ही विद्युत-संकेत उत्पन्न होकर विद्युच्छक्ति मापकमें स्फुरण पैदा कर देता है, जो अपने आप ही अङ्कित हो जाता है। इस यन्त्रकी सहायतासे यह सिद्ध हुआ कि, इन सेलोंमें भी वैसा ही स्पन्दन होता है, जैसा कि, रक्तवहा नाड़ीमें। सेल बारी-बारीसे फूलते और सिकुड़ते हैं। क्रिया निश्चित क्रमसे ऊपरसे नीचेतक जारी रहती है। प्रत्येक सेल फूलनेपर नीचेसे पानी खींचता है और सिकुड़नेपर ऊपर ठेल देता है। आचार्य बोस महोदयने यह सिद्ध किया कि, पेड़पर पानी चढ़नेका कारण नीचेसे ऊपर तक फैली हुई सेलरूपी पिचकारियोंका नियम-पूर्वक काम करना है। इसके साथ ही साथ यह भी मालूम किया कि, ऊपरी छालके सेलोंमें कोई क्रिया नहीं होती तथा काष्ठकी चारों ओर जो भीतरी छाल होती है, उसमें यह क्रिया अत्यन्त अधिक होती है। अतएव आप इस परिणामपर पहुँचे कि. जड़से चोटीतक फैली हुई भीतरी छालसे ही रस या पानी ऊपर चढ़ता है। काष्ठ-रन्ध्रोंमें जो पानी भरा रहता है, वह इसी भीतरी छालके फूलने और सिकुड़नेके समय उनमें घुस जाता और जमा रहता है।

आपका (Crescograph) क्रेस्कोग्राफ नामक यन्त्र भी बहुत ही उपयोगी है। इसकी सहायतासे सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृद्धिका भी पता चल जाता है। कभी-कभी तो इस यन्त्रके द्वारा इस गतिकी १० लाख गुनी चालतकका पता, भली भाँति, लगाया जा सकता है। इसके अलावा कौन खाद या औषधि किस पौधेके लिये उपयोगी है, इसकी भी जाँच की जा सकती है।

इस यन्त्रसे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तथा आश्चर्यजनक आपका आविष्कृत यन्त्र है—High Magnification crescograph। इस अपूर्व यन्त्रको देख कर सारा संसार दंग हो रहा है। बढ़ियासे बढ़िया सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे हजारों गुना अधिक शक्ति इसमें मौजूद है। इसके द्वारा साधारण पदार्थ भी अपने असली रूपसे १० लाख गुना अधिक बड़ा दिखलाई पड़ता है।

लज्जावती और सूर्यमुखीकी पत्तियां सूर्यकी ओर क्यों झुक जाती और फैल जाती हैं? डा० बोसके अनुसन्धानोंसे पूर्व लोग इस प्रश्नको केवल इतना ही कहकर टाल देते थे कि, सूर्यमुखीका सूर्यकी ओर आकृष्ट होना ही उसकी

प्रकृति है। आपने इस प्रश्नपर बहुत मनन किया। अन्तमें आपने विद्युद्-बलकी सहायता ली; क्योंकि जीव-बिन्दुओंका परिवर्तन अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा नहीं देखा जा सकता। इस विद्युद्-बलके द्वारा आपने जीव-बिन्दुओंका परिवर्तन संसारके सामने रखा। इस सम्बन्धमें आपने अनेक प्रयोग किये, जिससे पता चला कि, सूर्यके प्रकाशसे केवल सूर्यमुखी ही आकृष्ट नहीं होती, लज्जावती लतामें भी इस प्रकारकी क्रिया दीख पड़ती है।

अबतक वैज्ञानिकोंका विश्वास था कि, प्रत्येक पत्तीकी जड़में केवल एक ही पेशी होती है, जिसके सहारे वह नीचे-ऊपर होती रहती है। अनुसन्धान करनेपर पता चला कि, लज्जावतीकी पत्तियोंकी जड़ोंमें चार भिन्न-भिन्न पेशियाँ हैं। इन पेशियोंका ज्ञान सर्व-प्रथम आपने ही प्राप्त किया। इन पेशियोंके साथ-साथ आपने यह भी ज्ञात किया कि, एक पेशी द्वारा पत्तियाँ ऊपर चढ़ती हैं, दूसरी उन्हें नीचे करती है, तीसरी और चौथी क्रमशः उन्हें बायीं और दायीं ओर घुमाया करती हैं।

आप अपने आविष्कारोंका पूरा विवरण, समय समय पर, पुस्तकोंके रूपमें, प्रकाशित करते रहे हैं। अब आपने सभी किताबोंका संग्रह करके Motor mechanism of plants नामक ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित कराया है। यह ग्रन्थ लाँग मेन्स ग्रीन एंड कम्पनीसे प्राप्त किया जा सकता है। इस ग्रन्थमें आपके समस्त आविष्कारोंका पूरा-पूरा विवरण आ गया है।

आपके भौतिक-विज्ञान-सम्बन्धी प्रयोगोंकी चर्चा करते हुए लार्ड केल्विनने अन्तस्तलसे आपको धन्यवाद दिया था। फ्रांसकी "एकेडेमी आफ साइंस" के अध्यक्ष महोदयने तो यहाँतक कहा था कि, "सहस्रों वर्ष पूर्व जो जाति सभ्यताके उच्च शिखरपर थी और जिसने विज्ञान और कला-कौशलसे संसारको प्रकाशित कर दिया था, आपने उसी गौरवशालिनी जातिकी कीर्तिको फिरसे उज्ज्वल कर दिया। हम फ्रांसके लोग आपकी जय-जयकार करते हैं।"

आपके अपूर्व और अनुपम आविष्कारोंसे संसारमें आपकी धूम मची हुई है। देश-विदेशसे आपको निमन्त्रण आते हैं। दो बार आप विदेशोंकी यात्रा कर चुके हैं। सभी देशोंमें आपने काफी सम्मान प्राप्त किया है। लंडनकी रायल सोसाइटीमें आप कई बार व्याख्यान दे चुके हैं। आपके विद्युत्-तरङ्ग-सम्बन्धी अनुसन्धानोंने तो आपको विदेशमें "पूरबके जादूगर" के नामसे विख्यात कर दिया है। विद्युत् तरङ्गके व्याख्यानमें आपने चयनात्मक पारदर्शिताके सम्बन्धमें एक नवीन बात बतलायी है। जब आपने बर्लिनमें यह व्याख्यान दिया था, तब पता चला कि, इसी बातको वहाँके वैज्ञानिक चार वर्षोंसे ढूँढ़ निकालनेका प्रयत्न कर रहे थे; पर पता नहीं पाते थे!

आपके बेतारके तारके यन्त्रको पेटेंट करा लेनेकी सलाह अमेरिकन विद्वानोंने दी थी। पर आपने वैसा करना उचित नहीं समझा। जर्मन विद्वान् तो आपको एक सम्पूर्ण विश्वविद्यालय समर्पण करनेको तैयार हो गये थे; पर आपने इसे भी मंजूर नहीं किया। इस सम्बन्धमें आपने कहा था कि, "मेरा कार्य-क्षेत्र भारत ही रहेगा। मैं स्वदेशके उसी विद्यालयमें काम करता रहूँगा, जिसमें मैंने उस समय प्रवेश किया था, जब मुझे कोई जानता तक नहीं था।"

१९०० ई० में बंगालके गवर्नर महोदयने आपको भारतीय प्रतिनिधि बनाकर पेरिसकी सायंस कांग्रेसमें भेजा। वहाँ भी आपने काफी सम्मान अर्पित किया। पेरिससे आप पुनः इंगलैंड गये। वहाँ जानेपर केम्ब्रिज और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयोंमें आमन्त्रित किये गये। वहाँसे वियना बुलाये गये। वियनाके तो कितने ही वैज्ञानिकोंने आपके कलकत्तेकी विज्ञानशालामें रहकर काम करनेकी भी अनुमति माँगी। इसके बाद अमेरिकाका भ्रमण करते हुए आप पुनः स्वदेश लौटे। स्वदेश लौटनेपर आपको कलकत्ता विश्वविद्यालयने "डाक्टर आफ सायंस" की उपाधिसे विभूषित किया।

प्रथम संसारका भ्रमण कर आनेके बाद १९०३ ई० में सरकारने आपको सी० आई० ई० की उपाधिसे विभूषित किया। १९११ ई० में सम्राट् जार्जके राज्याभिषेकके अवसरपर आपको सी०एस० आई० की उपाधि प्रदान की गयी। १९१६ ई० में बंगाल सरकारने आपको एक अभिनन्दन-पत्र दिया। १९११ ई० में भारत सरकारने आपको "सर" की उपाधि दी।

वैज्ञानिक जीवन आरम्भ करनेके समयसे ही आप एक अच्छी "प्रयोगशाला"के अभावका अनुभव कर रहे थे। बहुत विचार कर आपने एक "विज्ञानशाला" स्थापित करनेका निश्चय किया। अन्तमें ३० नवम्बर १९१७ ई० को, अपनी ५९ वीं वर्षगांठके अवसरपर, आपकी इच्छा फलवती हुई—आपने "विज्ञान-मन्दिर" की स्थापना की। इस अवसरपर आपके द्वारा दिया गया भाषण बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इस भाषणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि, डा० बोस केवल सच्चे वैज्ञानिक ही नहीं हैं, वे ऊंचे दर्जेके दार्शनिक और आदर्शवादी भी हैं। एक जगह आपने कहा था, "अमरत्वका बीज किसी द्रव्य-विशेषमें नहीं; बल्कि विचारोंमें है। यह सम्पत्तिमें नहीं; बल्कि उच्च आदर्शमें है। सच्चा मानवीय साम्राज्य तो ज्ञानके विकास और सत्यके प्रचारसे ही स्थापित हो सकता है; सांसारिक पदार्थोंकी लूट-खसोटसे नहीं।"

इस संस्थाकी स्थापनासे आचार्य बोसने संसारका और खासकर भारतवर्षका जो उपकार किया है, वह अवर्णनीय है। यही नहीं; इस शालाकी स्थापनासे आपके देश-प्रेमका भी परिचय मिलता है। इस "विज्ञान-मन्दिरकी" स्थापनासे आपने पुनः सारे संसारको भारतका पूर्व-गौरवमय रूप दिखला दिया है; और, सिद्ध कर दिया है कि, जिन भारतीय सिद्धान्तोंको पाश्चात्य विद्वान्-दन्त कथाएँ अथवा चण्डूखानेकी गप्प समझते थे, उनमें उतनी ही सत्यता है, जितनी दो-दो मिलकर चार होनेमें है।

आपमें एक सफल अध्यापकके सारे गुण भी मौजूद हैं। आधुनिक तड़क-भड़क तो आपको जरा भी छू नहीं गयी है। सादगी ही आपका एक मात्र फैशन है।

यद्यपि आप १९१५ ई०के लगभग विदेशका भ्रमण कर चुके थे, फिर भी, उसके कुछ वर्षोंके बाद, विदेशसे आपको निमन्त्रण आने लगे। अन्तमें आपको फिर एक बार विश्व-भ्रमण करना पड़ा। इस बार तो आपने विदेशोंमें द्विगुणित सम्मान प्राप्त किया। मिश्र देशमें तो स्वयम् बादशाह, अपने मन्त्रिमण्डलके साथ, आपका स्वागत करनेके लिये पधारे थे। समस्त मिश्रवालोंने आपकी वैज्ञानिक गवेषणाओंकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की।

१९२८ ई० में इस महान् यात्रासे आप स्वदेश लौट आये। उपर्युक्त अवसरपर बम्बईकी 'यूथ लीग' ने आपको एक अभिनन्दन-पत्र दिया था। इस अवसरपर आपके द्वारा दिया गया भाषण भी बड़ा ही मनन करने योग्य है।

नवम्बर १९२८ ई०में प्रयाग विश्वविद्यालयमें उपाधि-वितरणके अवसरपर आप आमन्त्रित किये गये; और, वहाँ आपको पुनः डी० एस-सी०की उपाधि दी गयी। गवर्नर श्री हेलीने छात्रोंसे आपका परिचय कराते हुए आपको महात्मा गांधी और कवीन्द्र रवीन्द्रकी कोटिके महापुरुषोंमें बतलाया।

१ दिसम्बर, १९२८ ई० को सतरहवीं वर्षगांठ बड़ी धूम-धामसे मनायी गयी। इस अवसरपर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका "नेचर" के सम्पादक, रोमें रोलाँ, बर्नर्ड शा तथा चीनके शिक्षा-मन्त्रीने बड़े महत्त्वपूर्ण बधाईके पत्र भेजे थे। चीनके शिक्षा-मन्त्रीने लिखा था, "हम समस्त एशियाके निवासी आपके गौरवको अपना ही गौरव समझते हैं।" इस अवसरपर नवयुवकोंको आपने कितने ही अमूल्य उपदेश दिये।

अगर हम आचार्य बोसके जीवनकी एक एक घटना,

खोज तथा आविष्कारका पूरा विवरण और गौरव-सम्मानोंका जिक्र करने लगें, तो एक पोथा तैयार हो जाय। दुःख है कि, स्थानाभावके कारण हम आपपर जितना प्रकाश डालना चाहते थे, उतना नहीं डाल रहे हैं।

डा० मेघनाद साहा

श्रीयुत युधिष्ठिर भार्गव एम० एम-सी०

डा० मेघनाद साहाका जन्म सन् १८९३ ई० में ढाका जिलेके अन्तर्गत सिओरातालो नामके गाँव में हुआ। आपके पिता श्रीयुत जगन्नाथ साहा साधारण व्यापारी थे। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँवमें ही हुई। मिडिलकी परीक्षामें, ढाका जिलेमें, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेके कारण आपको एक छात्रवृत्ति मिली। सन् १९०९ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालयकी प्रवेशिका परीक्षामें आप उत्तीर्ण हुए। आप पूर्वीय बंगालमें प्रथम थे और गणितमें तो विश्वविद्यालय भरमें आपका स्थान सर्वोच्च था ही।

सन् १९११ ई० में आपने इंटरमीडियेट परीक्षा पास की। कलकत्ता विश्वविद्यालयमें आपका तीसरा स्थान था और गणित तथा रसायनमें प्रथम। प्रेसिडेंसी कालेजसे आपने बी० एस-सी० (आनर्स) और एम० एस-सी० परीक्षाएँ (गणितमें) पास कीं। दोनोंमें आप प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए; पर स्थान दूसरा रहा। आपके शिक्षकोंमें आचार्य जगदीशचन्द्र बोस और प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे महापुरुष थे।

एम० एस-सी० परीक्षा पास करनेके बाद सन् १९१६ में आपको साइंस कालेजमें एक जगह मिल गयी। अन्वेषण-विषयक सुविधा प्राप्त होनेसे शीघ्र ही, १९१८ ई० में, डी० एस-सी० की उपाधिके लिये आपने, अपनी खोजोंके सम्बन्धमें, एक निबन्ध लिखा। विलायतके तीन विद्वान परीक्षक नियत हुए। आपका अन्वेषण बहुत उच्च कोटिका होनेके कारण आपको डी० एस-सी० की उपाधि मिल गयी।

इसी साल आपने Selective Radiation Pressure and its application to Astrophysics पर एक निबन्ध लिखा, जिस कारण आपको प्रेमचन्द्र रायचन्द्र पुरस्कार मिला। यह पुरस्कार लगभग १००००) रु० का होता है। इसी समय विदेशके लिये आपको एक छात्रवृत्ति मिली। १६ सितम्बर सन् १९२१ ई० में आप इंगलैंडको रवाना हो गये। अक्टूबर सन् १९२१ ई० से जनवरी १९२२ तक आपने प्रो० फाउलरकी प्रयोगशाला (इम्पीरियल कालेज आफ सायंस, लंडन) में प्रयोग किये। यहींसे आपकी सबसे प्रसिद्ध खोज "तारोंके रश्मिचित्रका भौतिक सिद्धान्त" (physical theory of Stellar spectra) प्रकाशित हुई। इस उच्च कोटिकी खोजसे वैज्ञानिक संसारमें हलचल मच गयी। खोजके लिये एक बिल्कुल ही नया रास्ता खुल गया। इसलिये बर्लिनके आचार्य नर्न्स्ट (Nernst) ने—जो अपनी रसायन और तापसम्बन्धी गवेषणाओंके लिये विश्वविख्यात हैं और जिन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिल चुका है—आपको अपनी प्रयोगशालामें निमन्त्रित किया और वहींपर आपने कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग भी किये।

फिर म्यूनिक (जर्मनी) के प्रो० समरफिल्डने भौतिक वैज्ञानिकोंके एक सम्मेलनके सामने अपनी खोजोंपर एक व्याख्यान देनेके लिये आपको बुलाया। केम्ब्रिज आदि प्रसिद्ध स्थानोंमें सर जे० जे० टामसन और लार्ड रदरफोर्ड जैसे प्रकाण्ड विद्वानोंने आपकी नयी खोजोंपर आपसे बात-चीत की और उनकी भरपूर प्रशंसा की।

डा० मेघनाद साहा

यूरोपसे लौटनेपर सर आशुतोष मुखर्जीने आपके लिये प्रोफेसरीका एक विशेष पद बनाया; लेकिन कुछ ही दिनोंमें आप प्रयाग विश्वविद्यालयमें भौतिक-विज्ञान-विभागके आचार्यकी जगहपर आ गये।

विलायतके "इंस्टीट्यूट आफ फिजिक्स"ने और अन्ताराष्ट्रिय ज्योतिः-सभाने आपको अपना सदस्य (Fellow) चुना है। रायल सोसायटीका फेलो चुना जाना आपके लिये सबसे बड़ा सम्मान है। इस पदके लिये बड़े-बड़े वैज्ञानिक ही चुने जाते हैं, विशेषकर जब कि, वैज्ञानिक इंगलैंडके बाहर हों। भारतमें यह सम्मान श्रीनिवास रामानुजम्, सर जगदीशचन्द्र बोस, सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमण और आपको (सिर्फ चार ही वैज्ञानिकोंको) प्राप्त है। सन १९३० में एशियाटिक सोसायटी आफ बंगालने भी आपको फेलो चुना। संयुक्त प्रान्तमें आपको छोड़कर लखनऊके प्रो० बीरबल साहनी ही केवल इसके फेलो हैं।

शिक्षण-कार्यमें भी आप बड़े ही सुयोग्य हैं। आपसे अध्ययन करनेके लिये दूर-दूरके देशोंसे कितने ही विद्यार्थी आते रहते हैं। आपके निरीक्षणमें चार सज्जनोंको, नयी खोजपर, डी० एस-सी०की उपाधि मिल चुकी है। आपके लिये यह अभिमानकी बात है कि, आपके विद्यार्थी विलायत की आई०सी-एस० परीक्षामें भौतिक विज्ञानको लेकर, इंगलैंडके विद्यार्थियोंके मुकाबिलेमें, सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

स्वभाव और रहन-सहनकी दृष्टिसे आप पूरे वैज्ञानिक हैं। जर्मन, फ्रेंच इत्यादि अन्य भाषाओंसे परिचय रहनेके कारण आपको भौतिक विज्ञानके प्रत्येक पहलूपर और गणित तथा रसायनके कुछ भागोंपर संसारभरमें क्या हो रहा है एवम् नवीन खोजोंके लिये कहाँ स्थान है इत्यादिका पूर्ण ज्ञान रहता है। सुतराम् इन सब विषयोंपर आप बहुमूल्य परामर्श देते हैं। आप सिद्धान्तोंमें ही खोज करते हैं। प्रयोग स्वयम् न करते हुए भी आपकी सूझ अमूल्य है। आपकी स्मरणशक्ति भी गजबकी है। पढ़ाते समय या व्याख्यान देते समय देखा जाता है कि, संख्याएँ और अङ्क एकके बाद एक आप कह डालते हैं।

बरसों पहले वैज्ञानिक साहित्यमें कोई बात निकली हो; पर समय आनेपर वह आपको वैसे ही स्मरण रहती है, जैसे कलकी ही बात हो! आप नये विचारोंका स्वागत करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। वाद-विवादमें या और किसी समय अगर आप भूल कर रहे हैं, तो कोई विद्यार्थी भी अगर उस समय आपको विश्वास दिला देता है, तो उसी समय उसे आप स्वीकार कर लेते हैं और उसका श्रेय उसी विद्यार्थीको देते हैं।

अनवरत परिश्रम करके आपने संयुक्त प्रान्तमें एक अर्द्ध सरकारी विज्ञान-परिषद्की स्थापना की है, जिसे सरकारसे ४०००) की सहायता मिल रही है। आपको अपनी विशेष खोजके लिये ५०००) वार्षिककी सहायता लेजिसलेटिव कौंसिल के कुछ सदस्योंसे मिल रही है।

ज्योतिः-सम्बन्धी भौतिकविज्ञानमें आपकी खोज अत्युन्नतर हुई है। आपकी इस खोजको समझनेके लिये प्रकाशकी उत्पत्ति और तत्त्वोंके परमाणुओंकी रचनाके विषयमें जानना जरूरी है।

जब १९१७ ई० में आपने विद्युत्-सिद्धान्तोंपर गवेषणाएँ प्रारम्भ की थीं, तबसे ही आपकी खोजों का प्रारम्भ होता है। श्रीयुत चक्रवर्ती महोदयके साथ आपने १९१८ ई०में प्रकाशके दबावपर एक प्रयोग किया। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि, जब प्रकाश किसी वस्तुपर पड़ता है, तब मेक्सवेलके सिद्धान्तके अनुसार यह प्रमाणित किया जा सकता है कि, उस वस्तुपर दबाव पड़ेगा; पर वह इतना सूक्ष्म है कि, उसे नापना बहुत ही कठिन है। प्रो० लेबड्यूने पहले-पहल यह प्रयोग किया। डा० साहा और श्रीयुत चक्रवर्तीने उसीको अधिक सूक्ष्म और प्रामाणिक रीतिसे किया। फिर १९२० ई०में आपने उसी दबावका उपयोग सूर्यकी भौतिक विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याओं-को सुलझानेमें किया। आपने बताया कि, प्रकाश-का दबाव सब पदार्थोंपर एकसा नहीं पड़ता। यह कुछ तत्त्वोंके अणुओंपर अधिक और कुछपर कम पड़ता है। सूर्यके तापक्रमके कारण सूर्यके प्रकाशमें कुछ रंग विशेष तीव्र होते हैं। यदि किसी विशेष तत्त्वके परमाणु उन्हींके आस-पास शोषण करने लगें, तो फिर वही परमाणु इतनी शक्ति ले लेनेके कारण ऊपर उठ जायँगे।

ज्योतिः-सम्बन्धी भौतिक विज्ञानमें इन दिनों अधिक कार्य आपके सिद्धान्तके अनुसार ही हो रहा है। प्रकाशके विषयमें आपकी खोज अकेली ही है। आपके तापयापन सिद्धान्तका भी काफी आदर है।

विश्वविख्यात आइनस्टाइन, अमेरिकाके ज्योतिर्भौतिक विज्ञानके आचार्य डा० रसेल और जर्मनीके प्रो० एमडेनने आपकी खोज "उच्च तापक्रमोंपर तत्त्वोंके बर्ताव" की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

आजकल आपने साधारण लवणोंके रंगके सम्बन्धमें एक गूढ़ सिद्धान्त प्रकाशित किया है। इस विषयपर विश्वविद्यालयकी प्रयोगशालाओंमें खूब काम हो रहा है। आशा है, इसका फल खूब महत्त्वपूर्ण निकलेगा।

२री जनवरी १९३४ को जो आल इंडिया सायंस काँग्रेसका २१वाँ अधिवेशन बम्बईमें हुआ था, उसके आप ही सभापति हुए थे।

डा० गणेशप्रसाद

अध्यापक रामदास गौड एम० ए०

संयुक्त प्रान्तके शहरोंमें बलिया यद्यपि सबसे छोटा समझा जाता है, तथापि इसका सिर आज सबसे ऊँचा है; क्योंकि इसने एक जगन्मान्य गणितज्ञको जन्म दिया है। डाक्टर गणेशप्रसाद संसारके आज आध दर्जन गिने-चुने गणितके पारङ्गत विद्वानोंमें समझे जाते हैं। रसायनमें जैसे आचार्य राय, वैद्युतशरीरविज्ञानमें जैसे आचार्य बोस, भौतिक विज्ञानमें जैसे आचार्य रमण हैं, उसी तरह गणितशास्त्रमें आचार्य गणेशप्रसाद संसारमें भारतके गौरवकी रक्षा करनेवाले हैं।

आपने बलियाके एक प्रतिष्ठित श्रीवास्तव-कुलमें २६ कार्तिक, सं० १९३३ (१५ नवम्बर १८७६) के पुण्य दिनमें स्वर्गीय श्रीयुत रामगोपाल सिंह जीके घर जन्म लिया। बाल्यावस्थामें ही आपकी प्रतिभा चमक उठी। घरपर प्रथानुसार साधारण फारसीकी शिक्षा हुई और साथ ही अंग्रेजी स्कूलमें भी पढ़ते रहे। १५ वर्षकी अवस्थामें बलियाके स्कूलसे प्रथम श्रेणीमें सं० १९४८ (सन् १८९१ ई०) में, एंट्रेंस पास हुए। वहाँसे आप प्रयागमें, कालेजकी ऊँची शिक्षा प्राप्त करनेके लिये, म्योर कालेजमें प्रविष्ट हुए। यहाँ आपने विज्ञानका विशिष्ट अध्ययन किया और चार वर्षमें आपने बी०ए०की परीक्षा दी। उसमें सारे विश्वविद्यालयमें आपका सबसे ऊँचा नम्बर रहा; प्रथम हुए। आपकी विलक्षण प्रतिभासे विद्वज्जन मुग्ध थे। तीन वर्ष बाद आप विश्वविद्यालयके प्रथम "डाक्टर आफ सायंस" हुए और यह डिग्री आपने विशुद्ध गणितशास्त्रमें ली। यू० पी० सरकारने इस पर इन्हें विशेष छात्रवृत्ति दी। उस समय विलायत जाना भारी अपराध था। एक सज्जन विलायतसे हो आये थे। उनके कारण श्रीवास्तव्य बिरादरीमें भारी झगड़ा पैदा हो चुका था। डाक्टर साहबने साहस-पूर्वक समाजके रोषकी परवाह न की और विद्याभ्यासके लिये विदेश-गमनके कष्ट और भावी अत्याचारोंको स्वीकार कर लिया।

देशकी दासताका ठीक अनुमान करना हो, तो कोई विद्याभ्यासके लिये विदेश जाय। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय गणितके विशेष अध्ययनके लिये प्रसिद्ध है। न्यूटनने वहीं पढ़ा था और पढ़ाया भी था। वहाँके गणितका पाठ्यक्रम प्रायः उतना ही है, जितना कि, प्रयाग विश्वविद्यालयका; परन्तु वहाँवाले यहाँकी डिग्रीको अपनी डिग्रीके बराबर नहीं मानते। यहाँके ग्रेजुएटको वहाँ जाकर उतने वर्षोंकी हाजिरी देनी पड़ती है, जितने बरसोंमें वहाँ डिग्री मिलती है। डाक्टर साहब यहाँके सर्वोच्च उपाधि-धारी थे। इसलिये वहाँ इतनी ही रियायत हुई कि, समय कुछ कम लगा। सन् १९०१में वहाँके बी० ए० हुए। फिर सन् १९०२से १९०४ तक आपकी छात्रवृत्ति बढ़ी, विशेष अधिकार मिले। केम्ब्रिज और जर्मनीके गटिंगेनके विद्यापीठमें आपने विशेष अनुशीलन किया।

डाक्टर साहबकी छात्रावस्था प्रायः आदर्श थी। आप भारतमें ही बाल्यावस्थासे एकान्त प्रेमी

और अध्ययनशील रहे। लड़कोंमें मिल-जुलकर युवक-स्वभावोचित ऊधम और उपद्रव आपने कभी नहीं सीखा। आपका कुल-शील विशिष्ट रूपसे आपके स्वभावको साधारण छात्र-समाजसे भिन्न बनाये हुए था। ठाकुर साहबका अध्ययन अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें ही मर्यादित न था। परिशीलनकी परिधि अत्यन्त विस्तृत थी। परन्तु ऐसी बात न थी कि, साहित्यिक कूड़ा-करकटकी ओर आपका

डा० गणेशप्रसाद

ध्यान गया हो। चुन-चुनकर उत्तम कोटिका अध्ययन ही आपका समय लेता था। धारणा ऐसी दृढ़ थी कि, एक बार जो कुछ पढ़ा, उसे सुन लीजिये। छात्रावस्थाकी धारणाकी दृढ़ता आज बुढ़ापेमें भी बनी हुई है। जब आप हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रिंसिपल थे और हजारों लड़के आपके अधीन पढ़ते थे, आप हर लड़केको जानते-पहचानते थे। इतना ही नहीं, लड़कोंसे उनके पिता, भाई आदिका नाम लेकर, उनका कुशल, रोजगार आदिका हाल पूछकर, चकित कर देते थे। दाखिलेके समय फार्म भरनेपर जितनी बातें पूछनेसे मालूम होती थीं, वे ही आपके इस तरहके प्रश्नोंका आधार थीं।

आपने दिमागमें ऐसी विलक्षण स्मृतिका सञ्चय किये हुए यह प्रतिभाशाली छात्र किसी सहाध्यायीसे मिलता-जुलता न था। अकेले टहलने जाना ही व्यायाम था। राहमें भी किसीसे साहब-सलामत नहीं होती थी। अपने कामसे काम था। ऐसे एकान्त-वासी प्रतिभाशालीसे सहाध्यायियोंको ईर्ष्या-द्वेष होना कोई असाधारण बात न थी; परन्तु वे कर ही क्या सकते थे। आपने कई जगह सम्मान डिग्रियाँ लीं और सन् १६०४ में ज्यों ही भारत लौटे, त्यों ही उसी म्योर सेंट्रल कालेजमें (जहाँ पहले डाक्टरकी पदवी पायी थी) यू० पी० सरकारने इन्हें गणितका आचार्य नियुक्त किया।

जब आप भारत लौटे, तब दुर्भाग्यवशात् आपकी पत्नीका देहान्त हो चुका था। विवाह तो जब आप यहाँ पढ़ते थे, तभी हो चुका था और एक पुत्री भी उत्पन्न हो चुकी थी। आपने दृढ़ निश्चय कर लिया कि, "दूसरा विवाह न करूँगा। आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत रखूँगा।" आपके लौटनेपर पितृ-भक्तिवशात् आपने प्रायश्चित्तके ग्राह्य अंश स्वीकार कर लिये; परन्तु सहभोजमें स्वयम् शरीक होनेसे इनकार किया। आपके स्वागतमें अनेक सहभोज हुए, परन्तु आप कहीं मुश्किलसे फलाहार कर लेते थे! विवाह-सम्बन्धी आग्रह करके लोग हैरान हुए। आप राजी न हुए। प्रयागमें कुछ ही कालतक प्रोफेसरी की। १९०५ ई० में आप काशी-

में (क्वींस कालेजमें) गणितके विशेष प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहाँ आप आठ वर्षतक प्रोफेसर रहे। वहाँके प्रिंसिपल डा० वेनिस थे। आप कभी अपने अफसरसे मिलते-जुलते न थे। शहरमें कभी किसीके यहाँ आते-जाते न थे। उनके पास भी कोई मिलने-जुलने जाता था, तो घड़ी देखकर जितने समय बात-चीतकी पूर्व नियुक्ति हुई रहती थी, उससे एक मिनट अधिक बात न करते थे। अपने समयकी बड़ी कड़ाईसे पाबन्दी करते थे। निदान, समाजमें यह प्रसिद्ध था कि, डाक्टर साहब बड़े रूखे-फीके आदमी हैं और समाजसे कोई वास्ता नहीं रखते।

सम्भव है कि, समाजकी संकीर्णतासे डाक्टर साहबने अपना स्वभाव ऐसा कठोर बना लिया हो; क्योंकि डाक्टर साहबका कोमल हृदय कुटुम्बके भीतर छिपा न रह सकता था। अपनी प्यारी पुत्रीका लालन-पालन बड़े मनोयोगसे कर रहे थे और उसके विवाहके सम्बन्धमें मनमें बड़े-बड़े मंसूबे बाँध रखे थे। दैवके दुर्विपाकसे यह हौसले मनके मनमें ही रह गये। विवाहयोग्य होते-होते उस कन्याने डाक्टर साहबका वियोगके अथाह शोक-सागरमें डुबा दिया। इस घटनाके बाद तो डाक्टर साहबका जीवन ही बदल गया। अत्यन्त कठोर दीखनेवाले विद्वानकी कठोरता न जाने कहाँ चली गयी। तबसे डाक्टर साहबके स्वभावमे ऐसी कोमलता आ गयी कि, लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य होने लगा। डाक्टर साहब हदसे ज्यादा मिलनसार हो गये। समाजके सभी कामोंमें सम्मिलित होने लगे। सबके सुख-दुःखमें दिलचस्पी लेने और शरीक होने लगे। इस परिवर्त्तनका कारण चाहे कुछ भी हो; परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि, डाक्टर साहबका पूर्व रूखापन उनकी प्रकृति न थी; बल्कि परिस्थिति-जनित कठोरता और आत्म-संयम था। वह कठोरता तो लुप्त हो गयी; परन्तु आत्म-संयम बना हुआ है।

डाक्टर साहबके सादे और संयमी जीवनके कारण अपने ऊपर उनका व्यय बहुत थोड़ा देखकर जाननेवालोंका अनुमान होगा कि, डाक्टर साहब कृपण हैं; परन्तु बात ठीक उलटी है। डाक्टर साहब अपने लिये तो कम-से-कम खर्च करते हैं; किन्तु अपनी विमाता और विमातृज बन्धुओंके परिवारके लिये, सार्वजनिक कामोंके लिये एवम् परोपकारके लिये उनका हृदय अत्यन्त उदार है; बड़े हौसलेके साथ खर्च करते हैं। कई वर्ष हुए डाक्टर साहबकी भतीजीका विवाह पटना हाइकोर्टके जस्टिस ज्वालाप्रसादके पुत्रसे हुआ। उस विवाहमें डाक्टर साहबने अनुमानतः साठ-सत्तर हजार रुपये खर्च किये थे। काशीकी गणित-परिषत् उन्हींकी उदारतासे चलती है। सार्वजनिक और परोपकारी कामोंमें उनकी सहज उदारता यह प्रकट करती है कि, वह धनका यथार्थ उपयोग, अच्छी तरह, जानते हैं।

सन् १९१४ में काशीकी सरकारी नौकरी छोड़ कर आपने कलकत्ता विश्वविद्यालयके अन्तर्गत नवस्थापित विज्ञान-विद्यालय (कालेज आफ सायंस)में सर रासबिहारी घोष द्वारा नियुक्त व्यवहार गणितके आचार्यकी गद्दीको सुशोभित किया। तीन वर्ष बाद आप हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी) में गणित-विभागके अध्यक्ष तथा गणित के आचार्य नियुक्त हुए। शीघ्र ही वहाँके प्रिंसिपल हो गये और इस पदपर तीन वर्षतक रहे। कुछ काल पीछे यहाँके पदका त्याग करके फिर कलकत्ते के उसी कालेजमें हार्डिंजके नामसे नियुक्त गणिताचार्यके पदको सुशोभित करने लगे; और, अबतक

उसी पदका भोग कर रहे हैं। जबतक हिन्दू विश्वविद्यालयमें थे, आपका प्रभाव सर्वोपरि रहा। उसके पीछे प्रयाग विश्वविद्यालयकी ओरसे आप संयुक्त प्रान्तकी व्यवस्थापिका सभामें भी भेजे गये थे और तीन वर्षतक शिक्षा-सम्बन्धी अनेक सुधार करवाये।

विश्वविद्यालयमें आप जिस तरहका अध्यापन करते हैं, वह बहुत उच्च कोटिका है। आपके अधीन छात्र विश्वविद्यालयके चुने हुए उपाधिप्राप्त विद्वान् होते हैं, जो केवल अनुसन्धानका कार्य करते हैं। अनुसन्धानोंके फल लेखके रूपमें संसारकी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक और गणितीय पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुआ करते हैं। अबतक डाक्टर साहबने और उनके शिष्योंने खोजके जो काम प्रकाशित कराये हैं, संगृहीत किये जायँ, तो कई जिल्दोंमें आवें।

आप सन् १९०८ से प्रयाग विश्वविद्यालयके सदस्य हैं। कलकत्ता, आगरा, लखनऊ आदि विश्वविद्यालयोंसे भी आपके, सदस्यता आदि, विविध सम्बन्ध हैं।

आपने पहले कलकत्तेमें और फिर काशीमें गणित-परिषत्‌की स्थापना की। आप दोनोंके सदस्य एवम् सभापति रहे हैं। काशीकी परिषत्‌के तो आप आजीवन सभापति हैं। प्रयागकी विज्ञान-परिषत्‌के आप सम्मान्य आजीवन सदस्य हैं।

आपने गणित-विषयक मौलिक अनुसन्धानका आरम्भ अपने छात्रकालसे ही किया है। अबतक उनकी संख्या अगणित हो चुकी है। पहला मौलिक अनुसन्धान सन् १९०० ई० में Messenger of Mathematics नामक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। डाक्टर रौट जैसे विद्वान्‌ने स्थिति-विद्यापर एक स्वरचित प्रसिद्ध ग्रन्थमें आपके उस लेखको आदर-पूर्वक प्रमाण माना है। खोजके विषयका जो एक बृहत् लेख आपने लिखा था, उसे गैटिंगेन (जर्मनी) की विज्ञान-परिषत्‌के मुखपत्र Abhandlungen में प्रो० क्लैनने छपवाया था। वह कई ग्रन्थोंमें प्रमाण माना गया है। इसी तरह तबसे अबतक अनुसन्धानके अनेक लेख Nachrichten, Mathematische Aunalen, Bulletin of the Calcutta mathmatical Society, Philosophical Magazine, Proceedings of the Palermo Mathematical Society, Bulletin of the Penares Mathematical Society आदि गणितके सामयिक पत्रोंमें छपे हैं; और, छपते रहते हैं। आपने चलनकलन और चल-राशिकलनपर दो प्रमाणिक ग्रन्थ लिखे हैं। इन दोनों ग्रन्थोंकी विस्तृत एवम् प्रशंसात्मक समालोचना प्रो० विल्सनने अमेरिकाकी गणित-परिषत्‌के मुखपत्रमें प्रकाशित करायी थी। इधर संसारके प्रसिद्ध गणितशास्त्रियोंकी जीवनियोंपर तीन जिल्दें निकाल रहे हैं, जिनमें-से पहली जिल्द निकल चुकी है; और, अनेक भाषाओंमें उसका अनुवाद हो रहा है।

डाक्टर साहबका रहन-सहन और भोजन अत्यन्त सादा और संयमशील है। बिछौनेकी जगह "स्टेट्स मैन" अखबार बिछा है। तकिया नदारद, जाड़ोंमें ओढ़नेको एक कम्बल काफी है! गर्मी इतनी कड़ी पड़ रही है, पंखा नदारद! आये-गयेको नौकर आ-कर पंखा झल देता है। अधिकांश खुले मैदान, छायामें, हवामें, धूपमें गुजर होता है। बूट, कोट, पतलून, हैट, कालरकी वेषभूषामें सेकंड या फर्स्ट क्लासमें यात्रा करनेवाले इस अखण्ड ब्रह्मचारीको देखकर कौन कह सकता है कि, आलीशान कोठीमें भी रहता हुआ इसका जीवन बेतरह सादा है, हदसे ज्यादा फकीराना है! भोजनका बीसों वर्षतक यह हाल रहा है कि, चौबीस घंटोंमें एक बार गिनी हुई चार

पूरियाँ खाकर रह जाते थे। ज्वर १०४° अंशका चढ़ा हुआ है और आप धूम-धामसे दर्जा पढ़ा रहे हैं, व्याख्यान दे रहे हैं! शरीर आपका इतना दुबला है—और हुआ हो चाहे—कि, एक बार, रेलकी यात्रामें, इसी दुबलेपनके आशीर्वादसे मरते मरते बचे। कोई डेढ़ दो सालकी ही बात है कि, बनारस छावनी स्टेशनपर उतरना था। असबाब उतर गया। छड़ी रह गयी थी। उसे लेकर उतरती बेर गाड़ी चल पड़ी थी। पाँव फिसलकर पावदान और प्लेटफार्मके बीच जा पड़े! आप प्लेटफार्मपर दोनों हाथ रखे उसके नीचे खड़े प्लेटफार्मकी भीतसे चिपक गये और गाड़ी कई कदम चली गयी! दुबले न होते, तो पिस गये होते। खैर, उसी दम किसी यात्रीने जंजीर खींचकर गाड़ी खड़ी कर दी और डाक्टर साहब साफ बच गये। कहीं खरोंच भी नहीं लगी।

डाक्टर साहबकी जीवनी सादा जीवन और उच्चाशयताकी मूर्त्ति है। उनका सन्देश भारतीय युवकोंके लिये स्मरण रखने और व्यवहारमें लाने योग्य है; और, उसीसे हम इस लेखको समाप्त करते हैं। वह सन्देश इन चार शब्दोंका ही है—

"अपना लक्ष्य ऊँचा रखो"

सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमण

बा० श्यामनारायण कपूर बी० एस-सी०

डा० सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमणका जन्म ७ नवम्बर सन् १८८८ई०में, दक्षिण भारतके त्रिचनापल्ली नगरमें, हुआ था। आपके पिता श्रीयुत चन्द्रशेखर वेङ्कट ऐयर वाल्टेयरके ए० बी० एन० कालेजके अध्यापक थे। ये गणित तथा भौतिक विज्ञानके प्रतिष्ठित विद्वान् एवम् ज्योतिःशास्त्रके एकान्त अध्येता थे। इन्हें संगीतसे भी प्रेम था। इसीलिये हमारे चरितनायक रमण महोदयमें ये पैतृक गुण बाल्य कालसे ही प्रतिष्ठित हुए हैं। पिताकी देख-रेखमें जो ठोस शिक्षा इन्होंने बचपनमें पायी थी, उसीका विस्तृत क्रमविकास इनकी इन दिनोंकी ख्याति है।

रमण महोदय स्वभावसे ही विज्ञान-प्रेमी हैं। बचपनमें भी इनका दिमाग विज्ञानविश्वका ही चक्कर काटता रहता था। लेकिन कुछ दिनोंके लिये डाक्टर बीसेंटके लेखों और व्याख्यानोंने इन्हें धार्मिक उलझनमें डाल दिया था। उन दिनों इन्होंने रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थोंका इतना अच्छा अध्ययन किया था कि, बी० ए०की परीक्षामें ऐतिहासिक कविता (Epic poetry)के सम्बन्धमें, केवल भारतीय काव्योंके आधारपर ही, एक सुन्दर और भावमय लेख लिखकर इन्होंने सर्वप्रथम पारितोषिक प्राप्त कर लिया था।

ए० वी० एन० कालेजसे आई० ए०की परीक्षामें उत्तीर्ण होकर ये सन् १९०१ ई०में मद्रास प्रेसीडेंसी कालेजमें दाखिल हुए। उस समय इनकी उम्र कुल तेरह वर्षकी थी। तीक्ष्ण बुद्धि होनेके कारण ये, थोड़े ही दिनोंमें, सब प्रोफेसरोंके प्रियपात्र बन गये।

इनके घरवालों और निकट सम्बन्धियोंकी अभिलाषा थी कि, ये इतिहास लेकर बी० ए० पास करें, जिससे सरकारी नौकरीकी प्रतियोगितामें अच्छा अङ्क

प्राप्त कर सकें; परन्तु बालक रमणने किसीकी भी नहीं सुनी और अपने विचारपर दृढ़ रहकर विज्ञानका ही अध्ययन शुरू किया ।

अपने विषयके पूर्ण ज्ञाता होनेके लिये, समस्त सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके ग्रन्थोंका अध्ययन, इन्होंने, पूर्ण मनोयोगसे, कर डाला । इतना ही नहीं, कालेजकी प्रयोगशालामें उन ग्रन्थोंके वर्णित प्रयोगोंको भी ये स्वयम् करनेकी कोशिश करने लगे; लेकिन अधिकारियोंसे इन्हें ऐसी अनुमति नहीं मिल सकी ।

सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमण

बी० ए०की परीक्षामें रमण महोदय प्रथम श्रेणीमे उत्तीर्ण हुए । भौतिक विज्ञानमें इन्हें स्वर्णपदक भी प्राप्त हुआ ।

इसी भौतिक विज्ञानको लेकर इन्होंने एम० ए० में भी पदार्पण किया । एक दिन इनके सहपाठी और मित्रगण शब्दसंगीत-सम्बन्धी कुछ प्रयोग कर रहे थे । सहसा वे एक ऐसे परिणामपर पहुँचे, जो अत्यन्त विचित्र था । उस विषयके अध्यापक प्रो० जोंससे विद्यार्थियोंने पूछा, पर सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल सका । बालक रमण सारी कठिनाइयोंको समझ गये । इन्होंने स्वयम् उस प्रयोगको किया और घर जाकर लार्ड रलेके शब्दशास्त्र (Acoustics)—सम्बन्धी सिद्धान्तको भली भाँति पढ़ा । बड़ी सावधानीसे इन्होंने गणना (Calculation) भी की । यह प्रयोग मेल्डीके प्रयोग (Melde's Experiment) को करनेकी एक नवीन रीति थी । इनके द्वारा परिवर्तित और संशोधित रीतिकी प्रशंसा समस्त वैज्ञानिकोंने की । स्वयम् लार्ड रले भी बधाई दिये बिना नहीं रह सके । इस नयी खोजको रमण महोदयने लंडनको "Philosophical Magazine" में छपाया । कुछ दिनों बाद इन्होंने एक दूसरा महत्त्वपूर्ण लेख लंडनकी ही सुप्रसिद्ध पत्रिका "Nature" में प्रकाशित कराया । वैज्ञानिकोंने इन दोनों लेखोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ।

एम० ए० की परीक्षा देनेके बाद मद्रास सरकारके शिक्षाविभागके अधिकारियोंने इन्हें विलायत भेजना चाहा, प्रो० जोंस साहबने भी जोर लगाया; लेकिन दुर्बल-शरीर होनेके कारण ये डाक्टरी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सके; और न विलायत ही जा सके । तब लोगोंने इन्हें सरकारी आर्थिक विभागकी प्रतियोगिता-परीक्षामें सम्मिलित होनेको कहा । इस परीक्षामें, भारतवर्षके समस्त विद्यार्थियोंमें, सर्वप्रथम होकर ये उत्तीर्ण हुए और एम० ए० में भी प्रथम श्रेणीमें सर्वप्रथम होकर ही उत्तीर्ण हुए । उस समय ये पूरे बीस वर्षके भी नहीं थे ।

इनकी योग्यतापर मुग्ध होकर भारत सरकारने इन्हें फौरन डिप्टी एकाउंटेंट जेनरल बना दिया । ये सर्वप्रथम कलकत्तेमें डिप्टी एकाउंटेंटके पदपर नियुक्त हुए; किन्तु कार्याधिक्यके कारण भी ये विज्ञान-विमुख नहीं हो सके । आफिससे आते वक्त एक दिन इन्होंने एक साइन बोर्ड देखा, जिसपर लिखा था—"Indian Association for the Cultivation of Science" (भारतीय विज्ञान परिषद्) । इनकी खुशीका ठिकाना नहीं रहा ! ये भीतर चले गये और वहाँके अवैतनिक मन्त्री डाक्टर

अमृतलाल सरकारसे मिले। इनकी मौलिकतापर डाक्टर सरकार मुग्ध हो गये और इनके कहनेके मुताबिक वहाँ सब प्रबन्ध कर दिया—रमण महोदयके लिये प्रयोगशालाका द्वार सर्वदाके लिये खुल गया। इसका परिणाम दोनोंके लिये अच्छा हुआ; क्योंकि रमण महोदयको एक सुन्दर प्रयोगशाला मिल गयी और परिषदुको मिल गया एक उत्तम वैज्ञानिक। रमण महोदयके प्रयत्नसे वैज्ञानिक अनुशीलन और अनुसन्धानका कार्य परिषदुमें खूब झपाटेसे प्रारम्भ हो गया। परिषद् थोड़े ही दिनोंमें चमक उठी। इनके अन्वेषणके परिणामको, छोटी-सी पत्रिका द्वारा, परिषद् प्रकाशित करने लगी। अपनी योग्यता और परिश्रमसे रमण महोदय सर्वत्र विख्यात हो गये।

इसी तरह तीन बरसोंतक रमण महोदय कलकत्तेमें रहे। इसके बाद इनकी बदली रंगूनमें हो गयी। परन्तु अधिक दिनोंतक ये रंगूनमें नहीं रह सके। सन् १९१० ई० में पिताकी मृत्युका समाचार सुनकर इन्होंने ६ महीनोंकी छुट्टी ली और मद्रास प्रेसीडेंसी कालेजकी प्रयोगशालामें जाकर अपनी छुट्टीके दिन व्यतीत किये।

छुट्टीके बाद इनकी नियुक्ति नागपुरमें हुई। उन दिनों वहाँ प्लेगका भीषण प्रकोप था। इन्होंने बड़ी मुस्तैदीसे जनताको सहायता पहुँचायी और पीड़ितोंसे आशीर्वाद लूटे।

इनके पूर्ववर्ती अधिकारीकी असावधानतासे वहाँके आफिसका काम बहुत पिछड़ा हुआ था। सब कर्मचारी मनमानी किया करते थे। नियमकी अवज्ञा इनसे देखी नहीं गयी। कड़ाईके साथ इन्होंने सबको सुधारा। इनके इस कार्यकी प्रशंसा इनके आफिसरोंने की और इन्हें बधाइयाँ भी भेजीं।

नवम्बर १९११ ई० में आप फिर कलकत्ते भेजे गये। इस बार आप डाक और तार विभागके एकाउटेंट जेनरल थे। कलकत्ते पहुँचकर आप बहुत प्रसन्न हुए। अन्य वैदेशिक प्रयोगशालाओंकी अपेक्षा भी इन्हें भारतीय विज्ञान परिषद् ही भली और श्रेष्ठ जँचती थी।

सन् १९१४ ई० में स्व० सर आशुतोष मुकर्जीने कलकत्तेमें विज्ञान कालेजकी स्थापना की। सर तारकनाथ पालितने इसे एक बड़ा कोष भी दिया। अतः भौतिक विज्ञान पढ़ानेके लिये एक योग्य आचार्यका अन्वेषण होने लगा। सर आशुतोष मुकर्जीने बहुत खोज-ढूँढ़ करनेके बाद उस पदके लिये रमणजीको ही उपयुक्त समझा। विज्ञान प्रेमी होनेके कारण रमणजीने इस पदको ग्रहण कर लिया और ऊँचे दर्जेकी सरकारी नौकरीको छोड़ दिया। यहाँ आनेपर इन्हें कार्य भी अधिक करना पड़ा और रुपये भी कम मिले।

सन् १९२१ ई० में कलकत्ता-विश्वविद्यालयने इन्हें डी० एस-सी० की उपाधिसे सम्मानित किया। सर प्रफुल्लचन्द्र राय और डा० जगदीशचन्द्र वसुकी ही तरह इन्हें भी अपनी शिष्यमण्डलीपर गौरव है। इनके अनेक शिष्य विश्वविद्यालयोंके अध्यापक हैं एवम् अनेक शिष्योंने भाँति-भाँतिकी खोजें की हैं। इन्हींके बलते आज कलकत्ता विश्वविद्यालयको अपने भौतिक विज्ञान-विभागपर अभिमान हो रहा है। डा० रमणने यहाँ आकर भी उत्तमोत्तम अन्वेषण, नाद और प्रकाशके सम्बन्धमें, किये हैं। इनकी खोजोंका मान यूरोपतकमें है। आप लंडनकी रायल सोसायटीके सदस्य भी चुन लिये गये हैं। आप ही सर्व-प्रथम भारतीय हैं, जिन्हें भौतिक विज्ञानपर नोबल पुरस्कार मिला है।

रमण महोदयको प्राकृतिक दृश्योंके अवलोकनमें आनन्द आता है। पिछली बार जब ये इंगलैंड जानेके लिये समुद्रयात्रा कर रहे थे, तब समुद्रकी नीली लहरों और नीलाभ गगनको देखकर इनके मनमें यह प्रश्न उठा था कि, ये दोनों ही नीले क्यों हैं? उसी दिनसे इन्होंने उसके लिये अन्वेषण शुरू कर दिया। अनेक प्रयोग करनेके बाद इन्होंने जो उत्तर दिया था, उसे समस्त संसारने मुक्त कण्ठसे स्वीकार किया था। आजतक ऐसा उत्तर किसी दूसरेका नहीं था।

साबुनके बुलबुले (Soap bubble) के सम्बन्धमें भी इन्होंने अत्यन्त सुन्दर वैज्ञानिक विवरण खोज निकाला है। इसके सम्बन्धमें आपने लिखा है—"साबुनका बुलबुला पानीको धीरे-धीरे हटाते हुए बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते वह ऐसी अवस्थाको पहुँचता है कि, उसके ऊपरी सिरेपर एक कालासा गोल धब्बा दिखाई पड़ने लगता है। यह धब्बा धीरे-धीरे चौड़ा होने लगता है। यह चौड़ाई कभी-कभी आधा और कभी-कभी पौन इंचतक पहुँच जाती है। तब यह बुलबुला फूट जाता है। यह काला धब्बा एक अत्यन्त बारीक झिल्लीके समान होता है। वैज्ञानिकोंने इस झिल्लीकी मोटाई और इसके अन्य गुण मालूम करनेके लिये लगातार ४० वर्ष लगाये हैं। बहुतोंने इसकी मोटाईको एक इंचका ५० लाखवाँ अंश बताया है, जिससे सिद्ध होता है कि, यह झिल्ली एक या दो परमाणु (Molecules) के बराबर मोटी है।

"एक साधारण मोटाईका बुलबुला मामूली द्रव नहीं है; बल्कि वह एक द्रव रवा (Liquid Crystal) है और यह बुलबुला अनुवीक्षण यन्त्रके सम्मुख और अन्य प्रकाशसम्बन्धी यन्त्रोंके सम्मुख उसी प्रकार दिखाई देता है, जैसे और कोई रवा या खनिजका टुकड़ा।" इनके इस वर्णनसे वैज्ञानिक संसारमें धूम मच गयी।

इसके थोड़े ही दिनोंके बाद इन्होंने प्रकाश-विज्ञानमें भी एक नयी खोज की। यह रमण-प्रकाशके नामसे विख्यात है। इसके द्वारा प्रकाशकी किरणोंका किसी पदार्थके अणुओं और परमाणुओंपर गिरनेका क्या प्रभाव होता है, यह जाना जाता है और प्रकाशकी किरणोंके बिखर जानेसे क्या पैदा होता है, यह भी ज्ञात होता है। इस अन्वेषणके कारण देशी तथा विदेशी वैज्ञानिकोंके बीच इनका स्थान अधिक ऊँचा हो गया। इसीपर इन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला। जिस दिन इन्होंने इसका आविष्कार किया, वह १९२८ की २८ फरवरी, भारतके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हो गया। इसके सिवा इन्होंने भौतिक विज्ञानकी और भी कितनी ही शाखाओंमें अलभ्य अन्वेषण किया है।

इनका यश दिगन्तमें फैल गया। विदेशोंसे बुलावा आने लगा। ये जिन-जिन देशोंमें गये, वहाँ इनका बड़ा सुन्दर सत्कार हुआ। स्थान-स्थानपर इनके व्याख्यान बड़े ही मार्केके हुए।

जनवरी १९२९ ई० में १६ वीं अखिल भारतवर्षीय विज्ञान कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनके आप मनोनीत सभापति हुए और उसी सालकी ३ री जूनको भारत सरकारने आपको सरकी उपाधिसे विभूषित किया। नवम्बर १९३० ई० में लंडनकी सुप्रसिद्ध रायल सोसायटीने आपको ह्यूज (Hughe's) स्वर्णपदक प्रदान किया। यह पदक संसारके सर्वप्रथम विज्ञानवेत्ताको दिया जाता है। इसी प्रकार फ्रीबेग, ग्लासगो, बम्बई और ढाका आदिके विश्वविद्यालयोंने आपको पी-एच० डी०, एल-एल० डी०, डी० एस-सी० आदि उपाधियाँ प्रदान की हैं। फ्रांसके प्रमुख विश्वविद्यालयने भी आपको अपने यहाँकी सर्वश्रेष्ठ उपाधि दी है।

ई० १९०७ से १९१७ तकमें, अर्थ-विभागकी आफिसरी करते हुए भी, आपने कम्पन और शब्दविज्ञानके विषयमें अद्भुत खोजें की थीं। बाह्य यन्त्रोंके ऊपर ध्वनि और गायन आदिके सम्बन्धमें आपके अन्वेषण सानी नहीं रखते। शब्दविज्ञानमें आपका जो एकान्त प्रभुत्व है, उसे समस्त संसार मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता है।

कलकत्ता विश्वविद्यालयमें जानेपर आप चार वर्षोंतक प्रकाश और रंगके अन्वेषणमें लगे रहे। इस कालका सबसे उत्कृष्ट कार्य कुहासे और हल्के बादलों द्वारा बने हुए रंगीन किरीट तथा टूटे हुए इन्द्र-धनुषोंकी व्याख्या है। प्रकाशके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ अन्वेषण इन्हीं दिनों हुआ था।

महासागरके नीले जल और नीलाभ गगनके रंगके सम्बन्धमें तो तीन वर्षोंतक इन्होंने अन्वेषण और प्रयोग

किये थे और प्रकाशके अणुक-विवर्तन-सम्बन्धी अन्वेषण-कार्यमें संलग्न रहे। आपने सिद्ध किया है कि, न केवल द्रवोंमें ही; बल्कि बर्फ और क्वार्ट्जके सदृश पारदर्शक ठोस पदार्थोंमें भी अणुओंकी गतिके कारण प्रकाशका परिक्षेपण होता है। इससे अणुओंकी संख्याका गिनना और उनकी गतिका ज्ञान प्राप्त करना संभव हो गया। एक्स-किरणके अध्ययनमें इनकी खोजोंने सहायता पहुँचायी है। चुम्बकीय अन्वेषणमें भी आपने कितनी ही नयी बातोंका पता लगाया है।

इन अन्वेषणोंके अतिरिक्त आपने भौतिक विज्ञानकी प्रायः समस्त शाखाओंपर भी महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किया है। संघात और स्थिति-स्थापकता, समाघात-आकृतियोंके सम्बन्धमें निरीक्षण, पृष्ठवितति और पृष्ठगति, ऊर्मि और तरङ्गें, तापवाहन, तरल सान्द्रताकी प्रकृति, गैसका गत्यात्मक सिद्धान्त, अणुओंके वैद्युत गुण, ठोस पदार्थोंकी सन्दीप्ति, वर्णपट विज्ञान और रेडियम-धर्म-परिवेष या प्रभामण्डल आदि आदिके सम्बन्धमें भी आपने अन्वेषण किया है।

उपर्युक्त विषयोंपर आचार्य रमण महोदयको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। केवल भौतिक विज्ञान ही नहीं; बल्कि रसायन और गणितके सम्बन्धमें भी आपने बहुतसे अद्भुत अनुसन्धान किये हैं। भौतिक विज्ञानके प्रायोगिक और सैद्धान्तिक, दोनों ही अङ्गोंमें पारङ्गत होनेके कारण आप उच्च कोटिके गणितज्ञ हैं। इनदिनों आप प्रकाशकी तरङ्गगति, कणिका-सिद्धान्त और प्रकाशकोणीय आवेगके ऊपर आनुसन्धानिक प्रयोग कर रहे हैं।

अभी हालमें ही आपने सरकारके अनुरोधसे कुछ दिनोंके लिये कलकत्ता विश्वविद्यालयसे छुट्टी लेकर बंगलोरकी इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइंसके डाइरेक्टर पदको स्वीकार किया है। यह संस्था भारतमें वैज्ञानिक-शोध-सम्बन्धी सर्व-श्रेष्ठ संस्था समझी जाती है। इसके डाइरेक्टर पदपर अंग्रेज वैज्ञानिक ही नियुक्त किये जाते थे। आशा है, अन्य महत्त्वपूर्ण कार्योंके समान ही इसमें भी आप पूर्ण सफलता प्राप्त करेंगे।

डा० नीलरत्न धर

श्रीयुत आत्माराम एम० एस-सी०

डा० नीलरत्न धरका जन्म २ जनवरी सन् १८९२ ई० में, जैसोरमें, हुआ। इन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा वहींके हाई स्कूलमें पायी। इंट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास करके धर महोदयको कालेजमें अध्ययन करनेके लिये १५) रु० की छात्र-वृत्ति मिली। ये वहींके रिपन कालेजमें भर्ती हो गये। आई० ए० में भी इन्हें छात्रवृत्ति मिली। सन् १९०९ ई० में बी० एस-सी० में पढ़नेके लिये ये प्रेसिडेंसी कालेजमें दाखिल हुए। यहाँ इन्हें आचार्य मिले सर प्रफुल्लचन्द्र राय और सर जगदीशचन्द्र वसु। बी० एस-सी० (आनर्स) की परीक्षा भी इन्होंने प्रथम श्रेणीमें पास की। एम० एस-सी० में अपनी नयी खोजोंपर एक उत्तम लेख लिखनेके कारण ये एम० ए० तथा एम० एस-सी० के सब विद्यार्थियोंमें सर्व-प्रथम हुए। इन्हें १२ सुवर्णपदक भी मिले।

सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए धर महोदयको पटना कालेजने २००) मासिक वेतनपर अध्यापक बनाना चाहा; पर अपने गुरुओंके अनुरोधसे इन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया और दो वर्षोंतक बिना किसी

छात्रवृत्तिके आनुसन्धानिक कार्य करते रहे । १९१५ ई० में भारत सरकारकी ओरसे छात्रवृत्ति पाकर ये इम्पीरियल कालेज (लंडन) के प्रो० फिलिपकी प्रयोगशालामें जाकर कार्य करने लगे। १९१७ ई०में इन्हें लंडनके विश्वविद्यालयसे डी० एस-सी० की उपाधि मिली। इसके बाद पेरिसमें जाकर प्रो० पेरॉं, श्री उरबॉं तथा श्रीमती क्यूरीकी अध्यक्षतामें कार्य करने लगे। १९१९ ई० में इन्हें पेरिस विश्व-

डा० नीलरत्न धर

विद्यालयसे भी डी० एस-सी० की उपाधि मिली। उसी साल प्रयागके म्योर कालेजमें रसायनाचार्यका पद खाली हुआ। भारतमन्त्रीने इन्हें आई० ई० एस० में भर्ती करके उस पदपर नियुक्त कर दिया। इन दिनों आप प्रयाग विश्वविद्यालयके रसायन विभागके मुख्य आचार्यके पदपर हैं।

विभिन्न रासायनिक क्षेत्रोंमें धर महोदयका आन्वेषणिक कार्य अत्यन्त विस्तृत है। हम उसका विभाग इस तरह कर सकते हैं—विद्युद्वालकता और नोषितों एवम् अमोनियम नोषितके वाष्प घनत्वपर, उत्प्रेरणपर, विद्युद्विश्लेषण-सिद्धान्तके उपयोगपर, रासायनिक प्रक्रियाओंके अध्ययन और प्रकाश-रसायनपर, कलोद रसायनपर और जीवरसायनपर इन्होंने अन्वेषण-कार्य किये हैं।

डा० धर महोदयका प्रारम्भिक कार्य सर पी० सी० रायकी सहकारितामें हुआ। नोषित आदि यौगिकोंका गठन विद्युद्वालकताके फलोंसे स्पष्ट करनेके लिये इन्होंने कितने ही प्रयोग किये और ई० १९१२-१३में लंडनके "जर्नल आफ केमिकल सोसायटी" में इसी सम्बन्धके कई लेख छपवाये, जिनसे नोषितोंके गठनपर अच्छा प्रकाश पड़ा।

अमोनियम नोषितके रवे सर पी० सी० रायसे पूर्व कोई भी प्राप्त नहीं कर सका था। अमोनियम नोषित १००° तक गर्म होनेपर कुछ पानी, कुछ नोषजन और कुछ नोषजनके ओषिद बन जाते थे; परन्तु कुछ अमोनियम नोषित अविभाजित भी शेष रह जाता था। श्री रे महोदयके साथ डा० धरने इस अविभाजित अमोनियम नोषितका वाष्पघनत्व निकाला। इस कार्यसे इनकी बड़ी ख्याति हुई। इन्होंने यवनोंकी ०°श तापक्रमपर गति और नोषित यवनकी भ्रामक संख्यापर लेख लिखे और अतिसंपृक्तता (Supersaturation), रागिकाम्ल तथा अन्य द्विभास्मिक अम्लोंके विश्लेषण द्रवोंपर भी उपयोगी कार्य किया।

सन १९१५ ई०में आप "इम्पीरियल कालेजआफ सायंस" (लंडन)में आनुसन्धानिक कार्य करनेको गये। वहाँ आपका मुख्य कार्य उत्प्रेरण और आवेश-प्रक्रियाओंपर हुआ। इस सम्बन्धमें आपने लगभग २५ लेख छपवाये। उसी समय आपने पांशुजका-

च्छेत और अरुणिनका भी अध्ययन किया था; और, दिखाया था कि, प्रकाश द्वारा ये प्रक्रियाएं आर्थिक गतिसे चलने लगती हैं। आपने भिन्न-भिन्न अनेक आवेश-प्रक्रियाओंकी भी खोज की है। उत्प्रेरण-प्रक्रियाओं और आवेश प्रक्रियाओंकी गतिपर तापक्रमका क्या प्रभाव पड़ता है, इसका भी आपने बहुत विस्तृत अध्ययन किया है। शारीरिक प्रक्रियाओंके तापक्रम-गुणकोंकी भी इन्हीं फलोंके आधारपर आपने मीमांसा करनेका प्रयत्न किया है। एक प्रक्रिया दूसरी प्रक्रियाको किस प्रकार आवेश करती है, इसका सिद्धान्त भी आपने प्रस्तुत किया है।

आप आरहीनियसके यचन-सिद्धान्तके बड़े ही पोषक हैं। इस सम्बन्धमें आपने कितने ही लेख लिखे हैं।

प्रकाश-रसायनके सम्बन्धमें भी आपने अनेक कार्य किये हैं। इस सम्बन्धमें आपके कार्य दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—प्रकाश रासायनिक प्रक्रियाओंका अध्ययन और प्रकाश-संश्लेषण। डा० विमलकुमार मुकर्जीके साथ आपने इन प्रक्रियाओंका अध्ययन, बड़ी कुशलताके साथ, किया है। आपने शोषणचित्रों द्वारा यह दिखाया है कि, प्रक्रियाको प्रगति इन्हीं अवस्थाओंमें, प्रकाशमें, बढ़गी, जब कि, प्रकाशका शोषण अधिक होगा। यदि प्रक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकाशोंमें की जाय, तो अधिकतम गति उसी प्रकाशमें होगी, जिसमें शोषण अधिक होता है।

डा० मुकर्जीके पश्चात् डा० अक्षयकुमार भट्टाचार्यने डा० धरकी सहकारितामें प्रकाश रसायनपर विशेष कार्य किया एवम् नृपेन्द्रनाथ विश्वासने भी आपकी अध्यक्षतामें रासायनिक प्रकाशको दिखाकर उपयोगी कार्य किया। श्रीमती शीला धरने अनेक कलोदोंपर प्रकाशका प्रभाव देखा है।

प्रकाश संश्लेषणके ऊपर डा० धरकी खोज सबसे पहले १९२५ ई० में, श्रीयुत सान्यालके साथ, आरम्भ हुई। आपने अपनी खोजसे यह दिखाया कि, वास्तवमें कार्बन, द्विओषिद तथा जलसे प्रकाश की उपस्थितिमें पिपोलमद्यनाद्र बन सकता है और लोहेके लवणोंके घोलकी विद्यमानतामें इस मद्यानाद्रसे शर्करा भी उत्पन्न हो सकती है। सन् १९३० ई० में श्रीयुत गोपाल रावकी सहायतासे आपने और दो लेख लिखे, जिनमें पहलेके कार्योंकी पुष्टि की और साथ-ही-साथ दिखाया कि, Chlorophyll प्रकाश उत्प्रेरक होनेके अतिरिक्त अवकारक (Reducingagent) का कार्य भी करता है। इसके पश्चात् नवजात (Nascent) कार्बन द्विओषिदके साथ प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि, यदि नवजात कार्बन द्विओषिदको जलके साथ प्रकाशमें रखा जाय, तो बिना किसी प्रकाश उत्प्रेरकके मिलाये ही पिपोलमद्यानाद्र उत्पन्न हो सकता है।

नोषजन पदार्थोंके प्रकाश संश्लेषणपर भी धर महोदयका कार्य १९२५ ई० से ही चला आ रहा है। श्रीयुत सान्यालके साथ आपने यह दिखाया है कि, नोप्रकाशको सहायतासे अमोनिया तथा पिपोल मद्यानाद्रके मेलसे ताम्रलिरक्त और कर्बोनेतकी विद्यमानतामें दारोल आमिन इत्यादि पदार्थ बन सकते हैं। इन दिनों भी आप प्रकाश संश्लेषणपर ही विशेष कार्य कर रहे हैं।

पहले लोगोंका यही विचार था कि, बैक्टीरियाके अतिरिक्त और किसी क्रिया द्वारा मिट्टीमें नोषित तथा नोषेत अमोनियम लवणसे नहीं बनते; परन्तु

डा० धरने अपने शिष्य गोपाल रावजीके साहाय्य-से यह सिद्ध कर दिया है कि, सूर्यकी किरणों द्वारा भी मिट्टीमें अमोनियम लवणोंसे नोषित तथा नोषेत का बनना सम्भव है।

कुछ दिनोंसे धर महोदयकी अभिरुचि भूगर्भ-शास्त्रकी ओर भी हो गयी है। आपका कहना है कि, सूर्यके आस-पास तथा पृथ्वीके वायुमण्डलमें पिपीलमद्यानाद्र होता है, जो वर्षाके साथ घुलकर वर्षाजलमें मिलता है। इस विषयमें आप कई लेख लिख चुके हैं। आपका विचार है कि, यह पिपील-मद्यानाद्र वायुमण्डलमें कार्बन द्विओषिद तथा जलसे पराकासनी किरणोंके प्रभावसे बनता है। आपका कहना है कि, पिपीलमद्यानाद्र की तरह कार्बन द्विगन्धिद भी सूर्यके मण्डलमें विद्यमान है। इन अन्वेषणोंसे भूगर्भ शास्त्रको काफी सहा-यता मिलनेकी सम्भावना है।

प्रकाश-रसायनके समान ही कलोद-रसायनपर भी डा० धरने विस्तृत कार्य किया है। इस समय इस देशमें इस विषयके आप सबसे बड़े ज्ञाता हैं। अपने विद्यार्थियोंके सहयोगसे आपने कलोद-रसायनके प्रत्येक अङ्गपर खूब छान-बीन की है। इधर आपकी अभिरुचि गाढ़े कलोदोंकी ओर हुई है। इस सम्बन्धमें भी आपको अच्छी सफलता मिल रही है। इस कलोद-रसायनके क्षेत्रमें डा० धरका लिसिगंगवृत्तवाला सिद्धान्त अधिक प्रसिद्ध है। आपकी सहचरी श्रीमती शीला धरने भी कलोदोंपर प्रकाशके प्रभावका निरीक्षण किया है।

डा० धर महोदय जीव-रसायनसे भी प्रेम रखते हैं। आवेश प्रक्रियाओंके अध्ययन कालमें आपने यह ज्ञात किया है कि, शारीरिक क्रियाओंमें आवेश-प्रक्रियाओंका भी अच्छा महत्त्व है।

डा० धर महोदय जैसे प्रतिभा-सम्पन्न वैज्ञानिक से भारतको बहुत कुछ आशा है। अन्य लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकोंकी तरह इन्हें भी अपने छात्रोंपर गर्व है।

विचार-वल्लरी

१—पाश्चात्यनाट्यानुष्ठानमें विज्ञानका स्थान

(१)

सोलहवीं सदीके शुरू होते ही नाटकोंका अभिनय खुली जगहोंमें न होकर मकानके भीतर, हालोंमें, होने लगा। ये हाल क्रमशः स्टेजके रूपमें व्यवहृत होने लगे। लेकिन इस समय स्टेज या थियेटर कहनेपर लोगोंको खयाल होता था, केवल ऐसी जगहका, जहाँ बैठनेकी सुविधा हो। इस समय परदे न थे, ड्रापसीन न था, सेट-सीनरीका पता न था, वातावरण-सृष्टिका नाम भी लोगोंने नहीं सुना था। ऐसे ही थियेटरोंमें शेक्सपीयरके नाटक अभिनीत होते थे। नाट्याभिनयका समय दिन रहता था। सूरजकी रोशनीसे ही काम चलता था। न मशाल जलते थे, न लैंटर्न। उस समय लोगोंको गैसका व्यवहार नहीं मालूम था, बिजलीका आविष्कार नहीं हुआ था।

चित्र नं० १

कुछ दिनोंके बाद अभिनय शामको होने लगा। ऐसा होनेपर अभिनय राततक होता रहता था। इससे आवश्यकता हुई रोशनीकी। पर लोगोंको मशाल या मोमबत्ती या लैंटर्न जलानेके बदले और कोई भी उपाय न सूझता था, कोई दूसरे साधन थे भी नहीं। लैंटर्न जलाकर सीनरी-शून्य स्टेजके भीतर जलपर थिरकती हुई चन्द्र-किरणकी शोभा कोई नहीं दिखा सकता है। इसीसे नाट्यकार देसी शोभा-

बैटन्स (बन्द खाने)
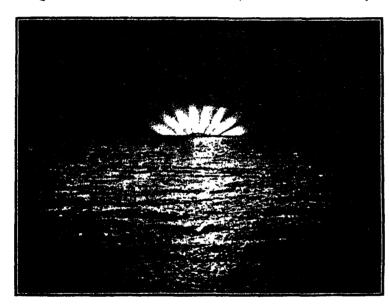
का वर्णन मात्र कर देता था। जो प्राकृतिक दृश्य साधनाओंके अभावके कारण दिखाया न जा सकता था, वहा दृश्य शब्दोंके द्वारा नाट्यकार

बेटन्स (खुले खाने)

चित्रित कर देता था। शेक्सपीयरके नाटक ऐसे शब्द-चित्रोंसे भरे पड़े हैं। एक ही उदाहरण पर्य्याप्त होगा—

डिमर

How sweet the moonlight sleeps upon the bank
Here shall we sit and let the voice of music creep in our ears.

अन्तका दृश्य

कवि कहता है कि, चाँदकी किरणें मधुर भाव से अम्बुज तीरपर शयन कर रही हैं। लेकिन नाटक दृश्य-काव्य है; और, इसलिये, जो दृश्य देखे नहीं जा सकते, उनके थोथे वर्णनसे कोई भी लाभ नहीं। आजकलके स्टेज-पर ऐसे दृश्य देखे जाते हैं (देखिये चित्र न० १)। शेक्सपीयरके युगसे ले कर आजतक नाट्यानुष्ठानमें जो घोर परिवर्त्तन हुआ, उसके लिये

प्रोजेक्टर
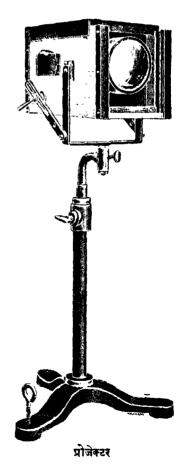
प्रायः सम्पूर्ण रूपसे विज्ञान दायी है। इस परिवर्त्तन-के कई अङ्ग हैं। यहाँ केवल एक अङ्गपर विचार किया जायगा—केवल प्रकाशपर (Lighting)।
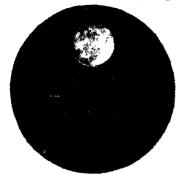
विचरते बादलका स्लाइड

(२)

पाश्चात्य—नाट्यानुष्ठानमें डाइरेक्टरका उद्देश्य वास्तवीकरण (realism) रहता है। वह अभि-नयमें कृत्रिमताका घोर विरोधी होता है। अब मान लीजिये कि, किसी विशेष नाटकका आरम्भ एक छोटी-सी कोठरीमें, दिनके चार बजे, होता है। अभिनय तो रातको शुरू होता है। स्टेजपर रोशनी-

तुषारपातका स्लाइड

की आवश्यकता होती है। यदि आप स्टेजपर दर्श-कोंकी आँखोंके सामने ही बिजलीके लेम्प जला रहे हैं, तो आप कभी दिनके समयका आभास नहीं दे सकते। इस विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये "बेटन्स"का आविष्कार हुआ। ये स्टेजके ऊपर (दर्शकोंकी दृष्टिसे बाहर) टँगे रहते हैं। इसमें तरह-तरहकी रोशनीके लेम्पके खाने बने रहते हैं। एक स्विच दबाते ही आपको मध्याह्न सूर्यकी तीखी धूप दीखेगी, दूसरा दबाते ग धूलिका धूमिल प्रकाश। विज्ञानकी सहायतासे स्टेजपर चार बजे दिनका समय, आप आधी रातके समय, सफल-तापूर्वक, दिखा सकते हैं। इससे भी कठिन दृश्य आप दिखा सकते है। यदि कोई नाट्यकार चाहे

स्लाइड द्वारा थिरकती लहरोंका दृश्य

कि, उसके नाटकके दृश्यका समय सध्यासे क्रमशः गोधूलि, फिर गोधूलिसे क्रमशः रातका हो, तो यह भी बिना कष्टके दिखाया जा सकता है। एक विशेष प्रकारके यन्त्रका नाम है डिमर (dimmer)। यह स्विचकी सहायताके बिना आलोककी गति क्रमशः मन्द कर देता है—ठीक उसी प्रकार प्राकृ-तिक आलोक सन्ध्याके समय क्रमशः मन्द होकर अन्धकारमें विलीन हो जाता है।

एक यन्त्र विशेषका नाम है प्रोजेक्टर। इसमें स्लाइड्स (slides) डालकर आप स्टेजके बैक ग्रौंडमें विभिन्न और कठिनसे कठिन दृश्य दिखला सकते हैं। यदि आपको तुषार-पातका दृश्य दिखला-ना है, तो एक स्लाइड प्रोजेक्टरमें लगाकर (चित्र देखिये) मोटरके द्वारा यन्त्रको चला दीजिये। फिर ऐसा आभास होगा कि, साँझका समय है, आकाशमें कुहासा छाया है, बर्फ गिर रही है,

स्लाइड द्वारा वर्षाका दृश्य

प्रकृति निस्तब्ध है! इसी प्रकार आप आकाशके विचरते बादलोंको भी दिखला सकते हैं। (चित्र देखिये)। इसी प्रकार आप नभमें तड़ित्-प्रकाशका दृश्य भी दिखा सकते हैं। (चित्र देखिये)। कहनेका तात्पर्य यह है कि, आप प्रोजेक्टर और स्लाइडसकी सहायतासे स्टेज-पर अद्भुतसे अद्भुत दृश्य दिखलानेमें समर्थ हो सकते हैं।

(३)

हिन्दी स्टेजपर अभी कृत्रिमताका ही बोल-बाला है। जो धनी-मानी सज्जन समाजका कल्याण करना चाहते हों, उन्हें चाहिये कि, हिन्दी स्टेजको आधुनिक बनानेके लिये एक हजार रुपयेका दान देकर इन वैज्ञानिक यन्त्रों-

स्लाइड द्वारा विद्युत्प्रकाशका दृश्य

को खरीदनेमें सहायता दें। इतनी रकममें सभी यन्त्र खरीदे जा सकते हैं। स्टेजको आधुनिक बनानेसे ही नाट्यकार आधुनिक ढंगके नाटक लिखेंगे। तभी उनके नाटकसे आडम्बर-पूर्ण और लच्छेदार वाक्योंका बहिष्कार होगा। अन्यथा इस बीसवीं शताब्दीमें भी मनुष्यके

हृदयके विश्लेषणको छोड़कर हिन्दीके नाट्य-कार प्रकृतिके शोभा-वर्णनमें लगे रहेंगे, जैसा कि, बहुतेरे नाट्यकार अब भी लगे हैं।

प्रो० कृपानाथ मिश्र बी० ए० आर्नस (लंडन), एम० ए०, एम ई० ए०

२—रासायनिक तुला

विज्ञानके विभिन्न विभागोंमें जो यन्त्र व्यवहृत किये जाते हैं, उनमें तुलाका स्थान मुख्य है। रसायनशास्त्र तथा इससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य विषयोंमें तो तुलाके बिना एक क्षण भी काम नहीं चल सकता। रसायनशास्त्र-की उन्नति उसी समयसे हुई है, जबसे इसके प्रयोगोंमें तुलाका व्यवहार होने लगा है। इसका पहला श्रेय फरांसीसी रसायनज्ञ आतों लोरें लैवोशिए (Antoine Laurent Lavoisier) महोदयको है। आपने ही तुलाके प्रयोग द्वारा "वस्तु-अविनाशिताके नियम" (Law of Conservation of matter) का प्रतिपादन किया था।

तबसे रासायनिक तुलाके बनानेमें इतनी उन्नति हुई है कि, इसके द्वारा ऐसी छोटी और अत्यल्प परिमाणमें चीजें तौली जा सकती हैं, जिसका अन्दाजा साधारण आदमी नहीं लगा सकता। बहुतोंको रसायनशास्त्रके सूक्ष्म विश्लेषणोंको देखकर शङ्का होती है कि, किस प्रकार इतने सूक्ष्म और यथार्थ (accurate) रूपसे रासायनिक विश्लेषण सम्पादित होते हैं और किस प्रकार इतने कम परिमाणमें वस्तुओंका तौला जाना सम्भव होता है। इस विषयमें इतना कह देना पर्याप्त होगा कि, साधारण रासायनिक तुलासे एक तोलेके लाखवें भाग (१/१००००० तोला)तक और सूक्ष्म रासायनिक तुला (micro balance) से १ तोलेके दस करोड़वें भाग (१/१०००००००० तोला) तक यथार्थतः तौला जा सकता है।

रासायनिक तुला

रासायनिक तुलाका मुख्य भाग उसका तुला-दण्ड(beam) (क) है। यह अत्यन्त दृढ़ (rigid) होता है और अपने
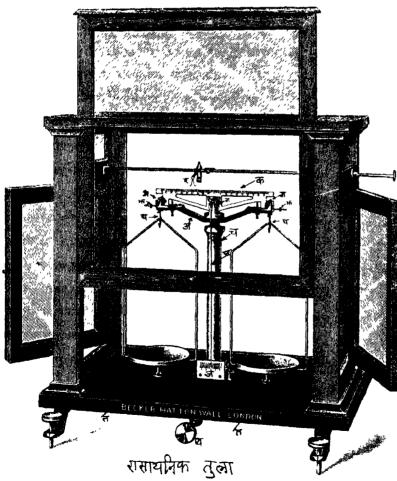
गुरुत्व केन्द्रके निकट ही उससे थोड़ा ऊपर आलम्बित रहता है। इस तुलादण्डके केन्द्रसे बराबर दूरी पर, दोनों ओर, दो पलड़े (ख, ख) लटके रहते हैं।

व्यवहारके समय पलड़ों और तुलादण्ड तथा तुलादण्ड और मध्य आकारके बीच अवलम्बनके स्थानोंपर घर्षण कम करनेके लिये तुलादण्डपर अकीकके तीन असिकोर (Agate knife edges) (ग,ग,ग) लगे रहते हैं। दोनों छोरोंपरके असिकोर तुलादण्डके मध्यबिन्दुसे समान दूरीपर होते हैं और उनके कोर (edge) ऊपरकी ओर होते हैं। इन असिकोरोंपर अकीकके दो चिकने धरातल अवलम्बित होते हैं, जिनसे सम्बन्ध रखनेवाली दो ग्रहणियों (Hooks) (घ,घ) पर दोनों पलड़े ख,ख लटकते रहते हैं। इससे दोलन (oscilla-

बाटोंका बक्स
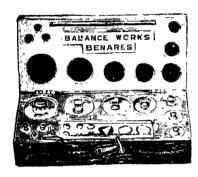
tion) के समय पलड़ों और तुलादण्डके बीच घर्षण भी कम हो जाता है और यदि कोई वस्तु या तौलनेके बाट पलड़ोंपर किनारे कर रख भी दिये जायँ, तो पलड़े इस प्रकार तिरछे हो जाते हैं, जिससे बोझका गुरुत्व केन्द्र असिकोरके ठीक नीचे आ जाता है। सूक्ष्म तौलके लिये ऐसा होना आवश्यक है। तुलादण्डके मध्यका असिकोर उसके गुरुत्व-केन्द्रके पास होता है और उसका कोर नीचेकी ओर होता है, जो तुलाके मुख्य आधारस्तम्भ (च) पर बैठाये एक अकीकी धरातलपर तुलादण्डको अवलम्बित रखता है। इससे तुलादण्डके दोलनमें घर्षण द्वारा बाधा उत्पन्न नहीं होती और बहुत थोड़े परिमाणमें दोनों पलड़ोंके बोझोंमें अन्तर होनेसे भी तुलादण्ड दोलित होने लगता है। तुलाके बनानेमें उसके तुलादण्डकी दृढ़ता, असिकोरोंके Sharpness, उनके समानान्तर और तुलादण्डके मध्य बिन्दुसे बराबर दूरीपर होनेपर जितना अधिक ध्यान दिया जायगा, तुला उतनी अधिक ग्राहक (sensitive & accurate) होगी। तुलादण्डके मध्यमें सामनेकी ओर एक लम्बा निर्देशक (Pointer) छ रहता है, जो तुलादण्डकी गतिके समय आधारस्तम्भके निम्न भाग में लगे एक अंशाङ्कित स्केल "ज"पर गमन करता है। तुलादण्डके दोनों छोरोंमें दो ढेबरियां झ, झ रहती हैं, जिनको पेंचपर घुमाकर भीतर-बाहर कर दोनों ओरके पलड़ोंका तौल बराबर किया जाता है। साधारणतः तुलादण्ड मध्यबिन्दुसे प्रत्येक छोरतक १० समान भागोंमें अंशाङ्कित रहता है तथा एक १० मिलिग्रामके आरोही (rider) "र" को तुलादण्डपर रखकर १० मिलिग्रामसे कम तौला जाता है। व्यवहारमें न रहनेके समय एक स्थायी आधार "अ" को ऊपर उठा देते हैं, जिसपर तुलादण्ड मध्यस्थित अकीकी धरातलसे उठकर स्थिर हो जाता है। इस दशामें दोनों पलड़ोंके नीचे दो गद्देदार आधार त, त ऊपर उठ आते हैं, जिनपर दोनों पलड़े स्थिर होकर अवलम्बित हो जाते हैं और उनका बोझ असिकोरों परसे हट जाता है। इस प्रकार व्यवहार न होनेके समय किसी भी असिकोरपर कोई दबाव या बोझ नहीं पड़ता, जिससे वे बराबर तेज बने रहते हैं और तुलाकी ग्राहकता बनी रहती है। जब तुलादण्ड स्थायी आधारोंपर स्थिर रहता है, उस समय निर्देशकका निचला सिरा स्केलके ठीक मध्यमें शून्य अंशपर रहता है। यह सम्पूर्ण तुला एक कांचके घरमें बन्द रहती है, जो इसे धूल, अम्ल और नमीसे बचाता है। साथ ही तौलनेके समय हवाके झोंकोंसे भी रक्षा करता है, अन्यथा ये तुलाएँ इतनी ग्राहक होती हैं कि, हवाके जरासे झोंकेसे तुलादण्ड झोंके खाने लगता है। स्थायी आधारको ऊँचा या नीचा करनेके लिये

इस घरके सामने एक चक्र "थ" अथवा पार्श्वमें एक चाभी लगी रहती है। इस घरके नीचे तीन पेंच प, प (दो सामने और एक पीछे) लगे रहते हैं, जिन्हें समुचित
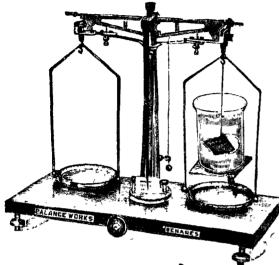
सामान्य रासायनिक तुला

रीतिसे घुमाकर तुलाधार धरातलको क्षैतिज (horizontal) बनाया जाता है। तुलाके क्षैतिज निर्देशके लिये या तो आधार-स्तम्भसे एक साहुल लटका रहता है अथवा काचघरके धरातलपर एक क्षैतिज तलदर्शक (Spirit level) होता है।

प्रत्येक तुलाके साथ बाटोंका एक सन्दूक (Weight box) रहता है। रासायनिक विश्लेषणमें तौलकी मेट्रिक प्रणाली व्यवहारमें आती है। इसका एकाङ्क (Unit) ग्राम (Gram) होता है, जो प्रायः $\frac{१}{१२}$ तोलेके बराबर होता है। साधारणतः तौलनेके बाट पीतलके बने होते हैं और उनपर सिलवर या सोनेका पानी फिरा रहता है। अधिक सूक्ष्म विश्लेषणके लिये स्वर्ण और प्लाटिनमके बाट प्रयुक्त होते हैं। ये बाट बराबर एक चिमटे (forceps) से उठाये और रखे जाते हैं। हाथसे कभी छुए नहीं जाते। नीचे बाटके सन्दूकका चित्र दिया जाता है, जिससे बाटोंकी तौल और उनके रखनेका क्रम मालूम हो जायगा। ये बाट १०० ग्रामसे लेकर ०·०१ ग्रामतक होते हैं। इसके बादका तौल आरोहीके प्रयोगसे मालूम होता है।

साधारणतः इन तुलाओंसे १० मिलिग्राम अर्थात् $\frac{१}{१००००}$ ग्रामतक तौला जा सकता है। शृङ्खलात्मक (Chain omatic) तुलाओंमें सोनेकी एक पतली शृङ्खलाको नीचे-ऊपर उठाकर ग्रामके तीसरे और चौथे दशमलवके तौल एक अंशाङ्कित स्केलसे सीधा मालूम हो जाता है।

कोई भी रासायनिक द्रव्य एक पात्रमें रखकर पलड़ियों पर रखा जाता है, जिससे उनपर कोई रासायनिक प्रभाव न पड़े। तुलाके तापक्रमसे भिन्न (अधिक वा न्यून) तापक्रमकी कोई वस्तु नहीं तौली जाती। बटखरे बराबर दाहिने हाथकी पलड़ीपर और तौलनेवाली वस्तु बायें हाथकी पलड़ीपर रखी जाती है। जब तुला दोलित हो रही हो, उस समय उसपरसे कोई वस्तु उठायी वा रखी नहीं जाती।

सूक्ष्म रासायनिक तुला (micro-analytical balance) से २० ग्रामतक ०·००१ मिलिग्राम अर्थात्
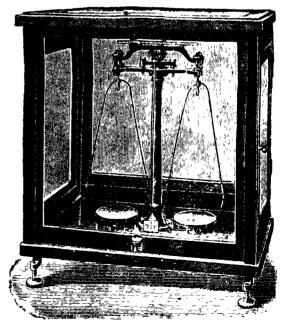
सूक्ष्म रासायनिक तुला

१००१ ग्रामकी सूक्ष्मतासे तौला जा सकता है। इन तुलाओंमें तुलादण्ड १०० अंशोंमें विभाजित रहता है और देखनेके लिये एक अभिवर्द्धक लेन्स (magnifying lens) लगा रहता है। इन तुलाओंमें तुलादण्ड बहुत ही छोटा और दृढ़ होता है तथा असिकोर एकदम सीधे, समानान्तर और तेज होते हैं। इसीसे ये तुलाएँ इतनी छग्राहक (Sensitive) होती हैं।

श्रीयुत अमरेन्द्रनारायण बी० एस-सी०

३—भापका इंजिन

भापके इंजिनको किसी एक आदमीने नहीं बनाया है। मिश्र देशके सिकन्दरिया नगरमें हीरो नामके किसी आदमीने, आजसे करीब दो हजार वर्ष पूर्व, भापका एक इंजिन बनाया था। लेकिन वह एक तरहसे बच्चोंका खेलसा ही था।

अमेरिकाकी हवाई रेलगाड़ी

सन् १६५० ई०में भापके इंजिनसे पहले पहल पंप चलाया गया था। इसके बाद, सन् १६८० ई०में, हालैंड देशके ह्यूजिन नामके एक आदमीने बारूदका इंजिन बनाया। यह इंजिन पिचकारीकी तरह था। इसके सिलेंडरमें बारूद रख दी जाती थी और आग लगा दी जाती थी, जिससे धड़ाका पैदा होता था। सिलेंडरमें एक ऐसा छेद बना रहता था, जिसका ढक्कन भीतरसे दबाव पड़नेपर तो खुल जाता था; परन्तु भीतरके दबावके खाली हो जानेसे या बाहरका दबाव पड़नेसे बन्द ही रहता था। धड़ाकेके कारण सिलेंडरके भीतरकी हवा ढक्कन खोलकर बाहर हो जाती थी और सिलेंडर वायुशून्य हो जाता था। वायुशून्य प्रदेश (वैकुअम)को भरनेके लिये बाहरसे हवा पैठना चाहती थी; लेकिन ढक्कनको बन्द पाकर हवा भीतर नहीं जा सकती थी। इस दशामें वायुका दबाव पिस्टनपर पड़ता था, जो सिलेंडरके भीतर घूमने लगता था। ह्यूजिनने पिस्टनके डंडेमें एक रस्सी बाँध दी थी, जिसके दूसरे सिरेका सम्बन्ध भारी बोझसे था। भीतर पैठते समय पिस्टन बोझको भी खींच लेता था। बस, उस समयतक इससे यही काम होता था।

दस वर्ष बाद फ्रांसके एक डाक्टरने सिलेंडरमें बारूदकी जगह वाष्पसे वैकुअम पैदा करनेकी युक्ति सोची। इस डाक्टरका नाम था डेनिस पेपिन। इसके इंजिनके लिये पानी गर्मकर वाष्प बनाया जाता था। वाष्पमें भी बड़ी ताकत है। जब पानी वाष्प बन जाता है, तब वह पहलेकी अपेक्षा १६०० गुना अधिक स्थान घेरता है। यही कारण है कि, बन्द बर्तनमें पानीका उबालनेसे फैलनेवाले वाष्पको जब स्थान नहीं मिलता है, तब वह बर्तनको तोड़-फोड़ कर निकलनेकी चेष्टा करता है और

कभी-कभी कम जानदार बर्तनको तोड़कर धड़ाकेका शब्द भी उत्पन्न कर देता है।

अच्छा, तो पेपिनके इंजिनमें पानीके वाष्प बन जानेपर सिलेंडरके नीचेकी आग बुझा दी जाती थी। बस, ठंढक पाते ही वाष्प फिर पानीके रूपमें परिवर्तित हो जाता था और थोड़ेसे ही स्थानमें इकट्ठा होकर सिलेंडरके अधिक स्थानमें वैकुअम पैदा कर देता था। ह्यूजिनवाले तरीकेसे पेपिनवाला यह तरीका अच्छा साबित हुआ। पेपिनने वाष्पके बलपर केवल बोझ ही नहीं ढोये; बल्कि उसने इसके सहारे नावोंको भी खेया।

आग बुझाकर जलानेमें तथा सिलेंडरको गर्म करके पुनः वाष्प बनाकर वैकुअम पैदा करनेमें बड़ा समय लगता था; इसलिये न्यूकमेन नामके एक आदमीने इसमें यह सुधार किया कि, वाष्प दूसरे बर्तनमें बनाया जाय एवम् सिलेंडरके वाष्पके ठंढा होते ही उसमें वाष्प भर दिया जाय। उसने वाष्प उत्पन्न करनेके लिये अलग बोयलर बनाया और सिलेंडरमें वाष्प पहुँचाया, जिससे पिस्टन जल्दी-जल्दी काम करने लगा। सिलेंडरको ठंढा रखनेके लिये अन्दर ही अन्दर ठंढा पानी पहुँचानेका भी उसने इंतजाम कर लिया। उन दिनोंके लिये यही तरकीब बड़ी मौजूँ थी।

न्यूकमेनका यह इंजिन लगातार ७० वर्षोंतक, इसी प्रकार, काम करता रहा। किसीके भी दिमागमें सुधार करनेकी गुंजाइश नहीं हुई। अन्तमें सन् १७६२ ई०के करीब जेम्सवाट नामके व्यक्तिने सहसा इसमें अद्भुत सुधार कर दिया, जिससे इंजिनकी चालमें पहलेकी अपेक्षा दसगुनी क्षिप्रता आ गयी। उसने सिलेंडरके पास एक दूसरे बर्तनमेंसे हवा निकाल कर वैकुअम उत्पन्न किया और सिलेंडरमें एक नली लगाकर उस बर्तनको सम्बद्ध कर दिया। इससे सिलेंडरका वाष्प स्वयं खिंच जाने लगा। बार-बार पानी छोड़कर सिलेंडरको ठंढा करनेका झंझट भी मिट गया।

इस थोड़ेसे ही सुधारसे भापका इंजिन बड़े कामका हो गया। इसके बाद वाटने पिस्टनको भी वाष्पके सहारे ही ऊपर उठानेकी युक्ति सोची। इस तरहके इंजिनको बनानेमें बोल्टनने इसकी धनसे बड़ी मदद की थी; अतः वाटने बोल्टनके साथ मिलकर इंजिनका एक कारखाना खोला, जो थोड़े ही दिनोंमें मशहूर हो गया।

प० देवेन्द्रनारायण मिश्र

४—मोटरगाड़ी

मोटरके पिस्टनको नीचे-ऊपर उठानेके लिये पेट्रोलका व्यवहार किया जाता है। मिट्टीके तेलको साफ करके पेट्रोल बनाया जाता है। हवामें मिल जानेसे पेट्रोल गैस हो जाता है और आग पाते ही भभक उठता है। इसी विशेषताके कारण पेट्रोलके द्वारा मोटरका इंजिन चलता है। पेट्रोलकी गैस जब सिलेंडरके अन्दर पहुँचायी जाती है, तब पिस्टन भीतरकी ओर आकर उसे दबा देता है, जिससे उस गैसमें धड़ाका पैदा करनेकी ज्यादा ताकत हो जाती है। इसी समय उस गैसमें बिजलीके द्वारा आग लगा दी जाती है। वहाँ जोरसे धड़ाका पैदा होता है, जो धक्का देकर पिस्टनको ऊपरकी ओर ढकेल देता है और इंजिन चलने लगता है। इसी तरह बारी-बारीसे इंजिनके सब सिलेंडरोंमें धड़ाका पैदा होता रहता है। मोटरके इंजिनमें चारसे लेकर बारह सिलेंडर तक होते हैं। बार-बार धड़ाका होते रहनेसे ये सिलेंडर गर्म हो जाते हैं, जिससे इनके फटनेका खौफ बना रहता है; इसलिये इनमें ठंढक पहुँचानेके लिये एक नली द्वारा ठंढा पानी इनपर छोड़ा जाता है। पानीको भी ठंढा रखनेके लिये चक्करदार नालियाँ बनी रहती हैं, जहाँ हवा पाकर गर्म पानी ठंढा होता रहता है। बिजली पैदा करनेके लिये भी छोटासा डायनमो रहता है, लेकिन स्टार्ट करते समय, डायनेमोके नहीं चालू रहनेसे, बैटरीकी बिजलीसे

काम लिया जाता है। यह बैटरी भी डायनेमोके द्वारा ही भरी जाती है। बाहरी साज-सज्जासे चमचमाती मोटरें इन दिनों इसी प्रणालीसे दौड़ती हैं।

आजसे बहुत पहले, सन् १७६६ ई० में, भापसे चलनेवाली गाड़ीको कगनने बनाया था। इसकी गाड़ी दीवारसे टकरा गयी थी, जिससे तत्कालीन सरकारने इसे कारागारमें डाल दिया था। इसके बाद गोल्ड्सवर्दी गर्नीने, १८२७ ई० में, एक गाड़ी बनायी। यह भी भापके ही बलसे घंटेमें १५ मीलके हिसाबसे चलती थी। इसमें ६ आदमी भीतर और १५ आदमी बाहर बैठ सकते थे।

मोटर ड्राइवरकी "हटो, बचो" चिल्लानेके लिये लाउड स्पीकर (मोटरका नया हार्न)

इसके बाद बहुत दिनोंतक बारूदके द्वारा इंजिन चलानेकी बात सोची जाने लगी; लेकिन इसमें कामयाबी हासिल नहीं हो सकी।

इसके बाद, १८६० ई०में, लेन्वायर नामके एक आदमीने गैससे चलनेवाला इंजिन बनाया। उस समय इसके इंजिनमें बहुतसी गैसें बेमतलब खर्च हो जाती थीं। इसके पश्चात्, सन् १८७६ ई०में, जर्मनीके डाक्टर निकोलस ओटोने लेन्वायरके इंजिनको सुधार कर एक बहुत बढ़िया इंजिन बनाया। फिर, सन् १८८७ ई० में, वहींके डैमलर नामके एक व्यक्तिने कुछ सुधार कर पेट्रोलकी गैससे चलनेवाली एक मोटर बनायी।

यह सब तो हुआ; लेकिन तबतक चक्केके सम्बन्धमें कुछ सुधार नहीं हो सका था। ठोस चक्कोंके सहारे एक तो मोटर तेजीसे नहीं दौड़ सकती थी, दूसरे उनसे सड़कोंकी दशा भी दयनीय हो जाती थी। इसका सुधार डनलप साहबने किया। पहले-पहल इन्होंने तीन पहियेकी पैरगाड़ीमें ठोस टायर लगाकर चलाया था। पीछे चलकर टायर-ट्यूबकी चाल भी इन्होंने ही चलायी। अभी भी डनलपका ही टायरट्यूब ज्यादा चलता है।

जब पेट्रोलका इंजिन बन चुका, टायर-ट्यूबका भी आविष्कार हो चुका, तब मोटरोंको लोकप्रिय बनानेके लिये उनकी दौड़ करायी जाने लगी। सन् १८९४ ई०में पहले-पहल दस मोटरें दौड़ी थीं। सबसे तेज दौड़नेवाली मोटर १२ मील प्रति घंटेके हिसाबसे दौड़ सकी थी। अगले सालकी दौड़में मोटरें १५ मीलके हिसाबसे दौड़ीं। अब तो एक मिनटमें एक मील दौड़ जाना मोटरोंके लिये मामूली बात हो रही है! इस दौड़से मोटरोंकी ओर लोगोंकी अभिरुचि हुई। अमेरिकामें एक घंटेमें सैकड़ों मील दौड़नेवाली मोटरें भी तैयार की जा रही हैं और इनके लिये खास सड़कें भी बनायी जा रही हैं। अब तो मोटरोंकी किस्मोंकी गिनती करना भी कठिन हो रहा है!

पं० तारकेश्वर झा

५—खानखोजे द्वारा निर्मित नवीन जातिकी मकई

विज्ञानमें पाश्चत्य देशोंसे भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। इधर कुछ वर्षोंसे पाश्चात्य सभ्यताके सम्पर्कसे

भारतीयोंको अपनी वर्तमान परिस्थितिका ज्ञान हुआ है—वे नवीन युगधर्मके अनुसार वैज्ञानिक उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगे हैं। बड़े हर्षका विषय है कि, उन्होंने थोड़े समयमें ही इस विषयमें काफी उन्नति कर दिखायी है। श्रीयुत जगदीशचन्द्र बोस, श्रीयुत प्रफुल्लचन्द्र राय, श्रीयुत चन्द्रशेखर वेंकट रमण आदि महाभागोंके नाम तो जगद्-विख्यात हो चुके हैं।

भारतके कुछ ऐसे भी सुपुत्र हैं, जिन्होंने विदेशोंमें जाकर वैज्ञानिक अनुसन्धानों और खोजों द्वारा अच्छी ख्याति प्राप्त की है तथा भारतका नाम और यश उज्ज्वल किया है। युनाइटेड स्टेट्स आफ अमेरिका जैसे संसारके सर्वोन्नत देशमें प्रो० शङ्करलक्ष्मण गोखले, डा० शङ्कर आबाजी विसे, डा० कोकटनूर आदि भारतीयोंने जो वैज्ञानिक कार्य किये हैं, वह प्रसिद्ध ही है। सुदूर मैक्सिकोमें प्रो० पाण्डुरङ्ग सदाशिव खानखोजेने कृषिके क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान कर संसारको भारतकी वैज्ञानिक प्रगतिका अच्छा परिचय दिया है, जिसके लिये वे सर्वथा प्रशंसाके पात्र हैं।

प्रो० खानखोजे द्वारा तैयारकी हुई नवीन जातकी मकई (प्रो० साहब दाहिनी ओर खड़े हैं)।

प्रो० खानखोजे भारतके उन निर्वासित देशभक्तोंमें हैं, जिन्हें पिछले जर्मन महायुद्धके समय भारत सरकार द्वारा स्वदेश लौटनेकी मनाही की गयी थी। इस मनाहीके कारण वे पिछले २७ वर्षोंसे अपनी मातृभूमिके दर्शनसे वञ्चित हुए हैं और विदेशोंमें अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनके जीवन-चरित्रके तथा उनपर लगाये हुए प्रतिबन्धको हटानेके सम्बन्धमें इन पङ्क्तियोंके लेखकने अंगरेजी, मराठी और हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओंमें अबतक बहुत कुछ लिखा है, जिसे यहाँ पुनः विस्तारसे दोहरानेकी कोई आवश्यकता नहीं।

प्रो० खानखोजेने सन् १९२५ में जर्मनी छोड़कर मैक्सिकोके लिये प्रस्थान किया। उस देशमें पहुँचनेपर वे कुछ दिनोंके बाद चेपिंगोके नेशनल एग्रिकल्चरल कालेजमें कृषिशास्त्रके अध्यापक हो गये। वहाँ उन्होंने अपने परिश्रम और अध्यवसायसे अपने व्यक्तित्वका सिक्का खूब जमा लिया है और अबतक अनेक सम्मानके पद विभूषित किये हैं। प्रो० खानखोजेने भिन्न-भिन्न फसलोंके विषयमें जो अनुसन्धान किये हैं, उनमें उनकी तैयार की हुई नवीन जातिकी मकईका चित्र साथ दिया गया है (चित्रमें प्रो० खानखोज दाहिनो ओर खड़े हैं)। यह चित्र मैक्सिकोकी राष्ट्रिय प्रदर्शनीके समय लिया गया था। यह मैक्सिकोके प्रेसिडेंटके वार्षिक विवरणमें भी प्रकाशित हुआ है। यह नवीन जातिकी मकई मामूली मकईकी अपेक्षा सभी दृष्टियोंसे उत्तमतर सिद्ध हुई है। इसका पेड़ तथा दाने मोटे और बढ़िया होते हैं। प्रो० खानखोजेने मकईकी नवीन जातिके विषयमें जो कतिपय अनुसन्धान किये हैं, उनका सचित्र वर्णन, उन्होंने

"Escuela Nacional De Agricultura" की ओरसे प्रकाशित किये गये "Nuevas Variedades De maize" यानी New Varieties of corn (maize) नामक बुलेटिन (bulletin) में विस्तार के साथ किया है। मैक्सिकोकी भाषा स्पेनिश होनेके कारण यह बुलेटिन स्पेनिश भाषामें लिखा गया है। प्रो० साहबके इस अनुसन्धान-कार्यका विस्तृत वर्णन हम आगे किसी संख्यामें करेंगे। यहाँ हम पाठकोंको उसका केवल संक्षिप्त दिग्दर्शन ही कराना चाहते हैं।

प्रो० खानखोजेके इन विभिन्न लोकोपयोगी अनुसन्धान-कार्योंको देखकर वहाँको "नेशनल एकडेमी आफ सायंस" नामक प्रतिष्ठित एवम् जगद्विख्यात विज्ञान-समितिने उनका जो महान् गौरव किया है, वह भारतीयोंके लिये अभिमानका विषय है। इस समितिकी "टायटल्ड एकेडमिक" या "एकादेमिको तित्तुलार"की पदवी बहुत ही सम्मान की मानी जाती है; और, वह केवल ऊँचे दर्जेके तथा राष्ट्रिय महत्त्वके अनुसन्धान करनेवाले वैज्ञानिकोंको ही दी जाती है। सन् १९३० में उक्त समितिने प्रो० साहबको यह पदवी देकर उन्हें सम्मानित किया। हम हृदयसे चाहते हैं कि, उन्हें दीर्घायुष्य प्राप्त हो और वे भारतका गौरव बढ़ानेमें अधिक समर्थ हों।

श्रीयुत आनन्दराव जोशी

६—फोनोग्राफ

लिखा है—"शब्दगुणकमाकाशम्" यानी शब्द आकाशमें ठहरते हैं; लेकिन यहाँ इतना निवेश करना पड़ता है कि, वह आकाश वायुयुक्त हो। यह सभी जानते हैं कि, घंटी बजानेसे टन-टनकी आवाज होती है; परन्तु वायुशून्य स्थानमें यदि वही घंटी बजायी जाती है, तो कुछ भी आवाज नहीं निकलती। कारण यह है कि, वायुके स्वाभाविक वेगमें किसी प्रकारका आघात-प्रतिघात होनेसे एक खास तरहकी कँपकँपी पैदा होने लगती है और वह लहर जब कानके पर्दे या झिल्लीतक पहुँचती है, तब वहाँ भी उसी तरहकी लहर उत्पन्न होने लगती है और लोगोंको आवाजका ज्ञान होने लगता है।

टेलीफोनके आविष्कारकोंने यह बात पहले ही सिद्ध कर दी थी। लोग जान चुके थे कि, आवाजसे वायुमें एक खास तरहकी लहर पैदा होती है। इसीके आधारपर ध्वननको परिस्फुट करनेकी नीयतसे किसी वैज्ञानिकने तुरहीके पतले सिरेपर एक छोटेसे गोल तवेको बन्द करके तवेके पीछे एक लम्बासा कड़ा बाल लगा दिया; और, बालके दूसरे सिरेको धुँधले शीशेसे जोड़ दिया। फिर तुरहीमें मुँह लगाकर जब कोई बोलने लगता था, तब वह शीशेको धीरे-धीरे घुमाता जाता था। इससे उस शीशेपर तरह-तरहके निशान बनते जाते थे; क्योंकि, तुरहीमें बोलनेसे जैसी लहर हवामें उत्पन्न होती थी, ठीक उसी तरहसे तवा हिलता था और तवेसे सम्बद्ध बाल शीशेपर उसी भाँतिका निशान बनाता जाता था। लेकिन इस आविष्कारसे कुछ ज्यादा फल नहीं निकला, लोग कम्पचिह्नको ही जानकर रह गये।

इसके अनन्तर, सन् १८७७ई०में, अमेरिकाके युक्त-राज्यके अन्तर्वर्ती न्युजार्सीके निवासी टामस एलवा एडिसन (Thomas A. Edison) ने इस पूर्वोक्त आविष्कारको एवम् Mr. Graham-bellके टेलीफोन यन्त्रके गोलाकार पटहस्थानके शब्दग्रहण और वितान-शक्तिको लक्ष्य करके एक यन्त्र बनाया। इसने भी बड़ीसी तुरहीके पतले सिरेको तवेसे जोड़ दिया और तवेमें एक छोटी सूई लगा दी एवम् एक गोल बेलनपर राँगेकी पन्नी चिपकाकर उसे सूईके अग्र भागसे सम्बद्ध कर दिया। जब तुरहीमें मुँह लगाकर

कोई बोलता था, तब वह बेलनको हाथसे घुमाता जाता था। इससे पन्नीपर निशान बनते जाते थे। इसके बाद जब वही सूई उस बेलनवाली पन्नीपर दोबारा घुमायी जाती थी, तब वह छोटा तवा आप-से-आप पूर्ववत् हिलने लगता था और हवामें लहर उत्पन्न करके पूर्वोच्चारित ध्वनिको प्रकट कर देता था। फोनोग्राफका प्रथम आविष्कार इसी रूपमें हुआ था। लोग इसे केवल तमाशेकी ही नजरोंसे देखते थे।

शनैः शनैः इस यन्त्रका सुधार होने लगा। भद्दापन हटाया जाने लगा और तुरत नष्ट हो जानेवाली पन्नीकी जगह Record (रेकर्ड) लगाया जाने लगा। इसका अधिक सुधार टामस हुड मेकडानल्ड द्वारा हुआ। इसने ऐसा आविष्कार किया कि, स्प्रिंगके जरिये अगर किसी हदतक रेकर्डको तेजीसे घुमाया जाय, तो अच्छी आवाज पैदा हो सकती है। इसके इस आविष्कारसे फोनोग्राफमें जान आ गयी और यह हलका-फुलका होकर सर्वत्र विचरने लगा। फिर भी अभी इसमें बहुत सुधारकी जरूरत है; क्योंकि इसमें स्वरोंकी आपेक्षा व्यञ्जनोंका उच्चारण अस्पष्ट होता है और 'स', 'ज'का प्रभेद सहसा उद्भासित नहीं होता है। रेकर्डको तेजीसे घुमानेपर स्वर ऊँचा होता है और धीरे-धीरे घुमानेसे स्वर नीचा होता है।

फोनोग्राफ द्वारा व्यक्त गानेको सुनकर लोग चकित हो जाते हैं और समझने लगते हैं कि, इसीमें गाना कहीं छिपा हुआ है; पर बात ऐसी नहीं है। गीत-रागादि तो रेकर्डमें भरे रहते हैं। रेकर्डोंमें मध्यसे लेकर परिधिपर्यन्त गयी हुई जो सूक्ष्म रेखाएँ रहती हैं, वे ही कम्पचिह्न हैं, जो गीतरागादिके व्यञ्जक हैं। नाचते हुए रेकर्डोंके उन्हीं कम्पचिह्नोंपर सूईकी रगड़ लगनेसे चोंगेकी हवामें कँपकँपी पैदा होने लगती है और छिपी हुई आवाज फोनोग्राफ सरीखे परिष्कृत यन्त्रों द्वारा हम लोगोंके कानोंतक पहुँच जाती है। इसी लिये एक ही फोनोग्राफसे भिन्न भिन्न रेकर्डोंके द्वारा तरह-तरहके गाने सुन पड़ते हैं।

रेकर्डोंपर स्वरजनित वायुतरङ्गोंको भरनेवाली मशीनका नाम फोनोटोग्राफ है। इसका आकार एक पीपेसा होता है। पीपेका एक मुँह एकदम खुला रहता है और दूसरेमें यन्त्र लगे रहते हैं। यन्त्रमें एक पतला परदा रहता है, जिसपर एक पतली सूई लगी रहती है। इसी सूईके द्वारा वायुकी लहरें रेकर्डोंपर अङ्कित होती हैं।

साहित्याचार्य "मग"

७—एनामेल

श्रीयुत के० एन० मुकर्जी बी० एस-सी० तथा श्रीयुत उर्वादत्त बुधलाकोटी बी० एस-सी०

एनामेलके सम्बन्धमें भारतवासियोंका ज्ञान बहुत कम है; क्योंकि बहुतसे लोग नहीं जानते कि, यह किन वस्तुओंसे, और किस प्रकार, प्रस्तुत किया जाता है। बहुतोंकी यह धारणा है कि, एनामेलके बर्तनोंमें खाना ठीक नहीं है, क्योंकि यह निषिद्ध पदार्थोंसे तैयार होता है। किन्तु यह धारणा भ्रममूलक है। एनामेलमें किसी प्रकारकी विषैली अथवा निषिद्ध वस्तु नहीं प्रयुक्त होती। भारतवर्षमें एनामेलके बर्तनोंका व्यवहार आजकल बहुत बढ़ गया है और यह बढ़ी हुई माँग जापान, जर्मनी और आस्ट्रियाके द्वारा पूरी की जाती है। भारत जैसे बड़े देशमें एनामेलके अभी ५ ही बड़े कार-खाने हैं।

प्रथम हमें देखना है कि, धातुओंसे बने अन्यान्य प्रकारके बर्तनोंकी अपेक्षा एनामेलके पात्रोंके व्यवहारमें अधिक लाभ क्या है? प्रथम तो एनामेलके बर्तन सहज ही साफ किये जा सकते हैं। द्वितीयतः इसपर अम्ल अथवा क्षारका कोई अनिष्टकारी

प्रभाव नहीं पड़ता। काच और चीनी मिट्टीके बर्तनोंमें भी यह सुविधा है; पर वे सहज ही टूट जाते हैं। एनामेलके बर्तनोंके दाम भी कम होते हैं, अतः यह गरीबोंके लिये बड़ा उपयोगी है। अल्यूमीनियमके बर्तन भी सस्ते होते हैं; पर उन पर अम्ल और क्षारका विशेष प्रभाव पड़ता है और वे खूब साफ नहीं किये जा सकते।

लोहे, ताँबे, चाँदी और सोनेके ऊपर जो काचकी सतह (मीनाकारी) बनायी जाती है, उसे ही एनामेल कहते हैं। किन्तु साधारणतः लोहेके ही ऊपर किये गये एनामेलके बर्तन काममें आते हैं।

नीचे हम लोहेके ऊपर काचकी सतह बैठानेकी विधिका संक्षिप्त वर्णन देते हैं।

एनामेल करनेके पहले लोहेके बर्तनको खूब साफ किया जाता है। इसे विशदीकरण उपचार (Cleaning operation) कहते हैं। लोहेके बर्तनोंपर जो अनेक प्रकारका मैल जमा रहता है, उसे पूर्ण-रूपेण दूर नहीं करनेसे लोहेके ऊपर एनामेल नहीं बैठता। यह सफाई कई प्रकारसे होती है।

(१) कार्बनिक विलायकों द्वारा, (२) भट्टीमें गरम कर, (३) रेत उड़ाकर, (४) अम्ल द्वारा ढालू लोहेके बर्तन भट्टीमें तपाकर या रेत उड़ा कर साफ किये जाते हैं। पिटवें लोहेके बर्तन साधारणतः अम्ल द्वारा साफ किये जाते हैं।

एनामेल बनानेमें निम्नलिखित वस्तुएँ प्रयुक्त होती हैं—

(१) काच-निर्माणकारी वस्तुएँ (यथा, फेल्सपार (Felspar), स्फटिक (quartz), सोहागा सोडा आदि), (२) सहायक द्रव्य। (क) अपारदर्शक बनानेवाली वस्तुएँ (यथा, टिन आक्साइड एंटीमनी आक्साइड)। (ख) आक्सीकारी द्रव्य, शोरा, चिली नाइट्रेट। (ग) बन्धक प्रतिकारक (यथा, कोबाल्ट आक्साइड और निकेल आक्साइड)। (घ) रंग करनेवाले द्रव्य (यथा, कोबाल्ट आक्साइड निकेल आक्साइड, मैंगेनीजडाइ-आक्साइड)।

इन द्रव्योंके कार्यों और गुणोंका वर्णन करने से लेखका कलेवर अनावश्यक ही बढ़ जायगा; अतः इसे हम छोड़ देते हैं।

एनामेलमें विभिन्न द्रव्योंका कितना-कितना परिमाण रहता है, इसका अंदाज नीचे दिये नुसखे से मालूम होगा—

फल्सपार—२७ भाग
स्फटिक—२३ भाग
सोहागा—३० भाग
सोडा—१० भाग
कोबाल्ट आक्साइड—०·३ भाग
या निकेल आक्साइड—०·३ भाग
या मैंगेनीज-डाइ-आक्साइड—०·२ भाग

इन द्रव्योंको अलग-अलग चूरकर महीन चलनोंमें चालकर खूब अच्छी तरह मिलाते हैं। इसके बाद इसे फ्रिटिंग (Fritting) की भट्टीमें गलाते हैं। इस गले हुए एनामेलको ठंढे पानीमें डाल दिया जाता है। इससे जो काच तैयार होता है, उसे फ्रिट (Frit) कहते हैं। फ्रिटको अच्छी प्रकार चूर्ण करनेके लिये पानी ३० प्रतिशत और श्वेत मिट्टी ५ प्रतिशतके साथ मिलाकर घूर्णक चक्कीमें दिया जाता है। यह जब अच्छी प्रकार चूर्ण होकर चूनेकी कलीके समान चिकना हो जाता है, तब इसे स्लिप (Slip) कहते हैं। स्लिप (Slip) को लोहेके साफ किये धरातलपर लगा कर सुखाया जाता है। पूरी तरह सूख जानेपर इसे आवृत्त भट्टीमें ६०० डिग्री सेंटीग्रेडके ताप-

क्रमपः पकाया जाता है। लोहेके धरातलपर इस प्रकार काचकी तीन सतह बैठायी जाती है--(१) धरातल-स्तर, (२) श्वेत स्तर और (३) सवर्ण स्तर। स्तरको बैठानेका विवरण ऊपर दिया जा चुका है। श्वेत स्तरके लिये पूर्वोल्लिखित द्रव्योंको भिन्न परिमाणोंमें व्यवहार किया जाता है। इसका भी एक नुसखा नीचे दिया जाता है—

फेल्सपार—२५ भाग

स्फटिक—२० भाग

सोहागा—३२ भाग

सोडा— १० भाग

क्रायोलाइट—१३ भाग

पहलेके ही समान इन सबोंको चूरकर मिलाया जाता है और फिर गलाकर फ्रिट बनाया जाता है। फिर इसे घूर्णक चक्कीमें टिन आक्साइड ७ प्रतिशत और श्वेत मिट्टी ५ प्रतिशतके साथ पानी मिलाकर स्लिप बनाया जाता है और पकाये हुए पहले स्तर-पर लगाकर पकाया जाता है। तीसरा अर्थात् सवर्ण स्तर भी इसी प्रकार बैठाया जाता है। इसके लिये श्वेत स्तरवाले नुसखेमें रंग करनेवाले द्रव्यों-को मिलाकर फ्रिट (Frit) कर रंगीन एनामेल तैयार किया जाता है।

श्वेत स्तर ७५०—८५० डिग्री सेंटीग्रेड ताप-क्रमपर और सवर्ण स्तर ७००—७५० डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रमपर पकाया जाता है।

(अनुवादक, श्रीयुत अमरेन्द्रनारायण सिंह बी० एस-सी०)

८—लार्ड केल्विनके आविष्कार

बिजलीकी रोशनी और बिजलीका तार आज दुनियाके कोने-कोनेमें अपना चमत्कार दिखा रहा है; किन्तु सौ सवा सौ वर्ष पहले किसी भी मनुष्यने स्वप्नमें भी ध्यान नहीं किया था और न किसीने यही गुमान किया था कि, एक गणितज्ञ देवों जैसे इस चमत्कारको कर दिखावेगा।

सन् १८२८ ई० में ब्रिटिश आइलेंडके बेलफास्ट नगरमें प्रो० जेम्स टामसन रहते थे। वह एक अच्छे गणितज्ञ थे। उनका विवाह ग्लासगो नगरके एक धनी व्यापारीकी कन्यासे हुआ था। वह ग्लासगो के विश्वविद्यालयमें ही गणितके अध्यापक हो गये थे। उनके जेम्स और विलियम नामके दो पुत्र थे। वे दोनों अपने पितासे शिक्षा पाते थे। विलियम दस वर्षकी नन्ही उम्रमें ही 'प्रवेशिका' परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ था। पश्चात् वह ग्लासगोके विश्व-विद्यालयमें पढ़ने लगा था। सन् १८४१ में वह केम्ब्रिजके विश्वविख्यात विद्यालयमें आ गया था। वहींसे उसने 'डिग्री' पायी थी। सन् १८४६ में वह ग्लासगोके विश्वविद्यालयमें प्रकृतविज्ञान (Natural Philosophy) का प्रोफेसर नियुक्त हुआ और उस पदपर सन् १८६६ तक रहा। अनन्तर अपने आविष्कारों और विद्याप्रेमके कारण वहीं उस विद्यालयका 'चांसलर' हुआ और सम्राट् महोदयने उसे 'लार्ड' की उपाधिसे विभूषित किया! अब वही विलियम टामसन लार्ड केल्विन कहा जाने लगा।

विलियम टामसनके अध्यापन-कालके प्रारम्भिक दस वर्ष बड़े महत्त्वशाली थे। उस अवधिमें उन्होंने न केवल गणित और प्रकृतविज्ञान-विषयक ही अन्वेषण किये; बल्कि पार्थिव विज्ञान-क्षेत्रमें कुछ ऐसे आविष्कार किये, जिनसे उनका नाम सदाके लिये अमर हो गया।

आविष्कार-कर्ताओंमें लार्ड केल्विनकी गिनती सन् १८५७ से होने लगी। उस और उसके अगले वर्षके बीच उन्होंने ऐटलांटिक समुद्रसे तार-समा-

चारका सम्बन्ध स्थापित किया। यह आविष्कार एक व्यापारी कम्पनीके लिये किया गया था। यह कार्य जिस विद्युद्विद्याविद्के सिपुर्द किया गया था, उसने तीव्र विद्युल्लहरों (High-tension Currents) का प्रयोग किया, जिससे तार-समाचारका यन्त्र जल्दी नष्ट हो गया! अब लार्ड केल्विनके सम्मुख हल करनेके लिये यह समस्या आ उपस्थित हुई। यदि वे तीव्ररूपमें विद्युल्लहरों को काममें नहीं लेते, तो संकेत-शब्द बिलकुल अस्पष्ट होते थे और उनका तीव्ररूप यन्त्रको जल्दी नष्ट करता था। इस कठिनाईको लार्ड केल्विनने एक अन्य यन्त्रका आविष्कार करके दूर किया। अब क्षीण शक्तिकी विद्युल्लहरोंके सहारे संवाद भेजा जाने लगा, जिसे अतीव सूक्ष्म संकेतको ग्रहण करनेके योग्य यन्त्रके द्वारा बड़ी सुगमतासे लोग समझने लगे। यह यन्त्र "mirror galvanometer" कहलाता था। सन् १८६५ और १८६६ में पुनः सफलता-पूर्वक तार-समाचार ऐटलांटिक समुद्रके मध्य जाने-आने लगा। उस समय लार्ड केल्विन स्वयं समुद्रमें "ग्रेट ईस्टर्न" नामक जहाजपर मौजूद थे। इस घटनाके बाद लार्ड केल्विनने एक दूसरे यन्त्रका आविष्कार किया, जिसके द्वारा तार-समाचार स्वयं स्थायीरूपमें लिखे जाने लगे। इसका नाम उन्होंने "Siphon Recorder" रखा। अब यह हर किसीके लिये सुगम हो गया कि, वह विद्युत्की सहायतासे अपने मनकी बात अथवा समाचार दुनियाके किसी भी क्षेत्रमें शीघ्रातिशीघ्र भेज सके! यह था लार्ड केल्विनका पहला आविष्कार!

लार्ड केल्विनका दूसरा मुख्य आविष्कार बिजलीकी रोशनीका था। उन्होंने सन् १८८१ में अपने ग्लासगोवाले घर और विश्वविद्यालयके सिनेट भवनमें बिजलीकी रोशनी की थी। उसके बाद उनके आविष्कारका लाभ सारा संसार उठाने लगा। इनके अतिरिक्त लार्ड केल्विनने और भी अनेक आविष्कार किये थे। (जैसे, इलक्ट्रोमीटर, वाल्टमीटर, एम्पेरेमीटर, मेरीनर्स, कम्पास इत्यादि। लार्ड केल्विनने गणित और प्रकृति विज्ञानके आधारसे यह भी सिद्ध किया था कि, एक नियमित कालमें पृथ्वी इस योग्य नहीं रह जाती है कि, उसपर मनुष्य रह सके और फिर वह उतने ही समयमें इस योग्य हो जाती है कि, मनुष्य उसपर आरामसे रह सके। इस निर्णयपर वह अपने "उष्णताके सिद्धान्त"के आधारसे पहुंचे थे। निस्सन्देह उनका यह सिद्धान्त भारतके प्राचीन आर्यधर्मोंसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। प्रत्येक भारतीय धर्म "प्रलय"की बात कहकर लार्ड केल्विनके उक्त सिद्धान्तको मानो दुहराता है। जैन-शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है कि, आजसे लगभग ४० हजार वर्ष बाद इस पृथ्वीपर रहना मनुष्यके लिये असम्भव हो जायगा और अनुमानतः २५-३० हजार वर्ष बादसे अग्नि और सूर्यकी उष्णता कम होने लगेगी, जो अन्तमें प्रायः लुप्त हो जायगी। उसके बाद फिर रचना आरम्भ होगी और मनुष्य फिर सानन्द इस पृथ्वीपर रहने लगेंगे।

लार्ड केल्विनने अपने ज्ञानको "Treatise on Natural Philosophy" नामक ग्रन्थमें साकार बनाया था; किन्तु उसका एक भाग ही सन् १८६७ में छपकर रह गया—इसके अवशेष तीन भाग लार्ड केल्विनके साथ ही लुप्त हो गये! १७ दिसम्बर सन् १९०७ ई० को उनका स्वर्गवास हो गया!

बाबू कामताप्रसाद जैन

चैतन्य-मीमांसा

पं० रुद्रदेव शास्त्री, वेदाचार्य, दर्शनालंकार

आदिबिन्दु और लक्ष्य

पूर्वश्री स्वेडनवार्ग (१७३४ ई०), टामस राइट (१७५० ई०), एमेनुएल कांट (१७५५ ई०) तथा लाप्लास (१७९६ ई०)ने विश्वोत्पत्तिकी रहस्यमय लोकोत्तर कहानीपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार किया है। बहुलांशमें इन सबके मीमांसनकी पद्धति सदृश है। लाप्लासको नीहारिका-वाद (Nebular Theory)ने अमर कर दिया है। इस नीहारिका-वादका आविष्कारक और पथप्रदर्शक स्वेडनवार्ग था; पर श्रेय लाप्लासके ही भाग्यमें बदा था।

लाप्लासके नीहारिकावादने घोषणा की कि, इस विश्वका आदिकारण तेजोमय वाष्प-राशिके रूपमें था। उस वाष्प-राशिके भिन्न-भिन्न भाग विभिन्न गतियोंसे विभिन्न दिशाओंमें प्रवाहित होते थे। कुछ समयके पश्चात् उस विपुल वाष्पराशिकी विभिन्न गतियोंके एकाकार हो जानेसे एक महती गति, पश्चिमसे पूर्वकी ओर, उत्पन्न हो गयी। (क्यों ? इसका उत्तर है—स्वभावसे।)

इस तेजोमय वाष्प-राशिसे तापकी मात्राका विकिरण होता था। ज्यों-ज्यों तापकी मात्रा विकीर्ण होती जाती थी, त्यों-त्यों इस बड़े पिण्डका, मध्याकर्षणके नियमानुसार, सङ्कोच होता जाता था। शनैः शनैः इस वाष्प-राशिसे विशाल-चक्राकार महाविभाग पृथक् होने लगे। [(१) प्रो० जे. एच. जीन्स, (२) महाशय माउल्टन और चेम्बरलेन तथा (३) लाप्लासके तीन पृथक्-पृथक् वाद इस विषयमें प्रधान समझे जाते हैं।]

इनमें भी मध्याकर्षणके नियमानुसार सङ्कोचका क्रम जारी था—इनमें भी पूर्ववत् गतिकी शक्ति थी। सारांश यह है कि, इस विशाल तेजोमय वाष्प-राशिसे, जो महापिण्ड पृथक् हुए, उनसे ही पर्याय-अनुक्रमसे सूर्य और सौर मण्डलके विविध ग्रह, उपग्रह तथा उल्का-पुञ्ज आदिकी पृथक् सत्ताका जन्म हो गया।

यह सब आकर्षण और प्रतिघातकी शक्तिसे स्थिर हैं।

आकर्षण और प्रतिघातकी शक्तिका वर्णन ऋग्वेदकी सुन्दर ऋचाओंमें भी किया गया है। इस नियमकी वैज्ञानिक व्याख्या करनेका श्रेय न्यूटन (१६४२—१७२७ ई०) को है।

न्यूटनकी व्याख्याका निष्कर्ष यह है कि, किन्हीं ग्रहोंके भार-परिमाणको परस्पर गुणित कर उनके मध्यकी दूरीके वर्गसे विभक्त कर देनेसे आकर्षक और प्रतिघातक शक्तिकी मात्राका प्रमाण निकल आता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी एक ग्रहका भार-प्रमाण 'क' है, दूसरेका 'ख' और इनके मध्यकी दूरी 'च' है, तो $\frac{क \times ख}{च^2}$ इनकी आकर्षण और अनुकर्षणकी शक्ति है।

विभिन्न ग्रह और उपग्रह आदिका आकार और भार-प्रभाव, इनकी पारस्परिक तथा सूर्यसे दूरी, इनके विविध प्रकारके वातावरण, उसकी विशेषता, इन सबका परिणाम और वस्तु-स्थिति आदिका ज्ञान उपलब्ध करनेमें वैज्ञानिक लोग सफलप्राय हो चुके हैं। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि, किसी-किसी विषयमें विभिन्न वैज्ञानिकोंके, विभिन्न कारणोंसे, विभिन्न विचार हैं। तथापि वैज्ञानिकोंका व्यवस्थित मत अथवा सिद्धान्त, प्रायः, निर्भ्रान्त पक्षको ही प्रकट करता है। उदाहरणार्थ, सूर्यसे भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी दूरीको जाननेके लिये 'बोड'का सिद्धान्त प्रामाणिक

समझा जाता है। बोडके सिद्धान्तका अवलम्बन कर हम सामान्य त्रैराशिकसे ही विभिन्न ग्रहोंकी सूर्यसे दूरीका पता चला सकते हैं ।

सम्प्रति बुध, शुक्र, पृथिवी, मङ्गल, बृहस्पति, शनैश्चर, यूरेनस और नेपच्यून—ये आठ ग्रह हमारे इस दिवस्पति सूर्यको घेरकर अपने-अपने मार्गपर परिभ्रमण कर रहे हैं । इन ग्रहोंके अतिरिक्त और भी उपग्रह, धूमकेतु तथा उल्कापुञ्ज आदि न मालूम कितने पदार्थ सूर्यको घेरे हुए हैं । मङ्गल और बृहस्पतिके ही मध्यमें एक प्रकीर्ण लघु ग्रहोंका समूह है । कोई बड़ा ग्रह नहीं ।

सूर्यसे पृथिवी नौ करोड़ बीस लाख मील दूर है। बोडके सिद्धान्तका आशय यह है कि, यदि बुधकी दूरी सूर्यसे चार मील मान ली जाय, तो पृथिवीकी दूरीको जानते हुए, सामान्य त्रैराशिकसे, अन्य ग्रहोंकी सूर्यसे दूरीका सरलतासे पता चल सकता है अर्थात् ०, ३, ६, १२, २४, ४८, ९६ और १९२ में क्रमशः चार जोड़ देनेसे अन्य ग्रहोंकी दूरीका परिमाण निकल आवेगा। वैज्ञानिकोंका यह स्वीकृत पक्ष है। इसकी यथार्थता भी निर्विवाद है । इसी भाँति वैज्ञानिकोंकी अन्य विविध धारणाएँ हैं । पृथिवीका व्यास आठ हजार मील है और सूर्यका आठ लाख, छियासठ हजार मील । पृथिवीसे बृहस्पति तीन सौ गुना अधिक भारी है। चन्द्रमाके वातावरणका घनत्व पृथिवीके वातावरणके घनत्वसे अशीत्यंश [= ८०/१] न्यून है । चन्द्रमा पृथ्वीसे चालीस हजार मील दूर है । ... इत्यादि विविध धारणाएँ वैज्ञानिकोंके स्वीकृत पक्षमें सम्मिलित हो चुकी हैं । कुछ धारणाएँ विवाद-ग्रस्त भी हैं । कोई (प्रो० लोवेल) कहता है कि, मङ्गलमें जीवन-जगत्की सत्ता है; कोई (अल्फ्रेड रसेल वैलेस) कहता है, नहीं वहाँ रेगिस्तानोंकी भरमार है । वहाँ सामान्य जीवन-जगत्की सत्ता असम्भव है । कोई (प्रो० पिकरिंग) कहता है कि, चन्द्रमामें जीवन-जगत्के लक्षण हैं । कोई (डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस) कहता है, नहीं।...इत्यादि विषयोंमें वैज्ञानिकोंके बहुमतको वैज्ञानिक मत कहा जा सकता है; पर उसे वैज्ञानिक सिद्धान्त समझना अयुक्त और असङ्गत होगा । इसी प्रकार 'चैतन्य'के विषयमें अनेक मत हैं । तैत्तिरीयोपनिषद् (२।१) कहती है, आत्मासे सब कुछ उत्पन्न हुआ है। मनु (१ अध्याय) कहते हैं, आत्मा (मूल कारण) अव्यक्त है।

पृथिवीकी उत्पत्तिके पश्चात् चैतन्य और अचैतन्यकी पृथक्-पृथक् अवस्थिति हुई है ।

वेद कहते हैं (ऋ० १०।१२९), आदि कारण न सत् है, न असत् । वैज्ञानिकोंके मतानुसार "नेबुला" ही इस जगत्के आरम्भका आदि-बिन्दु है । उसमें चैतन्य और अचैतन्यका भेद नहीं है । तो फिर पृथिवीपर 'जीवन' कहाँसे आ गया ? चैतन्यका स्वरूप क्या है, जीव किसे कहते हैं ? क्या वह नित्य और अजन्मा है ? इन विविध जिज्ञासाओंके वैज्ञानिक समाधानकी सरणिको हस्तामलकवत् उपस्थित करना ही "चैतन्य-मीमांसा"का लक्ष्य है । न्यायतः उपलब्ध स्थानकी सीमाका अतिक्रमण न करते हुए ही इसकी मीमांसा की जायगी ।

डार्विनका उत्तर

लाप्लास और कांटने जिस भाँति नीहारिकावादकी स्थापनामें अपने सम्पूर्ण ऊहापोहोंकी शक्ति लगा दी, जिस भाँति डेकार्ट (१५९६–१६५० ई०) ने पृथिवीके प्रारम्भिक रूपको, सूर्यकी भाँति, उष्ण सिद्ध करनेमें अपनी विचार-धाराको चरम सीमातक पहुँचा दिया, जिस भाँति बफ्फन (१७०७-१७८८ई०)ने प्राकृतिक विज्ञान और प्रकृतिके इतिहास तथा पृथिवीकी जन्म-कुण्डलीका तत्त्व अभिव्यक्त करनेमें, पूर्वापर पर्यालोचनके सदुपयोगमें, कोई कोर-कसर बाकी न रखी,

जिस भाँति सर विलियम टामसन [जो कि, बादमें (१८६२ ई० में) लार्ड केलविनके नामसे विख्यात हुए हैं] ने पृथ्वीकी आयुको ज्योतिःशास्त्रके द्वारा निर्धारित करनेपर विशेष बल दिया, जिस भाँति सर विलियम हर्शेल (१७३८-१८२२ ई०) ने भिन्न भिन्न ग्रहोंकी गति-विधि और सूर्यकी विशिष्ट स्थितिका आचूडान्त मौलिक विवेचन किया, उसी भाँति चार्ल्स डार्विनने जीवधारियोंके, क्रमशः परिवर्तित होनेवाले विकासोन्मुख रूपके आमूल अनुशीलनमें, अपने आयुष्यका सर्वोत्तम भाग उत्सर्ग कर दिया।

प्लेटो, लामार्क, वर्थेलाट, क्लार्क, मैक्सवेल, डा० वेश्चियन, टिंडल, हक्सले और स्पेन्सर भी पश्चिमके मुख्य विचारकोंमें अति उच्च स्थान रखते हैं। ये सभी वैज्ञानिक-प्रवर हैं। कोई रसायनाचार्य है, कोई भौतिक-शास्त्राचार्य, कोई जीवविद्या-विशारद है, कोई भूगर्भविद्या-विशारद, कोई भौतिकशास्त्रमें पारङ्गत है, कोई दर्शनशास्त्रमें, कोई समाज-शास्त्रमें निष्णात है और कोई वनस्पति-विज्ञानमें। पर हैं सभी मौलिक विचारक। परन्तु चार्ल्स डार्विनका स्थान इन विचारकोंके मध्यमें प्रायः वही है, जो सौर मण्डलके मध्यमें दिवस्पति सूर्यका। डार्विनके प्रसिद्ध वादका नाम है "विकास-वाद" (इवोल्यूशन थियरी)। १८५९ ई० में चार्ल्स डार्विनका चिरस्मरणीय मौलिक ग्रन्थ "दि ओरिजिन आफ स्पेशीज" प्रकाशित हुआ। ग्रन्थका उपसंहार करते हुए डार्विनने कहा है—"जीवन-जगत्की महिमा अपार है। एकसे एक विकसित, सुप्रभ और भव्य जीवन, जीवन-जगत्के अद्भुत हारमें, गुम्फित हैं। प्रारम्भमें यह सब विभिन्न और विशिष्ट जीवन नहीं थे। प्रारम्भमें तो कर्त्ताके द्वारा (?) कुछ श्रेणियोंमें वस्तुतः एक ही आकृतिमें जीवन फूँक दिया गया था। कालान्तरमें उसी एकसे अनेक नाम-रूप हो गये।" क्यों? इसका उत्तर है कि, "यह संसार गति-शील है। आकर्षणानुकर्षण आदिके व्यवस्थित नियमों (सूत्र) से इसमें परिवर्तन होता रहता है। इसी परिवर्तनका यह परिणाम है कि, प्रारम्भिक एक रूपसे अनेक रूप हो गये। इसका क्रम अभी समाप्त नहीं हुआ है। अब भी एकसे एक भव्य, मञ्जुल और स्पृहणीय पदार्थोंका जीवन-जगत्में विकास होता जा रहा है।" प्रारम्भिक जीवन कहाँसे और कैसे आ गया? इस प्रश्नका समाधान करनेकी ओर कुछ सङ्केत उपसंहारके उक्त वाक्यमें किया गया है। पर वस्तुतः यह वैज्ञानिक समाधान नहीं है।

पृथिवीपर जीवकी उत्पत्ति कैसे हो गयी? यह प्रश्न डार्विनकी दृष्टिमें बहुत ही गौण था। इस प्रश्नका समाधान करते हुए डार्विनने एक बार अपने एक पत्रमें लिखा था—"जीवनारम्भके विषयकी जिज्ञासा नितान्त ही तुच्छ और निःसार है। हम यही प्रश्न क्यों नहीं करते कि, भौतिक वस्तु अर्थात् "मैटर" की उत्पत्ति कैसे हो गयी? जीवधारियोंके क्रमिक विकासपर वैज्ञानिक दृष्टिसे मनन करनेवाले डार्विनने इस प्रश्नको इससे अधिक महत्त्व देना निष्प्रयोजन और निःसार समझा! विकास-वादके वैज्ञानिक सिद्धान्तमें यह भारी विच्छेद है। जीवन-जगत्के विकासकी श्रृङ्खला यहाँपर खण्डित हो जाती है।

यह है विकास-वादके विकास्यक (डार्विनसे पहले डार्विनके पितामहने, लामार्क और गेटेने एवम् हर्बर्ट स्पेन्सर आदिने भी, इसी तत्वका प्रतिपादन किया था।) चार्ल्स डार्विनकी 'त्रुटि'।

चेतन और जड़

इस विच्छेदको दूर करनेके लिये बहुतसे प्रयत्न किये गये। इस त्रुटिका समाधान करनेसे पूर्व ही "चेतन-जगत्" और "अचेतन-जगत्"की रूप-रेखाको विस्पष्ट करना आवश्यक हो गया। जीवधारी प्राणियों और निर्जीव (कहे जानेवाले) प्रस्तर-खण्ड आदि द्रव्योंके विस्पष्ट अन्तरकी व्याख्या की जाने लगी। चेतन कहे जानेवाले पदार्थोंमें कुछ विशेष लक्षण सुव्यवस्थित हैं।

ये बाह्य पदार्थोंको (जल और अन्न आदिको) आहारके रूपमें अपनी ओर खींचते हैं। उसका विपरिणाम भी ये कर लेते हैं। रुधिर और मांस आदि पदार्थोंसे चेतन कहे जानेवाले पदार्थ अपने अङ्गोंका उपचय करते हैं। यह उपचय स्वाङ्गाभ्युपचय है। ये आहारके निःसार भागको मल, मूत्र आदिके रूपमें शरीरसे पृथक् करते रहते हैं। वंश-वृद्धिका इनमें विशेष गुण होता है। यह अपने रूपको विविध रूपोंमें जीवित रखनेके लिये सप्रयत्न होते हैं, इत्यादि। जीवधारी प्राणी सचेष्ट हैं। चेतन हैं। चेतनता एक विशेष प्रकारकी गतिको उत्पन्न करती रहती है। गति बलसे उत्पन्न होती है। बल, शक्ति, सामर्थ्य, चेतनता और प्राण, सब एक ही वस्तुके विविध रूप हैं। एकके ही अनेक नाम हैं। इन विविध व्यापारोंके आश्रयभूत केन्द्रका नाम है जीव अथवा चेतन। इनसे विपरीत गुणोंवाले प्रस्तर आदि द्रव्य हैं। ये निर्जीव पदार्थ निश्चेष्ट हैं। जड़ हैं। इनमें स्वाङ्गाभ्युपचय भी नहीं। हाँ, सांयोगिकार्थाभ्युपचय अवश्य है। (दूध पीकर उससे शरीरकी अन्तर्वृद्धि स्वाङ्गाभ्युपचय है; कोट, बूट, घड़ी और छड़ी आदिसे शारीरिक भार वृद्धि सांयोगिकार्थाभ्युपचय है।) अपत्योत्पादन, वंश-प्रवर्द्धन और आत्म-रक्षा-प्रयत्न आदि गुणोंसे भी यह शून्य हैं। इनमें गति और बल है; पर चेष्टा नहीं। इन निश्चेष्ट-पदार्थोंका नाम है निर्जीव अथवा जड़ द्रव्य।

भेदके निदर्शन

(१) उषाकाल है। भगवान् मरीचिमालीने अभी अपने प्रभा-जालका विस्तार नहीं किया है। उपवनके समस्त तरु अपने नैसर्गिक गर्वमें व्यामुग्ध हैं। सन्तरेके वृक्षपर एक छोटीसी चिड़िया बैठी है। इसका नाम है बुलबुल। यह अभिनव प्रस्फुटित पुष्पोंके मकरन्दका पान कर रही है। एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर और एक डालीसे दूसरी डालीपर फुदक रही है। मधुर ध्वनिसे बोलती है। अपनी रूप-गरिमापर इतराती है। थोड़ी ही देरमें अपने किसी प्रिय सहचरको देखकर आँखोंसे ओझल हो जाती है।

(२) शाद्वलका विस्तृत मैदान है। खरगोश और उनके नन्हे-नन्हे बच्चे हरी घासके मैदानमें पुलकित होकर कूद रहे हैं। मृदुल शश-शावक कन्दलिनी भूमिसे घास भी टूँग रहे हैं। घमा रहे हैं। किलोलें कर रहे हैं। न जानें कहाँसे इनको शिकारी कुत्तोंकी गन्ध मिल गयी। न जानें कहाँसे शिकारीकी पाद-ध्वनि इनके कर्णकुहरमें पहुँच गयी। सब सतर्क हो गये। भागकर बिलमें छिप गये।

(३) कल-कल निनाद करनेवाली पार्वती नदीके किनारे हरिण और मृग-शावक चर रहे हैं। एक दूसरेको चाट रहे हैं। शृङ्गाग्रभागोंके मृदु स्पर्शसे कुरङ्ग-कुरङ्गिणी और मृग-शावक एक दूसरेकी आँखोंकी खुजली दूर कर रहे हैं। इस पारस्परिक कण्डू-विनोदनमें हृदयके अन्तस्तलमें निहित स्नेह और वात्सल्यकी छाप है। इनकी यही इङ्गितमयी भाषा है। इसमें रस ओतप्रोत है। हम भले ही इसे रसाभास कहें। ठीक है—बन्दर क्या जाने अदरकका स्वाद? रङ्गमें भङ्ग हो गया। पर्वतकी शिला टूटकर नदीमें अररर धड़ामसे गिरी!

इस हरिणाङ्ककी यह जवनिका है। यह सब चेतन हैं। प्राणी हैं। इनके समस्त कार्य-कलापोंमें चैतन्यका अवभास है। एक कालके प्राणी प्रोटोजोआमें, अमीबामें और आदि वनस्पति प्रोटोकोकसमें न्यूनाधिक मात्रामें इसी चैतन्यांशकी सत्ता है। न्यूगाइनाके अशिष्ट "पपुआना" लोगोंमें तथा टस्मानियाके असंस्कृत आदि निवासियोंमें यही चैतन्यांश प्रकाश कर रहा है। वैदेह जनक तथा राजर्षि भरतमें, आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रमें, गौतम बुद्धमें (५६३—४८३ ई० पू०), श्रीशङ्कराचार्यमें (७८८—८२० ई०), श्रीरामानुजाचार्यमें (११ वीं शताब्दी), श्रीकबीरमें (१४०—१५१८), श्रीदादू

में (१५४४—१६०३), श्रीतुलसीदासमें (१५३२—१६२३ ई०), श्रीस्वामी दयानन्दमें (१८२४—१८८३ ई०) और स्वामी रामकृष्ण परमहंसमें (१८३३—१८८६ ई०) यही चैतन्यांश था। ईसामसीह और हजरत मुहम्मदमें भी कोई दूसरा अंश नहीं था। अल्फ्रेड (८ वीं शताब्दी), शार्लमैन (८ वीं शताब्दी), चौदहवें लुई (१७ वीं शताब्दी), नेपोलियन बोनापार्ट (१८ वीं शताब्दी), नेलसन (१८ वीं शताब्दी), बिसमार्क (१९ वीं शताब्दी) और विलियम प्रथम (१९ वीं शताब्दी) में उसी चैतन्यांशकी सत्ता थी। भिन्न-भिन्न समयके बुद्धि-जीवी, असि-जीवी, धन-जीवी और श्रमजीवी पुरुषोंमें, सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी और अन्न-पूर्णाके उपासकोंमें यही दिक्कालाद्यनवच्छिन्न चिन्मूर्ति बहु रूपोंमें प्रतिष्ठित थी और रहेगी। दूसरी ओर अचेतन कहे जानेवाले पदार्थ हैं। गति और शक्ति, रूप-विपरिणाम और कार्यक्षमता उनसे भी दृष्टि-गोचर होती है। तथापि कहे जाते हैं वे निर्जीव अथवा 'जड़'।

जड़की गति और रूप विपरिणाम प्रच्छन्न नहीं हैं।

[४] जाह्नवी नदीका तीव्र-प्रवाह बह रहा है, रय-पथके साथ पत्थरकी शिलाएँ लुढ़क रही हैं। एक दूसरे-का आलिङ्गन करती हैं। वह मिलती हैं, पृथक् होती हैं। आपसमें टकराती हैं। बहती हैं। खड़-खड़ाती हैं। देखते-देखते गढ़वालीसे स्वर्गाश्रम और हृषीकेश पहुँच गयीं। यह कलेवर बदलकर हरकी पैड़ीमें स्नान कर रही हैं। हरकी पैड़ीसे भी यह चल दीं। अब कन्नौजको छपमाको देखेंगी। इनका पितृव्य 'चरणाद्रि' है। उसकी पाद-बन्दना-के लिये सूक्ष्म शरीरसे यह चुनार पहुँच गयीं। यह शोक को दूर करनेवाले 'अशोक'का कीर्तिस्तम्भ देखती हुई गङ्गासागर जायँगी। वहाँ किसी द्वीप-पुञ्जके निर्माणमें सम्भवतः अपना जीवन दान दे देंगी। हिमालय-पुत्री पार्वती हैं। बालुकाराशि भी हिमशैलकी सुता है। लोक-विश्रुत हिमशैलके शृङ्गोंको त्याग कर 'चूल्हा' और 'तवा' आदिसे विहीन दूर प्रवासी पथिकोंको लाईका ग्रास पहुँचानेके लिये, भड़भूँजेके भाड़में तपस्या करने वाली 'बालुका-"राशि"', गति और शक्तिसे सम्पन्न होनेपर भी, है 'निर्जीव'।

(५) पानीकी तरङ्गें उठती हैं। चलती हैं। यह कूल-प्रदेशसे युद्ध करती हैं। उचित अवसर पाकर कूल-प्रदेशको काट-छाट देती हैं। सुदृढ़ कूल-प्रदेशके साथ लड़ाई लड़कर प्रतिनिवृत्त हो जाती हैं। प्रतिनिवृत्त होकर भी पुनः अदम्य उत्साहसे फिर चलेंगी। न मालूम कबसे चल रही हैं और न मालूम कबतक चलती रहेंगी! सतत-उद्योग-प्रवण यह जल-तरङ्गें हैं तो हमारी दृष्टिमें फिर भी 'निर्जीव'।

जड़की शक्ति

पानी, मिट्टी और पत्थरके अणु-अणुमें गति है, शक्ति है, बल है। उदाहरणार्थ, पानीको ही लीजिये। इस पानीके विविध रूप हैं। तरलावस्थाके आध पाव पानीको लेकर मोटे लोहेकी चद्दरसे बनाये गये एक सुदृढ़ गोलेमें भर दीजिये। गोलेके मुखको सुदृढ़, निष्पवन-पद्धतिसे बन्द कर दीजिये। तरलावस्थाका पानी उस गोलेमें आकण्ठ भरा हुआ है। जल-परिपूर्ण गोलेमें लेशभर भी स्थान रिक्त नहीं है। अब इस पानीको जमाकर बर्फ बनाइये। वैज्ञानिक परीक्षणोंसे हमें यह बात विदित है कि, तरलावस्था-का पानी घनावस्था अथवा तुषारावस्थाको प्राप्त करते समय आयतनमें बढ़ता है। आकण्ठ-परिपूर्ण यह जल भी आयतनमें बढ़ेगा। परन्तु गोलेमें तो लेश भर भी स्थान जलसे रिक्त नहीं है। यह बढ़े, तो किस दिशामें बढ़े? अतः तरलावस्थासे घनावस्थाको उपलब्ध करता हुआ यह अल्प जल मोटे लोहेकी चद्दरसे बने इस सुदृढ़ गोलेको तोड़कर अपने आयतनानुरूप स्थानको उपलब्ध कर लेगा। यह है निर्जीव जलकी शक्ति। क्या यह शक्ति न्यून है? इसे निःसीम बल कहना क्या अतिशयोक्ति है? बोतल,

कटोरे और पत्तेके दोने तकमें रूपान्तरित हो जानेवाले सुखनम्य जलकी शक्तिने न मालूम कितनी विशाल शैल-शिलाओंको बालू बनाकर सुराहियोंकी उपयोगिताको बढ़ा दिया है।

वायु कितनी सूक्ष्म और सुखनम्य है ? हमारे फेफड़ोंमें वायुका अनिरुद्ध आवागमन है। आँखकी कनीनिका भी मन्दानिलके लघु आघात पक्ष्म-पङ्क्तिके (बिरूनी) उत्क्षेप और अवक्षेपके व्यापारमें सहती है और वह सुरक्षित-भी बनी रहती है। आँधी भी तो तोड़ देनेवाली वायु है? वह न केवल दृढ़मूल और बृहदाकार वृक्षोंको ही उन्मूलित कर देती है, अपितु गर्वोन्नत, अखर्वाकार, शैल-शृङ्गोंको भी अनायास भूमिसात् कर देती है। यहाँतक कि, इन्हीं जड़ अथवा अचेतन कहे जानेवाले पदार्थोंकी शक्तिसे ही विश्व भी स्थिर है।

इन विविध निदर्शनोंसे यह व्यक्त है कि, अचेतन और चेतन, दोनोंमें ही गति है। दोनोंमें ही बल है। दोनोंमें ही शक्ति है; और, जड़ है असीम शक्तिका भण्डार।

अद्वैतवाद

गति और बल ही चेष्टाके मुख्य रूप हैं। सचेष्ट कहे जानेवाले "चेतन" और निश्चेष्ट कहे जाने वाले "अचेतन"में क्या भेद है ? वृक्ष और मनुष्यकी चेष्टामें भी भेद है। पर हैं दोनों सजीव। पत्थरके अणुओंमें भी संव्यूहन और संयोजनकी गति है। जिस भाँति वृक्ष और मनुष्य एक ही श्रेणीके 'सजीव' पदार्थ हैं, क्या उसी भाँति वृक्ष और पत्थर भी एक जातिके ही "सजीव" पदार्थ नहीं कहे जा सकते ?

वृक्ष और पत्थरके गुण बहुलांशमें भिन्न हैं। शिक्षित और शिष्ट मनुष्य तथा वृक्षमें क्या कुछ कम अन्तर है ? नहीं, वस्तुतः वृक्ष और शिक्षित मनुष्यमें जितना अन्तर है, उससे न्यून अन्तर, वृक्ष और दूधिया कंकड़में अभिव्यक्त होता है। हाँ, शक्तिकी मात्रामें भेद अवश्य है।

शक्तिकी मात्राका भेद तो एक ही देहके विविध अङ्गोंमें प्रत्यक्ष है। उदाहरणार्थ, आँखको लीजिये। आँखकी पलक चर्म-मय है। आँखकी पलकका ऊपरी भाग भी चमड़ेका है और निचला भाग भी। परन्तु दोनोंकी शक्तिमें अन्तर है। पलककी ऊपरी खालपर नमकीन अंगुली छुआ दीजिये। यह स्पर्शको सह लेगी। परन्तु आँखकी पलकके भीतरी भागपर नमकीन अंगुली छुआनेका "स्पर्श" सह्य नहीं होगा। कुछ क्लेश प्रतीत होगा। एक ही खालमें ये परस्पर विरुद्ध गुण हैं।

जीभ और ओष्ठ तथा पैरके तलुएकी त्वचामें भी इस भाँतिका अन्तर है। शरीरके विविध अङ्गोंमें भी यह अन्तर व्यवस्थित है। विविध गुणोंका (परस्पर सर्वथा विरुद्ध गुणोंका) सन्निवेश इस शरीर-पिण्डमें है। बाल, रोम तथा नख आदि शरीरके अन्य अव-यवोंकी भाँति आहार द्रव्यको खींचते हैं, बढ़ते हैं और रूपान्तरित होते रहते हैं। परन्तु जीवित शरीरके भी रोम और केश निर्जीवसे ही हैं। इनको कैंचीसे काटनेपर लेशभर भी दुःख-संवेदन नहीं होता। शरी-रके रोम और बाल जीवित शरीरके अङ्ग हैं। अतः सजीव हैं, निर्जीव नहीं। तथापि 'निर्जीव'में और इनमें क्या अन्तर है ? इसे प्रमाणित कर सकना सुख-साध्य कार्य नहीं है।

नखमें पक्के और कच्चेका भेद है। पका नाखून 'नहन्नी'से काट दिया जाता है। किसी प्रकारका दुःखानुभव नहीं होता। कोई संवेदन नहीं। परन्तु कच्चे नाखूनपर "नहन्नी" का आघात होते ही मुखसे "स्सी स्सी' की सिसियाहट निकलने लगती है ! पक्के और कच्चे नाखूनोंकी सन्धि कितनी सूक्ष्म है ? (क्रमशः) ❀

❀ स्थानाभावके कारण इस महत्त्वपूर्ण लेखका इतना ही अंश जा सका। अगला अंश "गङ्गा"की अगली "तरङ्ग"में जायगा। सम्पादक।

१—"विज्ञानाङ्क"की बातें

प्राचीन कालमें हमारे यहाँ विज्ञान शब्दसे शिल्प-शास्त्र, कर्म-कौशल, व्यापार-नैपुण्य आदि कितने ही अर्थ लिये जाते थे; परन्तु इन दिनों प्रयोग और निरीक्षण द्वारा किसी भी विषयके विशिष्ट ज्ञानको ही विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान कोई विशेष विषय नहीं; यह एक विशेष अध्ययन-पद्धति वा कार्य-शैली है। इस प्रणालीसे विश्वके जिस किसी विषयका पाठ और परिशीलन किया जाता है, वही विज्ञान कहाने योग्य हो जाता है। यही कारण है कि, इन दिनों अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, कथा, उपन्यास आदिको भी लोग विज्ञान-शास्त्रके अन्तर्गत मान रहे हैं। हमारे यहाँ भी, प्राचीन समयमें, यह शैली थी; किन्तु इसका क्षेत्र आजकलकी तरह व्यापक नहीं था; क्योंकि इस दिशामें कार्य करनेवाले थोड़े थे। अधिक लोग तत्त्व-विज्ञाता थे—किसी भी वस्तुको जान लेना ही यथेष्ट समझते थे। प्रयोगमें अधिक समय लगाना वे लोग फिजूल समझते थे। केवल याज्ञिक और तान्त्रिक ही प्रयोगके पक्षपाती थे।

इन दिनों इस कार्य-प्रणालीने बड़ी उन्नति की है। हजारों विज्ञान-प्रेमी विद्वानोंने, प्रयोग और परीक्षण-में, अपनी सारी जिन्दगी ही लगा दी है! अनेक वैज्ञानिकोंने सत्यकी खोजमें नाना प्रकारकी यातनाएँ उठायी हैं। उन्हें रस-शालाओंके स्फोटन, विषैले जीवाणुओंके आक्रमण, नवीन यन्त्रोंके आहनन और एक्सकिरणकी चपेटकी चिन्ता नहीं, यदि उन्हें सत्यका पता लग जाय! सचमुच वैज्ञानिक सत्यमय ईश्वरके परम सेवक हैं। जनता-जनार्दनकी अर्चना करना ही उनका काम है—समाजमें सुख-साम्राज्यकी नींव सुदृढ़ करना ही उनका धर्म है।

इन दिनों विज्ञानने युगान्तर उपस्थित कर दिया है। विज्ञानने पृथ्वी-तल, समुद्रपथ और आकाश-क्षेत्रको विजित कर डाला है। रेलने हफ्तोंकी यात्रा दिनोंकी कर दी है, समुद्री जहाजने वर्षोंका भ्रमण हफ्तोंका बना डाला है और वायुयानने आकाशके असम्भव पर्यटनको सम्भव कर डाला है! ऐसी-ऐसी पनडुब्बियां बनायी गयी हैं, जो भयङ्कर समुद्री तूफानमें भी निःशङ्क चली जाती हैं और ऐसे-ऐसे वायुयान निर्मित किये गये हैं, जो जमीनपर दौड़ते हैं, हवामें उड़ते हैं और पानीमें तैरते हैं! जो समाचार ऊँटोंपर महीनोंमें पहुँचाये जाते थे, वे मिनटोंमें ही मिल जाते हैं। हजारों मीलोंमें टेलीफोन लग गये हैं, जिनसे घर बैठे बातें की जाती हैं। जिस कामको लाखों मनुष्य महीनोंमें भी नहीं कर पाते थे, उसे मशीनें एक दिनमें ही कर डालती हैं! महाशक्तिशालिनी विद्युत्को पकड़कर रोशनी कराना और पंखे झलवाना, जलप्रपातोंकी नकेल बाँधकर बिजली दूहना, तार द्वारा चित्र भेजना, शब्दको नाथकर फोनोग्राफ, सिनेमा और रेडियोमें नचाना, असंख्य मीलकी दूरीपर रहनेवाले ग्रहोंका फोटो लेना, एक इंचके करोड़वें भागका परिदर्शन करना, मीलों नीचेके पृथ्वीके पेटको बायस्कोपकी

तरह समझना नित्यके खेलवाड़की बातें हो रही हैं ! रसायन-शास्त्रकी इतनी उन्नति हो गयी है कि, कोलतार, चिथड़ा, कूड़ा करकट, मल आदिसे भी एकसे एक मार्केकी चीजें बनायी जा रही हैं। बिना धूलि उड़ाये झाड़ू लगानेका यन्त्र, गायका दूध निकालनेका यन्त्र आदिके समान यन्त्र तो कितने ही प्रतिदिन बनते चले जा रहे हैं। जिस किसी भी वस्तुको सुगन्ध-संयुक्त कर देना, किसी भी फलमें मनचाहा स्वाद पैदा कर देना, काँटेदार फलोंको बे-काँटेदार करना, किसी भी फलकी गुठली गायब कर देना, कृत्रिम रेशम तैयार करना आदि आदि वैज्ञानिकोंके लिये रोजकी बातें हैं ! शरीरको सदा नीरोग रखना, दीर्घ आयु प्राप्त करना, मुर्देको भी जिला देना आदिमें भी वैज्ञानिकोंने काफी सफलता प्राप्त की है। पता नहीं, कुछ दिनोंमें वैज्ञानिकोंके सामने कोई भी बात असम्भव रहेगी या नहीं !

हम पहले लिख आये हैं कि, विज्ञान कोई विषय नहीं, प्रयोग और निरीक्षण या परीक्षण द्वारा किसी भी विषयका राई-रत्ती हाल जानना ही विज्ञान है। फलतः विज्ञानके विषय महाव्यापक हैं—अनन्त हैं। हाँ, यह अवश्य है कि, वैज्ञानिकोंने भौतिकविज्ञान, रसायन, जीवविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, चिकित्साविज्ञान, नक्षत्रकला, प्राणि-विद्या, खनिज-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान, वायुमण्डल विज्ञान, कृषि-विज्ञान आदि आदि-के लिये ही अधिक परिश्रम किया है—विशेष प्रयोग और निरीक्षण किये हैं। यही कारण है कि, उक्त विषय ही विज्ञान शब्दसे अधिक पुकारे जाते हैं। परन्तु वास्तवमें विश्वमें जो कुछ जड़ और चेतन हैं, सभी विज्ञानमय हैं। इस दशामें विज्ञानपर विशे-षाङ्क निकलना असम्भवसी कथा है। विज्ञान शब्दसे प्रसिद्ध उक्त विषयोंपर भी विशेषाङ्क निकालना अतीव श्रम-साध्य है। इस कठिनाईको हम अच्छी तरह जानते थे; परन्तु हिन्दीमें साहित्यके जिस अङ्गका अभाव है, उसकी पूर्ति करनेकी जो आग "गङ्गा"के प्रधान संरक्षक और अध्यक्षके हृदयोंमें है, उसे कौन बुझावे ? इस आगमें घीका काम किया त्यागमूर्त्ति त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायनने। आप ही "गङ्गा"के "पुरातत्त्वाङ्क"के सम्पादक थे। आपने कहा—"गङ्गा"के चौथे वर्षमें "विज्ञान"पर विशेषाङ्क निकालना चाहिये; क्योंकि इस विषयपर हिन्दीमें नहींके बराबर साहित्य है और वर्त्तमान समयमें, हमारे समाजके लिये, यह महान् उपकारक है।" "गङ्गा"के प्र० संरक्षक और अध्यक्ष महोदयोंने सांकृत्यायनजीके प्रस्तावका फौरन समर्थन किया—अनुमोदक हुए सोनबरसा-राज्यके साहित्य-प्रेमी अधिपति और "गङ्गा"के अन्यतम संरक्षक राव बहादुर रुद्रप्रताप सिंह एम० एल० सी०। हमने भी डरते-डरते हाँ-में-हाँ मिलाया; क्योंकि भावी अड़चनोंका सामना हमको ही अधिक करना था। इस विशेषाङ्कके सम्पादनके लिये प्रसिद्ध वैज्ञानिक और हिन्दू विश्व-विद्यालयके प्रतिष्ठित प्रोफेसर श्रीयुत फूलदेव सहाय वर्मा एम० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०से काशी जाकर हमने प्रार्थना की। इसकी अड़चनों और अपने समयाभावके कारण आपने बड़ी कठिनाईसे सम्पादन-कार्य स्वीकार करनेकी कृपा की। तबसे (लगभग एक वर्षसे) हम दोनों इस गुरुतम कार्यमें अत्यन्त व्यस्त रहे। वर्माजी दो बार सुलतानगंज भी पधारे। "विज्ञानाङ्क"को सफल बनानेके लिये उक्त तीनों महानुभावोंके कई हजार रुपये खर्च करनेपर भी लेखों और चित्रोंका संग्रह करने तथा लेखोंका अनुवाद करनेमें वर्माजीको और हमें काफी परेशानी उठानी पड़ी। हाँ, यह अवश्य हुआ कि, "विज्ञानाङ्क"की विषय-सूचीके प्रायः सभी विषयोंपर लेख आ गये। अनेक दुष्प्राप्य चित्र और नक्शे भी मिल गये। कुछ लेख "गङ्गा"-कार्यालयमें आये और कुछ वर्माजीके पास। प्रायः सभी लेखोंका वर्माजीने आव-श्यक संशोधन किया—हमें भी "गङ्गा"में व्यवहृत नीतिके

अनुकूल लेखोंको करना पड़ा। कार्यालयमें भी कितने ही लेख लिखने पड़े और कई लेखोंको दोबारा लिखना पड़ा। कई कारणोंसे छपानेमें, लेखोंमें, विषयों और लेखकोंकी योग्यताका क्रम नहीं रखा गया। आये हुए लेखोंमेंसे भी, स्थान-समयाभावके कारण, कितने ही अत्युपयोगी लेखोंको भी नहीं छापा जा सका। ब्लाक तैयार रहनेपर भी डा० महेन्द्रलाल सरकार, डा० विसे, डा० कोकटनूर जैसे वैज्ञानिकोंकी जीवनियाँ नहीं छापी जा सकीं। आशा है, एतदर्थ लेखक महोदय क्षमा प्रदान करेंगे। बचे हुए लेख अगले अङ्कोंमें प्रकाशित किये जायँगे।

हाँ, यदि १५ जनवरी (१९३४)के प्रलयकारी भूकम्पमें "गङ्गा"-कार्यालय और प्रेस तहस-नहस नहीं हुए रहते, तो "विज्ञानाङ्क" जनवरीमें ही निकल गया होता। परन्तु परिस्थिति बुरी हो गयी; और, यदि "गङ्गा"के उक्त तीनों महोदय कर्णधार न होते, तो यह विशेषाङ्क अभी ६ महीनोंमें निकल पाता! जो हो, किसी तरह इस महाविपत्तिको पारकर यह विशेषाङ्क निकाला जा सका और सांकृत्यायनजी आदिकी सलाहसे, परिशिष्टाङ्कके रूपमें, इसमें फरवरी और मार्चके अङ्क भी सम्मिलित कर दिये गये। इसमें सन्देह नहीं कि, "विज्ञानाङ्क"के प्रकाशनका श्रेय उक्त महानुभावों और वर्माजीको ही है।

२—प्रलयकारी भूकम्प

१५ जनवरीके महाविध्वंसकारो भूकम्पकी सारी कथा हमारे पाठक समाचारपत्रोंमें पढ़ चुके होंगे—विध्वस्त स्थानोंके अनेक हृदय-द्रावी चित्र भी देख चुके होंगे। इसलिये यहाँ वर्णन और चित्र देकर पिष्ट-पेषण करनेकी जरूरत नहीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, प्रत्यक्षदर्शी ही इस महाविनाशका वास्तविक अनुमान लगा सकेंगे। इस भूकम्पने सैकड़ो कीर्ति-स्तम्भोंको जमींदोज कर दिया, हजारो प्राणियोंको मार डाला, लाखों एकड़ खेतोंको जहन्नुम भेज दिया, करोड़ो रुपयोंको स्वाहा कर डाला और बिहारकी उद्यानमयी धरित्रीको सदाके लिये मरु-स्थल बना दिया! भारतमें अबतक जितने भूकम्प आये, उनका ऐतिहास वर्णन वर्माजीके "भूकम्प" नामक लेखमें पाठक पढ़ेंगे। अबतक यहाँ जितने भूकम्प आये, सबसे अधिक विनाशकारी यही था। वर्षोंमें भी इसकी क्षति-पूर्त्तिका होना सम्भव नहीं। ध्वस्त स्थानोंके पुनर्निर्माणके लिये वायसराय, बिहाररत्न राजेन्द्र बाबू और कलकत्तेके मेयरके तीन बड़े फंड खुले हुए हैं। इनमें लगभग ७५ लाख रुपये भी आ चुके हैं। परन्तु ये दालमें नमकके बराबर भी नहीं। इस कामके लिये करोड़ो रुपयोंकी जरूरत है, जिनका संग्रह तभी हो सकता है, जब कि, प्रत्येक भारतवासीका हृदय करुणा-विगलित हो जाय—सब दिल खोलकर दान दें। भारतमें धनियों और रुपयोंकी कमी नहीं; परन्तु अबतक अधिकांश धन-कुबेर सोये हुए हैं! यह बड़े दुःखकी बात है! क्या वे समझते हैं कि, उनकी अतुल सम्पत्ति और वे मार्कण्डेयकी आयु पाये हुए हैं? यदि विगत भूकम्पमें उनका अनन्त वैभव भी स्वाहा हो गया होता, तो? उत्तर वे ही दें। हम तो उनसे बार-बार यही प्रार्थना करेंगे कि, वे अब विलम्ब न करें, करोड़ोंकी तादादमें अविलम्ब दान दें। इससे बढ़कर दानका कोई अवसर नहीं, पुण्य और धर्मका कोई मार्ग नहीं। "गङ्गा"के पाठकोंसे हमारी विनम्र विनय है कि, वे "बिहार सेंट्रल रिलीफ कमिटी, पटना"के पतेपर बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके नाम, अधिकसे अधिक सहायता तुरत भेजनेका कष्ट करें।

इस भूकम्पमें "गङ्गा"की जो असीम हानि हुई है, उसके लिये भी हम अपने प्रेमी पाठकों और अनुग्राहकोंसे सहायता चाहते हैं। सहायता यही कि, हमारे पाठक कमसे कम एक-एक ग्राहक बनानेकी अति शीघ्र दया करें। ऐसा करनेसे ही हम अपनी क्षति-पूर्ति समझेंगे और "गङ्गा"को और भी सुन्दर बना सकेंगे।

—रामगोविन्द त्रिवेदी

३—"विज्ञानाङ्क"के सम्बन्धमें

विगत अप्रेल मासमें पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदीजी (सम्पादक, "गङ्गा") ने "गङ्गा"के "विज्ञानाङ्क"के सम्पादनका भार उठानेके लिये मुझसे कहा। पहले-पहल मैंने इसे स्वीकार नहीं किया। मेरे अस्वीकार करनेके कई कारण थे। सबसे पहला कारण यह था कि, इस प्रकारके कार्यका मुझे कोई अनुभव नहीं था। मुझे भय था कि, इस कार्यको मैं ठीक तरहसे नहीं कर सकूँगा। यह भय अब बहुत कुछ मुझे ठीक मालूम हो रहा है। दूसरा कारण यह था कि, मैं हिन्दीका कोई लेखक नहीं हूँ। कभी-कभी मैं एक आध लेख पत्र-पत्रिकाओंमें भेज दिया करता हूँ और तीन-चार छोटी छोटी पुस्तकें भी लिख डाली हैं। पर इतनेसे ही हिन्दीका लेखक होनेका दावा मैं नहीं कर सकता। फलतः मैं हिन्दी-लेखकोंसे परिचित नहीं हूँ। मेरे सम्पादक होनेसे हिन्दी-लेखकोंके प्रभावित होने-की कोई आशा भी नहीं थी। तीसरा कारण यह था कि, जो अध्यापन-कार्य मैं कर रहा हूँ, उसे करते हुए इस कार्यमें मैं पर्याप्त समय दे सकूँगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह था। इन कारणोंसे मैंने इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यको पहले अस्वीकार कर दिया। पर, अन्तमें, त्रिवेदीजी-के आग्रहसे और इस विचारसे कि, इसके द्वारा सम्भवतः मैं राष्ट्रभाषा हिन्दीकी कुछ सेवा कर सकूँगा और साथ ही विज्ञानके ज्ञानके प्रसारमें कुछ सहायक भी हो सकूँगा, इस कार्यको मैंने स्वीकार कर लिया। जबसे मैंने स्वीकृति दी, तबसे जो कुछ समय बचा सका, इस कार्यमें लगानेकी बराबर चेष्टा की। त्रिवेदीजी और मेरे परिश्रम और उद्योगसे जो कुछ हो सका है, वह पाठकोंके सम्मुख है।

वैज्ञानिक विषयोंपर विशेषाङ्क निकालनेकी यह पहली ही चेष्टा है। इसका श्रेय अवश्य ही "गङ्गा"के संरक्षक बनैली-राज्याधिपति साहित्यविभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह और इसके अध्यक्ष प० गौरीनाथ झा व्याकरण-तीर्थको है, जिनकी उदारता और हिन्दी-प्रेमके कारण ही इस "विज्ञानाङ्क"का प्रकाशन सम्भव हुआ है। यह अच्छा हुआ है या बुरा, इसका निर्णय पाठक स्वयं कर सकते हैं। पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि, यह "विज्ञानाङ्क" वैसा नहीं हुआ है, जैसा हम लोग चाहते थे। इसके अनेक कारण हैं, जिनका उल्लेख करना यहाँ मैं आवश्यक नहीं समझता।

इस कार्यको करते हुए मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसे पाठकोंके सम्मुख रखना मैं उचित समझता हूँ। सम्भव है, इस अनुभवसे दूसरे कुछ लाभ उठा सकें।

सबसे पहले मुझे यह बात मालूम हुई है कि, वैज्ञानिक विषयोंपर हिन्दीमें लिखनेवाले पर्याप्त वैज्ञानिक विद्यमान हैं। वे एकसे एक गूढ़ और मनोरञ्जक विषयोंपर प्रबन्ध लिख सकते हैं। मेरे विचारसे कुछ ऐसे होनहार नवयुवक लेखक हैं, जिन्हें यदि उत्साहित किया जाय, तो उच्च कोटिके लेख लिख सकते हैं। इनके लेख अमेरिकाके "पोपुलर सायंस" और "अमेरिकन सायंटिफिक जर्नल"के लेखोंकी टक्करके हो सकते हैं। अवश्य ही कुछ ऐसे लेखक भी हैं, जिन्हें पुरस्कारके विचारसे भी लेख लिखनेके लिये प्रभावित करना सम्भव नहीं है; परन्तु व्यक्तिगत प्रभावसे उनसे लेख प्राप्त किये जा सकते हैं। "विज्ञानाङ्क"के अनेक लेख ऐसे ही पुरुषोंके हैं, जो मेरे परिचित या मित्र हैं। इन सब लेखकोंका मैं अवश्य ही आभारी हूँ। विश्वास है कि, वे अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दीके साहित्यकी पूर्तिके लिये हिन्दीमें कुछ लिखते रहेंगे और कभी-कभी एक-आध लेख और कहीं न हो सके, तो प्रयागके "विज्ञान"के पास तो अवश्य भेजते रहेंगे, ताकि वह जीवित रह सके। हिन्दीके मासिक पत्रोंके सम्पादकोंसे भी मैं अनुरोध करूँगा कि, वे अपने पत्रोंके प्रत्येक अङ्कमें वैज्ञा-निक विषयोंपर एक-दो लेख छापते रहनेकी कृपा करें।

जिन लेखकोंने मेरी प्रार्थनापर ध्यान देकर लेख भेजनेकी कृपा की है, उनका मैं अनुगृहीत हूं। खेद है कि, कुछ लेखोंके चित्र, सबके सब, नहीं दिये जा सके। उन चित्रोंके न देनेका कारण यह है कि, उनके ठीक तरहसे खींचे हुए न होनेके कारण उनका ब्लाक बनाना सम्भव नहीं हुआ। यदि मैं उनका ब्लाक बनवा सकता, तो उन चित्रोंको अवश्य दे देता। मैं आशा करता हूँ कि, मेरे सहृदय लेखक मेरी कठिनाईको समझते हुए इस त्रुटिके लिये मुझे क्षमा प्रदान करेंगे।

४—इंडियन सायंस कांग्रेस

इंडियन सायंस कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन इस साल २ रीसे ८ वीं जनवरीतक, डा० मेघनाद साहाकी अध्यक्षतामें, बम्बई नगरमें, हुआ। कांग्रेसका उद्‌घाटन बम्बई प्रान्तके गवर्नरने किया। डा० साहाने अपने भाषणमें प्रधानत: तीन-चार बातोंका उल्लेख किया है। सबसे प्रथम उन्होंने इस विश्वकी सृष्टि और असंख्य ताराओंके सम्बन्धमें कुछ कहा है। आजकल जो नक्षत्रोंके सबन्धमें भौतिक-विज्ञान वेत्ताओंके समक्ष समस्याएँ उपस्थित हैं, वे निम्न लिखित हैं— (१) असख्य नक्षत्रोंकी उत्पत्ति कैसे होती है और उनके जीवनका इतिहास क्या है? (२) नक्षत्र अपनी शक्तिको किस प्रकार सञ्चित रखते हैं? (३) नक्षत्रोंसे जो विकिरण निकलकर आकाशमें आता है, उसका क्या होता है? (४) इस विश्वका अन्तिम परिणाम क्या होगा?

कासमिक रश्मि, केन्द्रक भौतिक विज्ञान और और कांटम (quantam) के विद्युद्विभाजनसे यह स्पष्ट है कि, जड़ पदार्थ किस प्रकार शक्ति-कांटममें और शक्ति कांटम विकिरणमें परिणत होता है। पर यह चित्र तभी पूर्ण होगा, जब वैज्ञानिक न्यूट्रनको विभाजित करनेमें समर्थ होंगे। यह प्रश्न साधारणतया पूछा जाता है कि, क्या "विकास" हो रहा है? इस प्रश्नका उत्तर सीधी तरहसे नहीं दिया जा सकता। इसका उत्तर देनेमें ऊँची कल्पनाका ही अनुसरण करना पड़ता है। दूसरा महत्त्वका प्रश्न यह है कि, क्या इस भूमण्डलके सिवा अन्य ग्रहोंमें भी हमारे सदृश प्राणी निवास करते हैं? इस प्रश्नने वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कमें बड़ी खलबली पैदा कर दी है। इसका कोई कारण नहीं मालूम होता कि, दूसरे ग्रहोंमें भी कोई प्राणी न हों; पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि, अबतक किसीने दूसरे ग्रहोंके प्राणियोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेमें सफलता नहीं प्राप्त की है। फ्रांसीसी एकेडेमीने उस वैज्ञानिकके लिये एक लाख फ्रांक पारितोषिक देनेकी घोषणा की है, जो पृथ्वीके निकटतम ग्रह मङ्गलसे सम्बन्ध स्थापित करनेके साधनकी खोज निकाले। एक और बड़े महत्त्वका प्रश्न संसारका वर्तमान आर्थिक सङ्कट है। इस प्रश्नका निपटारा भी तभी हो सकता है, जब वैज्ञानिक विधिसे इस प्रश्नपर विचार किया जाय। संसारकी आबादी अभी उतनी अधिक नहीं है कि, मनुष्योंको खाद्य पदार्थ प्राप्त न हो सकें। इस संसारमें जितने खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनसे सारे संसारके अधिवासियोंकी आवश्यकताकी पूर्ति, सरलतासे, हो सकती है। अपने भाषणके अन्तमें डा० साहाने भारतमें "इंडियन एकेडमी आफ सायंस" नामक संस्था स्थापित करनेकी आवश्यकता बतलायी। यह संस्था उसी प्रकारकी होगी, जैसी ग्रेट ब्रिटेनमें "रायल सोसायटी" और जर्मनीमें "प्रशियन सोसायटी" है। इसके सदस्योंकी संख्या नियत रहेगी और इसका सदस्यत्व सम्मान और ख्यातिका सूचक होगा।

५—प्रमुख भारतीय वैज्ञानिक

संसारके जितने व्यक्ति वैज्ञानिक अनुसन्धानमें लगे हुए हैं, उनकी संख्या कई हजारतक पहुँच सकती है।

यदि वैज्ञानिक मासिक पत्रोंके लेखकोंकी सूची बनायी जाय, तो वह सूची बहुत बड़ी हो जायगी। भारतमें भी वैज्ञानिक विषयोंके अध्ययन और अनुसन्धानमें लगे हुए व्यक्तियोंकी संख्या काफी बड़ी है। श्रीयुत पद्मम सिंहजी-ने "विश्वविद्यालयोंमें विज्ञानका अध्ययन" शीर्षक लेखमें प्रमुख वैज्ञानिकोंका उल्लेख किया है। "हिन्दुस्थानकी वैज्ञानिक संस्थाएँ" लेखमें भी वैज्ञानिकोंका उल्लेख है। इससे पाठकोंको भारतके प्रमुख वैज्ञानिकोंका अवश्य ही पता लग जायगा। पर त्रिवेदीजीकी राय है कि, कुछ भारतीय प्रमुख वैज्ञानिकोंके नाम अलग, सूचीमें, अवश्य रहें। यहाँ मैंने केवल उन्हीं प्रमुख वैज्ञानिकोंका नाम दिया है, जो संसार भरमें प्रसिद्ध हैं—

सर पी० सी० राय (रसायनज्ञ) पी-एच० डी०, डी० एस-सी०, कालेज आफ सायंस, कलकत्ता।

सर जे० सी० बोस (उद्भिज्ज-विज्ञान-वेत्ता) डी० एस-सी०, एफ० आर० एस०, बोस इंस्टीट्यूट, कलकत्ता।

सर सी० वी० रमण (भौतिक विज्ञानवेत्ता) एम० एल० डी० एस-सी०, एफ० आर० एस०, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ सायंस, बेंगलोर।

डा० मेघनाद साहा (भौतिकवैज्ञानिक) डी० एस-सी०, एफ० आर० एस०, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डा० नीलरत्न धर (भौतिक-रसायनज्ञ) डी० एस-सी०, प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

डा० गणेशप्रसाद (गणितज्ञ) डी० एस-सी०, हार्डिंज प्रोफेसर आफ मैथमेटिक्स, कलकत्ता।

डा० बीरबल साहनी (उद्भिज्ज-विज्ञान-वेत्ता) एस-सी० डी०, डी० एस-सी०, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

डा० बेणीप्रसाद (जन्तुविज्ञानवेत्ता) डी० एस-सी० जूलाजिकल सर्वे आफ इंडिया, कलकत्ता।

डा० जे० सी० घोष (भौतिक-रसायन-वेत्ता) डी० एस-सी०, ढाका विश्वविद्यालय, ढाका।

डा० एच० के० सेन (व्यावहारिक-रसायन-वेत्ता) डी० एस-सी०, सायंस कालेज, कलकत्ता।

डा० के० एन० बाल (जन्तु-विज्ञान-वेत्ता) डी० एस-सी०, डी० फिल०, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

६—वैज्ञानिक पुस्तकें

विदेशी भाषाओंमें वैज्ञानिक पुस्तकोंकी संख्या असंख्य है। यदि इन सबके नाम लिखे जायँ, तो सैकड़ों पृष्ठ लग जायँगे। "गङ्गा"के "वेदाङ्क" और "पुरातत्त्वाङ्क"में पुस्तकोंकी जैसी सूची दी गयी है, वैसी ही सूची इसमें भी देनेकी सूचना पहले निकल चुकी है। मैं ऐसी सूची देनेके पक्षमें ज्यादा नहीं हूँ; पर त्रिवेदीजीकी राय है कि, एक ऐसी सूची अवश्य रहनी चाहिये। आपकी आज्ञाको शिरोधार्य कर मैंने एक सूची बनायी है, जिसमें ऐसी प्रमुख पुस्तकें हैं, जिनसे प्रत्येक विषयके प्रारम्भसे लेकर उच्चसे उच्च कोटितकका ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन पुस्तकों और वैज्ञानिक विषयोंके सम्बन्धमें जिन्हें और कोई सूचना प्राप्त करनी हो, वे टिकट भेजकर मुझसे हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारसके पतेपर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। हिन्दीमें वैज्ञानिक पुस्तकोंकी सूची "हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य" लेखमें दी हुई है; अतः उसे दोहराना मैं उचित नहीं समझता।

Botany and Agriculture.

Gager. Fundamentals of Botany
Pfleiderer. Glimpses into the Life of Indian Plants
Brown. A text book of General Botany
Tansley. Elements of Plant Biology
James. Plant Physiology
Lowson and Salmi. A text book of Botany
Kashyap and Mehta, Practical Botany
Dudgeon Practical Botany
Fritsch and Salisbury. An Introduction to the Structure and Reproduction of Plants
Small. A text book of Botany

Strassburger. A Text book of Botany
Coulters, Barnes and Cowles. A text book ot Botany
Scott, Evolution of Plants
Skine Biology of Flowering Plants
Palladin. Plant Physiology
Darwin and Acton. Practical Plant Physiology
West and Fritsch. British Freshwater Algae
Gwynne. Vanghan and Barnes. Structure and Development of Fungi
Cawri. Interrelationships of Bryophyta.
Coutler and Chamberlain Morphology of Gymnosperms.
Coutler and Chamberlain. merphology of Augnosperms
Rendle Classification of Flowering Plants
Scott Studies in Fossil Botany
Mercier. Electro-chemical Treatment of Seeds
Baines. Germination
Russel. Soil Conditions and Plant Growth
Bose. Physiology of the Ascent of Sap
Bose. The physiology of photo-synthesis.
Hall. Fertilesirs and Manures
Hall. The Soil
Emerson. Soil Characteristics
Russel. Manuering for Higher Crops
Hann. Hand book of Climatology
Hayes and Garber. Breeding Crop Plants
Bateson. Mendel's principle of Heredity
Thompson. Heredity
Jones. Genetics in Relation to Crop and Animal Improvement
Coutler. Evolution of Sex in Plants
Hurst. Experiments in Genetics
Walter Genetics
Hunter Barlev
Brown Cotton
Hutchenson and Wolf. The production of Field Crops
Remington. Seed Testing
Howard. Crop production in India
Forteer. Use of water in Irrigation
Bailey. Principles of Agriculture
Bailey. Principles of Fruit-Growing
Fawcett. The banana: its Cultivation
Hand and Cockerham. The Sweet potato
Chupp. Vegetable Garden Diseases
Cook. Deseases of Tropical Plants
Griffiths. Diseases of Crops and their Remedies
Duncan. Insect Pests and plant Deseases in Vegetable and Fruit Garden

Chemistry

(a) Inorganic Chemistry

Baily and Snelgrove. Inorganic Chemistry, Metals and Non-metals
Rane and Varma. Inorganic Chemistry for Intermediate Students
Bruce and Harper. Practical Chemistry
Partington. Text book of Inorganic Chemistry
Mellor. Modern Inorganic Chemistry
Caven and lander. Systematic Inorganic Chemistry
Cunning and key Systematic Quantitative Analysis
Rane and Varma. Practical Chemistry
Mellor. Modern inorganic Chemistry
Fritz Ephraim. Inorganic Chemistry
Steevart. Recent Advances in physical and Inorganic Chemistry
Roscoe and Schorlemer. Treatise in chemistry Vols I and II
Browning. Rare Elements, A text book in Inorganic Chemistry, edited by Newton-friend (Full set)
Mellor. Teatise in Inorganic chemistry (Full set)

(b) Organic Chemistry.

Cohen. A Class Book of Organic Chemistry
Rane and Varma. Elements of Organic Chemistry
Cohen. Theoretical Organic Chemistry
Cohen. Practical Organic Chemistry
Cohen. Organic Chemistry for Advanced Students, Vols, I, II and III
Bernsthen. Organic Chemistry
Pope. Modern Research in Organic Chemistry
Stewart. Recent advances in Organic chemistry, parts I and II
Schmidt. Organic Chemistry

(c) Physical Chemistry.

Firth. Phy-ical Chemistry
Walker. An Introduction to Physical Chemistry
Gettman. Outlines of Physical Chemistry
Newton Friend. Theory of Valency
Lewis. A System of Physial Chemistry, Vols, I, II & III
Taylor. Physical Chemistyr, Vols, I and II
Nernst Theoretical Chemistry

Taylor. Colloids
Hatscheek. Colloids

(d) Phermaceutical Chemistry

Bentley and Driver. A Text-book of Pharmaceutical Chemistry
Cooper and Appleyard. Practical Pharmaceutical Chemistry

(e) Applied Chemistry

Askmson. Perfumes and Cosmetics, their Preparation and Manufacture
Lewkowitsch. Chemical Technology and Analysis of Oils, Fats and Waxes, Vols I, II and III
Molinari· General and Industrial Chemistry
Martin. Industrial Chemistry
Poucher, Perfumes, Cosmetics and Soaps, Volls I and II
Parry. Chemistry of Essential Oils and Perfumes Vols I & II
Cain and Thorpe. Synthetic Dye-Stuffs.
Cross and Bevan. Text book of paper making
Lunge. Technical Chemists Hand book
Butler. Portland Cement and its Manufacture
Lamber. Gluc, Getaline and their Allied Products
Stanislans. American Soap Maker Guide
Pitman. Common Commodities and Industries (Full Set)
Thorpe. Dictionary of Applied Chemistry

Geology.

Scott. Introduction to Geology
Dana and Fora. Manual of Mineralogy
Kemp. Hand-book of Rocks
Geikie. Outlines of Field Geology
Thomas and Mac Alister. Geology of Ore-Deposits
Chamberlain and Salisbury. Geology, Vols I, II and III
Dana. Text book of Mineralogy
Iddings. Igneous Rocks
Harkar. Petrology for Students
Seword. Fossil Plants
Ries. Economic Geology
Peele. Hand book for Mining Engineers

Mathematics.

Hall and Knight. Higher Algebra
Loney. Trigonometry, parts I and II
C. Smith. Analytical Conics
Loney. Co-ordinate Geometry
Pavate. The Elements of Calculus
Puri. An Introductory Course in Calculus
Loney. Treatise on Elementary Dynamics
Loney. Statics
Besant. Elementary Hydrostatics
Edward. Integral Calculus
Murray. Differential Equations
Todhunter. Spherical Trigonometry
Godfry. Astronomy
Briggs and Bryan. Mathematical Astronomy
Hardy. Pure Mathematics
Burnside and Panton. Theory of Equations
Loney. Co-ordinate Geometry, part II
Goursat. Mathematical Analysis, Vols I and II
Mahajui. Easy Lessons in Analysis
Forsyth. Differential Equations
Jean. Electricity and Magnetism
Lamb. Dynamics
Lamb. Higher Mechanics
Ball. Spherical Astronomy
Ramsay. Hydro-mechanics, parts I and II
Pierfronit. Theory of Functions of a Real Variable, Volls I and II
Cerslow. Differential Equations
Routh. Statics
Loney. Dynamics
Routh. Rigid Dynamics
Lamb. Hydro-Dynamics
Young Theory of sets of points
Gousato. Mathematical Analysis

Townsed. Theory of Functions of a Complex Variable
Greenhill. The Applications of Elliptic Functions
Mathew. Theory of Numbers
Hamilton, Elements of Quarterneous
Byerley. Fourier Series and Spherical Harmonics
Salmon. Higher plane Curves
Whittakar. Analytical Dynamics
Lorenz. Electron Theory
Birtwistle. Quantum Mechanics
Eddington. Mathematical Theory of Relativity
Love. Theory of Elasticity

Physics.

Hadley. Everyday physics
Frown. Experimental Science, Parts 1 and 11
Wagstaff. Properties of Matter
Capstic. Sound
Pointing and Thompson. Sound
" " Heat
Edser. Heat for Advanced Students
Edser. Light
Hadley. Electricity and Magnetism
Whetham. Experimental Electricity
Watson. Text book of Physics
Crowther. Ions, Electrons and Ionising Radiations,
Wood. Physical Optics
Preston. Theory of Heat
Bloch. kinetic Theory
Plank. Thermo-dynamics
Pointing and Thomson. Properties of Matter
Perrin. Brownian movement

Psychology

Dumville. Child mind
Koffka. The Growth of the mind
Holling worth. The Psychology of Subnormal children
Shea. The Child. His Nature and His Needs
Calkin. Inroduction to Psychology
Angell. Introduction to Psychology
Woodworth. Psychology
Bridges. Psychology-Normal and Abnormal
Mc dougall. Energies of Man

Zoology

Borbadaile. Manual of Zoology
Marshall. Frog
Marshall and Hurst Practical Zoology
Parker and Bhatia, Text book of Zoology for Indian Students.
Bahl. Earthworm
Hewith. House Flies
Parker and Haswel. Text book of Zoology
Goodrich. Living Organisms
Thomson. Outlines of Zoology
Doncaster. Heredity
Kingley. Comparative Anatomy of Animals
Dendy. Evolutionary Biology
Thompson and Geddess. Sex
Muichin. Protozoa
Fantham, Stephens. Animal Parasites of Man
Thomson. Heredity
Doncaster. Cytology
Doncaster. Determination of Sex
Punnet. Mendelism
Lock. Recent Progress in Heredity, Variation and Evolution

वैज्ञानिक पुस्तकोंके प्राप्त करनेके पते—

1 The Technical Bookshop,
724, Salisbury House, London
E. C. 2

2 Messrs. Thaker Spink and Co.,
3, Esplanade East, Calcutta

3 Blackie and Son Ltd.
50, Old Bailey, London E.C. 4

4 Taraporvala and Co, Bombay

5 Chatterjee and Chakravarty,
College Street, Calcutta

6 Messrs. Nand Kishore & Bros.
Booksellers and Publishers,
chowk, Benares city.

७—"विज्ञान"को अपनाइये

हिन्दी-संसारको विदित है कि, हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक और प्रसिद्ध देश-भक्त अध्यापक रामदास गौड़ एम० ए० और उनके प्रयत्नसे स्थापित विज्ञान परिषद् (प्रयाग) ने हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य निर्माणमें सर्वाधिक सहायता की है। परिषद्के मुख पत्र "विज्ञान"ने भी इस क्षेत्रमें बड़ा काम किया है। हिन्दीका यही एक मात्र वैज्ञानिक पत्र है। इन दिनों गौड़जी ही इसके अवैतनिक सम्पादक हैं। आजकल "विज्ञान" बहुत ही सुन्दर निकल रहा है। हम प्रत्येक विज्ञान-प्रेमीसे "विज्ञान"का ग्राहक बनने की प्रार्थना करते हैं। इसका वार्षिक मू० ३) रु० और एक अङ्कका ।) है। पता है—

मैनेजर, "विज्ञान", विज्ञानपरिषद्, प्रयाग

विज्ञापनदाताओंके लिये—

(१) आधे पेजसे कमका विज्ञापन छपानेवालोंको "गङ्गा" नहीं भेजी जायगी।

(२) विज्ञापनकी छपी हुई दरमें किसी प्रकारकी कमी नहीं की जायगी; इसलिये व्यर्थकी लिखा-पढ़ी नहीं करनी चाहिये।

(३) विज्ञापनकी छपाई हर हालतमें पेशगी ली जायगी।

विज्ञापनकी निश्चित दर—प्रतिमास

कवरका दूसरा या तीसरा पूरा पेज	२५)	रंगीन चित्रके पहले या सामने अथवा	
" " " आधा पेज	१५)	कवरके तीसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	२२)
" चौथा पूरा पेज	३०)	" " आधा पेज	१२)
" " आधा पेज	२०)	लेख-सूचीके नीचेका आधा पेज	१२)
पाठ्य विषय और कवरके दूसरे पृष्ठके सामनेका पृष्ठ	२२)	साधारण एक पृष्ठ	०)
" " आधा पेज	१२)	" आधा पेज	११)
		" चौथाई पेज	६)

मैनेजर, "गङ्गा", सुलतानगंज (ई० आई० आर०)